।। कोबातीर्थमंडन श्री महावीरस्वामिने नमः ।।

।। अनंतलब्धिनिधान श्री गौतमस्वामिने नमः ।।
।। गणधर भगवंत श्री सुधर्मास्वामिने नमः ।।

।। योगनिष्ठ आचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीश्वरेभ्यो नमः ।।
।। चारित्रचूडामणि आचार्य श्रीमद् कैलाससागरसूरीश्वरेभ्यो नमः ।।

# आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर

## पुनितप्रेरणा व आशीर्वाद

## राष्ट्रसंत श्रुतोद्धारक आचार्यदेव श्रीमत् पद्मसागरसूरीश्वरजी म. सा.

## जैन मुद्रित ग्रंथ स्केनिंग प्रकल्प

ग्रंथांक : १

**श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र**

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, गांधीनगर-श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, गांधीनगर-३८२००७ (गुजरात)
(079) 23276252, 23276204
फेक्स : 23276249
Websiet : www.kobatirth.org
Email : Kendra@kobatirth.org

**शहर शाखा**

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
शहर शाखा
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
त्रण बंगला, टोलकनगर
परिवार डाइनिंग हॉल की गली में
पालडी, अहमदाबाद – ३८०००७
(079) 26582355

Jibananda Vidyasagara BA

पण्डितकुलपतिः श्रीजीवानन्दविद्यासागर वि, ए।

PANDIT JIVANANDA VIDYASAGARA B. A.

SUPERINTENDENT FREE SANSKRIT COLLEGE CALCUTTA.

# स्मृतितत्त्वस्य

## प्रथमो भागः।

तिथितत्त्वम् + श्राद्धतत्त्वम् + आह्निकतत्त्वम् + प्रायश्चित्ततत्त्वम्
ज्योतिस्तत्त्वम् + मलमासतत्त्वम् + संस्कारतत्त्वम्।

महामहोपाध्याय श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्य्य
विरचितः।

वि०. उपाधिधारिणा पण्डितकुलपतिना
श्रीजीवानन्दविद्यासागरेण संस्कृतः
प्रकाशितश्च।

द्वितीय संस्करणम्।

कलिकातानगर्य्यां
"नारायण यन्त्रे"
मुद्रितः।

ई० १८९५।

# प्रथमभागस्य सूचीपत्रम्।

## तिथितत्त्वम्।

| प्रकरणम् | पृष्ठायां |
|---|---|
| तिथिस्वरूपनिरूपणम् | १ |
| विशेषतिथिकर्म्मसन्देहनिर्णयः | २ |
| अथ विघ्नपतितमृताद्याविदितश्राद्धकालः | १५ |
| अथ जन्मतिथिकृत्यं | २० |
| अथ प्रतिपत् | २६ |
| अथ द्वितीया | २८ |
| अथ तृतीया | ३० |
| अथ चतुर्थी | ३१ |
| अथ पञ्चमी | ३२ |
| अथ षष्ठी | ३४ |
| अथ सप्तमी | ३५ |
| अथ विधानसप्तमी | ३६ |
| अथाष्टमी | ४० |
| अथ जन्माष्टमी | ४१ |
| अथ व्रतकालव्यवस्था | ४७ |
| अथ पारणकालः | ५१ |
| तदयं संक्षेपः | ५४ |
| अथ नवान्नश्राद्धकालः | ५७ |
| अथ भीष्माष्टमी | ५८ |
| अथ अशोकाष्टमी | ५८ |
| अथ नवमी | ५९ |
| अथ श्रीरामनवमी | ५९ |
| तदयं संक्षेपः | ६२ |
| अथ दशमी | ६२ |
| अथ दुर्गोत्सवः | ६४ |
| अथ सप्तमीपूजा | ७६ |

प्रकरणम् पृष्ठायां
अथ वैधहिंसाविचारः ... ... ८४
महानवमीपूजाकल्पः ... ... ८८
अथ कुण्डविधिः ... ... ९५
अथ एकादशी ... ... १०४
तदयं संक्षेपः ... ... १०८
अथ द्वादशी ... ... ११४
अथ त्रयोदशी ... ... ११७
अथ चतुर्दशी ... ... १२१
अथ शिवरात्रिव्रतं ... ... १२४
तदयं संक्षेपः ... ... १२६
शिवरात्रिव्रतप्रयोगः ... ... १२६
अथ मदनचतुर्दशी ... ... १३३
अथ पौर्णमासी ... ... „
अथ कोजागरकृत्यं ... ... १३५
अथ चतुरङ्गं ... ... १३७
अथ रविसंक्रान्तिः ... ... १४०
तदयं संक्षेपः ... ... १४४
अथ ग्रहणं ... ... १५०
अमावास्याश्राद्धकालः ... ... १६७
अथार्द्धोदययोगः ... ... १८७
अथ युगाद्या ... ... „

---

## श्राद्धतत्त्वम् ।

अथ श्राद्धदेशाः ... ... १९७
अथ श्राद्धदेवाः ... ... १९९
अथासनं ... ... २००
अथ दर्भाः ... ... २०१
अथानुज्ञा ... ... २०२
अथ पिण्डपितृयज्ञातिदेशः ... ... २०७
अथ कुशासनं ... ... „

प्रकरणम् पृष्ठायां
अथावाहनं ... ... २०९
अथार्घ्यं ... ... २१०
अथ गन्धादिदानं ... ... २१५
अथ पुष्पं ... ... „
अथ धूपाः ... ... २१६
अथ दीपाः ... ... „
अथाच्छादनं ... ... „
अथ यज्ञोपवीतानि ... ... „
अथ पात्रस्थानं ... ... २१७
अथ पात्राणि ... ... „
अथाग्नौकरणं ... ... २१८
अथ हुतशेषदानं ... ... २२०
अथ विहिताविहितद्रव्याणि ... ... २२४
अथ परिवेशनं ... ... २२९
अथान्नोत्सर्गानन्तरकृत्यं ... ... २३०
अथाग्निदग्धादिनान्नविकरणं ... ... २३१
अथ पिण्डदानं ... ... २३३
अथ जीवत्पितृकश्राद्धं ... ... २५०
अथ पार्वणस्य प्रतिमासकर्त्तव्यत्वं ... २५१
अथ मलमासे सपिण्डनोत्तरश्राद्धनिषेधः ... २५२
अथ प्रतिमासपार्वणाशक्तस्य कर्त्तव्यत्वं ... २५४
अथ मघात्रयोदशी श्राद्धं ... ... २५७
अथ तीर्थश्राद्धं ... ... २५८
अथाष्टकाश्राद्धं ... ... २५९
अथ नवान्नश्राद्धं ... ... २६०
अथ पौर्णमासी श्राद्धम् ... ... २६४
अथ श्राद्धवेला ... ... „
अथामावास्या श्राद्धकालः ... ... २६८
अथैकोद्दिष्टश्राद्धविचारः ... ... २७३
अथाशौचान्त द्वितीयदिन आद्यश्राद्धात् पूर्वकृत्यम् २७८

| प्रकरणम् | पृष्ठायां |
|---|---|
| आद्यश्राद्धकालः ... ... | ,, |
| अथ सपिण्डीकरणम् ... ... | २८८ |
| अथ सांवत्सरिकश्राद्धम् ... ... | ३०२ |
| अथाभ्युदयिकश्राद्धम् ... ... | ३०७ |

आह्निकतत्त्वम् ।

| | |
|---|---|
| अथ विण्मूत्रोत्सर्गः ... ... | ३२७ |
| अथ शौचम् ... ... | ३३० |
| आचमनविधिः ... ... | ३३२ |
| शिखाबन्धे विशेषः ... ... | ३३४ |
| आचमने उदकग्रहणप्रकारपरिमाणम् ... | ३३६ |
| अथ दन्तधावनम् ... ... | ३४० |
| अथ प्रातःस्नानसन्ध्ये ... ... | ३४४ |
| अथ प्रथमयामार्द्धकृत्यम् ... ... | ३४५ |
| अथ द्वितीययामार्द्धकृत्यम् ... ... | ३४६ |
| लिखनविधिः ... ... | ३४७ |
| अथ तृतीयमायार्द्धकृत्यम् ... ... | ३४८ |
| अथ चतुर्थयामार्द्धकृत्यम् ... ... | ३५४ |
| अथ तर्पणम् ... ... | ३७० |
| अथ सन्ध्योपासनम् ... ... | ३७९ |
| उपासनाविधिः ... ... | ३८४ |
| अथ सवितुरुपस्थानम् ... ... | ३८९ |
| अथ ब्रह्मयज्ञः ... ... | ३९५ |
| अथ देवपूजा ... ... | ३९६ |
| अथ गणेशपूजनम् ... ... | ४०४ |
| अथ पार्थिवशिवलिङ्गपूजाविधिः ... | ४०६ |
| अथ धूपः ... ... | ४१३ |
| अथ दीपः ... ... | ,, |
| अथ नैवेद्यम् ... ... | ४१४ |
| अथ पञ्चमयामार्द्धकृत्यम् ... ... | ४१९ |
| बलिदानप्रकारः ... ... | ४२३ |

प्रकरणम् पृष्ठायां

अथातिथिभोजननित्यश्राद्धे ... ... ४२५
अथ गोग्रासदानम् ... ... ४२८
अथ भोजनम् ... ... ४२९
प्राणाहुतिमुद्रा ... ... ४३४
अथ ऋतुगुणाः ... ... ४३६
अथ षड्रसगुणाः ... ... ४३९
अथ धातुप्रकृतिः ... ... ४४०
अथ धान्यादि गुणाः ... ... ४४०
अथ शाकगुणाः ... ... ४४१
अथ लवणगुणाः ... ... ४४२
अथ फलगुणाः ... ... ४४३
अथ तोयगुणाः ... ... ४४५
अथ क्षीरगुणाः ... ... ४४६
अथ दधिगुणाः ... ... „
अथ तक्रगुणाः ... ... „
अथ घृतगुणाः ... ... ४४७
अथेक्ष्वादिगुणाः ... ... „
अथ षष्ठयामार्द्धकृत्यम् ... ... ४५९
अथ रात्रिकृत्यम् ... ... ४६०
अथ शयनविधिः ... ... „
अथ दारोपगमनविधिः ... ... ४६१

प्रायश्चित्ततत्त्वम् ।

अथ प्रायश्चित्तलक्षणम् ... ... ४६७
अथ तन्त्रप्रसङ्गौ ... ... „
अथ प्रसङ्गः ... ... ४७०
अथाङ्गहीने कार्य्येऽपि फलं ... ... ४७६
अथ विजातीय प्रायश्चित्तात् विजातीयपापनाशः ४७८
अथ चान्द्रायणादौ भोजनपरिसंख्या ... ४८५
अथ गुरुप्रायश्चित्तेन लघुपापनाशः ... ४८६
अथ गङ्गामाहात्म्यं ... ... ४८८

प्रकरणम् पृष्ठायां
अथात्र प्रयोगः ... ... ४९७
गङ्गायाम् अस्थिप्रक्षेपः ... ... ५०३
गोवधादौ बालत्वादिना प्रायश्चित्तभेदः ... ५१०
अथ प्रायश्चित्तोपदेशादि ... ... ५११
अथ चौराल्लाभविनिर्णयः ... ... ५१३
अथ क्रयनिर्णयः ... ... ५१४
अथ प्रायश्चित्तपूर्वाह्णकृत्यं ... ... ५१५
अथ बाल्यादिभेदात् प्रायश्चित्तम् ... ५१६
अथ धेनुमूल्यव्यवस्था ... ... ५१७
अथ ज्ञानकृतादि निरूपणम् ... ५१८
अथ विप्रादिस्वामिकगोवधप्रायश्चित्तम् ... ५१९
अथैकहायनादि गोवधप्रायश्चित्तम् ... ५२६
अथ रोधादिनिमित्तकगोवधप्रायश्चित्तम् ... ५२६
अथापालननिमित्त गोवधप्रायश्चित्तम् ... ५२८
अथ गोवधापवादः ... ... ५३४
अथ निमित्तिनो नरवधापवादः ... ५३९
अथ चाण्डालाद्यन्नभक्षणप्रायश्चित्तम् ... ”
अथान्त्यजस्त्रीगमनभोजनप्रायश्चित्तम् ... ५५१
तद्द्वयं सक्षेपः ... ... ५५३
अथ गोमांसादिभक्षणप्रायश्चित्तम् ... ५५३
अथ भार्य्यायां मातृत्वादिवदतः प्रायश्चित्तम् ५५४
अथोपवीतच्छेदनप्रायश्चित्तम् ... ५५५
अथ रेतोमूत्रपुरीषभक्षणप्रायश्चित्तम् ... ५५६
अथोच्छिष्टस्य चाण्डालादिस्पर्शप्रायश्चित्तम् ... ५५६
अथ रजस्वलास्पर्शप्रायश्चित्तम् ... ५५७

## ज्योतिस्तत्त्वम्।

अथ राश्यादिनिर्णयः ... ... ५५९
पलदण्डयोः प्रमाणम् ... ... ५६२
मूलत्रिकोणादिव्यवस्था ... ... ५६४
अथ रविसंक्रान्तिगणनम् ... ... ५६८

प्रकरणम् पृष्ठायां

अथाष्टवर्गः ... ... ५७४

वारफलम् ... ... ५७९

अथ ग्रहणम् ... ... ५८३

अथ नाम्ना नक्षत्रज्ञानार्थं शतपदचक्रम् ... ५८७

अथ चन्द्रताराद्यशुभप्रतीकारः ... ५८८

अथ प्रकीर्णकम् ... ... ५९१

अथ निर्घातः ... ... ५९३

अथ केतुः ... ... ”

अथाकालवृष्टिः ... ... ५९४

अथ सर्वतोभद्रम् ... ... ५९८

अथ बालादि चक्रं ... ... ६०३

अथ विवाहः ... ... ६०३

खर्जूरवेधः ... ... ६०८

नाड़ी नक्षत्रं ... ... ६१२

अरिषड़ष्टकं ... ... ६१३

अथ नववध्वागमनं ... ... ६१५

अथ प्रथम रजो योगः ... ... ६१६

अथ गर्भाधानं ... ... ६१७

अथ षोड़शवर्षीयागर्भिणी चिन्ता ... ६१८

अथ पुंसवनं ... ... ६१९

अथ पञ्चामृतं ... ... ६१९

अथ सीमन्तोन्नयनं ... ... ६१९

अथ जातभद्रादि ... ... ६२०

अथ गण्डयोगः ... ... ६२३

अथ पताकीवेधः ... ... ६२४

अथ जन्मराशिफल ... ... ६३०

अथ जन्मनक्षत्रफल ... ... ६३१

अथ प्रत्यन्तर्दशाफलं ... ... ६३९

अथ वर्षपताकी ... ... ६४०

अथ क्रमेण लग्नदृष्टिफलं ... ... ६४२

| प्रकरणम् | पृष्ठायां |
|---|---|
| अथ जातकर्म्म | ६४८ |
| अथ षष्ठीपूजा | ६४८ |
| अथ नामकरणं | ६५० |
| अथ निष्क्रामणं | ६५१ |
| अथान्नप्राशनं | ६५२ |
| अथ नवान्नं | ६५३ |
| अथ चूडाकरणं | ६५३ |
| अथ कर्णवेधः | ६५५ |
| अथ विद्यारम्भः | ६५६ |
| अथ उपनयनम् | ६५९ |
| अथ समावर्त्तनम् | ६६१ |
| अथ गृहादि | ६६२ |
| अथ गृहप्रवेशः | ६७० |
| अथ पुष्करिण्यारम्भः | ६७२ |
| अथ परीक्षा | ६८२ |
| अथ कृषिकर्म्म | ६८२ |
| अथ लाङ्गलचक्रम् | ६८४ |
| अथ वीजोप्तिचक्रम् | ६८४ |
| अथ वृषचक्रम् | ६८५ |
| अथ मुष्टिग्रहणम् | ६९० |
| अथ धान्यच्छेदनप्रकारः | ६९० |
| अथ वीजसञ्चयः | ,, |
| अथ षष्टिसम्वत्सरगणना | ६९२ |
| अथाद्भुतम् | ७०४ |
| अथ यात्रा | ७१२ |
| अथ छत्रचक्रम् | ७३३ |
| अथ सिंहासनचक्रम् | ७३४ |

## मलमासतत्त्वम् ।

| | |
|---|---|
| अथ मासशब्दम् | ७३८ |
| अथ कर्म्मविशेषे मासविशेषादिः | ७४१ |

| प्रकरणम् | | | पृष्ठायां |
|---|---|---|---|
| अथ दर्शान्तमासशक्यत्वे साधकान्तराणि | | ... | ७५४ |
| अथ चैत्रादिशब्दानां चान्द्रवाचिता | | ... | ७५९ |
| अथ मलमासः | ... | ... | ७६८ |
| अथ दीक्षाकालः | ... | ... | ७८४ |
| अथ दीक्षायां प्रतिप्रसवः | ... | ... | ७८५ |
| अथ स्त्रीशूद्रयोः प्रणवयुङ्मन्त्रनिषेधः | | ... | ७८७ |
| अथ दीक्षितस्याशौचे जपाद्यधिकारः | | ... | „ |
| अथाशौचे विष्णुकीर्त्तनम् | ... | ... | „ |
| अथाधिमासे विवाहादिनिषेधः | | ... | ७८८ |
| अथ पर्य्युदासविचारः | ... | ... | ८०३ |
| अथ नवान्नम् | ... | ... | ८११ |
| अथ समयाशुद्धिः | ... | ... | ८१७ |
| अथ रोगे दानादि | ... | ... | ८३५ |
| अथ मुमुक्षुकृत्यम् | ... | ... | ८३६ |
| अथ महादानलक्षणम् | ... | ... | ८४० |
| अथ मलमासकर्त्तव्यव्रतम् | ... | ... | ८४१ |
| अथ पितृपक्षमृतक्रिया | ... | ... | ८४१ |
| अथाश्वयुक् कृष्णपक्षश्राद्धः | ... | ... | ८४३ |
| अथामावस्या | ... | ... | ८४८ |
| अथाधिमासे प्रत्याब्दिकादिविचारः | | ... | ८५० |
| अथ सपिण्डनापकर्षविचारः | ... | ... | ८५१ |
| अथ सन्न्यासनिषेधविचारः | ... | ... | ८५४ |
| अथापुत्रस्य मृताहे न पार्वणम् | ... | ... | ८५५ |
| अथाधिमासे मृतस्याधिमासे प्रत्याब्दिकं कर्त्तव्यम् | | | ८५५ |

## संस्कारतत्त्वम् ।

| | | | |
|---|---|---|---|
| अथ अग्निस्थापनम् | ... | ... | ८५७ |
| अथ वरणविधिः | ... | ... | ८६१ |
| अथ ब्रह्मस्थापनम् | ... | ... | ८६२ |
| अथ द्रव्यासादनम् | ... | ... | ८६४ |

# सूचीपत्रम् ।

प्रकरणम् पृष्ठायां

अथ चरुविधानम् ... ... ८६४
अथ भूमिजपादिविधानम् ... ... ८६७
अथास्तरणम् ... ... ८६८
अथ विंशतिकाष्ठिका ... ... ८६८
अथाज्यसंस्कारः ... ... ८६९
अथ स्रुवादिलक्षणम् ... ... ८७१
अथ विरूपाक्षजपः ... ... ८७३
अथ प्रकृतं कर्म्म ... ... ८७४
अथ प्रायश्चित्तम् ... ... ८७८
अथ यज्ञवास्तुकरणम् ... ... ८७९
अथ पूर्णाहुतिः ... ... ८७९
अथ वन्दनादि कर्म्म ... ... ,,
अथ विवाहः ... ... ८८१
अथार्हणम् ... ... ८८६
अथ विवाहपरिपाटी ... ... ८८९
अथ पाणिग्रहणम् ... ... ८९५
अथ यानारोहणादि ... ... ९०५
अथ गर्भाधानम् ... ... ९०७
अथ पुंसवनम् ... ... ९०९
अथ सीमन्तोन्नयनम् ... ... ९१२
अथ शोष्यन्ती होमः ... ... ९१५
अथ जातकर्म्म ... ... ,,
अथ नामकरणम् ... ... ९१७
अथ निष्क्रामणम् ... ... ९१९
अथान्नप्राशनम् ... ... ९२१
अथ चूडाकरणम् ... ... ९२२
अथोपनयनम् ... ... ९२६
अथ समावर्त्तनम् ... .. ९३८
अथ नवगृहप्रवेश कर्म्म ... ... ९४१
अथ ग्रहयज्ञः ... ... ९४३

श्रीगणेशाय नमः ।

# तिथितत्त्वम् ।

प्रणम्य सच्चिदानन्दं रामं कामदमीश्वरम् ।
तिथ्यादितत्त्वं तत्प्रीत्यै वक्ति श्रीरघुनन्दनः ॥

तत्र तिथिस्वरूपमाह हेमाद्रिकालमाधवीययोः स्कान्दे प्रभासखण्डम् । "अमा षोड़शभागेन देवि प्रोक्ता महाकला । संस्थिता परमा माया देहिनां देहधारिणी ॥ अमादिपौर्णमास्यन्ता या एव शशिनः कलाः । तिथयस्ताः समाख्याताः षोड़शैव वरानने" ॥ चन्द्रमण्डलस्य षोड़शभागेन परिमिता देहधारिणी आधारशक्तिरूपा अमानाम्नी महाकला प्रोक्ता क्षयोदयरहितत्वान्नित्या स्रक्सूत्रवत् सर्वानुस्यूता तदन्याः पञ्चदश कलाः प्रतिपदादितिथिविशेषरूपा इति षोड़शैव कलास्तिथय इति । अत्र प्रथमकला क्रियारूपा प्रतिपत् एवं द्वितीयादिकला क्रियारूपा द्वितीयादिः सा च वृद्धिरूपा चेत् शुक्ला ह्रासरूपा चेत् कृष्णेति । तथा च षट्त्रिंशन्मतम् । "तत्र पक्षावुभौ मासे शुक्लकृष्णौ क्रमेण हि । चन्द्रवृद्धिकरः शुक्लः कृष्णश्चन्द्रक्षयात्मकः ॥ पक्षत्याद्यास्तु तिथयः क्रमात् पञ्चदश स्मृताः । दर्शान्ताः कृष्णपक्षे ताः पूर्णिमान्ताश्च शुक्लके" ॥ पक्षतिः प्रतिपत् एतत्सर्वं क्रियैव काल इति मतानुसारादुक्तं तदतिरिक्तकालवादिमते तु तत्तत्क्रियोपलक्षितः काल इति । यथा विष्णुपुराणे । "कालस्वरूपं रूपं तद्विष्णोर्मैत्रेय वर्त्तते" । विष्णुधर्मोत्तरे च । "अनादिनिधनः कालो रुद्रः सङ्-

र्षणः स्मृतः। कलनात् सर्वभूतानां स कालः परिकीर्त्तितः" ॥ कलनात् लयकरणात्। तथा च विष्णुपुराणम्। "ये समर्था जगत्यस्मिन् सृष्टिसंहारकारिणः। तेऽपि कालेन लीयन्ते कालो हि बलवत्तरः" ॥ न च "अष्टमांशे चतुर्द्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः। अमावास्याष्टमांशे च ततः किल भवेदनुः" इति काल्ययानीयदर्शनाच्चतुर्दश्याः शेषयामे पञ्चदश्याः कलायाः क्षयारम्भादेवं दर्शान्त्ययामे आद्यकलाया उत्पत्तेर्विरोध इति वाच्यं तस्य दर्शश्राद्धोपयुक्तपारिभाषिकक्षयोत्पत्तिपरत्वं न तु तद्वास्तवं स्मृतिज्योतिःशास्त्रविरोधात्। तथाहि गोभिलः। "सूर्य्याचन्द्रमसोर्यः परः सन्निकर्षः साऽमावस्या" इति परः सन्निकर्षश्च उपर्य्यधोभावापन्नसमसूत्रपातन्यायेन राश्येकांशावच्छेदेन सहावस्थानरूपः। तथा च अमावास्याघटकतादृशसहावस्थानयुक्तार्कमण्डलाच्चन्द्रमण्डलस्य। "अर्काद्विनिःसृतः प्राचीं यद् यात्यहरहः शशी। भागैर्द्वादशभिस्तत् स्यात्तिथिश्चान्द्रमसं दिनम्"। इति सूर्य्यसिद्धान्तोक्तेन। "त्रिंशांशकस्तथाराशेर्भाग इत्यभिधीयते॥ आदित्याद्विप्रकृष्टस्तु भागं द्वादशकं यदा। चन्द्रमाः स्यात्तदा राम तिथिरित्यभिधीयते" इति विष्णुधर्मोत्तरवचनाद्राशिद्वादशांशद्वादशांशभोगात्मकनिर्गमरूपवियोगेन शुक्लायाः प्रतिपदादि तत्तत्तिथेरुत्पत्तिरेवं "सूर्य्याचन्द्रमसोर्यः परो विप्रकर्षः सा पौर्णमासी" इति गोभिलोक्तेन पौर्णमासीघटकसप्तमराश्यवस्थानरूपपरमवियोगानन्तरमर्कमण्डलप्रवेशाय चन्द्रमण्डलस्य राशिद्वादशांशद्वादशांशभोगात्मकप्रवेशरूपसन्निकर्षेण कृष्णायास्तत्तत्तिथेश्चोत्पत्तिः।

तत्र तिथिविशेषविहिते कर्मणि उभयदिने तिथिलाभे प्रश्नपूर्वकं निर्णयमाह विष्णुधर्मोत्तरम्। "नक्षत्रं देवदेवेश

तिथिश्चार्द्धविनिर्गताम्। दृष्टोपवासः कर्त्तव्यः कथं शङ्कर जानता”॥ शङ्कर उवाच:। “सा तिथिस्तदहोरात्रं यस्यामभ्युदितो रविः। तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्॥ सा तिथिस्तदहोरात्रं यस्यामस्तमितो रविः। तया कर्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्” इति। “शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः। कृष्णपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामस्तमितो रविः”। अत्रामावास्यावर्त्तितिथिवृद्धिक्षयाभ्यां न व्यवस्था। किन्तु रवेरुदयास्तमयतिथिसम्बन्धात् शुक्लकृष्णपक्षाभ्यां व्यवस्था। सा च युग्माद्यनाघ्राततिथिकर्मपरा सामान्यविशेषन्यायात्। युग्ममाह गृह्यपरिशिष्टं निगमश्च। “युग्माग्निकृतभूतानि षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः। रुद्रेण द्वादशीयुक्ता चतुर्दश्याथ पूर्णिमा॥ प्रतिपदाप्यमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम्। एतद्व्यस्तं महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतम्”॥ द्वितीयातृतीययोश्चतुर्थीपञ्चम्योः षष्ठीसप्तम्योरष्टमीनवम्योरेकादशीद्वादश्योश्चतुर्दशीपौर्णमास्योः प्रतिपदमावास्ययोर्युग्मं मेलनं तत्तत्तिथिमात्रनिमित्तके कर्मणि महाफलम्। एतत् प्रयोजनन्तु तिथिविशेषविहिते कर्मणि तिथिखण्डविशेषनियमनम्। स्वतिथ्या कर्मनिर्वाहे सहायभावे नान्यतिथ्यनुप्रवेशादुपवासाद्याचरणञ्च। अतएव विष्णुधर्मोत्तरे। सा तिथिस्तदहोरात्रमित्यनेन खण्डतिथेरहोरात्रत्वानुकीर्त्तनमहोरात्रसाध्योपवासादिकर्मार्हत्वार्थं तच्च तिथ्यन्तरसहायभावं विना प्रायशो न सम्भवतीति। अतः प्रातःकाले तत्तत्तिथ्यलाभे तिथ्यन्तरेऽप्युपवाससङ्कल्पः। अहोरात्राभोजनरूपस्य तस्य प्रातरारम्भार्हत्वात्। संवत्सरप्रदीपेऽपि “प्रातःसन्ध्यान्ततः कृत्वा सङ्कल्पं वुध आचरेत्”। इत्युक्तम् अत्रेदं वीजं कर्मणस्तावदपूर्वजनकत्वेन विधेयत्वेन च प्राधान्यं तिथ्यादेस्तु

गुणत्वेन क्वचिदुपलक्षणत्वं तदाह गर्गः। "तिथिनक्षत्रवारादि साधनं पुण्यपापयोः। प्रधानगुणभावेन स्वातन्त्र्येण न ते क्षमाः"। प्रधानस्य विधेयकर्मणो गुणभावेनाङ्गत्वेन तदुक्तं "कर्मासन्निहितं नैव बुद्धौ विपरिवर्त्तते शब्दात्तु तदुपस्थानमुपादेये गुणो भवेत्"। प्रमाणान्तरासन्निहितं कर्म बुद्धौ प्रथमं न विषयीभवति प्राथमिकशब्दादेव तस्य कर्मण उपस्थितिरिति उपादेये स्वविधेये कर्मणि पूजादौ चन्द्रादिक्रियात्वेन तदवच्छिन्नकालत्वेन वा शुचि तत्कालजीविनः कर्माधिकारात्तस्मिन् प्रमाणान्तरलभ्यत्वेनाविधेयत्वात् तिथ्यादिर्गुण इति। अतस्तत्तिथिं विनापि प्रातरेव सङ्कल्पः नतु तत्तिथ्यनुरोधादन्यत्रेति। एवञ्च मासपक्षतिथीनाञ्चेत्याद्यनुरोधेन प्रातःसङ्कल्पयेदित्यनुरोधेन च अन्यतिथिकर्म्मणोऽन्यतिथ्यारम्भेऽमुकतिथावारभ्यामुकं कर्म्म कर्त्तव्यमिति वक्तव्यम्। आरम्भ एव तत्तिथेरनुप्रवेशान्न दोषः। एतद्व्यस्तं युग्मविपरीतं प्रतिपद्द्वितीययोः तृतीयाचतुर्थ्योरित्याद्योर्मेलनं महाघोरं महापापजनकम्। अत्रापवादो वक्ष्यते अतः "पूर्वाह्णो वै देवानां मध्यंदिनं मनुष्याणामपराह्णः पितॄणाम्।" इत्यादि श्रुत्याद्यनुरोधेनोभयदिने कर्म्मयोग्यप्रशस्तकाले द्वितीयालाभे तृतीयायुतैव द्वितीया ग्राह्या न प्रतिपद्युता तृतीयापि द्वितीयायुतैव न चतुर्थीयुता एवमन्यत्र नत्वेकदिन एव कर्म्मयोग्यप्रशस्तकाललाभेऽपि युग्माद्यादरः। अतएव, "कर्म्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः। तया कर्म्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्"॥ इति वृद्धयाज्ञवल्कीयेन सन्देहनिरासात् सन्देहविषय एव युग्मादिवचनप्रवृत्तेः प्रधानस्य कर्म्मणो बोधकेन पूर्वाह्णादिशास्त्रेण गुणस्य तिथ्यादेर्नियामकस्य युग्मादिशास्त्रस्य जेतव्यत्वाच्च। व्यस्ततिथिनिन्दार्थवादोऽपि सन्देह-

विषयनिर्णयपर एव विधिशेषत्वात्तस्य। एवञ्च पूर्वदिने पूर्वाह्णे युग्मसम्बन्धिपरतिथेरप्राप्तौ परदिने च तत्प्राप्तौ तत्तिथिविहितपूजादेः पूर्वाह्णानुरोधात् परदिनकर्त्तव्यत्वं प्रतीयते। नतु युग्मानुरोधात् पूर्वदिने। अत्र च। "पञ्चमी सप्तमी चैव दशमी च त्रयोदशी। प्रतिपन्नवमी चैव कर्त्तव्या साम्मुखी तिथिः"॥ इति पैठीनसिवचनस्य तु। "साम्मुख्यं नाम सायाह्नव्यापिनी दृश्यते यदा"। इति स्कन्दपुराणेन सायाह्नव्यापिनी तिथेः साम्मुख्यविधानेन पूजादावनवकाशादुपवासपरत्वम्। एवं, "त्रिसन्ध्यव्यापिनी यातु सैव पूज्या सदा तिथिः। न तत्र युग्मादरणमन्यत्र हरिवासरात्"॥ इति पाराशरीयेण त्रिसन्ध्यव्यापित्वेन नियमाभिधानं तदपवादकमिति सायाह्नव्यापित्वमपि मुहूर्त्तान्यूनत्वेन ज्ञेयम्। "व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैका यदा भवेत्। सा तिथिः सकला ज्ञेया पित्रर्थे चापराह्णिकी"॥ इति देवलवचनात्। नन्वहोरात्रसाध्योपवासादौ कुतो न रात्रियुग्मग्रहणं मैवं तत्रापि कर्मार्थं दिवा तदङ्गस्नानदेवतापूजादीनां कर्मणां कर्त्तव्यत्वाद्रात्रौ च तन्निषेधात् दिवायुग्मस्यैव ग्रहणमिति तिथिविवेकः। अतएव जावालः। "अहःसु तिथयः पुण्याः कर्मानुष्ठानतो दिवा। नक्तादि व्रतयोगे तु रात्रियोगो विशिष्यते"॥ दिवाकर्मानुष्ठाने कर्त्तव्ये अहःसु तिथयः पुण्याः तिथ्यन्तरसंयोगात् पुण्या अतः कर्मानुष्ठाने ता एव ग्राह्याः। अन्यथाहर्विहिते कर्मण्यहर्विधानमनर्थकं स्यात्। नक्तादिव्रतयोगेत्विति निशासाध्यकर्मोपलक्षणम् अत्र रात्रियोगो विशिष्यते रात्रौ तिथ्यन्तरसंयोगो विशिष्यत इत्यर्थः। वस्तुतस्तु पञ्चमीसप्तमी चैव इत्यादिना विशेषतः सायाह्नव्यापिनी तिथेर्ग्रहणादुपवासेऽपि न रात्रियुग्मादरः अन्यथा तदभिधान मन-

थकं स्यात्। एतच्च जयन्ती शिवरात्र्यादिविशेषेतरपरम्। यद्यपि "स्नानं दानं जपःश्राद्धमनन्तं राहुदर्शने। आसुरी रात्रिरन्यत्र तस्मात्तां परिवर्जयेत्"॥ इति पर्य्युदस्तेतरकालोऽपि कर्मयोग्यस्तथापि, "पूर्वाह्णो वै देवानां मध्यं दिनं मनुष्याणामपराह्णः पितृणाम्"। इति श्रुत्युक्तकाललाभे स एव नियामकः प्रशस्तत्वात्। अतएव "ययास्तं सविता याति पितरस्तामुपासते। तिथिन्तेभ्योऽपराह्णो हि स्वयं दत्तः स्वयम्भुवा"॥ इति गृह्यपरिशिष्टीयेन अस्तगामिन्यास्तिथेः प्रायेणापराह्णसम्बन्धेनापराह्णो हेतुतया निर्दिष्टो नतु पर्य्युदस्तेतरकालः प्रशस्तकालालाभे तु सामान्यकालमादाय युग्मादिना व्यवस्था क्वचित् विशेषवचनादेव रात्रियुग्मादरः यथा। "मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्ते सदा तिथिः। नक्तादिव्रतयोगे तु रात्रियोगो विशिष्यते"॥ अत्र युग्मेतर कृष्णपक्षप्रतिपदुभयपक्षदशमी त्रयोदशी कृष्णचतुर्दशी द्वैधे तु प्रागुक्तशुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्येत्यादिना वक्ष्यमाण प्रतिपत् सद्वितीया स्यादित्यादिवचनाद्व्यवस्था। तिथेः पूज्यकालापेक्षा विधेयकर्मण्येव निषिद्धे कर्मणि तु तत्तत्तिथिमात्रापेक्षा। न तत्र पूज्यकालमात्रापेक्षा। तदाह कालमाधवीये वृद्धगार्ग्यः। "निमित्तं कालमादाय वृत्तिर्विधिनिषेधयोः। विधिः पूज्यतिथौ तत्र निषेधः कालमात्रके॥ तिथीनां पूज्यता नाम कर्मानुष्ठानतो मता। निषेधस्तु निवृत्त्यात्मा कालमात्रमपेक्षते॥" एतद्वचनद्वयं कलञ्जाधिकरणन्यायमूलमिति विवृतमेकादशीतत्वे। कर्मानुष्ठानतः कर्मानुष्ठाने वृत्तिः पालनम्। गार्ग्यवचनोक्तनिमित्तमित्यत्र विधिनिषेधयोरनुष्ठानाननुष्ठानरूपपालने कालस्य निमित्तत्वेन अभिधानात्। "अतःकालं प्रवक्ष्यामि निमित्तं कर्मणामिह"। इति भविष्यपुराणाच्च।

आवश्यकपर्वादिक्रियमाणस्य नित्यनैमित्तिकत्वम् । व्यक्तमाह मार्कण्डेय पुराणम् । "नित्यं नैमित्तिकं ज्ञेयं पर्वश्राद्धादि पण्डितैः" इति एवञ्च अशौचान्तात् द्वितीयेऽह्नीत्यादिकस्य कालविशेषस्य निमित्तत्वेनोल्लेखः सङ्गच्छते । "मासपक्षतिथीनाञ्च निमित्तानाञ्च सर्वशः । उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग्भवेत् । इति ब्रह्माण्डभविष्यपुराणोक्तेः । निमित्तानामुत्पत्तिविधिसमभिव्याहृतनियतानां न तु प्राशस्त्येनोक्तानाम् अत्र चकारद्वयश्रुतेर्मासादीनां पृथक्निमित्तानाञ्चोल्लेखः । न तु मासपक्षतिथीनां निमित्तीभूतानामेव ।

अत्र च वैदिकक्रियानिमित्तस्य कालविशेषस्य शुचितत्काल जीवित्वेनाधिकारिविशेषणीभूतस्यान्ते या सप्तमी सा नाधिकरणे यो जटाभिः स भुङ्क्ते इतिवत् कालस्य विशेषणत्वेन तृतीयाप्राप्तेः किन्तु कालभावयोः सप्तमीत्यनेन तद्बाधिका पुनः सप्तमी विधीयते शरदि पुष्प्यन्ति सप्तच्छदा इतिवत् । अतः कर्तृविशेषणीभूतस्यापि कालस्य वैदिकक्रियाया निमित्ततयोल्लेखः क्रियैव काल इति मतेतु सुतरां नाधिकरणता सूर्य्यादिक्रियाया कर्त्तव्यस्य कर्मणो अधिकरणतानुपपत्तेरिति पूर्वाह्लादेस्तु प्रशस्तत्वेन निमित्ततया नोल्लेख इति । युग्मादरस्तु दैवकृत्य एव न पितृकृत्ये । तथा च व्यासनिगमौ "द्वितीयादिकयुग्मानां पूज्यतानियमादिषु । एकोद्दिष्टादिवृद्ध्यादौ ह्रासवृद्ध्यादिदेषणा" ॥ इति एकोद्दिष्टादिवृद्ध्यादौ एकोद्दिष्टादिश्राद्धनिमित्तभूत तिथिविशेषस्य वृद्ध्यादौ वृद्ध्यादावित्यत्रादिशब्दात् क्षयस्तम्भितत्वे ग्राह्ये तथा सति श्राद्धकालस्य सन्देहे ह्रासवृद्ध्यादिदेषणा ह्रासवृद्धादिविधायको नियामक इति यावत् । अत्र वृद्धिह्रासौ चन्द्रस्य ताभ्यां शुक्लकृष्णपक्षौ

लक्ष्येते । "शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः । कृष्णपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामस्तमितो रविः" ॥ इति विष्णुधर्मोत्तरैकवाक्यत्वात् । तेन तिथिद्वैधे आपराह्णिकेतरपितृकृत्ये शुक्लकृष्णपक्षयो रवेरुदयास्ताभ्यां व्यवस्था । आपराह्णिके तु सपिण्डीकरणादौ ह्रासवृद्ध्यादावित्यादिशब्दात् प्रागुक्त यथास्तमित्यादिना व्यवस्था । एतद्विषय एव कालमाधवीयधृतं सुमन्तु वचनम् । "द्व्यहन्तु व्यापिनी चेत् स्यामृताहस्य तु या तिथिः । पूर्वस्यां निर्वपेत् पिण्डमित्याङ्गिरसभाषितम्" ॥ तिथिविवेकेऽपि । पितृकृत्ये च पूर्वाह्णे मध्याह्नविहिते संशये विष्णुधर्मोत्तरवचनात् शुक्लपक्षकृष्णपक्षभेदेन व्यवस्था । एवञ्च प्रागुक्तविष्णुधर्मोत्तरवचने उपवासश्च कर्त्तव्यः कथमित्यत्रोपवासपदमपराह्णविहितेतरपितृकृत्यदैवकृत्योपलक्षकम् एतच्च प्रत्युत्तरवचने उपवासमित्यनभिधाय कर्म्ममात्रनिर्देशात् कर्म्माणीति बहुवचननिर्देशाच्चावगम्यते । अपराह्णविहितन्तु यथास्तं सविता यातीत्यस्य विषयो हेतुवन्निगदस्वरसादित्युक्तम् । एतच्च उभयदिनापराह्णलाभे ज्ञेयम् । यत्र चोभयदिनेऽपि न तल्लाभस्तत्र दर्शेतरतिथिषु । "अपराह्णे तु संप्राप्ते अभिजिद्रौहिणोदये । यदत्र दीयते जन्तोस्तदक्षयमुदाहृतम्" ॥ इति मत्स्यपुराणवचनादपरदिने गौणापराह्णे श्राद्धम् । अभिजिदष्टमघटिका रौहिणं नवमघटिका मुख्यापराह्णस्तु पञ्चधाविभक्तदिनचतुर्थांशो यथा "प्रातःकालो मुहूर्त्तांस्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव तु । मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यादपराह्णस्ततः परम् ॥ सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यात् श्राद्धं तत्र न कारयेत् । राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्म्मसु" ॥

ननु सपिण्डीकरणस्यापराह्णिकत्वे किं मानमितिचेदप-

राद्धे तु पैतृकमित्युत्सर्गवचनमेव मानम्। किञ्च। "यद्यप्यदन्तकः पूषा पैष्टमत्ति सदा चरुम्। अग्नीन्द्रेश्वरसामान्यात्तण्डुलोऽत्र विधीयते"॥ इति छन्दोगपरिशिष्टे यथा बहूनामनुरोधात्तण्डुलचरुर्नैकानुरोधात् पैष्टचरुः ‘विरुद्धधर्म्मसमवाये भूयसां स्यात् सधर्म्मकत्वम्’ इति जैमिनिसूत्राच्च तद्वदत्रापि बहुदेवताकपार्वणानुरोधादेकोद्दिष्टकालबाध इति। एवं संवत्सरमधिकृत्य। "सपिण्डीकरणं तस्मिन् काले राजेन्द्र तच्छृणु। एकोद्दिष्टविधानेन कार्य्यं तदपि पार्थिव"॥ इति विष्णुपुराणीयमेकोद्दिष्टांशे तदितिकर्त्तव्यतापरं नतु तत्कालपरं तथाच परिशिष्टप्रकाशधृतम्। "श्राद्धद्वयमुपक्रम्य कुर्वीत सहपिण्डनम्। तयोः पार्वणवत् पूर्वमेकोद्दिष्टमथापरम्"॥ इति शङ्खवचनान्तरं यत्र च प्रथमषण्मासाभ्यन्तरे मलमासपातेऽपि षष्ठमासिकपूर्वतिथिरेव प्रथमषाण्मासिकस्य कालः एकाहन्यूनषण्मासे तस्य विधानात्। द्वितीयस्य तु त्रयोदशमासिकपूर्वतिथिः एकाहन्यूनसंवत्सरे विधानात् यथा छन्दोगपरिशिष्टम्। "एकाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः। न्यूनाः संवत्सरश्चैव स्यातां षाण्मासिके तदा"॥ संवत्सरश्च त्रयोदशभिरपि मासैर्भवति। तथाच श्रुतिः। द्वादशमासाः संवत्सरः क्वचित्त्रयोदशमासाः संवत्सरः इति। अत्र कालमाधवीयधृतेन। "षाण्मासिकाब्दिके श्राद्धे स्यातां पूर्वेद्युरेव ते। मासिकानि स्वकीये तु दिवसे द्वादशेऽपि च"॥ इति पैठीनसिवचनैकवाक्यत्वात्। एकाहन्यूनपदेन मृततिथिपूर्वतिथेर्ग्रहणम्। एतच्च पूर्वमृततिथिं विहाय अपरमृततिथिमादाय मासवर्षगणनया सिद्धम्। एतेन पूर्वमृततिथिमादाय मासवर्षगणनया मृततिथेः पूर्वतिथिं विहाय तत् पूर्वदिने मैथिलानां यत् षाण्मासिकद्वयकरणं तद्धेयमेव। अत्र

स्यातां षाण्मासिके तदा इत्यत्र। "द्वादशप्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिके तथा। सपिण्डीकरणञ्चैव इत्येतत् श्राद्धषोड़शम्"॥ इति छन्दोगपरिशिष्टीयगणनायामपि षाण्मासिके इत्युपादानात् प्रथमद्वितीयषाण्मासिकत्वेनैवोल्लेखः नतु न्यूनषाण्मासिकत्वेन न्यूनसांवत्सरिकत्वेनेति। एवञ्च द्वितीयषाण्मासिकस्य पैठीनसिना यदाब्दिकत्वमुक्तं तच्च। "आब्दिके कृच्छ्रपादः स्यादेकाहः पुनराब्दिके"। इति शङ्खोक्तप्रायश्चित्तविशेषज्ञापनार्थं तत्परदिनकर्त्तव्यप्रेतश्राद्धस्य पुनराब्दिकत्वार्थञ्च अतएव "पूर्वेद्युराब्दिकं श्राद्धं परेद्युः पुनराब्दिकम्"। इति शङ्खवचनान्तरम् एतेन द्वितीयाब्दीय प्राप्तपितृत्वसम्प्रदानकश्राद्धान्नभोजनेऽपि शूलपाण्युक्तप्रायश्चित्तं हेयमिति। नन्वेवं परत्र सप्तमे मासि क्रियमाणस्य कथं षाण्मासिकत्वमितिचेत् भाक्तम्। उत्तरषण्मासे मलमासपातेऽपि तथात्वस्यावश्यकत्वात्। अथ यत्रापकृष्ट सपिण्डनं कृतं तत्र पश्चात् वृद्ध्युपस्थितौ का गतिरितिचेत् यथा अपकृष्ट सपिण्डनजन्यापूर्वं पूर्णसंवत्सरकालं प्राप्य पितृत्वप्रापकम्। "कृते सपिण्डीकरणे नरः संवत्सरात्परम्। प्रेतदेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रपद्यते"॥ इति विष्णुधर्म्मोत्तरीयात्तथा वृद्ध्यारम्भकालेऽपि कल्प्यते। "अर्वाक् संवत्सराद्वृद्धौ पूर्णसंवत्सरेऽपि वा। ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तेषान्तु पृथक् क्रिया"॥ इति शातातपीय पूर्णसंवत्सरवृद्ध्यारम्भकालयोस्तुल्यत्वाभिधानात् यत्र तु "यदहर्वा वृद्धिरापद्येत" इति गोभिलसूत्रेण अपकर्षो विधीयते तत्र "प्रागावर्त्तनादह्नः कालं विद्यात्" इति गोभिल सूत्रान्तरेण चूड़ादिरूपवृद्धेर्यामद्वयान्तर्विधानात् सपिण्डीकरणस्य अपराह्णे विधानात्तयोरबाधायासन्नपूर्वदिने अप कर्षः। एवञ्च शुद्धितत्त्वलिखितस्यमन्तकोपाख्यानवद्वृद्धिं

निश्चित्य कृतं सपिण्डनं तदानीं विघ्नेन वृद्ध्यभावेऽपि वृद्ध्यारम्भकालान्तरं पूर्णसंवत्सरं वा प्राप्य तदैव पितृत्वप्रापकमिति न सपिण्डनान्तरम्। अत्र "श्वः कर्त्तास्मीति निश्चित्य दाता विप्रान्निमन्त्रयेत्"। इतिवन्निश्चित्येति उत्कटकोटिकसम्भावनोपलक्षणं भविष्यन्निमित्तस्य कर्म्मणः प्रत्यूहार्हत्वात्। एवञ्च वृद्धिश्राद्धं यदर्थं कृतं तत्कर्म्म चेत् विघ्नात् तद्दिने न क्रियते तदा दिनान्तरे तत् कर्म्मणि क्रियमाणे तदङ्गत्वेन पुनर्वृद्धिश्राद्धं कर्त्तव्यमेव। "प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत् क्रियते पुनः। तदङ्गस्याक्रियायान्तु नावृत्तिर्न च तत् क्रिया"॥ इति छन्दोगपरिशिष्टेन साङ्गकरणाभिधानात् हेमाद्रिधृतम्। "पूर्णे संवत्सरे श्राद्धं षोड़शं परिकीर्त्तितम्। तेनैव च सपिण्डत्वं तेनैवाब्दिकमिष्यते"॥ अत्र पूर्णसंवत्सरक्रियमाणश्राद्धाद् यथोभयनिर्वाहस्तथापकृष्टश्राद्धादप्युभयनिर्वाहान्न पूर्णसंवत्सरे आब्दिकान्तरम्। एवञ्च पञ्चदशश्राद्धे कृतेऽप्युन्नेयम्। गोभिलेन पूर्णसंवत्सरे सपिण्डीकरणमभिधाय "अत ऊर्द्ध्वं संवत्सरे संवत्सरे प्रेतायान्नं दद्याद् यस्मिन्नहनि प्रेतः स्यात्" इति सूत्रेणाद्याब्दादूर्द्ध्वं सांवत्सरिकविधानाच्च।

यानितु "मुख्यं श्राद्धं मासि मासि अपर्य्याप्तावृतुं प्रति। द्वादशाहेन वा कुर्य्यादेकाहे द्वादशाथवा"॥ इति मरीचिवचनेन एकाहकर्त्तव्यतया द्वादशमासिकश्राद्धान्युक्तानि तानि शूद्रेणापि आद्यमासिकदिन एव कार्य्याणि नत्वाद्यमासिकं कृत्वा तत् परदिन एकादशमासिकानीति ज्ञेयम्। एवञ्च तेषामपकर्षे तन्मध्य तदन्तकालकर्त्तव्यतया षाण्मासिकद्वयसपिण्डीकरणापकर्षः सिद्ध्यतीति सुधीभिर्भाव्यम्।

सपिण्डीकरणेति कर्त्तव्यतायां ब्रह्मपुराणम्। "चतुर्भ्यश्चार्घ्यपात्रेभ्य एकं वामेन पाणिना। गृहीत्वा दक्षिणेनैव

पाणिना च तिलोदकम् ॥ सम्मार्जयित्वा पृथिवीं ये समाना इति स्मरन्। प्रेतविप्रस्य हस्ते तु चतुर्भागं जलं क्षिपेत् ॥ ततः पितामहादिभ्यस्तन्मन्त्रैश्च पृथक् पृथक्। ये समाना इति द्वाभ्यां तज्जलन्तु समर्पयेत् ॥ अर्घ्यन्तेनैव विधिना प्रेतपात्राच्च पूर्ववत्। तेभ्यश्चार्घ्यं निवेद्यैव पश्चाच्च स्वयमाचरेत्” ॥ एकं प्रेतपात्रं वामेनानन्तरं दक्षिणेन च गृहीत्वेति सम्बन्धः। ये समाना इति मन्त्रद्वयं पठन् प्रेतपात्रस्थमुत्सृष्टजलं कुशरेखात्रयेण चतुर्द्धा विभज्य भागमेकं प्रेतब्राह्मणहस्ते क्षिपेत् दद्यात् उत्सृष्टजलपिण्डयोः संविभागे मन्त्रस्य करणत्वं व्यक्तमाह शातातपः। “निरूप्य चतुरः पिण्डान् पिण्डदः प्रतिनामतः। ये समाना इति द्वाभ्यामाद्यन्तु विभजेत् त्रिधा। एष एव विधिः पूर्वमर्घ्यपात्रचतुष्टये” ॥ इति ततस्तदनन्तरं तन्मन्त्रैः पितामहादिभेदेन त्रिरावृत्तैर्यादिव्या इति मन्त्रैश्चकारात् पितामहाद्युत्सृष्टवाक्यैश्च तदुत्सृज्य ये समाना इति द्वाभ्यां मन्त्राभ्यामर्घ्यं तज्जलं प्रेतपात्रस्थजलन्तेनैव विधिना प्रत्येकेन पूर्ववच्चतुर्भागरूपं प्रेतपात्रात् समर्पयेत् पितामहादिपात्रेषु मिश्रयेत्। तेभ्यः पितामहादिभ्यस्त्रिभ्यस्तन्मिश्रितपुष्पतिलोदकरूपमर्घ्यं निवेद्य तत्तत् ब्राह्मणहस्ते प्रक्षिप्य पश्चादाचामेदित्यर्थः। तेन प्रेतब्राह्मणहस्ते उत्सृष्टदत्तस्यैवार्घ्यजलस्य तदवशिष्टजलस्य भागत्रयं पितामहाद्युत्सृष्टार्घ्यजलेषु मिश्रीकर्त्तव्यमिति प्रतीयते। अतएव दत्तस्यैव प्रेतपिण्डस्य मिश्रीभाव इति श्राद्धविवेकः। एवञ्च “चत्वारि पात्राणि सतिलगन्धोदकानि त्रीणि पितॄणामेकं प्रेतस्य प्रेतपात्रं पितृपात्रेष्वासिञ्चति” ये समाना इत्यादि गोभिलसूत्रे पाठक्रमदर्शनात् सर्वत्र छन्दोगानां सपिण्डीकरणे प्रेतकर्मकरणं पितृकर्मपूर्वकं किन्त्वर्घ्यदानमात्रे पाठक्रमाच्छाब्दक्रमस्य बलवत्त्वात्

ब्रह्मपुराणे प्रेतार्घ्यदानानन्तरं ततः पितामहादिभ्य इति श्राद्धक्रमस्याबाधेनार्घ्यपात्रेषु गन्धपुष्पदानपर्य्यन्तं पितृपूर्वकता उत्सर्गे तु प्रेतपूर्वकता । यथाचमने "अक्षिणी नासिके कर्णौ" इति गोभिलसूत्रस्थपाठक्रममुल्लङ्घ्य "अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादनन्तरम् । अङ्गुष्ठानामिकाभ्याञ्च चक्षुः श्रोत्रे पुनः पुनः" ॥ इति दक्षोक्तश्राद्धक्रमो गृह्यत इति अतएव छन्दोगपरिशिष्टेन सूत्रक्रमान्यथात्वं स्पष्टीकृतं यथा "त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्य मुखमेतान्युपस्पृशेत् । आस्यनासाक्षिकर्णांश्च नाभिवक्षः शिरोऽंशकात्" ॥ एतेनानुत्सृष्टजलेन अनुत्सृष्टजलसमन्वयोत्तरोत्सर्गः पितृदयितायामुक्तो निरस्तः । ब्रह्मपुराणे ये समाना इति स्मरणानन्तरं जलप्रक्षेपमात्राभिधानेन पूर्वमुत्सर्गप्रतीतेः एवं संस्रवजलसमन्वयस्तु मैथिलोक्तोऽपि न युक्तः प्रागुक्तवचनेषु समन्वयोत्तरार्घ्यनिवेदनोक्तेः स्वयमाचमेदित्येव पाठः कल्पतरौ तथा दर्शनात् आचमनं कुर्य्यादिति वाचस्पतिमिश्रव्याख्यानाच्च । आचमेदिति ह्रस्वश्छान्दसः आचरेदिति तु लेखकप्रमादपाठः अत्र च शेषमन्नमनुज्ञाप्य सर्वमन्नमेकत्रोद्धृत्य उच्छिष्टसमीपे दर्भेषु मधुमध्विति अक्षन्नमीमदन्तेति जपित्वा त्रीं स्त्रीन् पिण्डान् दद्यात्" इति गोभिलसूत्रेण "सर्वस्मात् प्रकृतादन्नात् पिण्डान् मधुतिलान्वितान् द्रव्यशेषेण" इत्यनेन च श्राद्धद्रव्यशेषद्रव्येणैव पार्वणे पिण्डविधानात् तद्विकृतावपि सपिण्डीकरणे तन्नियमात् यद्यपि शेषाभावे पिण्डनिवृत्तिरायाति तथापि यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत् । "यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः" । इति छन्दोगपरिशिष्टात् "मुख्यालाभे प्रतिनिधिः शास्त्रार्थः" इति न्यायाच्च मध्वाद्यभावे गुड़ादिग्रहणवत् । द्रव्यान्तरेणापि पिण्डदानं शेषद्रव्यनियमस्तु तत्सम्भवे द्रव्यान्तरत्यागाय अन्यथा तदङ्गाभावे कर्म्मवैगुण्यं स्यात् "सहपिण्डक्रियायाम्" इति मनूक्तेः पिण्डस्य प्रेतपिण्डेन सहमिश्रीकरणं यत्रेति सपिण्डीकरणसमाख्यासिद्ध्यर्थं सुतरां तत्र तथाचरणं प्रतिपत्तिरूपकर्म्माङ्ग एव प्रतिपाद्याभावे तन्निवृत्तिः "पशुयागे लोहितं निरस्यति शकृन्निरस्यति" इत्यादावुक्ता । अतएव

“यज्ञवास्तुरूपप्रतिपत्तियागेऽपि यज्ञो यस्मिन् वसतीति” यज्ञवास्तु समाख्यानुरोधेनास्तृतकुशविरहेऽपि कुशान्तरप्रतिनिधिर्भट्टनारायणैर्गोभिलभाष्ये उक्तः। “प्राक्स्विष्टिकृत आवाप इति गोभिलसूत्रस्य व्याख्यानेऽपि आउप्यत इत्यावापः प्रधानहोमः स तु स्विष्टिकृद्धोमात् प्राक् न पश्चादित्यर्थः” एवञ्च “मुख्यहोमे त्वकृते यदि चरुर्नष्टो दुष्टो वा भवति तदान्यः पाच्यः मुख्ये कृते चेन्नष्टदुष्टो तदाज्येनैव स्विष्टिकृद्धोम” इति सरला भाष्ये एतेन शेषनाशे पिण्डनिवृत्तिरिति वाचस्पतिमिश्रोक्तं हेयम्। अत्र भविष्यपुराणं “गन्धोदकतिलैर्युक्तं कुर्य्यात् पात्रचतुष्टयम्। अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत्॥ ये समाना इति द्वाभ्यामेतत् ज्ञेयं सपिण्डनम्। नित्येन तुल्यं शेषं स्यादेकोद्दिष्टं स्त्रिया पपि”॥ नित्येनेति नित्यपदमत्रावश्यकपरम्। तेन सपिण्डीकरणस्योभयात्मकत्वात्। शेषमङ्गजातं पार्वणांशे पार्वणतुल्यमेकोद्दिष्टांशे एकोद्दिष्टेन तुल्यं बोध्यम् एकोद्दिष्टमिति एकोद्दिष्टं तद्धर्म्मग्राहित्वात् सपिण्डीकरणञ्चेत्युभयपरम्। “एतत् सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि” इति याज्ञवल्क्यवचनैकवाक्यत्वात् तेन श्राद्धेषु मध्ये एतत् श्राद्धद्वयमेव स्त्रिया कर्त्तव्यं नत्वाभ्युदयिकश्राद्धादि अत्र च स्त्रिया इति कर्त्तरिकृत्य इति कर्त्तरि षष्ठीति कर्तृत्वनियमः। वृद्धिश्राद्धादौ स्त्रीणां भोजनदर्शनान्न भोक्तृत्व नियमः। अत्र च मातुःपत्या सह सपिण्डने श्वशुरार्य्यश्वशुरयोः पिण्डौ कुशैराच्छाद्यौ। तथा च गार्ग्यः। “पतिनैकेन कर्त्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः। सा गता हि मृतैकत्वं कुशैरन्तयन् पितॄन्॥ श्वशुरस्याग्रतो यस्माच्छिरः प्रच्छादन क्रिया। पुत्रैर्दर्भेण सा कार्य्या मातुरभ्युदयार्थिभिः”॥ अन्तरयन्तीत्यर्थेऽन्तरयन्निति लिङ्गव्यत्ययेन पुंस्त्वमिति हलायुधः। परवचनं गोभिलश्राद्धसूत्रभाष्यकृतापि लिखितम् अतएव प्रव्रजिते पतिते वा पितरि मृतेऽपि न पितामहादिभिः सह मातुः सपिण्डीकरणं किन्तु पितामह्यादिभिरेव “स्वेन भर्त्रा सहैवास्याः सपिण्डीकरणं स्त्रियाः। एकत्वं सा गता यस्माच्चरुमन्त्राहुतिव्रतैः। तस्मिन् सति सुताः कुर्य्युः पितामह्या सहैव तु” इति अत्र

तस्मिन् सतीति श्राद्धानर्हं भर्त्तुरुपलक्षणम्। अतएव "तस्यास्त्वेव तु जीवन्त्यां तस्याः श्वश्रूरिति निश्चयः इति लघुहारीतेन श्वश्रूजीवने तस्याः श्वश्रूरित्युक्तं न तु श्वशुरेणेति क्वचिदप्युक्तम् एवं पितामह्यादिभिर्मातुः सपिण्डीकरणे सामगेन "ये चात्र त्वामनु यांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा" इति मन्त्रो न पाठ्यः मन्त्रलिङ्गविरोधादतएवाभ्युदयिके मातृपक्षे श्रीदत्तादिभिर्मन्त्रान्तरं लिखितं न ये चात्र त्वेति वस्तुतस्तु आभ्युदयिके छन्दोगानां मातृपक्ष एव नास्तीत्युक्तम्। एवञ्च "अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत्। एतत् सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि" इति याज्ञवल्क्येन पार्वणैकोद्दिष्टविकृतीभूतपुंसपिण्डनातिदेशात्तद्विकृतीभूत श्वश्र्वादिभिः सह स्त्री सपिण्डनेऽपि ये समाना इति मन्त्रद्वयस्य पार्वणोक्त ये चात्र त्वामिति मन्त्राणां लिङ्गार्थासमवेतत्वेऽपि प्रकृत्यर्थसमवेतार्थत्वात् पाठः। एवञ्च "मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्य्याद्विचक्षणः। मन्त्रोहेण यथा न्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम्"॥ इत्यनेन शेषाणां यन्मन्त्रवर्जनमुक्तं तत् "शुद्धन्तां पितरः शुद्धन्तां पितामहाः"। इत्यादि प्रकृत्यूहयोग्यमन्त्रवर्जनपरं न तु लिङ्गोहयोग्यमन्त्रवर्जनपरम्। सर्व्वाभावे स्त्रियः कुर्य्युरित्यादिमार्कण्डेयपुराणीयञ्चैतदानुगुण्येन व्याख्यातं शुद्धितत्त्वे श्राद्धतत्त्वे च।

अथ विघ्नपतितमृताहाविदितश्राद्धकालः। लघुहारीतः। "श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने मृताहाविदिते तथा। एकादश्यां प्रकुर्वीत कृष्णपक्षे विशेषतः"॥ अत्र मृताहाज्ञाने यत् श्राद्धं तद्दिनकरणयोग्यं मासिकं सांवत्सरिकञ्च तदेव श्राद्धविघ्नमित्यत्राप्यन्वेति उपस्थितत्वात् न तु अमावास्यादिविहितम् एवञ्चेत् कथं मृताहेतरक्रियमाणानाम् आद्यषाण्मासिकद्वयश्राद्धानां ग्रहणमिति चेत्तदादितदन्तन्यायात्। "यथाक्रमेण पुत्रेण कार्य्या प्रेतक्रिया सदा। पतितापतितावापि एकोद्दिष्टविधानतः"॥ इति जावालवचनात्। "व्युत्क्रमात् प्रेतश्राद्धानि यो नरो धर्म्ममोहितः। ददाति नरकं याति पितृभिः सह शाश्वतम्"॥ इति देवलवचनाच्च। अन्यथा तेषामकरणे

तदन्तर्भूतश्राद्धानामकरणप्रसङ्गात्। एवञ्च पतितप्रेतश्राद्धं यदि कृष्णैकादश्यां न कृतं तदा परश्राद्धकाले कर्त्तव्यं न तु पतितश्राद्धगौणैकादशीकालानुरोधेन परश्राद्धमुख्यकालबाधः। एतन्न्यायमूलं हेमाद्रिधृत देवलवचनम्। "एकोद्दिष्टे तु सम्प्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते। मासेऽन्यस्मिंस्तिथौ तस्मिंस्तदा दद्यात् प्रयत्नतः"॥ अत्र मृताहश्राद्धस्य विघ्नेऽपि देयत्वावधारणात् ऋष्यशृङ्गवचने देयमिति विशेषणं सार्थकं तद्यथा—"देये पितॄणां श्राद्धे तु अशौचं जायते यदि। तदशौचे व्यतीते तु तेषां श्राद्धं विधीयते॥ शुचीभूतेन दातव्यं या तिथिः प्रतिपद्यते। सा तिथिस्तस्य कर्त्तव्या न त्वन्या वै कदाचन"॥ देये विघ्नेऽप्यवश्यं देये अत्र कृष्णैकादशी प्रतीक्षणीया नवेत्यत्राशुचीभूतेनेत्यादि दातव्यमित्यत्र शयनीयवत् श्राद्धं दातुमर्हत्यस्मिन् काल इति कृत्य ल्युटोऽन्यत्रापि चेत्यनेनार्हतावित्यधिकृत्य शकि च कृत्या इत्यनेन चार्हणाधिकरणे कृत्यप्रत्ययः। अन्यथा पूर्ववचनपरार्द्धेन पौनरुक्त्यापत्तेः। ततश्च दातव्यं श्राद्धपूज्यकालमध्याह्नादिकं प्राप्य या तिथिः शुचीभूतेन प्राप्यते सा तिथिस्तस्य श्राद्धस्य कर्त्तव्या करणार्हा न त्वन्या कृष्णैकादशी अशौचविघ्ने प्रतीक्षणीया। ततः शुचीभूताव्यवहितदिवसीयश्राद्धप्रशस्तकाल प्राप्ततिथिखण्डनियमादप्रशस्तकालेऽपि तत्तिथिखण्ड एव श्राद्धं न शुक्लपक्षीय तद्द्वितीयखण्डे अनुपस्थितेः। एवञ्चाशौचान्ते सङ्गवाभ्यन्तरसमाप्य तिथौ न श्राद्धं किन्तु मध्याह्नादिप्राप्ततिथौ श्राद्धं प्रशस्तकालत्वात्। यथा खण्डतिथौ प्रशस्तकाललाभे तत्काल एव कर्म्म न तु युग्मादिना सामान्यकाललाभ इति। मध्याह्नेऽपि कुतपस्य पूर्वोत्तरभागयोरेकोद्दिष्टारम्भकालत्वेन तत्प्राप्तिरादरणीया यथा कालमाधवीयधृतो व्यासः। "कुतपप्रथमे भागे एकोद्दिष्टमुपक्रमेत्। आवर्त्तनसमीपे वा तत्रैव नियतात्मवान्॥ आवर्त्तनं पश्चिमदिगवस्थितच्छायायाः पूर्वदिग्गमनारम्भकालः तत्समीपे कुतपशेषदण्डे। गौतमोऽपि "आरभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्य्यादारौहिणं बुधः। विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणन्तु

न लङ्घयेत्” ॥ एतद्वचनं भुजबलभीमे भोजदेवेन धृतम्। वौधायनः “यो यस्य विहितः कालः कर्मणस्तदुपक्रमे। तिथिर्याभिमता सा तु कार्य्या नोपक्रमोज्झिता” ॥ अतएव मदनपारिजाते लोकाक्षिः “गणितात् ज्ञायते कालो यत्र तिष्ठन्ति देवताः। वरमेकाहुतिः काले नाकाले लक्षकोटयः” ॥

अथैवं षोड़शश्राद्धानां यथाक्रमस्यावश्यकत्वे भ्रान्त्या एकस्याप्यकरणे तदादिश्राद्धानां पुनः करणप्रसङ्गः “प्रवृत्तमन्यथा कुर्य्याद् यदि मोहात् कथञ्चन। यतस्तदन्यथा भूतं तत एव समापयेत्” इति छन्दोगपरिशिष्टादिति चेन्न क्रमरूपाङ्गानुरोधेन हि प्रधानीभूतश्राद्धान्तराणामावृत्तेरयुक्तत्वात् किन्तु यत् पतितं तदेव कर्त्तव्यं तुल्यकक्षाणां षोड़शश्राद्धानामेकतरासिद्धौ षोड़शानामपूर्वाणामनुदये प्रधानापूर्वासिद्धेर्दर्शापूर्ववत्। न चाङ्गासिद्धावपि समानमेतदिति वाच्यं तेषां कथं स्यादित्याकाङ्क्षायां पूर्वमुत्पद्यमानतया प्रधानविषयोत्पत्तिवाक्यविषयत्वाभावात्। अतएव सर्वशक्त्यधिकरणेऽङ्गासिद्धावपि नित्ये क्वचित् प्रधानसिद्धिरिति सिद्धान्तः प्रधानैकतरासिद्धौ तु प्रधानापूर्वसिद्धिः सर्वतन्त्रविरुद्धैव अतएव छन्दोगपरिशिष्टम्। “समाप्ते यदि जानीयान्मयैतद्यथा कृतम्। तावदेव पुनः कुर्य्यान्नावृत्तिः सर्वकर्मणः ॥ प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत्क्रियते पुनः। तदङ्गस्याक्रियायान्तु नावृत्तिर्न च तत्क्रिया” इति नावृत्तिर्न साङ्गप्रधानावृत्तिः। न चेति न च तावन्मात्रस्याङ्गस्य करणं किन्तु तद्वैगुण्यसमाधानार्थं विष्णुस्मरणमाह योगियाज्ञवल्क्यः। “अज्ञानाद् यदि वा मोहात् प्रच्यवेताध्वरेषु यत्। स्मरणादेव तद्विष्णोः संपूर्णं स्यादिति श्रुतिः” ॥ एवञ्च प्रवृत्तमिति प्रागुक्तवचनं प्रयोगमध्य एव सुकरत्वेन बोध्यम्। न च सपिण्डनानन्तरं पतितमासिककरणे पुनः सपिण्डीकरणप्रसङ्गः। “सपिण्डीकरणे वृत्ते पृथक्त्वं नोपपद्यते। पृथक्त्वे तु कृते पश्चात् पुनः कार्य्या सपिण्डता” इति लघुहारीतवचनादिति वाच्यम्। तद्वचनस्य प्राप्तपितृलोकप्रेतस्य शास्त्रोल्लङ्घनपूर्वक मासिकादिकरणपरत्वात्। तथा च “प्रेतानामिह सर्वेषां ये सन्त्येक

नियोजिताः। कृतार्थास्ते हि संवृत्ताः सपिण्डीकरणे कृते ॥ प्रेतत्वाच्चेह निस्तीर्णाः प्राप्ताः पितृगणान्तु ते। यः सपिण्डीकृतं प्रेतं पृथक् पिण्डे नियोजयेत्। विधिघ्नस्तेन भवति पितृहा चोपजायते"। इति शातातपवचने पितृत्वप्राप्त्यनन्तरं पृथक्करणं निषिद्धम्। अत्र तु षोडशश्राद्धासम्पत्त्या तदसिद्धौ पृथक्करणेऽपि न दोषः छन्दोगपरिशिष्टवचनाच्च तद्यथा "सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं न दद्यात् प्रतिमासिकम्। एकोद्दिष्टविधानेन दद्यादित्याह शौनकः" ॥ न दद्यात् प्रतिमासिकमेकोद्दिष्टविधानेनेति सम्बन्धात् दद्यादित्याह शौनक इत्यनेनैकोद्दिष्टस्यैवापकृष्टसपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं विकल्पो दर्शितः। स चाप्राप्तप्रेतभावविषय इति श्राद्धविवेकोक्तवत् भ्रमपतितमासिकविषयोऽपीति। प्रागुक्त लघुहारीतवचने विशेषत इत्यमावस्यापेक्षया तस्या अपि विघ्ने विधानात्। यथा हेमाद्रिधृतं षट्त्रिंशन्मतं "मासिके चाब्दिके त्वह्नि संप्राप्ते मृतसूतके। वदन्ति शुद्धौ तत्कार्य्यं दर्शे चापि विचक्षणैः" ॥ राजमार्त्तण्डे "श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने अन्तरामृतसूतके। एकादश्यां प्रकुर्वीत कृष्णपक्षे विशेषतः ॥ श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने मृतस्याविदिते दिने। अमावास्यां प्रकुर्वीत वदन्त्येके मनीषिणः" ॥ अत्र मृतसूतकोपादानादृष्यशृङ्गवचनेऽशौचपदमेतत्परम्। यत्त्वन्तरामृतसूतकेऽपि एकादश्यां श्राद्धविधानं तन्न त्वन्या वै कदाचन इति ऋष्यशृङ्गवचनविरोधादशौचान्तदिने मलमासादिरूपविघ्नान्तरेण तदकरणे बोध्यम्। अतएव श्राद्धविवेके अपाटवाद्यशौचाभ्यामपि पतितमेकोद्दिष्टमेकादश्यामशौचान्ते च मलमासे न कर्त्तव्यं किन्तु मलमासाव्याप्तकृष्णैकादश्यामेवेत्युक्तम्। यत्तु "जातकर्म्मणि यत्श्राद्धं नव श्राद्धं तथैव च। प्रतिसंवत्सरं श्राद्धं मलमासेऽपि तत्स्मृतम्। प्रतिसंवत्सरं श्राद्धमशौचात् पतितञ्च यत्॥ मलमासेऽपि कर्त्तव्यमिति भागुरिभाषितम्" ॥ इति ज्योतिर्वचनद्वयं तत्र पूर्ववचनशेषार्द्धस्य "असंक्रान्तेऽपि कर्त्तव्यमाब्दिकं प्रथमं द्विजैः" इति लघुहारीतवचनैकवाक्यतया अन्त्याधिमासविषयकत्वात् "मलमास मृतानाञ्च श्राद्धं यत्प्रतिवत्सरम्। मल-

मासेऽपि कर्त्तव्यं नान्येषान्तु कदाचन" इति कालमाधवीयधृतपैठीनसिवचनैकवाक्यतया मलमासमृतविषयकत्वाच्च न दोषः परवचनेनापि तदुभयश्राद्धस्याशौचपतितस्य मलमासाभ्यन्तरे कर्त्तव्यतोक्ता न तु तद्भिन्नस्यानुपस्थितस्य राजमार्त्तण्डेन एकादश्यां कर्त्तव्यतोक्तेः। प्रचेताः "अविज्ञाते मृते अमावास्यायां श्रवणदिवसे वा" इत्यत्रामावास्यायामपि मृताहाविदितश्राद्धविधानेनैकादश्यां प्रकुर्वीत कृष्णपक्षे विशेषत इत्यमावस्यापेक्षयैवोपपत्तौ विशेषत इति श्रवणात् मैथिलोक्तं शुक्लैकादश्यां तत्करणं न युक्तं एकादशीमात्रे प्रकुर्वीत कृष्णपक्षे विशेषतः कुर्वीतेति वाक्यभेदापत्तेः। अस्मन्मते तु कृष्णपक्षे एकादश्याममावास्यापेक्षया विशेषतः कुर्वीतेत्येकं वाक्यं श्रवण दिवस इति मरणस्येति शेषः मृतशब्दोऽत्र मृताहपरोऽनिश्चित मृतस्यौर्द्ध्वदेहिकाभावादिति श्राद्धविवेकः। मृताहनीत्येव सूत्रे पाठो मैथिलपाश्चात्यदाक्षिणात्यानाम्। अत्रामावास्यायामिति गमनमाससम्बन्धिन्यां "प्रवासवासरे ज्ञेयं तन्मासेन्दुक्षयेऽथवा"। इति स्मरणादिति मिताक्षरा। एतच्च मृतदिनमासयोरज्ञाने वक्ष्यमाणबृहस्पतिवचनात्। मृतमासे ज्ञाते मरणदिनाज्ञाने तु तदीयामावास्यायाम्। तथा च हेमाद्रिकालादर्शनिर्णयामृत नव्यवर्द्धमानधृतानि वचनानि। "बृहस्पतिः। न ज्ञायते मृताहश्चेत् प्रोषिते संस्थिते सति। मासश्चेत् प्रतिविज्ञातस्तद्दर्शे स्यान्मृताहनि"॥ मृताहनीत्यत्र यत् कर्त्तव्यमिति शेषः प्रोषित इत्यज्ञानकारणोपलक्षणं मासाज्ञाने तिथिज्ञाने तु स एव "यदि मासो न विज्ञातो विज्ञातं दिनमेव हि। तदा मार्गशिरे मासि माघे वा तद्दिनं भवेत्"॥ कालादर्श निर्णयामृतयोर्मार्गशिर इत्यत्र आषाढ़क इति पाठः। भविष्यपुराणम्। "दिनमेव तु जानाति मासं नैव तु यो नरः। मार्गशीर्षे तथा भाद्रे माघे वा तद्दिनं भवेत्"॥ एषु मृताहावधारणसान्निध्यान्मासविशेषो ग्राह्यः। मृतदिनमासयोरज्ञाने तु बृहस्पतिः "दिनमासौ न विज्ञातौ मरणस्य यदा पुनः। प्रस्थान दिनमासौ तु ग्राह्यौ पूर्वोक्तया दिशा" पूर्वोक्तया दिशेति यथा मरण दिनमासज्ञाने तद्ग्रहणं तयोरेकतराज्ञाने

यथा व्यवस्थापितं तथात्रापीति तेन प्रस्थानदिनमासज्ञाने तद्ग्रहणं प्रस्थानमासमात्रज्ञाने तदीयामावास्या ग्राह्या। प्रस्थानतिथिमात्रज्ञाने तु मार्गशीर्षादौ तत्तत्तिथिर्ग्राह्येति। सन्देहे तु आह यमः। "गतस्य न भवेत् वार्त्ता यावत् द्वादशवार्षिकी। प्रेतावधारणं तस्य कर्त्तव्यं सुतबान्धवैः। यन्मासि यदहर्यातस्तन्मासि तदहःक्रिया। दिनाज्ञाने कुहूस्तस्य आषाढ़स्याथवा कुहूः"। एवञ्च मरण प्रस्थानदिनमासाज्ञाने श्रवणदिवसस्य विषयः। प्रभासखण्डम्। "मृतस्याहो न जानाति मासं वापि कथञ्चन। तेन कार्य्यममावस्यां श्राद्धं माघेऽथ मार्गके" कथञ्चनेति मरणप्रस्थान दिनमास श्रवणादि रूपेण केनाप्यज्ञाने। अतएव एषां मृततिथ्यादीनां अज्ञानेऽपि यस्यान्तिथौ मृतिः श्रूयते तस्यामेव तत्तिथेरपि विस्मरणे तन्मासैकादश्याममावास्यायां वा एकोद्दिष्टं तथा श्रवणमासस्यापि विस्मरणे न कार्य्यमेकोद्दिष्टं प्रमाणाभावादिति वाचस्पतिमिश्रोक्तं हेयं श्रवणदिनविस्मरणे तन्मासीयैकादश्यमावास्ययोर्ग्रहणं यदुक्तं तदपि प्रमाणशून्यम्। इत्थञ्च सर्वत्र तन्मासीयकृष्णैकादश्यभाव एव अमावास्या ग्राह्या श्राद्धविवेक इति वचनात्। अन्यथा तद्वचनस्य मृताहाविदित इत्यस्य विषयानुपपत्तेः। तस्याश्च प्राधान्यं तद्वचने विशेषत इत्यभिधानात्।

ननु अशौचे तु व्यतीते वै इति श्रवणादशौचान्त इति प्रयोगे वक्तव्यमिति श्राद्धचिन्तामणिः। मैवं यथा मृताहनि तु कर्त्तव्यमित्यादिना मृताहादेर्निमित्तत्वेऽपि तत्तत्तिथिविशेषस्यैव उल्लेखः न तु मृताहत्वेनैव उल्लेखः यथा वा तत्र श्राद्धे विघ्नपतिते एकादश्यादिविधानात् एकादश्यादिरूपेणैव उल्लेखः। तथा तत्रापि शुचीभूतेन दातव्यमित्यादिना श्राद्धप्रशस्तकालप्राप्ततिथिविशेषस्यैव उल्लेखः। न तु अशौचान्तस्यैव उल्लेखः।

अथ जन्मतिथिकृत्यम्। तच्च मलमासे न कर्त्तव्यं चान्द्रमासीयत्वेन सावकाशत्वात्। न च तस्य सौरमासीयत्वं तथात्वे तन्मासे तत्तिथेः कदाचिदप्राप्तौ तद्वर्षे तत्कृत्यलोपापत्तेः नचेष्टापत्तिः प्रतिसंवत्सरं तद्विधानात् यथा ब्रह्मपुराणे गर्गश्च

"सर्वैश्च जन्मदिवसे स्नातैर्मङ्गलपाणिभिः। गुरुदेवाग्निविप्राश्च पूजनीयाः प्रयत्नतः॥ स्वनक्षत्रञ्च पितरौ तथा देवः प्रजापतिः प्रतिसंवत्सरञ्चैव कर्त्तव्यश्च महोत्सवः"। स्नातैस्तिलस्नातैः प्रजापतिर्ब्रह्मा। तथा च तत्तिथिमधिकृत्य "तिलोद्वर्त्ती तिलस्नायी तिलहोमी तिलप्रदः तिलभुक् तिलवापी च षट्तिली नावसीदति"। मङ्गलपाणिभिः अभिप्रेतार्थसिद्धिर्मङ्गलं तद्धेतुतया गोरोचनादिकमपि मङ्गलं तेन गुग्गुल्वादिपाणिभिरित्यर्थः। तथाच कृत्यचिन्तामणौ "गुड़दुग्धतिलान्द्याज्जन्मग्रन्थेश्च बन्धनम्। गुग्गुलुं निम्बसिद्धार्थं दूर्वागोरोचनायुतम्। संपूज्य भानुविघ्नेशौ महर्षिं प्रार्थयेदिदम्। चिरजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने!। रूपवान् वित्तवांश्चैव श्रियायुक्तश्च सर्वदा। मार्कण्डेय! महाभाग! सप्तकल्पान्तजीवन! आयुरिष्टार्थसिद्ध्यर्थमस्माकं वरदो भव"॥ स्वनक्षत्रमिति स्वनक्षत्रं अश्विन्याद्यन्तर्गतं जन्मकालीननक्षत्रं नामकरणे तथा दर्शनात् वक्ष्यमाणब्रह्मपुराणोक्तप्रणवादिनमोऽन्तेन नाम्नैव पूजाविधानाच्च तदज्ञाने स्वनक्षत्राय नम इत्युल्लेखम्। पूजायामर्घ्यानन्तरं पाद्यमाह मत्स्यपुराणम् "अर्घ्यपाद्यादिकन्तत्र मधुपर्कं प्रयोजयेत्"। पाद्यानन्तरमर्घ्यमाह नरसिंहपुराणम्। "पाद्यं चैव तृतीयया चतुर्थ्यार्घ्यं प्रदापयेत्"। तृतीयया पुरुषसूक्तीयतृतीयया ऋचा उभयक्रमदर्शनादिच्छाविकल्पः इति श्रीदत्तः श्रीपतिव्यवहारनिर्णये "नवाम्बरधरो भूत्वा पूजयेच्च चिरायुषम्"। तथा "द्विभुजं जटिलं सौम्यं सुवृद्धं चिरजीविनम्। मार्कण्डेयं नरो भक्त्या पूजयेत् प्रयतस्तथा॥ ततो दीर्घायुषं व्यासं रामं द्रौणिं कृपं बलिम्। प्रह्लादञ्च हनूमन्तं विभीषणमथार्चयेत्"॥ रामोऽत्र परशुरामः चिरजीविसाहचर्य्यात् द्रौणिरश्वत्थामा। तथा "स्वनक्षत्रं जन्मतिथिं प्राप्य सम्पूजयेन्नरः। षष्ठीञ्च दधिभक्तेन वर्षे वर्षे पुनः पुनः। योगियाज्ञवल्क्यः। "ध्यायेन्नारायणं नित्यं स्नानादिषु च कर्मसु तद्विष्णोरितिमन्त्रेण स्नायादप्सु पुनः पुनः। गायत्री वैष्णवीह्येषा विष्णोः संस्मरणाय वै"॥ ध्यायेत् स्मरेत्। स च मन्त्रः। "तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति

सूरयः दिवीव चक्षुराततम्”। वामनपुराणम्। “सर्वमङ्गलमङ्गल्यं वरेण्यं वरदं शुभम्। नारायणं नमस्कृत्य सर्वकर्माणि कारयेत्” ॥

संकल्पाकरणे निन्दामाय भविष्यपुराणम्। “संकल्पेन विना राजन् यत्किञ्चित् कुरुते नरः। फलञ्चाल्पाल्पकं तस्य धर्मस्यार्द्धक्षयो भवेत्” ॥ ब्रह्मपुराणं “प्रणवादिसमायुक्तं नमस्कारान्तकीर्त्तितम्। “स्वनाम सर्वसत्वानां मन्त्र इत्यभिधीयते। अनेनैव विधानेन गन्धपुष्पं निवेदयेत्” ॥ एकैकस्य प्रकुर्वीत यथोद्दिष्टं क्रमेण तु। गन्धपुष्पमात्रं पञ्चोपचाराद्यसम्भवे। यथा “मन्त्राच्छतगुणं प्रोक्तं भक्त्या लक्षगुणोत्तरम्। भक्तिमन्त्रसमेतन्तु कोटिकोटिगुणोत्तरम् ॥ सर्वत्र कर्मोपदेशकं दक्षिणादिभिरर्च्चयेत्। तथोपदेष्टारमपि पूजयेच्च ततो गुरुम् ॥ न पूज्यते गुरुर्यत्र नरैस्तत्राफला क्रिया” इति मत्स्यपुराणवचनात्। ततः कर्मानन्तरं तिलहोमस्तु पूजितदेवतानामभिः कार्य्यः “एकैकां देवतां राम ! समुद्दिश्य यथाविधि। चतुर्थ्यन्तेन धर्मज्ञ ! नाम्ना च प्रणवादिना ॥ होमद्रव्यमथैकैकं शतसख्यन्तु होमयेत्” इति विष्णुधर्मोत्तरदर्शनात् एवं होमे स्वाहान्तता च मन्त्रस्य। “स्वाहावसाने जुहुयात् ध्यायन् वै मन्त्रदेवताम्” ॥ इति स्मृतेः अशक्तौ तु देवीपुराणम्। “होमो ग्रहादिपूजायां शतमष्टोत्तरं भवेत्। अष्टाविंशतिरष्टौ वा यथाशक्ति विधीयते” ॥ स्कान्दे। “खण्डनं नखकेशानां मैथुनाध्वानमेव च। आमिषं कलहं हिंसां वर्षवृद्धौ विवर्जयेत्” ॥ अध्वानम् अध्वगमनं कलहमित्यत्र सङ्गरमिति क्वचित् पाठः। सङ्गरं युद्धम्। वर्षवृद्धौ जन्मदिने वृद्धमनुः। “मृते जन्मनि संक्रान्तौ श्राद्धे जन्मदिने तथा। अस्पृश्यस्पर्शने चैव न स्नायादुष्णवारिणा” ॥ जन्मनि। पुत्रजन्मनि ज्योतिषे। “स्नात्वा जन्मदिने स्त्रियं परिहरन् प्राप्नोत्यभीष्टां श्रियम्। मत्स्यान्मोचयतो द्विजाय ददतोऽप्यायुश्चिरं वर्द्धते”। शक्तून् खादति यस्तु तस्य रिपवो नाशं प्रयान्ति ध्रुवं भुङ्क्ते यस्तु निरामिषं स हि भवेत् जन्मान्तरे पण्डितः। दीपिकायां “जन्मर्क्षयुक्ता यदि जन्ममासे यस्य ध्रुवं जन्मतिथिर्भवेच्च।

भवन्ति तद्वत्सरमेव यावन्नैरुज्यसम्मानसुखानि तस्य ॥ कृतान्तकुजयोर्वारे यस्य जन्मदिनं भवेत्। नक्षत्रयोगसम्प्राप्तौ विघ्नस्तस्य पदेपदे" ॥ कृतान्तकुजयोः शनिमङ्गलयोः। "तस्य सर्वौषधीस्नानं ग्रहविप्रसुरार्च्चनम्। ग्रहानुद्दिश्य होमो वा ग्रहाणां प्रीतिमिच्छता ॥ सोरारयोर्दिने मुक्ता देयानृक्षे तु काञ्चनम्। मुरामांसी वचा कुष्ठं शैलेयं रजनीद्वयम् ॥ शठीचम्पकमुस्तञ्च सर्वौषधिगणः स्मृतः" ॥ सोरारयोः शनिभौमयोः। रजनीद्वयं हरिद्रादारुहरिद्रे एषां पत्रादीनामपि ग्रहणं कषायावयवग्रहणमाह मत्स्यपुराणम् "एषां पत्राणि साराणि मूलानि कुसुमानि च। एवमादीनि चान्यानि कषायाख्योगणः स्मृतः" ॥ तत्र क्रमः। तिलोद्वर्त्तनं तिलयुक्तजलेन स्नानं नववस्त्रपरिधानं गुग्गुलुनिम्बश्वेतसर्षपदूर्वागोरोचनात्मक जन्मग्रन्थिं दक्षिणपाणौ बध्नीयात्। गुरुदेवाग्निविप्राः पूजनीयाः स्वनक्षत्रमपि पूजनीयम्। अत्र च हस्ता स्वातीश्रवणा अक्लीवे मृगशिरो नपुंसि स्यात्। पुंसि पुनर्वसुपुष्यौ मूलं त्वस्त्री स्त्रियः शेषा इत्यनेन लिङ्गनिर्णयः। जन्मनक्षत्रादीनां गोपनमाह विष्णुधर्मोत्तरे। "गोपयेज्जन्मनक्षत्रं धनसारं गृहे मलम्। प्रभोरप्यवमानञ्च तस्य दुश्चरितञ्च यत्" ॥ धनसारं धनश्रेष्ठं मलं छिद्रम्। पितरौ प्रजापतिः सूर्य्यो गणगतिर्मार्कण्डेयश्च पूजनीयः। "सतिलं गुड़संयुक्तमञ्जल्यर्द्धमितं पयः। मार्कण्डेयवरं लब्ध्वा पिवाम्यायुष्यहेतवे" इति गुड़तिलदुग्धपानमन्त्रः। ततः प्रार्थनामन्त्रौ। "चिरजीवी यथा त्वं भो भविष्यामि तथा मुने। रूपवान् वित्तवांश्चैव श्रियायुक्तश्च सर्वदा ॥ मार्कण्डेय महाभाग सप्तकल्पान्त जीवन। आयुरिष्टार्थसिद्ध्यर्थमस्माकं वरदो भव" ॥ ततो व्यासपरशुरामाश्वत्थामकृपबलिप्रह्लादहनूमद्विभीषणाः पूजनीयाः। षष्ठ्यपि। "त्रैलोक्ये यानि भूतानि स्थावराणि चराणि च। ब्रह्मविष्णुशिवैः सार्द्धं रक्षां कुर्वन्तु तानि मे" ॥ इति मत्स्यपुराणीयं रक्षार्थं पठेत्। पितृमातृपादग्रहणक्रमस्तु विष्णुपुराणादुन्नेयः यथा "कृष्णोऽपि वसुदेवस्य पादौ जग्राह सत्वरः। देवक्याश्च महावाहुर्बलदेवसहायवान्" ॥ एवञ्च

"सहस्रन्तु पितुर्माता गौरवेणातिरिच्यते" इति मनुवचने सहस्रं पितॄनपेक्ष्य यद्गौरवमुक्तं तत्पोषणरक्षार्थम् अतएव मनुः। "मृते भर्त्तरि पुत्रस्तु वाच्यो मातुररक्षिता"। वाच्यो गर्हणीयः अत्र वैदिकेतरमन्त्रपाठे शूद्रादेरप्यधिकारः वेदमन्त्रवर्जं शूद्रस्य इति छन्दोगाह्निकाचारचिन्तामणिधृतस्मृतौ वेदेति विशेषणात्। एवञ्च पुराणमधिकृत्य "अध्येतव्यं न चान्येन ब्राह्मणं क्षत्रियं विना। श्रोतव्यमिह शूद्रेण नाध्येतव्यं कदाचन" इति भविष्यपुराणवचनं पुराणमन्त्रेतरपरम्। पञ्चयज्ञस्नानश्राद्धेषु पौराणिकमन्त्रोऽपि निषिद्धः। शूद्रमधिकृत्य "नमस्कारेण मन्त्रेण पञ्चयज्ञान्न हापयेत्" इति याज्ञवल्क्येन "ब्रह्मक्षत्रविशामेव मन्त्रवत् स्नानमिष्यते। तूष्णीमेव हि शूद्रस्य सनमस्कारकं मतम्" इति योगियाज्ञवल्क्येन श्राद्धमधिकृत्य "अयमेव विधिः प्रोक्तः शूद्राणां मन्त्रवर्जितः। अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते" इति वराहपुराणेन च नमस्कारेणेति तूष्णीमिति मन्त्रवर्जित इति चाभिधानादेतत्परं वैदिकपरञ्च शूद्राधिकारे गोतमवचनम् "अनुमतोऽस्य नमस्कारो मन्त्र" इति अनुपनीतस्यापि शूद्रसमत्वेन श्राद्धातिरिक्ते वेदपाठनिषेधमाह मनुः। "नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते। शूद्रेण हि समस्तावत् यावद्वेदे न जायते"॥ स्त्रीणामपि वैदिकमन्त्रनिषेधमाह नृसिंहतापनीयम्। "सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्रयोर्नेच्छन्ति सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्रो यदि जानीयात् समृतोऽधो गच्छति इति नेच्छन्तीति पर्य्यन्तं पराशरभाष्येऽपि लिखितम्। जन्मतिथेः प्रागुक्त ब्रह्मपुराणीयत्वात् पौर्णमास्यन्तमासादारः। गृह्यपरिशिष्टम्। "उपाकर्म तथोत्सर्गः प्रसवाहोऽष्टकादयः। मानवृद्धौ पराः कार्य्या वर्जयित्वा तु पैतृकम्"॥ अत्राष्टकासाहचर्य्याज्जन्माष्टम्यां तथा दर्शनाच्च प्रसवाहो जन्मदिनं द्वादशमासाः संवत्सरः क्वचित्त्रयोदशमासाः संवत्सर इति श्रुत्या वर्षे मासवृद्धिरूपा मानवृद्धिरुक्ता सैवात्र ग्राह्या न तु सौरे मासि तिथिद्वयलाभान्मानवृद्धिर्जीमूतवाहनोक्ता ग्राह्या तिथिद्वयलाभस्य मानवृद्धित्वे प्रमाणाभावात्।

मानवृद्धावित्यत्र मासवृद्धाविति हेमाद्रिणा धृतम्। पैतृकं सपिण्डीकरणं मलमासमृतस्य प्रत्याब्दिकञ्च तयोर्म्मलमासे विधानात्। ज्योतिः पराशरोऽपि। "उपाकर्म्म तथोत्सर्गः प्रसवाहोऽष्टकादयः। मासवृद्धौ पराः कार्य्या वर्जयित्वा तु पैतृकम्"।

जन्मतिथेरुभयदिनलाभे तु देवीपुराणम्। "युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया। रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता॥ घस्रद्वये जन्मतिथिर्यदि स्यात् पूज्या तदा जन्मभसंयुतैव। असङ्गताभेन दिनद्वयेऽपि पूज्या परा या भवतीह यत्नात्"॥ भं नक्षत्रं परवचनं वृद्धराजमार्त्तण्डेऽपि पूर्वाह्ने तिथि नक्षत्रलाभ एवेदं लक्ष्यते। "नक्षत्रे खण्डिते येन प्राप्तः कालस्तु कर्म्मणः। नक्षत्रकर्म्माण्यत्रैव तिथिकर्म्म तथैव च" इति बृहस्पतिवचनात्। खण्डिते खण्डद्वययुक्ते येन नक्षत्रखण्डेन विहितकालः प्राप्तः नक्षत्रद्वैधे तु वौधायनमार्कण्डेयौ। "तन्नक्षत्रमहोरात्रं यस्मिन्नस्तं गतो रविः। यस्मिन्नुदेति सविता तन्नक्षत्रं दिनं स्मृतम्" पूर्वार्द्धमहोरात्रसाध्योपवासनक्तैकभक्तेषु। तत्रैवोपवसेदृक्षे यन्निशीथादधो भवेत्। "उपवासे यदृक्षं स्यात् तद्धि नक्तैकभक्तयोः" इति स्कन्दपुराणात् निशीथादध इत्यनेन अर्द्धरात्रपूर्वकालत्वेन सूर्य्यास्तमयकालस्यापि लाभात्। "उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः। यत्र वा युज्यते राम! निशीथे शशिना सह" इति विष्णुधर्म्मोत्तराच्च उपवासवन्नक्तव्रतादीनामहोरात्रसाध्यता अहोरात्र-साध्यभोजनद्वयस्यैकतर-परित्यागसहितकालविशेषनियामकत्वात्। यस्मिन्नुदेतीति तु दिवसकर्त्तव्यस्नानदानादाविति बोध्यं पितृकार्य्येऽपि शुक्लकृष्णपक्षाभ्यां व्यवस्थामाह वौधायनः। "सा तिथिस्तच्च नक्षत्रं यस्मिन्नभ्युदितो रविः। वर्द्धमानस्य पक्षस्य हीने त्वस्तमयं प्रति"॥ हीने चन्द्रस्य हीनत्वात् कृष्णपक्षे वर्द्धमानस्य चन्द्रस्य वर्द्धमानत्वेन शुक्लपक्षस्य कालमाधवीयोऽप्येवं भोजराजः "यो जन्ममासे क्षुरकर्म्म यात्रां कर्णस्य वेधं कुरुते च मोहात्। नूनं स रोगं धनपुत्रनाशं प्राप्नोति मूढो बधबन्धनानि। जातं दिनं दूषयते

वशिष्ठश्चाष्टौ च गर्गो यवनो दशाहम्। जन्माख्यमासं किल भागुरिश्च चूड़े विवाहे क्षुरकर्णवेधे"॥ एतद्विषयभेदस्तु राजमार्त्तण्डे "उक्तानि प्रतिषिद्धानि पुनः सम्भावितानि च। सापेक्षनिरपेक्षाणि श्रुतिवाक्यानि कोविदैः"॥ सापेक्षनिरपेक्षाणि समर्थासमर्थविषयकाणि। क्षुरेति क्षुरकर्म राजमार्त्तण्डे। "देवकार्य्यं पितृश्राद्धे रवेरंशपरिक्षये। क्षुरकर्म न कुर्वीत जन्ममासेऽथ जन्मभे"॥ एवञ्च चूड़ इति चूड़ाकरणे अधिकदोषाय नार्य्यास्तु जन्ममासे विवाहमाह ज्योतिर्व्यवहारसमुच्चये। "स्नानं दानं तपोविद्या सर्वमङ्गल्यवर्द्धनम्। उद्वाहश्च कुमारीणां जन्ममासे प्रशस्यते"॥ एवं "जन्मोदये जन्मसु तारकासु मासेऽथ वा जन्मनि जन्मभे वा। व्रतेन विप्रो न बहुश्रुतोऽपि विद्याविशेषैः प्रथितः पृथिव्याम्" इति व्यासवचनेन जन्ममासे उपनयनविधानात्तदङ्गसांशक्षवपनेऽपि न दोषः। उदये लग्ने भे राशौ न बहुश्रुतोऽपि स्वल्पविद्योऽपि। अत्र जन्ममासकृत्याकृत्ये सोरादरो यात्रादिसाहचर्य्यात् व्यवहारोऽपि तथा। प्रतिमासे जन्मनक्षत्रकृत्यमाह विष्णुधर्मोत्तरम्। "जन्मनक्षत्रगे सोमे शिरः स्नानेन यत्नतः। पूजा सोमस्य कर्त्तव्या नक्षत्रस्य तथात्मनः॥ श्राद्धं कुर्य्यात् प्रयत्नेन वह्निब्राह्मणपूजने। वाहनायुधरत्नाद्यं पूजनीयं प्रयत्नतः। सुराणामर्च्चनं कार्य्यं केशवस्य विशेषतः"॥

अथ प्रतिपत्। सा च कृष्णा द्वितीयायुता ग्राह्या "प्रतिपत् सद्वितीया स्यात्" इत्यापस्तम्बीयात्। न चैतस्य शुक्लापरत्वं प्रतिपदाप्यमावस्येति शुक्लापरेण सङ्कोचात्। ततश्च शुक्लामावास्यायुता ग्राह्या "त्रिसन्ध्यव्यापित्वे तु सर्वत्र न युग्मादरः" तथा च पराशरः "त्रिसन्ध्यव्यापिनी या तु सैव पूज्या सदा तिथिः। न तत्र युग्मादरणमन्यत्र हरिवासरात्"॥ कृष्णाप्युपवासे द्वितीयायुता न ग्राह्या। तथा च वृद्धवशिष्ठः। "द्वितीया पञ्चमी वेधाद्दशमी च त्रयोदशी। चतुर्दशी चोपवासे हन्युः पूर्वोत्तरे तिथी" द्वितीयावेधाद्योगात् प्रतिपत् तृतीये हन्तीत्यर्थः। एवमन्यत्र व्रतोपवासपरेण विशेषविधिनापस्तम्बीय सामान्यस्य सङ्कोचात्। कर्मादौ नवग्रहपूजा-

साह मत्स्यपुराणम्। "नवग्रहमखं कृत्वा ततःकर्म समारभेत्। अन्यथा फलदं पुंसां न काम्यं जायते क्वचित्"॥ वामनपुराणे। कार्त्तिकशुक्लपक्षमधिकृत्य बलिं प्रति भगवद्वाक्यं "वीरप्रतिपदानाम तव भावी महोत्सवः। अत्र त्वां नरशार्दूल! हृष्टाः पुष्टाः स्वलंकृताः॥ पुष्पदीपप्रदानेन पूजयिष्यन्ति मानवाः"। तत्र मन्त्रः। "बलिराज! नमस्तुभ्यं विरोचनसुत! प्रभो!। भविष्येन्द्रसुराराते! पूजेयं प्रतिगृह्यताम्"॥ प्रतिपदा प्रतिपत्तिथ्या अत्र प्रतिपदि। ब्रह्मपुराणे बलिराजेति मन्त्रस्य पूर्वम्। "मन्त्रेणानेन राजेन्द्र! समन्त्री सपुरोहितः" इत्यर्द्धं पश्चादपि। "एवं पूजां नृपः कृत्वा रात्रौ जागरणं ततः" इत्युक्तमिति पुनर्ब्रह्मपुराणे। "शङ्करश्च पुरा द्यूतं ससर्ज सुमनोहरम्। कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु प्रथमेऽहनि भूपते!॥ जितश्च शङ्करस्तत्र जयं लेभे च पार्वती। अतोऽर्थाच्छङ्करो दुःखी गौरी नित्यं सुखोषिता॥ तस्माद्द्यूतं प्रकर्त्तव्यं प्रभाते तत्र मानवैः। तस्मिन् द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरः शुभः॥ पराजयो विरुद्धस्तु लब्धनाशकरो भवेत्"॥ द्यूतञ्चाप्राणिभिः क्रीड़नं यथा मनुः। "अप्राणिभिर्यत् क्रियते तल्लोके द्यूतमुच्यते"। तत्तिथिमधिकृत्य भविष्योत्तरे। "यो यो यादृशभावेन तिष्ठत्यस्यां युधिष्ठिर!। हर्षदैन्यादिना तेन तस्य वर्षं प्रयाति हि"॥ तथा "महापुण्यातिथिरियं वलिराज्यविवर्द्धिनी। स्नानं दानं शतगुणं कार्त्तिकेऽस्यां तिथौ भवेत्"॥ भविष्ये "रोहिण्या प्रतिपद्युक्ता मार्गे मासि सितेतरा। गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्य्यग्रहशतैः समा"॥ कल्पतरौ। बामनपुराणं "नन्दासु नाभ्यङ्गमुपाचरेच्च क्षौरञ्च रिक्तासु जयासु मांसं पूर्णासु योषित् परिवर्जनीया भद्रासु सर्वाणि समाचरेच्च"। नन्दादिक्रममाह ज्योतिषे। नन्दा भद्रा जया रिक्ता पूर्णा च प्रतिपदः क्रमात्।

प्रतिपदादिपञ्चदशतिथिषु कुष्माण्डादिपञ्चदशद्रव्यभक्षणे क्रमेण दोषमाह स्मृतिः। "कुष्माण्डे चार्थहानिःस्याद्बृहत्यां न स्मरेद्धरिम्। वहुशत्रुः पटोले स्याद्धनहानिस्तु मूलके॥ कलङ्की जायते विल्वे तिर्य्यग्योनिश्च निम्बके। ताले शरीरनाशः स्यात् नारिकेले च मूर्खता। तुम्बी गोमांसतुल्या स्यात्

कलम्बी गोवधात्मिका ॥ शिम्बी पापकरी प्रोक्ता पूतिका ब्रह्मघातिका । वार्त्ताकौ सुतहानिः स्यात् चिररोगी च माषके ॥ महापापकरं मांसं प्रतिपदादिषु वर्जयेत्" ॥ अत्र सप्तम्यामेव तालनिषेधादन्यत्रैतद्भक्षणं प्राप्तमतः "तालं श्वेताञ्च वार्त्ताकीं न खादेद्वैष्णवो नरः" । इत्यनेन तालमपि श्वेतं निषिद्धं साहचर्य्येण नपुंसकलिङ्गेन श्वेतानुषङ्गात् । एवं अलावं वर्त्तुलाकारां वार्त्ताकीं कुन्दसन्निभां इति यदपि "कुसुम्भं नालिकाशाकं वृन्ताकं पौतिकं तथा । भक्षयन् पतितस्तु स्यादपि वेदान्तगो द्विजः" इत्युशनसा सामान्यतोऽभिहितं तत्र नालिका श्वेतकलम्बीति कल्पतरुः । "पूतिका च द्वादश्यामधिकदोषाय शूद्रविषयिका वा वार्त्ताकौ वर्त्तुलेति समुद्रकरभाष्यम् अत्रेदमस्वरसवीजं वर्त्तुलाकारामित्यस्यानुषङ्गकल्पनम् । व्याधितस्यौषधक्रियायामपवादमाह सुमन्तुः । "लशुनपलाण्डुगृञ्जनकुम्भीश्राद्धसूतिकान्नाभोज्यान्नमधुमांसमूत्ररेतोऽमेध्याभक्ष्यभक्षणे गायत्र्यष्टसहस्रेण मूर्ध्नि सम्पातानवनयेदुपवासश्च एतान्येव व्याधितस्य भिषक् क्रियायामप्रतिसिद्धानि भवन्ति यानि चान्यान्येवं प्रकाराणि तेष्वप्यदोषः" इति कुम्भीपाना इति ख्याता सम्पातानुदकविन्दून् शिरसि पातयेदिति प्रायश्चित्तविवेकः । प्रायश्चित्तं वचनान्तरैकवाक्यतया यथायोग्यमूहनीयं कल्पतरौ "नाभ्यङ्गमर्के न च भूमिपुत्रे क्षौरञ्च शुक्रेऽथ कुजे च मांसम् । वुधे च योषां न समाचरेच्च शेषेषु सर्वाणि सदैव कुर्य्यात् । चित्रा स्वहस्ताश्रवणासु तलं क्षौरं विशाखा प्रतिपत्सु वर्ज्यम् । मूले मृगे भाद्रपदासु मांसं योषिन्मघाकृत्तिकसोत्तरासु" ॥ स्वं धनिष्ठा मृगे मृगशिरसि मघाकृत्तिकाभ्यां सहोत्तरास्तासु तृतीया समासः छान्दसः । स्मृतिः । "घृतञ्च सार्षपं तैलं यत्तैलं पुष्पवासितम् । अदुष्टं पक्वतैलञ्च स्नानाभ्यङ्गे च नित्यशः" प्रचेताः "तैलाभ्यङ्गनिषेधे तु तिलतैलं निषिध्यते" । वारे प्रतिप्रसवमाह स्मृतिः । रवौ पुष्पं गुरौ दूर्वां भूमिं भूमिजवासरे । भार्गवे गोमयं दद्यात् तैलदोषोपशान्तये । "दद्यात्तैल इति शेषः" ।

अथ द्वितीया "सा च कृष्णा पूर्वयुता ग्राह्या प्रतिपत् सद्वितीया स्याद् द्वितीया प्रतिपत् युता" इत्यापस्तम्बवचनात्। तत्रोक्तयुक्तेः प्रतिपत् कृष्णा तत्साहचर्य्यात् द्वितीयापि तथेति शुक्ला तु परयुता ग्राह्या युग्मात् एवं वक्ष्यमाण उपवासविधायकयोः विरुद्धवचनयोः व्यवस्थोन्नेया यथा नारदः। "द्वितीयैकादशी षष्ठी तथा चैवाष्टमीतिथिः। वेधादधस्ताद्वन्युस्तः उपवासे तिथौस्त्विमाः"॥ अत्र द्वितीयाद्यास्तृतीयादियुताः नोपोष्या इत्यर्थः विष्णुरहस्यम् "एकादश्यष्टमी षष्ठी द्वितीया च चतुर्दशी। त्रयोदश्याप्यमावास्या उपोष्याः स्युः परान्विताः" तस्मात् पूर्ववचनं कृष्णपक्षविषयं परवचनं शुक्लपक्षविषयं मनोरथद्वितीयायान्तु दिवा वासुदेवार्च्चनं रात्रौ चन्द्रोदयेऽर्घ्यदानं नक्तं भोजनादिकम्। यथा विष्णुधर्मोत्तरे। 'देवमभ्यर्च्च्य पुष्पैश्च धूपदीपानुलेपनैः। उद्गच्छतश्च बालेन्दोर्दद्यादर्घ्यं समाहितः॥ नक्तं भुञ्जीत च नरो यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः अस्तं गते न भुञ्जीत व्रतभङ्गभयान्नरः'॥ अस्तं गते चन्द्रे विष्णुपुराणे। "दिवारात्रौ व्रतं यच्च एवमेव तिथौ स्मृतम्। तस्यामुभययोगिन्यामाचरेत्तद् व्रतं व्रती"॥ एवमेव तिथौ दिवारात्रिसम्बन्धितिथौ। स्मृतं मुनिभिः अतएव तस्यामित्यादि। स्कन्दपुराणे "आषाढ़स्य सिते पक्षे द्वितीया पुष्यसंयुता। तस्यां रथे समारोप्य रामं मां भद्रया सह। यात्रोत्सवं प्रवृत्त्याथ प्रीणयेच्च द्विजान् बहून्"॥ तथा "ऋक्षाभावे तिथौ कार्य्या सदा सा प्रीतये मम"। लिङ्गपुराणे "कार्त्तिके तु द्वितीयायां शुक्लायां भ्रातृपूजनं। या न कुर्य्याद्विनश्यन्ति भ्रातरः सप्तजन्मनि" तस्या इति शेषः। महाभारते "कार्त्तिके शुक्लपक्षस्य द्वितीयायां युधिष्ठिर!। यमो यमुनया पूर्वं भोजितः स्वगृहे स्वयम्॥ तस्यां निजगृहे पार्थ! न भोक्तव्यमतो बुधैः। यत्नेन भगिनी हस्ताद्भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनम्॥ दानानि च प्रदेयानि भगिनीभ्यो विशेषतः"। तथा "यमञ्च चित्रगुप्तञ्च यमदूतांश्च पूजयेत्। अर्घ्यश्चात्र प्रदातव्यो यमाय सहजद्वयैः॥ सहजद्वयैर्भगिनीभ्रातृभिः। अर्घ्यमन्त्रः। "एह्येहि मार्त्तण्डज! पाशहस्त! यमान्तकालोकधरामरेश!। भ्रातृद्वितीयाकृतदेवपूजां गृहाण चार्घ्यं भगव-

न्नमस्ते" ॥ प्रणाममन्त्रस्तु "धर्मराज ! नमस्तुभ्यं नमस्ते यमुनाग्रज !। पाहि मां किङ्करैः सार्द्धं सूर्य्यपुत्त्र ! नमोऽस्तु ते" ॥ यमुनाञ्च संपूज्य नमस्कुर्य्यात्। "यमस्वसर्नमस्तेऽस्तु यमुने ! लोकपूजिते !। वरदा भव मे नित्यं सूर्य्यपुत्त्रि ! नमोऽस्तु ते" ॥ अन्नं दत्वा पठेत्"भ्रातस्तवानुजाताहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभम्। प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेषतः"। ज्येष्ठाचेत्तदा अग्रजाताहमिति वदेत्। अत्र भोक्तव्यं पुष्टिवर्द्धनमिति विधिसमभिव्याहृतफलश्रुत्या भोजननियमस्य प्राधान्यात्तस्य मुख्यकालोऽष्टधा विभक्तदिनपञ्चमांशो ग्राह्यः। यथा दक्षः। "पञ्चमे च तथा भागे संविभागो यथार्हतः। पितृदेवमनुष्याणां कीटानाञ्चोपदिश्यते ॥ संविभागं ततः कृत्वा गृहस्थः शेषभुग् भवेत्। इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठञ्च सप्तमं नयेत्" ॥ संविभागो विभज्यान्न प्रतिपादनं देवोऽत्र वैश्वदेवकर्मसम्बन्धी पञ्चमांशालाभे तु। "न भुञ्जीतोद्धृतस्नेहं नातिसौहित्यमाचरेत्। नातिप्रगे नातिसायम्" ॥ इति मनूक्तापर्य्युदस्तसूर्य्योदयास्तेतरकालोऽपि ग्राह्यः। सौहित्यं तृप्तिः। अत्र भोजनस्य रागप्राप्तत्वेऽपि तत्कालस्य "मुनिभिर्द्दिरशनं प्रोक्तं विप्राणां मर्त्यवासिनां नित्यम्। अहनि च तथा तमस्विन्यां सार्द्धप्रहरयामान्तः"॥ इति कात्यायनीयेन नियमितत्वाद्भोजनकालस्य वैधत्वेन शास्त्रीयत्वात् न सामान्यशास्त्रप्राप्तग्रपजीविपर्य्युदासासङ्गतिः। अत्रानध्ययनं भ्रान्तानां प्रेतपक्षोत्तरद्वितीयायां तन्निषेधात् तथा च राजमार्त्तण्डे। "प्रेक्तो चैत्रा द्वितीयास्ताः प्रेतपक्षे गते तु या। या तु कोजागरे याते चैत्रावल्याः परेऽपि च ॥ चातुर्मास्ये समाप्ते च द्वितीया या भवेत्तिथिः। परास्त्वेतास्त्वनध्यायः पुराणैः परिकीर्त्तितः" ॥ ज्योतिषे। तथा "यमद्वितीयायां यात्रायां मरणं भवेत्" ॥

अथ तृतीया। सा च चतुर्थीयुता रम्भाव्रतेतरदैवकर्मसु ग्राह्या। "रम्भाख्यां वर्जयित्वा तु तृतीयां मुनिसत्तम !। अन्येषु सर्वकार्य्येषु गणयुक्ता प्रशस्यते" ॥ इति ब्रह्मवैवर्त्तात् गणोगणपतिस्तत्तिथिश्चतुर्थी ततश्च युग्मवाक्यं रम्भाव्रतमात्रपरं भविष्योत्तरे। "भद्रे ! कुरु प्रयत्नेन रम्भाख्यं व्रतमुत्तमम्।

ज्यैष्ठ-शुक्ल-तृतीयायां स्नाता नियमतत्परा:” ॥ रम्भया कृतमिति रम्भाव्रतं स्मृति: “वैशाखे मासि राजेन्द्र ! शुक्लपक्षे तृतीयिका। अक्षया सा तिथि: प्रोक्ता कृत्तिकारोहिणीयुता ॥ तस्यां दानादिकं पुण्यमक्षयं समुदाहृतम्” ॥ भविष्ये। “या शुक्ला कुरुशार्दूल ! वैशाखे मासि वै तिथि:। तृतीया साऽक्षया लोके गीर्वाणैरभिवन्दिता ॥ योऽस्यां ददाति करकान् वारिवाजसमन्वितान्। स याति पुरुषो वीर ! लोकान् वै हेममालिन:” ॥ करकान् कुम्भान् वाजमन्नं हेममालिन: सूर्य्यस्य। ब्रह्मपुराणे। “य: पश्यति तृतीयायां कृष्णं चन्दनरूषितम्। वैशाखस्य सिते पक्षे स यात्यच्युतमन्दिरम्” ॥ रूषितं चर्चितं स्कन्दपुराणम्। “वैशाखस्य सिते पक्षे तृतीयाऽक्षयसंज्ञिता। तत्र मां लेपयेद्गन्धलेपनैरतिशोभितम्” ॥ ब्रह्मपुराणम्। “वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां जनार्दन:। यवानुत्पादयामास युगञ्चारब्धवान् कृतम् ॥ ब्रह्मलोकात्त्रिपथगां पृथिव्यामवतारयत्। तस्यां कार्य्यो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्चयेत् ॥ यवान् दद्यात् द्विजातिभ्य: प्रयत: प्राशयेद्यवान्। पूजयेत् शङ्करं गङ्गां कैलासञ्च हिमालयम् ॥ भगीरथञ्च नृपतिं सागराणां सुखावहम्। स्नानं दानं तप: श्राद्धं जपहोमादिकञ्च यत् ॥ श्रद्धया क्रियते तत्र तदानन्त्याय कल्पते” ॥ अत्रानन्त्यश्रुते: पूर्ववचने नक्षत्रयोग: फलातिशयार्थ:।

अथ चतुर्थी। सा च पञ्चमीयुता ग्राह्या युग्मात् ‘एकादश्यष्टमी षष्ठी अमावास्या चतुर्थिका। उपोष्या: परसंयुक्ता: परा: पूर्वेण संयुता:’ इत्यग्निपुराणाच्च भविष्ये। “अमा वै सोमवारेण रविवारेण सप्तमी। चतुर्थी भौमवारेण अक्षयादपि चाक्षया”। यत्तु “चतुर्थीसंयुता कार्य्या तृतीया च चतुर्थिका। तृतीयया युता नैव पञ्चम्या कारयेत् क्वचित्” इति ब्रह्मवैवर्त्तवचनं पञ्चमीयुतानिषेधकं तद्विनायकव्रतपरमिति गुरुचरणा:। तृतीयायुतानिषेधकत्वे क्वचिदित्यनुपपत्ते: सर्व्वत्रैव पञ्चमीयुताया ग्रहणात्। सारस्वत्यादिप्रदोषमाह स्मृति: “त्रयोदश्याश्चतुर्थ्याश्च सप्तम्या द्वादशीतिथे:। प्रदोषेऽध्ययनं धीमान् न कुर्वीत यथाक्रमम्। सारस्वतो गाणपत: सौरश्च

वैष्णवस्तथा" ॥ प्रदोषशब्दोऽत्र प्रथमप्रहर इति हेमाद्रिः। रात्रिपर इति निर्णयामृतकृद् भोजदेवः "शुक्लपक्षे चतुर्थ्यान्तु सिंहे चन्द्रस्य दर्शनम्। मिथ्याभिशापं कुरुते न पश्येत्तत्र तं ततः" चतुर्थ्यां दर्शननिषेधात्तत्रोदितस्य चन्द्रस्य पञ्चम्यां दर्शने तु न दोषः। अतः। "पञ्चाननगते भानौ पक्षयोरुभयोरपि। चतुर्थ्यामुदितश्चन्द्रो नेक्षितव्यः कदाचन" ॥ चतुर्थ्यां नेक्षितव्य इति मुनिभिरुदित उक्त इत्यर्थः। अथवा चतुर्थ्यामित्यस्य प्रधानक्रियान्वयाभ्यर्हितत्वादीक्षितव्य इत्यनेनान्वयो न तु उदित इत्यनेन तथा च "अव्यक्तं प्रधानगामि" इति सूत्रे अव्यक्तस्य शब्दस्य प्रधानेन सह सम्बन्ध इति भट्टनारायणव्याख्यानम् इति उदितस्त्वर्द्धोदितव्यावृत्तिपरः सरूपाख्यानपरो वा। "ब्राह्मणी तु शुनादष्टा जम्बुकोष्ट्रेण वा गवा। उदितं सोमनक्षत्रं दृष्ट्वा सद्यः शुचिर्भवेत्" इति पराशरोक्तोदित इतिवत् नन्वेकपदस्य कथमनेकार्थतेति चेन्न यावन्तोऽर्थास्तावन्ति पदानीति तथा चोक्तम्। "यावतामेव धातूनां लिङ्गं रूढिगतं भवेत्। अर्थश्चैवाभिधेयस्तु तावद्भिर्गुणविग्रहः" ॥ लिङ्गं सामर्थ्यं रूढिगतं प्रसिद्धं न त्वप्रसिद्धं हनहिंसागत्योरित्यादौ गमनादिकम् अभिधेयो वाच्यः तावद्भिर्धातुभिर्गुणविग्रहो गुणैर्गणनाभिर्विग्रहो ग्रहणं यत्रार्थे स तथा एतेन धातुसमसंख्यार्थत्वं पदस्य ब्रह्मपुराणे सिंहार्काधिकारे "नारायणोऽभिशप्तस्तु निशाकरमरीचिषु। स्थितश्चतुर्थ्यामद्यापि मनुष्याय पतेच्च सः ॥ अतश्चतुर्थ्यां चन्द्रन्तु प्रमादाद्वीक्ष्य मानवः। पठेद्धात्रेयिकावाक्यं प्राङ्मुखो वाप्युदङ्मुखः" ॥ अभिशप्तः वरीवादविषयीभूतः सोऽभिशापः। धात्रेयिकावाक्य विष्णुपुराणे। 'सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः। सुकुमारक ! मा रोदीस्तव ह्येष स्यमन्तकः" ॥ अनेन मन्त्रेणाभिमन्त्रितं जलं पेयम् आचारात् स्यमन्तकोपाख्यानञ्च श्रोतव्यम्। माघे शुक्लचतुर्थ्यां गौरी पूज्या वक्ष्यमाणवचनात्।

अथ पञ्चमी। सा च चतुर्थीयुता ग्राह्या युग्मात् "पञ्चमी च प्रकर्त्तव्या चतुर्थीसहिता विभो' ! इति ब्रह्मपुराणाच्च। "अत्र पञ्चमी तु प्रकर्त्तव्या षष्ठ्यायुक्ता तु नारद" ! इति ब्रह्मवैवर्त्त-

वचनं तच्छुक्लापरं शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्येत्येकवाक्यत्वात् इति केचित्तच्चिन्त्यम् "चतुर्थीसंयुता कार्य्या पञ्चमी परया न तु। दैवे कर्म्मणि पैत्रे च शुक्लपक्षे तथासिते" इति कालमाधवीयधृतहारीतवचनात्। यद्यपि पैत्रे तन्निषेधो निरर्थकः युग्मवचनस्य दैवकृत्यमात्रपरत्वात् तथापि यथा आपराह्णिके पित्रे स्वतएव परविद्धा न ग्राह्या तथा दैवेऽपीति विवक्षया दैवपित्रयोः सहोपन्यासः"। ब्रह्मवैवर्त्तवचनन्तु स्कन्दोपवासविषयकमिति माधवाचार्य्यः। अत्र पञ्चम्यामुपवासः षष्ठ्यां स्कन्दोपासनाय षष्ठीसमेता कर्त्तव्या सप्तमी नाष्टमीयुता। पतङ्गोपासनायेह षष्ठ्यामाहुरुपोषणम्" ॥ इति भविष्यपुराणोक्तवत्। पतङ्गः सूर्य्यः। तथा च वशिष्ठः "कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रि चतुर्दशी। एताः पूर्वयुताः कार्य्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत्" ॥ वस्तुतस्तु पञ्चमी परया न त्विति वचनान्तरैकवाक्यतया षष्ठ्याऽयुतेति पाठः। स्कन्दषष्ठी वक्ष्यते देवीपुराणे। "सुप्ते जनार्दने कृष्णे पञ्चम्यां भवनाङ्गने। पूजयेन्मनसादेवीं स्नुहीविटपसंस्थिताम्। पद्मनाभे गते शय्यां देवैः सर्वैरनन्तरम्। पञ्चम्यामसिते पक्षे समुत्तिष्ठति पन्नगी" ॥ मनसादेवीं विषहरीं स्नुही सिज वृक्षः। देवैरिति सहार्थे तृतीया। "देवीं संपूज्य नत्वा च न सर्पभयमाप्नुयात्। पञ्चम्यां पूजयेन्नागाननन्ताद्यान्महोरगान्। क्षीरं सर्पिस्तु नैवेद्यं देयं सर्पविषापहम्"। मनसाध्यानं यथा पद्मपुराणम् "देवीमम्बामहीनां शशधरवदनां चारुकान्तिं वदान्याम्। हंसारूढामुदारामरुणितवसनां सर्वदां सर्वदैव। स्मेरास्यां मण्डिताङ्गीं कनकमणिगणैर्नागरत्नैरनेकैर्वन्देऽहं साष्टनागामुरुकुचयुगलां भोगिनीं कामरूपाम्। पुराणान्तरे। "अनन्तो वासुकिः पद्मो महापद्मोऽथ तक्षकः। कुलीरः कर्कटः शङ्खो ह्यष्टौ नागा प्रकीर्त्तिताः ॥ शेषः पद्मो महापद्मः कुलिकः शङ्खपालकः। वासुकिस्तक्षकश्चैव कालियो मणिभद्रकः ॥ ऐरावतो धृतराष्ट्रः कर्कोटकधनञ्जयौ"। गारुडेऽपि तत्रैव "अनन्तं वासुकिं शङ्खं पद्मं कम्बलमेव च। तथा कर्कोटकं नागं धृतराष्ट्रञ्च शङ्खकम् ॥ कालियं तक्षकञ्चापि पिङ्गलं मणिभद्रकम्। यजे-

त्तानसितान्नागान् दष्टमुक्तो दिवं व्रजेत्" ॥ अत्र च "योऽसौ चानन्तरूपेण ब्रह्माण्डं सचराचरम्। पुष्पवद्धारयेन्मूर्द्ध्नि तस्मै नित्यं नमो नमः" ॥ इत्यनेन प्रणवपूर्वेण मत्स्यपुराणोक्तेनानन्तं पूजयेत्। रत्नाकरे "पिचुमर्दस्य पत्राणि स्थापयेद्भवनोदरे। स्वयञ्चापि तदश्नीयात् ब्राह्मणांश्चापि भोजयेत्" ॥ पिचुमर्दस्य निम्बस्य भविष्योत्तरे माघशुक्लपक्षमधिकृत्य "चतुर्थी वरदा नाम तस्यां गौरी सुपूजिता। सौभाग्यमतुलं कुर्य्यात् पञ्चम्यां श्रीरपि श्रियम्" ॥ संवत्सरप्रदीपे "पञ्चम्यां पूजयेल्लक्ष्मीं पुष्पधूपान्नवारिभिः। मस्याधारं लेखनीञ्च पूजयेन्न लिखेत्ततः ॥ माघे मासि सिते पक्षे पञ्चमी या श्रियः प्रिया। तस्याः पूर्वाह्ण एवेह कार्य्यः सारस्वतोत्सवः" ॥ सारस्वत इत्युपादानात् श्रियः सरस्वत्याः तथा च व्याडिः। "लक्ष्मीसरस्वती धीत्रिवर्गसम्पद्विभूतिशोभासु। उपकरणवेशरचनाविधासु च श्रीरिति प्रथिता। तथा चोक्तं गां दद्यादित्यादौ नानाशब्दस्यापि प्रसिद्धार्थतैव व्यवहारः विपरीतार्थग्राहकवाक्यविशेषसत्त्वे तु अप्रसिद्धार्थत्वेन च व्यवह्रियते। सर्वदा नानार्थानां व्यवहारस्तु श्लेषकाव्यादाविति। "तरुणशकलमिन्दोर्बिभ्रती शुभ्रकान्तिः कुचभरनमिताङ्गी सन्निसन्नासिताब्जे। निजकरकमलोद्यल्लेखनी पुस्तकश्रीः सकलविभवसिद्ध्यै पातु वाग्देवता नः" ॥ इति शारदोक्तं ध्यायेत् पाद्यादिभिः पूजयित्वा "भद्रकाल्यै नमो नित्यं सरस्वत्यै नमो नमः। वेदवेदान्तवेदाङ्गविद्यास्थानेभ्य एव च स्वाहा" इति ब्रह्मपुराणीयेन त्रिः पूजयेत्। मत्स्यसूक्ते। "बन्धुजीवञ्च द्रोणञ्च सरस्वत्यै न दापयेत्"। सरस्वतीं संपूज्य "यथा न देवीं भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः। त्वां परित्यज्य सन्तिष्ठेत्तथा भव वरप्रदा ॥ वेदाः शास्त्राणि सर्वाणि नृत्यगीतादिकञ्च यत्। न विहीनं त्वया देवि ! तथा मे सन्तु सिद्धयः ॥ लक्ष्मीर्मेधाधरापुष्टिर्गौरीतुष्टिः प्रभाधृतिः। एताभिः पाहि तनुभिरष्टाभिर्मां सरस्वती" इति मत्स्यपुराणीयैः प्रार्थयेत्।

अथ षष्ठी। सा तु सप्तमीयुता ग्राह्या युग्मात् राजमार्त्तण्डे "जैष्ठे मासि सिते पक्षे षष्ठी चारण्यसंज्ञिता। व्यजनैककरा-

स्तस्या मटन्ति विपिने स्त्रियः ॥ तां विन्ध्यवासिनीं वन्दे षष्ठीमाराधयन्ति च । कन्दमूलफलाहारा लभन्ते सन्ततिं शुभाम् ॥ कन्दं सूरणादिमूलं तदितरत् भविष्ये "येयं मार्गशिरे मासि षष्ठी भरतसत्तम ! । पुण्या पापहरा धन्या शिवा शान्ता गुहप्रिया" ॥ देवीपुराणे चैत्रमधिकृत्य "षष्ठ्यां स्कन्दस्य कर्त्तव्या पूजा सर्वोपचारिका । इहैव सुखसौभाग्यमन्ते विष्णुपदं व्रजेत् " ॥ इयमेव स्कन्दषष्ठी पञ्चमी युतैवोपोष्या । "कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रि चतुर्दशी । एताः पूर्वयुताः कार्य्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत्" ॥ इति ब्रह्मवैवर्त्तवचनात् विष्णुधर्मोत्तरे "अष्टमीञ्च तथा षष्ठीं नवमीञ्च चतुर्दशीम् । शिरोऽभ्यङ्गं न कुर्वीत पर्वसन्धौ तथैव च" ॥

अथ सप्तमी । सा च षष्ठीयुता ग्राह्या युग्मात् पैठिनसिवचनाच्च यथा "पञ्चमी सप्तमी चैव दशमी च त्रयोदशी । प्रतिपन्नवमी चैव कर्त्तव्या सम्मुखी तिथिः" ॥ साम्मुख्यमुक्तं स्कान्दे "साम्मुख्यं नाम सायाह्नव्यापिनी दृश्यते यदा" । अतएव परदिने त्रिसन्ध्यकालाव्यापित्वे षष्ठीयुक्तपञ्चम्यामुपवासमाह भविष्यपुराणं "षष्ठीसमेता कर्त्तव्या सप्तमी नाष्टमीयुता । पतङ्गोपासनायेह षष्ठ्यामाहुरुपोषणम्" ॥ यथा उपोषणे तथा कर्मान्तरे तथा "षष्ठ्यायुता सप्तमी च कर्त्तव्या सर्वदा तिथिः । षष्ठी च सप्तमी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः" ॥ इति स्कन्दपुराणात् तथा "शुक्लपक्षस्य पञ्चम्यां सूर्य्यवारो यदा भवेत् । सप्तमी विजया नाम तत्र दत्तं महाफलम्" ॥ भविष्ये "शालितण्डुलप्रस्थस्य कुर्य्यादन्नं सुसंस्कृतम् । सूर्य्याय चरुकं दत्वा सप्तम्याञ्च विशेषतः ॥ यावन्तस्तण्डुलास्तस्मिन्नैवेद्यपरिसंख्यया । तावद्वर्षसहस्राणि सूर्य्यलोके महीयते" ॥ गोपथब्राह्मणं "द्वात्रिंशत् पलिकं प्रस्थमुक्तं स्वयमथर्वणा" । ज्योतिषे पलन्तु लौकिकैर्मानैः साष्टरत्तिद्विमाषकम् । तोलकत्रितयं ज्ञेयं ज्योतिर्ज्ञैः स्मृतिसम्मतम्" ॥ तेन चतुरत्तिकाधिकमाषपञ्चाधिकषडधिकशततोलकमिताः प्रस्थतण्डुला इति एवञ्चैतत् न्यूनाधिकयोः फलतारतम्यं बोध्यम् । एवं देवतान्तरेऽपि तत्तल्लोकमहितत्वफलेन कल्पयितुं युक्तम् अतएव शिवे-

ऽप्येवं वक्ष्यते। वराहपुराणे "अथापरं महाराज! व्रतमारोग्यसंज्ञितम्। कथयामि परं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम्॥ तस्यैव माघमासस्य सप्तम्यां समुपोषितम्। पूजयेद्भास्करं देवं विष्णुरूपं सनातनम्॥ आदित्य! भास्कर! रवे! भानो! सूर्य्य! दिवाकर!। प्रभाकरेति संपूज्यो देवः सर्वेश्वरो रविः॥ षष्ठ्याञ्चैककृताहारः सप्तम्यां समुपोषितः। अष्टम्याञ्चैव भुञ्जीत एष एव विधिः स्मृतः॥ अनेन वत्सरं पूर्णं विधिना योऽर्च्चयेद्रविम्। तस्यारोग्यं धनं धान्यमिह जन्मनि जायते॥ परत्र च शुभं स्थानं यद्गत्वा न निवर्त्तते"॥ सप्तम्यां समुपोषित इति आदिकर्म्मणि क्तः। तेन सप्तम्यां समुपवस्तुमारब्धवानित्यर्थः। ततश्च प्रातःसप्तम्यामेव उपवाससङ्कल्पः। रविश्च विष्णुरूपतया पूजाकाले ध्येयः अभिलापे तु तत्तिथावित्युक्त्वा आरभ्येति ऐहिकारोग्यधनधान्यपारलौकिकशुभस्थानलाभकामः। संवत्सरं यावदारोग्यव्रतमिति विशेषः। ततः प्रभृति सप्तम्यामुपवासं कुर्व्वन्। "आदित्य! भास्कर! रवे! भानो! सूर्य्य! दिवाकर! नमस्तुभ्यं" इति मन्त्रेण पूजयेत्। अत्र षष्ठ्यादिषु तत्तत्कर्म्मविधानात् षष्ठीसमेतेत्यस्य न विषयः कालिकापुराणे भक्तं प्रति सूर्य्यवाक्यम। "अदृष्ट्वा मां न भुञ्जीत विण्मूत्रं नैव दर्शयेत्"। तथा "मदर्च्चां घृतनिर्माल्यं शरीरे न तु धारयेत्'। अर्च्चा प्रतिमा।

अथ विधानसप्तमी कृत्यचिन्तामणौ "अर्काग्रं शुचिगोमयं सुमरिचं तोयं फलञ्चाश्नुते मूलं नक्तमुपोषणञ्च विधिवत् कृत्वैकभक्तं नरः। क्षीरं वायुशनं घृताशनमिति प्रोक्तान्यमूनि क्रमात्। कृत्वा द्वादशसप्तमीं दिनकृतः प्राप्नोत्यभीष्टं फलम्"॥ अत्राचार्काग्रादीतरभोजननिवृत्तिरवसीयते तपस्त्वात् तथा च मत्स्यपुराणं "तपोभिः प्राप्यतेऽभीष्टं नासाध्यं हि तपस्यतः। दुर्भगत्वं वृथा लोको वहते सति साधने"॥ तपसः क्लेशस्वभावत्वं तत्रैवोक्तम् "उमेति चपला पुत्रि न क्षमं तावकं वपुः। सोढुं क्लेशस्वभावस्य तपसः सौम्यदर्शने"॥ व्यक्तमुक्तं यथा "अर्कपत्राङ्कुरमात्रमन्तरीक्षगृहीतकं कपिलाविड्यवमात्रं मञ्जुलं मरीचं जलम्। कदलीफलमध्यन्तु कणामात्र-

मपक्वकम्। कुशमूलं यवमात्रं स्वच्छायाद्विगुणे क्षणे॥ भक्ष्यं मितौदनं नक्तं शुद्धोपवसनं तथा। एकभक्तं मयूराण्डप्रमाणं भोजनं मतम्॥ अर्द्धप्रसृतिमात्रन्तु कपिलादुग्धभक्षणम्। स्नात्वा संपूज्य मार्त्तण्डं प्राङ्मुखो वायुमाशयेत्॥ घृतं स्वल्पं पौषमासे माघादब्दं समाचरेत्। ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या गुड़क्षीरनिरामिषैः॥ विप्राय दक्षिणा देया विभवस्यानुरूपतः। अष्टम्यां पारणं कुर्य्यात् कट्वम्लरहितेन च॥ मुद्गमाषतिलादीनि घृतञ्चैव विवर्जयेत्। एकसिद्धं भक्ष्यमुक्तमर्कतन्त्रानुसारतः॥ एतद्व्रतस्य माघादिमासविशेषविहितकर्म्मत्वेन मलमासेतरकर्त्तव्यमाह। वशिष्ठलिङ्गपुराणम्। "प्रारब्धेतु व्रते पश्चात् सम्प्राप्ते त्वधिमासके। पूर्वमानेन तं त्यक्त्वा कार्य्यं द्वादशमासिकम्"॥ पूर्वमानेन मलिम्लुच शून्यवत्सरमानेन तं मलमासं द्वादशमासिकं द्वादशमासेषु एव कार्य्यं न मलमास इत्यर्थः यत्तु "मासे मलिम्लुचेऽप्येवं यजेद्देवीं सशङ्कराम्। किन्तु नोद्यापनं कार्य्यमित्याह भगवान् शिवः"॥ इति विष्णुरहस्यवचनं तन्मासविशेषानङ्कितमासमात्रकर्त्तव्यामावास्यादिव्रतकर्त्तव्यता परम् उद्यापनं प्रतिष्ठा एवमारम्भोऽपि निषिद्धः गार्ग्यः। "अस्तं गते गुरौ शुक्रे वाले वृद्धे मलिम्लुचे। उपायनमुपारम्भं व्रतानां नैव कारयेत्"॥ उपायनं प्रतिष्ठा उपारम्भमारम्भम् एतच्च कालाशुद्धिमात्रपरं तत्तन्मात्रविधिकल्पने गौरवात् भविष्ये "भाद्रे मासि सिते पक्षे सप्तम्यां निययेन या। स्नात्वा शिवं लेखयित्वा मण्डले च सहाम्बिकम्। पूजयेच्च तदा तस्यां दुष्प्रापं नैव विद्यते"॥ इदं कुक्कुटीव्रतत्वेन ख्यातं भविष्ये "सूर्य्यग्रहणतुल्या हि शुक्लमाघस्य सप्तमी। अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम्॥ माघे मासि सिते पक्षे सप्तमी कोटिभास्करा। दद्यात् स्नानार्घ्यदानाभ्यामायुरारोग्यसम्पदः॥ अरुणोदयवेलायां शुक्ला माघस्य सप्तमी। गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्य्यग्रहशतैः समा"॥ कोटिभास्करा कोटिसप्तमीतुल्या सूर्य्यग्रहणफलं स्नानजं "सन्निहिते बुद्धिरन्तरङ्गा" इति न्यायात्। तेन बहुशतसूर्य्यग्रहणकालीनगङ्गास्नानजन्यफलसमफलप्राप्तिः फलमत्र ज्ञेयम् अत्र बहुतर-

शतसूर्य्यग्रहाणां प्रत्येकाधिकरणतासंसर्गेणान्वयात् कालानां स्नानानां तत्फलानामपि बहुशतत्वं लभ्यते अतो नाप्रसिद्धिः पूर्णसप्तम्यां पूर्वापरयोर्यत्रारुणोदयकाले सप्तमी तत्र पूर्वदिने तत्काले स्नानम्। "चतस्रो घटिका प्रातररुणोदय उच्यते। यतीनां स्नानकालोऽयं गङ्गाम्भः सदृशः स्मृतः॥ त्रियामां रजनीं प्राहुस्त्यक्त्वाद्यन्तचतुष्टयम्। नाडीनां तदुभे सन्ध्ये दिवसाद्यन्तसंज्ञिते"॥ इति कालमाधवीयधृत ब्रह्मवैवर्त्तीयेन पूर्वस्य तत्कालस्य पूर्णतिथिसम्बन्धि दिनकर्त्तव्यकर्माङ्गत्वेन इतरस्य चेतराङ्गत्वेनाभिधानात् अतएव दक्षेण तत्कालमारभ्याह्निककृत्यमभिहितम् अत्रारुणोदयकाले मुहूर्त्तान्यूनतिथिलाभ एव स्नानं "व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैका यदा भवेत्। उदये सा तिथिर्ग्राह्या श्राद्धादावस्तगामिनी" इति विष्णुधर्मोत्तरात् अत्र घटिका मुहूर्त्तं श्राद्धयोग्यकालानुरोधादिति वक्ष्यते ब्रह्मवैवर्त्तवचने घटिका दण्डरूपा परवचने नाडीनामाद्यन्तचतुष्टयमित्येकवाक्यत्वात् ये तु सूर्य्योदयात् प्रागपि प्रातःस्नानविधानात् तत्रैव माघसप्तम्याख्यगुणफलविधिलाघवादित्याहुः तच्चिन्त्यं "प्रकरणान्यत्वे प्रयोजनान्यत्वम्" इति जैमिनिसूत्रेण प्रकरणभेदे गुणविध्यसिद्धेः अतएव कल्पतरुरत्नाकरयोः। "य इच्छेद्विपुलान् भोगान् चन्द्रसूर्य्यग्रहोपमान्। प्रातःस्नायी भवेन्नित्यं द्वौ मासौ माघफाल्गुनौ" इति विष्णुस्मृतौ नित्यस्नानप्रकरणात् प्रकरणान्तराम्नानात् प्रकरणान्तराधिकरणन्यायेन काम्यस्नानान्तरमिदमप्युक्तं न तु गुणफलविधिः किन्तु काम्यकरणे प्रसङ्गान्नित्यसिद्धिरिति अत्र माघमासनिमित्तकमाघसप्तमीनिमित्तककाम्यस्नानयोः प्रातर्विधानात् नैमित्तकत्वेन प्रायश्चित्तवत् सकृदनुष्ठानम्। "प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत् क्रियते पुनः। तदङ्गस्याक्रियायान्तु नावृत्तिर्न च तत्क्रिया"॥ इति कात्यायनवचनात् "न स्नानमाचरेद् भुक्त्वा नातुरो न महानिशि। न वासोभिः सहाजस्रं नाविज्ञाते जलाशये"॥ इति मनुवचनैकदाजस्रस्नाननिषेधाच्च "धर्म्मविन्नाचरेत् स्नानमाह्निकञ्च पुनः पुनः"। इति मनुवचनाच्च अतएव नान्दीमुखप्रकरणशेषे प्रधानानामपि काम्यानां

तत्तद्देशकालविहितानां तन्त्रेणैव सिद्धिरिति श्राद्धचिन्तामणिः निष्कामविष्णुप्रीतिकामयोः सुतरां सकृदनुष्ठानं "गुणतारतम्यात् फलतारतम्यम्" इति न्यायेन फलं बोध्यम्। तत्तु इक्षुक्षीरगुडादिमाधुर्य्यभेदवन्निर्देष्टुमशक्यं "पक्षान्तरेऽपि कन्यास्थे रवौ श्राद्धं प्रशस्यते। कन्यागते पञ्चमे तु विशेषेणैव कारयेत्"॥ इति हेमाद्रिधृतादित्यपुराणोक्तवत् एतद्वचनप्रागङ्गं कार्त्तिकमलमासाब्दविषयं "देशकालाश्रमक्षेत्रदातृद्रव्यमनोगुणाः। सुकृतस्यापि दानस्य फलातिशयहेतवः"॥ इति ब्रह्मपुराणोक्तवच्च तीर्थभेदे त्वेकदापि नानास्नानम्। "विषुवद्दिवसे प्राप्ते पञ्चतीर्थीविधानतः" इति ब्रह्मपुराणादिवचनात् तीर्थभेदे तन्त्रप्रसङ्गयोरसम्भवाच्च। अतएव गङ्गावाक्यावलीतीर्थचिन्तामण्योः। यत्तु प्रयागे त्र्यहस्नानक्रोड़ीकृतेऽपि माघसप्तमीस्नानादावसाधारणसङ्कल्पेन पुनस्तथैव प्रातःस्नानाचरणं तदयुक्तं तदा सकृत् स्नानस्यैव विहितत्वात्। अन्यथा तत्त्र्यहफलकामनायां तदानन्त्यापत्तेरित्युक्तम्। स्नाने परिपाटीमाह कृत्यकल्पलतायां विष्णुः "सप्त बदरपत्राणि सप्तार्कपत्राणि च शिरसि निधाय" "यद्यत् जन्मकृतं पापं मया सप्तसु जन्मसु। तन्मे रोगञ्च शोकञ्च माकरी हन्तु सप्तमी"॥ इत्युच्चार्य्य स्नायादिति शेषः। रोकं छिद्रं तिथिकृत्यस्य पौर्णमास्यन्तमासाङ्गकत्वान्माकरीति पदं मकरार्कारब्धचान्द्रमासीय तिथिकृत्यपरम्। "तिथिकृत्ये च कृष्णादिं व्रते शुक्लादिमेव च। विवाहादौ च सौरादिं मासं कृत्ये विनिर्दिशेत्"॥ इति ब्रह्मपुराणान्मन्वन्तरादित्वेन तथा युक्तत्वाच्च यथा मत्स्यपुराणे। "यस्मान्मन्वन्तरादौ च रथमापुर्दिवाकराः। माघमासस्य सप्तम्यां तस्मात् सा रथसप्तमी। अरुणोदयवेलायां तस्यां स्नानं महाफलम्"॥ अतएव नारसिंहे रथाख्यायामित्युक्तं यथा "महानवम्यां द्वादश्यां भरण्यामपि चैव हि। तथाक्षयतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद् बुधः। माघमासे तु सप्तम्यां रथाख्यायाञ्च वर्जयेत्"॥ द्वादश्यां शयनोत्थानद्वादश्यां भरण्यां शक्रध्वजपातभरण्यामिति कल्पतरुः अत्र महानवम्यादिसाहचर्य्याच्च न्तत्वं प्रतीयते अतएव चतुर्दशमन्वन्तरादिगणने क्वापि

न राश्युल्लेखः। यथा भविष्यमत्स्ययोः। "अश्वयुक् शुक्लनवमी द्वादशी कार्त्तिकी तथा। तृतीया चैत्रमासस्य तथा भाद्रपदस्य च॥ फाल्गुनस्याप्यमावस्या पौषस्यैकादशी तथा। आषाढ़स्यापि दशमी तथा माघस्य सप्तमी॥ श्रावणस्याष्टमी कृष्णा तथाषाढ़स्य पूर्णिमा। कार्त्तिकी फाल्गुनी चैत्री ज्यैष्ठी पञ्चदशी सिता। मन्वन्तरादयस्त्वेता दत्तस्याक्षयकारिकाः"॥ अत्र अमावस्याष्टमीव्यतिरिक्ताः शुक्लाः पुनः पुनस्तथा पदोपादानात्। उपक्रमोपसंहारयोः शुक्लत्वकीर्त्तनाच्च अत्र कामधेनौ तृतीया चैव माघस्येति कल्पतरौ तु तृतीया चैत्रमासस्येति लिखितम् अत्र पाठद्वैधे श्रीपतिरत्नमालायाम्। अश्वयुजि शुक्लनवमीद्वादश्यूर्जे मधौ तृतीया च इति पाठाच्चैत्रतृतीयैव ग्राह्या। श्रीदत्तोऽप्येवम्। माघसप्तम्याश्चान्द्रत्वं सौरागमेऽपि "अर्कपत्रैः सवदरैर्दूर्वाक्षत सचन्दनैः। अष्टाङ्गविधिना चार्घ्यं दद्यादादित्यतुष्टये॥ माघेऽथ फाल्गुने वापि भवेद्वै माघसप्तमी। माकरीति च यत् प्रोक्तं तत्प्रायो वृत्तिदर्शनात्॥ अष्टाङ्गविधिना योऽर्घ्यं भानोर्मूर्द्ध्नि निवेदयेत्। ताम्रपात्रार्घ्यदानेन पुण्यं दशगुणं स्मृतम्"॥ इति विष्णुपुराणीयेन आदित्यपुराणे "ऋक्षराशिविशेषेण यत् कर्म विहितन्नरैः। दैवं वाप्यथवा पैत्रं तदन्यत्रापि दृश्यते" अर्घ्यमन्त्रस्तु "जननी सर्वभूतानां सप्तमी सप्तसप्तिके। सप्तव्याहृतिके देवि! नमस्ते रविमण्डले"॥ प्रणाममन्त्रस्तु "सप्त सप्तिवहप्रीत सप्तलोकप्रदीपन। सप्तम्यां हि नमस्तुभ्यं नमोऽनन्ताय वेधसे"॥ सप्तिरश्वः।

अथाष्टमी। सा च शुक्ला नवमीयुता ग्राह्या युग्मात्। कृष्णा च सप्तमीयुता यथा निगमः "कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी। पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या परविद्धा न कुत्रचित्॥ उपवासादि कार्य्येषु एष धर्मः सनातनः"। भविष्यपुराणे। "चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः। योऽब्दमेकं न भुञ्जीत शिवार्चनपरो नरः॥ यत् पुण्यमक्षयं प्रोक्तं सततं सत्रयाजिनाम्। तत् पुण्यं सकलं तस्य शिवलोकञ्च गच्छति"॥ ततः सततसत्रयाज्यक्षयपुण्यसमपुण्यप्राप्तिः शिवलोकगतिश्च

फलम्। फाल्गुनशुक्लाष्टमी चतुर्दश्योरारभ्य वर्षं यावत् प्रत्यष्टमीं प्रति चतुर्दश्युपवासव्रतम्। कालिकापुराणे। "यैषा ललितकान्त्याख्या देवी मङ्गलचण्डिका। वरदाभयहस्ता च द्विभुजा गौरदेहिका॥ रक्तपद्मासनस्था च मुकुटकुण्डलमण्डिता। रक्तकौषेयवस्त्रा तु स्मितवक्त्रा शुभानना॥ नवयौवनसम्पन्ना चार्वङ्गी ललितप्रभा। उमया भाषितं मन्त्रं यत्पूर्वं त्वेकमक्षरम्॥ मन्त्रमस्यास्तु तज्ज्ञेयं तेन देवीं प्रपूजयेत्"। एकमक्षरं शक्तिबीजरूपम् "तथाष्टम्यां नवम्याञ्च पूजा कार्य्या विवृद्धये। पटेषु प्रतिमायां वा घटे मङ्गलचण्डिकाम्॥ यः पूजयेद्भौमवारे शुभैर्दूर्वाक्षतैः शिवाम्। सततं साधकः सोऽपि काममिष्टमवाप्नुयात्"॥ ज्योतिषे। "शनैश्चरस्य वारेण वारेणाङ्गारकस्य च। कृष्णाष्टमी चतुर्दश्यौ पुण्यात् पुण्यतरे स्मृते"॥ तथा "सोमवारेऽप्यमावास्या आदित्या हेतु सप्तमी। चतुर्थ्यङ्गारवारे तु अष्टमी च बृहस्पतौ॥ अत्र यत् क्रियते पापमथवा धर्मसञ्चयः। षष्टिजन्मसहस्राणि प्रतिजन्म तदक्षयम्"॥ प्रणम्य जगतामीशं वसुदेवसुतं हरिम्। तज्जन्मतिथितत्त्वानि वक्ति श्रीरघुनन्दनः॥

अथ जन्माष्टमी। ब्रह्मपुराणे। "अथ भाद्रपदे मासि कृष्णाष्टम्यां कलौ युगे। अष्टाविंशतिमे जातः कृष्णोऽसौ देवकीसुतः। अष्टाविंशतिमे सावर्णिकमन्वन्तरप्रथमयुगापेक्षयेति शेषः॥ विष्णुपुराणे महामायां प्रति भगवद्वाक्यम्। "प्रावृट्काले च नभसि कृष्णाष्टम्यामहं निशि। उत्पत्स्यामि नवम्याञ्च प्रसूतिं त्वमवाप्स्यसि"॥ इत्यादिषु भाद्रपदनभःपदयोर्नविरुद्धार्थता तत्कालस्यैकश्रुतिमूलतया गौणचान्द्रेण भाद्रता मुख्यचान्द्रेण श्रावणतेति। अभिलापस्तु गौणचान्द्रेणैव तदर्थमेव भाद्रपदप्रयोगात् अन्यथा तदभिधानमनर्थकं स्यात् तिथिकृत्ये च कृष्णादिमिति वचतात्। यत्तु वशिष्ठसंहितायाम्। एकस्मिन् वचने श्रावणनभस्योपादानं तत् सौराभिप्रायेण। यथा "श्रावणे वा नभस्ये वा रोहिणी सहिताष्टमी। यदा कृष्णे नरैर्लब्धा सा जयन्तीति कीर्त्तिता"॥ कृष्णे कृष्णपक्षे अत्र वक्ष्यमाणवचनान्मध्यरात्रप्राप्तावेव जयन्तीत्वं न रोहिण्य-

ष्टम्योर्योगमात्रे यथा "सिंहार्के रोहिणीयुक्ता नराः कृष्णाष्टमी यदि। रात्र्यर्द्धपूर्व्वापरगा जयन्ती कलयापि च" ॥ इति वराहसंहिता। एतेन द्वादशमासेषु कृष्णाष्टमीष्वपि रोहिणीयोगपुरस्कारेण जयन्तीव्रतमिति द्वैतनिर्णयोक्तं निरस्तं उक्तवचनविरोधात्। "सूर्य्याचन्द्रमसोर्यः परः सन्निकर्षः सामावास्या"। इति गोभिलसूत्रेण ज्योतिःशास्त्रगणनया च चन्द्रसूर्य्ययोरमावस्यायामेकराश्यवस्थाननियमेन द्वादशसु मासेष्वष्टम्यां रोहिणीयोगस्य सर्व्वथैवा सम्भवाच्च। भविष्योत्तरे। "श्रावणे वहुले पक्षे कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्। न करोति नरो यस्तु स भवेत् क्रूरराक्षसः॥ वर्षे वर्षे तु या नारी कृष्णजन्माष्टमीव्रतम्। न करोति महाक्रूरा व्याली भवति कानने"॥ भविष्ये। "सप्तमीसार्द्धयामश्चेद्रोहिणीं वा न संस्पृशेत्। व्रतं संकल्पयेत्तत्र न च रात्रौ कदाचन"॥ तत्र सप्तम्यां तद्दिने तस्या एव प्रातर्लाभात्तदानीं संकल्पमाह वृहस्पतिः। "प्रातःसन्ध्यां ततः कृत्वा संकल्पं वुध आचरेत्। प्रातःसंकल्पयेद्विद्वानुपवासव्रतादिकम्"॥ ब्रह्मवैवर्त्तः। "मन्वादिदिवसे प्राप्ते यत्फलं स्नानपूजनैः। फलं भाद्रपदेऽष्टम्यां भवेत् कोटिगुणं द्विज !"॥ तथा "अस्यां तिथौ वारिमात्रं यः पितृणां प्रयच्छति। गयाश्राद्धं कृतं तेन शताब्दं नात्र संशयः"॥ पूजा च मध्यरात्रे। "कृष्णाष्टम्यान्तु रोहिण्यामर्द्धरात्रेऽर्च्चनं हरेः"। इति गारुड़ाद्वक्ष्यमाणवचनजाताच्च। अन्यदाप्युक्ता भविष्ये। "त्रिकाले पूजयेद्देवं दिवारात्रौ विशेषतः। अर्द्धरात्रावपि तथा पुष्पैर्नानाविधैरपि"॥ अत्र भविष्यपुराणभविष्योत्तराभ्यां संक्षिप्य पूजाविधिरभिधीयते। "पार्थ! तद्दिवसे प्राप्ते दन्तधावनपूर्व्वकम्। उपवासस्य नियमं गृह्णीयाद्भक्तिभावतः॥ वासुदेवं समुद्दिश्य सर्व्वपापप्रशान्तये। उपवासं करिष्यामि कृष्णाष्टम्यां नभस्यहम्॥ अद्य कृष्णाष्टमीं देवीं नभश्चन्द्रसरोहिणीम्। अर्च्चयित्वोपवासेन भोक्ष्येऽहमपरेऽहनि॥ एनसो मोक्षकामोऽस्मि यद्गोविन्द ! त्रियोनिजम्। तन्मे मुञ्चतु मां त्राहि पतितं शोकसागरे॥ आजन्ममरणं यावद्यन्मया दुष्कृतं कृतम्। तत् प्रणाशय गोविन्द ! प्रसीद पुरुषोत्तम !"॥ एतन्मन्त्रचतुष्टयं

संवत्सरप्रदीपधृतं तथा “एकेनैवोपवासेन कृतेन कुरुनन्दन !। सप्तजन्म कृतात् पापान्मुच्यते नात्र संशयः”॥ गृहमुपक्रम्य तथा “तन्मध्ये प्रतिमा स्थाप्या काञ्चनादिविनिर्मिता। प्रतप्तकाञ्चनाभासा देवकी सुतपस्विनी॥ माञ्चापि बालकं सुप्तं प्रसूता नीरदच्छविम्। वसुदेवोऽपि तत्रैव खड्गचर्मधरः स्थितः॥ यशोदा चापि तत्रैव प्रसूतवरकन्यका। बलभद्रस्तथा नन्दो दक्षो गर्गश्चतुर्मुखः॥ एवं प्रपूजयेद्भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैः फलैः”। तथा “स्थण्डिले स्थापयेद्देवीं सचन्द्रां रोहिणीं तथा। देवकीं वसुदेवञ्च यशोदां नन्दमेव च॥ चण्डिकां बलदेवं संपूज्य पापैः प्रमुच्यते। अर्द्धरात्रे वसोर्धारां पातयेद्गुडसर्पिषा। ततो वर्द्धापनं षष्ठीं नामादेः करणं मम। कर्त्तव्यं तत्क्षणाद्रात्रौ प्रभाते नवमीदिने। यथा मम तथा कार्य्यो भगवत्या महोत्सवः॥ ब्राह्मणान् भोजयेद्भक्त्या तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्। सुवर्णं काञ्चनं गाश्च वासांसि कुसुमानि च॥ यद्यदिष्टतमं लोके कृष्णो मे प्रीयतामिति। यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत्॥ भौमस्य ब्राह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः। सुब्रह्म वासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च॥ शान्तिरस्तु शिवञ्चास्तु इत्युक्त्वा तान् विसर्जयेत्। एवं यः कुरुते देव्या देवक्याः सुमहोत्सवम्॥ वर्षे वर्षे भगवतो मद्भक्तो धर्मनन्दन !॥ नरो वा यदि वा नारी यथोक्तं फलमाप्नुयात्। पुत्रसन्तानमारोग्यं धनधान्यर्द्धि मद्गृहम्”॥ तथा “सम्पर्केणापि यः कुर्य्यात् कश्चिज्जन्माष्टमीव्रतम्। विष्णुलोकमवाप्नोति सोऽपि नास्त्यत्र संशयः॥ जयन्त्यामुपवासश्च महापातकनाशकः। सर्वैः कार्य्यो महाभक्त्या पूजनीयश्च केशवः॥ तुष्ट्यर्थं देवकीसूनोर्जयन्तीसंज्ञकं व्रतम्। कर्त्तव्यं चित्तमानेन भक्त्या भक्तजनैरिह॥ अकुर्वन् निरयं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश”। वर्द्धापनं नाड़ीच्छेदनम्। सुवर्णमत्राशीतिरक्तिकापरिमितं हेम काञ्चनं ततो न्यूनं काञ्चनमित्यत्र मेदिनीमिति क्वचित् पाठः। भौमस्य पृथिवीसम्बन्धिनः कृष्णो मे प्रीयता मित्युक्त्वा दद्यादित्यनेनान्वयः। तान् ब्राह्मणान् भक्तजनैरिति तैः सहेत्यर्थः अतएव विष्णुपुराणम्। “सदृत्त सन्निकर्षो हि क्षणार्द्ध-

मपि शस्यते"। अत्र पूजोपवासयोः प्रधानत्वेनाकाङ्क्षाविरहादनन्वये अन्यतरस्य गुणत्वमवश्यं वाच्यम् एवञ्च पूजैवाङ्गम् उपवासस्तु प्रधानं उपवासस्य नियममित्युपक्रमे श्रवणात्तत्रैव विध्यन्वयात्। अङ्गस्य प्रधानविधिविधेयत्वेन पूजाया विध्यन्तरानपेक्षणात् अतएवोपसंहारेऽपि जयन्त्यामित्यादिना उपवासमभिधाय पूजनीयश्चेत्यभिहितम्। न चैवं पूजने फलानुपपत्तिः "यस्य पर्णमयीजुहूर्भवति न स पापश्लोकं शृणोति" इत्यादौ गुणेऽपि फलश्रवणात्। अतएव ब्रह्मवैवर्त्ते: नृणां विना व्रतेनापि भक्तानां वित्तवर्जिनाम्। कृते नैवोपवासेन प्रीतो भवति माधवः॥ भक्त्या विनोपचारेण रात्रौ जागरणेन च। फलं यच्छति दैत्यारिर्जयन्तीव्रतसम्भवम्॥ वित्तशाठ्यमकुर्वाणः सम्यक्फलमवाप्नुयात्। कुर्वाणो वित्तशाठ्यन्तु लभतेऽसदृशं फलम्"॥ विना व्रतेन पूजाद्यङ्गं विना। एवञ्च करणे फलश्रुतेरकरणे प्रागुक्त श्रावणे बहुले पक्षे इत्यादिना दोषश्रुतेश्चास्य काम्यत्वं नित्यत्वञ्च। ननु काम्यत्वमनित्यत्वं असति कामे परित्यक्तुं शक्यत्वात् तथा सत्ये कस्य कर्मणो नित्यत्वकाम्यत्वाभ्यां द्वैरूप्याङ्गीकारे नित्यानित्यसंयोगविरोधः मैवं संयोगपृथक्त्वन्यायात्। स च न्यायो यथा खादिरे पशुं बध्नाति खादिरं वीर्य्यकामस्य यूपं कुर्वीतेति श्रूयते। अत्र संशयः किं काम्यस्यैव खादिरता नित्येऽपि स्यात् उत नेति अत्र फलार्थत्वेनानित्यतया नित्यप्रयोगाङ्गता न युक्ता यत्तु नित्येऽपि खादिरत्वश्रवणं तत्काम्यस्यैव पशुबन्धनाय यूपाश्रयज्ञापनार्थम् अतो न नित्ये खादिरतेति प्राप्ते राद्धान्ताय चतुर्थाध्याय सूत्रम् एकस्य च उभयत्वे संयोगपृथक्त्वमिति अत्र संयोगः सम्बन्धमात्रम्। एकस्य खादिरस्य क्रत्वर्थपुरुषार्थत्वरूपोभयात्मकत्वे वाक्यद्वये क्रतुशेषत्व फलशेषत्व लक्षणसंयोगभेदावगमात् न नित्यानित्यसंयोगविरोधः। न च आश्रयज्ञापनार्थं नित्यवाक्यं सन्निधानादेवाश्रय लाभादत उभयार्था खादिरतेति। "एवं दध्ना जुहोति दध्नेन्द्रिय कामस्य" इत्यादावुभयार्थतैव दधित्वस्य द्वेधाश्रवणात्। गरुड़भविष्योत्तरवचनानि राजमार्त्तण्ड कृत्यचिन्तामणि धृतानि

यथा "तमेवोपवसेत् कालं रात्रौ कुर्य्याच्च जागरम्। एकाग्रेणैव भावेन विष्णोर्नामानुकीर्त्तयन्॥ अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम्। वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम्॥ वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम्। दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुड़ध्वजम्॥ गोविन्दमच्युतं कृष्णमनन्तमपराजितम्। अधोक्षजं जगन्नाथं सर्गस्थित्यन्तकारिणम्॥ अनादि निधनं विष्णुं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम्। नारायणं चतुर्वाहुं शङ्खचक्रगदाधरम्॥ पीताम्बरधरं नित्यं वनमालाविभूषितम्। श्रीवत्साङ्कं जगत्सेतुं श्रीकृष्णं श्रीधरं हरिम्॥ प्रपद्येऽहं सदा देवं सर्वकामप्रसिद्धये। एवं पठित्वा वरदं कृष्णं वन्देत भक्तितः॥ प्रणमामि सदा देवं वासुदेवं जगत्पतिम्। नामान्येतानि संकीर्त्त्य गत्यर्थं प्रार्थयेन्नरः॥ त्राहि मां सर्वलोकेश! हरे! संसारसागरात्। त्राहि मां सर्वपापघ्न! दुःखशोकार्णवात् प्रभो!॥ सर्वलोकेश्वर! त्राहि पतितं मां भवार्णवे। देवकीनन्दन! श्रीश! हरे! संसारसागरात्॥ त्राहि मां सर्वदुःखघ्न! रोगशोकार्णवात् हरे!। दुर्गतां स्त्रायसे विष्णो! ये स्मरन्ति सकृत् सकृत्॥ सोऽहं देवातिदुर्वृत्तस्त्राहि मां शोकसागरात्। पुष्कराक्ष! निमग्नोऽहं मायाविज्ञानसागरे॥ त्राहि मां देवदेवेश! त्वत्तो नान्योऽस्ति रक्षिता"। ततश्चोपवास पूर्वदिने नियमं विधाय तद्दिने प्रातःस्नानादिकं विधाय "सूर्य्यः सोमोयमःकालःसन्ध्ये भूतान्यहःक्षपाः। पवनो दिक्पतिर्भूमिराकाशं खचराऽमराः॥ ब्राह्मं शासनमास्थाय कल्पध्वमिह सन्निधिम्" इति पठित्वा "तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्"॥ इति मन्त्रेण नारायणं संस्मृत्य तत्सदित्युच्चार्य्य उदङ्मुखो दर्भत्रयफलपुष्पतिल जलादिपूर्णं यथा लाभोपपन्नं वा पात्रं गृहीत्वा श्रीकृष्णजन्माष्टमीव्रतम् अद्येत्यादिना संकल्पयेत् यद्युपवासदिने प्रातःसप्तमी तदा सप्तम्यां तिथावारभ्येति वक्तव्यं "धर्माय धर्मेश्वराय धर्मपतये धर्मसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः"। इत्युच्चार्य्य प्रागुक्तवासुदेवं समुद्दिश्येति मन्त्रचतुष्टयं पठेत्। अर्द्धरात्रे तु प्रणवादि नमोऽन्तैस्तत्तन्नामभिर्वासुदेव देवकी वसुदेव यशोदानन्द

रोहिणीचण्डिका बलदेवान् पूजयेत्। दक्षगर्गचतुर्मुखानपि तथा संवत्सर प्रदीपे भविष्योत्तरीयम्। बलभद्रस्तथा नन्दो दक्षोगर्गश्चतुर्मुखः। पूजनीयस्तथा भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतैर्जलै”॥ ततश्च “माश्चापि बालकं सुप्तं पर्य्यङ्के स्तनपायिनम्। श्रीवत्सवक्षःपूर्णाङ्गं नीलोत्पलदलच्छविम्”॥ इति भविष्योत्तरीयध्यानं कृत्वा गरुड़पुराणोक्तैर्मन्त्रैः विशेषे इतरत्र प्रणवादि नमोऽन्तेन श्रीकृष्णनाम्ना पूजनम्। अर्घ्ये तु। “यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः”। इति स्नाने तु “योगाय योगेश्वराय योगपतये योगसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः” इति एवं नैवेद्ये एवं विश्वायेत्यादि घृततिलाभ्यां होमे धर्मायेत्यादि स्वाहान्तेन शयने विश्वायेत्यादि ततो देवक्यादि पूजा कार्य्या “पादावमुञ्चयन्तौ श्रीर्देवक्याश्चरणान्तिके। निषण्णा पङ्कजे पूज्या नमो देव्यै श्रियै” इति संवत्सर प्रदीपधृतवचनात् श्रीपूजापि ततो गुड़घृतैर्वसोर्धारां नाड़ीच्छेदनं षष्ठीपूजनं नामकरणादिकञ्च कुर्य्यात्। “पूजयेयुर्द्विजाः सर्वे स्त्रीशूद्राणाममन्त्रकम्। चन्द्रोदये शशाङ्काय दद्यादर्घ्यं हरिं स्मरन्”॥ तद्विधिश्च “शङ्खे तोयं समादाय सपुष्पकुशचन्दनम्। जानुभ्यां धरणीं गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत्”॥ अर्घ्यमन्त्रः “क्षीरोदार्णवसंभूत! अत्रिनेत्रसमुद्भव!। गृहाणार्घ्यं शशाङ्केदं रोहिण्या सहितो मम॥ सोमाय सोमेश्वराय सोमपतये सोमसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः”। प्रणाममन्त्रो यथा “ज्योत्स्नायाः पतये तुभ्यं जोतिषां पतये नमः। नमस्ते रोहिणीकान्त! सुधावास! नमोऽस्तु ते॥ नभोमण्डलदीपाय शिरोरत्नाय धूर्जटेः। कलाभिर्वर्द्धमानाय नमश्चन्द्राय चारवे”॥ ततश्चानघं वामनमित्यादिना “प्रणमामि सदा देवं वासुदेवं जगत्पतिम्” इत्यन्तेन नामकीर्त्तन प्रणामौ त्राहि मामित्यादिना त्वत्तो नान्योऽस्ति रक्षितेत्यन्तेन “यद्बाल्ये यच्च कौमारे वार्द्धके यच्च यौवने। तत्पुण्यं वृद्धिमाप्नोतु पापं हर हलायुध!” इति शिवरहस्यीयेन प्रार्थनं कुर्य्यात् “ततः स्तोत्रैः स्तुतिं कृत्वा वासुदेवं जनार्दनम्। गीतवादित्रनृत्यैश्च शेष कालं यथासुखम्” नये-

दिति शेषः। परदिने प्रातर्भगवन्तं यथाविधि संपूज्य दुर्गायाश्च महोत्सवः कार्य्यः ततो ब्राह्मणान् भोजयेत् तेभ्यो दक्षिणाञ्च स्वर्णादि यत्किञ्चिदिष्टतमं कृष्णो मे प्रीयतामित्युक्त्वा दद्यात् ततः यं देवमित्यादि शान्तिरस्तु शिवञ्चास्तु इति मन्त्रं पठित्वा ब्राह्मणान् विसर्जयेत् ततः पारणं कुर्य्यात् तन्मन्त्रः। "सर्वाय सर्वेश्वराय सर्वपतये सर्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः"। पारणानन्तरं समापनमन्त्रं भूताय इत्यादिकं पठेत्।

अथ व्रतकालव्यवस्था। तत्रार्द्धरात्रे रोहिणीकृष्णाष्टम्योर्लाभे जन्माष्टमीव्रताय स एव कालः तस्य मुख्यत्वेनाभिधानात्। तथा च वशिष्ठः "अष्टमीरोहिणीयुक्ता निशार्द्धे दृश्यते यदि। मुख्यः कालः स विज्ञेयस्तत्र जातो हरिः स्वयम्"॥ भविष्यपुराणविष्णुधर्मोत्तरयोः। "अर्द्धरात्रे तु रोहिण्यां यदा कृष्णाष्टमी भवेत्। तस्यामभ्यर्च्चनं शौरेर्हन्ति पापं त्रिजन्मजम्॥ सोपवासो हरेः पूजां कृत्वा तत्र न सीदति"। अयमेव जयन्त्याख्यो योगः। तथा च वराहसंहितायां "सिंहार्के रोहिणीयुक्ता नराः कृष्णाष्टमी यदि। रात्र्यर्द्धपूर्वापरगा जयन्ती कलयापि च" इति विष्णुधर्मोत्तरादिपुराणयोः। "रोहिणी सहिता कृष्णा मासि भाद्रपदेऽष्टमी। सप्तम्यामर्द्धरात्राधः कलयापि यदा भवेत्। तत्र जातो जगन्नाथः कौस्तुभी हरिरीश्वरः। तमेवोपवसेत् कालं तत्र कुर्य्याच्च जागरम्"॥ इत्यञ्च "अविद्धायाञ्च सर्क्षायां जातो देवकीनन्दनः"। इति सप्तम्यवेधे जन्म श्रवणं कल्पभेदादविरुद्धं सप्तम्यामर्द्धरात्राध इत्यत्र अर्द्धरात्रादधश्चोर्द्ध्वमिति भविष्यपुराण-वायुपुराणयोः पाठः। स्कान्दे "जयं पुण्यञ्च कुरुते जयन्तीमिति तां विदुः। रोहिणी सहिता कृष्णा मासे च श्रावणेऽष्टमी॥ अर्द्धरात्रादधश्चोर्द्ध्वं कलयापि यदा भवेत्। जयन्ती नाम सा प्रोक्ता सर्वपापप्रणाशिनी"॥ अन्यत्रापि "अर्द्धरात्रादधश्चोर्द्ध्वमेकार्द्धघटिकान्विता। रोहिणी चाष्टमी ग्राह्या उपवासव्रतादिषु"॥ एकघटिकान्विता अर्द्धघटिकान्विता वेत्यर्थः। अतेन यदा सूर्य्योदये स्वल्पाऽप्यष्टमी रोहिणीयुता त्वनन्तरं पूर्णा नवमी सोमवारेण बुधवारेण वा युता

स्यात्तदा सर्वापवादिका सैवोपोष्या इति। यदाह ब्रह्मवैवर्त्तः "उदये चाष्टमी किञ्चिन्नवमी सकला यदि। भवेत्तु वुधसंयुक्ता प्राजापत्यर्क्षसंयुता॥ अपि वर्षशतेनापि लभ्यते वा न वा विभो!"। पद्मपुराणेऽपि "प्रेतयोनिगतानान्तु प्रेतत्वं नाशितन्तु तैः। यैः कृता श्रावणे मासि अष्टमी रोहिणीयुता। किं पुनर्वुधवारेण सोमेनापि विशेषतः॥ किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा" इति निरस्तं गुणफलानुरोधेन जयन्त्याख्यमुख्यकालवाधायोगात्। स्कान्दे "न करोति यदा विष्णोर्जयन्तीसंज्ञकं व्रतम्। यमस्य वशमापन्नः सहते नारकीं व्यथाम्"॥ भविष्ये "तुष्ट्यर्थं देवकीसूनोर्जयन्तीसंज्ञकं व्रतम्। कर्त्तव्यं चित्तमानेन भक्त्या भक्तजनैरिह॥ अकुर्वन्निरयं याति यावदिन्द्राश्चतुर्दश"। इति जयन्तीलङ्घने प्रत्यवायश्रुतेश्च। वुधसोमलङ्घने प्रत्यवायाश्रवणात् गुणफलत्वमेव महार्णवेऽपि वुधसोमवारयोगो गुणफलायेत्युक्तम्। हेमाद्रिरपि यदा तु यद्दिवस एव रोहिण्यष्टमीयोगस्तदा तत्रैव वुधवारादियोगः फलातिशयः। अन्ये त्वेवमाहुः। यदा पूर्वदिनार्द्धरात्रे रोहिणीयुताष्टमी नोत्तरा तथाविधा सा चेद्वुधे सोमे च भवति तदोत्तरैवोपोष्या न पूर्वा उदये चाष्टमी किञ्चिदिति वचनात्तत्र। यद्यप्यर्द्धरात्रे तु रोहिण्यामित्यादिवाक्यं वुधसोमवारयुक्ताष्टमीव्यतिरिक्तविषयत्वेन सावकाशम्। वुधसोमवाक्यञ्च द्वितीयदिवस एव रोहिणीयोगे सावकाशं तथापि वुधसोमवाक्यस्य सङ्कोचे कर्मकालव्यापितिथिसम्भवादर्द्धरात्रवाक्यस्य सङ्कोचे तद्वाधप्रसङ्गात्। तथा च वुधसोमवाक्यस्यैव सङ्कोचो नार्द्धरात्रवाक्यस्येत्यन्तेनाह। माधवाचार्य्योऽप्येवम्। किन्त्वयं योगो वुधसोमवारे प्रातः किञ्चिदष्टमी अनन्तरं तद्दिने नवमीत्वय उभयतिथ्योरेव रोहिणी स्यात् तदैव भवति। ब्रह्मवैवर्त्ते "उदये चाष्टमी किञ्चिन्नवमी सकला यदि" इत्यत्र सकलेति विशेष्याभिधानात् अतएव अपि वर्षशतेनापीत्युपपद्यते अस्य ग्राह्यता च जयन्त्यलाभ एव प्रागुक्तयुक्तेः ननु वुधसोमवारवदष्टम्यां रोहिणीयोगो गुणफलमस्तु मैवं तिथिद्वैधे रोहिण्या नियामकत्वेनाभिधानात्। तथा हि स्मृतिः "प्राजापत्यर्क्ष-

संयुक्ता कृष्णा नभसि चाष्टमी। मुहूर्त्तमपि लभ्येत सैवोपोष्या महाफला"॥ वशिष्ठः "वासरे वा निशायां वा यदा युक्ता तु रोहिणी। विशेषेण नभो मासि सैवोपोष्या सदा तिथिः"॥ अनयोरेवकारश्रुतेः। "एकादशीशताद्राजन्नधिकं रोहिणीव्रतम्। ततो हि दुर्लभं मत्वा तस्यां यत्नं समाचरेत्"॥ इति व्रह्माण्डपुराणे रोहिणीव्रतमिति श्रवणाच्च वुधादिवाक्यन्तु न नियामकं प्रमाणाभावात् प्रत्युत फलश्रुतेर्गुणफलवोधत्वमिति। एवञ्च तिथिविशेषनिर्यान्त्रतापवादविधावेवकारश्रुतेः षष्टिदण्डात्मिकामप्यष्टमीं रोहिणीरहितां परित्यज्य रोहिणीसहिता स्वल्पाप्यष्टमी उपोष्या यदा तु परदिनेऽपि रोहिणीरहिता तदा पूर्व्वैवोपोष्या। "षष्टिदण्डात्मिकायाश्च तिथेर्निष्क्रमणे परे। अकर्मण्यं तिथिमलं विद्यादेकादशीं विना" इत्यनपोदित सामान्यविषयत्वात् वक्ष्यमाणवचनजाताच्च। यदा तूभयदिने जयन्तीयोगस्तदा परेद्युरुपवासः सङ्कल्पकालमारभ्य तिथिव्याप्तिसम्भवात् अतएव वौधायनः "यो यस्य विहितः कालः कर्म्मणस्तदुपक्रमे। तिथिर्याभिमता सा तु कार्य्या नोपक्रमोज्झिता"॥ सङ्कल्पकालः प्रातरेव प्रातःसङ्कल्पयेद्विद्वानित्यादि वराहपुराणात् "प्रातःसन्ध्यां ततः कृत्वा सङ्कल्पं वुध आचरेत्" इति संवत्सरप्रदीपवचनात् "उदये तूपवासस्य नक्तस्यास्तमये तिथिः। मध्याह्नव्यापिनी ग्राह्या एकभक्ते सदा तिथिः" इति वौधायनवचनेनोपवासे उदयगामि तिथेर्विधानात् नक्षत्रस्यास्तनिशीथसम्बन्धेन वलवत्त्वात् तिथेस्त्रिसन्ध्यव्यापित्वाच्च। तथा च भविष्यपुराणविष्णुधर्मोत्तरयोः "उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः। यत्र वा युज्यते राम निशीथे शशिना सह"॥ निशीथेऽर्द्धरात्रे। पराशरः। "त्रिसन्ध्यव्यापिनी या तु सैव पूज्या सदा तिथिः। न तत्र युग्मादरणमन्यत्र हरिवासरात्"॥ किं पुनर्नवमीयुक्ता इति लिखिष्यमाणवचनाच्च। एतद्विषय एव व्रह्मवैवर्त्तवचनं "वर्जनीया प्रयत्नेन सप्तमी सहिताष्टमी। सा सर्क्षापि न कर्त्तव्या सप्तमी सहिताष्टमी। अविद्धायान्तु सर्क्षायां जातो देवकीनन्दनः"॥ यत्तु विष्णुधर्मोत्तरे "जयन्ती

शिवरात्रिश्च कार्य्यं भद्रजयान्विते। कृत्वोपवासं तिथ्यन्ते तदा कुर्य्याच्च पारणम्"॥ गरुड़पुराणविष्णुधर्मोत्तरयोः "जयन्त्यां पूर्वविद्धायामुपवासं समाचरेत्। तिथ्यन्ते वोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम्"॥ तत्पूर्वदिनमात्रे जयन्तीलाभे विद्धा प्रतिप्रसवाय बोध्यम्। यदा तु विना जयन्तीयोगमुभयदिने रोहिणीयुताष्टमी लभ्यते तदापि परेद्युरुपवासः। तथा च कालमाधवीये स्कन्दपुराणब्रह्मवैवर्त्तयोः। सप्तमीसहिताष्टम्यां भूत्वा ऋक्षं द्विजोत्तम। प्राजापत्यं द्वितीयेऽह्नि मुहूर्त्तार्द्धं भवेद्यदि। तदाष्टयामिकं ज्ञेयं प्रोक्तं व्यासादिभिः पुरा। मुहूर्त्तेनापि संयुक्ता सा सम्पूर्णाष्टमी स्मृता। किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा" मुहूर्त्तार्द्धमप्याष्टयामिकं सम्पूर्णदिनं तत्कार्य्यकारित्वात्। पद्मपुराणे "पूर्वविद्धाष्टमी या तु उदये नवमी दिने। मुहूर्त्तेनापि संयुक्ता सा सम्पूर्णाष्टमी भवेत्। कला काष्ठा मुहूर्त्तापि यदा कृष्णाष्टमी तिथिः। नवम्यां सैव ग्राह्या स्यात् सप्तमी संयुता न हि"। संयुता रोहिण्येति शेषः। रोहिणीरहितायान्तु तथाविधायां पूर्वदिन एवोपवासस्य वक्ष्यमाणत्वात्। यत्तु सप्तमी रात्रिशेषे रोहिणीसहिताष्टमी परदिने च रोहिणी नास्तव्यापिनी तदा पूर्वेद्युरुपवासो बलवन्नक्षत्रसम्बन्धादित्युक्तं तच्चिन्त्यं बलवन्नक्षत्रसम्बन्धस्य सामान्यस्य प्रागुक्तब्रह्मवैवर्त्तस्कन्दपुराणविशेषवचनैरप्रयोजकीकृतत्वात्। एवञ्च "व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैका यदा भवेत्। सा तिथिः सकला ज्ञेया पित्रर्थे चापराह्णिकी" इति देवलवचनस्याप्यत्र न विषयः कलाकाष्ठादिविशेषवचनात्। न च सप्तमीसहिताष्टम्यामित्युपक्रमात् एवं सप्तमी सहिता न हीत्युपादानाच्च ब्रह्मवैवर्त्तवचनाद्यविषयत्वे पूर्णाखण्डयोर्जयन्तीं विना रोहिणीयोगे परदिने कथमुपवास इति वाच्यं किं पुनर्नवमीयुक्ता कुलकोट्यास्तु मुक्तिदा इत्यनेन नवमीयोगस्य तत्रापि हेतुत्वेन कीर्त्तनात्तस्यात्रापि सत्त्वात्। तिथिद्वैधे उपवासनियामकस्य नक्षत्रस्योभयदिनलाभे प्रागुक्तेनोपोषितव्यमित्यादि भविष्यपुराणविष्णुधर्मोत्तरीयेण परदिननियमितत्वाच्च। तिथिविवेके

प्येवम् एवञ्च नक्षत्रासम्बन्धे अष्टम्यां पूर्णायां नास्ति विप्रतिपत्तिः त्रिसन्ध्यव्यापित्वात्। खण्डायान्तु निशीथसम्बन्धिन्यामुपवासः। तथा च माधवाचार्य्यधृत पराशरवचनम्। "दिवा वा यदि वा रात्रौ नास्ति चेद्रोहिणीकला। रात्रियुक्तां प्रकुर्वीत विशेषेणेन्दुसंयुताम्"। नारदीयसंहितायामपि "उपोष्य जन्मचिह्नानि कुर्य्याज्जागरणन्तु यः। अर्द्धरात्रयुताष्टम्यां सोऽश्वमेधफलं लभेत्"॥ अत्र अर्द्धरात्रश्रुतेर्विशेषेणेन्दुसंयुतामित्यत्रापि तथा। एवञ्च पूर्वद्युरेवाष्टम्यां निशीथयोगे तदैवोपवासः। "कृष्णाष्टमी स्कन्दषष्ठी शिवरात्रि चतुर्दशी। एताः पूर्वयुताः कार्य्यास्तिथ्यन्ते पारणं भवेत्" इति वशिष्ठ ब्रह्मवैवर्त्तपैठीनस्युक्तास्वप्येष एव विषयः। कृष्णाष्टमी कृष्णजन्माष्टमी स्कन्दषष्ठ्यादि साहचर्य्यात् तिथ्यन्ते पारणविधानाच्च। अत्रैव विषये तिथेरस्तगामित्वे विष्णुपुराणम्। "अलाभे रोहिणीभस्य कार्य्याष्टम्यस्तगामिनी। तत्रोपवासं कृत्वैव तिथ्यन्ते पारणं स्मृतम्"॥ एतादृग्वचनं भविष्येऽपि किन्तु तत्रोपवासः कर्त्तव्य इति तृतीयचरणे पाठः। न चैतद्वचनयोः पूर्वद्युरेव निशीथप्राप्तौ परेद्युरस्तगामित्वमात्रेऽपि विषय इति वाच्यं विशेषेणेन्दुसंयुतामित्यस्यार्द्धरात्रयुताष्टम्यामित्यस्य च वाधापत्तेः तिथ्यन्ते पारणं भवेदित्यनुवादापत्तेश्च। त्रिसन्ध्यव्यापिनीत्यस्य कर्मोपक्रमकालीन तिथिनियामकस्य च तिथिसामान्यविषयकस्य विशेषेणेन्दुसंयुतामित्यनेन अर्द्धरात्रयुताष्टम्यामित्यनेन च जन्माष्टमीमात्रविषयकेण वाधितत्वात्। एवञ्च परदिनमात्रे उभयदिने वा निशीथसम्बन्धे उभयदिने वा तदसम्बन्धे परेद्युरेवोपवासः सङ्कल्पकालानुरोधात्तिथेस्त्रिसन्ध्यव्यापित्वाच्च। "विना ऋक्षेण कर्त्तव्या नवमीसंयुताष्टमी" इत्यादि पुराणाच्च। माधवाचार्य्यप्रभृतयोऽप्येवम्।

अथ पारणकालः। पारणकालश्च भविष्य विष्णुरहस्य ब्रह्मवैवर्त्तेषु। "अष्टम्यामथ रोहिण्यां न कुर्य्यात् पारणं क्वचित्। हन्यात् पुरा कृतं कर्म उपवासार्जितं फलम्। तिथिरष्टगुणं हन्ति नक्षत्रञ्च चतुर्गुणम्। तस्मात् प्रयत्नतः कुर्य्यात्तिथिभान्ते च पारणम्"॥ अत्र उभयवियोगे पारण-

मुक्तम्। यदा च सार्द्धप्रहरनिशाभ्यन्तरे एकस्य वियोगस्तदैकतरवियोगेऽपि पारणम्। तथा च नारदीये "तिथिनक्षत्रसंयोगे उपवासो यदा भवेत्। पारणन्तु न कर्त्तव्यं यावन्नैकस्य संक्षयः। सांयोगिके व्रते प्राप्ते यद्येकोऽपि वियुज्यते। तत्रैव पारणं कुर्य्यादेवं वेदविदो विदुः"॥ यद्येकस्यापि सार्द्धप्रहरनिशाभ्यन्तरे न वियोगस्तदा तयोरवियोगेऽपि प्रातरुत्सवान्ते पारणं "तिथ्यन्ते चोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम्" इत्युक्तवचनात्। निर्णयामृते तु प्रतिकुर्वीत पारणमिति पाठः। न च भोजनस्य रागप्राप्तत्वेन विधित्वासम्भवात् तिथिनक्षत्रयोर्वियोगं विना न पारणं कुर्य्यादित्येवार्थ इति वाच्यम्। "उपवासेषु सर्व्वेषु पूर्वाह्णे पारणं भवेत्। अन्यथा तु फलस्यार्द्धं धर्ममेवोपसर्पति" इति देवलवचने पारणनियमात्। किञ्च यदि पारणमङ्गं न स्यात्तदा प्रतिनिधिविधानं नोपपद्येत। तथा च कात्यायनः "सन्ध्यादिकं भवेन्नित्यं पारणन्तु निमित्ततः। अद्भिस्तु पारयित्वा तु नैत्तिकान्ते भुजिक्रिया" इति। अतएव हेमाद्रिप्रभृतिधृतवचनं "तिथ्यृक्षयोर्यदाभेदो नक्षत्रस्यान्त एव वा। अर्द्धरात्रेऽथवा कुर्य्यात् पारणन्त्वपरेऽहनि"॥ यदा रात्रेः सार्द्धप्रहरमतिक्रम्य तिथिनक्षत्रयोर्विच्छेदः अथवा केवलस्य नक्षत्रस्यान्तस्तदाऽपरेऽहनि उपवासपरदिने पारणं कुर्य्यात् नक्षत्रस्येत्येकतरोपलक्षणम्। हेमाद्रिस्तु यदा परदिनेऽर्द्धरात्रादुपरिभान्तस्तिथ्यन्तो वा भवति तदा अर्द्धरात्रे पारण कुर्य्यात् इत्याह। तन्न, वर्जयित्वा महानिशामिति वक्ष्यमाणवचनविरोधात् अर्द्धरात्रादुपरिभान्तस्तिथ्यन्तो वा भवतीत्यर्थे प्रमाणं नास्ति किन्त्वर्द्धरात्र एव तदधिकरणं सन्निधानात् तु कारणार्द्धरात्रं व्यवच्छिद्य उपवासदिनात् परदिने पारणं विधीयते। जीमूतवाहनस्तु न हि तिथिभान्ते च पारणमिति पारणकर्त्तव्यतापरं येन तदन्त एव विधिः। किन्तु नक्षत्रे तिथौ च वर्त्तमाने न कुर्य्यादिति तात्पर्य्यं तत्रैव दोषश्रुतेः रागप्राप्तभोजनानुवादेन तिथिनक्षत्रेतरकाले पारणं कुर्य्यादिति वा विधिः। स च रात्रिशेषे भोजनेऽप्यविरुद्धः तृतीय एवाहनि पारणं

भविष्यति ग्रहणेऽपरेऽहनीतिवन्नियमाभावादित्याह। तन्न, पारणविधेर्नियमरूपतयोक्तत्वात् रात्रिशेषे भोजनस्याविहितत्वात्। तथा च ब्रह्मवैवर्त्ते "त्रियामां रजनीं प्राहुस्त्यक्त्वाद्यन्तचतुष्टयम्। नाड़ीनां तदुभे सन्ध्ये दिवसाद्यन्तसंज्ञिते"॥ एतद्वचनबलात् महानिशा परकालस्य नाड़ीचतुष्टयस्य परदिनादित्वेन तदानीं पूर्वदिवसीय भोजनानुपपत्तेः तद्दिनकृत्यलोपापत्तेश्च। अतएव "मुक्ते शशिनि भुञ्जीत यदि न स्यान्महानिशा" इत्युक्तम्। कात्यायनोऽपि "मुनिभिर्द्विरशनं प्रोक्तं विप्राणां मर्त्यवासिनां नित्यम्। अहनि च तथा तमस्विन्यां सार्द्धप्रहर यामान्तः"॥ इत्यनेन रात्रौ सार्द्धप्रहराभ्यन्तर एव भोजनं न तु तत्परत आह ग्रहणवदपरेऽहनि पारणेऽपि दक्षवचनाच्च केचित् तु तिथ्यृक्षयोरितिवचने अपरेऽहनि उपवासतृतीयदिवसे पारणं कुर्य्यात्। यथा वचनबलात् पारणे औत्सर्गिक पूर्वाह्णपरित्यागेऽपि न व्रतवैगुण्यं तथात्राप्यौत्सर्गिक द्वितीय दिनपरित्यागेऽपि न तथात्वमिति। यत्पुनरुभयसत्त्वे रात्रावेव तत्रैव दिवसे पारणविधायकं तिथ्यृक्षयोरिति वचनं तदसत् अपरेऽहनीत्यत्रापर इत्यस्य वैयर्थ्यापत्तेः। यथा श्रुतार्थपरतयैवोपपन्नस्य वचनस्य तिथिनक्षत्रसत्त्वे पारणनिषेधकानां वचनानां बाधने सामर्थ्याभावादित्याहुः। तन्न औत्सर्गिक द्वितीयदिन परित्यागे प्रमाणमेव नास्ति तिथ्यृक्षयोरिति वचनञ्चेदस्य तद्रूपार्थत्वे प्रमाणं नास्ति। न च अपर इत्यस्य वैयर्थ्यापत्त्या तथात्वमिति वाच्यं तथात्वे निःसन्देहार्थं न परेऽहनीत्येवं ब्रूयात्।

वस्तुतस्तु पारणन्त्वपरेऽहनीत्यनेन अवश्यवक्तव्योपोषित तिथ्यृक्षयोर्भेद इत्यत्रोपस्थितोपवासस्य परदिन इत्येव प्रतीयते न तु द्वितीयदिवसस्य परदिने अतएव "अद्य कृष्णाष्टमीं देवीं नभश्चन्द्रसरोहिणीम्। अर्चयित्वोपवासेन भोक्ष्येऽहमपरेऽहनि" इति मन्त्रलिङ्गमपि सङ्गच्छते। किञ्चात्रैव वचने नक्षत्रस्यान्त इत्यत्र भोजनार्हकाले एकतरवियोगेऽन्यस्य अर्द्धरात्रवियोगेऽपरेऽहनीत्यस्य सांयोगिक इत्यादि वचनैकवाक्यतया उपवासद्वितीयदिवसपरत्वस्यावश्यवक्तव्यत्वे न अर्द्धरात्रे

उभय वियोगेऽपि तथैव युक्तत्वात्। अन्यथा सांयोगिक इत्यस्य निर्विषयतापत्तेः। एवञ्च "सायमाद्यन्तयोरह्नोः सायं प्रातश्च मध्यमे। उपवासफलं प्रेप्सोर्वर्ज्यं भक्तचतुष्टयम्" इति महाभारतीयौत्सर्गिक द्वितीय दिनपारणस्याप्यबाधः। एतद्विषय एवोत्सवान्ते पारणमाह "तिथ्यन्ते वोत्सवान्ते वा व्रती कुर्वीत पारणम्" इति। न च अत्र तिथ्यन्ते तारकान्ते वेति पाठ इति वाच्यं पूर्वपाठस्य हेमाद्रिनिर्णयामृत माधवाचार्य्यधृतत्वात् व्याख्यातत्वाच्च एतद्विषये ब्रह्मवैवर्त्तः। "सर्वेष्वेवोपवासेषु दिवा पारणमिष्यते। अन्यथा फलहानिः स्यादृते धारण पारणम्"॥ धारणं नियमग्रहणं ततश्चागृहीत नक्तव्रतस्य रात्रिपारणनिषेधः। गरुड़ पुराणेऽपि "अन्यतिथ्यागमो रात्रौ तामसस्तेजसो दिवा। तामसे पारणं कुर्वं स्तामसीं गतिमाप्नुयात्"॥ न च यदि प्रथम निशायामेकतरवियोगस्तदापि ब्रह्मवैवर्त्तादि वचनाद्दिवा पारणमनन्तभट्ट माधवाचार्य्योक्तं युक्तमिति वाच्यं "न रात्रौ पारणं कुर्य्यादृते वै रोहिणीव्रतात्। निशायां पारणं कुर्य्यात् वर्जयित्वा महानिशां" इति संवत्सरप्रदीपधृतस्य "न रात्रौ पारणं कुर्य्यादृते वै रोहिणीव्रतात्। अत्र निश्यपि तत् कार्य्यं वर्जयित्वा महानिशां" इति ब्रह्माण्डोक्तस्य च निर्विषयतापत्तेः। स्त्रीणां यवान्नादि भोजनमप्याह ब्रह्मपुराणं "ततः प्रविश्य च गृहं यवान्नं भुञ्जते च ताः। युक्तमिक्षुविकारैश्च मध्वाज्यमरिचैः सह"॥

तदयं संक्षेपः। यत्रैकदिने जयन्तीलाभस्तत्रैवोपवासः। उभयदिने चेत्तदा परदिने। जयन्त्यलाभे च रोहिणीयुक्ताष्टम्याम्। उभयदिने रोहिणीयुक्ताष्टमीलाभे परदिने। रोहिण्यलाभे तु निशीथसम्बन्धिन्यामष्टम्याम्। उभयदिने निशीथसम्बन्धे तदसम्बन्धे वा परदिन इति। उपवास परदिने तिथिनक्षत्रयोरवसाने पारणम्। यदा तु महानिशायाः पूर्वमेक तरस्यावसान मन्यतरस्य महानिशायां तदनन्तरं वा तदेकतरावसाने पारणम्। यदा महानिशायामुभयस्थितिस्तदोत्सवान्ते प्रातःपारणमिति। इति वन्द्यघटीय श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्य्यविरचितं श्रीकृष्णजन्माष्टमीतत्त्वं समाप्तम्।

अथ दूर्वाष्टमी। शुक्लापि पूर्वविद्धा ग्राह्या। "श्रावणी दौर्गनवमी दूर्वा चैव हुताशनी। पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या शिवरात्रिर्बलेर्दिनम्"॥ इति बृहस्पतिवचनात्। बलेर्दिनं द्युतप्रतिपत् हुताशनी रम्भातृतीया भविष्योत्तरे "पक्षे भाद्रपदस्यैव शुक्लाष्टम्यां युधिष्ठिर। दूर्वाष्टमी व्रतं पुण्यं यः करोतीह मानवः॥ न तस्य क्षयमाप्नोति सन्तानं साप्तपौरुषम्। नन्दते वर्द्धते नित्यं यथा दूर्वा तथा कुलम्"॥ भौमपराक्रमे कार्त्तिकशुक्लपक्षमधिकृत्य "गोष्ठाष्टम्यां गवां पूजां गोग्रासं गोप्रदक्षिणम्। गवानुगमनं कुर्य्यात् सर्वपापविमुक्तये"।

आग्रहायण्या ऊर्द्धं तिसृषु कृष्णाष्टमीषु श्राद्धानि नित्यानि यथा गोभिलः "अष्टकायोर्द्धमाग्रहायण्यास्तामिस्राष्टमी" इति ब्रह्मपुराणे "पित्र्यदानाय मूले स्युरष्टकास्तिस्र एव च। कृष्णपक्षे वरिष्ठा हि पूर्वा चैन्द्री विभाव्यते॥ प्राजापत्या द्वितीया स्यात् तृतीया वैश्वदेविकी। आद्यापूपैः सदा कार्य्या मांसैरन्या भवेत्तथा। शाकैः कार्य्या तृतीया स्यादेष द्रव्यगतोविधिः"॥ मूले प्रधानस्थाने अमावास्यायां अमावास्या हि श्राद्धस्य प्रधानकालस्तद्वदिति यावत्। ऐन्द्रीसाग्नेरिन्द्रदेवताकयागसम्बन्धात्। एवं प्राजापत्या वैश्वदेविकी च मांसैः पशोः। तथाच गोभिलः "यद्युवाल्पतरसम्भारः स्यादपि पशुनैव कुर्य्यात्" इति यद्यु वेति निपातसमुदायो यद्यर्थे पशुरिति छाग एव "छागोऽनादेशे पशुः" इति गौतमात् न च "तैष्या ऊर्द्धमष्टम्यां गौः" गोभिलसूत्रेण गवोपदेशात् कथमनुपदिष्टत्वमिति वाच्यं तदसम्भवे पशुरित्यनेन यः पशुरुपदिष्टस्तस्य विशेषतोऽनुपदिष्टत्वात् तैषी पौषी। वस्तुतस्तु हरिवंशे मृगोऽपि विहितः यथा "इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वै अष्टकायामथादिशत्। मांसमानय श्राद्धाय मृगं हत्वा महाबल" इति। स्त्रियावधाभावमाह स एव "अवध्याश्च स्त्रियं प्राहुस्तिर्य्यग्योनिगतेष्वपि"॥ एतदर्द्धं ब्रह्मपुराणेऽपि आरण्यानामगस्त्यप्रोक्षितत्वं वक्ष्यते पश्वभावे स्थालीपाकेन यथा गोभिलः "अपि वा स्थालीपाकं कुर्वीत" इति तद्विधानन्तु "स्थालीपाकं पशुस्थाने कुर्य्याद् यद्यानुकल्पितम्।

अपयेत्तं सवत्सायास्तरुण्या गोः पयस्यनु" ॥ इति छन्दोगपरिशिष्टोक्तं ग्राह्यम्। अन्विति ओदनचरोः पश्चात् अतएव शातातपः "नवोदके नवान्ने च गृहप्रच्छादने सदा। पितरः स्पृहयन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च॥ तस्माद्दद्यात् सदोद्युक्तो विद्वत्सु ब्राह्मणेषु च"॥ तस्मादन्नं प्रधानं पूपादिकं तूपकरणत्वेन शक्तानामावश्यकमुभयत्र सदेति श्रवणात्। तथाच "नित्यं सदा यावदायुर्न कदाचिदतिक्रमेत्। उपेत्यातिक्रमे दोषश्रुतेरत्यागदर्शनात्। फलाश्रुतेर्वीप्सया च तन्नित्यमिति कीर्त्तितम्"॥ नवोदके वर्षोपक्रमे आर्द्रागते रवाविति यावत्। "आर्द्रादितो विशाखान्तं रविचारेण वर्षति" इति नव्यवर्द्धमानधृतात्। "प्रावृट्काले समायाते रौद्रऋक्षगते रवौ। नाड़ीवेधसमायोगे जलयोगं वदाम्यहम्"॥ इति रुद्रयामलाच्च। रौद्रमार्द्रानवोदकश्राद्धस्य सावकाशत्वात् त्रयोदश्यादिकनिषेधमाह दीपिकायाम्। "त्रयोदशीं जन्मदिनञ्च नन्दां जन्मर्क्षतारां सितवासरञ्च। त्यक्त्वा हरीज्येन्दुकरान्त्यमैत्र ध्रुवेषु च श्राद्धविधानमिष्टम्"॥ सितवासरं शुक्रवारम् ऋक्षं राशिः हर्य्यादयः श्रवणपुष्य मृगशिरो हस्तारिवत्यनुराधा उत्तरत्रितयरोहिण्यः। कृष्णपक्षे चेन्नवोदकश्राद्धकालस्तदोभयोः श्राद्धयोस्तन्त्रात् सिद्धिः।

ज्योतिषे "रजोयुक्क्ष्माम्बुवाची च रौद्राद्यपदगे रवौ। तस्यां पाठो वीजवापो नाहिभीर्दुग्धपानतः॥ मृगशिरसि निवृत्ते रौद्रपादेऽम्बुवाची ऋतुमति खलु पृथ्वी वर्जयेत्त्रीण्यहानि। यदि वपति कृषाणः क्षेत्रमासाद्य वीजं न भवति फलभागी शस्यचाण्डालपाकः"। रजोयुक्क्ष्मा ऋतुमती पृथ्वी। मत्स्यसूक्ते "धरण्यामृतुमत्याञ्च भूमिकम्पे तथैव च। अन्तरागमने चैव विद्यां नैव पठेद्बुधः"॥ ज्योतिषे "यस्मिन् वारे सहस्रांशुर्यत्काले मिथुनञ्चरेत्। अम्बुवाची भवेन्नित्यं पुनस्तत् कालवारयोः"॥ इदन्तु प्रायिकं सावकाशश्राद्धमधिकृत्य महाभारते "नक्षत्रे न च कुर्वीत यस्मिन् जातो भवेन्नरः। न प्रौष्ठपदयोः कार्य्यं तथाग्नेये च भारत॥ दारुणेषु च सर्वेषु प्रत्यरौ च विवर्जयेत्। ज्योतिषे यानि प्रोक्तानि तानि सर्वाणि

वर्जयेत्" ॥ प्रोष्ठपदा पूर्वभाद्रपदा द्विनक्षत्रत्वाद्द्विवचनम् आग्नेयं कृत्तिका दारुणमुक्तं ज्योतिषे । "दारुणञ्चोरग रौद्रमैन्द्रं नैर्ऋतमेव च" । उरगमश्लेषा रौद्रमार्द्रा ऐन्द्रं ज्येष्ठा नैर्ऋतं मूला । विष्णुधर्मोत्तरे च "नक्षत्राणि तथैवात्र दारुणोग्राणि वर्जयेत्" । तत्रोग्रनक्षत्राणि पूर्वात्रयमघाभरण्यः ।

नवान्न श्राद्धकालस्य ज्योतिषे । "सूर्य्ये चैव विशाखगे स्मरतिथौ पापे त्रिजन्मान्विते नन्दामन्द महीजकार्य्यदिवसे पौषे मधौ कार्त्तिके । भेषूग्राहिशिवेषु विष्णुशयने कृष्णे शशिन्यष्टमे श्राद्धं भोजनकं नवान्नविहितं पुत्रार्थनाशप्रदम् । "ज्येष्ठाशेषार्द्धगे सूर्य्ये स्वगन्त्रा निशात्मके । नवान्नैर्भोजनं श्राद्धं जन्म चन्द्रे तिथौ न च" ॥ सूर्य्ये चैव विशाखगे मार्गशीर्षस्य विंशति दण्डाधिकप्रथमदिनत्रयावस्थिते स्मरतिथौ त्रयोदश्यां पापे पञ्चमतारात्रये । उग्रनक्षत्रं पूर्वात्रय मघाभरण्यः अहिरश्लेषा शिव आर्द्रा । भोजराजः "ब्रह्मा विष्णु बृहस्पतौ शशधरो मार्त्तण्ड पौष्णादितौ मैत्रे चित्रविशाखवायु धनभे मूलाश्वि वह्नौ तथा । शक्रे वारुण ऋक्षके शुभ–दिने श्राद्धं नवं शस्यते । नन्दाभार्गव भूमिजेषु न भवेत् श्राद्धं नवान्नोद्भवम्" ॥ ब्रह्मादयः रोहिणी श्रवणापुष्यमृगशिरोहस्ता रेवती पुनर्वस्वनुराधा चित्रा विशाखा स्वाति धनिष्ठा मूलाश्विनी कृत्तिका ज्येष्ठा शतभिषा । नवान्नश्राद्धे मूला कृत्तिका ज्येष्ठा विधानात्तच्छेषभक्षणप्राप्तेः "अश्लेषा कृत्तिका ज्येष्ठा मूलाजपदकेषु च । भृगुभौमदिने रिक्ते तिथौ नाद्यान्नवोदनं" इति श्राद्धशेषाभोजिमात्रपरम् । अजपदं पूर्वभाद्रपदा ।

चन्द्रताराद्यशुद्धौ प्रतीकारमाह देवलः । "कर्म कुर्य्यात् फलावाप्त्यै चन्द्रादि शोभने बुधः । सुस्थकाले त्विदं सर्वं नार्त्तः कालमपेक्षते ॥ चन्द्रे च शङ्खं लवणञ्च तारे तिथावभद्रे सिततण्डुलांश्च । धान्यञ्च दद्यात् करणर्क्षवारे योगे तिलान् हेममणिञ्च लग्ने" ॥ तारे जन्मविपत् पापकष्टे । ऋक्षमविहितनक्षत्रम् । राजमार्त्तण्डे ताराभेदाल्लवणपरिमाणमाह "एकत्रि पञ्च सप्त द्विजाय दद्यात् पलानि लवणस्य क्रमशः जन्मविपत् प्रत्यरिमरणाख्य तारासु । पलन्तु लौकिकैर्मानैः

साष्टरक्तिद्विमाषकम्। तोलकत्रितयं ज्ञेयं ज्योतिर्ज्ञैः स्मृतिसम्मतम्" वामनपुराणञ्च "विष्टयो व्यतिपातश्च येऽन्ये दुर्नीतिसम्भवाः। ते नाम स्मरणाद्विष्णोर्नाशं यान्ति महात्मनः" ॥ विष्णुधर्मोत्तरे "सर्वाशुभानां परिमोक्षकारि संपूजनं देववरस्य विष्णोः" इति ब्रह्मपुराणे "प्राश्नीयाद्दधिसंयुक्तं नवं विप्राभिमन्त्रितम्"। अभिमन्त्रितं मन्त्रानादेशे गायत्रीति वचनात् गायत्रेति। स्मृतिः "गृहीत्वा ब्राह्मणानुज्ञां सदधि प्राशयेन्नवम्"।

अथ भीष्माष्टमी। भविष्योत्तरे "शुक्लाष्टम्यान्तु माघस्य दद्याद्भीष्माय यो जलम्। संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति" ॥ धवलधृतास्मृतिः। "अष्टम्यान्तु सिते पक्षे भीष्माय सतिलोदकम्। अवश्य विधिवद्दद्युः सर्वे वर्णा द्विजातयः" !॥ सर्वे वर्णा इत्युपादानात् ब्राह्मणशूद्रयोरप्यधिकारः। द्विजातय इति सम्बोधनम्। "ब्राह्मणस्त्वन्यवर्णानां यः करोत्यौर्द्ध्वदैहिकम्। तद्वर्णत्वमसौ याति इहलोके परत्र च" इति मरीचिवचनन्तु भीष्मकृत्येतरपरम्। तथा च स्मृतिः "ब्राह्मणाद्यास्तु ये वर्णा दद्युर्भीष्माय नो जलम्। संवत्सरकृतं तेषां पुण्यं नश्यति सत्तम" !॥ असवर्णजलदाननिषेधस्तु प्रकरणादपि भ्रात्रादिविषय इति श्रीदत्तः। अत्र तर्पणमन्त्रः "वैयाघ्रपद्यगोत्राय सांकृतिप्रवराय च। अपुत्राय ददाम्येतत् सलिलं भीष्मवर्मणे" इति "भीष्मः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः। आभिरद्भिरवाप्नोतु पुत्रपौत्रोचितां क्रियां" इत्याशंसा मन्त्रः। पुत्रपौत्रोचितामित्यभिधानात् पितृकर्मरीत्या ब्राह्मणः पितृतर्पणानन्तरं क्षत्रियादिकस्तु तत्पूर्वं तर्पयेत् इति संवत्सरप्रदीपादयः। अत्र वीजं वर्णज्येष्ठम्।

अथ अशोकाष्टमी। स्कान्दे "मीने मधौ शुक्लपक्षे अशोकाख्यां तथाष्टमीम्। पिवेदशोककलिकाः स्नायाल्लौहित्यवारिणि" ॥ अशोकाख्येत्युपादानात्तिथिमात्रेऽपि तत्स्नानं फलन्तु मन्त्रलिङ्गात् शोकराहित्यमवगन्तव्यं लौहित्यवारिणि ब्रह्मपुत्राख्य नदजले। पुनर्वसुयोगे तु फलाधिक्यमाह लिङ्गगरुड़पुराणयोः। "अशोककलिकाश्चाष्टौ

ये पिवन्ति पुनर्वसौ। चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः" ॥ पानमन्त्रस्तु। "त्वामशोक हराभीष्टमधुमाससमुद्भव। पिवामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु" ॥ स्त्रीशूद्रकर्त्तृकपानेऽपि प्रागुक्तयुक्तेः स्वयं मन्त्रः पठनीयः। स्त्रीपक्षे ऊहोऽपि नास्ति विवृतमेकादशीतत्त्वे। अशोकपानन्तु पश्चमार्द्धप्रहरव्यापिन्यामष्टम्यां भ्रातृद्वितीयोक्तवत्। "पुनर्वसौ वृषे लग्ने चैत्रे मासि सिताष्टमीम्। लौहित्यविरजे स्नायात् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितः सागरादयः। सर्वे लौहित्यमायान्ति चैत्रे मासि सिताष्टमीम् ॥ ब्रह्मपुत्र महाभाग शान्तनोः कुलनन्दन। अमोघागर्भसंभूत पापं लौहित्य मे हर" इति स्नानमन्त्रः॥ कालिकापुराणे "चैत्रे मासि सिताष्टम्यां यो नरो नियतेन्द्रियः। स्नायाल्लौहित्यतोयेषु स याति ब्रह्मणः पदम् ॥ चैत्रन्तु सकलं मासं शुचिः प्रयतमानसः। लौहित्यतोये यः स्नायात् स कैवल्यमवाप्नुयात् ॥ लोहितात्सरसो जातो लौहित्याख्यस्ततोऽभवत्"। स्रोतोमात्रे विष्णुः "पुनर्वसु बुधोपेतां चैत्रे मासि सिताष्टमीम्। स्रोतःसु विधिवत् स्नात्वा वाजपेय फलं लभेत्" ॥

अथ नवमी। साचाष्टमीयुता ग्राह्या युग्मात् भविष्ये "मासैश्चतुर्भिर्यत्पुण्यं विधिना पूज्य चण्डिकाम्। तत् फलं लभते वीर! नवम्यां कार्त्तिकस्य च" ॥ तथा "नवम्यां नववर्षाणि राजन् पिष्टाशनो भवेत्। तस्य तुष्टा भवेद्गौरी सर्वकामप्रदा शुभा" ॥ अद्येत्यादि नवम्यां तिथावारभ्य नववर्षाणि यावत् प्रति शुक्ल नवम्यां पिष्टेतर भोजन निवृत्ति व्रतमिति सङ्कल्पे विशेषः। सर्वकामप्रदा गौरीतोषः फलं भविष्ये "माघे मासि तु या शुक्ला नवमी लोकपूजिता। महानन्देति सा प्रोक्ता सदानन्दकरी नृणाम् ॥ स्नानं दानं तपोहोमोदेवार्चनमुपोषणम्। सर्वं तदक्षयं याति यदस्यां क्रियते नरैः" ॥

अथ श्रीरामनवमी। अगस्त्य संहितायाम्। चैत्रे मासि नवम्यान्तु जातो रामः स्वयं हरिः। पुनर्वस्वृक्षसंयुक्ता सा तिथिः सर्वकामदा ॥ पुनर्वस्वृक्ष संयोगः स्वल्पोऽपि यदि

लभ्यते । चैत्रशुक्ल नवम्यान्तु सा तिथिः सर्वकामदा ॥ श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्य्य ग्रहाधिका । तस्मिन् दिने महापुण्ये राममुद्दिश्य भक्तितः ॥ यत्किञ्चित् क्रियते कर्म तद्भवक्षयकारकम् । उपोषणं जागरणं पितॄनुद्दिश्य तर्पणम् ॥ तस्मिन् दिने तु कर्त्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः” । चैत्रपदं चान्द्रपरम् । “मेषं पूषणि संप्राप्ते लग्ने च कर्कटाह्वये । आविरासीत् सकलया कौशल्यायां परः पुमान्” ॥ अत्र मेषस्थ सूर्य्ये चान्द्र चैत्रस्यैव सम्भवात्तिथिकृत्यत्वाच्च । तथा ‘तस्मिन् दिने महापुण्ये राममुद्दिश्य भक्तितः । जपेदेकान्त आसीनो यावत् स्याद्दशमी दिनम् ॥ तेनैव स्यात् पुरश्चर्य्या दशम्यां भोजयेद्द्विजान् । भक्ष्यभोज्यैर्बहुविधैर्भक्त्या दद्याच्च दक्षिणाम् ॥ कृतकृत्यो भवेत्तेन सद्यो रामः प्रसीदति” । तथा “चैत्र शुक्ला तु नवमी पुनर्वसु युता यदि । सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत् ॥ नवमी चाष्टमी विद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः । उपोषणं नमम्यान्तु दशम्यामेव पारणम्” ॥ एतद्वचनद्वयं कालमाधवीयेऽपि किन्तु महापुण्येत्यत्र महाफलेति पाठः । शुद्धेति श्रवणात् सर्वत्र शुद्धाया मृक्षादरो न विद्धायामिति अतएवाष्टमीविद्धा नवमी सनक्षत्रापि नोपोष्येति माधवाचार्य्यः । सैव तादृश्येव न तु विद्धा । यदा तु परदिने एकादश्यां दशमी पारणयोग्या तदा दशमी युक्ता नवम्युपोष्या वैष्णवैर्विष्णुपरायणैरिति श्रवणात् अवैष्णवैस्तु अष्टमीविद्धैव ग्राह्या यदा तु पूर्वदिने अष्टमीविद्धा नवमी परत्र दशमी युता नवमी एकादशी दिने च दशमी न पारणयोग्या तदा नक्षत्रयोगायोगेऽप्यष्टमीविद्धैव ग्राह्या परदिने दशम्यामेव पारणमिति नियमात् । तथा च रामार्चनचन्द्रिकायां दशम्यादिषु वृद्धिश्चेत् त्याज्या विद्धैव वैष्णवैः । ‘तदन्येषान्तु सर्वेषां व्रतं तत्रैव निश्चितम् । दशम्यामेव शब्देन दशमीं नैव लङ्घयेत् ॥ निश्चित्यैवं विचारेण नवमीव्रतमाचरेत्’ इति कारिकाभ्यामगस्त्यसंहिताव्याख्यानम् । वस्तुतस्तु दशमीपारणसत्त्वे सर्वैरेवाष्टमी विद्धा नोपोष्या विष्णुपरायणैरिति तु विष्णुपरायणत्वेन भवितव्यमित्युपदेश परं न तु कर्त्तृविशेषणम् । अगस्त्येनावैष्ण-

वस्य विद्धोपवासानुपदेशात् । कर्त्तृभेदे विधिद्वय कल्पनापत्तेश्च अतएव माधवाचार्य्येण सामान्यत एव विद्धा निषिद्धा ।

अगस्त्यसंहितायामस्य नित्यत्वमाह "प्राप्ते श्रीरामनवमीदिने मर्त्यो विमूढधीः । उपोषणं न कुरुते कुम्भीपाकेषु पच्यते ॥ यस्तु रामनवम्यान्तु भुङ्क्ते मोहाद्विमूढधीः । कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः" ॥ अत्र मर्त्य इत्युपादानात् नरमात्रस्याधिकारः । एवञ्च "कुर्य्याद्रामनवम्यां य उपोषणमतन्द्रितः । मातुर्गर्भमवाप्नोति नैव रामो भवेत् स्वयम् ॥ तस्मात् सर्वात्मना सर्वे कृत्वैवं नवमीव्रतम् । मुच्यन्ते पातकैः सर्वैर्यान्ति ब्रह्म सनातनम्" ॥ इति फलकीर्त्तनं प्रागुक्तसंयोगपृथक्त्वन्यायात् सिद्धम् । अगस्त्यसंहितायां "शालग्रामशिलायाञ्च तुलसीदलकल्पिता । पूजा श्रीरामचन्द्रस्य कोटिकोटिगुणाधिका" ॥ तत्रानुष्ठानमगस्त्यसंहितातः संक्षिप्य लिख्यते । कृतप्रातःस्नानादिः "उपोष्य नवमीन्त्वद्य यामेष्वष्टसु राघव ! । तेन प्रीतो भव त्वं भो ! संसारात्त्राहि मां हरे" ! ॥ इति निवेद्य । "कोमलाङ्गं विशालाक्षमिन्द्रनीलसमप्रभम् । दक्षिणांशे दशरथं पुत्रावेष्टनतत्परम् ॥ पृष्ठतो लक्ष्मणं देवं सच्छत्रं कनकप्रभं पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ तालवृन्तकरावुभौ । "अग्रे व्यग्रं हनूमन्तं रामानुग्रहकाङ्क्षिणम्" ॥ एवं ध्यात्वा श्रीरामं पूजयेत् । स्नानमन्त्रस्तु "इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चैव नैरृतो वरुणोऽनिलः । कुवेर ईशो ब्रह्माऽहिर्दिक्पालाः स्नापयन्तु ते" ॥ अहिरनन्तः कौशल्यां पूजयेत् । मन्त्रस्तु "रामस्य जननी चासि राममयमिदं जगत् । अतस्त्वां पूजयिष्यामि लोकमातर्नमोऽस्तु ते" ॥ तथा "नमो दशरथायेति पूजयेत् पितरं ततः । ततोऽनुज्ञाप्य देवेशं परिवारान् समर्चयेत् । पूर्वषट्कोणकोणेषु हृदयादीनि च क्रमात्" ॥ हृदयादीनि यथा रां हृदयाय नमः रीं शिरसे स्वाहा रूं शिखायै वषट् रैं कवचाय हुं रौं नेत्राभ्यां वौषट् रः अस्त्रायफट् इति । तथा "हनूमन्तं ससुग्रीवं भरतं सविभीषणम् । लक्ष्मणाङ्गदशत्रुघ्नं जाम्बवन्तं दलादिषु ॥ धूम्रं जयन्तं विजयं सुराष्ट्रं राष्ट्रवर्द्धनम् अकोपं धूम्रपालाख्यं सुमन्त्रं दलमध्यतः । दलाग्रे लोकपालांश्च तद-

स्त्राणि तदग्रतः" ॥ लोकपाला इन्द्रादयो दश तदस्त्राणि वज्रशक्ति दण्ड खड्गपाश अङ्कुशगदा शूल चक्र पद्मानि। मध्याह्ने जन्म भावयेत्। "उच्चस्थे ग्रहपञ्चके सुरगुरौ सेन्दौ नवम्यान्तिथौ लग्ने कर्कटके पुनर्वसुदिने मेषं गते पूषणि। निर्दग्धुं निखिलाः पलाशसमिधो मध्यादयोध्यारणेराविर्भूतमभूदपूर्वविभवं यत्किञ्चिदेकं महः" ॥ पलाशा राक्षसाः "मत्वैवं वादयेद्वाद्यानर्घ्यं दद्याज्जगत्पतेः। फलपुष्पाम्बुसम्पूर्णं गृहीत्वा शङ्खमुत्तमम्। अशोकरत्नकुसुमैर्युक्तञ्च तुलसीदलैः" ॥ मन्त्रस्तु "दशाननवधार्थाय धर्मसंस्थापनाय च। दानवानां विनाशाय दैत्यानां निधनाय च ॥ परित्राणाय साधूनां रामो जातः स्वयं हरिः। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं भ्रातृभिः सहितो मम ॥ पुष्पाञ्जलिं पुनर्दत्त्वा यामयामेष्वतन्द्रितः। पूजयेद्विधिवद्भक्त्या दिवारात्रं नयेद्बुधः" ॥

तदयं संक्षेपः। शुद्धायां नक्षत्रयुक्तायां विवादाभावः विद्धायान्तु एकादशीदिने दशमीपारणयोग्या न चेत् तदा नक्षत्रयोगायोगेऽपि अष्टमीविद्धायां पारणयोग्या चेत् तदा अष्टमी विद्धां त्यक्त्वा परेऽहनि उपवासः।

अथ दशमी। सा च शुक्ला एकादश्या कृष्णा तु नवम्यायुता ग्राह्या। यथा अङ्गिराः "सम्पूर्णा दशमी कार्य्या पूर्वया परयाथवा। युक्ता न दूषिता यस्मादिति सा सर्वतोमुखी" ॥ यथा सम्पूर्णा दोषरहिता तथा विद्धापीति विकल्पे व्यवस्थापयति विष्णुधर्मोत्तरीयं "शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः। कृष्णपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामस्तमितो रविः" ॥ ब्रह्मपुराणब्रह्मवैवर्त्तयोः। "ज्यैष्ठस्य शुक्लदशमी संवत्सरमुखी स्मृता। तस्यां स्नानं प्रकुर्वीत दानञ्चैव विशेषतः ॥ यां काञ्चित् सरितं प्राप्य दद्याद्दर्भैस्तिलोदकम्। मुच्यते दशभिः पापैः सुमहापातकोपमैः" ॥ अत्र केवलदशम्यां नदीमात्रे दर्भकरणकतिलतर्पणाङ्गकस्नानाद्दशविधपापक्षयः फलम् एवं दानादपि वस्तुतस्तु वक्ष्यमाणभविष्ये जाह्नवीपदश्रवणात् हेतुमन्निगदस्वरसाच्च। ब्रह्मवैवर्त्तेऽपि सरित्पदं जाह्नवीपरम् अन्यथा नानाविधिः स्यात्। यां काञ्चिदिति तु जाह्नवी-

स्नापकम् अन्यथा कृत्यास्नानेऽपि दशविधपापक्षयः स्यात् मन्त्रलिङ्गे जाह्नवीपदश्रवणाच्च । गङ्गामधिकृत्य ब्राह्मे "शुक्लपक्षस्य दशमी ज्यैष्ठे मासि द्विजोत्तम । हरते दश पापानि तस्माद्दशहरा स्मृता" ॥ अत्र केवलदशम्यां दशविधपापक्षयः फलम् । भविष्ये "ज्यैष्ठशुक्लदशम्यान्तु हस्तयोगेन जाह्नवी । हरते दशपापानि तस्माद्दशहरोच्यते" ॥ दशपापानीति दशजन्मकृतपापानीति विशेषणीयमाह पराशरभाष्ये यमः । "ज्यैष्ठे मासि सिते पक्षे दशम्यां हस्तयोगतः । दशजन्माऽघहा गङ्गा दशपापहरा स्मृता" ॥ अत्र दशजन्मकृतदशविधपापक्षयः फलम् । अत्र "प्राप्ते कर्मणि नानेको विधातुं शक्यते गुणः । अप्राप्ते तु विधीयन्ते बहवोऽप्येकयत्नतः" इति न्यायेन हस्तान्वित गङ्गारूपगुणद्वयविशिष्ट दशमी विधेयस्मिन्नहनि तल्लाभस्तत्र स्नानम् उभयदिने तु तल्लाभे परदिन एव अत्रापि पूर्वदिने वक्ष्यमाणकुजवारलाभे तत्रापि स्नानं वारस्योभयत्रालाभात् । ततश्च पूर्वदिने तथाविधस्नानं कृत्वा परदिने केवल दशम्यामपि दशविधपापक्षयकामेन स्नातव्यम् । शङ्खः "ज्यैष्ठे मासि क्षितिसुतदिने शुक्लपक्षे दशम्यां हस्ते शैलान्निरगमदियं जाह्नवी मर्त्यलोकम् । पापान्यस्यां हरति च तिथौ सा दशेत्याहुरार्य्याः पुण्यं दद्यादपि शतगुणं वाजिमेधायुतस्य" ॥ भौम हस्तायुक्तदशम्यां गङ्गास्नानाद्दशविधपापक्षय शतगुण वाजिमेधायुतजन्य पुण्य समपुण्यं फलम् । राजमार्त्तण्डे वाल्मीकिः । "अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः । परदारोपसेवा च कायिकं त्रिविधं स्मृतम् ॥ पारुष्यमनृतञ्चैव पैशुन्यञ्चापि सर्वशः । असम्बन्धप्रलापश्च वाङ्मयं स्याच्चतुर्विधम् ॥ परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम् । वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम् ॥ एतानि दश पापानि प्रशमं यान्तु जाह्नवि ! । स्नातस्य मम ते देवि ! जले विष्णुपदोद्भवे ॥ विष्णुपादार्घ्यसम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि । धर्मद्रवीति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि !" ॥ अत्र मन्त्रलिङ्गेन प्रणवपूर्वकाण्येतानि सामान्यस्नानमन्त्रान्ते मज्जनस्यादौ पाठ्यानि "आगन्तुकानामन्तेऽभिनिवेशः" इति न्यायात्

"मन्वान्ते कर्मसन्निपातः" इति न्यायात् "मन्वान्ते कर्मादीनि सन्निपातयेत्" इत्यापस्तम्बीयाच्च। हिंसापैशुन्यादिभेदमाह कामधेनौ देवलः। "कायक्लेशं मनोदुःखं वधं वा प्राणिनां पुनः। यः प्रवर्त्तयति द्वेषात् सा हिंसेति समासतः। यज्ञार्थं ब्राह्मणैर्वध्याः प्रशस्ता मृगपक्षिणः। भृत्यानाञ्चैव वृत्त्यर्थमगस्त्यो ह्याचरत् पुरा"॥ तथा "परुषवचनमपवादः पैशुन्यमनृतं वृथालापो निष्ठुरवचनमिति वाङ्मयानि षट्। परेषां देश जाति कुल विद्याशिल्परूप वृत्ताचार परिच्छद शरीर कर्मजीविनां प्रत्यक्षदोषवचनं परुषम्॥ यच्चान्यत् क्रोधसन्तापत्राससंजननं वचः। परुषं तच्च विज्ञेयं यच्चान्यच्च तथाविधम्॥ चक्षुष्मन्निति लुप्ताक्षं चण्डालं ब्राह्मणेति च। प्रशंसानिन्दनं द्वेषात् परुषान्न विशिष्यते"॥ तेषामेव परुषवचनानां परोक्ष मुदाहरणमपवादः। गुरुनृपतिबन्धुभ्रातृमित्रसकाशे अर्थोपघातार्थं दोषोपाख्यान पैशुन्यम्। अनृतं द्विविधमसत्यमसंवादश्चेति। "देशराष्ट्रप्रसङ्गाच्च परार्थे परिकल्पनात्। नर्महासप्रसङ्गाच्च भाषणं व्यर्थभाषणम्॥ गुह्याङ्गमिथ्यसंज्ञानां वचनं निष्ठुरं विदुः। यदन्यद्वा वचो नीचं स्त्रीपुंसोर्मिथुनाश्रयम्॥ इत्येवं षट्विकल्पस्य दुष्टवाक्यस्य भाषणात्। इह वा मुत्र वा क्रूरमनर्थं प्रतिपद्यते"॥ प्रशंसानिन्दन प्रशंसया निन्दनम् अत्र चतुर्विध षड्विधयोरविरोधः। समक्षत्वासमक्षत्वभेदानादरेण पारुष्यापवादयोरैक्यात् निष्ठुरस्य परुषान्तर्भावाच्च। असम्बन्धप्रलापव्यर्थभाषणयोः पर्य्यायत्वात् नार्थान्तरत्वम्। अभिध्यानमपहरणार्थमिति शेषः। वितथे असत्यभूते वस्तुनि अभिनिवेशः पुनः सङ्कल्पः। स्मृतितत्त्वे महादेवीं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणीम्। नत्वा वदति तत्पूजाकालं श्रीरघुनन्दनः।

अथ दुर्गोत्सवः। मार्कण्डेयपुराणे "शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी" इति यथा "मृताहनि तु कर्त्तव्यं प्रतिमासन्तु वत्सरम्। प्रतिसंवत्सरञ्चैव आद्यमेकादशेऽहनि" इति याज्ञवल्क्यवचने श्राद्धस्य प्रति संवत्सरकर्त्तव्यत्व श्रुतेः यथा वा "प्रति संवत्सरमाग्रहायणेष्टिं कुर्य्यात्" इति प्रति

संवत्सरकर्त्तव्यत्व श्रुतेः सांवत्सरिकं विशेषणं प्रतीयते तथात्रापीति वार्षिकीति श्रवणात् "प्रति संवत्सरं कुर्य्यात् स्थापनञ्च विसर्जनम्" इत्यत्र प्रतिसंवत्सर श्रुतेः प्रागुक्त शरत्काल इति श्रुतेश्च वर्षशरदोर्निमित्तत्वेन वार्षिकशरत्कालीनेति दुर्गापूजाया विशेषणं प्रतीयते। ततश्च वार्षिकशरत्कालीनदुर्गापूजा एकवचनान्तनिर्देशात्तत्तत्कल्पोक्त नानादिनसाध्याप्येकैव प्रतीयते। "शारदीया महापूजा चतुःकर्ममयी शुभा। तां तिथित्रयमासाद्य कुर्य्याद्भक्त्या विधानतः" इति लिङ्गपुराणीये चतुःकर्ममयीत्यनेन चतुरवयवकत्वेन अभिधानात् स्नपनपूजन बलिदान होमरूपा वक्ष्यमाणयुक्तेश्च। सा च प्रतिवर्षकर्त्तव्या दुर्गाया इत्युपक्रम्य "द्विशरीरे चरे चैव लग्ने केन्द्रगते रवौ। वर्षे वर्षे विधातव्यं स्थापनञ्च विसर्जनम्" इति देवीपुराणवचने वीप्साश्रुतेः अत्र द्विशरीरे कन्यायां चरे तुलायां केन्द्रगते लग्नगते रवौ अन्यद्विशरीरादेः पूर्वाह्णेऽसम्भवात् "संवत्सरव्यतीते तु पुनरागमनाय च" इति मन्त्रलिङ्गाच्च। सा पूजा नित्या वीप्साश्रुतेः अकरणे प्रत्यवायश्रुतेश्च। यथा शारदीया महापूजामधिकृत्य कालिकापुराणे "यो मोहादथवालस्याद्देवीं दुर्गां महोत्सवे। न पूजयति दम्भाद्वा द्वेषाद्वाप्यथ भैरव॥ क्रुद्धा भगवती तस्य कामानिष्टान्निहन्ति वै"। विधिसमभिव्याहृत फलश्रुतेः काम्या च। यथा तत्रैव "ज्ञात्वैवं परमामापुर्निर्वृतिं त्रिदिवौकसः। एवमन्यैरपि सदा देव्याः कार्य्यं प्रपूजनम्॥ विभूतिमतुलां लब्धुं चतुर्वर्गप्रदायिकाम्"। पूजयेदित्यधिकृत्य भविष्योत्तरेऽपि "भवानीतुष्टये पार्थ संवत्सर सुखाय च। भूतप्रेत पिशाचानां नाशार्थञ्चोत्सवाय च"॥ देवीपुराणे "तुष्टायां नृपदुर्गायां निमिषार्द्धेन यत् फलम्। न तद्वक्तुं महेशोऽपि शक्तो वर्षशतैरपि"॥ एवञ्चातुल विभूत्यादिमिलितं वा भवानीप्रीतिर्वा तत्तत् कल्पोक्तं वा फलं निर्देश्यमिति। एवञ्च तत्तत्कल्पकरणे तत्तत्तिथि पूजायां द्रव्यदानादिषु यत्तदन्तर्गतं फलं तत्तत्श्राद्धीय द्रव्यदानवदानुषङ्गिकम् अतो न तत्र काम्याभिलाषापेक्षा बलिघाते तु "ततो देवीं समुद्दिश्य काममुद्दिश्य चात्मनः"। इति कालिका-

पुराणे उद्दिश्येत्यभिधानात् काम्याभिलाप इति। ततश्च संयोगपृथक्त्व न्यायादुभयरूपेयम्। ततश्च काम्यतया पूजने कृते प्रसङ्गान्नित्य पूजासिद्धिः। एवं बलिहोमाद्यङ्गेऽपि।

एवं कर्मकुर्वतां यत्तादृशं फलं न दृश्यते तत् कलिस्वभावात्। तथा च विष्णुपुराणं "यदा यदा सतां हानिर्वेदमार्गानुसारिणाम्। तदा तदा कलेर्वृद्धिरनुमेया विचक्षणैः॥ आरम्भाश्चावसीदन्ति यदा धर्मभृतां नृणाम्। तदानुमेयं प्राधान्यं कलेर्मैत्रेय पण्डितैः"॥ मत्स्यपुराणञ्च "यत्राधर्मश्चतुष्पादः स्याद्धर्मः पादविग्रहः। कामिनस्तमसाच्छन्ना जायन्ते यत्र मानवाः॥ अहङ्कार गृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबान्धवाः। विप्राः शूद्रसमाचाराः सन्ति सर्वे कलौ युगे"॥ अत्र फलजनकापूर्वैक्यात्कर्मणोऽप्यैक्यं अन्यथा सङ्कल्पावाहनविसर्जनदक्षिणादिभेदः स्यात्। ततश्च श्वो यियक्षुणा अधिवासदिनेऽङ्गाधिकाराय तद्बीजीभूतकाम्यप्रधानाधिकार सम्पादक कुशतिलजलत्यागसहितः काम्याभिलापपूर्वक प्रधानसङ्कल्पः कार्य्यः। इति द्वैतनिर्णयोक्त वदत्रापि काम्यत्वेन नित्यत्वेन वा करणे व्रतत्वात्तत्तत् कल्पारम्भदिने बोधनादिप्रागेव सङ्कल्पो न तु दिनान्तरे। शरत्काले महापूजा इत्यत्र एकवचनश्रुतेरेक प्रयोगसाध्यत्वे नैककर्मतापन्न क्रियाकलापजन्यस्य वाक्यार्थीभूतनियोगस्यैक्याद्दर्शवत् न तु प्रत्येकं तत्तत्कर्मणां संकल्पः कलिकापूर्वजनकत्वादैन्द्रदध्यादिहोमवत्। अतएव जिकनधनञ्जय संग्रहयोः। "आरभ्य तस्यां दशमीञ्च यावत् प्रपूजयेत् पर्वतराजपुत्रीं" इत्युक्तम्। अतएव "कन्यासंस्थे रवौ शक्र शुक्ला मारभ्य नन्दिकाम्" इत्युपक्रम्य "महानवम्यां पूजेयं सर्वकामप्रदायिनी" इत्यन्तेन देवीपुराणीयेन अपि षष्ठीतः प्रभृति नवमीपर्य्यन्तं पूजेयमित्येकत्वेनोक्तम्। तेन पञ्चम्यामेकभक्तं ततः षष्ठ्यां प्रातः संकल्प इति रत्नाकरः। न च नन्दिकाप्रतिपदिति दुर्गाभक्तितरङ्गिण्युक्तं युक्तमिति वाच्यं महानवमीसन्निकृष्ट षष्ठीपरित्यागे प्रमाणाभावात् प्रतिपदुक्तावपि प्रतिपदादि क्रमेणैकत्वसिद्धेः प्रकृतार्थ निर्वाहाच्च। एवञ्चानेकाहसाध्यत्वेन तिथ्युल्लेखानन्तरमारभ्य दशमीं यावत्

प्रत्यहमिति वार्षिक शरत्कालीन दुर्गामहापूजनमिति च यथास्थानं वाक्ये प्रयोज्यं अन्यथा संकल्पकालीन तिथेरन्यदिनेऽसम्भवात्तदन्वयानुपपत्तेरिति सुधीभिर्भाव्यम्।

एवञ्च तत्रैव वक्ष्यमाणतत्तद्वचनात् कृष्णनवम्यादि प्रतिपदादि षष्ठ्यादि सप्तम्यादि महाष्टम्यादि केवल महाष्टमी केवल महानवमी पूजारूपाः कल्पा उन्नेयाः। तदनन्तरमशौचमपि न प्रतिबन्धकम्। "व्रतयज्ञ विवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे। आरब्धे सूतकं न स्यादनारब्धे तु सूतकम्॥ आरम्भो वरणं यज्ञे संकल्पो व्रतजापयोः। नान्दीश्राद्धं विवाहादौ श्राद्धे पाकपरिष्क्रिया निमन्त्रणन्तु वा श्राद्धे आरम्भः स्यादिति श्रुतिः" इति राघवभट्टधृतविष्णुवचनात् पाकपरिष्क्रियेति साग्निदर्शश्राद्धविषयं तत्र तस्य तदुद्धरणस्य असाधारणाङ्गत्वात्। संकल्प उक्तो हारीतेन यथा "मनसा संकल्पयति वाचाभिलपति कर्मणा चोपपादयति" इति भविष्यपुराणेन च "सङ्कल्पेन विना राजन् यत्किञ्चित् कुरुते नरः। फलञ्चाल्पाल्पकं तस्य धर्मस्यार्द्धक्षयो भवेत्"॥ ब्रह्मपुराणेनापि "आशास्य च शुभं कार्य्यमुद्दिश्य च मनोगतम्"। इत्यगस्त्यपूजने उक्तं मनोगतं शुभं फलम् आशास्य मनसा सङ्कल्प्य उद्दिश्य वाचा अभिलप्य कार्य्यं कर्मणा उपपाद्यम्। भविष्ये "शुक्तिशङ्खाश्महस्तैश्च कांस्यरूप्यादिभिस्तथा। सङ्कल्पो नैव कर्त्तव्यो मृण्मयेन कदाचन॥ गृहीत्वौडुम्बरं पात्रं वारिपूर्णं गुणान्वितम्। दर्भत्रयं साग्रमूलं फलपुष्पतिलान्वितम्॥ जलाशयारामकूपे सङ्कल्पे पूर्वदिङ्मुखः। साधारणे चोत्तरास्य ऐशान्यां निक्षिपेज्जलम्"॥ अत्र केवलहस्तनिषेधस्तु पात्रान्तरसद्भावविषयशङ्खादिसाहचर्य्यादेकहस्तपरो वा। "गृहीत्वौडुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः। उपवासन्तु गृह्णीयाद् यद्वा वार्य्येव धारयेत्"॥ इति वराहपुराणदर्शनादिति। अस्य व्रतत्वञ्च शारदीयपूजामुपक्रम्य "महाव्रतं महापुण्यं शङ्कराद्यैरनुष्ठितम्। कर्त्तव्यं सुरराजेन्द्र देवीभक्तिसमन्वितैः"॥ इति देवीपुराणवचनात्। "व्रती प्रपूजयेद्देवीं सप्तम्यादिदिनत्रये" इति भविष्यपुराणाच्च। दुर्गापूजाया व्रतत्वं व्यक्तं श्रीभागवते

"चैव हविष्यं भुञ्जाना: कात्यायन्यर्च्चनव्रतम्"। स्कान्दभविष्यपुराणयो: "शारदी चण्डिकापूजा त्रिविधा परिगीयते। सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु॥ सात्त्विकी जपयज्ञाद्यैर्नैवेद्यैश्च निरामिषै:। माहात्म्यं भगवत्याश्च पुराणादिषु कीर्त्तितम्॥ पाठस्तस्य जप: प्रोक्त: पठेद्देवीमना: प्रिये। राजसी बलिदानेन नैवेद्यै: सामिषैस्तथा॥ सुरामांसाद्युपहारैर्जपयज्ञैर्विना तु या। विना मन्त्रैस्तामसी स्यात् किरातानाञ्च सम्मता"॥ शरत्कालीनदुर्गापूजाधिकारे भविष्योत्तरीयं "ब्राह्मणै: क्षत्रियैर्वैश्यै: शूद्रैरन्यैश्च सेवकै:। एवं नानाम्लेच्छगणै: पूज्यते सर्वदस्युभि:"॥ देवीपुराणं "स्वयं वाप्यन्यतो वापि पूजयेत् पूजयेत वा"। पूजयेतेत्यात्मनेपदाद्धेतुनिजन्तता अत्र स्वयं करणासामर्थ्ये अन्यद्वारा तथाच दक्ष: "स्वयं होमे फलं यत्तु तदन्येन न जायते। ऋत्विक् पुत्रो गुरुर्भ्राता भागिनेयोऽथ विट्पति:। एभिरेव हुतं यत्तु तद्धुतं स्वयमेव हि"॥ विट्पतिर्जामाता एवञ्च ऋत्विगादीतरत्र फलन्यूनता। हयशीर्षपञ्चरात्रे "अर्च्चकस्य तपोयोगादर्च्चनस्यातिशायनात्। आभिरूप्याच्च बिम्बानां देव: सान्निध्यमृच्छति"॥ बिम्बानां प्रतिमानाम्। अत्राशौचादिशङ्कया बोधनादिनात् पूर्वं शुचि तत्कालजीवित्वरूपाधिकाराभावेऽपि यद्वरणादिकं क्रियते तत्कर्म्मकाले तस्य नारदोक्त स्वयं प्रवर्त्तनवत् प्रवर्त्तनाय न तु तदानीं प्रतिनिधीयते। अथवा "निक्षिप्याग्निं स्वदारेषु परिकल्प्यर्त्विजं तथा। प्रवसेत् कार्य्यवान् विप्रो वृथैव न चिरं क्वचित्"॥ इति छन्दोगपरिशिष्टोक्तवदत्रापि प्रतिनिधीयते एवञ्च वरणं विनापि यदि क्वचित् स्वयं प्रवर्त्तते तथापि तत्कर्म्मसिद्धिर्दक्षिणा च तस्मै शुचिकाले दातव्येति। तथाच विवादकल्पतरुरत्नाकरशान्तिदीपिकासु नारद: "ऋत्विक् च त्रिविधो दृष्ट: पूर्वजुष्ट: स्वयं कृत:। यदृच्छया च य: कुर्य्यादार्त्विज्यं प्रीतिपूर्वकम्"॥ यदृच्छया स्वेच्छया एतत् प्रपञ्चितं शुद्धितत्त्वे। अतएव शङ्खलिखितौ "राज्ञां पुरोहितोऽमात्य: शुद्धिस्तस्य तदाश्रया" नृपतीनामात्मप्रतिनिधीभूत: पुरोहितस्तेन नृपतेरशौचे पुरोहितस्याशौचाभावात् नृपते: शान्तिक-

पौष्टिकं पुरोहितेन स्वीयशुद्ध्या कर्त्तव्यमिति हारलताप्रभृतयः। पूजादिकन्तु शुचिकाले तदर्थोपकल्पितद्रव्येण कर्त्तव्यं यथा यमः "पूर्वसङ्कल्पितार्थे वा तस्मिन्नाशौचमिष्यते"। कृत्यचिन्तामणौ। "विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरामृतसूतके। पूर्वसङ्कल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दुष्यति"॥ स्वयं प्रवर्त्तमानादृत्विगादेरनुज्ञया प्रवर्त्तनात् फलाधिक्यम्। तथा कूर्म्मपुराणम् "ऋत्विक्पुत्रोऽथवा पत्नी शिष्यो वापि सहोदरः। प्राप्यानुज्ञां विशेषेण जुहुयाद्वा यथाविधि"॥

एवं विशेषयति श्रुतिः "अन्यैः शतकृताद्धोमादेकः पुत्रकृतो वरः। पुत्रैः शतकृताद्धोमादेको ह्यात्मकृतो वरः"॥ संवत्सरप्रदीपे "माहात्म्यं भगवत्याश्च पुराणादिषु कीर्त्तितम्। पठेच्च शृणुयाद्वापि सर्वकामसमृद्धये"॥ सर्वकामसमृद्धये तत्तदभिलषितसिद्धये। यत्र यद्यपि देवीमाहात्म्यपाठस्य "सकृत्कृते कृतः शास्त्रार्थः" इति न्यायात् सकृत्करणादेव तत्तत् फलसिद्धिर्ज्ञायते तथापि तत्फलबाहुल्याय पुनः पुनः पाठः वेदादौ तथादर्शनात् तथाच ब्रह्मवधप्रायश्चित्ते मनुः "पठेद्वा नियताहारस्त्रिर्वै वेदस्य संहिताम्। प्रायश्चित्तेऽवशिष्टेऽपि त्रिः पठेदघमर्षणम्" इति सरस्वतीस्तवेऽपि "पक्षद्वयेऽपि यो भक्त्या त्रयोदश्येकविंशतिम्। अविच्छेदं पठेद्धीमान् ध्यात्वा देवीं सरस्वतीम्"॥ नन्दिकेश्वरपुराणीयेन्द्राक्षीस्तवेऽपि "शतमावर्त्तयेद् यस्तु मुच्यते व्याधिबन्धनात्" इति जैमिनिरपि "फलस्य कर्म्मनिष्पत्तिस्तेषां लोकवत् परिमाणतः फलविशेषः स्यात्" इति यथा लौकिककर्षणादीनां बाहुल्येन फलाधिक्यं तथा वैदिकपाठादीनामपीत्यर्थः। "सङ्कल्पिते स्तोत्रपाठे संख्यां कृत्वा पठेत् सुधीः"। इति वाराहीतन्त्राच्च इन्द्राक्षीस्तवसरस्वतीस्तववत् चण्डीपाठस्यावृत्तौ फलभूमादिव्यक्तम्। वाराहीतन्त्रे "चण्डीपाठफलं देवि! शृणुष्व गदतो मम। एकावृत्त्यादिपाठानां यथावत् कथयामि ते॥ सङ्कल्पपूर्वं सम्पूज्य न्यस्याङ्गेषु मनून् सकृत्। पाठाद्बलिप्रदानाच्च सिद्धिमाप्नोति मानवः॥ उपसर्गोपशान्त्यर्थं त्रिरावृत्तं पठेन्नरः। ग्रहोपशान्त्यै कर्त्तव्यं पञ्चावृत्तं वरानने!॥ महाभये समुत्पन्ने

सप्तावृत्तं समुच्चयेत्। नवावृत्ताद्भवेच्छान्तिर्वाजपेयफलं भवेत्॥ राजवश्यायभूत्यै च रुद्रावृत्तमुदीरयेत्। अर्कावृत्तात् काम्यसिद्धिर्वैरिहानिश्च जायते॥ मन्वावृत्त्या रिपुर्वश्यस्तथा स्त्रीवश्यतामियात्। सौख्यं पञ्चदशावृत्त्या श्रियमाप्नोति मानवः॥ कलावृत्त्या पुत्रपौत्रधनधान्यागमं विदुः। राज्ञो भीतिविमोक्षाय रिपोरुच्चाटनाय च॥ कुर्य्यात् सप्तदशावृत्तं तथाष्टादशकं प्रिये!। महाव्रणविमोक्षाय विंशावृत्तं पठेत् सुधीः॥ पञ्चविंशावर्त्तनात्तु भवेद्बन्धविमोक्षणम्। सङ्कटे समनुप्राप्ते दुश्चिकित्स्यामये तथा॥ जातिध्वंसे कुलोच्छेदे आयुषो नाशमागते। वैरिवृद्धौ व्याधिवृद्धौ धननाशे तथा क्षये॥ तथैव त्रिविधोत्पाते तथा चैवातिपातके। कुर्य्याद् यत्नात् शतावृत्तं ततः सम्पद्यते शुभम्॥ श्रियोवृद्धिः शतावृत्त्या राज्यवृद्धिस्तथापरा। मनसा चिन्तितं देवि! सिद्ध्येदष्टोत्तराच्छतात्॥ शताश्वमेधयज्ञानां फलमाप्नोति सुव्रते। सहस्रावर्त्तनाल्लक्ष्मीरावृणोति स्वयं स्थिरा॥ भुक्त्वा मनोरथान् कामान् नरो मोक्षमवाप्नुयात्। यथाश्वमेधःक्रतुराट् देवानाञ्च यथा हरिः॥ स्तवानामपि सर्वेषां तथा सप्तशती स्तवः। अथवा बहुनोक्तेन किमेतेन वरानने!। चण्ड्याः शतावृत्तपाठात् सर्वाः सिद्ध्यन्ति सिद्धयः"॥ पठनश्रवणवत् पाठनश्रावणेऽपि कार्य्ये "प्रयोजयिता अनुमन्ता कर्त्ता चेति सर्वे स्वर्गनरकफलभोक्तारो यो भूय आरभते तस्मिन् फले विशेषः" इत्यापस्तम्बेनापि प्रवृत्तप्रावर्त्तकलक्षणप्रयोजकस्यापि फलश्रुतेः। अत्र पाठयिष्ये श्रावयिष्ये इति प्रयोगः। एवं भारतादावपि अत्राविशेषात् सर्वेषामेवाधिकारः द्विजानां पाठश्रवणयोः शूद्रस्य श्रवणेऽधिकारः। अत्र काम्यत्वेऽपि स्मार्त्तकर्म्मत्वेन प्रतिनिधिसम्भवात् यथायथं पठिष्यामि श्रोष्यामि इति सङ्कल्प्य तैः प्रतिनिधीयते। तथाच अधिकरणमालाकृन्माधवाचार्य्यधृतपराशरभाष्ये शातातपः। "श्रौतं कर्म स्वयं कुर्य्यादन्योऽपि स्मार्त्तमाचरेत्। अशक्तौ श्रौतमप्यन्यः कुर्य्यादाचारमन्ततः"॥ एतद्वचनं काम्येऽपि प्रतिनिधिविधायकं नित्यनैमित्तिकमात्रपरत्वे तु श्रौतस्मार्त्तभेदेनोपादानं व्यर्थं स्यात्तयोरविशेषादेव प्रतिनिधिलाभात्।

अन्तत उपक्रमात् परतः। "काम्ये प्रतिनिधिर्नास्ति नित्यनैमित्तिके हि सः। काम्येषूपक्रमादूर्द्ध्वं केचिदिच्छन्ति सत्तमाः"॥ इत्येकवाक्यत्वात् ततश्च स्मार्त्तं काम्यं प्रतिनिधिमाप्यारभ्यते न तु श्रौतमिति स्थितम्।

माहात्म्यादिपाठे तु नारायणाय नमः नराय नमः नरोत्तमाय नमः देव्यै सरस्वत्यै नमः व्यासाय नमः इति नत्वा पाठ्यं "नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम्। देवीं सरस्वतीञ्चैव ततो जयमुदीरयेत्" इति विधेः भागवतीयसूतोक्तौ उदीरयेदित्यस्य स्वयं तथोदीरयन्त्याम् पौराणिकानुपशिक्षयतीति श्रीधरस्वामिव्याख्यानमनुशासनविरुद्धञ्चैवेत्यत्र व्यासमिति भागवते पाठात्। चकारेण व्यासो लब्धः भागवते तु सरस्वतीञ्चैवेत्यत्र सरस्वतीं व्यासमिति साक्षाल्लिखितम्। जयपदार्थमाह ब्रह्मचारिकाण्डे भविष्यपुराणम् "अष्टादशपुराणानि रामस्य चरितं तथा। विष्णुधर्मादिशास्त्राणि शिवधर्माश्च भारत॥ कार्ष्णञ्च पञ्चमो वेदो यन्महाभारतं स्मृतम्"॥ कार्ष्णं कृष्णद्वैपायनप्रणीतं "सौराश्च धर्मा राजेन्द्र! मानवोक्ता महीपते। जयेति नाम एतेषां प्रवदन्ति मनीषिणः"॥ जयत्यनेन संसारमिति जयस्तत्तद्ग्रन्थः। एवञ्चार्थानवलोकनादाचारादादावेषः श्लोकः पठ्यते। मत्स्यसूक्ते वाराहीतन्त्रे च। "जप्त्वा च प्रणवञ्चादौ स्तोत्रं वा संहितां पठेत्। अन्ते च प्रणवं दद्यादित्युवाचादिपूरुषः॥ सर्वत्र पाठे विज्ञेयोऽन्यथा विफलं भवेत्। शुद्धेनानन्यचित्तेन पठितव्यं प्रयत्नतः॥ न कार्य्यासक्तमनसा कार्य्यं स्तोत्रस्य वाचनम्। आधारे स्थापयित्वा च पुस्तकं प्रजपेत् सुधीः॥ हस्तसंस्थापनादेव यस्मादल्पफलं लभेत्। स्वयञ्च लिखितं यच्च कृतिना लिखितं न यत्॥ अब्राह्मणेन लिखितं तच्चापि विफलं भवेत्। ऋषिच्छन्दादिकं न्यस्य पठेत् स्तोत्रं विचक्षणः॥ स्तोत्रे न दृश्यते यत्र प्रणवन्यासमाचरेत्। संकल्पिते स्तोत्रपाठे संख्यां कृत्वा पठेत् सुधीः॥ अध्यायं प्राप्य विरमेन्न तु मध्ये कदाचन। कृते विरामे मध्ये तु अध्यायादिं पठेन्नरः"॥

ततश्च मार्कण्डेयपुराणीयदेवीमाहात्म्यपाठस्यादौ ऋषिच्छन्दादिकं पठेत् तद्यथा प्रथमचरितस्य "ब्रह्मऋषिर्महाकालीदेवता गायत्री छन्दो नन्दाशक्ती रक्तदन्तिकावीजमग्निस्तत्त्वं महाकालीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः"। मध्यमचरितस्य। "विष्णुर्ऋषिर्महालक्ष्मीर्देवता अनुष्टुप्छन्दः शाकम्भरीशक्तिर्दुर्गावीजं सूर्य्यस्तत्त्वं महालक्ष्मीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः"। उत्तरचरितस्य "रुद्रऋषिः सरस्वतीदेवता उष्णिक्छन्दोभीमाशक्तिर्भ्रामरीवीजं वायुस्तत्त्वं सरस्वतीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः" नैयतकालिककल्पतरौ भविष्यपुराणम् "इतिहासपुराणानि श्रुत्वा भक्त्या विशांपते। मुच्यते सर्वपापेभ्यो ब्रह्महत्यादिभिर्विभो॥ ब्राह्मणं वाचकं विद्यान्नान्यवर्णजमादरात्। श्रुत्वान्यवर्णजाद्राजन् वाचकान्नरकं व्रजेत्"॥ तथा "देवार्च्चामग्रतः कृत्वा ब्राह्मणानां विशेषतः। ग्रन्थिश्च शिथिलं कुर्य्याद्वाचकः कुरुनन्दन॥ पुनर्बध्नीत तत्सूत्रं न मुक्ता धारयेत् क्वचित्। हिरण्यं रजतं गाश्च तथा कांस्योपदोहनाः॥ दत्त्वा तु वाचकायेह श्रुतस्याप्नोति तत्फलम्"। कांस्योपदोहनाः कांस्यक्रोड़ाः "वाचकः पूजितो येन प्रसन्नास्तस्य देवताः"। तथा "ज्ञात्वा पर्वसमाप्तिञ्च पूजयेत् वाचकं वुधः। आत्मानमपि विक्रीय य इच्छेत् सफलं कृतम्"॥ तथा "विस्पष्टमद्रुतं शान्तं स्पष्टाक्षरपदं तथा। कलस्वरसमायुक्तं रसभावसमन्वितम्॥ वुध्यमानः सदा शुद्धो ग्रन्थार्थं कृत्स्नशो नृप। ब्राह्मणादिषु सर्वेषु ग्रन्थार्थं चार्पयेन्नृप॥ य एवं वाचयेद्ब्रह्मन् स विप्रो व्यास उच्यते"। तथा "सप्तस्वरसमायुक्तं कालेकाले विशांपते। प्रदर्शयन्रसान् सर्वान् वाचयेद्वाचको नृप"॥ देवीपुराणे "इषे मास्यसिते पक्षे कन्याराशिगते रवौ। नवम्यां वोधयेद्देवीं क्रीड़ाकौतुकमङ्गलैः॥ ज्येष्ठानक्षत्रयुक्तायां षष्ठ्यां विल्वाभिमन्त्रणम्। सप्तम्यां मूलयुक्तायां पत्रिकायाः प्रवेशनम्। पूर्वाषाढ़ायुताष्टम्यां पूजा होमाद्युपोषणम्॥ उत्तरेण नवम्यान्तु वलिभिः पूजयेच्छिवाम्। श्रवणेन दशम्यान्तु प्रणिपत्य विसर्जयेत्"॥ अत्र नवम्यादिकल्प उक्तः। तथा "यावद्भूर्वायुराकाशं जलं वह्नि शशिग्रहाः। तावच्च चण्डिका पूजा भवि-

ष्यति सदा भुवि ॥ प्रावृट्काले विशेषेण आश्विने ह्यष्टमीषु च। महाशब्दो नवम्यान्तु लोके ख्यातिं गमिष्यति" ॥ अनेन महाष्टमी-महानवमीकल्पावुक्तौ। सङ्कल्पोऽपि तद्रूपेण। अत्र कन्याराशिगते रवावित्यस्याभिधानं फलाधिक्यार्थं प्रायिकाभिप्रायं वा न तु नियमार्थम्। तथात्वे सौराश्विने प्रतिवर्षं कृष्णनवमीमारभ्य शुक्लदशमीं यावत् पूजाक्रमस्यानुपपत्तेः। अत्र कृष्णादित्वादिषु इत्यपि गौण आश्विनपरम्। अतएव कालकौमुद्यादिधृतं "कर्किण्यर्के हरौ सुप्ते शक्रध्वजक्रियाश्विने। तुलायां बोधयेद्देवीं वृश्चिके तु जनार्दनम्" ॥ इति बोधयेदिति षष्ठ्यामिति शेषः। अत्रापि नवमीबोधनं कन्यायामेव तथैव सम्भवात् तेन सिंहार्के कन्यार्के तुलार्केऽप्याश्विनत्वेन वाक्यरचना महाष्टमी-महानवम्योरपि मासपक्षोल्लेखः। मासपक्षतिथीनामिति वचनात् अमावास्यापौर्णमास्योः पक्षोल्लेखवत् एतेन वारुण्यादिवत् महाष्टम्यादावपि विशिष्टविधित्वान्न मासाद्युल्लेख इति निरस्तम्।

अत्र कालिकापुराणे नवम्यां बोधनमष्टादशभुजायाः षष्ठ्यां बोधनं दशभुजायाः विशेष्याभिधानात्तथैवेति वदन्ति तन्न कालिकापुराण एव कामाख्यापञ्चमूर्त्तिप्रकरणे "शरत्काले पुरा यस्मात् नवम्यां बोधिता सुरैः। शारदा सा समाख्याता पीठे लोके च नामतः" ॥ इत्युपक्रम्य "रूपमस्याः पुरा प्रोक्तं सिंहस्थं दशबाहुभिः"। तथा "रूपन्त्वेवं दशभुजं पूर्वोक्तन्तु विचिन्तयेत्"। इति तथा "पञ्चाननं कासरञ्च दैत्यमग्रे प्रपूजयेत्"। इत्यनेन सिंहमहिषयुक्ताया दशभुजाया अपि नवम्यां बोधनमुक्तम्। अतएव तत्रैव "उग्रचण्डेति या मूर्त्तिर्भद्रकाली त्वहं पुनः। यया मूर्त्या त्वां हनिष्ये सा दुर्गेति प्रकीर्त्तिता ॥ एतासु मूर्त्तिषु सदा पादलग्नो नृणां सदा। पूज्यो भविष्यसि त्वं वै देवानामपि रक्षसाम्" ॥ इत्यनेन कात्यायन्या दुर्गायाः पादलग्नत्वेन महिषासुरस्य पूज्यत्वं पूर्वमुक्तम्। अतएवाष्टादशभुजायाः पादलग्नत्वं महिषासुरस्य न सम्भवतीति तस्माद्दशभुजाया नवम्यां षष्ठ्यां वा बोधनमिति।

अत्र शरत्कालबोधनीयत्वेन शारदापदव्युत्पत्तेस्तत्पदं तालव्यादिसारं ददातीति व्युत्पत्तिस्तु काल्पनिकी।

एवं प्रतिवर्षकर्त्तव्यत्वादार्द्रादि नक्षत्रालाभेऽपि पूजा कार्य्या नक्षत्रयोगस्तु फलातिशयाय तथा च लिङ्गपुराणं "मूलाभावेऽपि सप्तम्यां केवलायां प्रवेशयेत्। तथा तिथ्यन्तरेष्वेव ऋक्षेषु तु फलोच्चयः"। देवलः "तिथिनक्षत्रयोर्योगे द्वयोरेवानुपालनम्। योगाभावे तिथिर्ग्राह्या देव्याः पूजनकर्मणि"। कृष्णनवम्यामार्द्रायोगो विधौ मन्त्रे च श्रूयते तथा च लिङ्गपुराणम्। "कन्यायां कृष्णपक्षे तु पूजयित्वार्द्रभे दिवा। नवम्यां बोधयेद्देवीं महाविभवविस्तरैः"। चतुर्थचरणे गीतवादित्रनिस्वनैः इति कालिकापुराणे पाठः। "इषे मास्यसिते पक्षे नवम्यामार्द्रयोगतः। श्रीवृक्षे बोधयामि त्वां यावत् पूजां करोम्यहम्। ऐं रावणस्य बधार्थाय रामस्यानुग्रहाय च। अकाले ब्रह्मणा बोधो देव्यास्त्वयि कृतः पुरा" इति मन्त्रलिङ्गञ्च। अकाल इति तु रात्रित्वेन दक्षिणायनस्य॥ तथा च श्रुतिः। "तपस्तपस्यौ शिशिरावृतुः। मधुश्च माधवश्च वासन्तिकावृतुः। शुक्रश्च शुचिश्च ग्रैष्मावृतुः। अथैतदुत्तरायणं देवानां दिनं नभाश्च नभस्यश्च वार्षिकावृतुः इषश्च ऊर्जश्च शारदावृतुः। सहाश्च सहस्यश्च हैमन्तिकावृतुः। अथैतद्दक्षिणायनं देवानां रात्रिः" इति एवञ्च "रात्रावेव महामाया ब्रह्मणा बोधिता पुरा। तथैव च नराः कुर्य्युः प्रतिसंवत्सरं नृप" इति अस्याप्येतद्विषयम्। अतएव लिङ्गपुराणे दिवेत्युक्तम्। एवञ्च कालिकापुराणेऽपि बोधने रात्रावितिपदं देवता रात्रिपरम्। ततश्च पूर्वाह्णे नवम्यामार्द्रानक्षत्रयुक्तायां बोधनं पूर्वाह्णेतरकाले आर्द्रालाभे नवम्यामार्द्रभे दिवेत्यत्र दिवापदात्तत्रापि बोधनम् अन्यथा दिवापदं व्यर्थं स्यादिति। ज्योतिषार्णवे व्यक्तमुक्तं वराहेण "कन्यादिमीनपर्य्यन्तं यत्र संप्राप्यते शिवः। तत्र बोधः प्रकर्त्तव्यो देव्याराज्ञा शुभप्रदः"। शिव आर्द्रा एवञ्चोभयदिने पूर्वाह्णे नवमीलाभे परत्रार्द्रालाभे परत्र बोधनं न युग्मात् पूर्वत्र युग्मबाधक पूर्वाह्णस्य बाधकनक्षत्रानुरोधात् दिवानक्षत्रालाभे तु पूर्वाह्ण एव

नवम्याम् उभयत्र पूर्वाह्णलाभे तु पूर्वदिन एव युग्मात् अत्र केवलनवम्यां बोधनविधेर्नक्षत्रस्यापि गुणफलत्वाच्च। “माघे वा फाल्गुने वापि भवेद्वै माघसप्तमी। माकरीति च यत् प्रोक्तं तत् प्रायो वृत्तिदर्शनात्” इति सौरागमान्माकरीति च यत् आर्द्रायोग इत्यस्य प्रायिकत्वेनाभिधानं प्रतीयते। ततश्चार्द्रारहितबोधने मन्त्रान्तरानुपदेशात्तद्युक्तमन्त्रः प्रणवयुक्तत्वेन प्रयुज्यते। “यन्न्यूनञ्चातिरिक्तञ्च यच्छिद्रं यदयज्ञियम्। यदमेध्यमशुद्धञ्च यातयामञ्च यद्भवेत्। तदोङ्कारप्रयुक्तेन सर्वञ्चाविकलं भवेत्”। इति योगियाज्ञवल्क्यवचनात्।

षष्ठीबोधनेऽप्येवं नवम्यां बोधनासामर्थ्ये तु षष्ठ्यां सायं बोधनं यथा भविष्ये “षष्ठ्यां विल्वतरौ बोधं सायं सन्ध्यासु कारयेत्” सन्ध्योक्ता वराहमिहिरेण। “अर्द्धास्तमयात् सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत्”। षष्ठ्यां बोधने तु प्रागुक्त “ऐं रावणस्य वधार्थाय” इति “अहमप्याश्विने षष्ठ्यां सायाह्ने बोधयाम्यतः” इति च पठेत्।

अत्र बोधनामन्त्रणयोः पृथक्त्वं तत्प्रकाशकमन्त्रभेदात् अत्र बोधनमन्त्रावुक्तावेव आमन्त्रणमन्त्रौ तु “मेरुमन्दरकैलासहिमवच्छिखरे गिरौ”। इत्यादि प्रागुक्त देवीपुराणे नवमीषष्ठ्योर्बोधनामन्त्रणयोः पृथक्त्वाभिधानाच्च। ततश्च षष्ठ्यामुभयकरणेऽपि पत्रीप्रवेश पूर्वदिने सायं षष्ठीलाभे एकदैवोभयकरणम्। यदा तु पूर्वदिने सायं षष्ठीलाभः न परदिने सायं षष्ठीलाभः तदा पूर्वेद्युर्बोधनं परदिने सायमामन्त्रणम्। यदा तु उभयदिने सायं षष्ठ्यलाभस्तदा परदिने पूर्वाह्णे षष्ठ्यां बोधनं “बोधयेद्विल्वशाखायां षष्ठ्यां देवीं फलेषु च। सप्तम्यां विल्वशाखां तामाहृत्य प्रतिपूजयेत्॥ पुनः पूजां तथाष्टम्यां विशेषेण समाचरेत्। जागरञ्च स्वयं कुर्य्याद्वलिदानं महानिशि॥ प्रभूतवलिदानञ्च नवम्यां विधिवच्चरेत्। ध्यायेद्दशभुजां देवीं दुर्गामन्त्रेण पूजयेत्॥ विसर्जनं दशम्यान्तु कुर्य्याद्वै शावरोत्सवैः। धूलिकर्दमविक्षेपैः क्रीड़ाकौतुकमङ्गलैः भगलिङ्गाभिधानैश्च भगलिङ्गप्रगीतकैः”॥ इति कालिकापुराणात्। शवरो म्लेच्छः शाखां विशेषयति

लिङ्गपुराणम्। "युग्माभिन्नाश्च विल्वस्य फलाभ्यां शाखिकां तथा। तथाच मृण्मयीं देवीं स्नात्वा पूज्य प्रवेशयेत्"॥ एतानि षष्ठ्यादिकल्पविधायकानि। षष्ठ्यां बोधने तु नक्षत्रानुपदेशान्न तदादरः। ज्येष्ठादरस्तु आमन्त्रण एव तत्रापि विशेषो वक्ष्यते। आमन्त्रणन्तु षष्ठीं विना सायमेव। "यज्ञीया देवताः सर्वाः श्वः कार्य्ये यत्र कर्मणि। सायमावाहयेद्विद्वान्नान्यत्रेति निमित्तकात्॥ श्वो भाविनि जगत्सिद्ध्यै प्रवेशे विन्ध्यवासिनी। विल्वपादपमभ्येति पूजार्थं सायमम्बिका"॥ इति हयशीर्षपञ्चरात्रीयदेवीकाण्डात्। "ज्येष्ठावाप्यथवा षष्ठी सायं कालेन चेद्भवेत्। सायमेव तथापि स्यात् विल्वशाखाभिमन्त्रणम्॥ पूर्वां षष्ठीं सनक्षत्रां सायं प्राप्तामपि त्यजेत्। यदा तु पत्रिका पूजा न परेद्युर्भविष्यति। सन्निकृष्टञ्च यत्पूर्वं पत्रिका दिवसस्य तु। तद्दिने वरणं कृत्वा परे शाखां प्रवेशयेत्"॥ इति स्मृति सागरधृत मत्स्यसूक्ताच्च ब्रह्माण्डनन्दिकेश्वरपुराणयोः "पत्रीप्रवेशात् पूर्वेद्युः सायाह्ने विन्ध्यवासिनीम्। चण्डीमामन्त्रयेद्विद्वान् नात्र षष्ठी पुरष्क्रिया"॥ विन्ध्यवासिनीमित्यत्र विल्ववासिनीमिति भविष्यपुराणे पाठः पठन्ति च। "सायं षष्ठ्यान्तु कर्त्तव्यं पार्वत्या अधिवासनम्। षष्ठ्यभावेऽपि कर्त्तव्यं सप्तम्यामपि मानद"॥ इति। ये त्वेतानि वचनान्यनालोच्य पत्रीप्रवेशाव्यवहितपूर्वदिन एव षष्ठ्यामेव विल्वाभिमन्त्रणं ब्रुवते तेषां पूर्णषष्ठ्यानन्तरं षष्ठीलाभे घटिकान्यून षष्ठीलाभे वा तत्परदिने घटिका तदधिक सप्तमीलाभे वा तदनुपपत्तेः पूर्वदिवसीयायाः षष्ठ्याव्यवहितत्वात् परदिवसीयायाः कर्मानर्हत्वादिति।

अथ सप्तमीपूजा। तत्र सप्तम्यां मूलयुक्तायां केवलायां वा पूर्वाह्णे पत्रीप्रवेशः। उभयत्र सप्तमीलाभे परत्र। "युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया। रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता"॥ इति देवीपुराणात्। ज्योतिषे "पूर्वाह्णे नवपत्रिका शुभकरी सर्वार्थसिद्धिप्रदा आरोग्यं धनदा करोति विजयं चण्डी प्रवेशे शुभा। मध्याह्ने जनपीड़नक्षयकरी संग्रामघोरावहा सायाह्ने वधबन्धनादिकलहं सर्पक्षतं सर्वदा।

सप्तम्यामस्तगायां यदि विशति गृहं पत्रिका श्रीफलाद्या राज्ञः सप्ताङ्गराज्यं जनसुखमखिलं हन्ति मूलानुरोधात् ॥ तस्मात् सूर्य्योदयस्थां नरपतिशुभदां सप्तमीं प्राप्य देवीम्। भूपालो वेशयेत्तां सकलजनहितां राक्षसर्क्षं विहाय" ॥ राक्षसर्क्षं मूला "पत्रीप्रवेशनं रात्रौ विसर्गं वा करोति यः। तस्य राज्यविनाशः स्याद्राजा च विकलो भवेत्" ॥ देव्या गृहं दक्षिणायनेऽपि कर्त्तव्यं कल्पतरुधृतदेवीपुराणे प्रतिष्ठाविधानेन तद्विधानात्। तथाच "महिषासुरहन्त्र्याश्च प्रतिष्ठा दक्षिणायने"। तत्रैव "यस्य देवस्य यः कालः प्रतिष्ठाध्वजरोपणे। गर्त्तापूरशिलान्यासे शुभदस्तस्य पूजितः" ॥ यस्य देवस्य प्रतिष्ठाध्वजरोपणे यः कालः शुभदस्तस्य गर्त्तापूरशिलान्यासे गृहारम्भे सकालः पूजित इत्यर्थः। तस्य प्रवेशेऽपि सकालः। "ज्येष्ठादितिथ्यां संयुक्तं गृहारम्भोदितञ्च यत्। तत्सर्वं योजयेद्वेश्मप्रवेशे दैवचिन्तक": ॥ इति ज्योतिर्वचनात् अदितिः पुनर्वसुः।

पत्रिका तु "कदली दाड़िमी धान्यं हरिद्रा मानकं कक्षुः। विल्वोऽशोको जयन्ती च विज्ञेया नवपत्रिका" ॥ विल्वयुग्ममुपक्रम्य गवाक्षतन्त्रे। "वायव्यस्थं राक्षसस्थं न गृह्णीयात् कदाचन"। व्याहृतिभिरावाहनमाह मत्स्यपुराणं "विनायकं तथा दुर्गां वायुमाकाशमेव च। आवाहयेद्व्याहृतिभिस्तथैवाश्विकुमारकौ ॥ तस्मिन्नावाहयेद्देवान् पूर्ववत् पुष्पतण्डुलैः" ॥ तस्मिन् मण्डलादौ।

प्राणप्रतिष्ठाविधिमाह कालिकापुराणे "प्रतिमायाः कपोलौ द्वौ स्पृष्ट्वा दक्षिणपाणिना। प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत तस्यां देवस्य वा हरेः ॥ अकृतायां प्रतिष्ठायां प्राणानां प्रतिमासु च। यथा पूर्वं तथा भावः स्वर्णादीनां न विष्णुता ॥ अन्येषामपि देवानां प्रतिमास्वपि पार्थिव। प्राणप्रतिष्टा कर्त्तव्या तस्यां देवत्वसिद्धये ॥ वासुदेवस्य वीजेन तद्विष्णोरित्यनेन च। तथैवाङ्गाङ्गिमन्त्राभ्यां प्रतिष्ठामाचरेद्धरेः ॥ तथैव हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा शश्वच्च मन्त्रवित्। एभिर्मन्त्रैः प्रतिष्ठान्तु हृदयेऽपि समाचरेत् ॥ अस्मै प्राणाः प्रतिष्ठन्तु अस्मै प्राणाः क्षरन्तु च।

अस्मै देवत्वसंख्यायै: स्वाहेति यजुरीरयन्॥ अङ्गिमन्त्रैरङ्गमन्त्रैर्वैदिकैरित्यनेन च। प्राणप्रतिष्ठां सर्वत्र प्रतिमासु समाचरेत्"॥ तथा भाव: स्वर्णादिमात्रम्। अङ्गमन्त्रैरङ्गन्यासमन्त्रै: अङ्गिमन्त्रैर्मूलमन्त्रैर्वैदिकै: "मनोज्योतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमम्। तनो त्वरिष्टं यज्ञं समिमं दधातु विश्वेदेवा स इह मादयन्तामोम्प्रतिष्ठ"॥ इति मन्त्रै: एवञ्च दुर्गाया: प्राणप्रतिष्ठायां कपोलौ धृत्वा मूलमन्त्रं षडङ्गमन्त्रञ्च पठेत्। हृदयेऽङ्गुष्ठं दत्त्वा अस्यै इत्यत्र अस्मै इत्यूहं कृत्वा तदादिकं पठेत्। तथा "लिङ्गस्थां पूजयेद्देवीं मण्डलस्थां तथैव च। पुस्तकस्थां महादेवीं पावके प्रतिमासु च। चित्रे च विशिखे खड्गे जलस्थाञ्चापि पूजयेत्"॥ अत्र जलसेकाद्ययोग्ये स्नानं खड्गादावाह कालिकापुराणम्। "सद्य: स्निग्धे मृण्मये वा सर्पि: सिन्दूरजे तथा। श्रीचन्दनप्रतिष्ठे वा लेपजे प्रतिमा तनौ। अन्तिकस्थापिते खड्गे स्नापयेद्दर्पणेऽथवा"॥ इति खड्गे प्रतिविम्बयोग्यलौहनिर्मिते।

पूजामधिकृत्य वौधायन: "प्रतिमास्थानेष्वप्स्वग्नौ आवाहनविसर्जनवर्जम्" इति प्रतिमास्थानेषु स्थिरतरप्रतिष्ठितेषु इत्यर्थ:। जमदग्नि: "देवताप्रतिमां दृष्ट्वा यतिं दृष्ट्वाप्यदण्डिनम्। नमस्कारं न कुर्य्याद्य: प्रायश्चित्तीयते नर:"॥ प्रायश्चित्तीसन् ईयते। कालिकापुराणम्। "दिग्विभागे तु कौवेरी दिक् शिवाप्रीतिदायिनी। तस्मात्तन्मुख आसीन: पूजयेच्चण्डिकां सदा"॥ कौवेरी उत्तरादिक् तन्मुख उत्तरामुख:। त्रिपुरासारसमुच्चये। "स्नात्वा यथाविधिविधौतकराननाङ्घ्रिराचम्य सम्यगमलाम्बरयज्ञसूत्र:। प्रागाननो धनददिग्वदनोऽथ वापि बद्धासनो गणपतिञ्च गुरुञ्च नत्वा’ इति वाक्यात् प्रागाननोऽपि देवीप्रतिमोपक्रमस्य मत्स्यपुराणम्। "सिन्दूरं लामचूर्णञ्च तासां शिरसि पातयेत्। स्मृति: "मधुमुस्तं घृतं गन्धो गुग्गुल्वगुरुशैलजम्॥ सरलं सिह्लसिद्धार्थौ दशाङ्गो धूप इष्यते"॥ दशाङ्गो दशघटित: शैलजं स्वनामख्यातं सिद्धार्थ: श्वेतसर्षप:। "तुरुष्कं ग्रन्थिकर्पूरनागरागुरुकुङ्कुमै:। मुरामांसीसितामिश्रं धूपं दद्यान्मधुप्लुतम्"॥ तुरुष्कं सिह्लकं

ग्रन्थिः गाँठीयानीति ख्याता । सिता शर्करा नागरः शुण्ठी । भविष्ये "वलिहीने तु दुर्भिक्षं गन्धहीने त्वभाग्यताम् । धूपहीने तथोद्वेगं वस्त्रहीने धनक्षयम्" ॥ प्राप्नुयादिति शेषः । कालिकापुराणे "लाङ्गलं क्रमुकं दत्त्वा रुचकं करमर्दकम् । सौभाग्यमतुलं प्राप्य देवीलोके महीयते । परमान्नं पिष्टकञ्च यावकं कृषरन्तथा ॥ मोदकं पृथुकादीनि कन्दुपक्वानि चोत्सृजेत् । हविः शाल्योदनं दिव्यमाज्ययुक्तं सशर्करम् ॥ निवेदयेन्महादेव्यै सर्वाणि व्यञ्जनानि च । क्षीरादीन्यथ गव्यानि माहिषादीनि सर्वशः" ॥ लाङ्गलं नारिकेलं क्रमुकं गुवाकफलं रुचकं वीजपूरकं करमर्दकं पानीयामलकं कन्दुपक्वं जलोपसेकं विना केवलपात्रे यद्वह्निना पक्वं भ्रष्टतण्डुलादि ।

"कन्दुपक्वानि तैलेन पायसं दधिशक्तवः । द्विजैरेतानि भोज्यानि शूद्रगेहकृतान्यपि" ॥ इति कूर्मपुराणदर्शनात् शूद्रकर्त्तृककन्दुपक्वादीनि देयानि शूद्रेतरकृतान्यपि । "गोकुले कन्दुशालायां तैलयन्त्रेक्षुयन्त्रयोः । अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीषु वालातुरेषु च" इति शातातपवचने अमीमांस्यानि शौचाशौचभागितया न विचारणीयानि इति भवदेवरत्नाकरव्याख्यानदर्शनाच्च । एवञ्च गङ्गावाक्यावल्यां त्रैवर्णिकेन सिद्धान्नेन नैवेद्यं देयं शूद्रेण द्विजशुश्रूषारतेन च । तदुक्तं वराहपुराणे 'त्रिषु वर्णेषु कर्त्तव्यं पाकभोजनमेव च । शुश्रूषामभिपन्नानां शूद्राणाञ्च वरानने !" ॥ एतच्चातुर्वर्ण्यपाककरणं कलीतरपरम् । "ब्राह्मणादिषु शूद्रस्य पक्वतादिक्रियापि च" इत्यभिधाय । "एतानि लोकगुप्त्यर्थं कलेरादौ महात्मभिः । निवर्त्तितानि कार्य्याणि व्यवस्थापूर्वकं बुधैः ॥ समयश्चापि साधूनां प्रमाणं वेदवद्भवेत्" ॥ इत्यधिकरणमालाकृन्माधवाचार्य्यधृतादित्यपुराणवचनात् । ततश्च शूद्रकर्त्तृकवृषोत्सर्गादौ ब्राह्मणकर्त्तृकचरुवत् ब्राह्मणद्वारा पक्वान्ननैवेद्यादि शूद्रोऽपि दातुमर्हति । एवञ्च "आमं शूद्रस्य पक्वान्नं पक्वमुच्छिष्टमुच्यते" इति स्वयं पाकविषयं योगिनीतन्त्रे । "शिवागारे झल्लकञ्च सूर्य्यागारे च शङ्खकम् । दुर्गागारे वंशिवाद्यं मधुरीञ्च न वादयेत्" ॥ झल्लकं कांस्यनिर्मितकरतालम् । मत्स्यपुराणे "गीतवादित्र-

निर्घोषं देवस्याग्रे च कारयेत् । विरिञ्चेश्च गृहे ढक्कां घण्टां लक्ष्मी गृहे त्यजेत् ॥ घण्टा भवेदशक्तस्य सर्व्ववाद्यमयी यतः । विल्वपत्रञ्च माघ्यञ्च तमालामलकीदलम् । कह्लारं तुलसी चैव पद्मञ्च मुनिपुष्पकम् । एतत् पर्य्युषितं न स्याद्यच्चान्यत् कलिकात्मकम्" ॥ माघ्यं कुन्दं मुनिपुष्पं वकपुष्पम् । पुण्यबुद्ध्या परकीयधर्म्मकार्य्यं वेतनमगृह्णन् तत्कार्य्यं कुर्व्वन् फलमाप्नोति । "अभिरूपेण सम्पन्नान् घट्टयित्वा विना भृतिम् । धर्म्मकार्य्यमिति ज्ञात्वा न गृह्णाति कथञ्चन ॥ योऽसौ सुवर्णकारश्च दरिद्रोऽप्यथ सत्त्ववान् । न मूल्यमादाद्वेश्यातः सभार्य्य ऋद्धिसंयुतः । सप्तद्वीपपतिर्जातः सूर्य्यायुतसमप्रभः" ॥ इति मत्स्यपुराणे लीलावतीवेश्याया लवणाचलदाने हेमतरुघटकस्य तथाविधफलदर्शनात् । कालिकापुराणे "महिषन्तु ददेद्देव्यै भैरव्यै भैरवाय च । अनेनैव तु मन्त्रेण तं वलिं परिपूजयेत् ॥ यथावाहं भवान् द्वेष्टि यथा वहसि चण्डिकाम् । तथा मम रिपून् हिंस शुभं वह लुलापक" ॥ वाहोऽश्वः । लुलापको महिषः । "यमस्य वाहनस्त्वं हि वररूपधराव्यय । आयुर्वित्तं यशो देहि कासराय नमोऽस्तु ते" ॥ कासरो महिषः । "प्रभूतवलिदाने तु द्वौ वा त्रीन् वाग्रतः कृतान् । पूजयेत् प्राङ्मुखान् कृत्वा सर्व्वांस्तन्त्रेण साधकः" ॥

वलिदानप्रकारं तत्रैव । भगवानुवाच । "स्नापयित्वा वलिं तत्र पुष्पचन्दनवन्दनैः । पूजयेत् साधको देवीं मूलमन्त्रैर्मुहुर्मुहुः ॥ उत्तराभिमुखो भूत्वा वलिं पूर्व्वमुखं तथा । निरीक्ष्य साधकः पश्चादिमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ नरत्वं वलिरूपेण मम भाग्यादुपस्थितः । प्रणमामि ततः सर्व्वरूपिणं वलिरूपिणम् ॥ चण्डिकाप्रीतिदानेन दातुरापद्विनाशन । चामुण्डावलिरूपाय वले तुभ्यं नमोऽस्तु ते ॥ यज्ञार्थं पशवः सृष्टाः स्वयमेव स्वयम्भुवा । अतस्त्वां घातयाम्यद्य तस्माद्यज्ञे वधोऽवधः ॥ ऐं ह्रीं श्रीमिति मन्त्रेण तं वलिं मत्स्वरूपिणं चिन्तयित्वा न्यसेत् पुष्पं मूर्द्ध्नि तस्य तु भैरव । ततो देवीं समुद्दिश्य काममुद्दिश्य चात्मनः । अभिषिच्य वलिं पश्चात् करवालन्तु पूजयेत् ॥ रसना त्वं चण्डिकायाः सुरलोकप्रसाधकः । ह्रीं

श्रीं खड्गेति मन्त्रेण ध्यात्वा खड्गं प्रपूजयेत्”॥ मत्स्वरूपिणं शिवस्वरूपिणम् अभिषिच्य घाताभिलापजलेनेति शेषः। ध्यानं तत्रैव। “कृष्णं पिनाकपाणिञ्च कालरात्रिस्वरूपिणम्। उग्रं रक्तास्यनयनं रक्तमाल्यानुलेपनम्॥ रक्ताम्बरधरञ्चैव पाशहस्तं कुटुम्बिनम्। पिबमानञ्च रुधिरं भुञ्जानं क्रव्यसंहतिम्॥ असिर्विशसनः खड्गस्तीक्ष्णधारो दुरासदः। श्रीगर्भो विजयश्चैव धर्मपाल! नमोऽस्तु ते॥ इत्यष्टौ तव नामानि स्वयमुक्तानि वेधसा। नक्षत्रं कृत्तिका तुभ्यं गुरुर्देवो महेश्वरः॥ हिरण्यञ्च शरीरन्ते धाता देवो जनार्द्दनः। पिता पितामहश्चैव त्वं मां पालय सर्वदा॥ नीलजीमूतसङ्काशस्तीक्ष्णदंष्ट्रः कृशोदरः। भावशुद्धोऽमर्षणश्च अतितेजस्तथैव च। इयं येन धृता क्षोणी हतश्च महिषासुरः। तीक्ष्णधाराय शुद्धाय तस्मै खड्गाय ते नमः॥ पूजयित्वा ततः खड्गम् आं ह्रीं फडिति मन्त्रकैः। गृहीत्वा विमलं खड्गं छेदयेद्बलिमुत्तमम्॥ ऐं ह्रीं श्रीं कौशिकि रुधिरेणाप्यायताम्” इति “स्थाने नियोजयेद्रक्तं शिरश्च सप्रदीपकम्। एवं दत्त्वा बलिं पूर्णं फलं प्राप्नोति साधकः॥ हीनन्तु स्याद्धीनतया निष्फलं स्याद्विपर्य्ययात्। अन्येषां महिषादीनां बलीनामथ पूजनात्॥ कायोमेध्यत्वमाप्नोति रक्तं गृह्णाति वै शिवा। अन्येभ्योऽपि च देवेभ्यो यदा यद्यत् प्रदीयते॥ तदर्च्चितं प्रदद्यात्तु पूजिताय सुराय वै। बलिदाने तु दुर्गायाः सर्वत्रायं विधिः स्मृतः”॥ तथा “छेदयेत्तेन खड्गेन बलिं पूर्वमुखन्तु तम्। अथवोत्तरवक्त्रान्तं स्वयं पूर्वमुखस्तथा”॥ अत्र सर्वत्रायं विधिः स्मृत इत्यतिदेशान्नरेत्यत्र छागादिरूह्यः। मन्त्रे घातयामीति श्रुतेः॥ “पशुघातश्च कर्त्तव्यो गवलाजवधस्तथा” इति विधेश्च देव्यै घातयिष्ये इति प्रयोगः कार्य्यः अत्र स्वकर्त्तृकहननेऽपि घातिप्रयोगश्चुरादौ हन्त्यर्थाश्चेति पाठात्। एवञ्च पश्चादपि रुधिरशीर्षबलिदानमुपपद्यते एतत्प्रकारकबलिदानादेव “महिषन्तु ददद्देव्यै” इत्युपपद्यते। वक्ष्यमाणभविष्यपुराणेऽपि वधानन्तरं मांसादिदानमुक्तम्। अतएव दुर्गाभक्तितर-

ङ्गीकृत्यमहार्णवधृतेन देवीपुराणेन पशुघातवलिदानयोः पृथक् फलमभिहितम्। यथा "देवीं ध्यात्वा पूजयित्वा अर्द्धरात्रेऽष्टमीषु च। घातयन्ति पशून् भक्त्या ते भवन्ति महाबलाः॥ वलिं ये च प्रयच्छन्ति सर्वभूतविनाशनम्। तेषान्तु तुष्यते देवी यावत् कल्पन्तु शाङ्करम्"। सर्वभूतानि विहितमहिषादीनि विनाश्यन्ते यस्मिन् वलौ चर्मणि द्वीपिनं हन्तीतिवत्। छागादौ पशुपदप्रयोगमाह यज्ञपार्श्वः। "उष्ट्रो वा यदि वा मेषश्छागो वा यदि वा हयः। पशुस्थाने नियुक्तानां पशुशब्दो विधीयते"॥ कालिकापुराणे "शोणितं मन्त्रपूतञ्च शीर्षं पीयूषमुच्यते। तस्माच्च पूजने दद्याद्वलेः शीर्षञ्च शोणितम्॥ सफलैस्तोयसंयुक्तैः शर्करामधुसंयुतैः। अभ्युक्ष्य रुधिरं दद्यात् कामवीजेन भैरव॥ ततो वलीनां रुधिरं तोयसैन्धवसत्फलैः। मधुभिः पुष्पगन्धैश्च अधिवास्य प्रयत्नतः"॥ इत्यादि वचनात् मधुसैन्धवयुतं कृत्वा दद्यात्। तथा "पूजासु नाम मांसानि दद्याद्वै साधकः क्वचित्। ऋते तु लोहितं शीर्षममृतं तत्तु जायते"॥ अत्र बहुपशुघातेऽपि मन्त्र एकवचनान्त एव प्रयोज्यो न बहुवचनोह्यः नरं पञ्चत्वमागतमित्यत्र नार्य्यां लिङ्गोहाभाववत्। अतएव बहुपत्नीकयजमानप्रयोगेऽपि पत्नीं सन्नह्येति मन्त्र एकवचनान्त एवेत्युक्तमिति श्रीदत्तोपाध्यायेन दृष्टान्तीकृतम्।

ऊहं प्रकृत्य "नप्रकृतावपूर्वत्वात्" इति कात्यायनसूत्रेणोहप्रतिषेधात् विकृतावेवोहो "अपूर्वोत्प्रेक्षणम् ऊह" इति लक्षणात्। न वा मन्त्रस्य वाधः वैभक्तिकार्थापेक्षया प्राथमिकत्वेन वलवतः प्रातिपदिकार्थस्य समवेतार्थत्वेन विनियोज्यत्वात्। अत्र पशुघातपूर्वक रक्तशीर्षयोर्वलित्वम्। पशुघातपूर्वक रुधिरशीर्षदानानन्तरं "एवं दत्त्वा वलिं पूर्णं फलं प्राप्नोति साधकः" इत्युक्तेः "नानापाशुकमज्जमांसरुधिरैः कृत्वा नवम्यां वलिम्" इति राजमार्त्तण्डाच्च। एवञ्च प्रकृतौ नररूपबहुपशौ बहुवचनोहाभावात् छागादौ विकृतीभूतेऽपि न बहुवचनोहः किन्तु एकवचनमात्रम् एवं प्रतिनिधिपुत्रादिना क्रियमाणे कर्मणि। तथा मम रिपून् हिंस

शुभं वह लुलापक" इत्याद्युक्त फलं यजमान एव अन्वेति। "यां वै काञ्चन यज्ञऋत्विज आशिषमाशासते यजमानस्यैव तामाशासते इति होवाच" इति श्रुतेः। "ऋत्विग्वादे नियुक्तश्च समौ संपरिकीर्त्तितौ। यज्ञे स्वाम्याप्नुयात् पुण्यं हानिं वादेऽथवा जयम्" इति बृहस्पतिवचनाच्च एवञ्च "आयान्तु नः पितरः" इति वदत्राप्यनूहः एवं वाक्ये तु काल्पनिके यजमाननामोल्लेख इति भविष्ये "अजानां महिषाणाञ्च मेषाणाञ्च तथावधात्। प्रीणयेद्विधिवद्दुर्गां मांसशोणित तर्पणैः॥ दुर्गाया दर्शनं पुण्यं दर्शनादभिवन्दनम्॥ वन्दनात् स्पर्शनं श्रेष्ठं स्पर्शनादभिपूजनम्। पूजनात् स्नपनं श्रेष्ठं स्नपनात्तर्पणं स्मृतं तर्पणान्मांसदानन्तु महिषाजनिपातनम्"॥ महिषोऽजो वा निपात्यते यस्मिन् बलौ चर्मणि द्वीपिनं हन्ति इति वत् तथा मांसम् आमं शीर्षं तदितरत् पक्कम् उक्तवचनात्। तथा "स्वमेकमेकं वरदा तृप्ता भवति चण्डिका। रुधिरेणोरणस्येह तर्पिता विधिवन्नृप। अजस्य दशवर्षाणि रुधिरेण सुतर्पिता। महिषेण शतं वीर तृप्ता भवति चण्डिका॥ सहस्रं तृप्तिमाप्नोति स्वदेहरुधिरेण च। तर्पिता विधिवद्दुर्गा भित्त्वा बाहूरुजङ्घकम्॥ नारेण शिरसा वीर पूजिता विधिवन्नृप। तृप्ता भवेद्भृशं दुर्गा वर्षाणां लक्षमेव तु"॥ स्वमेकं संवत्सरं "स्वमेको वत्सरो शब्दो मासः" इति श्रुतेः उरणस्य मेषस्य तथा "प्रदाने कृष्णसारस्य मन्त्रोऽयं परिकल्पितः। कृष्णसार ब्रह्ममूर्त्ते ब्रह्मतेजोविवर्द्धन॥ चतुर्वेदमय प्राज्ञ प्रज्ञां देहि यशो महः"। तथा "वैष्णवीतन्त्रकल्पोक्तक्रमः सर्वत्र सर्वदा। साधकैर्बलिदाने तु ग्राह्यः सर्वसुरस्य तु"॥ एवञ्च चामुण्डेत्यत्र षष्ठिकेत्यूह्यः ततश्च अभिमतस्तत् तत् फलकामो दुर्गाप्रीतिकामो वा पशुघातं कुर्य्यात् ततोऽमुकस्य दशवर्षावच्छिन्न देवी प्रीतिकामनया एष रुधिर बलिर्नम इत्युत्सृजेत्। ततः शिरसि ज्वलद्दशां दत्त्वाऽमुकस्य श्रीदुर्गाया दर्शनाभिवन्दन स्पर्शनाभिपूजनस्नपनतर्पणजनित पूर्वं पूर्वं पुण्याधिक पुण्यप्राप्तिकामनया एष स प्रदीपच्छागशीर्षबलिर्नम इति उत् सृजेत्। "बलिदानप्रदानार्थं नमस्कारो यतः कृतः" इति

छन्दोगपरिशिष्टात् प्रदीयतेऽनेनेति प्रदानं मन्त्रः। कालिकापुराणे। "महामाये जगन्मातः सर्वकामप्रदायिनि। ददामि देहरुधिरं प्रसीद वरदा भव॥ इत्युक्त्वा मूलमन्त्रेण नतिपूर्वं विचक्षणः। स्वगात्ररुधिरं दद्यान्मानवः सिद्धसन्निभः"॥ तथा "स्त्रियं न दद्यात्तु बलिं दत्त्वा नरकमाप्नुयात्। न च त्रैमासिक न्यूनं पशुं दद्याच्छिवा बलिम्॥ न च त्रैपक्षिकन्यूनं प्रदद्याद्वै पतत्त्रिणम्। काणव्यङ्गादिदुष्टं वै न पशुं न पतत्त्रिणम्॥ छिन्नलाङ्गलकर्णादिं भग्नशृङ्गादिकं तथा। कुष्माण्डमिक्षुदण्डञ्च मद्यमासव एव च॥ एते बलिसमाः प्रोक्तास्तृप्तौ छागसमाः स्मृताः। चन्द्रहासेन कट्टारैश्छेदनं मुख्यमिष्यते॥ हस्तेन छेदयेद्यस्तु साधकः प्रोक्षितं पशुम्। पक्षिणं वापि राजेन्द्र ब्रह्महत्यामवाप्नुयात्"॥ मत्स्यसूक्ते "छेदयेत्तीक्ष्णखड्गेन प्रहारेण सकृद्बुधः"। याज्ञवल्क्यदीपकलिकायां ब्रह्मपुराणं "नराश्वमेधौ मद्यञ्च कलौ वर्ज्यौ द्विजातिभिः" निषेधं स्पष्टयत्युशनाः। "मद्यमपेयमदेयमनिर्ग्राह्यम्" इति। अनिर्ग्राह्यमस्वीकार्य्यमिति कल्पतरुः। कालिकापुराणेऽपि "स्वगात्ररुधिरं दत्त्वा आत्महत्यामवाप्नुयात्। मद्यं दत्त्वा ब्राह्मणस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते॥ न कृष्णसारमितरे बलिन्तु क्षत्रियादयः। ददतः कृष्णसारञ्च ब्रह्महत्यामवाप्नुयुः"। अतो मद्यप्रतिनिधि दानमप्ययुक्तम्।

अथ वैधहिंसाविचारः। "मा हिंस्यात् सर्वाभूतानि" इत्यत्र सर्वशब्दस्य व्यापकार्थपरतया एतद्विधिमनुलङ्घ्य। "वायव्यं श्वेतमालभेत"। इत्यादि विधेर्विषयाप्राप्तेरगत्या वैधातिरिक्त विषयत्वं सर्वाः सर्वाणि छन्दसिवेत्यनेन तत् पदं सिद्धम्। यदपि नानादर्शनटीकाकृद्भिर्वाचस्पतिमिश्रैः तत्त्वकौमुद्याम् अभिहितं न च "मा हिंस्यात् सर्वा भूतानि" इति सामान्यशास्त्रं विशेषशास्त्रेण "अग्नीषोमीयं पशुमालभेत" इत्यनेन बाध्येत इति वाच्यं विरोधाभावात् विरोधे हि बलीयसा दुर्बलं बाध्यते। न च अस्ति विरोधः भिन्नविषयत्वात्। तथा हि मा हिंस्यादिति निषेधेन हिंसाया अनर्थहेतुभावो ज्ञाप्यते न पुनरक्रत्वर्थत्वमपि। न च अनर्थहेतुत्व क्रतूपका-

रकत्वयोः कश्चिदस्ति विरोधः। हिंसा हि पुरुषस्य दोषमावक्ष्यति क्रतोश्चापकरिष्यतीत्यन्तेन तदपि सांख्यनये। मीमांसकमते तु विरोध एव तथा हि गुरुनये न खलु सर्व्वभूतहिंसाभावविषयकं कार्य्यम् इति निषेधविध्यर्थस्य बाधं विना अग्नीषोमीयपश्वालम्भनविषयकं कार्य्यमिति भावविध्यर्थं उपपद्यते। भट्टनये तु अङ्गे यथा तथास्तु। न च मुख्यपशुयागे पुरुषार्थपशुहिंसनस्यार्थसाधनत्वमनर्थसाधनत्वञ्चोपपद्यते विरोधात्। वस्तुतस्तु अङ्गेऽपि विरोधोऽस्त्येव क्रतो विधेरेष स्वभावो यः स्वविषयस्य साक्षात् परम्परया वा पुरुषार्थसाधनत्वमवगमयति अन्यथाऽङ्गानां प्रधानोपकारकत्वमपि नाङ्गीक्रियेत। अर्थसाधनत्वं बलवदनिष्टाननुबन्धीष्टसाधनत्वं अनर्थसाधनत्वं बलवदनिष्टसाधनत्वं न चानयोरेकत्र समावेश इति। अतएवोक्तं "तस्माद्यज्ञे बधोऽबधः" इति। ननु एवं "श्येनेनाभिचरन् यजेत्" इत्यत्र श्येनस्य शत्रुबधरूपेष्टसाधनत्वमवगतम् "अभिचारो मूलकर्म च" इति मनुना उपपातकगणमध्ये पाठादनिष्टसाधनत्वमवगतम्। तदेतत् कथमुपपद्यतामिति चेन्नैवं "आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्" इत्येकवाक्यतया आततायिस्थले इष्टसाधनत्वं अनाततायिस्थले तु उपपातकत्वेन बलवदनिष्टसाधनत्वमित्यविरोध इति गुरुचरणा अप्येवम्। देवीपुराणे "पूर्व्वाषाढायुताष्टम्यां" इत्यत्र पूर्व्वाषाढायास्पष्टाभिधानात्। "कन्यासंस्थे रवावीषे शुक्लाष्टम्यां प्रपूजयेत्। सोपवासो निशार्द्धे तु महाविभवविस्तरैः॥ पूजां समारभेद्देव्या नक्षत्रे वारुणेऽपि वा। पशुघातः प्रकर्त्तव्यो गवलाजबधस्तथा॥" इति पुनर्देवीपुराणवचने वारुणपदेन वरुणदैवतं जलं पुनरण्प्रत्ययेन तद्दैवतपूर्व्वाषाढोच्यते। न तु श्रीदत्तहरिनाथविद्यावाचस्पतिमिश्रोक्ता शतभिषा तदष्टम्यां तस्या अलाभात् तथात्वे तदनन्तरपौर्णमास्यां गोभिलोक्तसूर्य्याचन्द्रमसोः समसराश्यवस्थानरूप नियमभङ्गापत्तेः। तथा च गोभिलः। "सूर्य्याचन्द्रमसोर्यः परो विप्रकर्षः सा पौर्णमासी" इति। कृत्यरत्नाकरे तु "नक्षत्रे वारुणेऽपि वा" इत्यत्र पुनर्देवीपुराणे "रक्षर्क्षे वारिभेऽपि वा"

इति पाठः व्याख्यातश्च रक्षर्क्षे मूलानक्षत्रे वारिभे पूर्वाषाढ़ानक्षत्रे इति सोपवासः प्रारब्धोपवासः। उक्तवचनेऽष्टम्यां पशुघातश्रुतेः "अष्टम्यां रुधिरैर्मांसैर्महामांसैः सुगन्धिभिः। पूजयेद्बहुजातीयैर्बलिभिर्भोजनैः शिवाम्"॥ इति कालिकापुराणाच्च। "अष्टम्यां बलिदानेन पुत्रनाशो भवेत् ध्रुवम्" इति देवीपुराणीयम्। सन्धिपूजाबलिदानपरम्। तत्पूजाया उभयतिथिकर्त्तव्यत्वेन तद्बलिदानस्य नवम्यां सावकाशत्वात्।

तत्पूजाविधायकन्तु कालिकापुराणवचनान्तरम्। "अष्टमीनवमीसन्धौ तृतीया खलु कथ्यते। तत्र पूज्या त्वहं पुत्र योगिनीगणसंयुता"॥ ज्योतिषे "अष्टम्यां सन्धियोगे सकलपरिजनैः पूजयेत् सत्वभावैः" कामरूपीयनिबन्धे स्मृतिसागरे च। "अष्टम्याः शेषदण्डश्च नवम्याः पूर्व एव च। अत्र या क्रियते पूजा विज्ञेया सा महाफला"॥ मत्स्यसूक्तेऽपि "अष्टमीनवमीयोगो रात्रिभागे विशिष्यते। अर्द्धरात्रे दशगुणं सन्ध्यायां त्रिगुणं भवेत्"॥ आश्विनाधिकारे। "अष्टमीनवमीयुक्ता नवमी चाष्टमीयुता। अर्द्धनारीश्वरप्राया उमामाहेश्वरी तिथिः"॥ इति विष्णुधर्मोत्तरीयमप्येतद्विषयं न तु महानवमीपूजापरम्। तस्या अष्टम्युपवासपरदिनविधानेन सप्तमीवद्युग्मानादरात्॥ तथा विष्णुधर्मोत्तरे। "भद्रकालीं पटे कृत्वा तत्र संपूयेद्द्विज। आश्विने शुक्लपक्षस्य चाष्टम्यां प्रयतस्ततः"॥ इत्याद्यभिधाय। "उपोषितो द्वितीयेऽह्नि पूजयेत् पुनरेव ताम्"। तत्र तदर्थकल्पितगृहे। पट इति पूजाधारोपलक्षणम्। कृत्यतत्त्वार्णवे राजमार्त्तण्डः। "मूलेन प्रतिपूजयेद्भगवतीं चण्डीं प्रचण्डाकृतिञ्चाष्टम्यामुपवाससंयतधिया भक्त्या समाराध्य च। नानापाशुकमज्जमांसरुधिरैः कृत्वा नवम्यां बलिं नक्षत्रं श्रवणं तिथिञ्च दशमीं संप्राप्य संप्रेषयेत्"॥ धियेत्यत्र तयेति कात्यायनीयः पाठः। दुर्गाभक्तितरङ्गिण्याम्। "मूलं प्राप्य प्रथमचरणेऽभ्यर्च्चनं चण्डिकायाः कृत्वाष्टम्यामशनरहितस्त्यक्तनिद्रश्च पूजाम्। प्रातःकाले पशुबलिविधिः स्नानदानं नवम्यां निर्माल्यञ्च श्रवणदशमीं ह्यात्मकक्षेषु जह्यात्"॥ नन्दिकेश्वरपुराणे। "भग-

देव्याः प्रवेशादिविसर्गान्ताश्च याः क्रियाः । तिथावुदयगामिन्यां सर्वास्ताः कारयेद्बुधः” ॥ तथा चक्रनारायण्यां क्रियायोगोपसंवादे च । “शरत्काले महापूजा क्रियते या च वार्षिकी । सा कार्य्योदयगामिन्यां न तत्र तिथियुग्मता” ॥ एतद्वचनं दुर्गाभक्तिप्रकाशे पुराणीयमिति कृत्वा लिखितम् । अत्रोदयकालीनघटिकामात्रतिथ्यादौ सम्यक् पूजनासामर्थ्ये कालिकापुराणम् । “सम्यक्कल्पोदितां पूजां यदि कर्त्तुं न शक्यते । उपचारांस्तथा दातुं पञ्चैतान् वितरेत्तदा ॥ गन्धपुष्पञ्च धूपञ्च दीपं नैवेद्यमेव च । अभावे पुष्पतोयाभ्यां तदभावे तु भक्तितः । संक्षेपपूजा कथिता तथा वस्त्रादिकं पुनः” । नवम्यां बलेरावश्यकत्वात् बलिर्दातव्यः । दाक्षिणात्यकालनिर्णयधृतभविष्योत्तरीयम् ॥ अष्टमीनवमीपूजा दिनभेदाय प्रातःप्रातरिति वीप्साश्रुतेः । यथा “प्रातरावाहयेद्देवीं प्रातरेव प्रवेशयत् । प्रातःप्रातश्च संपूज्य प्रातरेव विसर्जयेत्” ॥ एतानि सप्तम्यादिकल्पविधायकानि । अत्र प्रातःपदं पूर्वाह्णपरम् । “पूर्वाह्णे नवपत्रिका शुभकरी”इत्यादि प्रागुक्तैकवाक्यत्वात् अतएव व्यासः । “वेदार्थो यः स्वयं ज्ञातस्तत्राज्ञानं भवेद् यदि । ऋषिभिर्निश्चिते तत्र का शङ्का स्यान्मनीषिणाम्”॥ तिथिवृद्धिक्षयादेव क्वचिन्न तथा यथा भविष्ये । “व्रती प्रपूजयेद्देवीं सप्तम्यादिदिनत्रये । द्वाभ्यां चतुरह्नोभिर्वा ह्रासवृद्धिवशात्तिथेः” ॥ न चास्य अष्टाहे विसृजेच्छक्रं तद्दिने तु पार्वतीम् । न्यूनाधिकं न कर्त्तव्यं राज्ञो राष्ट्रधनक्षयात्” ॥ इति लिङ्गपुराणीयेन विरोध इति वाच्यम् । पूर्ववचने पूजयेदित्युक्तत्वात् पूजानुरोधेन न्यूनाधिकदिनावस्थितिप्रतिपादनात् परवचनस्य तु विसृजेदित्युक्तत्वात् विसर्जन एव त्र्यहपूजने कृतेऽपि नवमीयुत दशम्यां श्रवणानुरोधेन न्यूनत्वप्रसक्तौ यत्र वा नवमीषष्टिदण्डात्मिका तत्परदिने च नवमी तत्परदिने एकादश्यां दशमी तत्रोदयानुरोधादधिकत्वप्रसक्तौ च निषेधकत्वात् न तु सप्तम्याः षष्टिदण्डात्मिकायाः परदिने वृद्धावपि पूर्वदिने निषेधकत्वम् । “आदित्योदयवेलाया आरभ्य षष्टि नाड़िकाः । तिथिस्तु साहि शुद्धा स्यात् सार्वतिथ्यो ह्ययं विधिः” ॥ इति

कालमाधवीयधृतनारदीयात्। सा हि शुद्धा सैव शुद्धा नान्येत्यर्थः। "अकर्म्मण्यं तिथिमलम्" इत्युक्तत्वाच्च। अतएव नक्षत्रानुरोधोऽपि नास्ति तस्य गुणफलत्वेन प्रधानानुयायित्वात्। ततश्च सप्तमीपूजामहाष्टम्यादिकृत्यमपि षष्टिदण्डात्मिकायामेव न तु परदिवसीय खण्डतिथौ किन्तु पूर्व्वोक्तसन्ध्यनुरोधान्निशादाविव खण्डतिथावपि सन्धिपूजेति। एवञ्च यस्मिन् दिने महाष्टमीपूजा तस्मिन् दिन एव उपवासः। न तु सन्धिपूजादिने अष्टमीत्वेनोपवासविधिः पूर्व्वमुक्तत्वात् अत्रैव पुत्रवतो गृहस्थस्य निषेधः यथा कालिकापुराणम्। "उपवासं महाष्टम्यां पुत्रवान्न समाचरेत्"। अथेदं पूजाङ्गोपवासातिरिक्तपरम् अन्यथा प्रधानस्यानिर्व्वाहापत्तेः इति केचित् तच्चिन्त्यं "यथा तथैव पूतात्मा व्रती देवीं प्रपूजयेत्" इत्युत्तरार्द्धेन पुत्रवत एव उपवासेतरहविष्यादिना पूतात्मनः पूजाविधानात्। तथा च मत्स्यसूक्ते। "अथवाश्वयुजे शुक्लपक्षमासाद्य नन्दिकाम्। समारभ्य ततो दुर्गां हविष्याशी जितेन्द्रियः"॥ इति नन्दिकां षष्ठीं जितेन्द्रियो निवृत्तमैथुनादिः। अत्र पुत्रवतः पूजाङ्गमहाष्टमीनिमित्तकोपवासनिषेधान्नाष्टमीमात्रनिमित्तकोपवासनिषेधः इति संवत्सराद्याचरणमपि साधु संगच्छते। एवञ्च पूर्णाष्टम्यामष्टमीपूजा तत् परदिने अष्टमीनवम्योः सन्धिपूजा तत्परदिने महानवमीपूजा प्रागुक्तनन्दिकेश्वरपुराणाद्युक्तोदयगामितिथ्यनुरोधात् तत्परदिने दशम्यां विसर्जनं पूजानुरोधेनाधिकदिनलाभात्।

महानवमीपूजाकल्पमाह भविष्यपुराणम्। "लब्धाभिषेका वरदा शुक्ले चाश्वयुजस्य च। तस्मात्सा तत्रसंपूज्या नवम्याञ्चण्डिका बुधैः"॥ केवलाष्टमी केवलनवमीकल्पावाह कालिकापुराणम्। "यस्त्वेकस्यामथाष्टम्यां नवम्यां वाऽथ साधकः। पूजयेद्वरदां देवीं सर्व्वकामफलप्रदाम्"॥ इति सर्व्वत्र घटिकाव्यापिनी तिथिर्ग्राह्या। "व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैका यदा भवेत्। तामेव तिथिमाश्रित्य कुर्य्यात् कर्म्माण्यतन्द्रितः"। इति व्यासोक्तनियमश्रुतेः। एवञ्च

घटिकोनदशम्यामपराजितापूजानर्हत्वात् तत् पूजनं पूर्वदिने। अतएव तत्परमेवेदम्। "आश्विने शुक्लपक्षस्य दशम्यां पूजयेत् तथा। एकादश्यां न कुर्वीत पूजनञ्चापराजितम्॥ इति शिवरहस्योक्तैकादशीयुक्तदशमीनिषेधकवचनम्। ततश्च तत् पूर्वकृत्यं देवीविसर्जनमपि तदैव तदन्तापकर्षन्यायात् वाचस्पतिमिश्रोऽप्येवम्। अत्र घटिकापदं मुहुर्त्तपरम्। "घटिकैकात्वमावास्याप्रतिपत्सु नचेत् तदा। सर्वं तदासुरं दानं दैवे कर्मणि चोदितं मुहुर्त्तमप्यमावास्या प्रतिपत्सु यदा भवेत्। तद्दानमुत्तमं दैवं शेषं पूर्वं हि पूर्ववत्। इति राजमार्त्तण्डधृतजावालवचनयोर्घटिकामुहुर्त्तयोरैकार्थत्वात् शेषं तिथ्यन्तरं पूर्वं पूर्वोक्तं घटिकान्यूनं पूर्ववदासुरं घटिकाधिकञ्चोत्तमम्। एवञ्च यदा हि तिथिक्षयवशात् षष्ठीयुक्तसप्तम्यां पत्री प्रवेशनं नवमीयुक्तदशम्यां विसर्जनं तदा चरलग्नाप्राप्तौ पूर्वाह्णे नवपत्रिकेत्यादिभिर्विशेषतो विहितस्य दैवकर्मत्वेन श्रुत्युक्तस्य च पूर्वाह्णस्याबाधाय वृश्चिक एव चरनवांशे तदुभयं कार्य्यम्। "चरलग्ने चरांशे वा देव्या नियतमानसः। प्रतिसंवत्सरं कुर्य्यात् स्थापनञ्च विसर्जनम्"॥ इति देवीपुराणात्। "राज्ञो विनाशमिच्छेत्तु स्थिरलग्ने शिवार्चिता इति निन्दा तु चरांशेतरपरा चरलग्नसम्भवपरा वा। अत्राशक्त्या धनुरादौ कार्य्यं प्रागुक्तेन पत्री प्रवेशनमित्यनेन रात्रिपर्य्युदासात्तदितरत्वेन तस्यापि प्राप्तेः। "मध्याह्ने जन पीड़न क्षयकरी" इति निन्दापि रात्रीतरत्वेन रौहिणपूर्वकुतपप्रभृतिषु आपराह्णिकश्राद्धसत्वेऽपि रौहिणन्तु न लङ्घयेदितिवदप्राशस्त्यपरा।

अष्टम्युपवासफलञ्च देवीपुराणम्। "एकादशी कोटिसहस्रतुल्या कृष्णाष्टमीपर्वतराजपुत्रयाः। ततोऽपि शुक्लागुणिता शतेन पराशरव्यासवशिष्ठमुख्यैः"॥ कालमाधवीये निगमः। "शुक्लपक्षेऽष्टमी चैव शुक्लपक्षे चतुर्दशी। पूर्वविद्धा न कर्त्तव्या कर्त्तव्या परसंयुता॥ उपवासादिकार्य्येषु एष धर्मः सनातनः"। स्कान्दे "अष्टमी नवमीमिश्रा कर्त्तव्या भूतिमिच्छता"। अत्र भूतिमिति श्रवणात् पुत्रादेस्तदन्तःपातात्

पुत्रादिकामनयाप्युपवासस्य व्यवहारः। भविष्ये "शुक्लपक्षे तथाष्टम्यामुपवासपरायणः। मालतीकरवीरेण विल्वपत्रैश्च पूजयेत्॥ दुर्गेति नाम जप्तव्यं पुरतोऽष्टशतं नृप!। सर्वमङ्गलनामेति जप्तव्यं किल भारत"!॥ ननु अष्टम्युपवासे मांसेन पारणविधानात् पितृमरणादावपि तत् प्रसज्येत। तथा देवीपुराणम्। "अष्टमीं समुपोष्यैव नवम्यामपरेऽहनि। मत्स्यमांसोपहारेण दद्यान्नैवेद्यमुत्तमम्॥ तेनैव विधिनान्नन्तु स्वयं भुञ्जीत नान्यथा"॥ स्त्रियास्तु "ये त्विह वै पुरुषाः पुरुषमेधेन यजन्ते याश्च स्त्रियो नृपशून् खादन्ति तांश्च ताश्च ते पशव इह निहता यमसदने यातयन्तो रक्षोगणाः सैनिका इव स्वधितिनावदायासृक् पिवन्ति" इति श्रीभागवतपञ्चमस्कन्धगद्येन पशुमांसभक्षणनिन्दया न तेन पारणं किन्तु मत्स्येन सैनिकाः प्राणिवधनियुक्ताः स्वधितिना परशुना।

तेषां पशूनां ग्राम्यारण्यभेदमाह पैठीनसिः। "ग्राम्यारण्याश्चतुर्दश गौरविरजोऽश्वोऽश्वतरो गर्दभो मनुष्याश्चेति सप्तग्राम्याः पशवः। महिषवानर ऋक्ष सरीसृपरुरुपृषत् मृगाश्चेति सप्तारण्याः"। अश्वायां गर्दभेन जातोऽश्वतरः। एवञ्च मनुष्यस्यापि पशुत्वादध्ययने गुरुशिष्ययोरन्तरागमनेप्यहोरात्रमनध्यायः। "पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जार मूषिकैः। कृतेऽन्तरेत्वहोरात्र शक्रपाते तथोच्छ्रये" इति याज्ञवल्कीयात् तथा अनध्यायः। उच्छ्रये शक्रध्वजस्यैव अनुज्ञया तु न दोषः "नाग्निब्राह्मणयोरन्तराव्यपेयात् न गुरुशिष्ययोरनुज्ञया तु व्यपेयात्" इति मदनपारिजातधृतवशिष्ठवचनात्।

उच्यते। "विधिरत्यन्तमप्राप्तौ नियमः पाक्षिके सति। तत्र चान्यत्र च प्राप्तौ परिसंख्येति गीयते"॥ पाक्षिके रागतः पक्षतः प्राप्तौ रागाभावात् पक्षतोऽप्राप्तावेव तत्र प्राप्त्यर्थं नियमविधिः। न तु वैधनिषेधेन अप्राप्तेऽपि। प्रायश्चित्तविवेककृतां मते तु "मत्स्यांस्तु कामतो जग्ध्वा सोपवासस्त्र्यहं वसेत्" इति याज्ञवल्क्याद्युक्तप्रायश्चित्तश्रवणेन कामतो मांसभक्षणस्य निषिद्धस्य "प्राणात्यये तथा श्राद्धे प्रोक्षितं द्विजकाम्यया। देवान् पितॄन् समभ्यर्च्य खादन् मांसं न दोषभाक्"

इति तेनैव प्रतिप्रसूतस्य रविवारादौ निषेध इति सुतरामष्टम्युपवासपारणेऽपि रविवारादौ मांसनिषेधः। एवं मांसाशनत्यागकृतनियमेन नियोगादिष्वपि मांसं वर्जनीयमाह प्रायश्चित्तविवेके यमः। "भक्षयेत् प्रोक्षितं मांसं सकृत् ब्राह्मणकाम्यया। दैवे नियुक्तः श्राद्धे वा नियमे तु विवर्जयेत्"॥ पूर्वोक्तवचनस्य मत्स्यमांसोपहारेण नैवेद्यं दत्त्वैव भोजनं कार्य्यं नतु अदत्त्वेत्यर्थः अन्यथा मूलभूतश्रुतौ वाक्भेदः स्यात् नैवेद्यावशिष्टमांसादेरावृत्त्यापत्तेश्चेति। प्रोक्षितं यज्ञार्थं मन्त्रैः संस्कृतम् आरण्यानामिदानीन्तनप्रोक्षणाद्यपेक्षा नास्तीति। यथा महाभारते। "आरण्याः सर्वदेवत्याः प्रोक्षिताः सर्वशो मृगाः। अगस्त्येन पुरा राजन् मृगया येन पूज्यते"॥ अत्र प्रमाणान्तराप्राप्तत्वेन "पशुना यजेत" इत्यत्रैकत्ववद्विधेयविशेषणत्वेन अरण्यादेः पुंस्त्वं विवक्षितम् अतएव हरिवंशेऽपि "अवध्याञ्च स्त्रियं प्राहुस्तिर्य्यग्योनिगतेष्वपि"। ततश्च हरिण्यादीनामप्रोक्षितत्वेनाभक्ष्यत्वम्। यत्तु ब्रह्मपुराणे। "पशोस्तु मार्य्यमाणस्य न मांसं ग्राहयेत् क्वचित्। पृष्ठमांसं गर्भशय्यां शुष्कमांसमथापि वा" इति गर्भशय्या निषेधनं तत्सारस्वत्या मेध्यायागे बोधं ततस्तु "नियुक्तस्तु यथा न्यायं यो मांसं नात्ति मानवः। स प्रेत्य पशुतां याति सम्भवानेकविंशतिम्"॥ इति मनुवचनं तत्कालीनानिषिद्धमांसभुग्विषयम्। प्रेत्येत्यव्ययं परलोके इत्यर्थः। तथा च अमरः "प्रेत्यामुत्र भवान्तरे" इति। तथा च महाभारते। "रोगार्त्तोऽभ्यर्थितो वापि यो मांसं नात्त्यलोलुपः। फलं प्राप्नोत्ययत्नेन सोऽश्वमेधशतस्य च"॥ मांसत्यागोपदेशेऽपि तत् फलमाह नन्दिकेश्वरपुराणे। "यश्चोपदेशं कुरुते परस्य तु महात्मनः। मांसस्य वर्जनफलं सो मांसादफलं लभेत्"। अतो रविवारादौ मत्स्यमांसाशनं विनापि अष्टम्युपवासपारणसिद्धिः। स्फराश्लिष्टेज्यायामावाहनं विनैव।

रविवारे आमिषनिषेधो भविष्ये। "आमिषं रक्तशाकञ्च यो भुङ्क्ते च रवेर्दिने। सप्तजन्म भवेत् कुष्ठी दरिद्रश्चोपजायते॥ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन एकभक्तं रवेर्दिने। कुर्य्यान्नक्तं हविष्यं वा रोगयुक्तोऽन्यथा भवेत्"॥ स्मृतिः। "माष-

मामिषमांसञ्च मसूरं निम्बमार्द्रकम्। भक्षयेद् यो रवेर्वारे सप्तजन्मन्यपुत्रकः” ॥

स्फ्याश्लिष्टेज्याधिकरणञ्च। स्फ्यस्य खड्गाकारकाष्ठस्य भक्ताश्लेषनिमित्तकेज्यायामिष्टित्वेन प्रकृतिवद्विकृतिरित्यतिदेशेन दर्शात्मकप्रकृतिधर्माणां प्राप्तौ पूर्वदिनप्रातःकालीनं हवनीय देवतावाहनमपि प्राप्तं तच्च तदानीं न विधीयते नैमित्तिके निमित्तनिश्चयवतोऽधिकारितया प्रकृते श्वोभावि भक्ताश्लेषरूपनिमित्तसंशयेन प्रधानानधिकारिणोऽङ्गानधिकारात् तदुत्तरदिने च निमित्तनिश्चये तदधिकारसिद्धावपि नावाहनानुष्ठानम् आवाहनस्य पूर्वदिनप्रातःकालनैहत्यादितीज्याया आवाहनं विनैवानुष्ठानमिति। अथ तत्र पूर्वदिनप्रातःकालनैयत्यादस्तु तथा प्रकृते तु यद्यपि तथात्वाभावात्तद्वैषम्यं तथापि यथा तदङ्गवैगुण्यान्न कर्मवैगुण्यं तथात्रापि वचनान्तरनिषिद्धमांसभोजनपुरुषस्य तदङ्गवैगुण्यान्न तदङ्गिवैगुण्यमित्यवैषम्यम्।

अधिकरणञ्च“विषयो विशयश्चैव पूर्वपक्षस्तथोत्तरम्। निर्णयश्चेति पञ्चाङ्गं शास्त्रेऽधिकरणं स्मृतम्”। विषयो विचारार्हं वाक्यम्। विशयोऽस्यायमर्थो नवेति संशयः। पूर्वपक्षः प्रकृतार्थविरोधितर्कोपन्यासः। उत्तरं सिद्धान्तानुकूल तर्कोपन्यासः। निर्णयः महावाक्यार्थतात्पर्य्ये निश्चयः। एवं क्रमेण विवेचनमत्राधिक्रियते इत्यधिकरणमिति। कालिकापुराणे “कन्यासंस्थे रवा वीषे या शुक्ला तिथिरष्टमी। तस्यां रात्रौ पूजितव्या महाविभवविस्तरैः॥ नवम्यां वलिदानन्तु कर्त्तव्यं वै यथाविधि। जपं होमञ्च विधिवत् कुर्य्यात् तत्र विभूतये”। अत्र नवम्यां होमश्रुतेः “पूर्वाषाढ़ायुताष्टम्यां पूजाहोमाद्युपोषणम्” इति श्रुतेश्चोभयत्रैकतरस्मिन् वा होमः। अत्र होमे विहिते तदङ्गत्वात् पूर्णपात्रादिका पृथग्दक्षिणा षट्त्रिंशदुपचारान्तर्गतदाने दक्षिणादानवत्। तथा च मत्स्यपुराणं “देवे दत्त्वा तु दानानि देवे दत्त्वा च दक्षिणाम्। तत् सर्वं ब्राह्मणे दद्यादन्यथा निष्फलं भवेत्”॥ दत्त्वात्वित्यत्र देयानीति वाराहीतन्त्रे पाठः अतएव ब्रह्मपुराणे विष्णूत्थापनीय-

पूजने स्पष्टमुक्तं यथा। "सुरान् संपूजयेद्भक्त्या सुमनोभिश्च कुङ्कुमैः। दीपधूपैश्च नैवेद्यैः पायसेन च भूरिणा। माल्ययान्नप्रदानैश्च होमैः पुण्यैः सदक्षिणैः"।

पूजाजपहोममन्त्रस्तु देवीपुराणे "पूजयेत्तिलहोमैस्तु दधिक्षीर घृतादिभिः"। कुर्य्याद्देव्यास्तु मन्त्रेण इत्यभिधाय "जयन्ती मङ्गलाकाली भद्रकाली कपालिनी। दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते॥ अनेनैव तु मन्त्रेण जपहोमौ तु कारयेत्" एवं "पुरश्चरणकार्य्येषु विल्वपत्रैर्युतैस्तिलैः। साक्षतैः सघृतैर्वापि शिवामुद्दिश्य भक्तितः। जुहुयादनलं वह्निं संस्कृतं कामवृद्धये" इति कालिकापुराणात् अत्रापि विल्वपत्र घृतोपयोगितेति अत्र दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां स्वधा पूजानन्तरं स्वाहा पूजालिखनात् स्वाहान्तपाठ निर्णय इति तन्न मत्स्यसूक्त विरोधात्। तथा च "पञ्चोपचारैर्विधिवज्जयन्त्याद्यास्ततः परम्। जयन्ती मङ्गलाकाली भद्रकाली कपालिनी॥ दुर्गा क्षमा शिवा धात्री पूजनीयाः प्रयत्नतः। दक्षपार्श्वे ततो देव्याः स्वाहा इव स्वधान्तथा"॥ इति। न च अत्रापि तथा क्रमः। तथात्वे पञ्चमाक्षरस्य लघुत्वानुपपत्तेः। दुर्गामाहात्म्यान्तर्गतार्गलायां तथा पाठ दर्शनात् प्राचीन ग्रन्थे तथा दर्शनाच्च। पूजायां ह्रीमिति चतुरक्षरमप्याह कालिकापुराणम्। "चतुरक्षरमन्त्रेण पाद्यादीनथ षोड़श। वितरेदुपचारांश्च पूर्वप्रोक्तांस्तु भैरव"। तदनन्तरं प्रणवादिनमोन्त देवता नामोच्चारणमाहाग्निपुराणम्। "तल्लिङ्गैः पूजयेन्मन्त्रैः सर्वदेवान् समाहितः। ध्यात्वा प्रणवपूर्वन्तु तन्नाम्ना सुसमाहितः। नमस्कारेण पुष्पादिं विन्यसेत्तु पृथक् पृथक्"॥ अत्र च "तत्राष्टम्यां भद्रकाली दक्षयज्ञविनाशिनी। आविर्भूता महाघोरा योगिनीकोटिभिः सह। अतोऽत्र पूजनीया सा तस्मिन्नहनि मानवैः॥ इति ब्रह्मपुराणात् "दक्षयज्ञविनाशिन्यै महाघोरायै योगिनीकोटिपरिवृतायै भद्रकाल्यै ह्रीं दुर्गायै नमः"। इत्यनेनापि पूजां प्रचरति। पूजायां विशेषस्तु दुर्गापूजातत्त्वेऽनुसन्धेयः।

होमादावङ्गुल मानादिग्रहणं छन्दोगपरिशिष्टम्।

“मानक्रियायामुक्ताया मनुक्ते मानकर्त्तरि। मानकृद्यजमानः स्याद्विदुषामेष निर्णयः” ॥ यजमानासन्निधाने तु साधारणाङ्गुलिमानग्रहणम्। यथा कपिलपञ्चरात्रम्। “अष्टभिस्तैर्भवेत ज्यैष्ठं मध्यमं सप्तभिर्यवैः। कन्यसं षड्भिरुद्दिष्ट मङ्गुलं मुनिसत्तम” ॥ तैः प्रक्रंस्यमानयवैः कन्यसं कनिष्ठम्। मानन्तु पार्श्वेन “षड्यवाः पार्श्वसम्मिताः” इति कात्यायनवचनात्। कालिकापुराणम्। “यवानां तण्डुलैरेक मङ्गुलं चाष्टभिर्भवेत्। अदीर्घं योजितैर्हस्तश्चतुर्विंशतिरङ्गुलैः ॥ होमे ब्रह्मवरणं प्रथमतः। ज्योतिष्टोमे ब्रह्मोद्गातृहोत्रध्वर्य्यृत्यादि दर्शनेनान्यत्राप्याकाङ्क्षया दृष्टकल्पनाया न्याय्यत्वात्। सुगति सोपान प्रभृतयोऽप्येवम्। तत्तु यजमानकर्त्तृकम्। “दानवाचनान्वारम्भणवरणव्रतप्रमाणेषु यजमानं प्रतीयात्” इति कात्यायनोक्तेः ब्रह्मस्थापनन्तु होतृकर्त्तृकमेव “अग्निमुपसमाधाय दक्षिणतो ब्रह्मासनमास्तीर्य्य” इति कात्यायनेनैककर्त्तृत्वाभिधानात्।

तत्र छन्दोगानां ब्रह्मस्थापन प्रकारमाह गोभिलः। “अग्रेणाग्निं परिक्रम्य दक्षिणतोऽग्नेः प्रागग्रान् कुशानास्तीर्य्य तेषां पुरस्तात् प्रत्यङ्मुखस्तिष्ठन् सव्यपाने रङ्गुष्ठेनोपकनिष्ठया चाङ्गुल्या ब्रह्मासनात् तृणमभिसंगृह्य दक्षिणापरमष्टमं देशं निरस्यति निरस्तः परावसुः” इति “अप उपस्पृश्याथ ब्रह्मासने उपविशत्यावसोः सदने सीदामि” इति “अग्न्यभिमुखो वाग्यतः प्राञ्जलिरास्ते आकर्मणः पर्य्यवसानात्। भाषेत यज्ञसंसिद्धिं नायज्ञीयां वाचं वदेत् यद्ययज्ञीयां वाचं वदेद्वैष्णवीमृचं यजुर्वा जपेत् अपि वा नमो विष्णवे” इति ब्रूयात्। “यद्युवोभयं चिकीर्षेद्धोत्रं ब्रह्मत्वञ्च” इति तेन कल्पेन “छत्रं वोत्तरासङ्गं सोदकं कमण्डलुं दर्भवटुं वा ब्रह्मासने निधाय तेनैव प्रत्यावृत्त्यान्यच्चेष्टेत” इति। अग्रेण पूर्व्वया दिशा प्रदक्षिणेनाग्निं गत्वा अग्नेर्दक्षिणस्यां दिशि प्रागग्रान् कुशानास्तीर्य्यान्यच्चेष्टेतेति व्यवहिते न सम्बन्धः न तु निरस्यतीत्यनेन ब्रह्मेति कर्त्तृनिर्द्देशात्। न च ब्रह्मेत्यस्य आसनेन सम्बन्धः उपवेशनात् पूर्वं तत् सम्बन्धाभावात्। ततश्

दर्भास्तरणान्तं याजमानिकं कर्म। ब्रह्मा तु तेषां पुरस्तादास्तृत कुशानां पूर्वदिग्भागे तिष्ठन् अनुपविष्ट एव सव्यस्य वामस्य उपकनिष्ठया अनामिकया आसनाद्यजमानास्तृतं कुशपत्रं गृहीत्वा दक्षिणापरं दक्षिण पश्चिममष्टमदेशम् उभयदिगष्टमभागं नैरृतकोणमिति यावत् निरस्तः परावसुरित्यनेन क्षिपतीति। अप उपस्पृश्य दक्षिणपाणिना जलं स्पृष्ट्वाऽथानन्तरम् आसने ब्रह्मा ब्रह्मत्वेन उपकल्पित उपविशति। आवसोः सदने सीदामीति मन्त्रेणेति एव मेव भट्टनारायण प्रभृति व्याख्यानात्। एतेन तेषां पुरस्तादित्यादि आवसोः सदने सीदेत्यन्तं याजमानिकं कर्म यजमानकर्त्तृकं सीदामीति प्रतिवचनं ब्रह्म कर्त्तृकमिति भवदेव भट्टकल्पनमेव सीदेति सूत्रानुपात्तत्वात्। भाषेत यज्ञसंसिद्धिम् इति होत्रान्यथा क्रियमाणे कर्मणि तत्सिद्ध्यर्थमेतदेवं कुरु एतत् कृत्वैतत् कुर्वित्यादि भाषेत तत्राप्ययज्ञीयाम् असंस्कृतां यदि गिरं वदेत्तदा वैष्णवी ऋक् इदं विष्णुरिति यजुर्विष्णोरराटमसीत्यादि नमो विष्णवे इत्यादि प्रकार त्रितयान्यतमप्रकारं प्रायश्चित्तमिति।

अत्र ऋगादि लक्षणमाह जैमिनिः। "तेषामृक् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्थितिः" इति। तेषां मन्त्राणां मध्ये यत्रार्थवशेन एकान्वयित्वेनानुष्टुबादि पादस्थितिः सा ऋक्। यजुराह स एव। "शेषे वा यजुः शब्द" इति शेषे ऋक् साम भिन्ने मन्त्रजाते ततश्च यन्मन्त्रजातं प्रश्लिष्य पठितं गानादि विच्छेदरहितं तद्यजुरिति। सामाप्याह स एव "गीतिषु सामाख्या" इति गीयमानेषु मन्त्रेषु सामसंज्ञेत्यर्थः। यद्यु वेति अशक्तौ उत्तरासङ्गम् उत्तरीयं दर्भवटुः कुशब्राह्मणः।

अथ कुण्डविधिः। तत्र मत्स्यपुराणम्। "प्रागुदक्प्लवनां भूमिं कारयेद्यत्नतो नरः"। प्रागुदक्प्लवनां पूर्वनीचां उत्तरनीचां वा। तत्र वशिष्ठपञ्चरात्रे विज्ञानललितायाञ्च "सर्वाधिकारिकं कुण्डं चतुरस्रन्तु सर्वदम्"। चतुरस्रं चतुष्कोणम्। भविष्योत्तरे। सहस्रेत्वथ होतव्ये कुर्य्यात् कुण्डं करात्मकम्। द्विहस्तमयुते तच्च लक्षहोमे चतुष्करम्" ॥ द्विह-

स्तादिके मानमाह जामलः। "पूर्वं पूर्वस्य कुण्डस्य कोणसूत्रेण निर्मितम्। उत्तरोत्तरकुण्डानां मानन्तत्परिकीर्त्तितम्"॥ पूर्वं पूर्वस्य हस्त द्विहस्तादिमितस्य कोणसूत्रेण ईशान कोणान्निर्ऋति कोणदत्त सूत्रेण निर्मितं परिमितं यन्मानम् उत्तरोत्तर कुण्डानां तदेव पारिभाषिकं द्विहस्तादि मानं न तु प्रकृत हस्तद्वैगुण्यादिमितम्। तथात्वे द्विहस्तादि मितस्य चतुर्हस्तादि परिमाणापत्तेः। क्षुद्रकपरिमाणवत्। वशिष्ठपञ्चरात्रे। "यावान् कुण्डस्य विस्तारः खननन्तावदिष्यते। हस्तैके मेखलास्तिस्रो वेदाग्नि नयनाङ्गुलाः॥ कुण्डे द्विहस्ते ता ज्ञेया रसवेद गुणाङ्गुलाः। चतुर्हस्ते तु कुण्डे ता वसुतर्कयुगाङ्गुलाः"। मेखला ब्रह्मचारिमेखलावत्। कुण्डवेष्टिता मृद्घटिता स्ताश्च खातदेशाद्बाह्ये। एकाङ्गुलरूपं कण्ठं परित्यज्य उच्छ्रायेण विस्तारेण इत्यादि क्रमेण वेदाद्यङ्गुलाः एतद्विपरीतास्तन्त्रान्तरोक्ता व्यवहारविरुद्धाः। वेदाश्चत्वारः अग्नयस्त्रयः। नयने द्वे। रसाः षट् गुणास्त्रयः। वसुतर्क युगानि अष्टषट् चत्वारि। कालोत्तरे। "खाताद्बाह्येऽङ्गुलः कण्ठः सर्वकुण्डेष्वयं विधिः"। पिङ्गलामते तु। "खातादेकाङ्गुलं त्यक्त्वा मेखलानां विधिर्भवेत्"। एककुण्डस्य पश्चिम दिक्कर्त्तव्यतामाह मन्त्रादाननिर्णये। "भुक्तौ मुक्तौ तथा पुष्टौ जीर्णोद्धारे तथैव च। सदा होमे तथा शान्तावेकं वारुणदिग्गतम्"। शारदातिलके "होतुरग्रे योनिरासामुपर्य्यश्वत्थपत्रवत्। मुष्ट्यरत्नेकहस्तानां कुण्डानां योनिरीरिता। षट्चतुर्द्व्यङ्गुलायाम विस्तारोन्नतिशालिनी। एकाङ्गुलन्तु योन्यग्रं कुर्य्यादीषदधोमुखम्। एकैकाङ्गुलितो योनिं कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत्। यवद्वयक्रमेणैव योन्यग्रमपि वर्द्धयेत्। स्थलादारभ्य नालं स्यात् योन्यामध्ये सरन्ध्रकम्"। आसां मेखलानाम्। अश्वत्थपत्रवदित्यनेन चतुरङ्गुल विस्तृतमूलाद्यथोक्त क्रमेणैवाङ्गुल्यन्तः संकुचित विस्तारा। जामले "नालमेखलयोर्मध्ये परिधेः स्थापनाय च। रन्ध्रं कुर्य्यात् तथा विद्वान् द्वितीयमेखला परि"॥ पुरश्चरणचन्द्रिकायान्तु एतद्वचनात् पूर्वं "स्थलादारभ्य नालं स्याद्योनिमूलस्य

धारणे"॥ इत्यहं लिखितं परिधींस्तद्विन्यासांश्चाह छन्दोगपरिशिष्टम्। "बाहुमात्राः परिधयः ऋजवः सत्वचोऽव्रणाः त्रयोभवन्त्यशीर्णाग्रा एतेषान्तु चतुर्द्दिशम्। प्रागग्रावभितः पश्चादुदगग्रमथापरम्। न्यसेत् परिधिमन्यञ्चेदुदगग्रः सपूर्वतः"॥ अव्रणाश्छिद्ररहिताः अभितः अग्नेः पार्श्वद्वये दक्षिणतः उत्तरतश्च पश्चात् पश्चिमे उदगग्रमुत्तराग्रं त्रैलोक्यसारे। "कुम्भद्वयसमायुक्ता अश्वत्थदलवन्नता। अङ्गुष्ठमेखलायुक्ता मध्ये त्वाज्यस्थितिर्यथा"॥ कुम्भद्वयसमायुक्ता गजकुम्भाकारमूलदेशयुक्ता। नता नम्रा। अङ्गुष्ठमेखलायुक्ता अङ्गुष्ठमितमृद्घटितमेखलावेष्टनयुक्ता। तथात्वे हस्तगलिताज्यस्थित्या कुण्डे तत्पातो भवतीत्यर्थः। अतएव स्वायम्भुवे। "अङ्गुष्ठमानौष्ठकण्ठा कार्य्याश्वत्थदलाकृतिः"। अङ्गुष्ठमानोष्ठं कण्ठे यस्या योनेः सा तथा ओष्ठोऽत्राग्रं हयशीर्षपञ्चरात्रे "कल्पयेदन्तरे नाभिं कुण्डस्याम्बुजसन्निभम्। मुष्ट्यरत्नेकहस्तानां नाभिरुत्सेधविस्तृता॥ नेत्रवेदाङ्गुलोपेता कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत्। यवद्वयक्रमेणैव नाभिं पृथगुदारधीः॥ नाभिक्षेत्रं त्रिधा भित्त्वा मध्ये कुर्वीत कर्णिकाम्। बहिरंशद्वयेनाष्टौ पत्राणि परिकल्पयेत्"॥ खादिरादि स्रुवाभावे तु राघवभट्टधृतसंहितायाम्। "पलाशपत्रे निश्छिद्रे रुचिरे स्रुक् स्रुवौ स्मृतौ। विदध्याद्वाश्वत्थपत्रे संक्षिप्ते होमकर्मणि"॥ तत्र कुण्डदोषानाह विश्वकर्मा। "खाताधिके भवेद्रोगी खातहीने धनक्षयः। वक्रकुण्डे तु सन्तापो मरणं छिन्नमेखले। मेखलारहिते शोको ह्यधिके वित्तसंक्षयः। भार्य्याविनाशकं कुण्डं प्रोक्तं योन्या विना कृतम्। अपत्यध्वंसनं प्रोक्तं कुण्डं यत् कण्ठवर्जितम्"।

अतएव वशिष्ठसंहितायां "तस्मात् सम्यक् परीक्ष्यैवं कर्त्तव्यं शुभवेदिकम्। हस्तमात्रं स्थण्डिलं वा संक्षिप्ते होमकर्मणि"॥ क्रियासारेऽपि। "कुण्डमेवंविधं न स्यात् स्थण्डिलं वा समाश्रयेत्"॥ शारदातिलकेऽपि "नित्यनैमित्तिकं काम्यं स्थण्डिले वा समाचरेत्। हस्तमात्रन्तु तत्कुर्य्यात् चतुरस्रं समन्ततः"॥ महाकापिलपञ्चरात्रे। "संख्यानुक्तौ शतं साष्टं सहस्रं वा जपादिषु"।

होमे स्वाहान्ततामाह यज्ञपार्श्वः। "आदाय दक्षिणे पाणौ स्रवत्त्रिमधुरं हविः। प्राङ्मुखो वह्निजायान्ते जुहुयान्न्युब्जपाणिना"॥ त्रिमधुरं घृतमधुशर्करात्मकम्। विष्णुधर्मोत्तरे। "दूर्वाहोमः परः प्रोक्तस्तेन स्वर्गे महीयते। तस्माद्दशगुणं पुण्यम् इक्षुभिः प्राप्नुयात् कृते। तस्माद्दशगुणं शस्यैर्व्रीहिभिर्द्विगुणं भवेत्॥ यवैश्चतुर्गुणं प्रोक्तं तिलैर्दशगुणं स्मृतम्। विल्वैर्दशगुणं प्रोक्तं घृतेनाष्टगुणं ततः"॥ इत्यनेन घृतस्य सर्वोत्कृष्टत्वं दर्शितम्। वह्निजाया स्वाहा। "मन्त्रेणोङ्कारपूतेन स्वाहान्तेन विचक्षणः। स्वाहावसाने जुहुयात् ध्यायन् वै मन्त्रदेवताम्"॥ इति स्मृतेः। स्वाहान्तमन्त्रे स्वाहान्तरं निषेधयति मन्त्रतन्त्रप्रकाशः। "नमोऽन्तेन नमो दद्यात् स्वाहान्ते द्विठमेव च। पूजायामाहुतौ चापि सर्वत्रायं विधिः शिवे" !॥ अन्तशब्दोऽत्रावसानार्थः द्विठः स्वाहा ठकारेण लिपिसाम्याद्विन्दुरुच्यते तस्य द्वित्वं तेन विसर्गः स च शक्तिरूपः तेन द्विठ शब्देनाग्निशक्तिः स्वाहोक्तेति राघवभट्टः तथा च द्विठः स्वाहानलप्रियेति वर्णाभिधानम्। अत्र तु स्वाहाशब्दः स्वीयद्रव्यत्यागार्थकः। यथा "उपरिष्ट होमाः स्वाहाकारप्रदाना जुहोतयः"। इति हरिशर्मधृतं स्वाहाकारेण स्वाहेति पदेन प्रदानं त्यागो यासु तास्तथा अतएव स्वाहाकारस्य प्रदानार्थकत्वाद्धविस्त्यागस्याम्नायसिद्धत्वेनैव कृतार्थत्वात् द्वितीयस्यां मानमनर्थकं स्यात् इति भट्टभाष्यम्। प्रदानार्थकत्वन्तु तत्रैव यत्र मन्त्रस्थनाम्नि चतुर्थ्यन्तता अतो जयन्तीत्यादौ नमः स्वाहयोर्यथायथं पुनर्दयतेतिन्युब्जपाणिनेति शाख्यन्तरीयम्।

"उत्तानेनैव हस्तेन अङ्गुष्ठाग्रेण पीड़ितम्। संहताङ्गुलिपाणिस्तु वाग्यतो जुहुयाद्धविः॥" इति महादाननिर्णयधृतगोभिलवचनात् एतद्वचनं परिशिष्टीयमिति माधवाचार्य्यः। भविष्येऽपि "आहुतिस्तु घृतादीनां स्रुवेणाधोमुखेन तु। हुनेत्तिलाज्याहुतिस्तु दैवेनोत्तानपाणिना"॥ स्रुवस्तु पञ्चाङ्गुलां त्यक्त्वा शङ्खमुद्रया धार्य्यः। "पञ्चाङ्गुलान् वहिस्त्यक्त्वा

धारयेत् शङ्खमुद्रया"। इति वाचस्पतिमिश्रकृतमहादाननिर्णयधृतवचनात्।

अग्नेर्नामानि गोभिलपुत्रकृतगृह्यसंग्रहे। "लौकिके पावको ह्यग्निः प्रथमः परिकल्पितः। अग्निस्तु मारुतोनाम गर्भाधाने विधीयते॥ पुंसवने चन्द्रनामा शुङ्गाकर्मणि शोभनः। सीमन्ते मङ्गलो नाम प्रगल्भो जातकर्मणि॥ नाम्नि स्यात् पार्थिवो ह्यग्निः प्राशने च शुचिस्तथा। सत्यनामाथ चूड़ायां व्रतादेशे समुद्भवः॥ गोदाने सूर्य्यनामा च केशान्ते ह्यग्निरुच्यते। वैश्वानरो विसर्गे तु विवाहे योजकस्तथा"॥ गोदाने गोदानाख्यसंस्कारे। "चतुर्थ्यान्तु शिखीनाम धृतिरग्निस्तथापरे"। अपरे धृतिहोमादौ। "प्रायश्चित्ते विधुश्चैव पाकयज्ञे तु साहसः"। प्रायश्चित्तात्मकमहाव्याहृतिहोमादौ। पाकयज्ञे पाकाङ्गकवृषोत्सर्गगृहप्रतिष्ठाहोमादौ। "लक्षहोमे च वह्निः स्यात् कोटिहोमे हुताशनः। पूर्णाहुत्यां मृड़ोनाम शान्तिके वरदः सदा। पौष्टिके वलदश्चैव क्रोधोऽग्निश्चाभिचारके। कोष्ठे तु जठरो नाम क्रव्यादोमृतभक्षणे। "आहूय चैव होतव्य यत्र यो विहितोऽनलः"॥

तथा "शुभं पात्रन्तु कांस्यं स्यात्तेनाग्निं प्रणयेद्बुधः। तस्याभावे शरावेन नवेनाभिमुखञ्च तत्। विशेषनामाज्ञाने गुणविष्णुधृता स्मृतिः "सर्वतः पाणिपादान्तः सर्वतोऽक्षि शिरोमुखः। विश्वरूपो महानग्निः प्रणीतः सर्वकर्मसु" अग्निप्रणयनानन्तरं सर्वत इत्यस्य पाठो युज्यते प्रणीत इति मन्त्रलिङ्गात्। अन्यथा स्थापनानन्तरमेतदभिधानं व्यर्थं स्यात्। गुणविष्णुना श्रुतिरिति कृत्वा सर्वतः पाणिपादान्त इति लिखितम्। एवञ्च दुर्गापूजनस्य पौष्टिककर्मत्वात्। तदङ्गहोमे वलदनामाग्निरिति।

ध्यानमादित्यपुराणे। "पिङ्गभ्रुः श्मश्रुकेशाक्षः पीताङ्गो जठरोऽरुणः। छागस्थः साक्षसूत्रोऽग्निः सप्तार्च्चिः शक्तिधारकः"॥ यत्तु प्रकृतकर्मवैगुण्यप्रशमनाय शाट्यायनहोमाभिधानं भवदेव भट्टसम्मतं तन्न प्रामाणिकं तस्मादपि महाप्रामाणिकैर्भट्टनारायणचरणैर्गोभिलभाष्ये तदप्रमाणीकृत-

त्वात्। छन्दोगपरिशिष्टेऽपि प्रायश्चित्तार्थं प्रकारत्रयमात्रमुक्तं यथा "यत्र व्याहृतिभिर्होमः प्रायश्चित्तात्मको भवेत्। चतस्रस्तत्र विज्ञेया स्त्रीपाणिग्रहणे यथा॥ अपि वा ज्ञातमित्येषा प्राजापत्यापि वा हुतिः। होतव्या त्रिविकल्पोऽयं प्रायश्चित्तविधिः स्मृतः"॥ त्रिविकल्प इत्यनेन कल्पान्तरनिषेधाद्गोभिलीयकर्मणि शाट्यायनहोमो न युक्तः। किन्तु व्यस्त महाव्याहृतिभिश्चतसृभिः प्रायश्चित्त होमा युक्तः। विशारदप्रभृतयोऽप्येवम्। शाट्यायन होमस्य समूलत्वेऽपि शाखान्तरीयत्वम्।

अग्नेः शुभलक्षणमाह वायुपुराणम्। "अर्चिष्मान् पिण्डितशिखः सर्पिः काञ्चनसन्निभः। स्निग्धः प्रदक्षिणश्चैव वह्निः स्यात् कार्य्यसिद्धये"॥ ब्रह्मपुराणे। "क्षुत्तृट्क्रोधत्वरायुक्तो हीनमन्त्रं जुहोति यः। अप्रवृद्धे सधूमे वा सोऽन्धः स्यादन्यजन्मनि। अल्पे रूक्षे सस्फुलिङ्गे वामावर्त्ते भयानके। आर्द्रकाष्ठैश्च सम्पन्ने फुत्कारवति पावके॥ कृष्णार्चिषि सुदुर्गन्धे तथा लिहति मेदिनीम्। आहुतिं जुहुयाद्यस्तु तस्य नाशो भवेत् ध्रुवम्॥ आपस्तम्बः। "नाप्रोक्षितमिन्धनमग्नावादध्यात्" इति।

पूजामाह मार्कण्डेयपुराणम्। "संपूजयेत्ततो वह्निं दद्याच्चैवाहुतिं क्रमात्। कर्कमतसंवादिनी स्मृतिः। "आदौ तु देवतोद्देशं तैत्तिरीय कठशाखिनोः। काण्वमाध्यन्दिनानाञ्च पश्चादुल्लेखयेत् सुरान्"॥ अन्येषां नास्त्येव देवतोद्देशः। स्मृत्यर्थसारमदनपारिजातयोः। "सन्निधौ यजमानः स्यादुद्देशत्यागकारकः। असन्निधौ तु पत्नी स्यादुद्देशत्यागकारिका। असन्निधौ तु पत्न्याः स्यादध्वर्य्युस्तदनुज्ञया। उन्मादे प्रसवे चार्त्तौ कुर्वीतानुज्ञया विना"। अध्वर्य्युर्यजुर्वेदिहोमकर्त्ता।

पूर्णाहुतिस्तूत्थाय सर्वैर्दातव्या यथा अग्निपुराणम्। "मूर्द्धानन्दिवमन्त्रेण संस्रवेण च धारया। दद्यादुत्थाय पूर्णां वै नोपविश्य कदाचन"॥ परार्द्धं भविष्येऽपि। मूर्द्धानन्दिवेति यजुर्वेदिनां मन्त्रः। सामगानान्तु पूर्णहोममित्यादि।

शान्तिदीपिकायां वशिष्ठः। "दद्यात्पाद्यादिकं वह्नेर्घृतेनाम्बु विना बुधः। पयसा शीतलीकुर्य्यात् ऐशान्यां भस्म चाहरेत्॥ ऐशान्यामाहरेद्भस्म स्रुचावाथ स्रुवेण वा। वन्दनां

कारयेत्तेन शिरः कण्ठांसकेषु च ॥ कश्यपस्येति मन्त्रेण यथानुक्रमयोगतः। ततः शान्तिं प्रकुर्वीत अवधारणवाचनम्। दक्षिणा च प्रदातव्या ग्रहादीनां विसर्जनम्" ॥ शान्तिर्वामदेव्यगानादिः। "पर्य्युक्षणञ्च सर्वत्र कर्त्तव्यमदितेन्विति अन्ते च वामदेव्यस्य गानमित्यथवा त्रिधा" इति छन्दोगपरिशिष्टात् गानं कुर्य्यात् ऋचस्त्रिधेति वा पाठः।

अवधारणमच्छिद्रावधारणं दक्षिणानन्तरं कर्त्तव्यं न तु पाठक्रमादरः। "वृथा विप्रवचो यस्तु गृह्णाति मनुजः शुभे!। अदत्त्वा दक्षिणां वापि स याति नरकं ध्रुवम्" इति नारदीयात् अतएव भवदेवभट्टेनापि वामदेव्यगानानन्तरं दक्षिणोक्ता तथा वशिष्ठेन दक्षिणानन्तरं विसर्जनाभिधानेन श्राद्धेऽपि तथादर्शनेन अनिर्दिष्टकालाङ्गस्य प्रधानकालकर्त्तव्यत्वेन च शारद्याः पूजाया नवम्यामेव दक्षिणा देया। व्यक्तं मत्स्यसूक्ते "नवम्यां पूर्ववत् पूजा कर्त्तव्या भूतिमिच्छता। दक्षिणां वस्त्रयुग्मञ्च आचार्य्याय निवेदयेत्" ॥ न तु देवीविसर्जनानन्तरं दक्षिणेति दुर्गाभक्तितरङ्गिण्युक्तं युक्तम्। "उत्तरेण नवम्यान्तु बलिभिः पूजयेत् शिवाम्। श्रवणेन दशम्यान्तु प्रणिपत्य विसर्जयेत्" इत्यनेन "आर्द्रायां बोधयेद्देवीं मूलेनैव प्रवेशयेत्। पूर्वोत्तराभ्यां संपूज्य श्रवणेन विसर्जयेत्" इत्यत्र क्त्वा निर्देशेन च नवम्युत्तराषाढ़योः पूजान्तता प्रतीतेः। "आश्विने मासि शुक्ले तु कर्त्तव्यं नवरात्रिकम्। प्रतिपदातिक्रमेणैव यावच्च नवमी भवेत्। त्रिरात्रं वापि कर्त्तव्यं सप्तम्यादि यथाक्रमम्" ॥ इति कृत्यकल्पलताधृतभविष्योत्तरवचने पूजनस्य नवम्यन्तता प्रतीतेश्च। कर्मान्ते छन्दोगपरिशिष्टेन दक्षिणाभिधानाच्च। यथा "ब्राह्मणे दक्षिणा देया यत्र या परिकीर्त्तिता। कर्मान्तेऽनुच्यमानायां पूर्णपात्रादिका भवेत्" ॥ ब्राह्मणे इति कर्मकारयितृपलक्षणम्। अत्र नवरात्रिकमित्यौत्सर्गिकं तिथिवृद्धिह्रासाभ्यामधिकन्यूनतासम्भवात् अतएव प्रतिपदादितत्तत्तिथिषु कृत्यमाह भविष्ये "केशसंस्कारद्रव्याणि प्रदद्यात् प्रतिपद्दिने। पट्टडोरं द्वितीयायां केशसंयमहेतवे ॥ दर्पणञ्च तृतीयायां सिन्दूरालक्तकन्तथा। मधुपर्कञ्चतुर्थ्याञ्च

तिलकं नेत्रमण्डनम् ॥ पञ्चम्यामङ्गरागांश्च शक्त्यालङ्करणानि च। षष्ठ्यां बिल्वतरौ बोधं सायं सन्ध्यासु कारयेत् ॥ सप्तम्यां प्रातरानीय गृहमध्ये प्रपूजयेत्। उपोषणमथाष्टम्यामष्टशक्तेः प्रपूजनम् ॥ नवम्यामुग्रचण्डायास्तद्वद्देवार्च्चनं दिवा। पूजा च बलिदानञ्च तद्वन्मातॄः प्रपूजयेत् ॥ कुमारी पूजनीया च भूषणीया च भूषणैः। संपूज्य प्रेषणं कुर्य्यात् दशम्यां शावरोत्सवैः ॥ अनेन विधिना यस्तु देवीं प्रीणयते नरः। स्कन्दवत् पालयेत् तन्तु देवी सर्वापदि स्थितम् ॥ पुत्रदारधनर्द्धीनां संख्या तस्य न विद्यते। भुक्त्वेह विपुलान् भोगान् प्रेत्य देवीगणो भवेत्" ॥ अत्र कल्पे प्रतिपदि कलसस्थापनं यजमानस्नानार्थं दुर्गाभक्तितरङ्गिण्यां यदुक्तं तन्न युक्तम्। तस्य देवीपूजानङ्गत्वेन तत्र तद्विधानस्यायुक्तत्वात्। मत्स्यपुराणे ग्रहयाग एव तस्योक्तत्वाच्च। यद्यपि "अग्निर्ब्रह्मा भवानी च गजवक्त्रो महोरगः। स्कन्दोभानुर्मातृगणो दिक्पालाश्च नवग्रहाः ॥ एषां घटे तु प्रत्येकं पूजयित्वा यथाविधि। मूर्त्तिं पवित्रमेकैकां दद्यादेव समाहितः" ॥ इति कालिकापुराणीयेन प्रतिपदि ब्रह्मपूजनमात्रमुक्तम्। तन्न युक्तं ब्रह्मपूजनवदग्न्यादिपूजनस्यापि तद्वचनोक्तत्वेन तदभिधानस्यापि युक्तत्वात् किन्तु तद्वचनं सामान्यतः पूजान्तरविधायकतया बोध्यम्। मत्स्ये। "अर्थहीनो दहेद्राष्ट्रं मन्त्रहीनस्तथर्त्विजम्। आत्मानं दक्षिणाहीनो नास्ति यज्ञसमो रिपुः" ॥ अर्थो द्रव्यम्।

देवीयात्राकाले निर्मञ्छनविधिमाह पूजारत्नाकरे देवीपुराणम्। "भक्त्या पिष्टप्रदीपाद्यैश्चूताश्वत्थादिपल्लवैः। ओषधीभिश्च मेध्याभिः सर्ववीजैर्यवादिभिः। नवम्यां पर्वकाले तु यात्राकाले विशेषतः। यः कुर्य्यात् श्रद्धया वीर देव्या नीराजनं नरः। शङ्खभेर्य्यादिनिनदैर्जयशब्दैश्च पुष्कलैः। यावतो दिवसान् वीर देव्या नीराजनं कृतम्। तावत् कल्पसहस्राणि दुर्गालोके महीयते। यस्तु कुर्य्यात् प्रदीपेन सूर्य्यलोके महीयते" ॥ पर्वकाले उत्सवकाले। देव्या इति स्त्रीत्वमविवक्षितम्। विष्ण्वादि प्रतिमायां तथाचारात्।

योगाधिकारे हरेः स्तुतिमाह मत्स्यपुराणम्। "प्रीयतां

पुण्डरीकाक्षः सर्वयज्ञेश्वरो हरिः। तस्मिं स्तुष्टे जगत्तुष्टं प्रीणिते प्रीणितं जगत्" ॥ कृत्य महार्णवधृत भविष्यशिवरहस्ययोः। "दशम्यां दीयते यत्र बलिदानन्तु मानवैः। तद्राष्ट्रं नाशमायाति मरकोपद्रवैः स्फुटम्" ॥ अतोऽत्राविरुद्धवचनानि भोजदेवजीमूतवाहन हलायुधरत्नाकर दुर्गाभक्तितरङ्गिणी वाचस्पतिमिश्र स्मृतिसागररायमुकुट कृत्य महार्णव प्रभृतिभिः अनादृतानि।

विजयादशमीमधिकृत्य। "दशमीं यः समुल्लङ्घ्य प्रस्थानं कुरुते नृपः। तस्य संवत्सरं राज्ञो न क्वापि विजयो भवेत्" ॥ अशक्तौ खड्गादियात्रामाह राजमार्त्तण्डः। "कार्य्यवशात् स्वयमगमे भूभर्त्तुः केचिदाहुराचार्य्याः। छत्रायुधाद्यमिष्टं वैजयिकं निर्गमे कुर्य्यात्"।

ज्योतिषे। "अस्तं गते तु मित्रे यया दिशा खञ्जनं नृपोयान्तं पश्येत्तया प्रयातस्य क्षिप्रमरातिर्वशमुपैति" ॥ मित्रे सूर्य्ये। तथा "कृत्वा नीराजनं राजा बलवृद्धैर्यथाबलम्। शोभनं खञ्जनं पश्येत् जलगोगोष्ठसन्निधौ ॥ नील ग्रीव शुभग्रीव सर्वकामफलप्रद। पृथिव्यामवतीर्णोऽसि खञ्जरीट नमोऽस्तु ते" ॥ वसन्तराजे "दृष्टोदितेऽगस्त्यमुनौ सुदेशे सुचेष्टितं खञ्जनको विदध्यात्"। इत्युपक्रम्य "त्वं योगयुक्तो मुनिपुत्रकस्त्वमदृश्यतामेषि शिखोद्गमेन। संदृश्यसे प्रावृषि निर्गतायां त्वं खञ्जनाश्चर्य्यमयो नमस्ते"। एतद्वचनात् यदा शिरसि शिखोद्गमस्तदा खञ्जनो न दृश्यते अगस्त्योदयानन्तरं शिखाविगमात् पुनर्दृश्यते दर्शनफलं "अब्जेषु गोषु गजवाजिमहोरगेषु। राज्यप्रदः कुशलदः शुचि शाद्वलेषु। भस्मास्थिकेशनखलोमतुषेषु दृष्टो दुःखं ददाति बहुशः खलु खञ्जरीटः" ॥ वर्षकृत्ये "वित्तं ब्रह्मणि कार्य्यसिद्धिरतुला शक्रे हुताशे भयं याम्यामग्निभयं सुरद्विषि कलिर्लाभः समुद्रालये वायव्यां वरवस्त्रगन्धसलिलं दिव्याङ्गना चोत्तरे। ऐशान्यां मरणं ध्रुवं निगदितं दिग्लक्षणं खञ्जने। ज्येष्ठीकृते क्षुतेऽप्येवमूचुः केचिच्च कोविदाः"।

क्षुते तु मदनपारिजातधृतम्। "जीवेति क्षुवतो ब्रूयात्

जीवेत्युक्तस्त्वया सह। अशुभं स्वप्नं दृष्ट्वा देवब्राह्मणपूजनम्। दानं कुर्वीत कुर्य्याच्च स्नानं सर्वौषधीजलैः। क्षुतात् पतन जृम्भासु जीवोत्तिष्ठाङ्गुलिध्वनिः। शतोरपि च कर्त्तव्यमन्यथा ब्रह्महा भवेत्"। इति वन्द्यघटीय हरिहरभट्टाचार्य्यात्मज श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्य्यविरचितदुर्गापूजातत्त्वं समाप्तम्।

अथ एकादशी। सा च परयुता ग्राह्या युग्मात्। आग्नेये "गृहस्थो ब्रह्मचारी च आहिताग्निस्तथैव च। एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि"॥ कृष्णायां पुत्रवतो गृहस्थस्य निषेधमाह ब्रह्मपुराणम्। "आदित्येऽहनि संक्रान्त्यामसितैकादशी दिने। व्यतीपाते कृते श्राद्धे पुत्री नोपवसेत् गृही" अस्यैव शयनबोधनमध्ये प्रतिप्रसवमाह ब्रह्मवैवर्त्तः। "शयनीबोधनीमध्ये या कृष्णैकादशी भवेत्। सैवोपोष्या गृहस्थेन नान्या कृष्णा कदाचन"॥ वैष्णवस्य तु यावत् कृष्णायामुपवासमाह नारदः। "नित्यं भक्तिसमायुक्तैर्नरैर्विष्णुपरायणैः। पक्षेपक्षे च कर्त्तव्यमेकादश्यामुपोषणम्। सपुत्रश्च सभार्य्यश्च स्वजनैर्भक्तिसंयुतैः। एकादश्यामुपवसेत् पक्षयोरुभयोरपि"॥

तत्त्वसागरे। "यथा शुक्ला तथा कृष्णा यथा कृष्णा तथेतरा। तुल्येति मन्यते यस्तु स वै वैष्णव उच्यते" इति वैष्णवलक्षणमप्युक्तम्। वैधोपवासे भोजन चतुष्टयनिवृत्तिमाह महाभारतम्। "सायमाद्यन्तयोरह्नोः सायं प्रातश्च मध्यमे। उपवासफलं प्रेप्सोर्वर्ज्यं भक्तचतुष्टयम्"॥ पुत्रवतो ब्रह्मपुराणोक्त रविवाराद्युपवासनिषेधस्तु तन्मात्र निमित्तकोपवासपरः। "तन्निमित्तोपवासस्य निषेधोऽयमुदाहृतः। नानुषङ्गकृतो ग्राह्यो यतो नित्यमुपोषणम्"॥ इति जैमिनिवचनात्। "भृगुभानुदिनोपेता सूर्य्यसंक्रान्ति संयुता। एकादशी सदोपोष्या पुत्रपौत्र विवर्द्धिनी" इति विष्णुधर्मोत्तराच्च। तन्निमित्तोपवासमाह संवर्त्तः। "अमावास्या द्वादशी च संक्रान्तिश्च विशेषतः। एताःप्रशस्तास्तिथयो भानुवारस्तथैव च॥ अत्र स्नानं जपो होमो देवतानाञ्च पूजनम्। उपवासस्तथा दानमेकैकं पावनं स्मृतम्"॥ पितृवासरादौ तु वराहपुराणविष्णु-

धर्मोत्तरकात्यायनाः। "उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्। उपवासं तदा कुर्य्यादाघ्राय पितृसेवितम्॥ रविवारेऽर्कसंक्रान्त्यामेकादश्यां सितेतरे। पारणञ्चोपवासञ्च न कुर्य्यात् पुत्रवान् गृही" इति पारणनिषेधो रविवार संक्रान्तिमात्र प्राप्तोपवासनिषेधवत् रविसंक्रान्तिमात्र प्राप्तपारणपरः। तयोरेव पारणन्तु "सप्तवारानुपोष्यैव सप्तधा संयतेन्द्रियः। सप्तजन्मकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति"॥ इति। संवत्सर प्रदीपधृतेन। "नित्यं द्वयोरयनयोर्नित्यं विषुवतोर्द्वयोः। चन्द्रार्कयोर्ग्रहणयोर्व्यतीपातेषु सर्वसु॥ अहोरात्रोषितः स्नानं दानं श्राद्धं तथा जपम्। यः करोति प्रसन्नात्मा तस्य स्यादक्षयञ्च तत्"॥ इति ब्रह्मपुराण वचनाभ्याञ्च। शनिवारोपवाससंक्रान्तिपूर्वदिनोपवासविधानेन प्राप्तमिति।

विधवायास्तु सर्वथा नित्यत्वमाह कात्यायनः। "विधवा या भवेन्नारी भुञ्जीतैकादशी दिने। तस्यास्तु सुकृतं नश्येत् भ्रूणहत्या दिने दिने"॥ स्मृतिः। अष्टाब्दादधिकोमर्त्योह्यपूर्णाशीतिवत्सरः। भुङ्क्ते यो मानवो मोहात् एकादश्यां स पापकृत्"॥ एकादशी व्रतं नित्यं तदाह ब्रह्मवैवर्त्तः। "इति विज्ञाय कुर्वीतावश्यमेकादशी व्रतम्। विशेष नियमाशक्तोऽहोरात्रं भुक्तिवर्जितः"॥ भविष्ये "नित्यमेतत् व्रतं नाम कर्त्तव्यं सार्ववर्णिकम्। सर्वाश्रमाणां सामान्यं सर्वधर्मेष्वनुत्तमम्॥ एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि"। प्रचेताः "पूर्णाप्येकादशी त्याज्या द्वितयं वर्द्धते यदि। द्वादश्यां पारणालाभे पूर्णैव परिगृह्यते"।

एकादश्याः पूर्णत्वं विशेषयति सौरधर्मः। "आदित्योदयवेलायाः प्राङ्मुहूर्त्तद्वयान्विता। सैकादशी तु संपूर्णा विद्धान्या परिकीर्त्तिता"॥ द्वितयमेकादशी द्वादशी च वर्द्धते परदिनगामिनी। द्वादश्यां पारणाया अलाभे पूर्णापरिग्रहे अधिकारिभेदमाह स्कान्दे। "संपूर्णैकादशी यत्र प्रभाते पुनरेव सा। तत्रोत्तरां यतिः कुर्य्यात् पूर्वामुपवसेत् गृही"॥ कौर्म्मे। "एकादशी प्रवृद्धा चेत् शुक्ले कृष्णे विशेषतः। उत्तरान्तु यतिः कुर्य्यात् पूर्वामुपवसेत् गृही"। गारुड़े "पुनः

प्रभात समये घटिकैका यदा भवेत्। तत्रोपवासो विहितो वनस्थस्य यतेस्तथा। विधवायाश्च तत्रैव परतो द्वादशी नचेत्”॥ प्रवृद्धा एकादश्येव प्रकर्षेण वृद्धा न द्वादशीत्यर्थः। तत्रैवोत्तरामेव। यत्र तु पूर्वदिने दशमीविद्धा परदिने द्वादशी मिश्रा तत्र सर्वैरेव परदिने द्वादशीलाभे तदलाभेऽपि परोपोष्या। “एकादशी द्वादशी-मिश्रा परतोऽपि न वर्द्धते। गृहिभिर्यतिभिश्चैव सैवोपोष्या सदा तिथिः”॥ इति स्मृतेः। अपि भिन्नक्रमेन वर्द्धते द्वादशीत्यर्थः। एतत् द्विस्पृशि त्रिस्पृशि च सम्भवत्यविशेषात्।

अत्रैव त्रयोदश्यां पारणफलमाह। “एकादशी द्वादशी च रात्रिशेषे त्रयोदशी। तत्र क्रतुशतं पुण्यं त्रयोदश्यान्तु पारणम्”। यत्तु “द्वादश द्वादशीर्हन्ति त्रयोदश्यान्तु पारणम्” इति तदुपवास परदिने “द्वादशीलाभे तां विहाय पारणं बोध्यम्। तथाह ब्रह्मपुराणम्। “एकादश्यामुपोष्यैव द्वादश्यां पारणं स्मृतम्। त्रयोदश्यां न कुर्य्यात्तु द्वादश द्वादशीक्षयात्”॥ कालविवेक संवत्सर प्रदीप प्रभृतिषु कूर्मपुराणम्। “एकादशीमुपवसेत् द्वादशीमथवा पुनः। विमिश्रां वा प्रकुर्वीत न दशम्या युतां क्वचित्॥ कुर्य्यादलाभे संयुतां नालाभेऽपि प्रवेशिनीम्। उपोष्या द्वादशी तत्र त्रयोदश्यान्तु पारणम्॥ उदयात् प्राक्दशम्यास्तु शेषः संयोग इष्यते। उपरिष्टात् प्रवेशस्तु तस्मात्तां परिवर्जयेत्”॥ द्वादश्यां कलार्द्धमात्रमप्येकादश्या अनिर्गमे यदि दशमी नोदयं स्पृशति उदयात् प्रागरुणोदयकाल एवावतिष्ठते तदा संयुक्तोच्यते सैवोपोष्या। अत्रैव विषये “एकादशी दशाविद्धा परतोऽपि न वर्द्धते। गृहिभिर्यतिभिश्चैव सैवोपोष्या सदा तिथिः”॥ इति भविष्यपुराणीयादिवचनानि दशमीविद्धाकर्त्तव्यताबोधकानि बोध्यानि। अत्र द्वादश्यामेकादश्यलाभ एव अरुणोदयविद्धायाः कर्त्तव्यतोपदेशात् द्वादश्यामेकादशीलाभे तादृग्विन्धां न कुर्य्यात् इत्यर्थतोऽवगतेस्तत्र परैकादश्युपोष्या इत्यवगम्यते। एतद्विषये “षष्टिदण्डात्मिकायाश्च तिथेर्निष्क्रमणे परे। अकर्मण्यं तिथिमलं विद्यादेकादशीं विना”॥ इति संगच्छते।

तथा कालमाधवीये गारुड़म्। “आदित्योदयवेलायामा-

रभ्य षष्टिनाड़िकाः। सङ्कीर्णैकादशीनाम त्याज्या कर्मफलेप्सुभिः" ॥ अत्रापि त्रयोदश्यां द्वादशीलाभ एव परोपोष्या इत्यवधेयम्। नोचेत् तत्र पूर्वामुपोष्य परदिने द्वादश्याद्यपादं समुत्तीर्य्य पारणं कुर्य्यात् "विद्धाप्येकादशी ग्राह्या परतो द्वादशी नचेत्" इति "मुहूर्त्तं द्वादशी न स्यात् त्रयोदश्यां यदा मुने। उपोष्या दशमीविद्धा सर्वैरेकादशी तदा" ॥ इति "त्रयोदश्यां यदा न स्यात् द्वादशी घटिकाद्वयम्। दशम्यैकादशीविद्धा सैवोपोष्या सदा तिथिः" ॥ इति मत्स्यकूर्म नारदीयवचनेभ्यः अत्र मुहूर्त्त घटिकेति पारणयोग्यकालोपलक्षणम्। "कलार्द्धां द्वादशीं दृष्ट्वा निशीथादूर्द्ध्वमेव हि। आमध्याह्नाः क्रियाः सर्वाः कर्त्तव्याः शम्भुशासनात्" ॥ इति श्रीधरस्वामिधृतवचनात्।

अथोदयानन्तरवर्त्तिनी दशमी यद्येकादशीं स्पृशति तदा सा प्रवेशिनी पदवाच्या। तां विहाय द्वादशीमेवोपवसेत्। तदिदमुक्तं नालाभेऽपि प्रवेशिनीमिति। अलाभेऽपि परदिने एकादश्यलाभेऽपि। अतएव कण्वः। "उदयोपरिविद्धा तु दशम्येकादशी यदि। दानवेभ्यः प्रीणनार्थं दत्तवान् पाकशासनः" ॥ स्कान्दे "दशम्यैकादशीविद्धा गान्धारी तामुपोषिता। तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात् तां परिवर्जयेत्। ये कारयन्ति कुर्वन्ति दशम्यैकादशीं युताम्। आलोक्य तन्मुखं ब्रह्मन् सूर्य्यदर्शनमाचरेत्" ॥

अथारुणोदयविद्धा षष्टिदण्डैकादशी पूर्णैकादश्योर्व्यवस्थाया मविशेषः इति चेन्न "द्वादश्यां पारणालाभे पूर्णैव परिगृह्यते ॥ इत्यविशेषात् अत्र वैष्णवेनापि पूर्णोपोष्या इति। अरुणोदयविद्धातु द्वादश्यां पारणस्यालाभेऽपि वैष्णवेनोपोष्या किन्तु खण्डैकादश्युपोष्येति। "दशमीशेष संयुक्तो यदि स्यादरुणोदयः। नैवोपोष्यं वैष्णवेन तद्दिनैकादशीव्रतम्" ॥ इति गारुड़े वैष्णवेनेत्यभिधानात्। तत्रापि कृष्णपक्षे अरुणोदय विद्धैवोपोष्या शुक्लपक्षे तु न तथेति विशेषः। "एकादशीं दशाविद्धां वर्द्धमाने विवर्जयेत्। पक्षे हानौ स्थिते सोमे लङ्घयेद्दशमीयुताम्" ॥ इति कालविवेककृत्य महार्णवधृत

भविष्यपुराणैकवाक्यत्वात्। अरुणोदय कालमाह स्कन्दपुराणम्। "उदयात् प्राक्चतस्रस्तु नाड़िका अरुणोदयः। तत्र स्नानं प्रशस्तं स्यात्तद्धि पुण्यतमं स्मृतम्"॥ नाड़िका दण्डः।

तदयं संक्षेपः। गृहस्थादीनामुभयपक्षे एकादश्यामुपवासाधिकारः। कृष्णपक्षैकादश्यां पुत्रवतो गृहस्थस्य नाधिकारः। हरिशयनाभ्यन्तरे तस्याप्यधिकारः। वैष्णवपुत्रवद्गृहस्थस्य सर्वं कृष्णायामप्यधिकारः। शुक्रवार रविवारादावप्येकादश्यामुपवासफलाधिक्यम्। विधवायास्तु सर्वत्राधिकारः। अत्र अष्टाब्दादधिकापूर्णाशीति वर्षमानवो नित्याधिकारी एकादशीव्रतं नित्यं पारणदिने द्वादशीलाभे सर्वएव पूर्णामेकादशीं त्यक्त्वा खण्डामुपवसेत्। तदलाभे गृही पूर्वां तदन्यः परां विधवापि। यदा तु पूर्वदिने दशम्यायुतैकादशी तदोत्तरामुपोष्य द्वादश्यां पारणं कुर्य्यात्। परदिने द्वादश्यनिर्गमे तु त्रयोदश्यामपि यदा तु सूर्य्योदयानन्तरं दशमीयुतैकादशी परदिने न निःसरति तदा तां विहाय द्वादश्यामुपवसेत्। यदा तु सूर्य्योदयपूर्वकालीन दशमीविद्धैकादशी परदिने न निःसरति तदा तामुपवसेत्। यदा तु तथाविधा सती परदिने निःसरति तत्परदिने च द्वादशी तदा तां विहाय खण्डामुपोष्य द्वादश्यां पारयेत् यदा तु उभयदिने तद्विधैकादशी तत्परदिने च न द्वादशी तदा षष्टिदण्डात्मिकां विद्धामुपोष्य परदिने द्वादश्याद्यपादमुत्तीर्य्य पारयेत् वैष्णवस्तु तत्रापि शुक्लपक्षे तु परामुपोष्य त्रयोदश्यां पारयेत्। एकादश्युपवासः सूतकादावपि कार्य्यः। भविष्योत्तर पद्मपुराणयोः। "एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि। सूतके मृतके वापि अन्यस्मिन् वाप्यशौचके। सर्वथा न परित्याज्या इच्छता श्रियमात्मनः"। स्त्रियास्तु पुलस्त्यः। "एकादश्यां न भुञ्जीत नारी दृष्टे रजस्यपि"॥ अशक्तं प्रति नारदीयम्। "अनुकल्पो नृणां प्रोक्तः क्षीणानां वरवर्णिनि !"। वायुपुराणे "उपवास निषेधे तु किञ्चित् भक्ष्यं प्रकल्पयेत्। न दुष्येदुपवासेन उपवासफलं लभेत्"॥

उपवासनिषेधासामर्थ्ययोर्भक्ष्यप्रकारमाह नारदीये। "मूलं फलं पयस्तोयमुपभोग्यं भवेत् शुभम्। नत्वेवं भोजनं कैश्चित एकादश्यां प्रकीर्त्तितम्"॥ एवमित्यनुकल्पातिरिक्तम्। पद्मपुराणे "नक्तं हविष्यान्नमनोदनं वा फलं तिलाक्षीरमथाम्बु चाज्यम्। यत्पञ्चगव्यं यदिवाथ वायुः प्रशस्तमत्रोत्तरमुत्तरञ्च"॥ फलाहारादावपि तुलसीरहितत्वे दोषमाह गरुड़पुराणम्। "तुलसीं विना या क्रियते न पूजा स्नानं न तद्यत्तुलसीं विनाकृतम्। भुक्तं न तद्यत्तुलसीविवर्जितं पीतं न तद् यत्तुलसीविवर्जितम्"॥ अत्र श्रीभगवद्वाक्यम्। "मच्छयने मदुत्थाने मत्पार्श्वपरिवर्त्तने। फलमूलजलाहारी हृदि शल्यं ममार्पयेत्"॥

हविष्यान्नमाह स्मृतिः। हैमन्तिकं सितास्विन्नं धान्यं मुद्गा यवास्तिलाः। कलाया कङ्गनीवारा वास्तूकं हिलमोचिका। षष्टिका कालशाकञ्च मूलकं केमुकेतरत्। लवणे सैन्धवसामुद्रे गव्ये च दधिसर्पिषी। पयोऽनुद्धृतसारञ्च पनसाम्रहरीतकी। तिन्तिड़ीजीरकञ्चैव नागरङ्गञ्च पिप्पली कदली लवली धात्री फलान्यगुडमैक्षवम्। अतैलपक्वं मुनयो हविष्यान्नं विदुर्बुधाः"॥ अत्रास्विन्नमित्युपादानादन्यत्र स्विन्न धान्यतण्डुले न दोषः। हैमन्तिकमित्यभिधायागस्त्यसंहितायाम्। नारिकेलफलञ्चैव कदलीं लवलीन्तथा। आम्रमामलकञ्चैव पनसञ्च हरीतकीम्। व्रतान्तरप्रशस्तञ्च हविष्यं मन्यते बुधाः। शक्तौ तु मनुः गृह्यपरिशिष्टञ्च "प्रभुः प्रथमकल्पस्य योऽनुकल्पे प्रवर्त्तते। न साम्परायिकं तस्य दुर्मतेर्विद्यते फलम्"॥ इति। अनुकल्पेऽपि विष्णूपासनं पारणञ्च कर्त्तव्यम्। "एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च। उपवासेन दानेन नैवाद्वादशिको भवेत्"॥ इति मार्कण्डेयवचनात् दानेन ब्रह्मवैवर्त्तोक्तेन। यथा "उपवासासमर्थश्चेदेकं विप्रन्तु भोजयेत्। तावद्धनानि वा दद्याद् यद्भक्ताद्विगुणं भवेत्। सहस्रसम्मितां देवीं जपेद्वा प्राणसंयमान्। कुर्य्यात् द्वादशसंख्यकान् यथा शक्ति व्रते नरः"॥ देवीं गायत्रीम्। मात्स्ये। "दशम्यां नियताहारो मांसमैथुनवर्जितः। एका-

दश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि" ॥ स्मृतिसन्तोषे "कांस्यं मांसं मसूरञ्च चनकं कोरदूषणम्। शाकं मधुपरान्नञ्च त्यजेदुपवसन् स्त्रियम्" ॥ चनकं छोलेतिख्यातं अत्रोपवसन्निति तद्दिने भोजनासम्भवात् सामीप्यात् पूर्वापरयोर्ग्रहणम्। स्मृतिः। "शाकं मांसं मसूरञ्च पुनर्भोजनमैथुने। द्यूतमत्यम्बुपानञ्च दशम्यां वैष्णवस्त्यजेत्" ॥

स्मृतिः। "प्रातःसन्ध्यां ततः कृत्वा सङ्कल्पं बुध आचरेत्"। वाराहे "गृहीत्वोडुम्बरं पात्रं वारिपूर्णमुदङ्मुखः। उपवासन्तु गृह्णीयात् यद्वा वार्य्येव धारयेत्। एकादश्यां निराहारो भूत्वा चैवापरेऽहनि। भोक्ष्येऽहं पुण्डरीकाक्ष! शरणं मे भवाच्युत!" ॥ यद्वेति ताम्रपात्राभावे जलमात्रं गृहीत्वा सङ्कल्पयेदित्यर्थः। कालमाधवीयधृतस्कान्दे "उपवासन्तु सङ्कल्प्य मन्त्रपूतं जलं पिबेत्" ॥ मन्त्रमाह कात्यायनः। "अष्टाक्षरेण मन्त्रेण त्रिर्जपेनाभिमन्त्रितम्। उपवासफलं प्रेप्सुः पिबेत् पात्रगतं जलम्"। आचमनवन्नात्र दूषणम्। ततः प्रार्थयेत्। "इदं व्रतं मया देव! गृहीतं पुरतस्तव। निर्विघ्नां सिद्धिमाप्नोतु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन!" ॥ ब्रह्मपुराणम्। "एकादश्यामुभे पक्षे निराहारः समाहितः। संपूज्य विधिवद्विष्णुं श्रद्धया सुसमाहितः। याति विष्णोः परं स्थानं नरो नास्त्यत्र संशयः" ॥ नृसिंहपुराणम्। "उपवासो नरश्रेष्ठ! एकादश्यां विधीयते। नरसिंहं समभ्यर्च्य सर्वपापैः प्रमुच्यते" ॥

द्वादशीमधिकृत्य कात्यायनः। "प्रातः स्नात्वा हरिं पूज्य उपवासं समर्पयेत्। अज्ञानतिमिरान्धस्य व्रतेनानेन केशव! ॥ प्रसीद सुमुखो नाथ! ज्ञानदृष्टिप्रदो भव। मन्त्रं जपित्वा हरये निवेद्योपोषणम् व्रती। द्वादश्यां पारणं कुर्य्यात् वर्जयित्वाह्युपोदकीम्" ॥ उपोदकी पूतिकाशाकम्। द्वादशीलङ्घने दोषमाह नारदीयम्। "महाहानिकरी ह्येषा द्वादशी लङ्घिता नृणाम्। कृष्ण! कृष्ण! कृपालुस्त्वमगतीनां गतिर्भव। संसारार्णवमग्नानां प्रसीद मधुसूदन!" ॥ इत्यनेनापि निवेदयेत् इति। विष्णुधर्मोत्तरे "द्वादश्याः प्रथमः पादो हरिवासरसंज्ञकः। तमतिक्रम्य कुर्वीत पारणं विष्णुतत्परः" ॥

स्मृतिः "कलार्द्धां द्वादशीं दृष्ट्वा निशीथादूर्द्धमेव हि। आमध्याह्नाः क्रियाः सर्वाः कर्त्तव्याः शम्भुशासनात्" ॥ निशीथादूर्द्धं सार्द्धप्रहरद्वयोपरि। अत्रासामर्थ्ये कात्यायनः। "सन्ध्याह्निकं भवेन्नित्यं पारणन्तु निमित्ततः। अद्भिस्तु पारयित्वा तु नैत्यिकान्ते भुजिक्रियाः" ॥ ब्रह्माण्डपुराणम्। "कांस्यं मांसं सुरां क्षौद्रं लोभं वितथभाषणम्। व्यायामञ्च व्यवायञ्च दिवा स्वप्नं तथाञ्जनम्। शिलापिष्टं मसूरांश्च द्वादशैतानि वैष्णवः। द्वादश्यां वर्जयेन्नित्यं सर्वपापैः प्रमुच्यते" ॥

वामनपुराणे। "एकादश्यां जगत्स्वामि शयनं परिकल्पयेत्। शेषाहि भोगपर्य्यङ्कं कृत्वा संपूज्य केशवम्॥ अनुज्ञां ब्राह्मणेभ्यश्च द्वादश्यां प्रयतः शुचिः। लब्ध्वा पीताम्बरधरं देवं निद्रां समानयेत्" ॥ अनुज्ञां लब्ध्वा इति अन्वयः। एकादशीसमये दिवाशयनं परिकल्पयेत् रात्रौ द्वादशीक्षणे निद्रेति।

व्यक्तं वराहे। "आषाढ़शुक्लद्वादश्यां पौर्णमास्यामथापि वा। चातुर्मास्यव्रतारम्भं कुर्य्यात् कर्कटसंक्रमे॥ अभावे तु तुलार्केऽपि मन्त्रेण नियमं व्रती। कार्त्तिके शुक्लद्वादश्यां विधिवत्तत् समापयेत्॥ चतुर्धापि हि तच्चीर्णं चातुर्मास्यं व्रतं नरः। कार्त्तिक्यां शुक्लपक्षे तु द्वादश्यां तत्समापयेत्" ॥ मात्स्ये। "चतुरो वार्षिकान् मासान् देवस्योत्थापनावधि। मधुस्वरो भवेन्नित्यं नरो गुड़विवर्जनात्॥ तैलस्य वर्जनादेव सुन्दराङ्गः प्रजायते। कटुतैलपरित्यागात् शत्रुनाशः प्रजायते। लभते सन्ततिं दीर्घां स्थालीपाकमभक्षयन्॥ सदा मुनिः सदा योगी मधुमांसस्य वर्जनात्। निराधिर्नीरुगोजस्वी विष्णुभक्तश्च जायते॥ एकान्तरोपवासेन विष्णुलोकमवाप्नुयात्। धारणान्नखलोम्नाञ्च गङ्गास्नानं दिने दिने। ताम्बूलवर्जनाद्भोगी रक्तकण्ठश्च जायते॥ घृतत्यागात् सुलावण्यं सर्वं स्निग्धं वपुर्भवेत्। फलत्यागात्तु मतिमान् बहुपुत्रश्च जायते" ॥ "नमो नारायणायेति जप्तानशनजं फलम्। पादाभिवन्दनाद्विष्णोर्लभेद्गोदानजं फलम्। एवमादिव्रतैः पार्थ! तुष्टिमायाति केशवः" ॥ सनत्कुमारः "इदं व्रतं मया

देव ! गृहीतम् पुरतस्तव । निर्विघ्नां सिद्धिमाप्नोतु प्रसन्ने त्वयि केशव ! । गृहीतेऽस्मिन् व्रते देव ! यद्यपूर्णे त्वहं म्रिये । तन्मे भवतु संपूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन !"॥ समाप्तौ च "इदं व्रतं मया देव ! कृतं प्रीत्यै तव प्रभो ! । न्यूनं संपूर्णतां यातु त्वत्प्रसादाज्जनार्दन !"॥ अत्रैव यतिमधिकृत्य काठकगृह्यम् "एकरात्रं वसेत् ग्रामे नगरे पञ्चरात्रकम् । वर्षाभ्योऽन्यत्र वर्षासु मासांश्च चतुरो वसेत्" ॥ एतदशक्तविषयम् । "ऊर्द्ध्वं वार्षिकाभ्यां मासाभ्यां नैकस्थानवासी" ॥ इति शङ्खोक्तेः ।

मात्स्ये । "शेते विष्णुः सदाषाढे भाद्रे च परिवर्त्तते । कार्त्तिके परिबुध्येत शुक्लपक्षे हरेर्दिने" । भविष्यनारदीययोः । "मैत्राद्यपादे स्वपितीह विष्णुर्वैष्णव्यमध्ये परिवर्त्तते च । पौष्णावसाने च सुरारिहन्ता प्रबुध्यते मासचतुष्टयेन" ॥ मैत्रमनुराधा । वैष्णव्यं श्रवणा पौष्णं रेवती । भविष्ये । "निशि स्वापो दिवोत्थानं सन्ध्यायां परिवर्त्तनम् । अन्यत्र पादयोगेऽपि द्वादश्यामेव कारयेत्" ॥ अन्यत्र स्वापादिविहितरात्र्यादीतरकाले दशमी प्रतिपदोश्च । "किन्त्वमैत्राद्यपादेन दशम्यंशेन यो दिवा । पौष्णशेषेण किन्तेन प्रतिपद्यथ यो निशि ॥ दशम्यंशेन दशम्या अंशो यत्र पादे तेन । यः पादो दिवाप्राप्तस्तेन वा किम् । अत्र दशमी प्रतिपदोर्वर्जनात् तदितरैकादश्यादि पञ्चतिथिषु मैत्रादिनक्षत्रपादविशेषलाभेऽपि द्वादशीं विनापि शयनादिरिति प्रतीयते । वचनान्तरं "रेवत्यन्तो यदा रात्रौ द्वादश्या च समायुतः । तदा विबुध्यते विष्णुर्दिनान्ते प्राप्य रेवतीम्" ॥ दिनान्ते त्रिधाविभक्तदिनतृतीयभागे दिवोत्थानमित्यनुरोधात् । विष्णुधर्मोत्तरे । "विष्णुर्दिवा न स्वपिति न च रात्रौ प्रबुध्यते । द्वादश्यामृक्षसंयोगे पादयोगो न कारणम् । अप्राप्ते द्वादशीमृक्षे उत्थानशयने हरेः । पादयोगेन कर्त्तव्ये नाहोरात्रं विचिन्तयेत्" ॥ वराहपुराणम् । "द्वादश्यां सन्धिसमये नक्षत्राणामसम्भवे । आभाकासितपक्षेषु शयनावर्त्तनादिकम्" ॥ आभाकानां आषाढभाद्रकार्त्तिकानाम् । ततश्च द्वादश्यां निशादौ नक्षत्रमात्रयोगात् द्वादश्यामृक्षाभावे तिथ्यन्तरे

निशाद्यनादरेण पादविशेषयोगात् तदभावे द्वादश्यां सन्ध्यायामेव शयनादिकं बोधनन्तु द्वादश्यां रात्रौ रेवत्यन्तपादयोगे दिनतृतीयभाग इति विशेषः। शयने मन्त्रमाह वराहपुराणम्। "नमो नारायणेत्युक्त्वा इमं मन्त्रमुदीरयेत्। मेघान्यपि मेघश्यामं ह्युपागतं सिच्यमानं महीमिमां निद्रां भगवान् गृह्णातु लोकनाथ वर्षास्विमं पश्यतु मेघवृन्दम्। ज्ञात्वा च पश्यैव च देवनाथ मासांश्चत्वारि वैकुण्ठस्य तु पद्मनाथ। ततश्च "सुप्ते त्वयि जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम्। विबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत् सर्वं चराचरम्"॥ इत्यनेन पूजयेत्। पार्श्वं परिवर्त्तने तु। "वासुदेव! जगन्नाथ! प्राप्तेयं द्वादशी तव। पार्श्वेण परिवर्त्तस्व सुखं स्वपिहि माधव!"॥ इति पठेत्। "त्वयि सुप्ते जगन्नाथे जगत्सुप्तं भवेदिदम्। विबुद्धे त्वयि बुध्येत जगत्सर्वं चराचरम्"॥ इत्यनेन पूजयेत्। नैयतकालिककल्पतरौ ब्रह्मपुराणं कार्त्तिकशुक्लपक्षमधिकृत्य। "उपवासः प्रकर्त्तव्य एकादश्यां प्रजागरः। द्वादश्यां वासुदेवश्च पूजितव्यः प्रयत्नतः"। उत्थानमन्त्रस्तु "महेन्द्र रुद्रैरभिनूयमानो भवानृषिर्वन्दितवन्दनीयः। प्राप्ता तवेयं किल कौमुदाख्या जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ!॥ मेघा गता निर्मलपूर्णचन्द्रः शारद्यपुष्पाणि च लोकनाथ!। अहं ददानीति च पुण्यहेतोर्जागृष्व जागृष्व च लोकनाथ!"॥ ततः "उत्तिष्ठोत्तिष्ठ गोविन्द त्यज निद्रां जगत्पते!। त्वया चोत्थीयमानेन उत्थितं भुवनत्रयम्"॥ इति पठित्वा पूजयेत्।

मत्स्यपुराणे भीमं प्रति भगवद्वाक्यं "यद्यष्टम्यां चतुर्दश्यां द्वादश्यामथ भारत!। अन्येष्वपि दिनर्क्षेषु न शक्तस्त्वमुपोषितुम्॥ ततः पुण्यामिमां भीमतिथिं पापप्रणाशिनीम्। उपोष्य विधिनानेन गच्छेर्विष्णोः परं पदम्"। भीमतिथिं भीमतिथित्वेन ख्यातामेकादशीम्। विस्तारस्त्वेकादशीतत्त्वेऽनुसन्धेयः। विष्णुधर्मे "मृगशीर्षे शशधरे माघे मासि प्रजापते। एकादश्यां सिते पक्षे सोपवासो जितेन्द्रियः। द्वादश्यां षट्तिलाचार कृत्वा पापात् प्रमुच्यते। तिलस्नायी तिलोद्वर्त्ती तिलहोमी तिलोदकी। तिलस्य दाता भोक्ता च षट्तिली

नावसीदति। सकृत्तु षट्तिली भूत्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते। त्रिंशद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते" ॥

अथ द्वादशी। सा च एकादशीयुता ग्राह्या युग्मात् नारदीये। "वैशाखशुक्लपक्षे तु द्वादशी वैष्णवी तिथिः। तस्यां शीतल तोयेन स्नापयेत् केशवं शुचिः" ॥ इयं पिपीतक द्वादशी अत्र "षष्ठीसमेता कर्त्तव्या सप्तमी नाष्टमीयुता। पतङ्गोपासनायेह षष्ठ्यामाहुरुपोषणम्। एकादश्यां प्रकुर्वन्ति उपवासं मनीषिणः। उपासनाय द्वादश्यां विष्णोर्यद्वदियं तथा" ॥ इति भविष्य पुराणेन एकादश्युपवासानन्तरं द्वादश्यां विष्णूपासनाया उक्तत्वादत्रापि तथा व्यवहरन्तीति नात्र युग्मादरः। द्वादशीक्षयेतूपवासानन्तर्य्यं विनापि पूजेति। इयं पूर्ववचनोक्तषष्ठीयुता सप्तमीवत् आषाढ़द्वादश्यादिषु शयनादिकं प्रागुक्तवचनात्।

भविष्योत्तरे। "द्वादशी श्रवणोपेता सर्वपापहरा तिथिः। बुधवारसमा युक्ता ततः शतगुणा भवेत्। तामुपोष्य समाप्नोति द्वादश द्वादशीफलम्"। उभयदिने तल्लाभे तु एकादशी युता ग्राह्या। "द्वादशी च प्रकर्त्तव्या एकादश्यायुता विभो!। सदा कार्य्या च विद्वद्भिर्विष्णुभक्तैश्च मानवैः" ॥ इति स्कान्दात्। यदात्वेकादश्यामेव श्रवणा तदा तामुपवसेत्। तथा च नारदः। "याः काश्चित्तिथयः प्रोक्ताः पुण्या नक्षत्रयोगतः। तास्वेव तद्व्रतं कुर्य्यात् श्रवणद्वादशीं विना" ॥ भविष्योत्तरे। "एकादशी यदा तु स्यात् श्रवणेन समन्विता। विजया सा तदा प्रोक्ता भक्तानां विजयप्रदा। तिथिनक्षत्रसंयोगे उपवासो यदा भवेत्। तावदेव न भोक्तव्यं यावन्नैकस्य संक्षयः। विशेषेण महीपाल श्रवणं वर्द्धते यदि। तिथिक्षयेण भोक्तव्यं द्वादशीं नैव लङ्घयेत्"। तिथिक्षयेण एकादशीक्षयेण भोक्तव्यं द्वादश्यां पारयेदित्यर्थः। अत्र हेतुः द्वादशीमित्यादिः। यदात्वेकादश्युपवासदिने श्रवणं नास्ति परदिने द्वादश्यां तत् तदोपवासद्वयमाह ब्रह्मवैवर्त्तः। "एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीं समुपोषयेत्। नचात्र विधिलोपः स्यादुभयोर्देवता हरिः" ॥ अत्र च "असमाप्ते व्रते पूर्वे

नैव कुर्य्यात् व्रतान्तरम्"॥ इति स्मृतेः पारणस्याकरणेन पूर्वोपवाससमाप्तावुपवासान्तरारम्भे विधिलोपो न भवेदित्यर्थः। हेतुमाह उभयोरित्यादिः। उभयोपवासासामर्थ्ये तु श्रवणद्वादश्येवोपोष्या तथा च स्मृतिः। "वरमेकादशीं भुक्त्वा द्वादशीं समुपोषयेत्। पूर्वोपवासजं पुण्यं सर्वं प्राप्नोत्यसंशयः"। तथा "उपोष्य द्वादशीं पुण्यां विष्णुऋक्षेण संयुताम्। एकादश्युद्भवं पुण्यं नरः प्राप्नोत्यसंशयः"॥ द्वादश्युपवासः काम्यः। तथाह मार्कण्डः। "द्वादश्यामुपवासेन सिद्धात्मा नृप! सर्वशः। चक्रवर्त्तित्वमतुलं संप्राप्नोत्यतुलां श्रियम्"॥

अत्र कालिकापुराणात् शक्रोत्थानविधिर्लिख्यते। "अथातः शृणु राजेन्द्र! शक्रोत्थानध्वजोत्सवम्। यत्कृत्वा नृपतिर्याति नो कदाचित्पराभम्। अर्ज्जुनोऽप्यश्वकर्णश्च प्रियकोधव एव च। औडुम्बरश्च पञ्चैते केत्वर्थे सत्तमाः स्मृताः। अन्ये च देवदार्वाद्याः शालाद्यास्तरवस्तथा। तच्च वृक्षं तुदेद्रात्रौ स्पृष्ट्वा मन्त्रमिमं पठेत्"॥ तुदेत् छेदयेत्। "यानि वृक्षे तु भूतानि तेभ्यः स्वस्ति नमोऽस्तु वः। उपहारं गृहीत्वेमं क्रियतां वासवध्वजः॥ पार्थिवस्त्वां वरयते स्वस्ति तेऽस्तु नगोत्तम!। ध्वजार्थं देवराजस्य पूजेयं प्रतिगृह्यताम्॥ ततोऽपरेऽह्नि तं छित्त्वा मूलमष्टाङ्गुलं पुनः। जले क्षिपेत्तदग्रस्य छित्त्वैवं चतुरङ्गुलम्। ततो नीत्वा पुरद्वारं केतुं निर्माय तत्र वै। शुक्लाष्टम्यां भाद्रपदे केतुं वेदिं प्रवेशयेत्। द्वाविंशद्धस्तमानस्तु अधमः केतुरुच्यते। द्वात्रिंशत्तु ततोज्यायान् द्वाचत्वारिंशदेव तु। कुमार्य्यः पञ्च कर्त्तव्याः शक्रस्य नृपसत्तम!। शालमय्यस्तु ताः सर्वास्त्वपराः शक्रमातृकाः। केतोः पादप्रमाणेन कार्य्याः शक्रकुमारिकाः। मातृकार्द्धप्रमाणात्तु यन्त्रं हस्तद्वयं तथा। एवं कृत्वा कुमारीश्च मातृकां केतुमेव च। एकादश्यां सिते पक्षे यष्टीनामधिवासनम्। अधिवास्य ततो यष्टिं गन्धद्वारादिमन्त्रकैः। द्वादश्यां मण्डलं कृत्वा वासवं विस्तृतात्मकम्। अच्युतं पूजयित्वादौ शक्रं पश्चात् प्रपूजयेत्। शक्रस्य प्रतिमां कुर्य्यात् कानकीं दारवीं तथा"॥ कानकीं कनकमयीं "अन्यतैजसभूतां वा सर्वाभावे तु मृण्मयीम्। तां मण्डलस्य मध्ये

तु पूजयित्वा विशेषतः ॥ ततः शुभे मुहूर्त्ते तु केतुमुत्थापयेन्नृपः । वज्रहस्त ! सुरारिघ्न ! बहुनेत्र ! पुरन्दर ! । क्षेमार्थं सर्वलोकानां पूजेयं प्रतिगृह्यताम्। एह्येहि सर्वामरसिद्धसङ्घैरभिष्टुतो वज्रधरामरेश ! । समुत्थितस्त्वं श्रवणाद्यपादे गृहाण ! पूजां भगवन् नमस्ते। इति मन्त्रेण तन्त्रेण नानानैवेद्यवन्दनैः। घटेषु दश दिक्पालान् ग्रहांश्च परिपूजयेत। साध्यादीन् सकलान् देवान् मातॄः सर्वास्त्वनुक्रमात्। ततः शुभे मुहूर्त्ते तु स्थानिवर्द्धकि संयुतः। केतूपस्थानभूमिन्तु यज्ञवेद्यास्तु पश्चिमे। विप्रैः पुरोहितैः सार्द्धं गच्छेद्राजा सुमङ्गलैः। रज्जुभिः पञ्चभिर्बद्धं यन्त्रश्लिष्टं समाटकम। कुमारीभिश्च संयुक्तं दिक्पालानाञ्च पट्टकैः। यथावर्णैर्यथादेशैर्योजितैर्वस्त्रवेष्टितैः। युतं तं किङ्किणीजालैर्बृहद्घण्टौघचामरैः। चित्रमाल्याम्बरैश्चापि चतुर्भिरपि तोरणैः। उत्थापयेन्महाकेतुं राजा मात्यैः शनैः शनैः। प्रतिमां तां नयेन्मूलं केतोः शक्रं विचिन्तयन्। यजेत्त पूर्ववत्तत्र शचीं मातलिमेव च। जयन्तं तनयं तस्य वज्रमैरावतं तथा। ग्रहांश्चाप्यथ दिक्पालान् सर्वांश्च गणदेवताः। पूजितानाञ्च देवानां शश्वद्धोमं समाचरेत्। होमान्ते तु बलिं दद्यात् वासवाय महात्मने। तिलं घृतं चाक्षतञ्च पुष्पं दूर्वां तथैव च। एतैस्तु जुहुयादेतान् स्वैः स्वैर्मन्त्रैर्नरोत्तमः। ततो होमावसाने तु ब्राह्मणानपि भोजयेत्। एवं प्रपूजयेन्नित्यं सप्तरात्रं दिने दिने। त्रातारमिति मन्त्रोऽयं वासवस्य परः प्रियः। एवं कृत्वा दिवाभागे शक्रोत्थापनमादितः। श्रवणर्क्षयुतायाञ्च द्वादश्यां पार्थिवः स्वयम्। अन्तपादे भरण्यास्तु निशि शक्रं विसर्जयेत्। सुप्तेषु सर्वलोकेषु यथा राजा न पश्यति। सार्द्धं सुरासुरगणैः पुरन्दर ! शतक्रतोः ! । उपहारं गृहीत्वेमं महेन्द्रध्वज ! गम्यताम्। उत्पाते सप्तरात्राणि तथोपप्लवदर्शने। व्यतीत्य शनिभौमौ च अन्यर्क्षेऽपि विसर्जयेत्। यस्मिं स्तस्मिन् दिने चैव सूतकान्ते विसर्जयेत्। तथा रक्षेन्नृपः केतुं न पतेच्छकुनिर्यथा। शनैः शनैः पातयेत्तं यथोत्थापनमादितः। विसृष्टं शक्रकेतुं तं सालङ्कारं तथा निशि। क्षिपेदनेन मन्त्रेण अगाधे सलिले नृपः।

तिष्ठ केतो ! महाभाग ! यावत् संवत्सरं जले। भवाय सर्व्वलोकानाम् अन्तरायविनाशक ! । उत्थापयेत्तूर्य्यरवैः सर्व्वलोकस्य वै पुरः। एवं यः कुरुते पूजां वासवस्य महात्मनः। न तस्य राज्ये दुर्भिक्षं नेतयो नाप्यधर्मकृत्”॥ ईतयश्च। “अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषिकाः खगाः। प्रत्यासन्नाश्च राजानः षडेते ईतयः स्मृताः”॥ भविष्योत्तरे “इन्द्रध्वजसमुत्थानं प्रमादान्न कृतं यदि। तदा द्वादशमे वर्षे कर्त्तव्यं नान्तरा पुनः”॥ भैमीपर द्वादश्यां षट्तिलाचरणं प्रागुक्तवचनात्।

“फाल्गुने शुक्लपक्षस्य पुष्यर्क्षे द्वादशी यदि गोविन्दद्वादशी नाम महापातकनाशिनी”॥ अत्र गङ्गायां पद्मपुराणीयो मन्त्रः। “महापातकसंज्ञानि यानि पापानि सन्ति मे। गोविन्दद्वादशीं प्राप्य तानि मे हर जाह्नवि” !॥

अथ त्रयोदशी। सा च शुक्ला द्वादशीयुता ग्राह्या। “त्रयोदशी प्रकर्त्तव्या द्वादशीसहिता विभो” !॥ इति ब्रह्मवैवर्त्तात्। कृष्णा तु परयुता। “षष्ठ्यष्टमीत्वमावास्या कृष्णा चैव त्रयोदशी। एताः पर युताः पूज्याः पराः पूर्व्वेण संयुताः”॥ इति निगमवचनात्। पराः सप्तम्यादयः। एवञ्च पूर्व्ववचनं शुक्लाविषयं सामान्यविशेषन्यायात्।

प्रोष्ठपद्यूर्द्ध्वं कृष्णत्रयोदश्यां मघायुक्तायामनिषिद्धं यत् किञ्चिद्द्रव्येण श्राद्धमावश्यकं शङ्खादिविधिवाक्ये नक्षत्रविशिष्टतिथेः श्रुतेः। ततश्च केवल त्रयोदशी केवल मघाश्राद्धार्थवादा अपि क्लृप्तविशिष्टविधिप्राप्त कर्म्मणो नित्यत्वबोधका न तु केवल विध्यन्तर कल्पनागौरवात्। तथा च शङ्खः “प्रोष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम्। प्राप्य श्राद्धं हि कर्त्तव्यं मधुना पायसेन च”॥ मनुः “यत्किञ्चित् मधुना मिश्रं प्रदद्यात्तु त्रयोदशीम्। तदप्यक्षयमेव स्यात् वर्षासु च मघासु च”॥ विष्णुधर्म्मोत्तरम्। “प्रोष्ठपद्यामतीतायां तथा कृष्णा त्रयोदशी। एतांस्तु श्राद्धकालान् वै नित्यानाह प्रजापतिः”॥ शातातपः। “पितरः स्पृहयन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च। तस्माद्दद्यात् सदोद्युक्तो विद्वत्सु ब्राह्मणेषु च”॥ अत्रान्नमात्र श्रुतेः मनुवचने यत्किञ्चिदिति श्रुतेश्च। शङ्खोक्त पायसः फला-

तिशयार्थः। गुणविशेषे फलविशेषः स्यादिति न्यायात्। व्यक्तं विष्णुधर्मोत्तरे। मघायुक्ता च तत्रापि शस्ता राजंस्त्रयोदशी। तत्राक्षयं भवेच्छ्राद्धं मधुना पायसेन च"॥ तत्राश्वयुक्कृष्णपक्षे अत्र यत् श्राद्धं तन्मधु योगेन पायसयोगेन वाक्षयं भवेत्। एवं मनुवचने यत्किञ्चिन्मधुना मिश्रं इत्यनेन मधुमात्रयुक्तत्वमुक्तम्। अतोऽत्र सुतरां शूद्रस्याप्यधिकारः। अत्र गजच्छायायोगे फलातिशयः। तथा च कृत्यचिन्तामणौ स्मृतिः। "कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां मघास्विन्दुः करे रविः। यदा तदा गजच्छाया श्राद्धे पुण्यैरवाप्यते"॥ करे हस्तानक्षत्रे कन्यादशमांशोपरिसपादत्रयोविंशांश इति यावत्। अविभक्तानामप्यत्र पृथक् श्राद्धमावश्यकम्। यथा श्राद्धचिन्तामणौ स्मृतिः। "विभक्ता अविभक्ता वा कुर्य्युः श्राद्धमदैविकम्। मघासु च तथान्यत्र नाधिकारः पृथग्विना"॥ अदैविकं प्रत्याब्दिकैकोद्दिष्टं अन्यत्र कृष्णपक्षादौ नाधिकारः न नित्याधिकारः। "सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्राद्धानि षोडश। पृथक् नैव सुताः कुर्य्युः पृथग्द्रव्या अपि क्वचित्" इत्यत्रापिना समुच्चितानाम् अपृथग्द्रव्याणां पुंसां सपिण्डीकरणान्तानीति विशेषणात् तदुत्तरश्राद्धानां पृथक्करणमपि प्रतीयते। मघात्रयोदशीनिमित्तक श्राद्धे पुत्रवता पिण्डा न देयाः "भौजङ्गीं तिथिमासाद्य यावच्चन्द्रार्कसङ्गमम्। तत्रापि महती पूजा कर्त्तव्या पितृदैवते। ऋक्षे पिण्डप्रदानन्तु ज्येष्ठपुत्री 'विवर्जयेत्"॥ इति देवीपुराणात् भौजङ्गी पञ्चमी चन्द्रार्कसङ्गमम् अमावास्या पितृदैवते ऋक्षे मघायाम्। शातातपः। पिण्डनिर्वापरहितं यत्तु श्राद्धं विधीयते। स्वधा वाचनलोपोऽत्र विकिरस्तु न लुप्यते। अक्षय्यदक्षिणा स्वस्ति सौमनस्यं तथास्त्विति"॥

स्कन्दपुराणे "वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी। गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्य्यग्रहशतैः समा"॥ वारुणं शतभिषा। "शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी स्मृता। गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्य्यग्रहैः समा। शुभयोग समायुक्ता शनौ शतभिषा यदि। महामहेति विख्याता त्रिकोटि कुलमुद्ध-

रेत्" ॥ कुलं पुरुषमिति याज्ञवल्क्यदीपकलिका। तथा च मेदिन्यां "कुलं जनपदे गोत्रे सजातीयगणेऽपि च। भवने च तनौ क्लीवं कण्टकार्य्योषधौ कुली" ॥ अत्र संज्ञाविधेः सार्थकत्वाय निमित्तत्वेन मासपक्षतिथ्युल्लेखानन्तरं महावारुणी महामहावारुण्यावुल्लेखनीये श्राद्धे पार्वणादि संज्ञोल्लेखवत् पौर्णमास्यमावास्ययोः पक्षोल्लेखवच्च। "मासपक्षतिथीनाञ्च निमित्तानाञ्च सर्वशः। उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग्भवेत्" ॥ इति वचनात्। तेन चैत्रे मासि कृष्णपक्षे त्रयोदश्यां तिथौ महावारुण्यां महामहावारुण्यां यथायथं प्रयोज्यम्। वारस्तु सूर्य्योदयादुदयान्तरं यावत् तथा च सूर्य्यसिद्धान्तः "सूतकादि परिच्छेदो दिनमासाब्दपास्तथा। मध्यमग्रहभुक्तिश्च सावनेन प्रकीर्त्तिताः। उदयादुदयाद्भानोर्भौम सावन वासराः" ॥ दिनाधिपस्य रव्यादेर्भोग्यं दिनं वाररूपं सावनगणनेनोक्तं भौमेति पित्रादिदिनव्यावृत्त्यर्थं कौर्म पाद्मयोः "द्वौ तिथ्यन्तावेकवारे यत्र स्यात् स दिनक्षयः" ॥ वशिष्ठः। "एकस्मिन् सावने त्वह्नि तिथीनां त्रितयं यदा। तदा दिनक्षयः प्रोक्तस्तत्र साहस्रिकं फलम्" ॥ इत्येतयोर्वचनयोरेकवाक्यतयापि तथावगम्यते। रेखापूर्वापरयोरित्यादिकन्तु ज्योतिःशास्त्रोक्तं कालहोरादिज्ञानार्थमिति। अत्र "संक्रान्तिषु व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः। पुष्ये स्नात्वा च गङ्गायां कुलकोटीः समुद्धरेत्" ॥ इति ब्रह्माण्ड पुराणात् ग्रहणमात्रे त्रिकोटि कुलोद्धरणविधानात् ततोऽधिकेषु वारुण्यादिषूत्तरोत्तरगुरुषु महामहावारुण्यामपि यत् त्रिकोटि कुलोद्धरणमुक्तं तदुद्धरणगततारतम्येनाविरुद्धम्। "यं यं क्रतुमधीते च तस्य तस्याप्नुयात् फलम्" ॥ इति याज्ञवल्क्योक्ताध्ययनात् यथा तत्तद्यागकरणेऽधिक फलम् अतएव शिष्टानामादरोऽपि तथेति। न चात्र "स्नानं कुर्वन्ति या नार्य्यश्चन्द्रे शतभिषां गते। सप्तजन्म भवेयुस्ता दुर्भगा विधवा ध्रुवम्" ॥ इति। "त्रयोदश्यां तृतीयायां दशम्याञ्च विशेषतः। शूद्रविट् क्षत्रियाः स्नानं नाचरेयुः कथञ्चन" इति प्रचेतोजावालवचनाभ्यां स्त्रीणां शूद्रादीनाञ्च स्नाननिषेध

इति वाच्यम्। “भोगाय क्रियते यत्तु स्नानं यादृच्छिकं नरैः। तन्निषिद्धं दशम्यादौ नित्यनैमित्तिके न तु”॥ इति हेमाद्रिधृतवचनेन रागप्राप्त स्नान एव निषेधात् नक्तेऽपि तथा कल्पनात्। अत्र त्रयोदश्यां पूर्णायां पूर्वाह्णेतरकाले नक्षत्रादिसत्त्वे परदिने पूर्वाह्णे तिथिनक्षत्रलाभेऽपि पूर्वदिन एव स्नानम्। तथा च कालमाधवीये नारदीयम्। “आदित्योदयवेलाया आरभ्य षष्टि नाडिकाः। तिथिस्तु सा हि शुद्धा स्यात् सार्वतिथ्योह्ययं विधिः”॥ अत्र पूर्वतिथेः शुद्धत्वाभिधानात् तत्परतिथेरशुद्धत्वाभिधानं प्रतीयते। रात्रावपि वारुण्यादिषु गङ्गायां स्नानम्। “दिवारात्रौ च सन्ध्यायां गङ्गायाञ्च प्रसङ्गतः। स्नात्वाश्वमेधजं पुण्यं गृहेऽप्युद्धृत तज्जलैः”॥ इति। ब्रह्माण्डपुराणे गन्धर्ववाक्यञ्च। “अहोरात्रौ प्राप्नुवतो जलं ब्रह्मविदो जनाः। गर्हयन्ति जनान् सर्वान् वनस्थान नृपतीनपि”॥ अत्रार्जुनं प्रति वचनम्। “समुद्रे हिमवत् पार्श्वे नद्यामस्याञ्च दुर्मते। रात्रावहनि सन्ध्यायां कस्य गुप्तः परिग्रहः। असम्बाधा देवनदी स्वर्गसम्पादिनी शुभा। कथमिच्छसि तां रोद्धुं नैष धर्मः सनातनः। अनिवार्य्यमसम्बाधं तव वाचा कथं वयम्। नस्पृशेम यथा कामं पुण्यं भागीरथीजलम्॥” इति रात्रिस्नानाधिकारमुपक्रम्यादिपार्वणि “सर्व एव शुभकालः सर्वो देशस्तथा शुभः। सर्वो जनस्तथा पात्रं स्नानादौ जाह्नवीजले”॥ इति भविष्यपुराणे च सामान्यतः प्रतिप्रसवात्। पात्रमधिकारी। गृहस्थरत्नाकरे देवलः। “महानिशा तु विज्ञेया मध्यमं प्रहरद्वयम्। तस्यां स्नानं न कर्त्तव्यं काम्यनैमित्तिकादृते”॥ अत्र महानिशायामपि काम्य नैमित्तिकं स्नानं प्रतीयते।

भविष्ये “चैत्रे शुक्लत्रयोदश्यां दमनं मदनात्मकम्। कृत्वा संपूज्य विधिवद्वीजयेद्व्यजनेन तु। तत्र सम्यर्चितः कामः पुत्रपौत्रविवर्द्धनः। कामदेवस्त्रयोदश्यां पूजनीयो यथाविधि। रतिप्रीतिसमायुक्तो ह्यशोकमणिभूषितः”॥ दमनो दमनकवृक्षः सम्यर्चितः पूजितः। कामदेवध्यानन्तु “चापेषुधृक् कामदेवो रूपवान् विश्वमोहनः”॥ तत्र मन्त्रः। “पुष्पधन्वन् नमस्ते-

ऽस्तु नमस्ते मीनकेतन" मुनीनां लोकपालानां धैर्य्यच्युतिकृते नमः। माधवात्मजकन्दर्प सम्बरारे रतिप्रिय॥ नमस्तुभ्यं जिताशेषभुवनाय मनोभुवे। आधयो मम नश्यन्तु व्याधयश्च शरीरजाः॥ सम्पद्यतामभीष्टं मे सम्पदः सन्तु मे स्थिराः। नमो माराय कामाय देवदेवस्य मूर्त्तये। ब्रह्मविष्णुशिवेन्द्राणां मनःक्षोभकराय च। एवं यः कुरुते पूजामनङ्गस्य महात्मनः॥ भवन्ति नापदस्तस्य तस्मिन्नब्दे कदाचन"॥

अथ चतुर्दशी। सा च शुक्ला पूर्णिमायुता ग्राह्या युग्मात् कृष्णा पूर्व्वयुता। "कृष्णपक्षेऽष्टमी चैव कृष्णपक्षे चतुर्दशी। पूर्व्वविद्धैव कर्त्तव्या परविद्धा न कुत्रचित्॥ उपवासादिकार्य्येषु एष धर्म्मः सनातनः"॥ इति निगमवचनात्। अपराह्णव्यापित्वे तु शुक्लचतुर्दश्यपि पूर्व्वविद्धा ग्राह्या "चतुर्दशी तु कर्त्तव्या त्रयोदश्या युता विभो। मम भक्तैर्महाबाहो भवेद्या चापराह्णिकी। दर्शविद्धा न कर्त्तव्या राकाविद्धा तथा मुने"॥ इति स्कन्दपुराणात्। मम भक्तैरिति ईश्वरोक्तेः शिवव्रतविषयम्। त्रयोदश्यां दिवातनमुहूर्त्तचतुर्दश्यलाभे तु पद्मपुराणम्। "एकादश्यष्टमीषष्ठी उभे पक्षे चतुर्दशी। अमावास्या तृतीया च उपोष्याः स्युः परान्विताः॥" एतद्विषय एव "शिवाघोरा तथा प्रेता सावित्री च चतुर्दशी। कुहूयुक्तैव कर्त्तव्या कुहामेव हि पारणम्॥ इति वचनं यमः "दत्त्वा जलाञ्जलीन् सप्त कृष्णपक्षे चतुर्दशीम्। धर्म्मराजं समुद्दिश्य सर्व्वपापैः प्रमुच्यते"॥

लिङ्गपुराणे "उपवासश्चतुर्दश्यां महापातकनाशकः"। पराशरः "मेषे वा वृषभे वापि सावित्रीं तां विनिर्दिशेत्"। तां चतुर्दशीं "ज्यैष्ठकृष्णचतुर्दश्यां सावित्रीमर्च्चयन्ति याः। वटमूले सोपवासा न ता वैधव्यमाप्नुयुः"॥ राजमार्त्तण्डकृत्यचिन्तामण्योः। "ज्यैष्ठे मासि चतुर्दश्यां सावित्रीव्रतमुत्तमम्। अवैधव्याय कुर्व्वन्ति स्त्रियः श्रद्धासमन्विताः"॥ व्रतमात्रे तु अनन्ततृतीयाव्रतोक्तमाचरन्ति दृष्टपरिकल्पनान्यायात् तदुक्तं मत्स्यपुराणे "गर्भिणीसूतिकानक्तं कुमारी च रजस्वला। यदा शुद्धा तदान्येन कारयेत् क्रियते सदा"॥ उपवासाशक्तौ नक्तं

भोजनं कुर्य्यात् "उपवासे त्वशक्तानां नक्तं भोजनमिष्यते" इति तद्धृतवचनान्तरात् अशुद्धा चेत् पूजां कारयेत्। कायिकश्चोपवासादिकं सदा शुद्धया अशुद्धया च स्वय क्रियते। एवं स्मृतिपारिभाषिकायां वर्द्धमानोपाध्यायाः। नारदः "दिवाभागे त्रयोदश्यां यदा चतुर्दशी भवेत्। तत्र पूज्या महासाध्वी देवी सत्यवता सह" ॥ दिवाभागे दण्डद्वयमात्र सत्त्वेऽपि अतएव प्रदोषे व्रतमाचरन्ति। पूर्वाह्ने तद्विधत्वऽपि पराह्ने त्रिसन्ध्यव्यापित्वे पराह्न एव त्रिसन्ध्यव्यापिनीति वचनात्। यदा तु पूर्वपरयोर्न तथाविधा तदापि पराह्न एव यथा ज्योतिषे "चतुर्दश्याममावास्या यदा भवति नारद!। उपोष्या पूजनीया सा चतुर्दश्यां विधानतः" ॥ सा सावित्री। ततश्चामावास्यायां सावित्रीव्रतविधानं शिवाघोरेति वचनञ्च तत्परम्। पराशरः। "सावित्रीमर्च्चयित्वातु फलाहारापरेऽहनि। ततश्चाविधवा नारी वित्तभोगान् लभेत सा" ॥

भविष्योत्तरे "भाद्रे मास्यसिते पक्षे अघोराख्या चतुर्दशी। तामुपोष्य नरो याति शिवलोकमयत्नतः" ॥ भविष्ये "अनन्तव्रतमेतद्धि सर्वपापहरं शुभम्। सर्वकामप्रदं नृणां स्त्रीणाञ्चैव युधिष्ठिर!॥ तथा शुक्लचतुर्दश्यां मासि भाद्रपदे भवेत्। तस्यानुष्ठानमात्रेण सर्वं पापं प्रणश्यति" ॥ व्रतारम्भप्रतिष्ठयोर्वर्ज्यकालमाह ज्योतिषे। "गुरोर्भृगोरस्तबाल्ये वार्द्धके सिंहके गुरौ। वक्रिजीवाष्टविंशेऽह्नि गुर्वादित्ये दशाहिके॥ पूर्वराशावनायातातिचारि गुरुवत्सरे। प्राग्राशिगन्तृजीवस्य चातिचारे त्रिपक्षके॥ कम्पाद्यद्भुतसप्ताहे नीचस्थेज्ये मलिम्लुचे। भानुलङ्घितके मासि क्षये राहुयुते गुरौ॥ पौषादिकचतुर्मासि चरणाङ्कितवर्षणे। एकेनाङ्का चैकदिने द्वितीयेन दिनत्रये॥ तृतीयेन तु सप्ताहे माङ्गल्यानि शुभान्विताः। विद्यारम्भ कर्णवेधौ चूडोपनयनोद्वहान्॥ तीर्थस्नानमनावृत्तं तथानादिसुरेक्षणम्। परीक्षा रामयज्ञांश्च पुरश्चरणदीक्षणे॥ व्रतारम्भ प्रतिष्ठे च गृहारम्भप्रवेशने। प्रतिष्ठारम्भणे देवकूपादेर्वर्जयन्ति च॥ द्वात्रिंशद्दिवसाश्चास्ते जीवस्य भार्गवस्य तु। द्वासप्ततिर्महत्यस्ते पादास्ते द्वादशक्रमात्॥ अस्तात्

प्राक् परयोः पक्षं गुरोर्वार्द्धकबालते । पक्षं वृद्धो महास्ते तु भृगुर्बालोदशाहिकः । पादास्ते तु दशाहानि वृद्धो बालो दिनत्रयम्" ॥ न च "मध्याह्ने भोज्यवेलायां समुत्तीर्य्य सरित्तटे । ददर्श शीला सा स्त्रीणां समूहं रक्तवाससाम् । चतुर्द्दश्यामर्च्चयन्तं भक्त्या देवं पृथक् पृथक्" ॥ इति भविष्योत्तरीयान्मध्याह्नव्यापिनी तिथिर्ग्राह्येति वाच्यं पूर्व्वाह्णो वै देवानामिति श्रुत्यादिभिः पूर्व्वाह्णे देवकृत्यविधानात् । विध्यसमभिव्याहृतार्थवादेन तद्बाधायोगात् । किन्तु तस्यैव गौणकालबोधकं तत् । कालमाधवीयोऽप्येवम् । भविष्येऽपि पूजाविधायको मध्याह्नो नोक्तः यथा "कृत्वा दर्भमयानन्तं वारिधान्यां निवेश्य च । पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्नैवेद्यैर्विविधैरपि ॥ चतुर्द्दशफलैर्मूलैर्जलजैः कुसुमैरपि । यवगोधूमशालीनां चूर्णेनैकतरस्य च ॥ कृत्वा पूपं द्वयं तस्मै दद्यादेकं घृतान्वितम् । स्वयमेकन्तु भुञ्जीत करे बद्ध्वा सुडोरकम् ॥ चतुर्द्दशग्रन्थियुक्तं कुङ्कुमेन विलेपितम् । सुविन्यस्तं विष्णुनाम प्रतिग्रन्थिसमन्वितम् । चतुर्द्दशसूत्रमयं सूत्रं कार्पासमेव च" ॥ पूजाडोरकबन्धनमन्त्रस्तु रत्नाकरे । "अनन्तसंसारमहासमुद्रे मग्नान् समभ्युद्धर वासुदेव ! । अनन्तरूपिन् ! विनियोजयस्व अनन्तरूपाय नमो नमस्ते" ॥ इति मन्त्रमुक्त्वा "ऽनेन डोरकं बद्ध्वा भोक्तव्यं सुस्थमानसैः" इत्यर्द्धं भविष्योत्तरीयं कालकौमुद्यां लिखितमिति तथा "पापोऽहं पापकर्म्माहं पापात्मा पापसम्भवः । त्राहि मां पुण्डरीकाक्ष ! सर्व्वपापहरो भव ॥ अद्य मे सफलं जन्म जीवितञ्च सुजीवितम् । यत्तवाङ्घ्रि युगाब्जाग्रे मूर्द्धा मे भ्रमरायते" ॥ इत्याभ्यां नमस्कुर्य्यात् । अनन्तकथामप्यत्र शृण्वन्ति ।

लैङ्गे "कार्त्तिके कृष्णपक्षे तु चतुर्द्दश्यां दिनोदये । अवश्यमेव कर्त्तव्यं स्नानं नरकभीरुभिः ॥ अपामार्गपल्लवञ्च भ्रामयेच्छिरसोपरि । ततश्च तर्पणं कार्य्यं धर्म्मराजस्य नामभिः । नरकाय प्रदातव्यो दीपः संपूज्य देवताः" ॥ नरकाय नरकनिवृत्तये । "अर्थोभिधेयरैवस्तु प्रयोजननिवृत्तिषु" इति निवृत्तावपि तादर्थ्ये इत्यनेन चतुर्थीविधानात् । अपामार्ग-

भ्रामणमन्त्रः "शीतलोष्णसमायुक्त सकण्टकदलान्वित । हर पापमपामार्ग ! भ्राम्यमाणः पुनः पुनः ॥ ततः प्रदोषसमये दीपान् दद्यात् प्रयत्नतः । ब्रह्मविष्णुशिवादीनां भवनेषु मठेषु च" ॥ भविष्ये "कार्त्तिके भौमवारे तु चित्रा कृष्णचतुर्दशी । तस्यामाराधितः स्थाणुर्नयेच्छिवपुरं ध्रुवम् ॥ यां काञ्चित् सरितं प्राप्य कृष्णपक्षे चतुर्दशीम् । यमुनायां विशेषेण नियतस्तर्पयेद् यमान् ॥ यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च । वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥ औडुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने । वृकोदराय चित्राय चित्रगुप्ताय वै नमः ॥ एकैकस्य तिलैर्मिश्रां स्त्रीं स्त्रीन् दद्याज्जलाञ्जलीन् । संवत्सरकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति" ॥ अत्राचारात् चतुर्दशशाकभक्षणञ्च कर्त्तव्यम् अत्र निर्णयामृतधृतं "ओलं केमुकवास्तूकं सर्षपं कालञ्च निम्बं जयाम् । शालिञ्चं हिलमोचिकाञ्च पटुकं शौलफं गुडुचीं तथा ॥ भण्टाकीं सुनिषण्णकं शिवदिने खादन्ति ये मानवाः । प्रेतत्वं न च यान्ति कार्त्तिकदिने कृष्णे च भूते तिथौ" ॥ जयां जयन्तीं पटुकं पटोलम् । भविष्ये "वृश्चिके शुक्लपक्षे तु या पाषाणचतुर्दशी । तस्यामाराधयेद्गौरीं नक्तं पाषाणभोजनैः" ॥ पाषाणाकारपिष्टभोजनैः । यमः "माघे मास्यसिते पक्षे रटन्त्याख्या चतुर्दशी । तस्यामुदयवेलायां स्नातो नावेक्षते यमम्" ॥ उदयवेलायामरुणोदयवेलायाम् । "अनर्काभ्युदिते काले माघे कृष्णचतुर्दशी । सतारव्योमकाले तु तत्र स्नानं महाफलम् । स्नात्वा सन्तर्प्य तु यमान् सर्वपापैः प्रमुच्यते" । अत्र तिथिकृत्यत्वात् गौणचान्द्रादरः । अत्रारुणोदयकाल एव स्नानं पूर्वोक्तचतुर्दशयमतर्पणञ्च ॥ यत्तु उदयवेलायां सूर्य्योदयवेलायां अनर्काभ्युदित इतीषदर्थे नञिति व्याख्यानं तत् समुद्रकरभाष्यधृतसतारव्योमेत्युत्तरार्द्धानवलोकनेनेति ।

अथ शिवरात्रिव्रतम् । कालमाधवीये स्कान्दे नागरखण्डं "माघमासस्य शेषे या प्रथमे फाल्गुनस्य च । कृष्णा चतुर्दशी सा तु शिवरात्रिः प्रकीर्त्तिता" । अत्रैकस्यास्तिथेर्माघीयत्वफाल्गुनीयत्वे मुख्यगौणवृत्तिभ्याम् अविरुद्धे ततस्तु

माध्यनन्तरा चतुर्दशीशिवरात्रिः अस्यामुपवासः प्रधानं "न स्नानेन न वस्त्रेण न धूपेन न चार्च्चया। तुष्यामि न तथा पुष्पैर्यथा तत्रोपवासतः"॥ इति शङ्करोक्तेः। स्कान्दे "ततो रात्रौ प्रकर्त्तव्यं शिवप्रीणन तत्परैः। प्रहरे प्रहरे स्नानं पूजा चैव विशेषतः"॥ अत्र वीप्सया प्रहरचतुष्टयसाध्यं व्रतं प्रतीयते। नरसिंहाचार्य्यधृतेश्वरसंहितायाम्। "शैवो वा वैष्णवो वापि यो वा स्यादन्यपूजकः। सर्वं पूजाफलं हन्ति शिवरात्रिवहिर्मुखः"। संवत्सरप्रदीपे "दुग्धेन प्रथमे स्नानं दध्ना चैव द्वितीयके। तृतीये च तथाज्येन चतुर्थे मधुना तथा"॥ ईशानसंहितायां "माघे कृष्णचतुर्दश्यां रविवारो यदा भवेत्। भौमो वापि भवेद्देवि! कर्त्तव्यं व्रतमुत्तमम्॥ शिवयोगस्य योगेन तद्भवेदुत्तमोत्तमम्। शिवरात्रिव्रतं नाम सर्व्वपापप्रणाशनम्। आचाण्डालमनुष्याणां भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्"॥ नागरखण्डे। "उपवासप्रभावेण बलादपि च जागरात्। शिवरात्रेस्तथा तस्य लिङ्गस्यापि प्रपूजया। अक्षयान् लभते लोकान् शिवसायुज्यमाप्नुयात्॥" पाद्मे "वर्षे वर्षे महादेवि! नरो नारी पतिव्रता। शिवरात्रौ महादेवं कामं भक्त्या प्रपूजयेत"॥ ईशानसंहितायाम्। "एवमेव व्रतं कुर्य्यात् प्रतिसंवत्सरं व्रती। द्वादशाब्दिकमेतद्धि चतुर्विंशाब्दिकं तथा॥ सर्वान् कामानवाप्नोति प्रेत्य चेह च मानवः" हेमाद्रिधृता स्मृतिः। "प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रि चतुर्दशी"॥ प्रदोषमाह वत्सः। "प्रदोषोऽस्तमयादूर्द्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते"। ऊर्द्ध्वमनन्तरम्। वायुपुराणे। "त्रयोदश्यस्तगे सूर्य्ये चतसृष्वपि नाड़िषु। भूतविद्धातु या तत्र शिवरात्रि व्रतञ्चरेत्"॥ ईशानसंहितायाम्। "माघे कृष्णचतुर्दश्यामादिदेवो महानिशि। शिवलिङ्गतयोद्भूतः कोटिसूर्य्यसमप्रभः॥ तत्कालव्यापिनी ग्राह्या शिवरात्रिव्रते तिथिः। अर्द्धरात्रादधश्चोर्द्ध्वं युक्ता यत्र चतुर्दशी। व्याप्ता सा दृश्यते यस्यां तस्यां कुर्य्यात् व्रतं नरः"॥ अत्र "महानिशा द्वे घटिके रात्रेर्मध्यमयामयोः"॥ इति देवलोक्ता महानिशा ग्राह्या। घटिका एकदण्डः। एवञ्च यद्दिने प्रदोषनिशीथोभयव्यापिनी-

चतुर्दशी तद्दिने व्रतम् उभयव्याप्त्यनुरोधात्। कालमाधवीयोऽप्येवम्। एतेन परदिने उभयव्यापित्वेऽपि पूर्वदिवसीयरात्रि द्वितीययामप्रभृतिचतुर्दशीसत्त्वे बहुप्रहरव्यापित्वेन पूर्वदिन एव व्रतमिति निरस्तम्। यदा तु पूर्वद्युर्निशीथमात्रव्याप्तिः परेद्युः प्रदोषमात्र व्याप्तिस्तदा पूर्वद्युर्व्रतं प्रधानकालव्याप्त्यनुरोधात्। "पूर्वद्युरपरेद्युर्वा महानिशि चतुर्दशी। व्याप्ता सा दृश्यते यस्यां तस्यां कुर्य्यात् व्रतं नरः"॥ इति ईशानसंहितावचनाच्च। एतद्विषयएव भविष्यपुराणम् "अर्द्धरात्रात् पुरस्तात्तु जयायोगो भवेद् यदि। पूर्वविद्धैव कर्त्तव्या शिवरात्रिः शिवप्रियैः"॥ विष्णुधर्मोत्तरे "जयन्ती शिवरात्रिश्च कार्य्ये भद्रजयान्विते। कृत्वोपवासं तिथ्यन्ते तदा कुर्य्याच्च पारणम्"॥ तिथ्यन्ते पारणं जयन्तीमात्रपरम् अत्र चतुर्दश्यामेव तत्। "ब्रह्माण्डोदरमध्ये तु यानि तीर्थानि सन्ति वै। पूजितानि भवन्तीह भूतायां पारणे कृते"॥ इति स्कान्दात्। "दिनमानप्रमाणेन या तु रात्रौ चतुर्दशी। शिवरात्रिस्तु सा ज्ञेया चतुर्दश्यान्तु पारणम्"॥ इति गौतमीयाच्च। यदा तु पूर्वदिनेन निशीथव्याप्तिः परदिने प्रदोषमात्रव्यापिनी तदा परा ग्राह्या प्रदोषव्यापिनीति प्रागुक्तत्वात् तिथेस्त्रिसन्ध्यव्यापित्वाच्च। एतद्विषय एव लिङ्गपुराणं "शिवरात्रिव्रते भूतां कामविद्धां विवर्जयेत्। एकेनैवोपवासेन ब्रह्महत्यां व्यपोहति" अत्रामावस्यायामेव पारणम्। "शिवाघोरा तथा प्रेता सावित्री च चतुर्दशी। कुहूयुक्तैव कर्त्तव्या कुह्वामेव हि पारणम्"॥ इति वचनात्।

तदयं संक्षेपः। यद्दिने प्रदोषनिशीथोभयव्यापिनी चतुर्दशी तद्दिने व्रतम्। यदा तु पूर्वद्युर्निशीथव्यापिनी परेद्युः प्रदोषमात्रव्यापिनी तदा पूर्वद्युर्व्रतम्। यदा तु न पूर्वद्युर्निशीथव्याप्तिः परदिने प्रदोषव्याप्तिः परदिने प्रदोषव्यापिनी तदा परदिने। पारणन्तु परदिने चतुर्दशीलाभे चतुर्दश्यां तदलाभे अमावास्यायाम्।

तत्र प्रयोगः। प्रातरुदङ्मुखः तत्सदित्युच्चार्य्य सूर्य्यः सोम इति पठित्वा जलादीन्यादाय सङ्कल्पयेत् "मन्त्रेणानेन

गृह्णीयान्नियमं भक्तिमान्नरः। शिवरात्रिव्रतं ह्येतत्करिष्येऽहं महाफलम्। निर्विघ्नमस्तु मे चात्र त्वत्प्रसादाज्जगत्पते!" ॥इति शिवरहस्यात् शिवरात्रि इत्यादिना नियम्य "चतुर्दश्यां निराहारो भूत्वा शम्भो! ऽपरेऽहनि। भोक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्त्यर्थं शरणं मे भवेश्वर" ॥ इति गरुडपुराणीयं पठेत्। रात्रौ प्रथमप्रहरे प्रतिष्ठिते लिङ्गेऽप्रतिष्ठिते वा प्रतिष्ठां विधाय पूजां कुर्य्यात्। ह्रौं अस्त्राय फडिति पादघातत्रयेण विघ्नान्निःसार्य्य तेनैव तालत्रयेण करच्छोटिकया च दशदिग्बन्धनं कृत्वा भूतशुद्धिं विधाय ह्रां हृदयाय नम इत्यादिना षड़ङ्गानि न्यस्य ह्रौमिति मन्त्रेण प्राणायामं विधाय पूजयेत्। पार्थिवलिङ्गे चेत्तदा वक्ष्यमाण पूजाविधिना पूजयेत्। तत्रायं विशेषः। ह्रौं ईशानाय नम इति प्रथमप्रहरे दुग्धेन स्नापयित्वा पुनर्जलेन स्नापयित्वा। "शिवरात्रिव्रतं देव पूजाजपपरायणः। करोमि विधिवद्दत्तं गृहाणार्घ्यं महेश्वर!"॥ इत्यनेनार्घ्यं दत्त्वा गन्धादिभिः संपूज्य मूलमन्त्रं जपित्वा प्रणम्य गीतनृत्यादिभिस्तं प्रहरं नयेत्। "तद्ध्यानं तज्जपः स्नानं तत्कथाश्रवणादिकम्। उपवासकृतो ह्येते गुणाः प्रोक्ता मनीषिभिः" ॥ इति देवीपुराणे सामान्यतः श्रवणात् अत्रापि तथा। द्वितीयप्रहरे तु विशेषः। ह्रौं अघोराय नम इति दध्ना स्नानम्। अर्घ्यमन्त्रस्तु "नमः शिवाय शान्ताय सर्वपापहराय च। शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यं प्रसीद उमया सह" ॥ तृतीयप्रहरे तु ह्रौं वामदेवाय नम इति घृतेन स्नानम्। अर्घ्यमन्त्रस्तु "दुःखदारिद्रशोकेन दग्धोऽहं पार्वतीश्वर!। शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यमुमाकान्त! गृहाण मे"॥ चतुर्थ प्रहरे तु ह्रौं सद्योजाताय नम इति मधुना स्नानम्। अर्घ्यमन्त्रस्तु "मया कृतान्यनेकानि पापानि हर शङ्कर!। शिवरात्रौ ददाम्यर्घ्यं उमाकान्त! गृहाण मे"॥ ततो नमः शिवाय इति मूलमन्त्रं जपित्वा प्रभातेऽविघ्नेन इत्यादि वक्ष्यमाणमन्त्रान् पठेत्। तथाच गरुड़पुराणं "मूलमन्त्रं ततो जप्त्वा प्रभाते तत्समापयेत्। अविघ्नेन व्रतं देव! त्वत्प्रसादात् समर्पितम्॥ क्षमस्व जगतां नाथ! त्रैलोक्याधिपते! हर!। यन्मयाद्य कृतं पुण्यं तद्रुद्रस्य निवेदितम्॥ त्वत्प्रसादान्मया

देव ! व्रतमद्य समर्पितम्। प्रसन्नोभव मे श्रीमन् ! मद्भूतिं प्रतिपद्यताम् ॥ तदालोकनमात्रेण पवित्रोऽस्मि न संशयः”। परदिने ब्राह्मणान् भोजयित्वा चतुर्द्दशीलाभे तत्र तदलाभे त्वमावास्यायां पारणं कुर्य्यात्। तत्र मन्त्रः “संसारक्लेशदग्धस्य व्रतेनानेन शङ्कर !। प्रसीद सुमुखो नाथ ! ज्ञानदृष्टिप्रदो भव”॥

अत्र पार्थिवशिवलिङ्गपूजाविधिः। तत्र शिववाक्यं स्कान्दे “विप्रस्य तु सदैवाहं शुचे रप्य शुचे रपि। गृह्णन् बलिं प्रहृष्यामि प्रियाणामिव दर्शनात्” ॥ बलिं पूजाम्। तथा “शूद्रः कर्माणि यो नित्यं स्त्रीयानि कुरुते प्रिये !। तस्याहमर्च्चां गृह्णामि चन्द्रखण्डविभूषिते !” ।तथा “नमोन्तेन शिवे नैव स्त्रीणां पूजा विधीयते” ॥ एवकारेण प्रणवनिवृत्तिः। एवं शूद्रस्यापि तथा नृसिंहतापनीये। “सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्रयोर्नेच्छन्ति। सावित्रीं प्रणवं यजुर्लक्ष्मीं स्त्रीशूद्रो यदि जानीयात् स मृतोऽधो गच्छति” ॥ इति नेच्छन्ति पर्य्यन्तं पराशरभाष्येऽपि लिखितम्। गोविन्दभट्टधृतम्। “स्वाहा प्रणवसंयुक्तं शूद्रे मन्त्रं ददद्द्विजः। शूद्रो निरयमाप्नोति ब्राह्मणः शूद्रतामियात्” ॥ गौतमः। “रात्रावुदङ्मुखः कुर्य्याद्दैवकार्य्यं सदैव हि। शिवार्च्चनं सदाप्येवं शुचिः कुर्य्यादुदङ्मुखः”। सदा दिवारात्रौ। अत्र हेतुमाह रुद्रजामले। “न प्राचीमग्रतः शम्भोर्नोदीचीं शक्तिसंस्थिताम्। न प्रतीचीं यतः पृष्ठमतोदक्षं समाश्रयेत्” ॥ यजमानः शम्भोः प्राचीमवस्थितये न समाश्रयेत्। शम्भोर्जगत् संहारकस्याग्रतः सांमुख्यात् पञ्चवक्त्रपक्षे प्रधानं वक्त्रं प्राच्यवस्थितं एकवक्त्रपक्षे सुतरां तथा। तद्रूपमाह आदित्यपुराणं “सौम्यं मौलीन्दुभृत्त्र्यक्षं एकवक्त्रं चतुर्भुजं शूलपङ्कजहस्तञ्च वरदाभयपाणिकम्। आयताक्षं सुराराध्यं सर्वाभरणभूषितम् ॥ शिवरूपं गृहे कुर्य्यात् प्रासादे वाप्यनिन्दितम्”। अत्राग्रे पूजानिषेधात् “देवाग्रे स्वस्य चाप्यग्रे प्राची प्रोक्ता गुरुक्रमैः” इत्यस्य न विषयः। किन्त्वभिधानादिप्रसिद्धा प्राची ग्राह्या एतदनुसाराद्वक्ष्यमाण पूर्वाद्याग्नेय्यान्ता पूजा। अतएव तन्त्रान्तरम्। “यत्रैव भानुस्तु वियत्युदेति प्राचीति तां वेदविदो वदन्ति। तथा पुरः पूजकपूज्ययोश्च

सदागमज्ञाः प्रवदन्ति तान्तु"। एवञ्च देवतान्तरपूजा पूर्वाह्ने प्राङ्मुखेन सायं पश्चिमाभिमुखेन रात्रावुदङ्मुखेन कार्य्या। "प्राक्पश्चिमोदङ्मुखस्य प्रातःसायं निशासु च" इति वचनात् इति वाचस्पतिमिश्राः। मैवं पूजारत्नाकरोक्त भविष्यपुराणीयसमाचारसूर्य्यमन्त्र प्रस्ताव एव प्रागादिदिङ्नियमाभिधानात्। व्यवहारोऽपि अत्र न तथेति लिङ्गपुराणे। "विना भस्मत्रिपुण्ड्रेण विना रुद्राक्षमालया। पूजितोऽपि महादेवो न स्यात्तस्य फलप्रदः॥ तस्मान्मृदापि कर्त्तव्यं ललाटेऽपि त्रिपुण्ड्रकः। संवत्सरप्रदीपे "त्रिपुरस्य बधे काले रुद्रस्याक्ष्णोऽपतं स्तु ये। अश्रुणोविन्दवस्ते तु रुद्राक्षाऽभवन् भुवि"॥ यद्यप्येकादिचतुर्दशमुखरुद्राक्षेषु मन्त्रफलविशेषाः सन्ति तथापि सुलभत्वात् पञ्चवक्त्रस्य फलमन्त्रावभिधीयते। यथा स्कान्दे "पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नामनामतः। अगम्यागमनाच्चैव अभक्ष्यस्य च भक्षणात्। मुच्यते सर्वपापेभ्यः पञ्चवक्त्रस्य धारणात्"॥ ह्रूं नम इति प्रत्येकमष्टोत्तरशतं जप्त्वा शिवाम्भसा प्रक्षाल्य धारणीयं "विनामन्त्रेण यो धत्ते रुद्राक्षं भुवि मानवः। स याति नरकं घोरं यावदिन्द्राश्चतुर्दशः"॥ नन्दिपुराणे। "आयुष्मान् बलवान् श्रीमान् पुत्रवान् धनवान् सुखी। बरमिष्टं लभेल्लिङ्गं पार्थिवं यः समर्च्चयेत्। तस्मात्तु पार्थिवं लिङ्गं ज्ञेयं सर्वार्थसाधकम्॥" भविष्ये। "शृङ्गस्रगो शकृत्पिण्डं ताम्रकांस्यमयं तथा। कृत्वा लिङ्गं सकृत् पूज्य वसेत् कल्पायुतं दिवि। वार्क्षं वित्तप्रदं लिङ्गं स्फाटिकं सर्वकामदम्। नर्मदागिरिजं श्रेष्ठमन्यदपि हि लिङ्गवत्। कृत्वा पूजय राजेन्द्र! लप्स्यते चेप्सितं फलम्"॥ लिङ्गवत् लिङ्गाकारम्। कालकौमुद्याम्। "अक्षादल्पपरीमाणं न लिङ्गं कुत्रचिन्नरः। कुर्वीताङ्गुष्ठतो ह्रस्वं न कदाचित् समाचरेत्"॥ अक्षोऽशीतिरक्तिका तथाचामरः। "गुञ्जाः पञ्चाद्यमाषकः तेषोड़शाक्षः कर्षोस्त्री" इति। अङ्गुष्ठतः तद्वृहत्पर्वग्रन्थितः। "अङ्गुष्ठाङ्गुलिमानन्तु यत्र यत्रोपदिश्यते। तत्र तत्र बृहत् पर्वग्रन्थिभिर्मिनुयात् सदा"॥ इति छन्दोगपरिशिष्टात्। शिवधर्मे। "सहस्रमर्चयेल्लिङ्गं निरयं स न गच्छति। रुद्रलोकमवाप्नोति भुक्त्वा

भोगाननुत्तमान्" ॥ तथा "वालुकानि च लिङ्गानि पार्थिवानि च कारयेत्। सहस्रपूजनात् सोऽपि लभते वाञ्छितं फलम्" ॥ ततश्चामुकतिथावारभ्यामुकलाभकामः सहस्रमितपार्थिवशिवलिङ्ग पूजनमिति च यथास्थाने वाक्यं देयमिति। ब्रह्मपुराणे। "यावन्न दीयते चार्घ्यं भास्कराय निवेदितम्। तावन्न पूजयेद्विष्णुं शङ्करं वा महेश्वरीम्" ॥ राघवभट्टधृतम्। "सर्वत्रैव प्रशस्तोऽब्जः शिवसूर्य्यार्च्चनं विना" ॥ अब्जः शङ्खः। अग्निपुराणे" तल्लिङ्गैः पूजयेन्मन्त्रैः सर्वदेवान् पृथक् पृथक्। ध्यात्वा प्रणवपूर्वन्तु तन्नाम्ना सुसमाहितः। नमस्कारेण मन्त्रेण पुष्पाणि विन्यसेत् पृथक्" ॥ देवीपुराणे। "मृदाहरणसंघट्ट प्रतिष्ठाह्वानमेव च। स्नपनं पूजनञ्चैव विसर्जनमतः परम् ॥ हरो महेश्वरश्चैव शूलपाणिः पिनाकधृक्। पशुपतिः शिवश्चैव महादेव इति क्रमात्" ॥ अत्र पूर्वोक्त सप्तकर्माणि परवचनोक्त सप्तनामभिः क्रियानुरूपविभक्तिमद्भिर्यथायथं कार्य्याणि। अदृष्टार्थयोरर्थक्रमासम्भवेन पाठक्रमादेवावाहनात् प्राक् प्रतिष्ठा श्राद्धे कुशासनदानवत्। तत्रानुष्ठानं हराय नम इति मृदाहरणं महेश्वराय नम इति संघट्टनं शूलपाणे इह सुप्रतिष्ठितो भवेति प्रतिष्ठा। ध्यायेन्नित्यं महेशमित्यादिना ध्यात्वा पिनाकधृक् इहा गच्छेत्यावाहनं पशुपतये नम इति स्नपनम् एतत्पाद्यं नमः शिवाय नमः एवमर्घ्यादिना पूजयेत्। विसर्जनात् पूर्वं भविष्यपुराणोक्तं स्वभावसिद्ध प्राच्यैशान्यादिदिक्षु वामावर्त्तेन पूजनम्। यथा सर्वायक्षितिमूर्त्तये नमः भवाय जलमूर्त्तये नमः रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः। उग्राय वायु मूर्त्तये नमः भीमाय आकाशमूर्त्तये नमः पशुपतये यजमान मूर्त्तये नमः महादेवाय सोममूर्त्तये नमः ईशानाय सूर्य्यमूर्त्तये नमः। "मूर्त्तयोऽष्टौ शिवस्यैताः पूर्वादिक्रमयोगतः। आग्नेय्यन्ताः प्रपूज्यास्ता वेद्यां लिङ्गे शिवं यजेत्" ॥ ततो महादेव क्षमस्व इति संहारमुद्रया विसर्जयेत्। नन्दिपुराणे। "गोभूहिरण्यवस्त्रादिबलि पुष्पनिवेदने। श्रेयो नमः शिवायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः। सर्वमन्त्राधिकश्चायमोङ्काराद्यः षडक्षरः। तन्मन्त्रजापी तत्कर्म-

ग्रतस्तद्गतमानसः। निष्कामः पुरुषो राजन्! स रुद्रपदमश्नुते"॥ भविष्ये पञ्चाक्षरमुपक्रम्य। "अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। महापातकयुक्तो वा मन्त्रस्यास्य जपे यथा। अधिकारी भवेत् सर्वं इति देवोऽब्रवीच्छिवः"॥ इति तथेत्यर्थः। पूर्वोक्त यथा पदानुरोधात् तेन यथाधिकारी भवेत् तथा अब्रवीदित्यर्थः। तथा "सर्वेषामेव पात्राणां परं पात्रं महेश्वरः। पतन्तं त्रायते यस्मादतीव नरकार्णवात्। शिवमुद्दिश्य यद्दत्तं सर्वकारणकारणम्। तदनन्त फलं दातुर्भवतीह किमद्भुतम्। दत्त्वा नैवेद्य वस्त्रादि नाददीत कदाचन। त्यक्तव्यं शिव मुद्दिश्य तदा दानेन तत्फलम्"॥ आदाने ग्रहणे। शिवधर्मे। "तस्मात् पुष्पैः फलैः पत्रैस्तोयैरपि च यत् फलम्। तदनन्तफलं ज्ञेयं भक्तिरेवात्र कारणम्"॥ भविष्ये "लिङ्गानुलेपनं कार्य्यं दिव्यगन्धैः सुगन्धिभिः। वर्षकोटिशतं दिव्यं शिवलोके महीयते’’॥ शिवधर्मे। "तस्मात् पुष्प प्रदानेन लिङ्गेषु प्रतिमासु च। अशीतिवर्षकोटीनां दुर्गतिं न नरो व्रजेत्"॥ स्कान्दे। "शुष्काण्यपि च पत्राणि श्रीवृक्षस्य सदैव हि"। दातव्यानीति शेषः। भविष्ये। "धुस्तूरकैश्च यो लिङ्गं सकृत् पूजयते नरः। स गोलक्षफलं प्राप्य शिवलोके महीयते। विल्वपत्रैरखण्डैश्च योलिङ्गं पूजयेत् सकृत्। सर्वपापैर्विनिर्मुक्तः शिवलोके महीयते"॥ तथा "सर्वकाम प्रदं विल्वं दारिद्रस्य प्रणाशनम्। विल्वपत्रात् परं नास्ति येन तुष्यति शङ्करः’’। तथा "केशकीटापविद्धानि निशिपर्य्युषितानि च। स्वयं पतित पुष्पाणि त्यजेदुपहतान्यपि"॥ तथा। "देवदारुसमेतञ्च सर्जश्रीवासकुन्दुरुम्। श्रीफलं चाज्यमिश्रन्तु दत्त्वाप्नोति परां गतिम्"। सर्जः शालरसः श्रीवासः सरलद्रवः। कुन्दुरुः शैलेयम्। "एभ्यः सौगन्धिकं धूपं षट् सहस्रगुणोत्तरम्। अगुरुं शतसाहस्रं द्विगुणञ्चासितागुरुम्। गुग्गुलं घृतसंयुक्तं साक्षात् गृह्णाति शङ्करः"॥ तथा "तैलेनापि हि योदद्याद्घृताभावेन मानवः। तेन दीपप्रदानेन शिववद्राजते भुवि"॥ नन्दिकेश्वरे। "अथ भक्त्या शिवं पूज्य नैवेद्यमुपकल्पयेत्। यद्-

यदेवात्मन: श्रेयस्तत्तदीशाय कल्पयेत्। शालितण्डुल प्रस्थञ्च कुर्य्यादन्नं सुसंस्कृतम्। शिवाय तं चरुं दद्याच्चतुर्दश्यां विशेषत:"। प्रस्थमानं प्रागुक्तम्। शिवसर्व्वस्वे स्कान्दम्। "एकमाम्रफलं पक्वं य: शम्भोर्विनिवेदयेत्। वर्षाणामयुतं भोगै: क्रीड़ते स शिवेपुरे। एकं मोचाफलं पक्वं य: शिवाय निवेदयेत्। वर्षलक्षं तथा भोगै: शिवलोके महीयते"॥ शिवपुराणे। "नैवेद्यं घृतसंयुक्तं मधुपर्कं निवेदयेत्। अग्निष्टोमस्य यज्ञस्य फलमाप्नोति मानव:"॥ मोचाफल कदलीफलम्। शिवसर्व्वस्वे स्कान्दम् "परिपक्वं सुसंमृष्टाज्यसिक्तं सुसंस्कृतम्। शिवाय मांसं दत्त्वातु शृणु यत् फलमाप्नुयात्। अशेषफलदानेन यत्फलं परिकीर्त्तितम्। तत्फलं प्राप्नुयान्नित्यं सर्वं मांसनिवेदनात्"॥ शिवधर्मे। "लिङ्गवेदी भवेद्देवी लिङ्गं साक्षात् महेश्वर:। तयो: संपूजनात् स्यातां देवीदेवश्च पूजितौ"॥ देवीपुराणे। "सव्यं व्रजेत्ततोऽसव्यं प्रणालं नैव लङ्घयेत्। एकीभूतमना रुद्रे य: कुर्य्यात् त्रि: प्रदक्षिणम्॥ छिन्नस्तेन भवग्रन्थिर्न तस्य पुनरुद्भव:"। भविष्ये। "जानुभ्यां चैव पाणिभ्यां शिरसा च विचक्षण:। कृत्वा प्रणामं देवेशे सर्वान् कामानवाप्नुयात्"॥ लिङ्गपुराणे। "गन्धपुष्प नमस्कारै: सुखवाद्यैश्च सर्वश:। यो मामर्च्चयते तत्र तदा तुष्याम्यहं सदा"॥ महाभारते। "सर्वलक्षणहीनोऽपि युक्तो वा सर्वपातकै:। सर्वं तरति तत् पापं भावयन् शिवमात्मना"॥ राघवभट्टधृतम्। "अधोमुखे वामहस्ते ऊर्द्धास्यं दक्षहस्तकम्। क्षिप्ताङ्गुलीरङ्गुलीभि: संगृह्य परिवर्त्तयेत्। प्रोक्ता संहार मुद्रेय मर्पणे तु प्रशस्यते"॥ अर्पणे आत्मनीति शेष:। स्कान्दे "निर्माल्यं यो हि मद्भक्त्या शिरसा धारयिष्यति। अशुचिर्भिन्नमर्य्यादो नर: पापसमन्वित:॥ नरके पच्यते घोरे तिर्य्यग्योनौ च जायते। ब्रह्महापि शुचिर्भूत्वा निर्माल्यं यस्तु धारयेत्॥ तस्य पापं महच्छीघ्रं नाशयिष्ये महाव्रते"। शुचि: स्नानादिनेति शेष:। एवञ्च "स्पृष्ट्वा रुद्रस्य निर्माल्यं सवासा आप्लुत: शुचि:"। इति कालिकापुराणीयमशुचिविषयम्। अनुपनीतविषय इति श्रीदत्त:। बह्वृच गृह्यपरिशिष्टम्। "अग्राह्यं शिवनैवेद्यं

पत्रं पुष्पं फलं जलम् ॥ शालग्राम शिलास्पर्शात् सर्वं याति पवित्रताम्। भोजदेवधृतम्। "चैत्रे कृष्णचतुर्दश्यामङ्गारकदिनं भवेत्। पिशाचत्वं पुनर्न स्याद्गङ्गायां स्नानभोजनात्" ॥ कालिकापुराणम्। "यो यद्देवार्च्चनरतः स तन्नैवेद्यभक्षकः। समानं त्वन्यनैवेद्यं भक्षयेदन्यदैवतः। केवलं सौरशैवे तु वैष्णवो नैव भक्षयेत्" ॥ राजमार्त्तण्डे। "धवलितकलसे न्यस्तरक्तपताकास्नुहीभवने। चैत्रासितभूतदिने पापरुजं दूरतो धत्ते" ॥ चैत्रे कृष्णचतुर्दश्यां कठिन्यादिभिः शुक्लीकृते घटे रक्तपताकायुक्तां स्नुहीशाखां विधाय गृहोपरि स्थापयेत्।

अथ मदनचतुर्दशी। स्कन्दपुराणसौरागमयोः। "मधुमासे तु संप्राप्ते शुक्लपक्षे चतुर्दशी। प्रोक्ता मदनभञ्जीति सिद्धिदा तु महोत्सवे॥ पूजयिष्यन्ति ये मर्त्त्यास्तदङ्गभवपल्लवैः। ते यान्ति परमं स्थानं मदनस्य प्रभावतः॥ चैत्रे मासि चतुर्दश्यां मदनस्य महोत्सवः। जुगुप्सितोक्तिभिस्तत्र गीतवाद्यादिभिर्नृणाम्॥ भगवांस्तुष्यते कामः पुत्रपौत्रविवर्द्धनः। न मानयन्ति ये पर्वमादनं मानवाधमाः तेषां पुण्यफलं दत्तं मया ते चैत्रमासिकम्" ॥ देवलः "चैत्रशुक्लचतुर्दश्यां यः स्नायात् शिवसन्निधौ। पिशाचत्वं न तस्य स्याद्गङ्गायान्तु विशेषतः॥"

अथ पौर्णमासी। सा चतुर्दशीयुता ग्राह्या युग्मात्। यमः। "पक्षान्ते स्रोतसि स्नायात् तेन नायाति मत्पुरम्" ॥ विष्णुः। "दृश्यते सहितौ यस्यां दिवि चन्द्रबृहस्पती। पौर्णमासीतु महती ज्ञेया संवत्सरे तु सा। तस्यां स्नानोपवासाभ्यामक्षयं परिकीर्त्तितम्" ॥ सहितौ माससंज्ञानिमित्तकृत्तिकादिनक्षत्रगतौ महाकार्त्तिक्यादिदर्शनात्। तथा च राजमार्त्तण्डः। "माससंज्ञे यदा ऋक्षे चन्द्रः संपूर्णमण्डलः। गुरुणा याति संयोगं सा तिथिर्महती स्मृता" ॥ स्कान्दमात्स्ययोः। "पौर्णमासीषु चैतासु मासर्क्षसहितासु च। एतासु स्नानदानाभ्यां फलं दशगुणं स्मृतम्" ॥ वैशाखीमुपक्रम्य यमः। "गौरान् वा यदि वा कृष्णान् तिलान् क्षौद्रेण संयुतान्। प्रीयतां धर्मराजेति पितॄन् देवांश्च तर्पयेत् ॥ यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणा-

देव नश्यति। अब्दायुतञ्च तिष्ठेत्तु स्वर्गलोके न संशयः"॥ ब्रह्मपुराणे। "महाज्यैष्ठ्यान्तु यः पश्येत् पुरुषः पुरुषोत्तमम्। विष्णुलोकमवाप्नोति मोक्ष गङ्गाम्बुमज्जनात्॥ ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा। पूर्णिमा गुरुवारेण महाज्यैष्ठी प्रकीर्त्तिता"॥ ऐन्द्रे ज्येष्ठायाम्। प्राजापत्ये रोहिण्याम्। विना गुरुवारेणापि। "ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्रजापत्ये रविस्तथा। पूर्णिमाज्यैष्ठमासस्य महाज्यैष्ठी प्रकीर्त्तिता"॥ अनुराधास्थगुरावपि। "ऐन्द्रे मैत्रे यदा जीवस्तत्पञ्च दशके रविः। पूर्णिमा शक्रचन्द्रेण महाज्यैष्ठी प्रकीर्त्तिता"॥ अनुराधास्थचन्द्रेऽपि व्याघ्रभूतिः। "ऐन्द्रर्क्षे त्वथवा मैत्रे गुरुचन्द्रौ यदास्थितौ। पूर्णिमा ज्यैष्ठमासस्य महाज्यैष्ठी प्रकीर्त्तिता"॥ राजमार्त्तण्डः। "ज्यैष्ठे संवत्सरे चैव ज्यैष्ठमासस्य पूर्णिमा। ज्येष्ठाभेन समायुक्ता महाज्यैष्ठी प्रकीर्त्तिता"॥ ज्यैष्ठसंवत्सरश्च "ज्येष्ठामूलोपगे जीवे वर्षं स्याच्छक्रदैवतम्"॥ इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तो ग्राह्यः। न तु संवत्सरादि पञ्चकान्तर्गत वर्षविशेषः ज्यैष्ठ इति वर्षविशेषणस्य वैयर्थ्यापत्तेः। संवत्सरे यदि स्यादितिपाठः काल्पनिकः प्रपञ्चस्तु मलमासतत्त्वेऽनुसन्धेयः। विष्णुधर्मोत्तरे ब्रह्मपुराणम्। "मासि ज्यैष्ठे तु संप्राप्ते नक्षत्रे शक्रदैवते। पौर्णमास्यां तदा स्नानं सर्वकामं हरेर्द्विजाः॥ तस्मिन् काले तु ये मर्त्याः पश्यन्ति पुरुषोत्तमम्। वलभद्रं सुभद्राञ्च ते यान्ति पदमव्ययम्"॥ स्कन्दपुराणम्। "ज्यैष्ठ्यामहञ्चावतीर्णस्तत् पुण्यं जन्मवासरम्। तस्यां मे स्नपनं कुर्य्यात् महास्नानविधानतः। ज्यैष्ठ्यां प्रातस्तने काले ब्रह्मणा सहितञ्च माम्। रामं सुभद्रां संस्नाप्य मम लोकमवाप्नुयात्"॥ विष्णुधर्मोत्तरे। "पौर्णमासी तथा माघी श्रावणी च नरोत्तम। प्रोष्ठपद्यामतीयायां तथा कृष्णत्रयोदशी। एतांस्तु श्राद्धकालान् वै नित्यानाह प्रजापतिः"॥ अत्र पूर्वदिने सङ्गवलाभे रौहिणलाभे वा परदिने सङ्गवालाभे पूर्वदिने श्राद्धम्। "शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे श्राद्धं कुर्य्यात् विचक्षणः। कृष्णपक्षापराह्णे तु रौहिणन्तु न लङ्घयेत्" इति। वायुपुराणात उभयदिने तु तल्लाभे तु परदिने।

शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्येति वचनात् एवमक्षय तृतीयादावपि। आषाढ़कार्त्तिकमाघपौर्णमासीषु दानमावश्यकम्। तथाचायोध्याकाण्डे भरतशपथे। "आषाढ़ी कार्त्तिकी माघी तिथयः पुण्यसम्भवाः। अप्रदानवतीयान्तु यस्यार्य्योनुमतो गतः" ॥ अप्रदानवती दानरहितस्य एतास्तिथयोयान्तु आर्य्यः। श्रीरामचन्द्रोगतोयस्यानुगत इत्यर्थः। उत्तरवाक्ये यच्छब्दात् न तच्छब्दापेक्षा।

अथ कोजागरकृत्यम्। कल्पतरौ ब्रह्मपुराणम् "आश्वयुज्यां पौर्णमास्यां निकुम्भो बालुकार्णवात्। आयाति सेनया सार्द्धं कृत्वा युद्धं सुदारुणम्॥ तस्मात्तत्र नरैर्मार्गाः स्वगेहस्य समीपतः। शोधितव्याः प्रयत्नेन भूषितव्याश्च मण्डनैः॥ पुष्पार्घ्यफलमूलान्नसर्षपप्रकरैस्तथा। वेश्मानि भूषितव्यानि नानावर्णैर्विशेषतः॥ सुस्नातैरनुलिप्तैश्च नरैर्भाव्यं सबान्धवैः। दिवा तत्र न भोक्तव्यं मनुष्यैश्च विवेकिभिः॥ स्त्रीबालमुर्खवृद्धैश्च भोक्तव्यं पूजितैः सुरैः" ॥ पूजितैः सुरैरिति विशेषणे तृतीया तेन पूजितसुरैरित्यर्थः "पूज्याश्च सफलैः पुष्पैस्तथा द्वारोर्द्धभित्तयः। द्वारोपान्ते सुदीप्तस्तु संपूज्यो हव्यवाहनः॥ यवाक्षतघृतोपेतैस्तण्डुलैश्च सुतर्पितः। संपूजितव्यः पूर्णेन्दुः पयसा पायसेन च॥ स्कन्दः सभार्य्यस्कन्दश्च तथा नन्दीश्वरो मुनिः। गोमद्भिः सुरभिः पूज्या छागवद्भिर्हुताशनः॥ उरभ्रवद्भिर्वरुणो गजवद्भिर्विनायकः। पूज्यः साश्वैश्च रेवन्तो यथा विभवविस्तरैः॥ ततः पूज्योनिकुम्भोऽपि समांसैस्तिलतण्डुलैः। सुगन्धिभिर्घृतोपेतैः कृषराद्यैश्च भूरिभिः॥ ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु भोक्तव्यं मांसवर्जितम्। वह्निपार्श्वगतैर्नैया दृष्ट्वा क्रीड़ाः पृथग्विधाः" ॥ ततश्च द्वारोर्द्धभित्ति हव्यवाहन पूर्णेन्दु सभार्य्यरुद्र स्कन्द नन्दीश्वरमुनयः सर्वैः पूज्याः। द्वारोर्द्धभित्ति शब्दोऽत्र बहुवचनान्तः नन्दीश्वरो मुनिरेकः। गोमता सुरभिः छागवता हुताशनः मेषवता वरुणः हस्तिमता विनायकः। अश्ववता रेवन्तः सर्वैरेव निकुम्भः पूज्यः महार्णवे लिङ्गपुराणम्। "आश्विने पौर्णमास्यान्तु चरेज्जागरणं निशि। कौमुदी सा समाख्याता कार्य्या लोक विभूतये॥ कौमुद्यां पूजयेल्ल-

क्ष्मीमिन्द्रमैरावते स्थितम्। सुगन्धिर्निशिसद्वेशोऽक्षैर्जागरणं चरेत्"॥ तथा "निशीथे वरदा लक्ष्मीः कोजागर्त्तीति भाषिणी। तस्मै वित्तं प्रयच्छामि अक्षैः क्रीडां करोति यः। नारिकेलैश्चिपिटकैः पितॄन् देवान् समर्चयेत्। बन्धूंश्च प्रीणयेत्तेन स्वयं तदशनो भवेत्"॥ अत्र निशीति निशीथ इति चाभिधानात् रात्रिकृत्यमिदम्।

ततश्च "प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा। प्रदोषोऽस्तमयादूर्द्ध्वं घटिकाद्वयमिष्यते"। इति वत्सवचनात्। यद्दिने प्रदोषनिशीथोभयव्यापिनी पौर्णमासी तद्दिने कोजागरकृत्यम्। उभयव्याप्त्यनुरोधात्। यदा तु पूर्वदिने निशीथव्याप्तिः परदिने प्रदोषव्याप्तिस्तदा परेद्युस्तत्कृत्यम्। प्रधान पूजाकालव्याप्त्यनुरोधात्। यदा तु पूर्वदिने निशीथव्याप्तिः परदिने न प्रदोषव्याप्तिस्तदा सुतरां पूर्वेद्युस्तत्कृत्यम्। "अहःसु तिथयः पुण्याः कर्मानुष्ठानतो दिवा। नक्तादिव्रतयोगे तु रात्रियोगो विशिष्यते"॥ इति वचनात्। विवर्जयेदित्यनुवृत्तौ मत्स्यसूक्ते। "महालक्ष्म्यास्तु तुलसीं झिण्टिकां काञ्चनन्तथा" लक्ष्मीध्यानमादित्यपुराणे। "पाशाक्षमालिकाम्भोजसृणिभिर्याम्यसौम्ययोः। पद्मासनस्थां ध्यायेच्च श्रियं त्रैलोक्यमातरम्॥ गौरवर्णां सुरूपाञ्च सर्वालङ्कारभूषिताम्। रौक्मपद्मव्यग्रकरां वरदां दक्षिणेन तु"॥ पाशेति दक्षिणे पाशाक्षमालाभ्यां वामे पद्माङ्कुशाभ्यां भूषितां वामकरे हेमपद्मं दक्षिणकरे वरं दधतीमित्यर्थः। ततः पाद्याभिः संपूज्य "नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरिप्रिये। या गतिस्त्वत् प्रपन्नानां सा मे भूयात्त्वदर्च्चनात्॥ विश्वरूपस्य भार्य्यासि पद्मे पद्मालये शुभे। सर्वतः पाहि मां देवि! महालक्ष्मि नमोऽस्तु ते"॥ इत्यनेन नत्वा पूजयेत्। इन्द्रध्यानमादित्यपुराणे। "चतुर्दन्त गजारूढो वज्रपाणिः पुरन्दरः। शचीपतिश्च ध्यातव्यो नानाभरणभूषितः"॥ पाद्यादिभिः संपूज्य। "विचित्रैरावतस्थाय भास्वत् कुलिश पाणये। पौलोम्यालिङ्गिताङ्गाय सहस्राक्षाय ते नमः"। इत्यनेन पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा प्रणमेत्। ततः कुबेरः पूज्य इति रुद्रधरः। तं पाद्यादिभिः संपूज्य "धन-

दाय नमस्तुभ्यं निधिपद्माधिपाय च। भवन्तु त्वत् प्रसादान्मे धनधान्यादिसम्पदः” ॥ इति पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा प्रणमेत्। अत्र सर्वेषां प्रदोषे पूजेति रुद्रधरः। न च निकुम्भपर्य्यन्तानां पूर्वाह्ण एव पूजनं निरपवादमिति वाच्यं दिवा तत्र न भोक्तव्यम् इत्युपक्रम्य पूज्याश्च सफलैः पत्रैरित्यादिना विशिष्य पूजामभिधाय भोक्तव्यमित्यभिधानाद्रात्रावेव पूजाभोजनेऽवगम्येते। अतएवाशक्तानामेव भोक्तव्यं पूजितैः सुरैः इत्यभिधानेन विशिष्य दिवापूजनभोजने विहिते। योगिनीतन्त्रे। “विरिञ्चेस्तु गृहे ढक्कां घण्टां लक्ष्मीगृहे त्यजेत्। सर्ववाद्यमयीं घण्टां वाद्याभावे प्रवादयेत्” ॥ लक्ष्मीवाक्यं “प्रकीर्णभाण्डामनवेक्ष्यकारिणीं सदा च भर्त्तुः प्रतिकूलवादिनीम्। परस्य वेश्माभिरतामलज्जामेवं विधां स्त्रीं परिवर्ज्जयामि” ॥ मार्कण्डेयः। “शिरः सपुष्पं चरणौ सुपूजितौ वराङ्गनासेवनमल्पभोजनम्। अनग्नशायित्वमपर्वमैथुनं चिरप्रनष्टां श्रियमानयन्ति षट् ॥ मानुषास्थि गृहे यत्र अहोरात्रन्तु तिष्ठति। तत्रालक्ष्मि तवावासस्तथान्येषान्तु रक्षसाम्। सूर्पदात्रादिकं यत्र पदाकर्षं तथासनम्” ॥ हरिवंशे। “यत्र ह्रीः श्रीः स्थिता तत्र यत्र श्रीस्तत्र सन्नतिः। सन्नतिर्ह्रीस्तथा श्रीश्च नित्यं कृष्णे महात्मनि” ॥ मत्स्यपुराणम्। “स्थिरोपायो हि पुरुषः स्थिरश्रीरेव जायते। रक्षितुं नैव शक्नोति चपलश्चपलां श्रियम् ॥ अवश्यमुद्योगवतां श्रीरपारा भवेत् सदा। ब्रह्मप्रोत्साहिता देवा ममन्थुः पुनरम्बुधिम्” ॥ कृत्यकौमुद्याम्। “नारिकेलोदकं पीत्वा अक्षैर्जागरणं निशि। तस्मै वित्तं प्रयच्छामि को जागर्त्ति महीतले” ॥

अथ चतुरङ्गम्। अक्षक्रीड़ायां व्यासयुधिष्ठिरसंवादः प्रचरति। युधिष्ठिर उवाच। “अष्टकोष्ठगाक्ष या क्रीड़ा तां मे ब्रूहि तपोधन। प्रकर्षेणैव मे नाथ चतूराजी यथा भवेत” ॥ व्यास उवाच। “अष्टौ कोष्ठान् समालिख्य प्रदक्षिण क्रमेण तु। अरुणं पूर्वतः कृत्वा दक्षिणे हरितं बलम् ॥ पार्थ! पश्चिमतः पीतमुत्तरे श्यामलं बलम्। राज्ञो वामे गजं कुर्य्यात् तस्मादश्वं ततस्तरिम् ॥ कुर्य्यात् कौन्तेय पुरतो युद्धे पत्तिचतु-

ष्टयम्। कोणे नौकाद्वितीयेऽश्व स्तृतीये च गजोवसेत्॥ तुरीये च वसेद्राजा वटिकाः पुरतः स्थिताः। पञ्चकेन वटीराजा चतुष्केणैव कुञ्जरः॥ त्रिकेणैव चलत्यश्वः पार्थं नौकाद्वयेन तु। कोष्ठमेकं विलङ्घ्याथ सर्व्वतो याति भूपतिः॥ अग्र एव वटीर्याति बलं हन्त्यग्रकोणगम्। यथेष्टं कुञ्जरो याति चतुर्दिक्षु महीपते। तिर्य्यक्तुरङ्गमो याति लङ्घयित्वा त्रिकोष्ठकम्॥ कोणकोष्ठद्वयं लङ्घ्य व्रजेन्नौका युधिष्ठिर। सिंहासनं चतूराजौ नृपाकृष्टञ्च षट्पदम्॥ काककाष्ठं वृहन्नौका नौकाकृष्टप्रकारकम्। घाताघाते वटीनौका बलं हन्ति युधिष्ठिर॥ राजा गजोहयश्चापि त्यक्ताघातं निहन्ति च। अत्यन्तं स्वबलं रक्षेत् स्वराज बलमुत्तमम्॥ अल्पस्य रक्षया पार्थं हन्तव्यं बलमुत्तमम्"॥ नौकायाश्चत्वारि पदानि अश्वस्याष्टौ पदानि इत्याधिक्यमश्वस्य। "मतङ्गजस्य गर्व्वेण राजा क्रीडति निर्भरम्। तस्मात् सर्व्वबलं दत्त्वा रक्ष कौन्तेय कुञ्जरम्॥ सिंहासनं चतूराजौ यदवस्थानतो भवेत्। सर्व्वसैन्यैर्गजैर्व्वापि रक्षितव्यो महीपतिः॥ अन्यद्राजपदं राजा यदा यातो युधिष्ठिर। तदा सिंहासनं तस्य भण्यते नृपसत्तम॥ राजा च नृपतिं हत्वा कुर्य्यात् सिंहासनं यदा। द्विगुणं वाहयेत् पण्यमन्यथैकगुणं भवेत्"॥ द्विगुणं पण्यं दातव्यत्वेन प्रापयेत्। "मित्रसिंहासनं पार्थं यदारोहति भूपतिः। तदा सिंहासनं नाम सर्व्वं नयति तद्बलम्॥ यदा सिंहासनं कर्त्तुं राजा षष्ठपदाश्रितः। तदाघातेऽपि हन्तव्यो बलेनापि सुरक्षितः॥ विद्यमाने नृपे यस्य स्वकीये च नृपत्रयम्। प्राप्नोति तु यदा तस्य चतूराजौ तदा भवेत्॥ नृपेणैव नृपं हत्वा चतूराजौ यदा भवेत्। द्विगुणं वाहयेत् पण्यमन्यथैकगुणं भवेत्॥ स्वपदस्थं यदा राजा राजानं हन्ति पार्थिव। चतुरङ्गे तदा भूप वाहयेच्च चतुर्गुणम्॥ यदा सिंहासने काले चतूराजौ समुत्थिता। चतूराजौ भवत्येव न तु सिंहासनं नृप"॥ अत्रेदं वीजं उभयथा जयेऽपि परसिंहासनाधिकारात् परराजवधे शौर्य्याधिक्यनिष्कण्टकत्वदर्शनात् क्रीडायामपि तथा कल्प्यते। "राजद्वयं यदा हस्ते आत्मनो राज्ञि संस्थिते। परेण संहृतश्चैको बलेनाप्य-

पश्चार्य्यते ॥ राजद्वयं यदा हस्ते न स्यादन्यकरे परः । तदा राजा हि राजानं घातेऽपि तं हनिष्यति ॥ नृपाकृष्टो यदा राजा गमिष्यति युधिष्ठिर । घाताघातेऽपि हन्तव्यो राजा तव न रक्षकः ॥ कोणं राजपदं त्यक्त्वा वटिकान्तं यदा व्रजेत् । वटौ च षट्पदं नाम तदा कोष्ठबलं नयेत् ॥ यदा तस्य भवेत् पार्थ चतूराजौ च षट्पदम् । तदापि च चतूराजौ भवत्येव न संशयः ॥ पदातेः षट्पदे विद्धे राज्ञा वा हस्तिना तथा । षट्पदं न भवेत्तस्य अवश्यं शृणु पार्थिव ॥ सप्तमे कोष्ठके यत् स्याद्वटिका दशमेन वै । तदान्योन्यञ्च हन्तव्यं सुखाय दुर्वलं वलम् ॥ त्रिवटौकस्य कौन्तेय पुरुषस्य कदाचन । षट्पदं न भवत्येव इति गोतमभाषितम् । नौकैका वटिका यस्य विद्यते खेलने यदि । गाढ़ावटौति विख्याता पदं तस्य न दुष्यति" ॥ पदं राजपदं कोणपदञ्च । "हस्ते रङ्गे वलं नास्ति काककाष्ठं तदा भवेत् । वदन्ति राक्षसाः सर्वे तस्य नष्टौ जयाजयौ ॥ प्रोत्थिते पञ्चमे राज्ञि स्मृते वद्याञ्च षट्पदे । अशौचं स्यात्तदा हन्ति चलित्वा चालितं वलम् ॥ द्विराहृत्यागते तस्मात् हन्यात् परवलं जयी । पार्थ सिंहासने काले काककाष्ठं यदा भवेत् ॥ सिंहासनं भवत्येव काककाष्ठं न भण्यते । उपरिष्टञ्च यत् स्थानं तस्योपरि चतुष्टये ॥ नौकाचतुष्टयं यत्र क्रियते तस्य नौकया । नौकाचतुष्टयं तस्य वृहन्नौकेति भण्यते । न कुर्य्यादेकदा राजन् गजस्याभिमुखं गजम् ॥ यदि कुर्वीत धर्मज्ञः पापग्रस्तो भविष्यति । स्थानाभावे यदा पार्थ हस्तिसंमुखम् ॥ करिष्यति तदा राजन् इति गोतमभाषितम् । प्राप्ते गजद्वये राजन् हन्तव्यो-वामतो गजः" ॥ इति चतुरङ्गक्रीड़नम् ।

वैष्णवामृते स्कन्दपुराणम् । "पौष्यान्तु समतीतायां यावत् भवति पूर्णिमा । माघमासस्य देवेन्द्र पूजा विष्णोर्विधीयते" ॥ इति पौर्णमास्यन्तमाघमुपक्रम्य "पितॄणां देवतानाञ्च मूलकं नैव दापयेत् । दत्त्वा नरकमाप्नोति भुञ्जीत ब्राह्मणो यदि । ब्राह्मणो मूलकं भुक्त्वा चरेच्चान्द्रायणं व्रतम् । अन्यथा नरकं याति क्षत्रविट्शूद्र एव च । वरं भुक्तमभक्ष्यन्तु पिवेद्वा-

गर्हितञ्च यत्। वर्ज्जनीयं प्रयत्नेन मूलकं मदिरासमम्" ॥

फाल्गुनपौर्णमास्यां दोलयात्रामाह कृत्यचिन्तामणौ ब्रह्मपुराणम्। "नरो दोलागतं दृष्ट्वा गोविन्दं पुरुषोत्तमम्। फाल्गुन्यां संयतो भूत्वा गोविन्दस्य पुरं व्रजेत्" ॥ स्कन्दपुराणीय पुरुषोत्तममाहात्म्ये ऊनत्रिंशाध्याये। "फाल्गुन्यां क्रीड़नं कुर्य्याद्दोलायां मम भूमिप" ॥ विष्णुपुराणे। "चतुर्द्दश्यष्टमी चैव अमावस्याथ पूर्णिमा पर्व्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च। स्त्रीतैल मांससम्भोगी पर्व्वस्वेतेषु वै पुमान्। विण्मूत्रभोजनं नाम प्रयाति नरकं मृतः" ॥

अथ रविसंक्रान्तिः। भविष्यमात्स्यज्योतिषेषु। "मृगकर्कट संक्रान्ती द्वे तूदक् दक्षिणायणे। विषुवती तुलामेषे गोलमध्ये तथापराः" ॥ मृगो मकरः गोलो राशिचक्रम्। "धनुर्मिथुनकन्यासु मीने च षडशीतयः। वृष वृश्चिक सिंहेषु कुम्भे विष्णुपदी स्मृता" ॥ देवीपुराणम्। "यावद्विंशकलाभुक्ता तत्पुण्यं चोत्तरायणे। निरंशे भास्करे दृष्टे दिनान्तं दक्षिणायने ॥ अर्द्धरात्रे त्वसंपूर्णे दिवापुण्यमनागतम्। अर्द्धरात्रे व्यतीते तु विज्ञेयं चापरेऽहनि ॥ संपूर्णे चार्द्धरात्रे च उदयेऽस्तसमयेऽपि वा। मानार्द्धं भास्करे पुण्यमपूर्णे शर्व्वरीदले ॥ संपूर्णे तूभयोर्ज्ञेयमतिरिक्ते परेऽहनि। षड्शीतिमुखेऽतीते वृत्ते च विषुवद्द्वये ॥ भविष्यत्ययने पुण्यमतीते चोत्तरायणे। आदौ पुण्यं विजानीयात् यद्यभिन्ना तिथिर्भवेत्" ॥ विंशकला विंशतितमी कला संक्रान्तिक्षणादूर्द्ध्वं यावत् भवति तावत् पुण्यम्। निरंशेऽंशकशून्ये संक्रान्तिकाले हि भास्करोऽंशकरहितो भवति तस्मिन् दृष्टे दिवेति यावत् दिनञ्च दिनकरकरसंस्कृता स्त्रिंशन्नाड़िका इति ज्योतिर्विदः। तदन्तं तत् समाप्तिं यावत् तावत् पुण्यम्। तथा च वृद्धवशिष्ठः "त्रिंशत् कर्कटे नाड्यो मकरे विंशतिः स्मृताः" ॥ नाड़ी दण्डः। "उत्पलाद्विपलं षष्ट्या विपलात्तु पलं नयेत्। पलात् षष्ट्या नयेन्नाड़ीं तत् षष्ट्यातु रवेर्दिनम्" ॥ इति सिद्धान्तसन्दर्भात्। ततश्च देवीपुराण वृद्धवशिष्ठयोरेकवाक्यतया कलानाड्योः पर्य्यायता।

रात्रिसंक्रमणेत्याह अर्द्धरात्रे त्विति असंपूर्णे कलान्यूनार्द्धरात्रे। "कलान्यूनार्द्धरात्रे तु यदि संक्रमणं भवेत्। तदहः पुण्यमिच्छन्ति गार्ग्यगालवगौतमाः"॥ इति कृत्यचिन्तामणिवर्षकृत्यधृतगर्गवचनात्। कालकौमुद्याञ्च। गालवेत्यत्र हारीत इति पाठः। ततश्च कलान्यूनार्द्धरात्राभ्यन्तरे द्वादशस्वेव संक्रान्तिषु अनागतं नागतं संक्रमणेन यत्र दिवा तदेव पुण्यं पुण्यजनकं तत्तु पूर्वदिनं तदैव संक्रान्तेरनागतत्वमभावात् तेन संक्रमणकालादर्वागेव दिवा परार्द्धे स्नानादिकं कर्त्तव्यमित्यर्थः। अर्द्धरात्रे व्यतीते कलाधिकार्द्धरात्रे व्यतीते। पूर्णेऽर्द्धरात्रे रात्रिमध्यकालयोः। कलान्यूनार्द्धरात्रे त्विति वचनानन्तरं भुजबलभीमे "अर्द्धरात्रे कलाधिक्ये यदा संक्रमते रविः। तदोत्तरदिनं ग्राह्यं स्नानदानजपादिषु। अर्द्धरात्रे तु संपूर्णे यदा संक्रमते रविः। प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं त्यक्त्वा मकरकर्कटौ" इति वचनाभ्यां तथा प्रतीतेः। कालविवेके कालकौमुद्याञ्च शातातपजाबालौ "पूर्णे चेदर्द्धरात्रे तु रविसंक्रमणं भवेत्। प्राहुर्दिनद्वयं पुण्यं त्यक्त्वा मकरकर्कटौ"॥ एतयोर्व्यवस्थामाह कालमाधवीये भविष्योत्तरम्। "मिथुनात् कर्किसंक्रान्तिर्यदि स्यादंशुमालिनः। प्रदोषे वा निशीथे वा कुर्य्यादहनि पूर्वतः॥ कार्मुकञ्च परित्यज्य झषं संक्रमते रविः। प्रभाते वार्द्धरात्रे वा स्नानं कुर्य्यात् परेऽहनि"॥ ततश्च रात्रिमध्यदण्डद्वयात्मकार्द्धरात्रसंक्रान्तावुदयेऽस्तमयेऽपि वेत्यनेनोदयोपक्रममस्तमयान्तञ्च मानार्द्धं पुण्यम्। एवञ्चोभयदिने पुण्यकाले पूर्वदिनाकरण एव परदिने "श्वःकार्य्यमद्य कर्त्तव्यं पूर्वाह्णे चापराह्णिकम्। न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य नवा कृतम्"॥ इति लिङ्गपुराणात् मोक्षधर्माच्च। तत्रापि दक्षिणायने पूर्वदिनार्द्धमात्रमिति विशेषः। उत्तरायणे परदिनार्द्धमात्रमिति विशेषः। मानार्द्धमिति भास्करे भास्करोपलक्षिते काले दिवेति यावत् तस्मिन् संक्रमणेऽपि मानार्द्धं पुण्यम् एतच्च विषुवषडशीति विषयम्। अयनकालयोः पूर्वमुक्तत्वात् विष्णुपद्याञ्चोभयतः षोडशकलानां पञ्चदशनाडिकानां वा पुण्यत्वस्य शातातपादिवचनेन वक्ष्यमाणत्वात्। तेन दिवा

संक्रमण एवायनादित्वेन पुण्यकाले विशेषः। राशिसंक्रमणे तु अर्द्धरात्रीय मकरकर्कट संक्रमणव्यतिरिक्ते सर्वेषां तुल्यतेति। अपूर्णे शर्वरीदले कलान्यूनार्द्धरात्रे इत्यत्रापि मानार्द्धमित्यनुषज्यते। दिवापुण्यमिति यत्प्रागुक्तं अत्र तदेव मानार्द्धत्वेन विशेषितमित्यपुनरुक्तिः। एवमुदयास्तमये यन्मानार्द्धमुक्तं तत् किमेकदिने दिनयोर्वेति तत्राह संपूर्णेतूभयोरिति उभयोः पूर्वापरदिनयोर्मानार्द्धं पुण्यं तेन पूर्वदिनस्यास्तमयपर्य्यन्तं परदिनस्य उदयमारभ्य मानार्द्धं पुण्यमित्यर्थः। अतिरेके अर्द्धरात्रात् परतः संक्रमणे परेऽहनि मानार्द्धं पुण्यमित्यनुषज्यते। मानार्द्धन्तु प्रहरद्वयम् "अर्द्धरात्रादधस्तस्मिन् मध्याह्नस्योपरि क्रिया। ऊर्द्धं संक्रमणे भानोरुदयात् प्रहरद्वयम्। पूर्णार्द्धरात्रसंक्रान्तौ द्वे दिनार्द्धे तु पुण्यदे"॥ इति संवत्सरप्रदीप गङ्गावाक्यावलीधृत वशिष्ठसौरधर्मवचनैकवाक्यत्वात् "अर्द्धरात्रादधश्चैव दिनार्द्धस्योपरि क्रिया। ऊर्द्धं संक्रमणे भानोरुदयात् प्रहरद्वयम्"॥ इति भोजराज कृत्यचिन्तामणिधृतैकवाक्यत्वाच्च। अधः पूर्वम् ऊर्द्धं परतः क्रिया स्नानादिका। एवञ्च गर्गवचनस्य तदह्नरिति यामद्वयपरम् अन्यथा मूलभूत श्रुत्यन्तरकल्पनापत्तेः। एवञ्च षड़शीतिमुखेऽतीते इत्यादि दिवा संक्रमणविषयम्। तेन दिवा षड़शीति संक्रमणे भूते भविष्यन्मानार्द्धं पुण्यम् एवं विषुवद्वयेऽपि। दिवोत्तरायणेऽपि भविष्यद्विंशतिदण्डानां पुण्यत्वम् अत्रोत्तरायणस्य पृथगभिधानात् अयन इति पदं दक्षिणायनपरं गोवलीवर्दन्यायात् तेन दिवा दक्षिणायने भविष्यति भूतत्रिंशद्दण्डानां पुण्यत्वम् एवञ्च षड़शीत्यादिष्वप्यवकाशमलभमानम् "अर्वाक् षोडश विज्ञेया नाड़्यः पश्चाच्च षोड़श कालः पुण्योऽर्के संक्रान्तेर्विद्वद्भिः परिकीर्त्तितः"॥ इति शातातपीयम्। "अतीतानागतोभोगोनाड़्यः पञ्चदश स्मृताः। इति देवीपुराणीयञ्च वचनं दिवा विष्णुपदीविषयम्। अतएव जाबालि बृहद्वशिष्ठौ "पुण्यायां विष्णुपद्याञ्च प्राक् पश्चादपि षोड़श"॥ अर्द्धरात्रे विशेषमाह आदावित्यादि अर्द्धरात्रसंक्रान्तावादौ पूर्वदिन एव मानार्द्धं यद्यभिन्ना संक्रान्ति काले पूर्वदिने च

एकैव तिथिर्भवेत् तेन मध्यरात्रे संक्रमणे यदुभय दिनमामार्द्धं पुण्यमुक्तं तद्भिन्नतिथिविषयम्। अतीते पुनरर्द्धरात्रे पूर्व्वणाङ्क्षा तिथ्यभेदेऽपि परस्यैव पूर्व्वार्द्धं पुण्यमिति तात्पर्य्यार्थः। एवञ्च रात्रिसंक्रान्तौ दिन एव पुण्यत्वाभिधानात्। "राहुदर्शनसंक्रान्ति विवाहात्ययवृद्धिषु। स्नानदानादिकं कुर्य्युर्निशि काम्यव्रतेषु च"॥ इति देवलेन दिन संक्रमणस्य रात्रिप्रविष्ट पुण्यकालांशे संक्रान्तिनिमित्तेन स्नानदानादि विधीयते इति। यत्तु "मन्दा मन्दाकिनी ध्वांक्षी घोराचैव महोदरी। राक्षसी मिश्रिता प्रोक्ता संक्रान्तिः सप्तधा नृप। मन्दा ध्रुवेषु विज्ञेया मृदौ मन्दाकिनी तथा॥ क्षिप्रे ध्वांक्षी विजानीयादुग्रे घोरा प्रकीर्त्तिता। चरैर्महोदरी ज्ञेया क्रूरैश्चैव राक्षसी। मिश्रिता चैव विज्ञेया मिश्रितक्षस्य संक्रमे"॥ इत्येत्यैर्द्वादशस्वेव संक्रान्तिषु ध्रुवादि नक्षत्रयोगान्मन्दादिरूपतया सप्तधा भिन्नासु। "त्रिचतुः पञ्चसप्ताष्ट नव द्वादश एव च। क्रमेण घटिकाह्येतास्तत् पुण्यं पारमार्थिकम्"॥ इति देवीपुराण एव त्रिचतुरादिघटिकानां पुण्यत्वमुक्तम् तद्दिवारात्र्योस्तत्तत्कालोपदेशादवकाशमलभमानं सन्ध्याद्वयसंक्रान्ति विषयमिति समयप्रकाशः। ध्रुवादिगणस्तु दीपिकायाम् "उग्रः पूर्वं मघान्तका ध्रुवगण स्त्रीण्युत्तराणि स्वभूर्वातादित्यहरित्रयं चरगणः पुष्याश्विहस्तालघुः। चित्रामित्रमृगान्त्यभं मृदुगणस्तीक्ष्णोऽहि रुद्रेन्द्रयुक् मिश्रोऽग्निः स विशाखभः शुभफलाः सर्व्वस्वकृत्ये गणाः"॥ अन्तको भरणी स्वभू रोहिणी वातादित्यहरित्रयं स्वातीपुनर्व्वसु श्रवणा धनिष्ठा शतभिषा मित्र मृगान्त्यभम् अनुराधा मृगोशिरोरेवत्यः। अहिरुद्रेन्द्रयुक् अश्लेषा आर्द्रा ज्येष्ठा मूलाः अग्निः कृत्तिका। कल्पतरुस्तु क्रमेण यथासंख्येन एता घटिकास्तत् पुण्यं तस्य संक्रमणस्य पुण्यहेतुत्वात् पुण्यं पारमार्थिकं मुख्यं "त्रुटेः सहस्र भागोयः स कालो रविसंक्रमः"॥ इत्युक्तसूक्ष्म संक्रमकालीनानुष्ठानजन्य समपुण्य हेतव इत्याह। त्रुटिस्तु "लघ्वक्षर चतुर्भाग स्त्रुटिरित्यभिधीयते। त्रुटिद्वयं लवः प्रोक्तो निमेषस्तु लवद्वयम्"॥ इति स्मृत्युक्ता एतदेव

मतं युक्तम् अतएव देवलेन "या याः सन्निहिता नाड्यस्ता स्ताः पुण्यतमाः स्मृताः"॥ इत्युक्तम्। एवञ्चैता घटिकाः पुण्यतमाः स्नानार्घादिकन्तु पुण्यमात्रमिति तस्मान्मन्देत्यादि न सन्ध्यासंक्रान्तिविषयकमिति सन्ध्यासंक्रान्तिविषयत्वे पारमार्थिकमित्यनुपपत्तेः पुण्यमित्यनेनैव सिद्धेः। पारमार्थिकमित्यत्र कल्पतरुव्याख्यानवलोकनाद्रविसंक्रम इति पाठकल्पनं कल्पनमेव समयप्रकाशकृतापि तथा पठितत्वात्। जीमूतवाहनोऽपि कालविवेके "अह्निसंक्रमणे पुण्यमहः कृत्स्नं प्रकीर्त्तितम्। रात्रौ संक्रमणे भानोर्दिनार्द्धं स्नानदानयोः"॥ इति वृद्धवशिष्ठादिवचन पर्य्यालोचनया दिवासंक्रान्तौ दिनमात्रं पुण्यं पुण्यतरास्तु विशेष विहितानाड्य इत्याह। अतएव तद्धृत जावालिवृहस्पतिशातातपवचनमपि संगच्छते। यथा "वर्त्तमाने तुला मेषे नाड्यस्तूभयतोदश"। कालमाधवीयेऽपि अह्नीत्यभिधाय प्राशस्त्यतारतम्यमुक्तम्। एवञ्च दिवासंक्रान्तौ कृत्स्नं दिनं पुण्यं षडशीतिमुखेऽतीते इति वचनं पुण्यतरपरम्। ननु देवीपुराणे दिवारात्र्योः संक्रमणे विशिष्य कालाभिधानात् सन्ध्यासंक्रान्तेः कः काल इति चेत् "त्रिंशन्मुहूर्त्तं कथितमहोरात्रन्तु यन्मया"॥ इति विष्णुपुराणेन सन्ध्ययोः पृथगनुपादानात् दिवारात्रिसम्बन्धित्वान्मुहूर्त्तार्द्धेन तयोरन्तर्भावः। तथा च दक्षः "अहोरात्रस्य यः सन्धिः सूर्य्यनक्षत्रवर्जितः। सा तु सन्ध्या समाख्याता मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः"॥ योगियाज्ञवल्क्यः। "ह्रासवृद्धी च सततं दिनरात्र्योर्यथाक्रमम्। सन्ध्यामुहूर्त्तमाख्याता ह्रासवृद्धौ समा स्मृता"॥ वराहः "अर्द्धास्तमयात् सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत्। तेजः परिहानिरुषा भानोरर्द्धोदयं यावत्"॥ अतएव केनापि मुनिना नानादेशीय संग्रहकारेण च सन्ध्यासंक्रान्तित्वेन विशेषो नाभिहितः।

तदयं संक्षेपः। दिनसंक्रमणे कृत्स्नं दिनं पुण्यं षडशीति मुखे इत्याद्युक्तं पुण्यतरं मन्दा मन्दाकिनीत्यादि रूपेण त्रिचतुरादि घटिकाः पुण्यतमाः। दिनवृत्तोत्तरायणादिविहित विंशति दण्डादीनां रात्रिप्रविष्टभागस्यापि पुण्यत्वं

रात्रिसंक्रमणे तु कल्यान्यून प्रथमार्द्धगते तद्दिवसीय शेषयामद्वयं पुण्यम्। कालाद्वयात्मक मध्यरात्रगते तद्दिवसीय तिथेरभेदे तद्दिवसीय शेषयामद्वयं पुण्यं भेदे तु तद्दिवसीय शेषयामद्वयं परदिवसीयाद्ययामद्वयञ्च पुण्यम् उभयदिने पुण्यकालेऽपि पूर्वदिनाकरण एव परदिने तद्विहितं कार्य्यम्। तिथिभेदाभेदयोर्दक्षिणायने तद्दिवसीय शेषयामद्वयम् उत्तरायणे तु परदिवसीयाद्य यामद्वयं पुण्यमिति मध्यरात्रीयकलोत्तरशेषार्द्धरात्रसंक्रमणमात्रे तु परदिनाद्य यामद्वयं पुण्यमिति सन्ध्यासंक्रमणे तु दिनदण्डे दिनस्य रात्रिदण्डे रात्रेर्व्यवस्थितिः।

ब्रह्मपुराणे। "शुक्लपक्षे तु सप्तम्यां यदा संक्रमते रविः। महाजया तदा प्रोक्ता सप्तमी भास्करप्रिया॥ स्नानं दानं तपो होमः पितृदेवाभिपूजनम्। सर्वं कोटिगुणं प्रोक्तं तपनेन महौजसा॥" अत्र "मासपक्षतिथीनाञ्च निमित्ताञ्च सर्वशः" इत्यनेन प्राप्त तिथ्युल्लेखे तद्विशेषणत्वेन महाजयेत्युल्लेख्य संज्ञा विधेरेतदेव प्रयोजनं यत्तयानिर्द्देश इत्युक्तत्वात् एवञ्च संक्रान्तिविशेषस्य निमित्तत्वेन प्राप्तौ विषुवाद्युल्लेखोऽपि। स्कान्दे "एकान्ततो मया प्रोक्ताः कालाः संक्रान्तिसंज्ञकाः। नैतेषु विद्यतेऽनिष्टं यतस्त्वाक्षयसंज्ञिताः॥ अश्रद्धयापि यद्दत्तं कुपात्रेभ्योऽपि मानवैः। अकालेऽपि हि तत् सर्वं सत्यमक्षयतां व्रजेत्"॥ मात्स्ये। "अयने कोटिगुणितं लक्षं विष्णुपदीषु च। षड़शीति सहस्रन्तु षड़शीत्यामुदाहृतम्॥ शतमिन्दुक्षये पुण्यं सहस्रन्तु दिनक्षये। विषुवे शतसाहस्र माकामावेष्वनन्तकम्"॥ आकामावेषु आषाढ़ी कार्त्तिकी माघी वैशाखी पूर्णिमासु। देवीपुराणे। "रविसंक्रमणे पुण्ये न स्नायाद्यस्तु मानवः। सप्तजन्मस्वसौ रोगी निर्धनश्चोपजायते"॥ दीपिकायाम्। "नाड़ीनक्षत्र दिवसे रविभौम शनैश्चराः। संक्रान्तिं यस्य कुर्वन्ति तस्य क्लेशोऽभिजायते॥ गोमूत्र सर्षपैः स्नानं सर्वौषधिजलेन च। विशुद्धं काञ्चनं दद्यान्नाड़ीदोषोपशान्तये"॥ नाड़ीनक्षत्राणि चाद्य दश षोड़शाष्टादश त्रयोविंशति पञ्चविंशतयः। रत्नमालायाम्।

"ताराबलादिन्दुरथेन्दुवीर्य्याद्दिवाकरः संक्रममाण उक्तः । ग्रहाश्च सर्वे सवितुर्बलेन महीसुताद्याः क्रमशः प्रशस्ताः" ॥ संवत्सरप्रदीपे "धुस्तूरबीजसलिलैः स्नायात् संक्रान्तिशान्तये । तथा सर्वौषधीभिश्च विष्णुमन्त्रांश्च संजपेत् ॥ यदह्नि मेषसंक्रान्तिस्तुलासंक्रमणं निशि । तदा प्रजा विवर्द्धन्ते धनधान्यसमृद्धिभिः । कुजार्कशनिवारेण महासंक्रमणं यदा । तदा भवेत् प्रजानाशो दुर्भिक्षादिभयं महत्" ॥

ब्रह्मवैवर्त्ते । "अप्राप्ते भास्करे कन्यां शेषभूतैस्त्रिभिर्दिनैः । अर्घ्यं दद्युरगस्त्याय गौड़देशनिवासिनः" ॥ भीमपराक्रमे । "यस्तु भाद्रपदस्यान्ते उदिते कलसोद्भवे । अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय सर्वान् कामान् लभेत सः" ॥ नारसिंहे । "शङ्खे तोयं विनिःक्षिप्य सितपुष्पाक्षतैर्युतम् । मन्त्रेणानेन वै दद्याद्दक्षिणाशामुखस्थितः ॥ काशपुष्पप्रतीकाश ! अग्निमारुत सम्भव ! । मित्रावरुणयोः पुत्र ! कुम्भयोने ! नमोऽस्तु ते" ॥ प्रार्थनमन्त्रस्तु । "आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महासुरः । समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु" ॥ गन्धादिकन्तु अगस्त्याय नम इति दातव्यं विशेषानुपदेशेन सामान्यतः प्राप्तत्वात् । दक्षिणाशामुखस्थित इति गन्धादावपि । प्रयोगाङ्ग कर्त्तृधर्मत्वादिति रत्नाकरः । नारदीये "न मात्स्यं भक्षयेन्मांसं न कौर्मं नान्यदेवहि । चण्डालो जायते राजन् ! कार्त्तिके मांसभक्षणात्" ॥ महाभारते । "कौमुदन्तु विशेषेण शुक्लपक्षं नराधिप ! । वर्जयेत् सर्वमांसानि धर्मोह्यत्र विधीयते" ॥ कौमुदं कार्त्तिकम् । कार्त्तिकमधिकृत्य ब्रह्मपुराणम् "एकादश्यादिषु तथा तासु पञ्चसु रात्रिषु । दिने दिने च स्नातव्य शीतलासु नदीषु च । वर्जितव्या तथा हिंसा मांसभक्षणमेव च" ॥ ततश्च मांसभक्षणनिषेधे कार्त्तिकमास तच्छुक्लपक्ष तदेकादश्यादिपञ्चदिनानि शक्ताशक्तभेदात् पापतारतम्याद्वा निषिद्धानि ।

ब्रह्माण्डे "दामोदराय नभसि तुलायां लोलया सह । प्रदीपन्ते प्रयच्छामि नमोऽनन्ताय वेधसे" ॥ लोलया लक्ष्म्या "इति मन्त्रेण यो दद्यात् प्रदीपं सर्पिरादिना । आकाशे मण्डपे वापि सचाक्षयफलं लभेत् ॥ विष्णुवेश्मनि यो दद्यात्

कार्त्तिके मासि दीपकम्। अग्निष्टोम सहस्रस्य फलं प्राप्नोति मानवः” ॥ नारदीये। “निष्पावान्राजमाषांश्च सुप्ते देवे जनार्दने। यो भक्षयति राजेन्द्र! चाण्डालादधिको हि सः॥ कार्त्तिके तु विशेषेण राजमाषांश्च वर्जयेत्। निष्पावान्मुनिशार्दूल! यावदाहूतनारकी॥ कदम्बानि पटोलानि वृन्ताकसहितानि च। न त्यजेत् कार्त्तिके मासि यावदाहूतनारकी॥ एतानि भक्षयेद्यस्तु सुप्ते देवे जनार्दने। शतजन्मार्जितं पुण्यं दहते नात्र संशयः” ॥ निष्पावः शिम्बीसदृशो दक्षिणापथे प्रसिद्ध इति कल्पतरुः। कदम्बादीनि फलानि नपुंसक निर्देशात् कदम्बानीत्यत्र कलम्बानीति केचित् पठन्ति कलम्बीत्वेन प्रसिद्धानीति व्याचक्षते च आहूतनारकी आहूतानि क्ष्मादिपर्य्यन्तानि प्रलयावधीति यावत् तावत्कालं नारकीत्यर्थः। आहूत इत्यत्र भकारस्य हकारश्छान्दसः। काशीखण्डे। “ऊर्ज्जे यवान्नमश्नीयादेकान्नमथवा पुनः। वृन्ताकं शूरणञ्चैव शूकशिम्बीञ्च वर्जयेत्। कार्त्तिके वर्जयेत् तैलं कार्त्तिके वर्जयेन्मधु। कार्त्तिके वर्जये कांस्यं कार्त्तिके मासि सन्धितम्”॥ ऊर्ज्जे कार्त्तिके। शूरण मोलं सन्धितमासवादि। गारुडे। “गवामयुतदानेन यत्फलं लभते खग!। तुलसीपत्रकैकेन तत्फलं कार्त्तिके स्मृतम्” ॥ भीमनाथधृतम्। “विहाय सर्वपुष्पाणि मुनिपुष्पेण केशवम्। कार्त्तिके योऽर्च्चयेद्भक्त्या वाजिमेधफलं लभेत्” ॥ पद्मपुराणम्। “तुलामकरमेषेषु प्रातः स्नानं विधीयते। हविष्यं ब्रह्मचर्य्यञ्च महापातकनाशनम्” ॥ पितामहः। “कार्त्तिकस्य तु यत् स्नानं माघे मासि विशेषतः। कृच्छ्रादि नियमानाञ्च चान्द्रमानप्रमाणतः” ॥ आभ्यां कार्त्तिकादिस्नाने सौरचान्द्रयोर्विकल्पेनानुष्ठानम्। मदनपारिजातधृतविष्णुवचनम्। “दर्शं वा वा पौर्णमासीं वा प्रारभ्य स्नानमाचरेत्। पुण्यान्यहानि त्रिंशत्तु मकरस्थे दिवाकरे” ॥ दर्शं पौर्णमासीमिति पूर्वदिनसङ्कल्पपरमिति नारायणोपाध्यायाः। वैष्णवामृते तु भविष्यपुराणवचनम्। “गवामर्द्धप्रसूतानां लक्षं दत्त्वा तु यत् फलम्। तत्फलम् लभते राजन्! मेषे स्नात्वा तु जाह्नवीम्” ॥ कार्त्तिके

मन्त्रस्तु "कार्त्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्द्दन !। प्रीत्यर्थं तव देवेश ! दामोदर ! मया सह"। मया लक्ष्म्या। राजमार्त्तण्डे। "य इच्छेद्विपुलान् भोगान् चन्द्रसूर्य्यग्रहोपमान्। कार्त्तिके सकले मासि प्रातःस्नायी भवेत् सदा"॥ पाद्मे। "स्वर्गलोके चिरं वासो येषां मनसि वर्त्तते। यत्र क्वापि जले तैस्तु स्नातव्यं मृग भास्करे"॥ मृगो मृगास्यत्वेन मकरस्तत्स्थे भास्करे। "आयुरारोग्यसम्पत्तौ रूपे सुभगतागुणे। येषां मनोरथास्ते तु न त्याज्यं माघमज्जनम्॥ दारिद्र्यपापदौर्भाग्यपङ्कप्रक्षालनाय वै। माघस्नानान्नचान्योऽस्ति उपायो नरसत्तम !॥ मकरस्थे रवौ यो हि न स्नात्यनुदिते रवौ। कथं पापैः प्रमुच्येत कथं स त्रिदिवं व्रजेत्॥ अकामो वा सकामो वा यत्र क्वापि वहिर्जले"। इह चामुत्र दुःखानि माघस्नायी न पश्यति"॥ यत्तु "माघे मासि रटन्त्यापः किञ्चिदभ्युदिते रवौ। ब्रह्मघ्नमपि चाण्डालं कं पतन्तं पुनीमहे"॥ इति पद्मपुराणे किञ्चिदभ्युदिते रवावित्युक्तं तत्प्रातःस्नानकालोत्तरावधिरूपपरम्। प्रागुक्तार्द्धास्तमयात् सन्ध्येति वचनात्। अतएव "यो माघमास्युषसि सूर्य्यकराभिताम्रे स्नानं समाचरति चारुनदीप्रवाहे। उद्धृत्य सप्तपुरुषान् पितृमातृवंश्यान् स्वर्गं प्रयात्यमरदेहधरो नरोऽसौ"॥ इत्यत्र उषसीत्यभिधाय सूर्य्यकराभिताम्र इत्युक्तं सूर्य्योदयात् प्रागपि तत्करसम्भवात् न तु सूर्य्याभिताम्र इत्युक्तम्। गारुडे। "गङ्गां येऽत्रावगाहन्ते माघे मासि नराधिप !। चतुर्युगसहस्रं ते न पतन्ति सुरालयात्। दिनेदिने सहस्रन्तु सुवर्णानां विशाम्पते !। तेन दत्तं हि गङ्गायां यो माघे स्नाति मानवः"॥

विधिमाह पाद्मे। "माघमासमिमं पुण्यं स्नाम्यहं देव ! माधव !। तीर्थस्यास्य जले नित्यं प्रसीद भगवन् हरे !। दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च॥ प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे पापप्रणाशनम्। मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युत माधव !॥ स्नानेनानेन मे देव ! यथोक्तफलदो भव। एतन्मन्त्रं समुच्चार्य्य स्नायान्मौनं समाश्रितः॥ वासुदेवं हरिं कृष्णं श्रीधरञ्च स्मरेत्ततः। दिवाकर ! जगन्नाथ ! प्रभाकर ! नमोऽस्तु ते। परिपूर्णं

कुरुष्वेदं माघस्नानं महाव्रतम्" ॥ चान्द्र स्नाने तु मकरार्कास्पृष्टकाले मकरस्थे रवाविति मन्त्रस्तु न पाठः असमवेतार्थत्वात् आरब्ध कार्त्तिकादि स्नाने तु व्याध्यादिना सामर्थ्याभावे पुत्रादि प्रतिनिधिना कारयितव्य नानुकल्पविधिना नित्यस्नान एव तद्विधानादिति विद्याकरः। स्कन्दपुराणम्। संप्राप्ते मकरादित्ये पुण्ये पुण्यप्रदे सदा। कर्त्तव्यो नियमः कश्चित् व्रतरूपो नरोत्तमैः" ॥ षट्त्रिंशन्मतनिगमौ। "संक्रान्त्यां पञ्चदश्याञ्च द्वादश्यां श्राद्धवासरे। वस्त्रं न पीड़येत् तत्र न च क्षारेण योजयेत्। संक्रान्त्याञ्च त्रयोदश्यां पक्षान्ते नवमीदिने। सप्तम्यां रविवारे च स्नान मामलकैस्त्यजेत्" ॥ शातातपः। "रविवारेऽर्क संक्रान्त्यां षष्ठ्यां वै सप्तमीतिथौ। आरोग्यकामस्तु नरो निम्बपत्रं न भक्षयेत्" ॥

कृत्यचिन्तामणौ गुणिसर्वस्वे च। "चैत्रे मासि च संपूज्यो घण्टाकर्णो घटात्मकः। आरोग्याय स्नुहीमूलं संक्रान्त्यां तत्र कारयेत्" ॥ पूजामन्त्रः। "घण्टाकर्ण! महावीर! सर्वव्याधिविनाशन!। विस्फोटक भये प्राप्ते रक्ष रक्ष महाबल!" ॥ शिवपुराणे। "घण्टाकर्णोगणः श्रीमान् शिवस्यातीव वल्लभः" ॥ कृत्यचिन्तामणौ "मसूरं निम्बपत्रञ्च योऽत्ति मेषगते रवौ। अपि रोषान्वितस्तस्य तक्षकः किं करिष्यति" ॥ संवत्सर प्रदीपे तूत्तरार्द्धे "मेषस्थे च विधौ तस्य नास्त्यब्दं विषजं भयम् इति स्मृतिः। "मेषादौ शक्तवो देया वारिपूर्णा च गर्गरी" ॥ वारिदाने मन्त्रः। "एष धर्मघटो दत्तो ब्रह्मविष्णुशिवात्मकः। अस्यप्रदानात् सफला मम सन्तु मनोरथाः। वैशाखे यो घटं पूर्णं सभोज्यं वै द्विजन्मने। ददात्यभुक्त्वा राजेन्द्र! स याति परमां गतिम्" ॥ पूर्णं जलेनेति शेषः। महार्णवे। "यो ददाति हि मेषादौ शक्तूनम्बुघटान्वितान्। पितॄनुद्दिश्य विप्रेभ्यः सर्वपापैः प्रमुच्यते। विप्रेभ्यः पादुके छत्रं पितृभ्यो विषुवे शुभं" ॥ पितृभ्यः पितॄनुद्दिश्य इत्यर्थः। अत्र विषुवस्य पुण्यविशेषजनकत्वेन विवक्षितत्वात् मेषादाविति विषुवसंक्रान्तिपुण्यकालपरम्। अन्यथा कालद्वयकल्पनापत्तेः। कर्मोपदेशिन्यां व्यासः। "संक्रान्त्यां पक्षयोरन्ते द्वादश्यां श्राद्धवासरे। सायं सन्ध्यां न

कुर्वीत कृते च पितृहा भवेत्" ॥ देवीपुराणे। "अतीतानागतो भोगो नाड्यः पञ्चदश स्मृताः। सान्निध्यन्तु भवेत् तत्र ग्रहाणां संक्रमे रवेः। पुण्य पाप विभागेन फलं देवी प्रयच्छति" ॥ भोगः पुण्यपापजननयोग्यकालः पुण्यपापविवेचने विश्वामित्रः। "यमार्य्याः क्रियमाणं हि संक्रान्त्यागमवेदिभिः। सधर्मोयं विगर्हन्ति तमधर्मं प्रचक्षते" ॥ आगमवेदिभिः क्रियमाणमिति सम्बन्धः। तान्त्रिकास्तु। "विहित क्रियया साध्योधर्मः पुंसोगुणो मतः। प्रतिषिद्धक्रियासाध्यः सगुणो धर्म उच्यते" ॥ अत्रैकस्मिन्नेव काले पुण्यपापफलदानदर्शनात्। संक्रमण पुण्यकाल एव स्नानादिवत्तैलादित्यागः। एवमेव गुरुचरणाः एकादशी प्रकरणोक्त संक्रान्त्युपवासस्य व्रतत्वेन भावरूपत्वाद्भावघटितत्वाद्वोभयथापि तत्र पूज्ये विधेर्वृत्तिरित्यनेन पुण्यकालयुक्ताहोरात्रकर्त्तव्यता अष्टम्युपवासवत्। एकादशीतत्त्वे एतद्बहुधा विमृष्टम् एवञ्च रात्रिप्रागर्द्ध संक्रान्तौ दिवा शेषार्द्ध मात्रस्य तत्पुण्यकालत्वाद्रात्रिमुहूर्त्तार्द्ध सायं सन्ध्योपासनं कार्य्यमेव। ब्रह्मपुराणे। "नित्यं द्वयोरयनयोर्नित्यं विषुवतोर्द्वयोः। चन्द्रार्कयोर्ग्रहणयोर्व्यतीपातेषु पर्वसु। अहोरात्रोषितः स्नानं श्राद्धं दानं तथा जपम्। यः करोति प्रसन्नात्मा तस्य स्यादक्षयञ्च तत्" ॥ अहोरात्रोषितः पूर्वदिने कृतोपवासः एतत परमेव "अर्द्धरात्रे व्यतीते तु संक्रान्तिर्दहभवेत्। पूर्वं व्रतादिकं कुर्य्यात् परेद्युः स्नानदानयोः" इति भीमपराक्रमीयम्। स्नानदानयोरित्यत्र सप्तमीनिर्देशात् परदिवसीय स्नानदाननिमित्तकं पूर्वदिने उपवास संयम रूपं व्रतादिकं कुर्य्यादित्यर्थः।

अथ ग्रहणम्। ज्योतिषे "भत्रिपादान्तरे राहोः केतोर्वा संस्थितो रविः। चतुष्पादान्तरे चन्द्रस्तदा संभाव्यते ग्रहः" ॥ भत्रिपादान्तरे नक्षत्रस्य नक्षत्रयोर्वा त्रिपादाभ्यन्तरे। "यस्मिन्नृक्षे रविस्तस्माच्चतुर्दशगतः शशी। पूर्णिमा प्रतिपत्सन्धौ राहुणा ग्रस्यते शशी" ॥ एतदपि पूर्ववचनानुसारेण तच्चतुष्पादाभ्यन्तरे सति ज्ञेयं तस्मात्तमारभ्य तत् परतो वा इत्यर्थः। "कृष्णपक्षे तृतीयायां मासर्क्षं यदि जायते। ततस्त्रयोदशे

सूर्य्यं राहुणा ग्रस्यते रविः"॥ मासर्क्षं कार्त्तिकादौ कृत्तिकादि एतदपि भत्रिपादान्तरे सति ज्ञेयं राहोः पादभोगश्च मासद्वयेन। "रविभौमनवांशे तु निरभ्रं ग्रासमादिशेत्। बुधसौरिनवांशे तु मलिनं क्षुद्रवर्षणम्॥ गुरौ रंशकमासाद्य सवलाहकः। शशिशुक्रनवांशे तु प्रावृट्काले महज्जलम्॥ अन्यत्राव्यक्तभूतौ तौ दृश्येते छादिताम्बरौ"॥ अन्यत्र वर्षेतरकाले तौ चन्द्रार्कौ। कृत्यचिन्तामणौ वराहः। "श्वेते क्षेमसुभिक्षं ब्राह्मणपीडाञ्च निर्दिशेद्राहौ। अग्निभयमनलवर्णे पीड़ा च हुताशवृत्तीनाम्॥ हरिते रोगानुतापः शस्यानामीतिभिश्च विध्वंसः। कपिले शीघ्रगत्वम्लेच्छध्वंसोऽथ दुर्भिक्षम्। अरुणकिरणानुरूपे दुर्भिक्षं वृष्टयो विहगपीड़ा धूम्राभे क्षेमसुभिक्षमादिशेन्मन्दवृष्टिञ्च कापोतारुण कपिले श्यामाभे च क्षुद्भयं विनिर्दिशेत्। कापोतः शूद्राणां व्याधिकरः कृष्णवर्णश्च विमलकमलपीताभो वैश्यध्वंसो भवेत्। सुभिक्षाय सार्च्चिष्यग्निभयं गैरिकरूपे च युद्धानि दूर्वाकाण्डश्यामे हारिद्रे चापि निर्दिशेन्मरकम्। अशनिभयसंप्रदायी पाटलिकुसुमोपमो राहुः"॥ राजमार्त्तण्डे। "सप्ताष्टजन्मशेषेषु चतुर्थे दशमे तथा। नवमे च तथा चन्द्रे न कुर्य्याद्राहुदर्शनम्"॥ श्रीपतिव्यवहारनिर्णये वशिष्ठः। "जन्मभे जन्मराशौ च षष्ठाष्टम गते तयोः। चतुर्थे द्वादशे चन्द्रे न कुर्य्याद्राहुदर्शनम्॥ ग्रासदर्शनमात्रेण चार्थहानिर्महद्भयम्। जायते नात्र सन्देहस्तस्मात्तत्परिवर्जयेत्"॥ जन्मनक्षत्रापेक्षया षष्ठे अर्थात् सप्तमतारायां निधनेऽपि चेत्येकवाक्यत्वात् जन्मराश्यपेक्षया अष्टमे चन्द्रे अत्राप्युपलक्षणाञ्चेत्तदा नवमे चन्द्रेऽङ्क इत्येकवाक्यत्वात् वराहसंहितायाम्। "जन्मसप्ताष्टरिप्फाङ्कदशमस्थे निशाकरे। दृष्टोऽरिष्टप्रदो राहुर्जन्मर्क्षे निधनेऽपि च"॥ रिप्फं द्वादशराशिः। अङ्को नवमः। निधनं सप्तमतारा तथा "वैनाशिकर्क्षे दृष्टं ग्रहणं सुधांशुभास्करयोः। जनयति रोगं बहुधा क्लेशं वित्तक्षयं चाशु। जन्माष्टजायान्त्यखधर्मसंस्थे निशाकरे जन्मसु तारकासु। दृष्ट्वा तमश्चन्द्रमसं प्रयत्नादभ्यर्च्च्य दद्यात् कनकं द्विजाय"॥ उपक्रमे सुधांशुभास्करयो रिति दर्शनात्

चन्द्रमसमिति सूर्य्यस्याप्युपलक्षणम्। वैनाशिकर्क्षे त्रयोविंशतिनक्षत्रे इति केचित्। वस्तुतस्तु वैनाशिकपदं निधनतारापरम्। निधनेऽपि चेत्येकवाक्यत्वात् वैनाशिकपदस्य शर्मेण विपत्करादिसाहचर्य्यात् त्रयोविंशतिनक्षत्रस्य प्रत्यरिपदप्राप्तत्वादपि सप्तमतारायां पठितत्वाच्च। यथा "विपत्करप्रत्यरिसंगीतेषु वैनाशिकर्क्षेषु कृतं हि कर्म। सर्वं नृणां निष्फलमेव तस्मात् कृतेऽपि तत्रास्ति शुभं न किञ्चित्"॥ जायान्यखधर्मा सप्तमद्वादशदशमनवमराशयः। ननु ज्योतिःशास्त्राद्युक्त निषेधो हिंसावद्यादृच्छिकपरोऽस्तु न तु वैधपरः मैवं "राहुदर्शन संक्रान्ति विवाहात्ययवृद्धिषु। स्नानदानादिकं कुर्य्युर्निशि काम्यव्रतेषु च"। इति देवल वचने दर्शनपदश्रवणाद्दर्शने सति स्नानादेर्महाभ्युदयहेतुत्वाद्दर्शनमपि विधेयम्। तथा च संवत्सर प्रदीपे मार्कण्डेयः। "एकरात्रमुपोष्यैव राहुं दृष्ट्वाक्षयं नरः। पुण्यमाप्नोति कृत्वा च दानं श्राद्धं विधानतः"॥ ततश्च तस्यैव प्रकृतत्वेनोपस्थितस्य वैधदर्शनस्य पर्य्युदासो नतु रागप्राप्तदर्शनस्य निषेधोऽप्रकृतत्वेनानुपस्थितेः। एवञ्च पदार्थान्तर साकाङ्क्ष विशेष विधिमपहाय तदितरत्र सामान्यमन्वेतीति सर्वत्र पदाहवनीयादौ सामान्यस्य विशेषेतरपरत्वे वीजम्। यथा अहरहर्दद्यात् दीक्षितो न ददातीति प्रतिषेधात् दीक्षितेतरपरं न रागप्राप्तनिषेधकम्। तदुक्तं "त्रिधैव ज्ञायते कर्त्ता विशेषेण प्रतिक्रियम्। योग्यत्वं प्रतिषिद्धत्वं विशेषेण पदान्वयैः"॥ यजमानः पठतीति श्रुत्या तद्योग्यो विद्वान् दीक्षितो न ददातीति प्रतिषेधाद्दीक्षितेतरपरः "स्वर्गकामोऽग्निष्टोमेन यजेत" इत्यत्र विशेषणात् स्वर्गकामः कर्त्तेति तेन सप्तमचन्द्रादीतरो राहुं दृष्ट्वा स्नायादिति लभ्यते। एवं वैधदर्शनपर्य्युदासेऽपि निन्दाप्रायश्चित्तयोः श्रवणाद्रागप्राप्तदर्शनस्य प्रसज्यप्रतिषेधः ऋत्वभिगमननियमे पर्वणः पर्य्युदस्तत्वेऽपि तत्र रागप्राप्तगमनस्य प्रसज्य प्रतिषेधवदिति प्रपञ्चितं मलमासतत्त्वे। अतएव भोजराजः। "पौषे चैत्रे कृष्णपक्षे नवान्नं नाचरेद्बुधः। भवेज्जन्मान्तरे रोगी पितॄणां नोपतिष्ठते"॥ अत्र निन्दाश्रवणात्

प्रसज्यता नोपतिष्ठत इति श्रवणात् पर्य्युदासमतेति। देवलवचने निशीति पर्य्युदस्तसमयमात्रपरमन्यथा सायाह्ने विवाहादि राहुदर्शन संक्रान्त्यादिनिमित्त स्नानादि च न स्यात्। अतएव "ग्रहणोद्वाह संक्रान्ति यात्रादौ प्रसवेषु च। दानं नैमित्तिकं ज्ञेयं रात्रावपि तदिष्यते" इति दानदर्पणधृत वृद्ध वशिष्ठवचने रात्रावपीत्यपिना प्रतिषिद्ध कालान्तरं समुच्चीयते। छन्दोगपरिशिष्टम्। "यव्यहद्वयं श्रावणादि सर्वा नद्यो रजस्वलाः। तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः। उपाकर्मणि चोत्सर्गे प्रेतस्नाने तथैव च। चन्द्रसूर्य्यग्रहे चैव रजो दोषो न विद्यते। स्वर्धुन्यम्भःसमानि स्युः सर्वाण्यम्भांसि भूतले। कूपस्थान्यपि सोमार्कग्रहणे नात्र संशयः"॥ यव्योमासः।

नदीलक्षणमाह। "धनुःसहस्राण्यष्टौ च गतिर्यासां न विद्यते। न ता नदीशब्दवहा गर्त्तास्ताः परिकीर्त्तिताः"। स्वर्धुनीगङ्गा यासामपाम्। धनुः प्रमाणमाह विष्णुधर्मोत्तरीय प्रथमकाण्डम्। "द्वादशाङ्गुलिकः शङ्कुस्तद्द्वयन्तु शयः स्मृतः। तच्चतुष्कं धनुः प्रोक्तं क्रोशोधनुः सहस्रिकः"॥ शयोहस्तः। अत्र विशेषो मदन पारिजाते निगमः। न दुष्येत्तीरवासिनामिति। अत्रैव व्याघ्रपादः। "अभावे कूपवापीनाम् अन्येनापि समुद्धृते। रजोदुष्टेऽपि पयसि ग्रामभोगो न दुष्यति"॥ अन्येन कुम्भादिना। अतएव छन्दोगपरिशिष्टकृतापि तासित्यधिकरणेन निर्दिष्टम्। देवलः। 'गङ्गा च यमुनाचैव प्लक्षजाता सरस्वती। रजसा नाभिभूयन्ते ये चान्ये नदसंज्ञकाः" कुरुक्षेत्रे या सरस्वती सा प्लक्षजाता। "शोणसिन्धु हिरण्याख्यकोकलोहित्यघर्घरः। शतद्रुश्च नदाः सप्त पावनाः ब्रह्मणः स्मृताः"॥ ग्रहणे कूपस्थप्रशंसया ग्रहणप्राक्कालीनोद्धृतव्यावृत्तिः। व्याघ्रः। "आदित्यकिरणैः पूतं पुनः पूतञ्च वह्निना। व्याध्यातुरः स्नायात् ग्रहणेऽप्युष्णवारिणा"॥ एवम्भूतं जलं यतोऽत उष्णवारिणापि स्नायादित्यर्थः। व्यासः। "सर्वं भूमिसमं दानं सर्वे व्याससमा द्विजाः। सर्वं गङ्गासमं तोयं ग्रहणे नात्र संशयः"॥ तथा "इन्दोर्लक्षगुणं प्रोक्तं रवेर्दशगु-

णञ्च तत्। गङ्गातीरे तु संप्राप्ते इन्दोः कोटीरवेर्दश"। संयोगपृथक्त्वन्यायात् अत्र श्राद्धं नित्यं काम्यञ्च। तथा च ऋष्यशृङ्ग शातातपौ। "सर्वस्वेनापि कर्त्तव्यं श्राद्धं वै राहुदर्शने। अकुर्वाणस्तु तच्छ्राद्धं पङ्के गौरिव सीदति। चन्द्रसूर्य्यग्रहे यस्तु श्राद्धं विधिवदाचरेत्। तेनैव सकला पृथ्वी दत्ता विप्रस्य वै करे"॥ अत्रामश्राद्धमाह प्रचेताः। "आपद्यनग्नौ तीर्थे च चन्द्रसूर्य्यग्रहे तथा। आमश्राद्धं द्विजैः कार्य्यं शूद्रेण तु सदैव हि"॥ वशिष्ठः "शस्यं क्षेत्रगतं प्रोक्तं सतुषं धान्यमुच्यते। आमं वितुषमित्युक्तं स्विन्नमन्नमुदाहृतम्"॥ योगिनीतन्त्रे। "निरग्ने रामश्राद्धे तु अन्नं न चालयेत् क्वचित्। वृद्धौ तु चालयेदन्नं संक्रमे ग्रहणेषु च"॥ ग्रहणनिमित्तश्राद्धादि मलमासेऽपि कार्य्यं "नित्य नैमित्तिके कुर्य्यात् प्रयतः सन् मलिम्लुचे। तीर्थे स्नानं गजच्छायां प्रेत श्राद्धं तथैव च"॥ इति बृहस्पतिवचनात्। श्राद्धविवेकेऽप्येवम्। "चन्द्रसूर्य्यग्रहे स्नानं श्राद्धदानजपादिकं। कार्य्याणि मलमासेऽपि नित्यनैमित्तिकं तथा"॥ इति कालमाधवीयधृतवचनाच्च। अपिना अन्येऽपि कालदोषाः समुच्चिताः। सारसंग्रहे "सत्तीर्थेऽर्कविधुग्रासे तन्तु दामन पर्वणोः। मन्त्रदीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न शोधयेत्"॥ तन्तु पर्वपरमेश्वरोपवीतदानतिथिः श्रावणी दामन पर्व मदनभञ्जनतिथिश्चैत्रशुक्लचतुर्दशी। रामार्चनचन्द्रिकायां "चन्द्रसूर्य्यग्रहे तीर्थे सिद्धक्षेत्रे शिवालये। मन्त्रमात्रप्रकथनमुपदेशः स उच्यते"॥ गारुड़े। "सूर्य्यग्रहः सूर्य्यवारे सोमे सोमग्रहो भवेत् चूड़ामणिरयम् योगस्तत्रानन्तफलं स्मृतम्। अन्यस्मात् ग्रहणात् कोटिगुणमत्र फलं लभेत्"॥ देवीपुराणे। "यस्य राशौ ग्रहाः पञ्चाथवा सप्त सुराधिप!। ग्रहणं चन्द्रसूर्य्यस्य ग्रहैर्वाष्टमसंस्थितैः॥ बलिदानं प्रकर्त्तव्यं मातृणां पूजनं हितम्। सूर्य्यस्याभ्यर्च्चनं कार्य्यं शिवस्याशुभनाशनम्"॥ न च देवल दर्शनेत्यत्र राहुर्दृश्यतेऽनेनेति व्युत्पत्त्या राहुदर्शनं ग्रहणं न तु तस्य दर्शनमिति वाच्यं "चन्द्रे वा यदि वा सूर्य्ये दृष्टे राहौ महाग्रहे। अक्षयं कथितं पुण्यं तत्राप्यर्के विशेषतः"॥ इतिमार्कण्डेय वचने राहौ दृष्ट इत्य-

भिधानात् राहुं दृष्ट्वाऽक्षयं नर इत्युक्तत्वात् यावद्दर्शनगोचर इति वचनाच्च तच्च दर्शनं चाक्षुषज्ञानं न ज्ञानमात्रं चन्द्रसूर्य्योपरागस्य स्नानादौ संक्रान्तिवत् ज्ञातस्यैव निमित्तत्वात् ज्ञाने प्राप्ते राहुदर्शन इति वचने चन्द्रसूर्य्योपरागे च यावद्दर्शनगोचर इति जावाल वचने च दर्शनपदाच्चाक्षुषज्ञानविषयस्यैव निमित्तता विधीयते तत्रैव दृशिर्मुख्यत्वात्। तथा च संवत्सरप्रदीपे। "चक्षुषा दर्शनं राहोर्यत्तद्ग्रहणमुच्यते। तत्र कर्माणि कुर्वीत गणनामात्रतो न तु"॥ ग्रहणं ग्रहणनिमित्तक कर्मप्रयोजकं राहुदर्शनमप्याख्यातोपस्थापित स्नानादि कर्त्तुः सान्निध्यात्तन्निष्ठमेव लाघवात्। अन्यथा "सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने। नान्दीमुखं पितृगणं पूजयेत् प्रयतो गृही"॥ इति विष्णुपुराणेऽपि स्वपुत्रस्यान्यकर्तृक मुखदर्शने ज्ञातेऽपि श्राद्धं प्रसज्येत। पूर्वलिखित मार्कण्डेयवचने दृष्ट्वेति क्त्वा श्रवणाच्च हेमाद्रिस्तु यावद्दर्शनगोचरस्तावत् पुण्यकालो यदास्तं गतः। न दृश्यते तदा न पुण्यकालः। तथा च ग्रस्तास्तमिते वशिष्ठः पूर्वमेव स्नानार्थं तिष्ठति नोर्द्धं। देवलोऽपि "यथा स्नानञ्च दानञ्च सूर्य्यस्य ग्रहणे दिवा। सोमस्यापि तथा रात्रौ स्नानं दानं विधीयते"॥ निगमोऽपि "सूर्य्यग्रहो यदा रात्रौ दिवा चन्द्रग्रहो भवेत्। तत्र स्नानं न कुर्वीत दद्यात् दानं न क्वचित्"॥ इत्याह माधवाचार्य्योऽपि ग्रस्तास्तमयपर्य्यन्तं दर्शनयोग्यत्वात्तावान् पुण्यकालो भवतीत्याह। एतेनान्यकर्त्तृक दर्शने ग्रस्तास्तानन्तरञ्च यत् स्नानादिकमभिहितं नारायणोपाध्यायेन तद्धेयमिति।

एवञ्च ग्रस्तास्ते ग्रस्तोदये च पुरश्चरणं न सम्भवति स्पर्शादिमुक्तिपर्य्यन्तमित्यभिधानात्। यथा पुरश्चरणचन्द्रिकादिषु। "अथवान्य प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा शुचिः पूर्वमुपोषितः। नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभिमात्रजले स्थितः। यद्वा पुण्योदके स्नात्वा शुचिः पूर्वमुपोषितः। ग्रहणादि विमोक्षान्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः। अनन्तरं दशांशेन क्रमाद्धोमादिकञ्चरेत्। तदन्ते महतीं पूजां कुर्य्यात् ब्राह्मणतर्पणम्। ततो मन्त्रप्रसिद्ध्यर्थं गुरुं संपूज्य तोषयेत्। एवञ्च

मन्त्रसिद्धिः स्याद्देवता च प्रसीदति। अथवान्य प्रकारोऽयं पौरश्चारणिको विधिः। चन्द्रसूर्य्योपरागे च स्नात्वा प्रयतमानसः। स्पर्शादि मोक्षपर्य्यन्तं जपेन्मन्त्रं समाहितः। जपात् दशांशतो होमं तथा होमात्तु तर्पणम्। एवं कृत्वा तु मन्त्रस्य जायते सिद्धिरुत्तमा"॥ गोपालमन्त्रे तर्पणे तु होमसमसंख्यत्वं यथा। "इह गोपालमन्त्राणां तर्पणं होमसंख्यया। समं ज्ञेयन्तु सर्वेषामित्यागमविदोविदुः"॥ पुरस्क्रियाचर्य्यायाम्। "होमाशक्तौ जपं कुर्य्याद्धोमसंख्याचतुर्गुणम्। षड्गुणं चाष्टगुणितं यथासंख्यं द्विजातयः॥ तेषां स्त्रीणान्तु विज्ञेयस्तेषामेव समोजपः। यं वर्णमाश्रितः शूद्रस्तज्जपस्तस्य कीर्त्तितः"॥ तथा "मूलमन्त्रं समुच्चार्य्य तदन्ते देवताभिधाम्। द्वितीयान्तामहं पश्चात्तर्पयामि नमोऽन्तकः। तर्पणस्य दशांशेन मार्जनं कथितं किल। तच्चैवं देवतारूपं ध्यात्वात्मानं प्रपूज्य च। नमोऽन्तं मन्त्रमुच्चार्य्य तदन्ते देवताभिधाम्। द्वितीयान्तामहं पश्चादभिषिञ्चाम्यनेन तु। तोयैरञ्जलिना शुद्धैरभिषिञ्चेत् स्वमूर्द्धनि। मार्जनस्य दशांशेन ब्राह्मणानपि भोजयेत्। विप्राराधनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं भवेद्यतः। जपोऽच्चापूर्वको होमस्तर्पणं चाभिषेचनम्। भूदेवपूजनं पञ्च प्रकारैश्च पुरस्क्रिया"॥

तत्र प्रयोगः। स्नात्वाचम्य तत्सदित्युच्चार्य्य अद्येत्यादि राहुग्रस्ते निशाकरे अमुकगोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा अमुकदेवताया अमुकमन्त्रसिद्धिकामो ग्रासाद्विमुक्तिपर्य्यन्तं तज्जपमहं करिष्ये इत्यभिलप्य तावत्कालं जपेत्। ततः प्रातः पूजयेत्। ततो जपदशांशहोमं कुर्य्यात् तदसम्भवे राहुग्रस्तनिशाकरकालीनामुकमन्त्र जपदशांशहोमसमसंख्याचतुर्गुण जपमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य जपं कृत्वा समर्प्य राहुग्रस्त निशाकर कालीनामुकमन्त्र जपदशांशहोम तद्दशांश तर्पणमहं करिष्ये इति सङ्कल्प्य मन्त्र मुच्चार्य्यामुक देवतामहं तर्पयामि नम इत्यनेन तर्पयेत्। गोपालमन्त्रे तु होमदशांश इत्यत्र होमसमसंख्येति निर्देश्यं ततस्तु राहुग्रस्त निशाकरकालीनामुकमन्त्रजपदशांशहोम तद्दशांश तर्पण तद्दशांशाभिषेक महं

करिष्ये इति सङ्कल्प्यात्मानं देवतारूपं ध्यात्वा नमोऽन्तं मन्त्रमुच्चार्य्यामुकमहमभिषिञ्चामीत्यनेन स्वमूर्द्धन्यञ्जलिनाभिषिञ्चेत्। गोपालमन्त्रे तु होमदशांशेत्यत्र होमसमसंख्येति निर्देश्यम्। ततो महतीं पूजां विधाय तदभिषेकदशांशब्राह्मणभोजनमहं कारयिष्ये इति सङ्कल्प्य ब्राह्मणान् भोजयेत्। गुरुं संपूज्य दक्षिणया तोषयेत्। सूर्य्यग्रहणे तु राहुग्रस्ते दिवाकर इति विशेषः। ग्रहणदर्शने स्नानमावश्यकम्। तथा च वृद्धवशिष्ठः। "संक्रमे ग्रहणे चैव न स्नायाद्यस्तु मानवः। सप्तजन्मसु कुष्ठी स्यात् दुःखभागी च सर्व्वदा"॥ अत्राशौचेऽपि साङ्गं स्नानं कर्त्तव्यं न श्राद्धादि। तथा च संवत्सरप्रदीपगङ्गावाक्यावल्योः स्मृतिः। "सूतके मृतके चैव न दोषो राहुदर्शने। स्नानमात्रन्तु कर्त्तव्यं दानश्राद्धविवर्जितम्"॥ भविष्ये "चन्द्रसूर्य्यग्रहे चैव मृतानां पिण्डकर्म्मणि महातीर्थे तु संप्राप्ते क्षतदोषो न विद्यते"॥ महातीर्थे गङ्गादौ संप्राप्ते तत्तत् क्षेत्रवासादिना सम्यक् प्राप्ते न तु प्रथमप्राप्तिमात्रे संशब्दानर्थक्यापत्तेः। पराशरवचने तीर्थपरस्य तत्तन्निमित्तक कर्म्मणि जननमरणाशौचाभावोक्त्या सुतरां क्षतेऽपि तथा कल्पनायायुक्तत्वाच्च। यथा "दीक्षितेष्वभिषिक्तेषु व्रततीर्थपरेषु च। तपोदानप्रसक्तेषु नाशौचं मृतसूतके"॥ दीक्षितेष्विति यजमानानां सोमयागाङ्ग दीक्षणीयेष्टौ कृतायां दीक्षितत्वं भवति तेन दीक्षणीयेष्ट्युत्तरं कालं यजमानस्य यत् कर्त्तव्यं विहितं तत्राशौचं नास्ति अभिषिक्तेषु प्राप्तराजत्वाभिषेकक्षत्रियेषु तद्विशेष विहित व्यवहारदर्शनादि कर्म्मण्यशौचं नास्ति। व्रतपरो व्रतानुष्ठानप्रसक्तः तीर्थपरस्तत्तत् क्षेत्रवासादिना तन्निमित्तक कर्म्मानुष्ठानप्रसक्तः। एवं तपोदानप्रसक्तेष्वपि नाशौचं। गर्गः। "यस्मिं स्त्रिजन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ। तज्जातानां भवेत् पीडा ये नराः शान्तिवर्जिताः"॥ दीपिकायां "ग्रहण ग्रहपरिपीडित नाडीनक्षत्र दोषशमनाय सह शतपुष्पैः स्नायात् फलिनीफलचन्दनोशीरैः"॥ शतपुष्पा शुलुफा फलिनी प्रियङ्गुः फलं जातीफलं नाडी नक्षत्राणि च आद्यदशम षोड़शाष्टादश त्रयोविंश पञ्चविंशानि। ज्योतिषे

“ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं पूर्णं वा गव्यसर्पिषा। भास्करग्रहणे दद्यान्नाड़ीदोषोपपीड़ितः। घृतकुम्भोपरिनिहितं शङ्खं नवनीतपूरितं दद्यान्नाड्यादिदोषशान्त्यै द्विजाय दोषाकरग्रहणे। राशौ यत्र विधुन्तुदेन तरणिश्चन्द्रोऽथवा ग्रस्यते। तस्माद्वेदहुताश शङ्कररसाः कल्याणदा राशयः। मध्यस्थारविशायकाङ्कदशमाः सामान्यभोगप्रदा युग्मग्लौ तुरगाष्टमाः खलु नृणां यच्छन्ति नेष्टं फलम्”॥ वेदहुताश शङ्कररसाश्चतुस्त्र्येकादशषट् रविशायकाङ्क दशमाः द्वादश पञ्चनवमदशमाः युग्मग्लौ तुरगाष्टमाद्व्येक सप्तमाष्टमाः। कृत्यचिन्तामणौ। “अविकृत सलिलपातैः सप्ताहान्तः सुभिक्षमादेश्यम्। यच्चाशुभं ग्रहणजं तत् सर्वं नाशमुपयाति”॥ अविकृतेति करकादिरहितेत्यर्थः। यत्तु ग्रहणे भोजन विधिनिषेधौ दृष्टोपरागविषयावेव नपुंमात्रविषयौ मानाभावात्। मुक्तिं दृष्ट्वेत्यादिना तस्यैव प्रकृतत्वाच्चेत्याहुः। तन्न मनोरमम्। “चन्द्रस्य यदि वा भानोर्यस्मिन्नहनि भार्गव। ग्रहणन्तु भवेत् तत्र तत्पूर्वां भोजनक्रियाम्। नाचरेत् सग्रहे चैव तथैवास्त मुपागते। यावत् स्यान्नोदयस्तस्य नाश्नीयात्तावदेव तु। मुक्तिं दृष्ट्वा तु भुञ्जीत स्नानं कृत्वापरेऽहनि” इति विष्णुधर्मोत्तरवचनेन सामान्यतो निषेधात् तथैवेतिसग्रहत्वेनैवेत्यर्थः। चन्द्रसूर्य्यग्रहे भुक्त्वा प्राजापत्येन शुध्यति। तस्मिन्नेव दिने भुक्त्वा त्रिरात्राच्छुद्धिरिष्यते” इति देवलवचनेन सामान्यतः प्रायश्चित्तविधानाच्च। तस्मिन्नेव दिने तद्दिवसीय निषिद्ध कालाभ्यन्तरे। “आदित्येऽहनि संक्रान्तौ चन्द्रसूर्य्यग्रहे तथा। पारणञ्चोपवासञ्च न कुर्य्यात् पुत्रवान् गृही”॥ इति निषेधात् पुत्रिणो गृहस्थस्यापि ग्रस्तास्तेऽपि नोपवासः किन्तु ग्रहणानन्तरं पूर्वं वा निर्दोषकाले तेन किञ्चित् भक्ष्यमिति संवत्सरप्रदीपः। ग्रहण पूर्वभोजन निषेधे विशेषमाह वृद्धगौतमः। “सूर्य्यग्रहे तु नाश्नीयात् पूर्वं यामचतुष्टयम्। चन्द्रग्रहे तु यामांस्त्रीन् बालवृद्धातुरैर्विना”॥ चन्द्रस्य ग्रस्तोदये विशेषमाह वृद्धवशिष्ठः। “ग्रस्तोदये विधोः पूर्वं नाहर्भोजनमाचरेत्”॥ बालवृद्धातुरविषये वाचस्पतिमिश्रधृतं मार्कण्डेयवचनम्। “सायाह्ने

ग्रहणं चेत्स्यादपराह्णे न भोजनम्। अपराह्णे न मध्याह्ने मध्याह्ने चेत्सङ्गवे। सङ्गवे ग्रहणं चेत्स्यात् न पूर्वं भोजनक्रिया"॥

अत्रानध्यायोऽपि न दृष्टोपरागमात्रविषयः। "त्र्यहं न कीर्त्तयेद् ब्रह्म राज्ञो राहोश्च सूतके"॥ इति मनुवचने सामान्यतो निषेधात् एष त्र्यहानध्यायो ग्रस्तास्तविषय इति मिताक्षरा। अत्रानिष्टाधिक्यमपि। "ग्रस्तावुदितास्तमितौ शारदधान्यावनीश्वरक्षयदौ सर्वग्रस्तौ दुर्भिक्षमरकदौ पापसंदृष्टौ"॥ इति वचनात्। अन्यत्त्वहोरात्रमनध्यायो याज्ञवल्क्यात् यथा "सन्ध्यागर्जित निर्घात भूकम्पोल्कानिपातने। समाप्य वेदं द्युनिशमारण्यकमधीत्य च॥ पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके। ऋतुसन्धिषु भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च"॥ द्युनिशमहोरात्रम्। पुष्पलिहि चञ्चरीको द्युरह्निवह्नावपांपित्तमिति विश्वप्रकाशात्। ननु तदहोरात्रस्य पञ्चदशीप्रतिपत्घटितत्वात् अनध्यायप्राप्तौ राहुसूतके इत्यनेन पुनरनध्यायाभिधानेऽनुवादापत्तिरिति चेन्न चैत्रश्रावणमार्गशीर्षाणामादि प्रतिपदो नित्या इति ब्रह्मचारि काण्डधृत हारीतवचने एतासामनध्याये नित्यत्वाभिधानादन्यासां काम्यत्वात् आदिप्रतिपदः शुक्लप्रतिपदः। "साच यौधिष्ठिरी सेना गाङ्गेय शरताडिता। प्रतिपत्पाठशीलानां विद्येव तनुतां गता"॥ इति व्यास वचनमपि तावन्मात्रपरं गाङ्गेयो भीष्मः। एवञ्च ऋतुसन्धिष्विति ऋतुसंवत्सराभिप्रायेण ततश्च राहुसूतक इत्यपि नित्यत्वाय अतएव गौतमोक्ताकालिकानध्यायोऽपि सङ्गच्छते। यथा आकालिकानिर्घात भूकम्पराहुदर्शनोल्का इत्याकालिका इति निमित्तकालमारभ्य परेद्युर्यावत् स एव कालस्तत्र भवा एते चोत्कटनिर्घातादिविषया मनुनोल्कायां तथा विधानात् यथा "विद्युत्स्तनितवर्षेषु महोल्कानां च संप्लवे। आकालिकमनध्यायमेतेषु मनुरब्रवीत्"॥ महोल्कानां संप्लवे इतस्ततोऽनेक महोल्कानां सन्निपाते अङ्गादिषु प्रतिप्रसवमाह मनुः। "वेदोपकरणे चैव स्वाध्याये चेव नित्यके। नानुरोधोऽस्त्यनध्याये होममन्त्रेषु चैव हि"॥ पराशरभाष्ये कूर्मपुराणञ्च। "अन-

ध्यायस्तु नाङ्गेषु नेतिहासपुराणयोः। न धर्मशास्त्रेष्वन्येषु पर्वस्वेतानि वर्जयेत्"॥ अङ्गान्याह शिक्षापद्यम्। "छन्दः पादौ तु वेदस्य हस्तौ कल्पोऽथ कथ्यते। ज्योतिषामयनं नेत्रं निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥ शिक्षा घ्राणन्तु वेदस्य मुखं व्याकरणं स्मृतम्। तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते"॥ कल्पो नाना शाखागतलिङ्गादिकल्पितः प्रत्यक्षवेदमूलकः स्वसंज्ञाभिरनुष्ठानप्रतिपादको ग्रन्थ इति कल्पतरुः। ज्योतिषामयनं ज्योतिःशास्त्रं निरुक्तं वैदिकशब्दनिर्वचन ग्रन्थः। पर्वस्वित्यनेन संक्रान्तिपरिग्रहेऽहयन विषुवयोरिव परिग्रहः। तथा च नारदः। "अयने विषुवे चैव शयने बोधने हरेः। अध्यायस्तु न कर्त्तव्यो मन्वादिषु युगादिषु"॥ सन्ध्यागर्जने तु शास्त्रमात्रचिन्तानिन्दा माह कृत्यचिन्तामणौ दुर्वासाः। सन्ध्यायां गर्जिते मेघे शास्त्रचिन्तां करोति यः। चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्या यशोवलम्। प्रादुष्कृतेष्वग्निषु तु विद्युत्स्तनित निस्वने। सज्योतिः स्यादनध्याय इत्याह भगवान् मनुः इति मनु वचनं वर्षाविषयम्। अग्निषु तु आवसथ्यादिषु प्रादुष्कृतेषु होमार्थं प्रज्वलितेषु प्रातःसायं सन्ध्यायामित्यर्थः। तस्यां विद्युत् स्तनितनिस्वने सति सौरनाक्षत्रान्यतर ज्योतिषा सह वर्त्तते यः कालः सदिनमात्रं वा रात्रिमात्रमित्यर्थः। अष्टम्यादिषु विशेषमाह हेमाद्रि धृतापस्तम्बः। उदयेऽस्तमये वापि मुहूर्त्तत्रयगामि यत्। तद्दिनं तदहोरात्रमनध्यायविधौ विदुः"॥ केचिदाहुः क्वचिद्देशे यावत्तु दिननाडिकाः। तावदेव त्वनध्यायो न तन्मिश्रदिनान्तरे। तद्दिनं तां तिथिं प्राप्येत्यर्थः। दिनान्तरे तिथ्यन्तरे तत्र पूर्ववचनमुत्तरमीमांसाध्यायिभिः परिगृहीतं परवचनन्तु अन्य ग्रन्थपरं यत्तु निर्णयामृतधृतं "प्रतिपल्लेशमात्रेण कलामात्रेण चाष्टमी। दिनं दूषयते सर्वं सुरा गव्यघटं यथा"॥ इति। तत् दूषयत इत्यभिधानात् पूर्ववर्त्तितामात्रेण सर्वदिनदूषणाय। यच्चापरमुक्तं ग्रस्तास्तमयपक्षे तद्दिने उपवास एव "मुक्तिं दृष्ट्वा तु भुञ्जीत स्नानं कृत्वापरेऽहनि"॥ इत्यादेः पूर्वदिनभोजनव्यावर्त्तक तयैव सार्थकत्वादिति तदपि न सुन्दरम्। परेऽहनि दृष्ट्वैव स्नात्वा भुञ्जीत रोगादिना तद्दिने

तदकरणे तत्परदिने भोजने तु न दर्शनाद्यपेक्षेत्येतावतैव परेऽहनि इत्यादेः सार्थकत्वात्। एवञ्च "अर्द्धरात्रे व्यतीते तु यदा चन्द्रग्रहो भवेत्। सायन्तत्र न भुञ्जीत न तु प्रातरभोजनम्"॥ इति वृहन्नारदीय वचनस्याप्यसङ्कोचः स्यादत एव नारायणोपाध्यायेन "न स्नानमाचरेद्भुक्त्वा" इत्यादि मनुवचनमप्येतदितरविषयमिति ग्रस्तास्तमिते चन्द्रे प्रातर्भोजनस्याभ्यनुज्ञानादिति चाभिहितम्। एष च दर्शननियमोन रागप्राप्तदर्शन एव मेघादिना तु अदर्शने तु उदयकालमाकलय्यैव भुञ्जीत। "मेघमालादिदोषेण यदि मुक्तिर्न दृश्यते। आकलय्य तु तं कालं भुञ्जीत स्नानपूर्वकम्"॥ इति कृत्यतत्त्वार्णवधृतवचनात्। नचेदमग्रस्तास्तमिति विषयं तावन्मात्रविषयत्वे प्रमाणाभावात्। प्रत्युत ग्रस्तास्तविषय एवेदं सार्थकमन्यत्र दर्शनापेक्षायां प्रमाणाभावात् तत्र मुक्ते शशिनि भुञ्जीत इत्येतावन्मात्रमुक्तम्। यत्तु "सूतके मृतके चैव सूतकं राहुदर्शने। तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावन्मुक्तिर्न दृश्यते"॥ इति वचनं तदपि मुक्त्यवधारणपरम्। तथा च ब्रह्मपुराणम्। "यदैवास्तं गतश्चन्द्रो राहोराननगोचरः। आकलय्य तु तं कालं क्रिया कार्य्या विचक्षणैः"॥ अतएवान्येनापि उदयकालमाकलय्य भुज्यत इति। तथा च संवत्सरप्रदीपे। "ग्रस्ते चास्तं गतेत्विन्दौ ज्ञात्वा मुक्त्यवधारणम्। स्नात्वा पाकादिकं कार्य्यं भुञ्जीतेन्दूदये पुनः"॥ कालमाधवीये भृगुः "ग्रस्तावेवास्तमनन्तु रवीन्दू प्राप्नुतो यदि। तयोः परेद्युरुदये स्नात्वाभ्यवहरेन्नरः’॥ अनयोरुदयमात्रापेक्षोक्ता तस्मान्मुक्तिं दृष्ट्वेति दर्शनापेक्षा निर्विरोधविषय एवेति अशौचातिदेशे तु राहुदर्शनस्य निमित्तता। सूतक इति प्रागुक्तवचने षट्त्रिंशन्मतवचने च दर्शनश्रुतेः। तद्यथा "सर्वेषामेव वर्णानां सूतकं राहुदर्शने। स्नात्वा कर्माणि कुर्वीत शृतमन्नं विवर्जयेत्"॥ अतएव स्मृतिः। "प्रेतश्राद्धे यदुच्छिष्टं ग्रहे पर्युषितञ्च यत्। दम्पत्योर्भुक्तशेषञ्च न भुञ्जीत कदाचन"॥ उच्छिष्टं पाकपात्रेऽवशिष्टम्। ग्रहे उपरागे पर्य्युषितं स्थितं दम्पत्योराश्रमस्वामिनोर्भोजनानन्तरं पाकस्थाल्यामवशिष्टमिति श्राद्धवि-

न्तामणिः। यत्तु देवल वचनम् “एकोद्दिष्टस्य शेषन्तु ब्राह्मणेभ्यः समुत्सृजेत्। पश्चात् स्वयञ्च भुञ्जीत पुनर्मङ्गल भोजनम्”॥ तस्य एकोद्दिष्टस्य शेषं ब्राह्मणेभ्यः समुत्सृजेत् नत्ववशेषयेत् पश्चात् स्वयं पुनर्मङ्गल भोजनं पाकान्तरकृतान्नं भुञ्जीत इत्यर्थः तस्यानाचरणात् शाख्यन्तर विषयम्। ग्रहणादर्शनेनापि मुक्तौ स्नातव्यं मुक्तिमात्रस्यैव जननाशौचनिमित्तत्वात् यथा ब्रह्माण्ड पुराणम्। “ग्रहणे शावमाशौचं विमुक्तौ सौतकं स्मृतम्। तयोः सम्प्राप्तिमात्रेण उपस्पृश्य क्रियाक्रमः”॥ उपस्पृश्य स्नात्वा। संवत्सर प्रदीपे मुक्तौ स्नात्वा पठितव्यम्। “उत्तिष्ठ गम्यतां राहो! त्यज्यतां चन्द्रसङ्गमः। कर्मचाण्डालयोगोत्थं कुरु पापक्षयं मम”॥ इति। सूर्य्यग्रहणे तु सूर्य्यसङ्गम इति विशेषः। अर्कोऽप्याचारवशाद्द्रष्टव्य इति। न च “नेक्षेतोद्यन्त मादित्यं नास्तं यान्तं कदाचन। नोपसृष्टं न वारिस्थं न मध्यं नभसोगतम्”॥ इति मनुवचनेन वैधदर्शन निषेधोऽस्तु जन्म सप्ताष्टेत्यादि निषेधवदिति वाच्यं तत्रोद्यदादित्यादिदर्शनस्य रागप्राप्तस्य साहचर्य्याद्राहुदर्शनस्यापि तथाभूतस्य निषेधः। अतएव “चन्द्रे वा यदि वा सूर्य्ये दृष्टे राहौ महाग्रहे। अक्षयं कथितं पुण्यं तत्राऽप्यर्के विशेषतः”॥ इति मार्कण्डेयवचनं वैधदर्शन परम्। एवञ्च “तैले जले तथावस्त्रमादर्शे च मलान्विते। न पश्येन्न तथा पश्येदुपरक्तं दिवाकरम्”॥ इति विष्णुधर्मोत्तरीयमपि वैधेतरनिषेधकम्। ईक्षितेत्यनुवृत्तौ याज्ञवल्क्यः। नाशुचौ राहुतारका इत्यत्राशुचेः पर्य्युदासाच्छुचेर्दर्शनमनुज्ञातम्। अत्राशुचिर्मूत्रपुरीषोत्सर्गाद्यशौचवान् न तु जननाद्यशौचवान् तत्र दक्षवचनात्। भोजराजः। “एकरात्रं परित्यज्य कुर्य्यात् पाणिग्रहं ग्रहे। प्रयाणे सप्तरात्रन्तु त्रिरात्रं व्रतबन्धने”॥ व्रतबन्धने उपनयने।

अथामावास्या। सा च प्रतिपद्युता ग्राह्या युग्मात्। वराहपुराणे चाण्डाल शपथे। “षष्ठ्यष्टम्यप्यमावास्या उभे पक्षे चतुर्दशी। अस्नातानां गतिं यास्ये यद्यहं नागमे पुनः”॥ अतोऽत्र स्नानमावश्यकम् अतोऽत्र जीवत्पितृकेणापि स्नातव्यम्। “अमास्नानं गयाश्राद्धं दक्षिणामुखभोजनम्। न

जीवत्पितृकः कुर्य्यात् कृते च पितृहा भवेत्" ॥ इति वचनं रागप्राप्तस्नाननिषेधकम्। त्रयोदशीप्रकरणोक्त "भोगाय क्रियते यत्तु स्नानं याद्दच्छिकम् नरैः। इति वचनाच्च। पैठीनसिः। "न पर्वसु तैलं चौरं मांसमभ्युपेयान्नामावास्यायां हरितमपि छिन्द्यात्" इति। पुष्ये तु जन्मनक्षत्रे व्यतीपाते च वैधृतौ। अमायाञ्च नदीस्नानं पुनात्यासप्तमं कुलम्" ॥ अत्र दहत्या जन्म दुष्कृतमिति ज्योतिषे पाठः। व्यासः "अमावस्यां भवेद्वारो यदि भूमिसुतस्य च। गोसहस्रफलं दद्यात् स्नानमात्रेण जाह्नवी ॥ सिनीवाली कुहूर्वापि यदि सोमदिने भवेत्। गोसहस्रफलं दद्यात् स्नानं यन्मौनिना कृतम्" ॥ सिनीवाली चतुर्दशीयुक्तामावास्या व्यस्तापि प्रशस्ता एवमन्यत्रापि वारविशिष्टविधौ न युग्मादरः निरवकाशत्वे न संशयायोगात्। एतच्च मौनमरुणोदयमारभ्य स्नानपर्य्यन्तं न तु स्नानकालमात्रे। तत्र "उच्चारे मैथुने चैव प्रस्रावे दन्तधावने। स्नाने भोजनकाले च षट्सु मौनं समाचरेत्" ॥ इति स्कान्देन तस्य तस्य सामान्यतः प्राप्तत्वात् उच्चारे पुरीषोत्सर्गे। स्मृतिः। "करतोयाजलं प्राप्य यदि सोमयुताकुहूः। अरुणोदयवेलायां सूर्य्यग्रहशतैः समा" ॥ स्नानमन्त्रः। "करतोये सदा नीरे सरित् श्रेष्ठे सुविश्रुते। पौण्ड्रान् प्लावयसे नित्यं पापं हर करोद्भवे"॥ पौण्ड्रान् देश विशेषान्। मरीचिः। "मासे नभस्यमावास्या तस्यां दर्भचयो मतः। अयातयामास्ते दर्भा विनियोज्याः पुनः पुनः" ॥ अत्र "दर्भाः कृष्णाजिनं मन्त्रा ब्राह्मणा हविरग्नयः। अयातयामान्येतानि नियोज्यानि पुनः पुनः" ॥ इति गृह्यपरिशिष्टवचनेनैव सिद्धौ श्रावणामावास्याया उपादानं "वार्षिकांश्चतुरो मासान्नाहरेत् कुशमृत्तिकाः। आददीत त्वभावेऽपि सद्यो यस्योपयोजनम्" इति संवत्सरप्रदीपधृत शिवरहस्यीयस्यापवादकमिति। विद्याकर धृतम्। "संग्रहाद्वत्सरं यावत् शुद्धिः स्यादिध्मवर्हिषाम्। ततः परं न गृह्णीयात् जपादौ यज्ञकर्मणि" ॥ संवत्सरप्रदीपे "अमावास्यान्तु कन्यार्के तीर्थप्राप्तौ तथा नृप। कृत्वा श्राद्धं विधानेन दद्यात् षोड़श पिण्डकम्" ॥ वायुपुराणीय तत्

प्रयोगो यथा। ऊनविंशति दास्यमानपिण्डस्थानानि यथा दक्षिणं भागचतुष्टयेन कृतानि तत्र दक्षिणाग्रान् कुशानास्तीर्य्य "अस्मत् कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते। आवाहयिष्ये तान् सर्वान् दर्भपृष्ठे तिलोदकैः॥ मातामहकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते। आवाहयिष्ये तान् सर्वान् दर्भपृष्ठे तिलोदकैः॥ बन्धुवर्गकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते। आवाहयिष्ये तान् सर्वान् दर्भपृष्ठे तिलोदकैः"॥ इत्येतैस्तिलोदकैरावाह्य "आब्रह्मस्तम्भपर्य्यन्तं देवर्षिपितृमानवाः। तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः। अतीतकुलकोटीनां सप्तद्वीपनिवासिनाम्॥ आब्रह्मभुवनाल्लोकादिदमस्तु तिलोदकम्"॥ इत्येताभ्यां तिलोदकाञ्जलीन् दद्यात् ततो मूलादितः पितृतीर्थेन पिण्डान् दद्यात् तत्र क्रमः। "अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥ मातामहकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥ बन्धुवर्गकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥ अजातदन्ता ये केचित् ये च गर्भे प्रपीड़िताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥ अग्निदग्धाश्च ये केचिन्नाग्निदग्धास्तथा परे। विद्युच्चौरहता ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥ दावदाहे मृता ये च सिंहव्याघ्रहताश्च ये। दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥ उद्बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये। आत्मोपघातिनो ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्॥ अरण्ये वर्त्मनि वने क्षुधया तृष्णया हताः। भूतप्रेतपिशाचाश्च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम्"॥ वने जले। "रौरवे चान्धतामिस्रे कालसूत्रे च ये स्थिताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥ अनेक यातनासंस्थाः प्रेतलोके च ये गताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥ अनेक यातनासंस्था ये नीता यमकिङ्करैः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥ नरकेषु समस्तेषु यातनासु च ये स्थिताः। तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम्॥ पशुयोनिगता ये च पक्षिकीट सरीसृपाः।

अथवा वृक्षयोनिस्था स्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥ जात्यन्तरसहस्रेषु भ्रमन्तः स्वेन कर्मणा। मानुष्यं दुर्लभं येषां तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥ दिव्यान्तरीक्षभूमिष्ठाः पितरो बान्धवादयः। मृता असंस्कृता ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ये केचित् प्रेतरूपेण वर्त्तन्ते पितरो मम। ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा ॥ ये बान्धवा बान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः। तेषां पिण्डो मया दत्तोऽक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे च ये स्थिताः। गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः। ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः। क्रियालोपगता ये च जात्यन्धाः पङ्गवस्तथा। विरूपा आमगर्भाश्च ज्ञाताज्ञाताः कुले मम। तेषां पिण्डो मया दत्तोऽक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥ अब्रह्मणा ये पितृवंश जाता मातुस्तथा वंशभवा मदीयाः। कुलद्वये ये मम दासभूता भृत्यास्तथैवाश्रितसेवकाश्च ॥ मित्राणि सख्यः पशवश्च वृक्षा दृष्टाश्च दृष्टाश्च कृतोपकाराः। जन्मान्तरे ये मम दासभूतास्तेभ्यः स्वधा पिण्डमहं ददामि" ॥ अत्रोनविंशति पिण्डे षोडशपिण्डकं पारिभाषिकं पञ्चाशवत्।

प्रौष्ठपद्यूर्द्ध्वमश्वयुक्कृष्णपक्षस्य प्रतिपदादिपञ्चदशक षष्ठ्यादि दशक एकादश्यादिपञ्चक त्रयोदश्यादित्रिक तिथिरूप कल्पचतुष्टयान्यतमेषु प्रतितिथिषु श्राद्धं कर्त्तव्यं पूर्वं पूर्वकल्पे फलभूयस्त्वं तथा च ब्रह्मपुराणम्। "अश्वयुक्कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कुर्य्यात् दिने दिने। त्रिभागहीनं पक्षं वा त्रिभागं त्वर्द्धमेव वा"॥ अर्द्धमेववेति अर्द्धं कुर्य्यादेवेत्ययोगव्यवच्छेदपरं अर्द्धं तदन्यूनव्यवच्छेदपरं वा उभयथाप्यर्द्धस्यावश्यकत्वं तत्र त्रिभागस्यैवार्द्धत्वे सम्भवति न तु पक्षस्य तथात्वे त्रिभागकरणे अर्द्धमेवेति नियमानुपपत्तेः। अश्वयुगश्विनौ तद्युक्तपौर्णमासो सम्बन्धाल्लक्षणया मासेऽप्यश्वयुक्पदप्रयोगः। ततश्च निमन्त्रणादौ आश्विने मासि कृष्णपक्षे इत्येव स्वारसिकः प्रयोगः कर्त्तव्यः स्वारसिकवाक्ये दिने दिने तिथौ तिथौ। "तिथिरेके दिवसश्चान्द्रमाने प्रकीर्त्तितः"। इति विष्णुधर्मोत्तरीयानुसारेण गौणचान्द्राह्निनस्यापि चान्द्रत्वेनात्र दिनस्यापि तथैव युक्तत्वात् विष्णु-

धर्मोत्तरे । "उत्तरादयनात् श्राद्धे श्रेष्ठं स्याद्दक्षिणायनम् । चातुर्मास्यञ्च तत्रापि प्रसुप्ते केशवे हितम् ॥ प्रौष्ठपद्याः परः पक्षस्तत्रापि च विशेषतः । पञ्चम्यूर्द्धञ्च तत्रापि दशम्यूर्द्ध मतोप्यति । मघायुक्ता तु तत्रापि शस्ता राजंस्त्रयोदशी" ॥ वृहद्राजमार्त्तण्डे । मत्स्यपुराणम् । "कन्यां गते सवितरि दिनानि दशपञ्च च । पार्वणेन विधानेन श्राद्धं तत्र विधीयते" । कार्ष्णाजिनिभविष्योत्तरीययोः । "नभस्यस्यापरे पक्षे श्राद्धं कुर्य्यात् दिने दिने । नैव नन्दादि वर्ज्यं स्यात् नैव वर्ज्या चतुर्दशी" ॥ नभस्यस्येति मुख्यचान्द्रेण भाद्रस्य । अत्र प्रागुक्त देवीपुराणान्मघात्रयोदश्यां पुत्रवता पिण्डरहित श्राद्धेन कृते नैवाश्वयुक्कृष्णश्राद्धस्य निर्वाहो नत्वङ्गभूत पिण्डानुरोधेन श्राद्धान्तरं कर्त्तव्यम् । "प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत् क्रियते पुनः । तदङ्गस्या क्रियायान्तु नावृत्तिर्न च तत् क्रिया" ॥ इति छन्दोगपरिशिष्टात् । एवं प्रेतपक्षादिमृतस्य पार्वणविधिना सांवत्सरिक श्राद्धे कृते मातामहादि श्राद्धाय न पुनः पार्वणारम्भः । "पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ध्रुवम्" । इति वृहस्पतिवचनेन "मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्य्याद्विचक्षणः" ॥ इत्यनेन च पितुः श्राद्धाधीनप्रवृत्तेः । एवमविभक्तसापत्न भ्रात्रोरेकेन पार्वणे कृतेऽपरेण मातामहश्राद्धाय पुनः पार्वणं न करणीयम् । अतएव द्वैत निर्णयेऽपि साग्निकौरसेन पितुः क्षयाहे पित्रादित्रिकस्य श्राद्धे कृते तत्र मातामहश्राद्धाय न पार्वणारम्भः वाजिनवत्तस्याप्रयोजकत्वादित्युक्तम् ।

स्मृतिः । "तीर्थे तिथिविशेषे च गङ्गायां प्रेतपक्षके । निषिद्धेऽपि दिने कुर्य्यात्तर्पणं तिलमिश्रितम्" ॥ गङ्गायतिरिक्त तिलतर्पणस्य निषेधमाह "पित्रोः श्राद्धे रवौ शुक्रे संक्रान्त्यां निशिसन्ध्ययोः । सप्तम्यां वर्षवृद्धौ च न कुर्य्यात्तिलतर्पणम्" ॥ प्रपञ्चस्तु मलमासतत्त्वेऽनुसन्धेयः । भविष्ये । "येयं दीपान्विता राजन् ! ख्याता पञ्चदशी भुवि । तस्यां दद्यान्नचेद्दत्तं पितॄणां वै महालये" ॥ महालये कन्यागतापरपक्षे नचेद्दत्तं मलमासादिना अमावास्यायामपि । मलमासे श्राद्धा-

भावमाह कौथुमिः। "संवत्सरातिरेको वै मासो यः स्यात्त्रयोदशः। तस्मिं स्त्रयोदशे श्राद्धं न कुर्य्यादिन्दुसंक्षये" ॥ संवत्सर प्रदीपे। "एकराशिस्थिते सूर्य्ये यदि दर्शद्वयं भवेत्। दर्शश्राद्धं तदादौ स्यात् न परत्र मलिम्लुचे" ॥ यत्तु "जातकर्म्मणि यच्छ्राद्धं दर्शश्राद्धं तथैव च। मलमासेऽपि तत्कार्य्यं व्यासस्य वचनं यथा" इति व्यासवचनं तत्पिण्डपितृयज्ञाख्यश्राद्धपरमिति मलमासतत्त्वे विवृतम्।

अमावास्या श्राद्धकालमाह छन्दोगपरिशिष्टम्। "पिण्डान्वाहार्य्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते। वासरस्य तृतीयांशे नातिसन्ध्यासमीपतः" ॥ पिण्डान्वाहार्य्यकमिति। "ततः प्रभृति पितरः पिण्डसंज्ञास्तु लेभिरे" ॥ इति मत्स्य पुराणात् पिण्डानां पितॄणां अन्वाहार्य्यं श्राद्धं मासैकतृप्तिजनकं यत्तथा तथा च मनुः। "पिण्डानां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्य्यं विदुर्बुधाः" ॥ राजनि चन्द्रे। शस्यत इत्यनेन क्वचिच्चन्द्रक्षयाभावेऽप्यमावास्या श्राद्धं सूचितं एता दृग्व्युत्पत्तेः। साग्निनिरग्निसाधारणत्वाद्वक्ष्यमाण कात्यायनोक्तरीत्या क्षीणा स्तमितावर्द्धमानाभेदः साधारणः। यत्तु "पितृयज्ञन्तु निर्वर्त्य विप्रश्चन्द्रक्षयेऽग्निमान्। पिण्डान्वाहार्य्यकं श्राद्धं कुर्य्यान्मासानुमासिकम्" ॥ इति मनुवचनं तत्साग्निः पिण्डपितृयज्ञं निर्वर्त्य मासानुमासिकं प्रतिमासिकं श्राद्धं कुर्वीतेति क्रमविधायकम् अत्रानुशब्दस्य वीप्सार्थकत्वं तथा च "लक्षणवीप्सेत्थम्भूतेष्वभिर्भागेपरिप्रती। अनुरेषु सहार्थे च हीने उपश्च कथ्यते" ॥ चन्द्रक्षयेऽमावास्यायां न तु कात्यायनोक्त क्षये तथात्वे वर्द्धमानादौ प्रतिमासानुपपत्तेः। एवमेव श्राद्धविवेकः। अतएव तत्रैवामावास्याव्यतिरिक्त कृष्णपक्षविहित पार्वणश्राद्धे ययास्तमिति वचनाद्व्यवस्थेत्युक्तं तत्र साग्निकर्त्तव्यत्वाविशेषितामावास्याव्यतिरेकाभिधानात् क्षीणादिभेदेन व्यवस्था साग्निनिरग्नि साधारणीत्यवगम्यते। एवञ्चामावास्यायां मृताह-नमित्तकौरस क्षेत्रज पुत्र कर्त्तव्य पार्वणेन क्षीयमाणादिना न वस्था किन्तु ययास्तमित्यनेन। एतद्विवृतं मलमासतत्त्वे। त्तु दशम मुहूर्त्तकस्य मत्स्यपुराणोक्तापराह्णिकत्वेऽपि श्राद्धे

तस्य त्यागः। पिण्डपितृयज्ञार्थएवेति वासर तृतीयांशाभिधानं साग्निकपरमेवेति परिशिष्टप्रकाशोक्तं तन्न युक्तं "पूर्वाह्णो वै देवानां मध्यं दिनं मनुष्याणाम् अपराह्णः पितॄणाम्" ॥ इति श्रुत्या तन्मुहूर्त्तस्य मनुष्यकर्माङ्गत्वेन बोधनादेव श्राद्धे परित्यागः। एतत् श्रुतिमूलकमेव वासरस्य तृतीयांश इत्युक्तं वासरस्य तृतीयांशे त्रिधाविभक्तस्य दिनस्य तृतीयभागे नातिसन्ध्यासमीपत इति सन्ध्यासमीपैकमुहूर्त्तं आपद्यपि वर्जनीय इत्यर्थः। तेन "प्रातःकालो मुहूर्त्तां स्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव तु। मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यादपराह्णस्ततः परम् ॥ सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत्। राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु"॥ इति मत्स्यपुराणे निषिद्धमुहूर्त्तत्रये आपदि मुहूर्त्तद्वयमभ्यनुज्ञातम् अतिशब्दस्वरसात्। "त्रिमुहूर्त्तापि पूर्वादर्शा च बह्वृचैः" ॥ इति हारीत वचनाच्च तेन पूर्वदिने मुहूर्त्तत्रयमात्रलाभे परदिने वासरतृतीयांशालाभे पूर्वदिन एव श्राद्धम् एतेन नातिसन्ध्यासमीपत इत्यनेन राक्षसी वेलामात्रं निषिध्यत इति मैथिलमतमपास्तं सर्वकर्मसु स्नानदानादिष्वपि अनापदीत्यर्थं इति श्राद्धविवेकः। तेनाशक्तौ तस्यामपि तत्करणम् अतएव पराशरः "दिवाकरकरैः पूतं दिवा स्नानं प्रशस्यते। अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात्" ॥

दर्शद्वैधे कुत्र श्राद्धमित्याह छन्दोगपरिशिष्टे कात्यायनः। "यदा चतुर्दशी यामं तुरीयमनुपूरयेत्। अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते" ॥ चतुर्दशीयाम चतुर्द्दशी सम्बन्धिदिनयाममिति तद्दिनस्यामावास्यासम्बन्धेऽपि चतुर्दशी निर्द्देशोऽधिकेन व्यपदेशा भवन्तीति न्यायात्। तेन यदा अमावास्याचतुर्दशीसम्बन्धि दिनस्य चतुर्थ प्रहरं कृत्स्नं किञ्चिन्न्यूनं वा अनुपूरयेत्। अत्रानुपूरयेदित्यभिधानात् तुरीययामस्य पादोन दण्डद्वयान्यून प्रथम मुहूर्त्तस्य बहुकालत्वं प्रतीयते। एतेन प्रहर त्रयाभ्यन्तरे किञ्चिदधिक प्रहरत्रये वा चतुर्दशी प्रतीयते। ततश्चोभयवासरीय तृतीयांशसम्बन्धि पञ्चधा विभक्तापराह्णमुहूर्त्तयोर्मुहूर्त्तान्यून दर्शलाभे द्वैधं नत्वेकदिनमात्रे

तल्लाभे। तत्र पूर्वोक्तेन वासरस्य तृतीयांश इत्यनेनैव द्वैधानुदयात्। अतो यद्दिने वासर तृतीयांशे तादृश दर्शलाभस्तत्रैव श्राद्धम्। मुहूर्त्तोन तिथेस्तु कर्मानर्हत्वान्न द्वैधावसरः। तथा च भविष्ये "व्रतोपवासनियमे घटिकैका यदा भवेत्। सा तिथिः सकला ज्ञेया पित्रर्थे चापराह्णिकी॥" इति। अत्र च प्रागुक्त जावालिवचनोक्ता मुहूर्त्तात्मिका घटिका ग्राह्या योग्यत्वात् नत्वेकदण्डात्मिका वक्ष्यमाणरौहिणादिग्रहणे तथा दृष्टत्वाच्च। ततश्च पूर्वोक्तद्वैधे तद्दिवसीय चतुर्दश्यपेक्षया परदिने अमावास्या क्षीयमाणा न्यून कालव्यापिनी न तु पूर्वापर दिवसीय यावच्चतुर्दश्यपेक्षयाऽनुपस्थितेः। एवं स्तम्भितावर्द्धमानयोरपि तदैव पूर्वदर्श एव श्राद्धम्। स्वोक्तचन्द्रक्षयानुरोधात्। यदा त्रिंशद्दण्डात्मकदिवसे चतुर्दश्यधिक चतुर्थयामपूरणे मुख्यापराह्णीय किञ्चिन्न्यूनमुहूर्त्त लाभस्तदापि तदैवेत्यनेन चन्द्रक्षयानुरोधात् पूर्वदिने श्राद्धं नतु मुख्यापराह्णीयमुहूर्त्तलाभेऽपि परदिने अत्र चन्द्रक्षयश्चतुर्दश्यष्टमयामात् प्रभृति अमावास्यासप्तमयामपर्य्यन्तमिति वक्ष्यते। तदैवेत्येवकारश्रवणात्तिथिद्वैधे खण्ड विशेषो नियम्यते कर्मणि खण्डान्तरव्युदासाय। एवञ्च यत्र पूर्वापरदिने वासर तृतीयांशीयमुख्यापराह्णे मुहूर्त्तोनदर्शलाभस्तत्रापि पूर्वदिन एव श्राद्धं वासरतृतीयांश चन्द्रक्षयाति शब्दस्वरसात्। त्रिमुहूर्त्तापीत्यनुरोधाच्च। यत्र तु पूर्वदिने त्रिमुहूर्त्तमात्रव्यापिन्यमावास्या परदिने तृतीयांशमुहूर्त्तव्यापिनी सती क्षीयमाणा तत्र परदिने चन्द्रक्षयाभावेऽपि मुख्यापराह्णलाभात् श्राद्धम् अन्यथा "यदा चतुर्दशीयामं तुरीयमनुपूरयेत्"॥ इति विशेषाभिधानं व्यर्थं स्यात्। अथ यत्र पूर्वाह्णे श्राद्धं तत्र "यदहस्त्वेव चन्द्रमा न दृश्येत ताममावस्यां कुर्वीत"॥ इति गोभिलविरोधः तथाविध चतुर्दशीयुक्तामावास्यायाः सिनीवालीत्वेन प्रातश्चन्द्रदर्शनात्। तत्राह स एव। "यदुक्तं यदहस्त्वेव दर्शनं नैति चन्द्रमाः। ततक्षयापेक्षया ज्ञेयं क्षीणे राजनि चेत्यपि"॥ यदहस्त्वेव चन्द्रमा न दृश्येत ताममावास्यां कुर्वीत"। इति यत् गोभिलसूत्रं तच्चन्द्रक्षयाभिप्रायिकम्

अन्यथा गोभिलीय तादृश सूत्रान्तरेण सह पौनरुक्त्यापत्तेः तस्मात् प्रथमसूत्रं कुहूपरं तच्च वर्द्धमानापक्षे नियतं क्षीणास्तमितयोस्तु यथायोग्यमनुसरणीयम्। एवञ्च "यदहस्त्वेव चन्द्रमा न दृश्येत याममावास्यां कुर्वीत" ॥ इति श्रुतिरेतत् समानार्थकं श्रुत्यन्तरं वा तदपि वर्द्धमानादि परं न तु कात्यायन वचनात्तत्र क्षयलक्षणा कल्पतरु प्रभृतिभिरुक्ता युक्ता "श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी" ॥ इति विरोधात्। क्षीण इति कात्यायनेन मया यत् क्षीणे राजनीत्युक्तं तदपि क्षयाभिप्रायकम्। "यथैवं दृश्यमानेऽप्येकदा" ॥ इति यद्गोभिलस्य सूत्रान्तरं तदर्थं यदहस्त्वेवेत्यादि द्वितीयसूत्र प्राप्ततिथेः सिनीवालीत्वेनैव चन्द्रदर्शन प्राप्तेरित्यत आह स एव। "यच्चोक्तं दृश्यमानेऽपि तच्चतुर्दश्यपेक्षया। अमावास्यां प्रतीक्षेत तदन्ते वापि निर्वपेत्" ॥ दृश्यमानेऽप्येकदेति यदुक्तं तच्चतुर्दश्यां श्राद्धाय पूर्वसूत्रममावास्यापदोपादानाच्चन्द्रक्षये सति अमावास्याविषयम्। इदं पुनरित्यम्भूतचतुर्दशीविषयमिति श्राद्धविवेकः। तत्किममावास्यावच्चतुर्दशीत्यत आह अमावास्यां प्रतीक्षेते त उभय तिथिप्राप्तौ श्राद्धायामावास्या प्रतीक्षणीया यत्र पूर्वदिने दिवासार्द्ध मुहूर्त्तमात्रेऽमावास्या परदिने च सार्द्धदशम मुहूर्त्तमात्रे तत्रोभयदिने श्राद्ध योग्यामावास्या न प्राप्यते तत्र तदन्ते चतुर्दश्यन्ते निर्वपेत् दद्यात्। अत्रैवविषये साग्निनिरग्न्योर्विशेषमाह कालमाधवीये जावालिः। "अपराह्णद्वयाव्याप्तौ यदि दर्शस्तिथिक्षये। आहिताग्नेः सिनीवाली निरग्न्यादेः कुहूर्मता" ॥ आदिशब्दादनुपनीतशूद्रयोर्ग्रहणम्।

क्षयमाह कात्यायनः। "अष्टमेऽंशे चतुर्द्दश्याः क्षीणोभवति चन्द्रमाः। अमावास्याष्टमांशे च ततः किल भवेदणुः" ॥ चतुर्दश्यष्टमे यामे चन्द्रमाः क्षीणः चतुर्थ भागोनकलावशिष्टोभवति। "अत्रेन्दुराद्य प्रहरेऽवतिष्ठते" ॥ इत्यादिस्वरसात्। अमावास्याष्टमे यामे चाणुर्भवति पुनरुत्पद्यते किलेत्यागमवार्त्तायां तेनामावास्यायाः सप्तमे यामे कृत्स्नक्षय इत्यवगम्यते। ततश्चान्त्य कलावयवनाशोत्पत्तिरेव क्षयः सा च सूक्ष्मतायां विनाशेऽप्यस्तीति श्राद्धविवेकः। उत्पत्तिराद्यक्षणसम्बन्धः तेन

विनाशस्यानन्तत्वेऽपि नातिव्याप्तिः। अत्र विशेषमाह स एव। "आग्रहायण्यमावास्या तथा ज्यैष्ठस्य या भवेत्। विशेषमाभ्यां ब्रुवते चन्द्रचारविदो जनाः"॥ आभ्यामिति ल्यप्लोपे पञ्चमी। इमे प्राप्येत्यर्थः चन्द्रचारविदो ज्योतिर्विदः। अत्र पौर्णमास्यन्तमास इति परिशिष्टप्रकाशः। अत्र बीजं ब्रह्मपुराणीयतिथिकृत्यम्। तथा च श्राद्धमधिकृत्य ब्रह्मपुराणम्। "पयोमूलफलैः शाकैः कृष्णपक्षे च सर्वदा"॥ अत्र कृष्णपक्षे चतुर्दशीव्यतिरिक्तायां यस्यां कस्याञ्चित्तिथौ श्राद्धविधानादमावास्यापि लभ्यत इति कोविशेष इत्यत आह स एव। "अत्रेन्दुराद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते चतुर्थभागोनकलावशिष्टः। तदन्त एव क्षयमेति कृत्स्नमेवं ज्योतिश्चक्रविदो वदन्ति"। अत्र मासद्वयेऽमावास्यायां चतुर्थभागोनकलावशिष्टः चतुर्थभागोना या कला तयावशिष्टः कलाभागत्रयमात्रः सन्नाद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते। अर्थात् चतुर्दश्यष्टमयामे क्षयारम्भ इति तदन्त एव अमावस्यान्तयाम एव क्षयं कृत्स्नमेति। अन्यत्रामावास्यासप्तमयाम इति विशेषः। तेन मार्गशीर्षज्यैष्ठयोरुभयदिने चन्द्रक्षयलाभे यद्यपि यदा चतुर्दशीयाममिति वचनात् पूर्वदिन एव श्राद्धं प्राप्नोति तथापि तद्वचनं चन्द्रक्षयानुरोधमूलमिति कृत्स्नक्षयानुरोधात् क्षीणायामपि परत्रापराह्णलाभे श्राद्धम् अन्यथैतद्विशेषाभिधानं व्यर्थं स्यात्। अत्रापि विशेषान्तरमाह स एव। "यस्मिन्नब्दे द्वादशैकश्च यज्ञस्तस्मिंस्तृतीयया परिदृश्यो नोपजायेत" यज्ञोमासः तृतीयया मात्रया चतुर्थभागोनकलया परिदृश्यश्चन्द्रो न भवति किन्तु तदधिक न्यूनकलयेति। तेन मलमासयुताब्दे अन्यमासवदनयोरपि चतुर्दश्यन्त्ययामादिदर्शसप्तमयामपर्यन्तं क्षय इति। मलमासयुताब्दस्तु एकस्मान्मलमासादब्दद्वयानन्तराब्दस्तृतीयेऽब्दे मलमासस्यावश्यम्भावादिति। चन्द्रक्षयानुरूपं क्षीणपक्षमुपसंहरति स एव। "एवं चारं चन्द्रमसो विदित्वा क्षीणे तस्मिन्नपराह्णे च दद्यात्"॥ एवं चारं गतिविशेषम्।

स्तिमितायां व्यवस्थामाह स एव। "सम्मिश्रया चतुर्दश्या अमावास्या भवेत् क्वचित्। खर्वितां तां विदुः केचिदुपेक्ष-

मिति चापरे” ॥ क्षीणायाः पूर्व्वमुक्तत्वात् वर्द्धमानायाश्च वक्ष्यमाणत्वादस्य वचनस्य स्तम्भितापरत्वम्। खर्व्वितां नीचाम्। पितृलोकप्रापणानर्हां केचित् यजुर्व्वेदिनः अपरे ऋग्वेदिनः तामेव उपेध्वमुपगच्छत श्राद्धायेति शेषः उपेध्वमित्यत्र गताध्वामिति पाठे गतः प्राप्तः पितृलोकप्रापणाय अध्वाऽनयेति गताध्वा प्रशस्तेत्यर्थः। तस्माच्छन्दोगा उभयानुरोधादिच्छात उभयादरं कुर्व्वन्ति इति कात्यायनस्वरसः। व्यक्तमाह लघुहारीतः “त्रिमुहूर्त्तापि कर्त्तव्या पूर्व्वादर्शा च बह्वृचैः। कुहूरध्वर्य्युभिः कार्य्या यथेष्टं सामगीतिभिः” ॥ अत्र त्रिमुहूर्त्तेत्युपादानात् स्तम्भितायाः पूर्व्वदिने त्रिमुहूर्त्तमात्र लाभेऽपि बह्वृचानां श्राद्धं मुख्यापराह्णलाभादपि परदिने सामगानां तत्राप्यनियमः एतादृग्विषय एव उभयत्रापराह्णालाभेऽपीयं व्यवस्थेति श्राद्धविवेकः। मुख्यापराह्णस्य एकदिन मात्र लाभेऽप्युभयदिनालाभात्।

वर्द्धमानायां व्यवस्थामाह कात्यायनः। “वर्द्धमानाममावास्यां लक्षयेदपरेऽहनि। यामांस्त्रीनधिकान् वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत्” ॥ यामांस्त्रीनिति पूर्व्वदिवसीय यामत्रयन्यून चतुर्द्दश्यपेक्षया अथैवं वासर तृतीयांशानुरोधेन श्राद्धविधानात् कथममावास्याश्राद्धे पर्य्युदस्तरात्र्यादीतरकालपरिग्रहः सत्यम्। तिथिद्वैधे क्षीणादिभेदेन खण्डविशेषपरिग्रहाय वासर तृतीयांशापेक्षा अन्यथोभयदिने वासर तृतीयांशाप्राप्तौ श्राद्धलोपापत्तेः प्रागुक्त निरग्न्यादेः कुहूमतेत्यस्य निर्व्विषयतापत्तेश्च अतः पर्य्युदस्तेतरकालस्यापि परिग्रहः यदा तु पूर्व्वापरखण्डयोरन्यतरस्यैव परिग्रहस्तदा यथा योग्यं तत्रैव सायाह्न मुहूर्त्तद्वय पर्य्युदस्तेतरकाल कुतपादि मुहूर्त्तपञ्चक रौहिणादि मुहूर्त्तचतुष्टय वासर तृतीयांशीयापराह्णमुहूर्त्तद्वयकाला यथाक्रममापत् सामान्यप्रशस्त प्रशस्ततर प्रशस्ततमत्वेन ज्ञेयाः एवमखण्डतिथावपि नातिसन्ध्यासमीपत इति पूर्व्वोक्तत्वात्। “सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत्” इति मत्स्यपुराणात् “रात्रौ श्राद्धं न कुर्व्वीत राक्षसीकीर्त्तिता हि सा। सन्ध्ययोरुभयोश्चैव सूर्य्ये चैवाचिरोदिते”

इति मनुवचनाभ्याम् "ऊर्द्ध्वं मुहूर्त्तात् कुतपात् यन्मुहूर्त्तं चतुष्टयम्। मुहूर्त्तपञ्चकं वापि स्वधाभवनमिष्यते" इति मत्स्यपुराणात् मुहूर्त्तपञ्चकमित्यत्र कुतपादिति ल्यप्लोपे पञ्चमी कुतपमारभ्येत्यर्थः। ततस्तेनैव "अपराह्णे तु संप्राप्ते अभिजिद्रौहिणोदये। यदत्र दीयते जन्तोस्तदक्षयमुदाहृतम्"॥ इत्युक्तम्। "पूर्वाह्णो वै देवानां मध्यं दिनं मनुष्याणाम् अपराह्णः पितॄणाम्"॥ इति श्रुतेः। वासरस्य तृतीयांश इति कात्यायनवचनं सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेदित्येषामेकवाक्यत्वाद्वासरतृतीयांशीयापराह्ण मुहूर्त्तद्वयस्य लाभ इति। अत्र "दर्शश्राद्धन्तु यत् प्रोक्तं पार्वणं तत् प्रकीर्त्तितम्। अपराह्णः पितॄणान्तु तत्र दानं प्रशस्यते"॥ इति शातातपीय वचने प्रशस्यत इत्यभिधानात् "मासि मास्यपरपक्षस्यापराह्णः श्रेयान्"॥ इत्यापस्तम्बवचने श्रेयानित्यभिधानाच्च प्रशस्यतारतम्यं कल्प्यते न तु मुख्यकल्पानुकल्पत्वमिति। अपरपक्षस्य कृष्णपक्षमात्रस्य तथा च श्रुतिः "पूर्वः पक्षो देवानामपरःपक्षः पितॄणाम्" इति एवञ्चामावास्या न निमित्तान्तरं किन्तु कृष्णपक्षनिमित्तकश्राद्धस्य प्रशस्तकालपरा अतएव शक्तेस्तारतम्येन बहून् कल्पानाह गोतमः। "अथ श्राद्धममावास्यायां पितृभ्यो दद्यात् पञ्चमी प्रभृति वापरपक्षस्य यथा श्राद्धं सर्वस्मिन् वा द्रव्यदेशब्राह्मण सन्निधौ वा कालनियमः शक्तित इति"॥ योऽयममावास्यादि कालनियमः स शक्तस्य सद्द्रव्यस्यारोगिणोबोद्धव्य इति श्राद्धविवेकः। अतएवामावास्यायामति प्राशस्त्यमाह निगमः। "अपरपक्षे यदहः सम्पद्यते अमावास्यायान्तु विशेषेण"॥ तथा च मनुः। "कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम्। श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः"॥ अत्र चतुर्दशी वर्जनं तदन्ते वापि निर्वपेदित्युक्त विषयेतरविषयमन्यथा तद्वचनं व्यर्थं स्यात् नचेदं शस्त्रहत पितृमात्रविषयं तस्य प्रकरणभेदादनुपस्थितेः अमावास्यायाः प्रतीक्षायाः असम्भवे चतुर्दशी विधानाच्च। यत्तु "कार्य्यं श्राद्धममावास्यां मासि मास्युडुपक्षये"। इति मार्कण्डेयपुराणेऽभिहितं तन्मासि मासि यत् कार्य्यं श्राद्धं तच्चन्द्रक्षयेऽमावास्यां प्राप्यातिप्रशस्तं

गौतमादि वचनैकमूलत्वाच्चन्द्रक्षयाभावेऽपि वर्द्धमानादौ श्राद्धविधानेनामावास्याया अलाभेऽपि चतुर्दश्यन्तयामे श्राद्धविधानेन च विशिष्टविध्यनुपपत्तेश्च। यत्तु "अमावास्याष्टका कृष्णपक्षपञ्चदशीसु च"। इत्यभिधाय "एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्य्यात् सर्वेषु पर्वसु। श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम्॥ भार्य्याविरहितोऽप्येतत् प्रवासस्थोऽपि नित्यशः। शूद्रोऽप्यमन्त्रवत् कुर्य्यादनेन विधिना बुधः"॥ इति मत्स्यपुराणम्। तत्र अनुपनीतोऽपीत्यपि शब्देनोपनीतः समुच्चीयते। तत्रानुपनीतस्य जात मात्राहिताग्नेरुपनीतस्य च साग्नेः सम्भवात्तयोः। "न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः" इति मनुना कृष्णपक्षीय श्राद्धस्यामावास्यायां विधानात्तदेकवाक्यतया मत्स्यपुराणे नित्यश इत्यनेनामावास्याया यन्नित्यत्वाभिधानं तत्साग्निपरं कृष्णपक्षस्य यन्नित्यत्वाभिधानं तत्साग्निभिन्नस्य योग्यत्वात् एवमन्यानि वचनानि व्याख्येयानि। अत्र च वसुरुद्रादित्याकारेण पितृपितामहानां ध्यातव्यत्वं श्राद्धविवेकोक्तं व्यक्तमाह "वसुरुद्रादित्यरूपान् श्राद्धार्थे तर्पयेत् पितॄन्। नामगोत्रे समुच्चार्य्य तिलैस्तीर्थेषु संयतः"॥ इति स्मृत्यर्थसारमदनपारिजातधृत वचनमिति वस्वादीनां ध्यानमादित्यपुराणे "प्रसन्नवदनाः सौम्या वरदाः शक्तिपाणयः। पद्मासनस्था द्विभुजा वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः॥ करे त्रिशूलिनो वामे दक्षिणे चाक्षमालिनः। एकादश प्रकर्त्तव्या रुद्रास्त्र्यक्षेन्दुमौलयः॥ पद्मासनस्था द्विभुजाः पद्मगर्भाङ्गकान्तयः। करादिस्कन्धपर्य्यन्तनालपङ्कजधारिणः॥ इन्द्राद्या द्वादशादित्यास्तेजोमण्डलमध्यगाः"। अत्र पितृदयिताप्रयोगान्न्यूनाधिकान्येतानि। "निधायाथ दर्भचयमासनेषु समाहितः। प्रैष्यानुप्रैष्यसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेत्"॥ इति वचनात् "ब्राह्मणानामसंपत्तौ कृत्वा दर्भमयान् द्विजान्। श्राद्धं कृत्वा विधानेन पश्चाद्विप्रेषु दापयेत्"॥ इति श्राद्धसूत्रभाष्यकार समुद्रकरधृत वचनाच्च यस्य प्रेषणस्य प्रत्युत्तरमबाधितं तद्युक्त कर्म्मणो विधानात् दर्भवटुरूप दर्भचयमादाय कर्म्मकरणे निमन्त्रितोऽस्मि क्षमाः स्म इति प्रत्यु-

त्तराभावान्निमन्त्रणर्द्धिप्रश्नाभावः। कुरुष्वेत्यादि प्रत्युत्तराणान्तु अन्येनापि सम्भवादनुज्ञादीनां कर्त्तव्यतैव। अन्नोत्सर्गानन्तरं भोजनात् पूर्वं भोजनकालेऽपि मधुवातेति पाठस्तथा च याज्ञवल्क्यः। "सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इति त्र्यृचम्। जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरं स्तेपि वाग्यताः॥ अन्नमिष्टं हविष्यञ्च दद्यादक्रोधनोऽत्वरः। आतृप्तेश्च पवित्राणि जप्त्वा पूर्वजपं तथा"॥ पूर्वजपमित्यनेन तत्प्राप्तेः अत्र च भोजनात् पूर्वं मधुमध्विति जपानन्तरम् अन्नहीनमित्यादिकं पाठ्यम् "अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद्भवेत्। तत् सर्वमच्छिद्रमस्त्वित्युक्त्वा यत्नेन भोजयेत्"॥ इति यमवचनात्। एवञ्च "यश्चैनं श्रावयेत् श्राद्धे ब्राह्मणान् पादमन्ततः। अक्षय्यमन्नपानन्तत् पितुस्तस्योपतिष्ठते"॥ इत्यादि पर्वणि श्राद्धे भारतीय श्लोक पादादि श्रावणोक्तेः संक्षेपेण भारतवंशद्वयनिरूपकत्वेन दुर्य्योधनो मन्युमयो युधिष्ठिरो धर्म्ममय इति श्लोकद्वयं पठनीयम् अपहृतगुरुगवीमांसकृत श्राद्धमहत्त्वप्रकाशक पितृगाथात्वेन सप्तव्याधा इति च पठनीयम्। अत्र मध्वसम्पत्तौ। "घृतं न लभ्यते यत्र शुष्कक्षीरञ्च होमयेत्। क्षीरस्य च दधि ज्ञेयं मधुनश्च गुड़ो भवेत्"॥ इति मत्स्यसूक्तवचनेन "मधु यत्र न विद्येत तत्र जीर्णगुड़ो भवेत्"। इत्यायुर्वेदीयेनापि प्रतिनिहित गुड़ेऽप्यविकृत एव मधुवातादि मन्त्रः पठनीयः। "तैलं प्रतिनिधिं कुर्य्यात् यज्ञार्थं याज्ञिको यदि। प्रकृत्यैव तदा होता ब्रूयाद्घृतवतीमिति"। इति यज्ञपार्श्व वचनदर्शनात् "शब्देऽविप्रतिपत्तिः"। इति श्रौतकात्यायनसूत्राच्च। प्रतिनिहितद्रव्ये श्रुतशब्दः प्रयोज्यः श्रुतद्रव्यबुद्ध्या प्रतिनिध्युपादानाच्छब्दान्तरप्रयोगे द्रव्यान्तरबुद्धिप्रसङ्गात्। एवं हस्तादावग्नौ करणेऽप्यग्नौ करिष्ये इति।

वैदिकप्रयोगमात्रे प्रणवादित्वमाह योगियाज्ञवल्क्यः। "यन्न्यूनञ्चातिरिक्तञ्च यच्छिद्रं यदयज्ञियम्। यदमेध्यमशुद्धञ्च यातयामञ्च यद्भवेत्। तदोङ्कारप्रयुक्तेन सर्वञ्चाविकलं भवेत्"॥ तस्य पूर्वपाठमाह भगवद्गीतायाम्। "तस्मादो-

मित्युदाहृत्य यज्ञदानतपः क्रियाः। प्रवर्त्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम्”॥ तथोदाहृतं ब्रह्मपुराणे। “तानग्नौ करिष्य इति प्रणतः प्रार्थयेद्द्विजान्। कुरुष्वेति स तैरुक्तो दक्षिणाग्निं समाह्वयेत्”॥ अत्र प्रश्ने तदनुपदेशात् उपदेशेऽधिकगुणत्वं प्रतीयते। इति प्रश्नेऽपि प्रणवादित्वं युक्तम् अतएव पितृदयिताकृत्यप्रदीपादिषु तथा लिखितम्। एवञ्च सर्व्वत्र वैधप्रश्नोत्तरादौ प्रणवादित्वे फलाधिक्यमेव तथा अग्निदग्धेत्यन्नविकरणानन्तरं हस्तद्वयप्रक्षालनाचमन हरिस्मरणं कृत्वा गायत्री मधुवातादित्रयं मधुत्रयञ्च जपेत्। तथा च ब्रह्मपुराणम्। “ततः प्रक्षाल्य हस्तौ च आचम्य च हरिं स्मरेत्। प्रेतभागं विसृज्याथ प्रायश्चित्तोपशान्तये॥ सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीञ्च ततो जपेत्। पाठेन्मधुमतीः पुण्यास्तथा च मधुमध्विति”॥ प्रायश्चित्तोपशान्तये प्रायश्चित्तसाध्या या उपशान्तिस्तत् सिद्धये। गायत्रीजपविधिमाह योगियाज्ञवल्क्यः। “प्रणवं पूर्व्वमुच्चार्य्य भूर्भुवः स्वस्ततः परम्। गायत्रीप्रणवश्चान्ते जपेह्येवमुदाहृता”॥ अत्रान्तेऽपि प्रणवश्रुतेः “तिष्ठेदोदयनात् पूर्व्वां मध्यमामपि शक्तितः। आसीतोड्गमाच्चान्त्यां सन्ध्यां पूर्व्वत्रिकं जपन्”॥ इति छन्दोगपरिशिष्टोक्तं पूर्व्वत्रिकं प्रणवव्याहृतिसावित्रीरूपमिति तत्प्रकाशव्याख्यानञ्च प्रणवत्वेन द्वयोरैक्यादविरुद्धमिति श्राद्धाद्यवसाने पिण्डार्थकुशास्तरणात् पश्चात् अवनेजनात् प्राक् देवताभ्य इति त्रिः पठनीयम्। “उपवेश्य जपेद्धीमान् गायत्रीं तदनुज्ञया। मन्त्रं वक्ष्याम्यहं तस्मादमृतं ब्रह्मनिर्म्मितम्॥ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च। नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्विति॥ आद्यावसाने श्राद्धस्य त्रिरावृत्त्या जपेत् सदा। पिण्डनिर्व्वपणे चैव जपेदेतत् समाहितः॥ पाठ्यमानमिमं श्रुत्वा श्राद्धकाल उपस्थिते। पितरः क्षिप्रमायान्ति राक्षसाः प्रद्रवन्ति च”॥ इति ब्रह्मपुराणात्।

गोत्रपदमेवोच्चार्य्यम्। “गोत्रं स्वरान्तं सर्व्वत्र गोत्रस्याक्षय्यकर्म्मणि। गोत्रस्तु तर्पणे प्रोक्तः कर्त्ता एवं न मुह्यति”॥ इति गोभिलेन विशेषतोऽभिधानात्। एवं “सर्व्वत्रैव पितः

प्रोक्तं पिता तर्पणकर्म्मणि। पितुरक्षय्यकाले तु अक्षयां तृप्तिमिच्छता" ॥ इति गोभिलवचनान्तरात् पितरित्येव वक्तव्यं ससम्बन्धिकशब्दानां पदन्यायेन स्वसम्बन्धिपरत्वाच्च नत्वस्मत् पितरिति अन्यथा एतदस्मदन्नमित्याद्यभिलापापत्तेः एवं यजुर्वेदिनां पिण्डशब्दो नपुंसकलिङ्गेन प्रयुज्यते यथा वनिक्तं पिण्डं दद्यादमावेतत्ते इति श्राद्धविवेकधृतपिण्डपितृयज्ञीयकात्यायनवचने पिण्डविशेषणत्वे नैतदिति नपुंसकनिर्द्देशात् "भाषेतैतच्च वै पिण्डं यच्चदत्तस्य पूरकम्"। इति ऋष्यशृङ्गवचनेऽपि तथा दर्शनाच्च पिण्डान् दत्त्वा करं सम्मार्ज्य प्रक्षाल्याचम्य हरिं स्मरेदित्याह ब्रह्मपुराणम्। "ततो दर्भेषु विधिवत् सम्मार्ज्य च करं ततः। प्रक्षाल्य च जलेनाथ त्रिराचम्य हरिं स्मरेत्" ॥ यद्यपि करसम्मार्जनादीनि पितृपक्षे उक्तानि तथापि पितृपार्वण एव "मातामहानामप्येवं दैव पूर्वं श्राद्धं कुर्वीत"। इति गोभिलसूत्रेण पितृपक्षधर्म्मातिदेशेन एकोद्दिष्टादि श्राद्धेऽपि आवाहनादि निषेधानुपपत्त्या पार्वणधर्म्मातिदेशात् सर्वत्र तानि प्राप्तानि किन्तु पार्वणे षट्पिण्डदानानन्तरं सामगेतराभ्युदयिकादौ नवपिण्डदानानन्तरञ्च तन्त्रेणैतानि कार्य्याणि लाघवात् आग्नेयादित्रयेषु प्रयाजादि तन्त्रतावत् तत्रापि पितृपक्षास्तृतदर्भेषु करसम्मार्जनं लेपभागिनो वृद्धप्रपितामहादीं स्त्रीनुद्दिश्य कर्त्तव्यं "न्युप्य पिण्डां स्ततस्तां स्तेन प्रयतो विधिपूर्वकम्। तेषु दर्भेषु तं हस्तं प्रमृज्याल्लेपभागिनाम् ॥ लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः। पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्" ॥ इति यथास्थानस्थमनुवचनाभ्यां सहैकवाक्यत्वात् इति तदपि दर्भाणां मूले "दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु पुष्पधूपसमन्वितम्। स्वपित्रे प्रथमं पिण्डं दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ ॥ पितामहाय चैवाथ तत्पित्रे च ततः परम्। दर्भमूले लेपभुजस्तर्पयेल्लेपघर्षणैः ॥ पिण्डैर्मातामहांस्तद्वत् गन्धमाल्यादिसंयुतैः। प्रीणयित्वा द्विजाग्र्याणां दद्यादाचमनं ततः" ॥ इति विष्णुपुराणात्। नचैतत् पाठक्रमान्मातामहपिण्डदानात् प्राक्लेपघर्षणमिति वाच्यं "सर्वेषु मधुमध्वित्यक्षन्नमी मदन्तेति

जपित्वा त्रीं स्त्रीन् पिण्डान् दद्यादवनिज्य" इति गोभिलसूत्रे "दर्भेषु त्रीं स्त्रीन् पिण्डान् अवनिज्य दद्यात्" इति कात्यायनसूत्रे च त्रीं स्त्रीनिति वीप्सा दर्शनात् षट्पिण्डदानमध्ये पिण्डदानेति कर्त्तव्यताव्यतिरिक्तानां निवृत्तिः प्रतीयते अतएव पितृदयिता श्राद्धकल्पतरुप्रभृतिभिः षट्पिण्डदानानन्तरमेव करघर्षणं लिखितम्। विष्णुपुराणन्तु दर्भमूलविधायकं न तु क्रमविधायकम् अन्यथा प्रत्यवनेजनदानादेः प्रागपि तदुक्तब्राह्मणाचमनापत्तेः। पुष्पधूपसमन्वितं पिण्डदानं शाखिभेदपरमिति। अतो मतामहपक्षे न करमार्जनमिति एकोद्दिष्टे तु लेपभुजामसम्भवेऽपि निवर्ह्यकरमार्जनप्रत्यावमाचमनहरिस्मरणानि कार्य्याणि साधारणप्रवृत्तप्रागुक्त ब्रह्मपुराणात्।

अत्र श्राद्धचिन्तामणिः। त्रिःपिबेद्वीक्षितं तोयमित्यादिना तावदाचमनं विहितं तदत्र त्रिरावर्त्तते आचारप्रदीपोऽप्येवमिति तन्न "त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विःप्रमृज्यात्ततोमुखम्"। इति मनुवचने उदगग्नेरुत्क्रम्य "प्रक्षाल्य पाणी पादौ चोपविश्य त्रिराचामेत्। द्विःपरिमृजीत पाणि पादावभ्युक्ष्य शिरोऽभ्युक्षयेदिन्द्रियाण्यद्भिः संस्पृशे दक्षिणौ नासिके कर्णौ" ॥ इति गोभिलसूत्रे च त्रिः पिबेदित्यस्यैव त्रिराचामेदित्यत्राभिधानादत्रापि तथैव युक्तत्वात् मनौ गोभिलेऽपि तथार्थत्वे पूर्वापराङ्गाभिधानं व्यर्थं स्यात् तस्मात् ब्रह्मपुराणेऽपि त्रिराचामेत् त्रिः पिबेदित्यर्थः। श्रीदत्तोऽप्येवम्। पिण्डपूजानन्तरं वसन्तायेत्यस्य पाठः। तथाच ब्रह्मपुराणं "पूजयित्वा तु पिण्डस्थान् पितृंश्च प्रणमेदृतून्। वसन्ताय नमस्तुभ्यं ग्रीष्माय च नमोनमः॥ वर्षाभ्यश्च शरत् संज्ञ ऋतवे च नमः सदा। हेमन्ताय नमस्तुभ्यं नमस्ते शिशिराय च॥ माससंवत्सरेभ्यश्च दिवसेभ्यो नमो नमः"॥ इति ब्राह्मणनिमन्त्रणपक्षे यमः। "प्रार्थयेत्तु प्रदोषान्ते भुक्तान्नं शयितान् द्विजान्। सर्वायासविनिर्मुक्तैः कामक्रोधविवर्जितैः। भवितव्यं भवद्भिश्च श्वोभूते श्राद्धकर्म्मणि॥ ते तं तथेत्यविघ्नेन याति चेद्रजनो सुखम्"॥ प्रार्थयेत् निमन्त्रणपूर्वकं नियममर्थयेत्।

तन्नियममाह सर्वायासेत्यादि। ते ब्राह्मणास्तं निमन्त्रयितारं तथेत्यूचुरिति शेषः। एकैक ब्राह्मणनिमन्त्रणपक्षेऽपि प्रकृतावूहाभावान्न बहुवचनस्थाने एकवचनोहः नवाबाधः वैभक्तिकार्थापेक्षया प्राथमिकत्वेन बलवतः प्रातिपदिकार्थस्य समवेतार्थत्वेन नियोज्यत्वात् किन्त्वविकृत एव मन्त्रः पाठ्यः। मत्स्यपुराणे। "त्वं मयात्र निमन्त्रित इत्युपक्रम्य बहुवचनान्त मन्त्रपाठाच्च तद्यथा;" "दक्षिणं जानु आलभ्य त्वं मयात्र निमन्त्रितः। एवं निमन्त्र्य नियमान् श्रावयेत् पैतृकान् बुधः"॥ तन्नियममाह "अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः। भवितव्यं भवद्भिश्च मया च श्राद्धकर्म्मणि"॥ प्रकृतावेवं प्राप्तत्वात् एकोद्दिष्टेऽपि नोहः। एवं देवताभ्यः पितृभ्यश्चेत्यनूह एव पाठ्यः पितृपदस्याग्निष्वात्तादिपरत्वात् अत्र परदिननिमन्त्रणे सर्वायासेत्यस्य न पाठः श्वः पदानन्वयात् किन्त्वक्रोधनैरित्यस्य पाठः।

स्मृतिः। "प्रातःकाले पितृश्राद्धे षष्ठ्याञ्च द्वादशीषु च। सुरापानसमं तैलं पितरं नरकं नयेत्"॥ पुष्पवासितादौ प्रतिप्रसवमाह स्मृतिः। "घृतञ्च सार्षपं तैलं यत्तैलं पुष्पवासितम्। अदुष्टं पक्वतैलञ्च स्नानाभ्यङ्गे च नित्यशः"॥ पित्र्ये कर्म्मणि दक्षिणामुखेन पादौ प्रक्षालनीयौ। "प्रथमं प्राङ्मुखः स्थित्वा पादौ प्रक्षालयेच्छनैः। उदङ्मुखो वा दैवत्ये पैतृके दक्षिणामुखः"॥ इति देवलवचनात्। राघवभट्टधृतं वास्तुशास्त्रकृद्यमवचनम्। "श्राद्धाधिकरणे यत्र नार्च्चितो वास्तुदैवतः। तत्र शून्यं भवेत् सर्वं रक्षोविघ्नादिभिर्हृतम्। तस्माद्वास्त्वर्च्चनं कार्य्यं सम्यक् सम्पदमीप्सुभिः"॥ अन्नपाके सपिण्डाधिकारमाह कल्पतरौ देवलः। "तथैवामन्त्रितो दाता प्रातः स्नातः सहाम्बरः। आरभेत नवैः पात्रैरन्वारम्भं सबान्धवः"॥ श्राद्धचिन्तामणावप्येवम्। तथैवामन्त्रित इति पाठे सर्वायासविनिर्मुक्तत्वादिभिर्निमन्त्रित इत्यर्थः। सहाम्बर इति द्वितीयवस्त्रप्राप्त्यर्थम् एकवस्त्रस्य नग्नत्वप्रतिषेधेन प्राप्तत्वात् एतेन कुशरज्ज्वादिवस्त्रप्रतिनिधिर्नात्र भवतीति सूचितम्। एवमेव स्नाने ब्रह्मदत्तभाष्यकल्पतरवः। ब्रह्मपुराणे।

"परकीय गृहे यस्तु स्वान् पितॄं स्तर्पयेज्जडः। तद्भूमिस्वामिनस्तस्य हरन्ति पितरो बलात्। अग्रभागं ततस्तेभ्यो दद्यान्मूल्यञ्च जीवताम्"॥ गृह इति भूमिमात्रपरं तद्भूस्वामिपितृहरणस्य हेतुत्वेनाभिधानात् मूल्यदानाग्रदानयोः प्रत्येकं हरणनिवर्त्तकत्वेन वैकल्पिकत्वं ततश्च श्राद्धविघातनिवर्त्तकत्वेन तदङ्गत्वात् पितृरीत्या भूस्वामिपितृभ्यः प्रथमतो देयम्। अतः पार्व्वणादौ प्राचीनावीतित्वादिना नान्दीमुखे उपवीतित्वादिनेति। अत्र पितृपदस्य प्राप्तपितृलोकमात्रपरत्वे प्रेतानां हरणासम्भवात्। सुतरां स्वधेति निर्देश्यम्। प्रमीतमात्रपरत्वेऽपि "न स्वधाञ्च प्रयुञ्जीत प्रेतपिण्डे दशाह्निके"। इति ऋष्यशृङ्गवचने दशाह्निकत्वश्रवणादन्यत्र स्वधा प्रयोगादत्रापि तथा। असवर्णौर्द्धदैहिकनिषेधस्य भ्रात्रादिप्रकरणीयत्वादन्यभूमात्रे अग्रदानमिति भीष्मतर्पणेऽप्युक्तं श्रीदत्तोऽप्येवम्। लिङ्गपुराणे "शालग्रामशिलाग्रे तु तच्छ्राद्धं क्रियते नृभिः। तस्य ब्रह्मान्तिकं स्थानं तृप्ताश्च पितरो दिवि"॥ विष्णुपुराणे "चित्तञ्च वित्तञ्च नृणां विशुद्धं शस्तश्च कालः कथितो विधिश्च। पात्रं यथोक्तं परमा च भक्तिर्नृणां प्रयच्छन्त्यभिवाञ्छितानि"॥ ब्रह्मपुराणे। "यस्त्वासन्नमतिक्रम्य ब्राह्मणं पतितादृते। दूरस्थं भोजयेन्मूढो गुणाढ्यं नरकं व्रजेत्॥ तस्मान्नातिक्रमेत् प्राज्ञो ब्राह्मणान् प्रातिवेश्यकान्। सम्बन्धिनः तथा सर्व्वान् दौहित्रं विट्पतिं तथा॥ भागिनेयं विशेषेण तथा बन्धून् गृहाधिपान्। नातिक्रामेन्नरश्चैतान् सुमूर्खानपि गोपते। अतिक्रम्य महारौद्रं रौरवं नरकं व्रजेत्"॥ ब्राह्मणोऽत्राल्पविद्यः। मूर्खब्राह्मणातिक्रमे दोषभावस्य व्यासादिभिर्नास्ति मूर्खे व्यतिक्रम इत्यनेनाभिधानात्। विट्पतिर्जामाता सुमूर्खानिति सम्बन्धि दौहित्रादि विशेषणमिति कल्पतरुरत्नाकरौ। मत्स्यसूक्तेः "शस्ताः समूला दर्भाश्च गुच्छेन चाधिककं फलम्" इति अग्नौ करणहोमे मत्स्यपुराणम्। "अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेव जलेऽपि वा"। यत्तु श्राद्धान्नपरिवेशनन्तु दक्षिणपाणिमात्रेणैव अङ्गानभिधानादिति मैथिलोक्तं तन्न "एकेन पाणिना दत्तं शूद्रदत्तं न भक्षयेत्"।

इत्यादि पुराणीयेनैकपाणिदत्तभक्षणनिषेधेन तन्मात्रपरिवेशनस्यापि निषिद्धत्वात् व्यक्तं मत्स्यपुराणीयपितृकल्पे "उभाभ्यामपि हस्ताभ्यामाहृत्य परिवेशयेत्"। पाणिभ्यामपि पात्रान्तरितं कृत्वा देयम्। "हस्तदत्ताश्च ये स्नेहा लवणं व्यञ्जनानि च। दातारं नोपतिष्ठन्ते भोक्ता भुङ्क्ते च किल्बिषम्॥ तस्मादन्तरितं देयं पर्णेनाथ तृणेन वा। प्रदद्यान्न तु हस्तेन नायसेन कदाचन"॥ इति वशिष्ठेन सामान्यतो विधानात् पितृभक्तितरङ्गिण्यामप्येवम्। बृहस्पतिः "यद्येकं भोजयेत् श्राद्धे स्वल्पत्वात् प्रकृतस्य च। स्तोकं स्तोकं समुद्धृत्य तेभ्योह्यन्नं निवेदयेत्"॥ प्रकृतं श्राद्धोचितं द्रव्यं स्तोकं स्तोकं पात्रे समुद्धृत्य एकस्मिन्नेव पित्रादिभ्यो विभज्यान्नं निवेदयेत् संकल्पयेदित्यर्थः।

वृषकृष्णभूजातेनैव वैधकर्म्माचरणं तथा च हरिवंशे शक्रं प्रति सुरभिवाक्यम्। "कर्षकान् पुङ्गवैर्वाह्यैर्मेध्येन हविषासुरान्। श्रियं शक्रत् प्रवृत्तेन तर्पयिष्यामहे वयम्"॥ अत्र पुङ्गवैरित्युपादानात् तेन च स्त्री गवीवाहनस्यावैधत्वेन तज्जातद्रव्यस्यावैधत्वं प्रतीयते। श्राद्धीयपात्रनिषेधे पैठीनसिः। "सौसकायसपाषाणपात्राणि हीनपात्राणि भग्नपात्राणि चेति"। हारीतः। "हीनपात्रन्तु तत् प्रोक्तं न्यूनमष्टाङ्गुलात्तु यत्"। स्मृतिसारसागरे स्मृतिः। "नारिकेलजलं कांस्ये ताम्रपात्रे स्थितं मधु। गव्यञ्च ताम्रपात्रस्थं मद्यतुल्यं घृतं विना॥ ताम्रपात्रघृतं मांसं यच्च गव्यं घृतेतरत्। आमिषन्तु गवां मासं दधिमद्यं पयोरजः॥ द्रव्यान्तरयुतं मांसं पयसा संयुतं दधि। पयोऽनुद्धृतसारञ्च ताम्रपात्रे न दुष्यति"॥ एतत् परार्द्धानुसाराच्छारदातिलकोक्तम्। "ततश्च संस्कृते वह्नौ गोक्षीरेण चरुं पचेत्। अस्त्रेण क्षालिते पात्रे नवे ताम्रमयादिके"॥ अस्त्रेण अस्त्रमन्त्रेण। वृद्धशातातपः। पात्रे तु मृण्मये यस्तु श्राद्धे भोजयते पितॄन्। स वै दाता पुरोधाश्च भोक्ता च नरकं व्रजेत्॥ गुणांश्च सूपशाकाद्यान् पयोदधि घृतं मधु। विन्यसेत् प्रयतः सम्यक् भूमावेव समाहितः"॥ भूमौ न तु पात्रान्तरोपरि तत्तत् पात्राणि। मार्कण्डेय-

पुराणम्। "अभक्ष्यं यत् स्वरूपेण निषिद्धं स्नातकेषु च। वर्जनीयं प्रयत्नेन तद्द्रव्यं श्राद्धकर्म्मणि" ॥ विष्णुः। "कुष्माण्डालाबुवार्त्ताकी ग्राम्यमाहिषदुग्धकम्। पालङ्कीं राजिकां श्राद्धे द्विःस्विन्नञ्च विवर्जयेत्" ॥ द्विः स्विन्नञ्च तदेव यत् सूपकार शास्त्रोक्तापेक्षितपाकनिष्पत्त्यनन्तरं शैत्यादिनिवृत्तये पुनः पाकान्तरमुक्तं नत्वर्द्धपाकानन्तरतच्छास्त्रोक्तसम्भारणरूपपाकान्तरसिद्धं व्यञ्जनादि अतीतार्थक्तनिर्देशात् अतएव भृष्टानन्तरं गुड़ादिपक्वं मोदकादिकं शिष्टैर्दीयते भुज्यते च अन्यथा द्विः संस्कृतस्य तस्य भोज्यत्वं न स्यात् "पर्य्युषितं पुनः सिद्धमभोज्यमन्यत्र हिरण्योदकस्पर्शात्" इति सुमन्तूक्तेः शातातपोऽपि। "गोकुले कन्दुशालायां तैलयन्त्रेक्षुयन्त्रयोः। अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीषु बालातुरेषु च" ॥ बालोऽत्र पञ्चवर्षाभ्यन्तरवयस्कः अमीमांस्यानि शौचाशौचभागितया न विचारणीयानीति भवदेवभट्टरत्नाकरादयः। अतएव कूर्म्मपुराणम्। "कन्दुपक्वानि तैलेन पायसं दधि शक्तवः। द्विजैरेतानि भोज्यानि शूद्रगेहकृतान्यपि" ॥ कन्दुपक्वं जलोपसेकं विना केवलपात्रे यत् वह्निना पक्वं भृष्टतण्डुलादि। यमोऽपि। "अपूपाश्च करम्भाश्च धाना वटकशक्तवः। शाकं मांसमपूपञ्च सूपं कृषरमेव च ॥ यवागुं पायसञ्चैव यच्चान्यत् स्नेहसम्भवम्। सर्वं पर्य्युषितं भक्ष्यं सूक्तञ्च परिवर्जयेत्" ॥ घृतपक्वापक्वतया पूपापूपद्वैविध्यं सूक्तं यन्मधुरं कालवशादम्लतां गतमिति प्रायश्चित्तविवेकः। करम्भो दधिशक्तवः। मनुः "दधिभक्ष्यञ्च सूक्तेषु सर्वञ्च दधिसम्भवम्"। भक्ष्यमिति शेषः।

देवलः। "ये चात्र विश्वदेवार्थं विप्राः पूर्वं निमन्त्रिताः। प्राङ्मुखान्यासनान्येषां द्विदर्भोपस्थितानि च ॥ दक्षिणामुखयुक्तानि पितृणामासनानि च। दक्षिणाग्रैक दर्भाणि प्रोक्षितानि तिलोदकैः ॥ ब्रह्मपुराणे। "पृथक् पृथक् चासनेषु तिलतैलेन दीपकाः। अविच्छिन्नास्तथा देयास्ते तु रक्षन्ति वै द्विजान्" ॥ आसनेषु तत्सन्निधानेषु अविच्छिन्ना श्राद्धकालावधिस्थायिनः। विष्णुपुराणे पिण्डानुपक्रम्य "पूजयित्वा द्विजाग्र्याणां दद्यादाचमनं ततः। पैत्रेभ्यः प्रथमं भक्त्या

तन्मनस्को नराधिप। सुस्वधेत्याशिषा युक्तां दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम्। द्विजाग्र्याणां विश्वदेवादि पञ्चत्रय श्राद्धभोक्तृणाम्"॥ पैत्रेभ्यः प्रथमं भक्त्या तेषां ब्राह्मणानां मध्ये पितृब्राह्मणेभ्यः प्रथमम् आचमनं दक्षिणाञ्च दद्यात् ततश्च दक्षिणाया दैवादित्वाभावः प्रतीयते। न च मातामहापेक्षया पितृकर्म्ममात्र एव प्राथम्यस्य प्रागुक्तत्वादनुवादापत्तेः सु स्वधेति शाख्यन्तरीयम् इदानीन्तनीया दक्षिणापि शाख्यन्तरीया। यजुःसामविदोस्तु न्युब्जोत्तानानन्तरम्। तथा च कात्यायनगोभिलौ। "उत्तानं पात्रं कृत्वा यथाशक्ति दक्षिणां दद्यात" इति। मत्स्यपुराणे। "दत्त्वा पिण्डान् पितृभ्यस्तु रजतं दक्षिणां दद्यात्। स्वस्तीत्युक्ते द्विजैस्तैस्तु सुरान् हेम्ना प्रतर्पयेत् वाजेवाजे इति जपन् कुशाग्रेण विसर्जयेत्। रतिशक्तिः स्त्रियः कान्ता भोज्यं भोजनशक्तिता॥ दानशक्तिः सविभवारूपमारोग्य सम्पदः। श्राद्धपुष्पमिदं प्रोक्तं फलं ब्रह्मसमागमः"॥ पुष्पं तद्वदल्पं फलं तद्वत् महत्।

बृहस्पतिः। "वन्दिभ्यश्चैवमर्थिभ्योऽप्यन्नार्थिभ्योऽन्नमर्थितः। यदि तत्र न दद्याच्च विफलं शक्तितो भवेत्"॥ वन्दिनो वीर्यस्तोतारः। अर्थितः सन् यदि एभ्योऽन्नं शक्तितो न दद्यात् तदा श्राद्धं निष्फलं भवेदित्यर्थः। तत्र श्राद्धोत्तरकाले आशीर्ग्रहणञ्च "ततः स्वधावाचनिकं विश्वेदेवेषु चोदकम्। दत्त्वाशिषः प्रगृह्णीयात् द्विजेभ्यः प्राङ्मुखः पृथक्" इति मत्स्यपुराणवचनस्य "दक्षिणां दिशमाकांक्षन् याचेतेमान् वरान् पितॄन्" इति मनुवचनस्य च सामञ्जस्यादुपवीती प्राङ्मुखो दक्षिणां दिशं मनसा पश्यन् कुर्य्यादिति वाचस्पति मिश्राः तन्न "पिण्डपितृयज्ञवदुपचारः पित्र्ये" इति गोभिलसूत्रेण वैश्वदेव कर्म्मातिरिक्ते दक्षिणामुखत्वप्रतीतेः। दक्षिणां दिशमाकांक्षन्निति मनुवचनस्य तथार्थत्वे प्रमाणाभावाच्च। अतएव दक्षिणां दिशमाकांक्षन् वीक्ष्यमाण इति टीकाकारैर्व्याख्यातम्। मनुना च आकांक्षन्नित्यनन्तरं "दातारो नोऽभिवर्द्धन्ताम् अन्नञ्चैवेत्युदीरयन्। अभ्युदीरयन्" इत्येव पठितं न तु "अघोराः पितरः सन्तु" इति। मत्स्यपुराणवचनेऽपि अक्षय्योदकदानानन्तरं दत्त्वेति न

पठितं किन्तु "ततः स्वधा वाचनिकं विश्वेदेवेषु चोदकम्" इत्यनन्तरं दत्त्वाशीरित्यर्द्धं पठित्वा "अघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्तः पुनर्द्विजैर्गोत्रं तथा वर्द्धतां नस्तथेत्युक्तः स तैः पुनः। दातारो नोऽभिवर्द्धन्तामन्नञ्चैवेत्युदीरयेत्" इति पठितं ततश्च शाखिविशेषे एतादृशक्रम कर्म्माणि प्राङ्मुखत्वं न तु गोभिलाद्युक्तकर्म्माणि अतएव पितृदयितादावाशीःप्रार्थने प्राङ्मुखत्वं नाभिहितम्।

कुशाग्रेण विसर्जनमाह मत्स्यपुराणं "वाजे वाजे इति जपन् कुशाग्रेण विसर्जयेत्"। तत्र श्राद्धोत्तरकाले देवलः। "निवृत्ते पितृमेधे तु दीपं प्रच्छाद्य पाणिना। आचम्य पाणी प्रक्षाल्य ज्ञातीन् शेषेण भोजयेत्॥ ततो ज्ञातिषु भुक्तेषु स्वान् भृत्यानपि भोजयेत्। पश्चात् स्वयञ्च पत्नी च श्राद्धशेषमुदाहरेत्"॥ निवृत्ते वामदेव्यगानान्ते प्रच्छाद्याच्छाद्येति पारिजातगणेश्वरौ। न तु निर्वापणम्। दीपनिर्वापणात् पुंसः कुष्माण्डच्छेदनात् स्त्रियाः। अचिरेणैव कालेन वंशनाशो भवेत् ध्रुवम्"॥ इति नव्यवर्द्धमानधृतात्। "दीपनिर्वापकोऽन्धः स्यात्" इति वचनाच्च। उदाहरेत् अभ्यवहरेत्। एष च रागप्राप्तत्वान्न विधिः किन्तु श्राद्धाङ्गत्वेन नियमविधिः। तथा च श्राद्धशेषमुपक्रम्यापस्तम्बः। "सर्वस्मात् ग्रासावरार्द्धमश्नीयात्" इति ग्रासावरार्द्धं ग्रास एव अवरार्द्धं निकृष्ट कोटिर्यस्य तत्तथा। अनियमत्वे सर्वस्मादिति श्राद्धशेषविशेषणं व्यर्थं स्यात्। व्यक्तं शिवरहस्ये। "श्राद्धं कृत्वा तु यः शेषं नान्नमश्नाति मन्दधीः। लोभान्मोहाद्भयाद्वापि तस्य तद्विफलं भवेत्"॥ लोभाद्द्रव्यान्तरस्येति शेषः। अत्र लोभादित्यभिधानात् वैधोपवासादौ न नियमः। एवञ्च "यत्किञ्चित् पच्यते गेहे भक्ष्यं भोज्यमथापि वा। अनिवेद्य न भुञ्जीत पिण्डमूले कथञ्चन"॥ इति शङ्खोक्तं न शेषेतरभोजनव्यावर्त्तकं किन्तु यत्किञ्चित् इति श्राद्धार्थत्वेन विशेषणीयम् अन्यथा श्राद्धप्रतिषिद्ध द्रव्याणां भक्ष्यत्वं न स्यात् तेन श्राद्धार्थपक्वं तत्र अदत्त्वा न भोक्तव्यमिति तस्यार्थः।

शातातपः। श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे भुञ्जते ये च जिह्वलाः।

पतन्ति नरके घोरे लुप्तपिण्डोदकक्रियाः"॥ जिह्वला लोलुपाः। विष्णुपुराणम्। "वर्ज्यानि कुर्वता श्राद्धं कोपोऽध्वगमनं त्वरा। भोक्तुरन्यत्र राजेन्द्र! त्रयमेतन्न शस्यते"॥ राजमार्त्तण्डे। "पुनर्भोजनमध्वानं द्यूताध्ययन मैथुनम्। दानं प्रतिग्रहं सन्ध्यां श्राद्धं कृत्वाष्ट वर्जयेत्"॥ नव्यवर्द्धमानधृता स्मृतिः। "पुनर्भोजन मध्वानं द्यूताध्ययनमैथुनम्। दानं सन्ध्यां पुनः स्नानं श्राद्धं कृत्वाष्ट वर्जयेत्"। अध्वानमध्वगमनं क्रोशात् परं न कार्य्यम्। "अध्वगमनमाक्रोशपूरणम्" इति हारीतवचनात्। मैथुनम् ऋतुकालीनमपि तथा च श्राद्धानन्तरं शङ्खलिखितौ। ऋतुस्नातां तदहोरात्रं परिहरेत्" इति। दानं याचितान्नाद्यतिरिक्तपरम्। वन्दिभ्यश्चेति प्रागुक्तत्वात्।

ज्योतिषे "तुलाराशिगते भानौ अमावास्यां नराधिप!। स्नात्वा देवान् पितॄन् भक्त्या संपूज्याथ प्रणम्य च॥ कृत्वा तु पार्वणश्राद्धं दधिक्षीरगुड़ादिभिः। ततोऽपराह्णसमये घोषयेन्नगरे नृपः॥ लक्ष्मीः सम्पूज्यतां लोका उल्काभिश्चापि वेष्ट्यताम्"॥ दर्शद्वैधे प्रदोषव्याप्त्या निर्णयः। "तुलासंस्थे सहस्रांशौ प्रदोषे भूतदर्शयोः। उल्काहस्ता नराः कुर्य्युः पितॄणां मार्गदर्शनम्"॥ इति ज्योतिषात्। उभयतः प्रदोषप्राप्तौ परदिन एव युग्मात्। "दण्डैको रजनीयोगो दर्शस्य स्यात् परेऽहनि। तदा विहाय पूर्वेद्युः परेऽह्नि सुखरात्रिका"॥ इति ज्योतिर्वचनाच्च। उभयत्र प्रदोषाप्राप्तावपि उल्कादानं परदिने पूर्वोक्तपार्वणानुरोधात्। "भूताहे ये प्रकुर्वन्ति उल्काग्रहमचेतसः। निराशाः पितरो यान्ति शापं दत्त्वा सुदारुणम्"। इति ज्योतिर्वचनाच्च। अत्रैव लक्ष्मीः पूर्वाह्णे रात्रौ पूज्या "अमावास्या यदा रात्रौ दिवाभागे चतुर्दशी। पूजनीया तदा लक्ष्मीर्विज्ञेया सुखरात्रिका"॥ इति ज्योतिर्वचनात् उल्काग्रहणादि पितृकृत्यत्वात् प्राचीनावीतिना दक्षिणामुखेन कर्त्तव्यम्। तथा च मनुः "प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा पित्र्यमानिधनात् कार्य्यं विधिवद्दर्भपाणिना"। इति तत्र ग्रहणमन्त्रः। "शस्त्राशस्त्रहतानाञ्च भूतानां भूतदर्शयोः।

उज्ज्वल ज्योतिषा देहं दहेय व्योमवह्निना" ॥ दानमन्त्रश्च । "अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम । उज्ज्वलज्योतिषा दग्धास्ते यान्तु परमां गतिम्"॥ इति विसर्जनमन्त्रः । "यमलोकं परित्यज्य आगता ये महालये । उज्ज्वलज्योतिषा वर्त्म प्रपश्यन्तो व्रजन्तु ते" ॥ इति ब्रह्मपुराणम् । "अमावास्यां यदा देवाः कार्त्तिके मासि केशवात् । अभयं प्राप्य सुप्ताश्च क्षीरोदार्णवसानुषु ॥ लक्ष्मीर्दैत्यभयान्मुक्ता सुखं सुप्ताम्बुजोदरे । चतुर्युगसहस्रान्ते ब्रह्मा स्वपिति पङ्कजे ॥ अतोऽत्र विधिवत् कार्य्या मनुष्यैः सुखसुप्तिका । दिवा तत्र न भोक्तव्यमृते बालातुराज्जनात् ॥ प्रदोषसमये लक्ष्मीं पूजयित्वा यथाक्रमम् । दीपवृक्षास्तथा कार्य्या भक्त्या देवगृहेष्वपि ॥ चतुष्पथश्मशानेषु नदीपर्वतसानुषु । वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु चत्वरेषु गृहेषु च । वस्त्रैः पुष्पैः शोभितव्याः क्रयविक्रयभूमयः ॥ दीपमालापरिक्षिप्ते प्रदोषे तदनन्तरम् । ब्राह्मणान् भोजयित्वादौ विभज्य च वुभुक्षितान् ॥ अलङ्कृतेन भोक्तव्यं नववस्त्रोपशोभिना । स्निग्धैर्मुग्धैर्विदग्धैश्च वान्धवैर्भृतकैः सह" ॥ मुग्धैः सुन्दरैः । मुग्धःसुन्दरमूढयोरिति विश्वः ।

अत्र लक्ष्मीपूजायां पुष्पदानकाले । "नमस्ते सर्वदेवानां वरदासि हरिप्रिये । या गतिस्त्वत् प्रपन्नानां सा मे भूयात् त्वदर्च्चनात्" ॥ लक्ष्म्यै नम इत्यनेन वारत्रयं पूजयेत् । "सुखरात्र्यां प्रदोषे तु कुबेरं पूजयन्ति ये । इति रुद्रधरधृतात् कुबेरमपि पूजयन्ति । धनदाय नमस्तुभ्यं निधिपद्माधिपाय च" ॥ भवन्तु त्वत् प्रसादान्मे धनधान्यादिसम्पदः । इति पठित्वा कुबेराय नम इति त्रिः पूजयेत् । ततो देवगृहादिषु दीपान् दद्यात् । तत्र मन्त्रः । "अग्निज्योतीरविज्योतिश्चन्द्रज्योतिस्तथैव च । उत्तमः सर्वज्योतीनां दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम्" ॥ ततो ब्राह्मणान् बन्धूंश्च भोजयित्वा स्वयं भुक्त्वा सुखं सुप्त्वा प्रत्यूषे भविष्योक्तं कर्म्म कुर्य्यात् । यथा "सुखरात्रे वृषः काले प्रदीपोज्ज्वलितालये । बन्धुर्बन्धूनवन्धूंश्च वाचा कुशलयार्च्चयेत् ॥ प्रदीपवन्दनं कार्य्यं लक्ष्मीमङ्गलहेतवे । गोरोचनाक्षतञ्चैव दद्यादङ्गेषु सर्वतः" ॥ लक्ष्मी-

पूजामन्त्रः। "विश्वरूपस्य भार्य्यासि पद्मे पद्मालये शुभे। महालक्ष्मि ! नमस्तुभ्यं सुखरात्रिं कुरुष्व मे ॥ वर्षाकाले महाघोरे यन्मया दुष्कृतं कृतम्। सुखरात्रिप्रभातेऽद्य तन्मे लक्ष्मीर्व्यपोहतु ॥ या रात्रिः सर्वभूतानां या च देवेष्ववस्थिता। संवत्सरप्रिया या च सा ममास्तु सुमङ्गला ॥ माता त्वं सर्वभूतानां देवानां सृष्टिसम्भवा। आख्याता भूतले देवि ! सुखरात्रि नमोऽस्तु ते" ॥ लक्ष्म्यै नम इति त्रिः पूजयेत्।

अथ अर्द्धोदययोगः। स च रविवारव्यतीपातश्रवणनक्षत्रैर्युक्ता चेत् पौषमाघयोरमावास्या स्यात्तदा भवति। यथा पाश्चात्यनिर्णयामृते। "अमार्कपातश्रवणैर्युक्ता चेत् पौषमाघयोः। अर्द्धोदयः स विज्ञेयः कोटिसूर्य्यग्रहैः समः" ॥ अत्र सूर्य्यपर्वशताधिक इति कृत्यचिन्तामणौ पाठः। तथा "दिवैव योगः शस्तोऽयं न तु रात्रौ कदाचन"। स्कन्दपुराणे। "अर्द्धोदये तु संप्राप्ते सर्वं गङ्गासमं जलम्। शुद्धात्मानो द्विजाः सर्वे भवेयुर्ब्रह्मसम्मिताः। यत्किञ्चित् क्रियते दानं तद्दानं सेतुसन्निभम्"। विष्णुशिवस्नानप्रशस्तकालोऽपि बृहन्नारदीयम्। "अर्द्धोदये च पुष्यार्के हस्तार्के रोहिणीबुधे" इति।

अथ युगाद्याः। तासु च "युगाद्या वर्षवृद्धिश्च सप्तमी पार्वतीप्रिया। रवेरुदयमीक्षन्ते न तत्र तिथियुग्मता"। इत्यनेन व्यवस्था। ब्रह्मपुराणे। "वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां कृतं युगम्। कार्त्तिके शुक्लपक्षे तु त्रेताऽथ नवमेऽहनि ॥ अथ भाद्रपदे कृष्णा त्रयोदश्यान्तु द्वापरम्। माघे च पौर्णमास्यां वै घोरं कलियुगं स्मृतम्। युगारम्भास्तु तिथयो युगाद्यास्तेन विश्रुताः" ॥ अत्र वैशाखादयः पौर्णमास्यन्ता एव। ब्रह्मपुराणे। तथैव तिथिकृत्याभिधानात्। मुख्यवाचित्वे कार्त्तिके नवमेऽहनीत्यनेनैव सिद्धौ शुक्लपक्ष इति व्यर्थं स्यात् तेन भाद्रकृष्णत्रयोदशी अश्वयुक् कृष्णपक्षीयेति मैथिलोक्तं निरस्तम्। आसां प्रशंसामाह विष्णुपुराणं "वैशाखमासस्य तु या तृतीया नवम्यसौ कार्त्तिकशुक्लपक्षे। नभस्य मासस्य तमिस्रपक्षे त्रयोदशी पञ्चदशी च माघे ॥ एता युगाद्याः कथिताः पुराणे-

रनन्तपुण्यास्तिथयश्चतस्रः। उपप्लवे चन्द्रमसो रवेश्च त्रिष्वष्टकास्वप्ययनद्वये च"॥ उपप्लवे ग्रहणे "पानीयमप्यत्र तिलैर्विमिश्रं दद्यात् पितृभ्यः प्रयतो मनुष्यः। श्राद्धं कृतं तेन समाः सहस्रं रहस्यमेतत् पितरो वदन्ति"॥ स्नानमधिकृत्य भविष्ये। "संवत्सरफलं तत्र नवम्यां कार्त्तिके तथा। मन्वादौ च युगादौ च मासत्रयफलं लभेत्"॥ विरुद्धं गुरुवाक्यस्य यदत्र भाषितं मया। तत्क्षन्तव्यं बुधैरेव स्मृतितत्त्वबुभुत्सया"॥ स्मृतितत्त्वे प्रमादाद् यद्विरुद्धं बहुभाषितम्। गुणलेशानुरागेण तच्छोध्यं धर्म्मदर्शिभिः।

इति वन्द्यघटीय श्रीहरिहरभट्टाचार्य्यात्मज-श्रीरघुनन्दन-
भट्टाचार्य्यविरचिते स्मृतितत्त्वे तिथितत्त्वं समाप्तम्।

# श्राद्धतत्त्वम्।

प्रणम्य सच्चिदानन्दं कृष्णं वेदान्तविस्तृतम्। पार्व्वणादि श्राद्धतत्त्वं वक्ति श्रीरघुनन्दनः। अथ पार्व्वणश्राद्धम्। तत्र गोभिलः। "अथ श्राद्धममावास्यायां पितृभ्यो दद्यात् पञ्चमीप्रभृति वाऽपरपक्षस्य यदहरुपपद्यते तदहर्ब्राह्मणानामन्त्र्य पूर्व्वेद्युर्वा अनिन्द्येनोपामन्त्रितो नातिक्रामेदामन्त्रितो वा नान्यदन्नं प्रतिगृह्णीयादिति"। यत्गृह्ये "आन्वष्टक्यं स्थालीपाकेन" एतेन पिण्डपितृयज्ञो व्याख्यातः "अमावास्यायां तच्छ्राद्धमितरदन्वाहार्य्यं मासीनम्" इति सूत्रे गोभिलेनान्वष्टक्यस्थालीपाकधर्म्मातिदेशेन अमावास्यायां पिण्डपितृयज्ञमभिधाय तच्छ्राद्धमित्यनेन तस्य श्राद्धत्वमुक्त्वा इतरदन्वाहार्य्यमित्यनेन तस्यामेव श्राद्धान्तरमुक्तं मासीनमित्यनेन तयोर्मासि मासि कर्त्तव्यत्वमुक्तं "मासिमासिवोऽशनम्" इति श्रुतेः नत्वन्वाहार्य्यं श्राद्धस्य तद्गृह्य इति कर्त्तव्यताविधानमुक्तम् इदानीं गोभिलेन ग्रन्थान्तरेऽथेत्यादिना तदभिधीयते। अथ शब्दः स्नानविधानानन्तर्य्यार्थः स्नानविधानमुक्त्वा एतत् सूत्राभिधानात् अथवा साग्नेर्गृह्योक्त पिण्डपितृयज्ञानन्तर्य्यार्थः तथा च मनुः पितृयज्ञन्तु निर्व्वर्त्य विप्रश्चन्द्रक्षयेऽग्निमान्। पिण्डान्वाहार्य्यकं श्राद्धं कुर्य्यान्मासानुमासिकम्"॥ चन्द्रक्षये अमावास्यायां मासानुमासिकं प्रतिमासिकम्। मङ्गलार्थश्च यथा स्मृतिः। "प्रणवश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्रह्मणः पुरा। कण्ठं भित्त्वा विनिर्यातौ तेन माङ्गलिकावुभौ"॥ श्राद्धमित्यभिधाय कर्म्मणो नामधेयं "श्रद्धान्वितः श्राद्धं कुर्वीत" इति गोभिलसूत्रात् "संस्कृतं व्यञ्जनाद्यञ्च पयोदधिघृतान्वितम्। श्रद्धया दीयते यस्मात् श्राद्धं तेन निगद्यते"॥ इति पुलस्त्यवचनाच्च। श्रद्धा शास्त्रार्थे दृढप्रत्ययः। "प्रत्ययो धर्म्मकार्य्येषु तथा श्रद्धेत्युदाहृता। नास्ति ह्यश्रद्दधानस्य धर्म्मकृत्ये प्रयो-

जनम्"॥ इति देवलवचनात्। एवञ्च श्रद्धयाऽन्नादेर्दानं तच्छ्राद्धमिति वैदिकप्रयोगाधीनयौगिकम्। तथाचापस्तम्बः। "अथैतन्मनुः श्राद्धशब्दं कर्म्म प्रोवाच" इति। श्राद्धशब्दं श्राद्धनामकं कर्म्म एवं पार्वणादीनामपि वैदिकप्रयोगाधीनयौगिकत्वं पितृभ्य इति यजमानस्य पित्रादित्रिकमातामहादित्रिकपरम्। "असावेतत्ते यजमानस्य पित्रे असावेतत्ते यजमानस्य पितामहाय असावेतत्ते यजमानस्य प्रपितामहाय" इति श्रुतेः। "पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ध्रुवम्। अविशेषेण कर्त्तव्यं विशेषान्नरकं व्रजेत्"॥ इति वृद्धयाज्ञवल्क्यवचनाच्च। मातामहा इति तदादित्रिकपरम् इत्यादिवहुवचनान्ता गणस्य संसूचका इत्युक्तेः। व्यक्तमाह गोभिलः। "पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यः मातामहेभ्यः प्रमातामहेभ्यः वृद्धप्रमातामहेभ्यः स्वधोच्यतां" इति अत्र प्रागुक्तश्रुतौ यजमानस्य इति श्रुतेः पित्रादिपदं स्वजनकादिपरम्। न तु "वसुरुद्रादितिसुताः पितरः श्राद्धदेवताः" इति याज्ञवल्क्यवचनाद्वस्वादिपरम् एतद्वचनन्तु तदाकारत्वेन भावनापरमिति श्राद्धविवेकप्रभृतयः। व्यक्तं स्मृत्यर्थसारमदनपारिजातयोः। "वसुरुद्रादित्यरूपान् श्राद्धार्थे तर्पयेत् पितॄन्। नामगोत्रे समुच्चार्य्य तिलैस्तीर्थेषु संयत" इति वस्वादीनां ध्यानमादित्यपुराणे। प्रसन्नवदनाः सौम्या वरदाः शक्तिपाणयः। पद्मासनस्था द्विभुजा वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तिताः॥ करे त्रिशूलिनो कायदक्षिणे चाक्षमालिनः। एकादश प्रकर्त्तव्या रुद्रा स्त्वर्द्धेन्दुमौलयः॥ पद्मासनस्था द्विभुजा पद्मगर्भाङ्गकान्तयः। करादिस्कन्धपर्य्यन्तं नालपङ्कजधारिणः॥ इन्द्राद्या द्वादशादित्यास्तेजोमण्डलमध्यगाः"॥ उक्तश्रुत्यादिषु पित्रादीनां प्रत्येकनिर्देशात् अत्र पितरो देवता इत्यापस्तम्बसूत्रे देवता इति बहुवचननिर्देशात् न योषिद्भ्य इत्यादिवचनाच्च पित्रादीनां प्रत्येकेन पत्नीनिरपेक्षेण च देवतात्वं पितृभ्य इत्यत्र तु बहुवचनात् साहित्यप्रतीतिरभिधानक्रियापेक्षया गर्गाभोज्यन्तामितिवत् न तु दद्यादित्यनेनोक्तप्रधानक्रियापेक्षया स्मृत्यपेक्षया श्रुतेर्बलवत्त्वस्य जावालेनोक्तत्वात्। तथाच जावालः

"श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी। अविरोधे सदा कार्य्यं स्मार्त्तं वैदिकवत् सदा"॥ इति अपरपक्षस्य कृष्णपक्षस्य तथाच शुक्लप्रतिपदादिमासमधिकृत्य श्रुतिः। "पूर्वः पक्षो देवानामपरः पक्षः पितृणाम्" इति। यदहरिति चतुर्दशीतरकृष्णपक्षीयां यां काञ्चित्तिथिं प्राप्य शौचादिद्रव्यसम्पदुपपद्यते तस्मिन् श्राद्धं कुर्य्यात्। चतुर्दशीवर्जनमाह मरीचिः। "विषशस्त्रश्वापदा हि तिर्य्यग्ब्राह्मणघातिनाम्। चतुर्दश्यां क्रिया कार्य्या अन्येषान्तु विगर्हिता"॥ विषादिसाहचर्य्यात् ब्राह्मणघातीति ब्राह्मणकृतघातोऽस्यास्तीति बोध्यम्। अत्र यदमावास्यापञ्चमीप्रभृति तत्पूर्वकृष्णप्रतिपदादितिथ्युपादानं तत्प्रतिपदाद्यपेक्षया परपरकालस्य श्राद्धे निरग्नेः प्राशस्त्यज्ञापनार्थं तथाच निगमः। "अपरपक्षे यदहः सम्पद्यते अमावास्यायान्तु विशेषेण" इति। अन्यतिथावपि श्राद्धमाह गोतमः। "तथा सर्वस्मिन् दिने द्रव्यदेशसन्निधौ कालनियमः शक्तितः" इति योऽयम् अमावास्यादिकालनियमः सद्रव्यस्य शक्तस्य अरोगिणो बोद्धव्य इति श्राद्धविवेकः। चतुर्दशीवर्जनमाह मनुः। "कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम्। श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः" इति। यत्तु अमावास्याष्टका कृष्णपक्षपञ्चदशीषु च" इत्यभिधाय। "एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्य्यात् सर्वेषु पर्वसु। श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम्॥ भार्य्याविरहितोऽप्येतत् प्रवासस्थोऽपि नित्यशः। शूद्रोऽप्यमन्त्रवत् कुर्य्यादनेन विधिना बुध" इति मत्स्यपुराणे कृष्णपक्षपृक्ते नामावास्याया नित्यश इत्यनेन नित्यत्वाभिधानं तदनुपनीतस्य। "जाते कुमारेऽरणिं मथित्वा तस्मिन्नायुष्य होमान् जुहोति तस्मिन् चूडाकरणोपनयनव्रतादेशगोदानक्रियास्तस्मिन्नेवैनमुद्वाहयेयुः" इति वैजवापोक्तजाताग्नेः "अपिशब्दसमुच्चितोपनीतस्य च साग्नेः कर्त्तव्यत्वपरं तयोरमावास्यातिरिक्तकृष्णपक्षनिमित्तकपार्वणनिषेधात्। तथाच मनुः "न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मन" इति अन्यथा वाक्यभेदापत्तेः।

अत्रामावास्याकर्त्तव्यपर्वकर्त्तव्ययोः पार्वणत्वमाह भविष्य-

पुराणम्। "अमावास्यां यत्क्रियते तत्पार्वणमुदाहृतम्। क्रियते वा पर्वणि यत् तत्पार्वणमिति स्मृतिः"॥ अत्र यदित्यादेरुभयत्राभिधानेन विकल्पार्थं वाशब्देन च पार्वणस्य लक्षणद्वितयमुक्तं पर्वणि यत्क्रियते इत्यनेनामावास्यायाः पर्वत्वात्तच्छ्राद्धस्य वैदिकप्रयोगाधीनयौगिकत्वेन पार्वणत्वप्राप्तौ अमावास्यायां यत् पृथगुपादानं तदमावास्याश्राद्धस्य रूढित्वार्थं तेन पार्वणेन विधानेन इत्यादौ यौगिकनामावयवशक्त्यपेक्षया एकस्या एव समुदायशक्तेर्लघुत्वात् अमावास्या पार्वणधर्म्मातिदेशो लभ्यते न तु पूपादिद्रव्याष्टकादिपार्वणधर्म्मातिदेशः। अतोऽमावास्यायामष्टम्यादिपर्वणि च तन्निमित्तक-श्राद्धे पार्वणश्राद्धम् अन्यत्र पार्वणविधिना श्राद्धमित्यभिलापे विशेषः।

ब्राह्मणानामन्त्र्येति ब्राह्मणानामन्त्र्य निमन्त्र्य श्राद्धं कुर्य्यात् पूर्वेद्युर्वा पूर्वदिने वा निमन्त्रणं नत्वामन्त्रणं यत्र प्रत्याख्याने प्रत्यवायस्तन्निमन्त्रणं यत्र प्रत्याख्याने कामचारस्तदामन्त्रणमिति पाणिनिसूत्रभाष्ये भेदेनोपादानात् अतएव निमन्त्रणातिक्रमनिषेधमाह। "अनिन्द्येनोपामन्त्रितो नातिक्रामेदिति" नात्र पूर्वापरदिननिमन्त्रणे इच्छाविकल्पः किन्तु पूर्वदिनासामर्थ्ये परदिने तथाच देवलः। "श्वः कर्त्तास्मीति निश्चित्य दाता विप्रान्निमन्त्रयेत्। निरामिषं सकृद्भुक्त्वा सर्वसुप्तजने गृहे। असम्भवे परेद्युर्वा ब्राह्मणांस्तान्निमन्त्रयेत्"॥ अत्र निश्चित्येति पदान्निश्चये निरामिषसकृत् भोजनस्याङ्गत्वं यद्यपि निश्चयोऽत्र श्वोभावि कर्म्मणि प्रत्यूहसम्भवादशक्यस्तथापि शास्त्रप्रतिपादित श्वः कर्त्तव्यत्वज्ञानमात्रविवक्षितः। अतो यत्र तादृक् ज्ञानं नास्ति तत्र तदङ्गरहिते नापि श्राद्धं कर्त्तव्यम्। वराहपुराणम्। "वस्त्रशौचादिकर्त्तव्यं श्वः कर्त्तास्मीति जानता। स्थानोपलेपनञ्चैव कृत्वा विप्रान्निमन्त्रयेत्। दन्तकाष्ठञ्च विसृजेत् ब्रह्मचारी शुचिर्भवेत्"॥ विसृजेत् श्राद्धीयब्राह्मणेभ्यो दद्यादिति श्राद्धचिन्तामणिः। एतच्च पार्वणप्रकृतिकत्वात् सर्वश्राद्धेऽप्यायाति आभ्युदयिके तु श्राद्धदिन एव निमन्त्रणं प्रातरामन्त्रितान् विप्रानिति छन्दोगपरिशिष्टात्। श्राद्धदिने योषित् प्रसङ्गीतरस्य निमन्त्रणमाह

मार्कण्डेयपुराणम्। "निमन्त्रयेच्च पूर्वेद्युः पूर्वोक्तान् द्विजसत्तमान्। अप्राप्तौ तद्दिने वापि हित्वा योषित् प्रसङ्गिनम्" ॥ अत्र प्रशब्दात् क्रियानिष्पत्तिरूपमैथुनकर्त्तृनिषेधः नतु स्मरणादिरूपमैथुनकर्त्तृनिषेधः। मैथुनं चाष्टविधं तथाच दक्षः। "स्मरणं कीर्त्तनं केलिः प्रेक्षणं गुह्यभाषणम्। सङ्कल्पोऽध्यवसायश्च क्रियानिष्पत्तिरेव च" ॥

श्राद्धदिने श्राद्धकर्त्ता दन्तकाष्ठमखादित्वा द्वादशजलगण्डूषेण मुखं परिशोध्य प्रातःस्नात्वा धौतवस्त्रे बिभृयात्। "श्राद्धे जन्मदिने चैव विवाहे जीर्णसम्भवे। व्रते चैवोपवासे च वर्जयेत् दन्तधावनम्" ॥ इति विष्णुपुराणात्। "अलाभे दन्तकाष्ठस्य प्रतिषिद्धदिने तथा। अपां द्वादशगण्डूषैर्मुखशुद्धिर्विधीयते। तथैवामन्त्रितो दाता प्रातःस्नातः सहाम्बरः" ॥ इति देवलवचनात्। तथैवामन्त्रितो तथैव पूर्वोक्तप्रकारेण आमन्त्रितो येन स तथा देवकृत्यमुदङ्मुखेन पितृकृत्यं दक्षिणामुखेन कर्त्तव्यमाह शातातपः। "उदङ्मुखस्तु देवानां पितॄणां दक्षिणामुखः। प्रदद्यात् पार्वणश्राद्धे देवपूर्वं विधानतः" ॥ द्विजसत्तमाभावे भविष्यपुराणम्। "यस्त्वासन्नमतिक्रम्य ब्राह्मणं पतितादृते। दूरस्थं भोजयेन्मूढो गुणाढ्यं नरकं व्रजेत् ॥ तस्मान्नातिक्रमेत् प्राज्ञो ब्राह्मणान् प्रातिवेशिकान्। सम्बन्धिनस्तथा सर्वान् दौहित्रं विट्पतिं तथा। भागिनेयं विशेषेण तथा बन्धून् गृहाधिपान् ॥ नातिक्रमेन्नरस्त्वैतान् सुमूर्खानपि गोपते। अतिक्रम्य महारौद्रं रौरवं नरकं व्रजेत्" ॥ ब्राह्मणोऽत्राल्पविद्यः मूर्खं ब्राह्मणातिक्रमे दोषाभावस्य व्यासादिभिर्नास्ति मूर्खे व्यतिक्रम इत्यनेन अभिधानात्। विट्पतिर्जामाता गृहाधिपान् गृहस्थान् सुमूर्खानिति सम्बन्धिदौहित्रादि विशेषणमिति। दानकल्पतरु-

रत्नाकरौ। यमः प्रार्थयेत प्रदोषान्ते भुक्त्वान्नं शयितान् द्विजान्। सर्वायासविनिर्मुक्तैः कामक्रोधविवर्जितैः॥ भवितव्यं भवद्भिश्च श्वोभूते श्राद्धकर्म्मणि। ते तं तथेत्यविघ्नेन याति चेद्रजनौ सुखम्"॥ प्रार्थयेत निमन्त्रणपूर्वकं नियमं श्रावयेत्। तन्नियममाह सर्वायासेति ते ब्राह्मणास्तं निमन्त्रयितारं तथेत्यूचुरिति शेषः। अत्रैकब्राह्मणनिमन्त्रणपक्षेऽपि प्रकृतावूहाभावान्न बहुवचनस्थाने एकवचनोहः नवाबाधः वैभक्तिकार्थापेक्षया प्राथमिकत्वेन बलवतः प्रातिपदिकार्थस्य समवेतत्वेन नियोज्यत्वात् किन्तु अविकृत एव मन्त्रः पाठ्यः मत्स्यपुराणेऽपि त्वं मयात्र निमन्त्रित इत्युपक्रम्य बहुवचनान्त मन्त्रपाठाच्च तद्-यथा। "दक्षिणं जानु चालभ्य त्वं मयात्र निमन्त्रितः। एवं निमन्त्र्य नियमान् श्रावयेत् पैतृकान् बुधः"॥ तन्नियममाह "अक्रोधनैः शौचपरैः सततं ब्रह्मचारिभिः। भवितव्यं भवद्भिश्च मयात्र श्राद्धकर्म्मणि"॥ प्रकृतावेवं प्राप्तत्वात् एकोद्दिष्टे अपि नोहः। एवं देवताभ्यः पितृभ्यश्च इत्यप्यनूह्य पाठ्यं पितृपदस्याग्निष्वात्तादिपरत्वात् अत्र परदिने निमन्त्रणे सर्वायासेत्यस्य न पाठः श्वः पदानन्वयात् किन्त्वक्रोधनैरित्यस्य पाठः अत्र निमन्त्रित इत्यस्यातीतमात्र प्रकाशकत्वात् श्राद्धं कर्त्तुं त्वां निमन्त्रये इति लडन्त एव प्रयोगो युक्तः अतएव विकृतावेकोद्दिष्टप्रयोगे विप्र त्वामहं निमन्त्रय इति वराहपुराणे लडन्त एव प्रयोग उक्त इति तत्त्वम्।

ब्राह्मणासम्पत्तौ कुशमयब्राह्मणे श्राद्धमुक्तं श्राद्धविवेके। "निधायाथ दर्भचयमासनेषु समाहितः। प्रैषानुप्रैषसंयुक्तं विधानं प्रतिपादयेत्"॥ इति तद्धृतवचनात् "ब्राह्मणानामसम्पत्तौ कृत्वा दर्भमयान् द्विजान्। श्राद्धं कृत्वा विधानेन पश्चाद्विप्रेषु दापयेत्"॥ इति श्राद्धसूत्रभाष्यकारसमुद्रकर-

धृतवचनाच्च। दर्भवटुलक्षणमाह रत्नाकरे गृह्यसंग्रहः। “ऊर्द्ध्वकेशो भवेत् ब्रह्मा लम्बकेशस्तु विष्टरः। दक्षिणावर्त्तको ब्रह्मा वामवर्त्तस्तु विष्टरः”॥ इति यादृक् ब्रह्मा तादृक् क्रमेण ब्राह्मण इति भाव्यम्। शान्तिदीपिकायाञ्च आपस्तम्बः। “सप्तभिर्नवभिर्वापि सार्द्धद्वितयवेष्टितम्। प्रणवेनैव मन्त्रेण द्विजः कुर्य्यात् कुशद्विजम्” इति नवभिरित्यर्थः पञ्चभिरिति कर्म्मोपदेशिन्यां पाठः दर्भसंख्या विशेषाभिधानं छन्दोगेतरपरम्। “यज्ञवास्तुनि मुष्ट्याञ्च स्तम्बे दर्भवटौ तथा। दर्भसंख्या न विहिता विष्टरास्तरणेष्वपि”॥ इति छन्दोगपरिशिष्टात् ब्राह्मणप्रतिनिधित्वेन गोभिलगृह्ये कमण्डलुं दर्भवटुं वा निधायेति दृष्टं प्रागुक्तवचनप्राप्तञ्च दर्भवटुरूप दर्भचयमादाय कर्म्मकरणे यस्य प्रैषस्य प्रश्नस्यानुप्रैषं प्रत्युत्तरमवाधितं तद्युक्तकर्म्मणोऽभिधानात् निमन्त्रितोऽस्मि तृप्तास्मः इति प्रत्युत्तराभावात् निमन्त्रणतृप्तिप्रश्नाभावः। न च दर्भब्राह्मणपक्षे होत्रैवावसोः सदने सीदामीत्यविकृतमेव वक्तव्यमिति भट्टभाष्यदर्शनादत्रापि निमन्त्रितोऽस्मीत्यनेन वक्तव्यमिति वाच्यं “यद्युवा उभयञ्चिकीर्षेत् होतृत्वं ब्रह्मत्वं च तेनैव कल्पेन छत्रमुत्तरासङ्गमुदक कमण्डलुं दर्भवटुं वा ब्रह्मासने निधाय” इति गोभिलसूत्रेण होतुर्ब्रह्मकर्म्मकर्त्तृत्वेन विधानात् तत्र सीदामीत्यस्य प्रतिनिधित्वारोपवेशनेन समवेतार्थत्वात् एतेनैवेत्येवकारेण सीदेत्यस्य कल्पनाया अयुक्तत्वाच्च अत्र तु निमन्त्रितोऽस्मीत्यस्य सर्व्वथैवासमवेतार्थत्वेनायुक्तत्वं कुरुष्वेत्यादि प्रत्युत्तराणान्त्वन्येनापि सम्भवादनुज्ञादीनां कर्त्तव्यता एव। एवञ्च दर्भवटौ श्राद्धस्य करणेऽपि “अविच्छिन्ने कथम्भावे यत् प्रधानस्य पठ्यते। अविज्ञातफलं कर्म्म तस्य प्रकरणाङ्गता”॥ इति न्यायेन श्राद्धाङ्गत्वात् कर्त्तृसंस्कारकत्वाच्च निमन्त्रणाभावेऽपि सक्तन्निरामिषभोजनमैथुनवर्ज्जनयोः कर्त्तव्यतेति।

उपवेशनमाह गोभिलः। "स्नातान् शुचीनाचान्तान् प्राङ्मुखान् उपवेश्य दैवे युग्मान् यथाशक्ति अयुग्मान् पित्र्ये एकैकस्योदङ्मुखान् द्वौ दैवे त्रीन् पैत्र्ये एकैकमुभयत्र वा। मातामहानामप्येवं तन्त्रं वा वैश्वदैविकम्। देवपूर्वं श्राद्धं कुर्वीत" इति स्नातानवगाहितान् न तु मन्त्रस्नातान्। शुचीन् सूतकादिरहितान् एवं प्रयतत्वादियुक्तानां ब्राह्मणानां दर्भासने स्वागतप्रश्नपाद्यादिना आसनस्पर्शहस्तग्रहणपूर्वकम् उपवेशनानि कार्य्याणि एवं प्रयतोऽपराह्णे शुचिः शुक्लवासा दर्भेषु तिष्ठन् एवं स्वागतमिति ब्रूयात् "पाद्यार्घ्याचमनीयोदकानि दत्त्वा ब्राह्मणानुपसंगृह्य उपवेशयेदासनमालभ्य" इति शङ्खलिखितवचनात्। स्वयमपि सूतकादिरहितः स्नातः कृतदेवपूजान्तनित्यकृत्यः। अत्र श्राद्धदिने अङ्गेषु तैलं न ग्राह्यम्। तथा च स्मृतिः। "प्रातःस्नाने पितृश्राद्धे षष्ठ्याञ्च द्वादशीषु च। सुरास्नानसमं तैलं पितरं नरकं नयेत्॥ घृतञ्च सार्षपं तैलं यत्तैलं पुष्पवासितम्। अदुष्टं पक्वतैलञ्च तैलाभ्यङ्गे च नित्यशः"॥

ततश्च प्रथमं प्राङ्मुखः स्थित्वा पादौ प्रक्षालयेच्छनैः। उदङ्मुखो वा दैवत्ये पैतृके दक्षिणामुखः" इति देवलवचनात् दक्षिणामुखः सन् कृतपादशौचस्तत्रापि वामपादादिक्रमः। यथा गोभिलः "सव्यं पादमवने निजे" इति वामपादं प्रक्षालयति "दक्षिणं पादमवने निजे" इति दक्षिणं पादं प्रक्षालयति इति। कात्यायनगृह्येऽपि "सव्यं प्रक्षाल्य दक्षिणं प्रक्षालयतीति" तेन यजुर्वेदिनामपि प्रथमं वामपादप्रक्षालनं एवं शूद्रस्यापि ततो दक्षिणपाणौ पवित्रं वामे बहुतरकुशान् धारयेत् "सव्यः सोपग्रहः कार्य्यो दक्षिणः सपवित्रकः" इति छन्दोगपरिशिष्टात् ततः प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा कृताचमनः

"शुचि देशं विविक्तञ्च गोमयेनोपलेपयेत्। दक्षिणाप्रवणञ्चैव प्रयत्नेनोपपादयेत्"॥ इति मनूक्त गोमयोपलिप्तदेशे उपविशेत् "आसीन ऊर्द्ध्वः प्रह्वो वा नियमो यत्र नेदृशः। तदासीनेन कर्त्तव्यं न प्रह्वेन न तिष्ठता" इत्यादि छन्दोगपरिशिष्टात् आसीन उपविष्ट ऊर्द्ध्वो दण्डवत् स्थितःप्रह्वोऽवनतपूर्वकायः। जानुपातं विशेषयति वशिष्ठः। दक्षिणं पातयेज्जानु देवानुपचरन् सदा। पातयेदितरज्जानु पितॄन् परिचरन्नपि" इतरद्वामम्।

अथ श्राद्धदेशाः। यमः। "रूक्षं कृमियुतं क्लिन्नं सङ्कीर्णानिष्टगन्धिकम्। देशं त्वनिष्टशब्दञ्च वर्ज्जयेत् श्राद्धकर्म्मणि" रूक्षं धूलियुतं क्लिन्नं पङ्किलम् अनिष्टगन्धिकम् असुरभिगन्धम् अनिष्टशब्द प्रतिकूलशब्दम्। विष्णुः। "न म्लेच्छविषये श्राद्धं कुर्य्यान्नेच्छेत्तु तं तथा। चातुर्वर्ण्यव्यवस्थानं यस्मिन् देशे न विद्यते। तं म्लेच्छदेशं जानीयादार्य्यावर्त्तमतःपरम्"॥ शङ्खलिखितौ "नेष्टकारार्चिते पितॄन् सन्तर्पयेत्" इति ब्रह्मपुराणं "पृथक् पृथक् चासनेषु तिलतैलेन दीपकाः। अविच्छिन्नास्तथा देयास्ते तु रक्षन्ति वै द्विजान्"॥ आसनेषु तत्सन्निधानेषु अविच्छिन्नाः प्रच्छादनावध्यवस्थायिनः। रक्षन्ति श्राद्धमिति शेषः। द्विजा इति सम्बोधनम्। ततो वास्तुपुरुषाय नम इति वास्त्वर्च्चां कुर्य्यात्। "श्राद्धाधिकरणे यत्र नार्च्चितो वास्तुदैवतः। तत्र शून्यं भवेत् सर्वं रक्षोविघ्नादिभिर्हृतम्॥ तस्माद्वास्त्वर्च्चनं कार्य्यं सम्यक् सम्पदमीप्सुभिः" इति राघवभट्टधृत-वास्तुशास्त्र-कश्यप-वचनात्। योगियाज्ञवल्क्यः। "ध्यायेन्नारायणं नित्यं स्नानादिषु च कर्म्मसु। प्रायश्चित्त्वपि सर्वस्माद्दुष्कृतान्मुच्यते पुमान्॥ प्रमादात् कुर्वतां कर्म्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्। स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादिति

श्रुतिः॥ तद्विष्णोरिति मन्त्रेण मज्जेदप्सु पुनः पुनः। गायत्री वैष्णवी ह्येषा विष्णोः संस्मरणाय वै”॥ ततश्च श्राद्धस्यादौ “तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः दिवीव चक्षुराततम्”। इत्यनेन विष्णुं स्मरेत्। अग्निपुराणम्। “अर्च्चयित्वा जगन्नाथं शुभं कर्म्म समाचरेत्। दत्त्वाग्रं देवदेवाय तच्छेषाण्युपयुञ्जयेत्”॥ उपयुञ्जयेत् कर्म्मणि योजयेत्। लिङ्गपुराणे “शालग्रामशिलाग्रे तु यच्छ्राद्धं क्रियते नृभिः। तस्य ब्रह्मान्तिकं स्थानं तृप्ताश्च पितरो दिवि”॥ ततश्च शालग्रामे विष्णुं संपूज्य श्राद्धीयाग्रं दद्यात्।

ब्रह्मपुराणे। “परकीय गृहे यस्तु स्वान् पितॄन् तर्पयेज्जड़ः। तद्भूमिस्वामिनस्तस्य हरन्ति पितरो बलात्। अग्रभागं ततोस्तेभ्यो दद्यात् मूल्यञ्च जीवताम्”॥ गृह इति भूमात्रपरम्। यद्भूस्वामिपितृहरणस्य हेतुत्वेनाभिधानानात् मूल्यदानाग्रदानयोः प्रत्येकं हरणनिवर्त्तकत्वेन वैकल्पिकत्वं स्मृतिशास्त्रे विकल्पस्तु आकाङ्क्षापूरणे सति” इति भविष्यपुराणात्। ततश्च श्राद्धविघातनिवर्त्तकत्वेन तदङ्गत्वात् पितृरीत्या भूस्वामिपितृभ्यः प्रथमतो देयम्। ततः पार्व्वणादौ प्राचीनावीतित्वादिना नान्दीमुखे उपवीतित्वादिना इति। अत्र पितृपदस्य प्राप्तपितृलोकमात्रपरत्वे प्रेतानां हरणासम्भवात् सुतरां स्वधेति निर्देश्यं “स्वधाकारा परित्यागी सर्व्वेषु पितृकर्म्मसु”। इति श्राद्धकाण्डे विष्णुवचनात् प्रमीतमात्र परत्वे तु “न स्वधाञ्च प्रयुञ्जीत प्रेतपिण्डे दशाहिके” इति ऋष्यशृङ्गवचने दशाहिकग्रहणादन्यत्र स्वधाप्रयोगादत्रापि तथा। असवर्णौर्द्धदैहिकनिषेधस्य भ्रात्रादि प्रकरणीयत्वादन्यभूमात्रेऽग्रदानमिति भीष्मतर्पणे उक्तम्। श्रीदत्तोऽप्येवम्। एतच्च स्वभूमावस्वामिकायाञ्च भूमौ न दद्यात् अस्वामिका-

आह यमः । "अटव्यः पर्वताः पुण्या नद्यस्तीर्थानि यानि च । सर्वाण्यस्वामिकान्याहुर्न हि तेषु परिग्रहः" ॥ पुण्या इति विशेषणादटव्यो नैमिषाद्याः पर्वता हिमालयाद्या नद्यो गङ्गाद्यास्तीर्थानि पुरुषोत्तमादिक्षेत्राणि वाराणस्याद्यायतनानि च । स्वाम्यभावे हेतुमाह न हि तेष्विति । परिग्रहो यथेष्टदानविक्रयणादिविनियोगलक्षणः ।

देवलः "श्राद्धस्य पूजितो देशो गया गङ्गा सरस्वती । कुरुक्षेत्रं प्रयागश्च नैमिषं पुष्कराणि च ॥ नदीतटेषु तीर्थेषु शैलेषु पुलिनेषु च । विविक्तेषु च तुष्यन्ति दत्तेनेह पितामहाः" ॥ विविक्तं विजनं ततश्च तथाविधान् ब्राह्मणान् स्वागतादिना पूजयित्वोपवेशयेत् । श्राद्धार्थं यद्वेद्यां प्रवेशयितव्यं तदुत्तरदिशा यन्निःसारयितव्यं तद्दक्षिणदिशा "उत्तरेणाहरेद्वेद्यां दक्षिणेन विसर्जयेत्" इति वायुपुराणात् । वेदिरत्र दक्षिणाप्लवनदेशः । याज्ञवल्क्यः । अपराह्णे समभ्यर्च्य स्वागतेनागतांस्तु तान् । पवित्रपाणिराचान्तानासनेषूपवेशयेत्" ॥ उभयत्रेति देवपक्षे पितृपक्षे चेत्यर्थः । एवं मातामहपक्षेऽपि पृथक् वैश्वदेवब्राह्मणं मातामहब्राह्मणञ्च तन्त्रं वा वैश्वदैविकमिति एवं पितृपक्ष मातामहपक्षार्थमेकं वैश्वदेवब्राह्मणोपवेशनम् एवं ब्राह्मणानामसम्पत्तौ पक्षत्रयासनेषु दर्भवटुत्रयोपवेशनम् ।

अथ श्राद्धदेवाः । तत्र श्राद्धभेदे देवताभेदमाह बृहस्पतिः । "इष्टिश्राद्धे क्रतुदक्षः सत्योनान्दीमुखे वसुः । नैमित्तिके कालकामौ काम्ये च धूरिलोचनौ ॥ पुरूरवा माद्रवाश्च पार्वणे समुदाहृतौ" ॥ इष्टिश्राद्धे इच्छाश्राद्धे नैमित्तिके एकोद्दिष्टे । "एकोद्दिष्टञ्च यच्छ्राद्धं तन्नैमित्तिकमुच्यते । तदप्यदैवं कर्त्तव्यमयुग्मानाशयेद्द्विजान्" ॥ इति भविष्यपुराणात् । एवञ्च

एकोद्दिष्टे विश्वदेवकरणाकरणयोः शाखिभेदेन व्यवस्था। तत्र सामगयजुर्विदोर्गृह्यानुसारात् विश्वदेवरहितत्वं साग्नेरृग्वेदिनोर्विश्वदेवसहितत्वं तद्गृह्यपरिशिष्टोक्तत्वात् यथा "यस्मिन्नवे पुराणे वा विश्वे देवा न लेभिरे। आसुरं तद्भवेच्छ्राद्धं वृषलं मन्त्रवर्जितम्"॥ इति। "काम्यं कामाय तु हितं काम्यमभिप्रेतार्थसिद्धये। पार्वणेन विधानेन तदप्युक्तं खगाधिप" इति भविष्यपुराणोक्तं काम्यश्राद्धे कामाय इत्यनेनैवाभिप्रेतार्थलाभे अभिप्रेतार्थसिद्धय इति यत् पुनरुपादानं तत् स्वगतपुत्रादिफलोद्देश्यकत्वेन तिथ्यादि श्राद्धानामेवात्र काम्यत्वार्थम् अतःसंक्रान्त्यादिश्राद्धादस्य भेदः। एवञ्च संक्रान्त्यादिश्राद्धे पितृतृप्तेः प्राधान्यं पुत्रादेः फलस्यानुषङ्गिकत्वं तिथ्यादिश्राद्धे तु पुत्रादेः फलस्य प्राधान्यं पितृतृप्तेरानुषङ्गिकफलत्वमिति देवविशेषवाचकस्य अपि पुरूरवस ऊकारमध्यता पितृदयिता-श्राद्धकाण्ड-कल्पतरुमैथिलग्रन्थप्राचीनश्राद्धविवेकेषु तथा लिखनात् रायमुकुटप्रभृतिभिरेव पुरोरूयन्त इति स्वकपोलरचित व्युत्पत्त्या ओकारयुक्तः पाठः कृतः। स तु राजविशेषवाचकः।

अथासनम्। तत्र विशेषमाह देवलः। "ये चात्र विश्वेदेवार्थं विप्राः पूर्वं निमन्त्रिताः। प्राङ्मुखान्यासनान्येषां द्विदर्भोपहितानि च॥ दक्षिणामुखयुक्तानि पितॄणामासनानि च। दक्षिणाग्रैकदर्भाणि प्रोक्षितानि तिलोदकैः"॥ प्राङ्मुखत्वं दक्षिणामुखत्वञ्चाग्रभागापेक्षया ज्ञेयम् एषां विश्वदेवब्राह्मणानां पितॄणां पितृब्राह्मणानामेतच्चासनं ब्राह्मणोपवेशनार्थं नतु विश्वदेवार्थं पित्राद्यर्थं वा तथा च यमः। "ततः सिद्धमिति प्रोच्य कल्पिते आसने तथा। आसध्वमिति तान् ब्रूयादासनं संस्पृशन्नपि" इत्यत्र कल्पितासनस्य ब्राह्मणोपवेशन एवोपयोगावगतेर्विश्वदेव-पित्राद्यर्थासनन्तु कुशत्रयात्मकमेव

पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थं कुशानपि "आवाहयेदनुज्ञातो विश्वे देवा स इत्यृचा । तथा द्विगुणांस्तु कुशान् दत्त्वा उशन्तस्त्वेत्यृचा पितॄन्" इति याज्ञवल्क्योक्तेः प्रक्षाल्यतेऽनेन इति प्रक्षालनं जलं तेन तूष्णीं ब्राह्मणपाणौ जलं दत्त्वा विष्टरार्थमासनार्थमिति दीपकलिका । कुशान् ऋजून् दद्यात् द्विगुणानित्युक्तेः ।

अथ दर्भाः । ब्रह्मपुराणे "सपिञ्जलाश्च हरिताः पुष्टाः स्निग्धाः समाहिताः । गोकर्णमात्राश्च कुशाः सकृच्छिन्नाः समूलकाः ॥ पितृतीर्थेन देयाः स्युर्दूर्वाश्यामाक एव च । काशाः कुशा वल्वजाश्च तथान्ये तीक्ष्णरोमशाः ॥ मौञ्जाश्च शाद्वलाश्चैव षड्दर्भाः परिकीर्त्तिताः" ॥ तीक्ष्णरोमशा इति वल्वजानां विशेषणं तेन तेषामलाभे "शूकतृणशरशीर्य्ययुतवल्वज उलपशुण्ठवर्जं सर्वतृणानीति" गोभिलेन तद्व्यतिरिक्तवल्वजानां निषेधो बोद्धव्यः । सपिञ्जलाः साग्राः स्निग्धा अकर्कशाः पुष्टा न सूक्ष्माः समाहिता निर्दोषा शाद्वला इति मौञ्जस्य विशेषणं शूकानि फलपुष्पमञ्जर्य्यस्ता येषां तृणानां सन्ति तानि शूकतृणानीति भट्टनारायणचरणाः गोकर्णमात्रा विस्तृताङ्गुष्ठानामिका परिमिताः । विष्णुः । "कुशस्थाने काशं दूर्वां वा दद्यादिति" कृतमुष्टिहस्तपरिमिताः कुशाः प्रस्तरणार्थाः तथा च वायुपुराणम् । "रत्निप्रमाणाः शस्ता वै पितृतीर्थेन संस्कृताः । उपमूले तथा लूनाः प्रस्तारार्थे कुशोत्तराः" ॥ वर्ज्यकुशानाह हारीतः "चितौ दर्भाः पथिदर्भा ये दर्भा यज्ञभूमिषु । स्तरणासनपिण्डेषु षड्दर्भान् परिवर्जयेत् ॥ पिण्डार्थं ये स्तृता दर्भा यैः कृतं पितृतर्पणम् । मूत्रोच्छिष्टप्रलेपे तु त्यागस्तेषां विधीयते" ॥ छन्दोगपरिशिष्टम् । "धृतैः कृते च विण्मूत्रे त्यागस्तेषां विधीयते ।

नीवीमध्ये च ये दर्भा ब्रह्मसूत्रे च ये धृताः ॥ पवित्रां स्तान् विजानीयाद्यथा कायस्तथा कुशाः । आचम्य प्रयतो नित्यं पवित्रेण द्विजोत्तमः । नोच्छिष्टन्तु भवेत्तत्र भुक्तशेषं विवर्जयेत्” ॥ इति वचनानुरोधात् पवित्रदानमेव सम्यक् ।

अथानुज्ञा । पूर्वदिननिमन्त्रणे तदहर्निमन्त्रणे वा श्राद्धदिने निमन्त्रणानन्तरमनुज्ञाग्रहणमाह आपस्तम्बः । “पूर्वेद्युर्निवेदनं वेदनं परेद्युर्द्वितीयं तृतीयमामन्त्रणमिति” निवेदनं श्वो मया श्राद्धं कर्त्तव्यं तत्र भवन्तो निमन्त्रणीया इत्येवं रूपं निवेदनम् । द्वितीयं त्वामहं निमन्त्रये इत्यनेन निमन्त्रणम् । त्वयि श्राद्धमहं करिष्ये इति तृतीयमनुज्ञाग्रहणरूपं तत्र दर्भवटुपक्षे निवेदननिमन्त्रणयोरभावः किन्त्वनुज्ञायां त्वयीति स्थाने दर्भमयब्राह्मणे इति वक्तव्यं साक्षात् ब्राह्मणपक्षे द्वितीयतृतीयमिति बोधनापेक्ष्यं ब्रह्मपुराणम् । “उपवेश्य जपेद्धीमान् गायत्रीं तदनुज्ञया । मन्त्रं वक्ष्यामहं तस्मादमृतं ब्रह्मनिर्मितम् ॥ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्विति ॥ आद्यावसाने श्राद्धस्य त्रिरावृत्त्या जपेत् सदा । पिण्डनिर्वपणे चैव जपेदेतत् समाहितः ॥ पाठ्यमानमिमं श्रुत्वा श्राद्धकाले उपस्थिते । पितरःक्षिप्रमायान्ति राक्षसाः प्रद्रवन्ति च” ॥ उपवेश्य ब्राह्मणानुपवेश्य तदनुज्ञया तस्य श्राद्धस्यानुज्ञया ततश्च कुरुष्वेति प्रतिवचने लब्धे श्राद्धाङ्गत्वेन गायत्रीजपादिकं कुर्य्यादित्यर्थः । तथा च ब्रह्माण्डपुराणम् । “श्राद्धं करिष्य इत्येवं पृच्छेद्विप्रान् समाहितः । कुरुष्वेति स तैरुक्तः कुर्य्याद्दर्भासनं तथा” ॥ विप्रान् निमन्त्रितब्राह्मणान् तदसम्भवे ब्राह्मणान्तरानपि कुरुष्वेति प्रत्युत्तरस्य उभयत्र सम्भवात् । अतएव पितृदयितायां श्राद्धानुज्ञानन्तरं गायत्रीजप उक्तः न च गायत्री-

जपार्थमनुज्ञाग्रहणानन्तरं वचनान्तरसिद्ध-श्राद्धानुज्ञापरत्वसम्भवे अन्यपरत्व कल्पनानुपपत्तेः अत्र देवताभ्य इति मन्त्रे वेदिभेदेन मैथिलानां यत् पाठकल्पनं तत् कल्पनमेव। ब्रह्मपुराणे एकधैव लिखितत्वात्। ततश्च स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्त्विति इति सर्ववेदिनां बहुसम्मतः पाठः। अत्र अनुज्ञायाः सङ्कल्पकार्य्यकारित्वेन तत्तन्मासाद्युल्लेखमाचरन्ति। अत्र ब्रह्मपुराणे तत्तन्मासे कृष्णपक्षकृत्यमभिधाय शुक्लपक्षकृत्याभिधानेन कृष्णपक्षनिमित्तकपार्वणश्राद्धस्यापि ब्रह्मपुराणीयत्वात् पौर्णमास्यन्तमासेनोल्लेखः। तद्यथा "पयोमूलफलैः शाकैः कृष्णपक्षे च सर्वदा। पराधीनः प्रवासी च निर्धनो वापि मानवः। मनसा भावशुद्धेन श्राद्धे दद्यात्तिलोदकम्"॥ एवमश्वयुक् कृष्णपक्षाष्टका मघात्रयोदशीषु च यत्र राश्युल्लेखः श्रूयते तत्र सौरेण एतदुभयसाधकासत्वे तु दर्शान्तेन वैशाखादिनोल्लेखः। श्राद्धे गोत्राद्युल्लेखमाहतुःपारस्करप्रचेतसौ। "गोत्रसम्बन्धनामानि पितॄणां परिकल्पयन्"। गोभिलोऽपि। "गोत्रं स्वरान्तं सर्वत्र गोत्रस्याक्षय्य कर्म्मणि। गोत्रस्तु तर्पणे प्रोक्तः कर्त्ता एवं न मुह्यति॥ सर्वत्रैव पितः प्रोक्तं पिता तर्पणकर्म्मणि। पितुरक्षय्यकाले तु अक्षयां तृप्तिमिच्छता॥ शर्म्मन्नर्घ्यादिके कार्य्ये शर्म्मा तर्पणकर्म्मणि। शर्म्मणोऽक्षय्यकाले तु पितॄणां दत्तमक्षयम्"॥ शर्म्मन्नित्यनेन गोत्रसम्बन्ध-नामानि इत्यनेन एकवाक्यतया शर्म्मान्तं नाम प्रतीयते। तथा च विष्णुपुराणम्। "ततश्च नाम कुर्वीत पितैव दशमेऽहनि। देवपूर्वं नराख्यं हि शर्म्मवर्म्मादिसंयुतम्"॥ देवपूर्वं देवात् पूर्वं नराख्यं नर नाम तच्च विशिष्टं शर्म्मयुतं एतच्च विप्रपरम्। "शर्म्मा देवश्च विप्रस्य वर्म्म त्राता च भूभुजः। भूतिर्गुप्तश्च वैश्यस्य दासः शूद्रस्य कारयेत्"॥ इति यमवचनात् अत्र चकारेण देव-

शर्म्मणोः समुच्चयः। तत्रापि शर्म्मवर्म्माद्यन्ततामाह शातातपः। "शर्म्मान्तं ब्राह्मणस्य स्याद्वर्म्मान्तं क्षत्रियस्य च। धनान्तञ्चैव वैश्यस्य दासान्तं चान्त्यजन्मनः" अत्र धनान्तमिति श्रुतेः प्रागुक्तवचने भूतिपदश्रुतेश्च भूतिपदधनपदयोर्वैकल्पिकत्वम्। एवं शर्म्मन्नित्यनेन शर्म्मान्त नाम्ना विशेष्यस्य विशेषणत्वात् पितरिति विशेषणवत् गोत्रस्य विशेषणस्यापि सम्बुद्ध्यन्तत्वं स्वरान्तमित्यनेन भङ्ग्यन्तरेणाभिहितम्। एवं सम्बुद्ध्यन्तत्वादियुक्तं गोत्रपदम्। कर्त्ता उच्चारयिता न मुह्यतीत्यनेन श्राद्धादौ गोत्रपदमेवोच्चार्य्यं न तु पितृदयिताकल्पतरुश्राद्धविवेकोक्तं गोत्रपर्य्यायकर्मापि सगोत्रपदम्। एवं पितरित्यादिश्रुतेः सम्बन्धिशब्दानां पदिन्यायेन स्वसम्बन्धिपरत्वात् लौकिकेऽपि तथैवाभिधानात् पितरित्यादिवक्तव्यं नत्वस्मत् पितरित्यादि अन्यथा अन्नोत्सर्गादावपि एतदस्मदन्नमित्यभिलापापत्तेः। एवमेव श्रीदत्तप्रभृतयः। मिश्रोऽपि कृत्यप्रदीपेऽप्येवमिति।

पित्रादीनां नामाख्याने तु आश्वलायनसूत्रं "नामान्यविद्वांस्तत् पितृपितामह-प्रपितामहा इति" अत्र पित्रादीनां नामाख्याने गोत्रसम्बन्धान्तरं देवदत्तपितरित्यादि प्रयोज्यम् अस्मदित्यनभिधाय तदित्यनेन नामाविद्वत् कर्त्तृनामपरामर्शात्। अतएव श्राद्धविवेके नामाख्याने अमुकपितृपितामह-प्रपितामहा इति कृत्वा दद्यादित्युक्तम्। एवञ्च शर्म्मन्नर्घ्यादिके कार्य्यमित्याद्यवाधायामुकपितृदेवशर्म्मन्नित्यादिकं प्रयोक्तव्यम्। न च नामघटकत्वेन शर्म्मेति पृथङ्न वक्तव्यमिति वाच्यं शर्म्मान्तं ब्राह्मणस्य स्यादित्यादौ शर्म्मादेर्नामभिन्नत्वेनोपपदत्वेन च प्रतीतेः। अतएव सम्बन्धवाचकादस्य भेदः। एवं पितामहादौ मातामहादावप्यूहनीयम्।

अभिलापप्रकारमाह ब्रह्मपुराणम्। "एतद्वोह्यन्नमित्युक्त्वा

विश्वां देवांश्च संयजेत्। पितृभ्यश्च ततो दद्यादन्नमामन्त्रणेन तु ॥ अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यमन्नं स्वधा नमः” ॥ एतद्व इति बहुवचनान्तोपादानेन सम्बोध्या विश्वे देवा अपि तथा प्रतीयन्ते तथा विश्वान् देवान् प्रति बृहस्पतिना च तत्तत् श्राद्धे क्रतु दक्षादिसंज्ञकद्वितयद्वितयोक्तत्वात् तत्तत् सार्थकत्वाय उर्वश्यप्सरस इति वत् पुरूरवो माद्रवसौ विश्वे देवा एतद्वोऽन्नं नमः” इति द्विवचनबहुवचनाभ्यां वाक्यरचना पितृदयितादौ लिखिता गरुड़पुराणेऽप्येतादृशी वाक्यरचना। अतएव इच्छाश्राद्धे क्रतुदक्षादि नामान्युक्त्वा बृहस्पतिना तदज्ञाने आगच्छन्त्वित्यादि मन्त्रपाठ उक्तः यथा “उत्पत्तिं नामचैतेषां न विदुर्ये द्विजातयः। अयमुच्चारणीयस्तैः श्लोकः श्रद्धासमन्वितैः ॥ आगच्छन्तु महाभागा विश्वे देवा वरप्रदाः। ये यत्र विहिता श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते” ॥ इति ततश्च नामज्ञाने सुतरां तस्यैवोच्चारणं प्रतीयते।

दैवे नम इत्यनेन त्यागमाह विष्णुः। “नमो विश्वेभ्यो देवेभ्यो इत्यन्नमादौ प्राङ्मुखयोर्निवेदयेदिति”अत्र नम इत्यनेन विश्वेभ्यो देवेभ्यो दद्यादित्यन्वयः। ततो देवपक्षकर्म्मानन्तरं पित्रादित्रिकं मातामहादि त्रिकञ्च सम्बुद्ध्यन्तगोत्रसम्बन्धनाम्ना एतत्तुभ्यमन्नं स्वधेति सर्वशाखिगोचरपौराणिकत्वेन सम्बोधनेन नामान्तमुच्चार्य्य तत्तच्छाखोक्तप्रकारेण वाक्यरचना। अत्र “अर्घ्येऽक्षय्योदके चैव पिण्डदानेऽवने जने। तन्त्रस्य विनिवृत्तिः स्यात् स्वधावचन एव च” ॥ इति छन्दोगपरिशिष्टवचनादसति वाधके लाघवमेव तन्त्रतान्याये युक्तिरित्युक्तत्वाच्च अर्घ्यादेरितरत्र “एतद्वः पितरो वासस्त्विति जल्पन् पृथक् पृथक्। अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यं वासः पठेत्ततः। दद्यात् क्रमेण वासांसि श्वेतवस्त्रभवा दशाः” ॥ इति ब्रह्मपुराणवचने वासो-

दानमन्त्रयोः पृथक्त्वाभिधानात् तदितरत्र च कुशासनगन्धाद्युत्सर्गदक्षिणादाने तन्त्रेणैव वाक्यरचना अतएव तुभ्यमिति पदेन प्रकृतवाचिनां निरपेक्षाणामेव पित्रादीनां सम्बोधनपदेन उपनीतानां तन्त्रेणोद्देश्यत्वसम्भवात् तन्त्रेणैव स्वधा पदसम्बन्ध इति श्राद्धविवेकः। अत्र तु प्रकृतेत्यनेन सन्निधानात् प्रपितामहमात्रस्य तुभ्यमित्यनेन नोपस्थितिः किन्तु सर्वनामत्वात् पित्रादित्रिकाणां निरपेक्षाणामित्यनेन साहित्यासत्त्वेन बहुवचनेनानुल्लेखात्तुभ्यमित्येक-वचनेनैवोल्लेख इति। एवञ्च गृह्योक्त एतत्त इत्यादौ ते इत्यस्य तुभ्यं पदस्थानीयत्वेन तथात्वमिति। एष ते पिण्ड इत्यनन्तरं मन्त्रे "ये चात्र त्वामनुजांश्च त्वमनु तस्मै ते" इति ते पदस्य गोभिलेन पुनरुपादानात् सामगेन श्राद्धवाक्ये उभयं प्रयुज्यते तत्र प्रथमं ते इति तवेत्यर्थे एवञ्च श्राद्धानुष्ठानानन्तरं गायत्रीजप उक्तः तं विशेषयति योगियाज्ञवल्क्यः। "प्रणवं पूर्वमुच्चार्य्य भूर्भुवः स्वस्ततः परम्-गायत्रीप्रणवश्चान्ते जपे ह्येष उदाहृतः"। तदनन्तरं देवताभ्य इति त्रिः पठेत्। ततः पुण्डरीकाक्षं स्मरेत्। "शङ्खचक्रधरं विष्णुं द्विभुजं पीतवाससम्। प्रारम्भे कर्म्मणां विप्रः पुण्डरीकं स्मरेद्धरिम्"॥ इति वाक्यात् पुण्डरीकं पुण्डरीकाक्षम्। स्मरणफलं गारुड़े। "अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं सवाह्याभ्यन्तरः शुचिः"॥

आत्मीयद्रव्यप्रोक्षणमाह वायुपुराणे। "नाप्रोक्षितं स्पृशेत् किञ्चित् पैत्रे दैवेऽथ वा पुनः"॥ स्पृशेत् दद्यात् उपघातशङ्कायां मृज्जलप्रोक्षणं तत्रैव "श्वा चैव हन्ति श्राद्धानि दर्शनादेव सर्वशः। श्वविट्शूकरसंस्पृष्टं दीर्घरोगिभिरेव च॥ पतितैः मलिनैश्चैव न स्प्रष्टव्यं कथञ्चन। अन्नं पश्येयुरेते यत्तन्न स्याद्धव्यकव्ययोः॥ उत्स्रष्टव्यं प्रदानार्थं संस्कारस्त्वापदि स्मृतः।

हविषा संस्कृतानान्तु पूर्वमेव हि मार्जनम् ॥ मृत्स्ना युक्ताभिरद्भिश्च प्रोक्षणन्तु विधीयते" ॥ प्रदानार्थं श्राद्धार्थं उत्सृष्टव्यं तदर्थं न नियोज्यमिति कल्पतरुः । देवलः "चण्डालेन शुनावापि दृष्टं हविरयज्ञियम् । विड़ालादिभिरुच्छिष्टं दुष्टमन्नं विवर्जयेत् अन्यत्र हिरण्योदकस्पर्शादिति" तदनन्तरं रक्षार्थमुकदपात्रमेकदेशे स्थापयेत् इति पितृदयिता । तथा च वृद्धमनुः । "रक्षणाय तु यद्दत्तमुदकं श्राद्धकर्म्मणि । तावदश्नन्ति पितरो यावत्तिष्ठति सोदकम्" इति दत्तं स्थापितं श्राद्धकर्म्मणि श्राद्धे कर्त्तव्ये सोदकं पात्रमिति शेषः ।

अथ पिण्डपितृयज्ञातिदेशः । तत्र गोभिलः "पिण्डपितृयज्ञवदुपचारः पित्र्ये इति" पित्र्ये पित्रादिषाट्पुरुषिककृत्ये पिण्डपितृयज्ञवत् स्वगृह्योक्त पिण्डपितृयज्ञरीत्या प्राचीनावीतित्व दक्षिणामुखत्वं पातितवामजानुत्व सतिलत्व द्विगुणभुग्नकुशत्रयत्व ये चात्रत्वेति मन्त्रोच्चारणरूपतया उपचरणं कार्य्यमित्यर्थः । अत्र "अक्षय्योदकदानन्तु अर्घ्यदानवदिष्यते । षष्ठ्यैव नित्यं तत् कुर्य्यान्न चतुर्थ्यां कदाचन" इति छन्दोगपरिशिष्टवचनेन षष्ठ्या एवेत्यनेन गोत्रसम्बन्धनाम्नां षष्ठ्यन्तता प्रतीतौ न चतुर्थ्येत्यनेन तत्र चतुर्थीं निषेधानुपपत्त्या पिण्डपितृयज्ञवदित्यतिदेशप्राप्त ये चात्रत्वेति मन्त्रस्य तस्मै ते इत्यस्य निषेधेऽन्वयानुपपत्त्या तद्युक्त मन्त्रनिषेधोऽपि सङ्गच्छते । "एकोद्दिष्टस्य पिण्डे तु अनुशब्दो न युज्यते" इत्यति आश्वलायनगृह्यपरिशिष्टेऽनुशब्दनिषेधादनुयुक्त मन्त्रनिषेधवत् एतेन कुशासनान्नोत्सर्गयोः ये चात्रत्वेत्यादिमन्त्रस्यालिखनं मैथिलानां हेयम् ।

अथ कुशासनम् । तत्र गोभिलः । "पित्र्ये द्विगुणांस्तु दर्भान् पवित्रपाणिर्दद्यादासीनः सर्वत्र प्रश्नेषु पङ्क्तिमूर्द्धन्यं

पृच्छति सर्वान् वा सर्वत्रासनेषु दर्भानास्तीर्य्येति" पित्रे च पित्रर्थदाने तत्रादौ जलगण्डूषप्रक्षेपः। ततो द्विगुणभुग्नकुशपत्रत्रयं पितॄणाम् आसनार्थं दद्यात् एतच्च आदौ विश्वेदेवपक्षे कृत्वा पितृपक्षे कर्त्तव्यं तथा च याज्ञवल्क्यः। "पाणिप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थं कुशानपि। आवाहयेदनुज्ञातो विश्वे देवा स इत्यृचा॥ द्विगुणांस्तु कुशान् दत्त्वा उशन्तस्त्वेत्यृचा पितॄन्॥ प्रक्षाल्यतेऽनेनेति प्रक्षालनं जलं तेन तूष्णीं ब्राह्मणपाणौ जलं दत्त्वा विष्टरार्थम् आसनार्थमिति दीपकलिका कुशान् ऋजून् दद्यात् व्यक्तमाह आश्वलायनः। "अपः प्रदाय दर्भान् द्विगुणभुग्नानासनं प्रदाय" इति आसनमित्यनेन उपवेशनीयत्वप्रतीतेर्हस्ते तद्दानं प्रतीयते। तथा च कार्ष्णाजिनिः "दर्भांश्चैवासने दद्यात् न तु पाणौ कदाचन। पितृदेवमनुष्याणाम् एवं तृप्तिर्हि शाश्वती"॥ अत्र पितृदेवमनुष्योपादानात् पार्वणादिश्राद्धे विश्वेषां देवानां नित्यश्राद्धे सनकादि मनुष्याणामपि कुशासनदानं प्रतीयते। अत्र दैविकत्वेन कुशानां ऋजुत्वमिति विशेषः। देवपितृविप्रयोः दक्षिणवामयोः कुशासनस्थापनमाह श्राद्धसूत्रभाष्यधृतवचनम्। "पितॄणामासनं दद्याद्वामपार्श्वे कुशान् सुधीः। दक्षिणे चैव देवानां सर्वत्र श्राद्धकर्म्मसु"॥ सर्वत्र दैवे पित्रे च पवित्रपाणिः पवित्रयुक्तदक्षिणकरः आसीन उपविष्टस्तथा च छन्दोगपरिशिष्टम्। "सव्यः सोपग्रहः कार्य्यो दक्षिणः सपवित्रकः" इति "आसीन ऊर्द्ध्वः प्रह्वो वा नियमो यत्र नेदृशः। तदासीनेन कर्त्तव्यं न प्रह्वेण न तिष्ठता"॥ इति सव्यो वामकरः उपग्रहो बहुलकुशः आसीन उपविष्टः ऊर्द्ध्वो दण्डवत् स्थितः प्रह्वः अवनतपूर्वकायः सवचेत्यनेन देवकार्य्ये पितृकार्य्ये च पवित्रपाणित्वमासीनत्वञ्च प्रश्नेषु श्राद्धं करिष्ये

पितॄनावाहयिष्ये इत्यादि प्रश्नेषु आसनेषु ब्राह्मणोपविष्टदर्भयुक्तासनेषु दर्भानास्तीर्य्य विश्वे देवाद्यर्थोत्सृष्टदर्भानास्तीर्य्य वक्ष्यमाणमावाहनं कुर्य्यादित्यर्थः । यत्तु अनिरुद्धभट्टेन पादयोरधः कुशासनदानमुक्तं तत्र प्रमाणं न विद्म इति पङ्क्तिमूर्द्धन्यं पितृब्राह्मणं पृच्छेदिति ऋज्वन्यत् ।

अथ आवाहनम् । तत्र गोभिलः "यवानादाय प्रणवं कृत्वा विश्वान्देवानावाहयिष्ये इति पृच्छेत् आवाहयेत्यनुज्ञातः विश्वे देवाः आगत शृणुताम इमं हवम् एदं वर्हिर्निषीदत" इत्यावाह्य यवान् विकिरेत् । "विश्वे देवाः शृणुतेमं हवं ये मेऽन्तरीक्षे उपद्यविष्टयेऽग्नि जिह्वा उतवो यजत्रा आसद्यास्मिन् वर्हिषि मादयध्वं ओषधयः समवदन्त सोमेन सह राज्ञा यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजन् पारयामसि" इति अत्र समवदन्तेति वकारयुक्तः पाठः वदस्थैर्य्ये इत्यस्मात् धातोरिति गुणविष्णुलिखनात् व्यक्तमपरम् । अत्रावाहनानन्तरं कृत्यप्रदीपे यवविकरणे यवोऽसीति मन्त्रलिखनं प्रमाणशून्यं पितृदयिता श्राद्धकल्पादिषु तूष्णीमित्यभिधानात् । अत्र देवतावाहने गृह्यादधिकं विप्राङ्गुष्ठग्रहणमाह ब्रह्मपुराणम् "देवानावाहयिष्येऽहं प्राहुरावाहयस्व च । विप्राङ्गुष्ठं गृहीत्वा तु विश्वान् देवान् समाह्वयेत्" । आवाहयस्वेति शाख्यन्तरीयं गोभिलकात्यायनाभ्यामावाहयेत्यभिधानात् । गोभिलः "पित्र्ये तिलानादाय प्रणवं कृत्वा पितॄनावाहयिष्ये इति पृच्छति आवाहयेत्यनुज्ञातः एत पितरः सोम्यासो गम्भीरेभिः पथिभिः पूर्विणेभिर्दत्तास्मभ्यं द्रविणेह भद्रं रयिञ्च नः सर्ववीरं नियच्छत । उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि उशन्नुशत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे" । इत्यृचावाह्य "आयान्तु नः पितरः सोम्यासोऽग्निस्वात्ताः पथिभिर्देवयानैः अस्मिन् यज्ञे स्वधया

मदन्तोऽधिब्रुवन्तु ते अवन्त्वस्मान्” इति जपित्वा अपहतेति तिलान् विकीर्य्य इति पूर्व्विणेभिरिति पूर्व्वैः कृतमित्यर्थे इनयौ चेति इन्प्रत्यय इति गुणविष्णुव्याख्यानादिनस्य तद्धितत्वेन पूर्व्वशब्दस्याकार लोपात् तत्पदं सिद्धम् अत्र मूलभूतगोभिल-ग्रन्थे तद्भाष्यद्वये पितृदयितायाञ्च एतपितर इत्यनन्तरम् उशन्तस्त्वेति लिखितेन मैथिलानामेतत् विपरीतलिखनं हेयम् आवाहनात् ब्राह्मणाचमनपर्य्यन्तं कर्त्ता विप्रैश्च विहित-तरशब्दोच्चारणं न कार्य्यम्। आवाहनात् वाग्यत आ उप-स्पर्शनादामन्त्रिताश्चैवं” इति कात्यायनवचनात्।

अथ अर्घ्यं तत्र गोभिलः। “अप उपस्पृश्य यज्ञिय वृक्षचमसेषु पवित्रान्तर्हितेषु एकैकस्मिन् अप आसिञ्चति शन्नोदेवीति” अप उपस्पृश्य जलं स्पृष्ट्वा अत्र पितृमन्त्रोच्चारणं वीजं तथा छन्दोगपरिशिष्टे कात्यायनः। “पित्र्यमन्त्रानुद्रवणे आत्मालम्भेऽवेक्षणे। अधोवायुसमुत्सर्गे प्रहासेऽनृतभाषणे॥ मार्जारमूषिकस्पर्शे आक्रुष्टे क्रोधसम्भवे। निमित्तेषु च सर्व्वेषु कर्म्म कुर्व्वन्नपः स्पृशेत्”॥ पित्र्यमन्त्रानुद्रवणे यज्ञादौ विहिते आत्मालम्भे हृदयस्पर्शे अवेक्षणे तस्यैव अधोवायुसमुत्सर्गे नोद्गारे प्रहासे महति हास्ये न तु स्मिते आक्रुष्टे परुषभाषणे क्रोधसम्भवे क्रोधोत्पत्तौ भाषणं विनाऽपि मनसा एषु निमित्तेषु सर्व्वत्र कर्म्मकरणकाले जलं स्पृशेत् नत्वाचामेत्। याज्ञवल्क्योऽपि “रौद्रपित्र्यसुरान् मन्त्रान् तथा वैराभिचारिकान्। व्याहृत्यालभ्य चात्मानमपः स्पृष्ट्वान्यदाचरेत्”॥ चमसास्तु “तच्छाखाश्चमसा दीर्घाः प्रादेशाश्चतुरङ्गुलाः। तथैव उत्सेधतो ज्ञेयाश्चतुरस्रास्तु इत्यपि”॥ तच्छाखा यज्ञिय-वृक्ष-शाखाश्चतुरङ्गुलाः चतुरङ्गुल-विस्तृता तथैव चतुरङ्गुल-परिमाणाः उत्सेधतः ऊर्द्ध्वतः। अत्र अर्घ्यपात्रस्थापनं

कुशोपरीत्याह वैजवापगृह्यं "प्राचीनावीति पात्राण्यप्पूर्णानि सदर्भाणि सतिलानि दक्षिणाग्रेषु कुशेषु निधाय" इति पवित्रान्तर्हितेषु मध्यार्पितपवित्रेषु एकैकस्मिन्निति वीप्सा देवपात्रेऽपि जलादिप्रक्षेपार्था। तथा च याज्ञवल्क्यः "यवैरन्ववकीर्य्याथ भाजने सपवित्रके। शन्नोदेव्यापयः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवां स्तथा। या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वर्घ्यं निवेदयेत्"॥ गोभिलः। "एकैकस्मिन्नेव तिलानावपति तिलोऽसि सोमदैवत्यो गोसवो देवनिर्म्मितः। प्रत्नमद्भिः पृक्तः स्वधया पितॄन् लोकान् प्रीणाहि नः स्वाहा" इति सौवर्णराजतौडुम्बरखाङ्गमणिमयानां पात्राणामन्यतमेषु अप्रसिद्धपत्रपुटेषु वा यानि वा विद्यन्ते एकैकस्मिन्नेकैकेन ददाति सपवित्रेषु हस्तेषु "या दिव्या आपः पयसा सम्बभूवुर्या अन्तरीक्षा उत्पार्थवीर्य्या हिरण्यवर्णा यज्ञिया स्तान आपः शिवाः शंस्योनाः सुहवा भवन्तु" इति पठित्वा असावेतत्तेऽर्घ्यमिति अत्र एकैकस्मिन्निति पूर्वसूत्रप्रकृतत्वादेव प्रत्येकपात्रलाभे पुनर्यदेकैकस्मिन्निति नियमाभिधानं तन्मन्त्रे पितॄनिति बहुवचनदर्शनादावाहनादिमन्त्रपाठवत् सकृन्मन्त्रपाठः स्यादिति तन्निषेधार्थं किन्तु प्रत्येकमेव तिलप्रक्षेपमन्त्रः बहुवचनन्तु "एतद्वः पितरो वासः" इति वत्प्रयोगसाधुत्वेनोपपन्नम्। अत्र तिलानावपतीत्यविशेषित गोभिल-दर्शनात् देवपक्षेऽपि तिलप्रक्षेपः। तथा च विश्वे देवा स आगत इत्यावाह्य विकरणमपि तिलानामिति कर्कोपाध्यायमतं यत् तन्न युक्तम्। आवाहयेत्यनुज्ञातो विश्वे देवा स इत्यृचा। यवैरनुविकीर्य्याथ भाजने सपवित्रके। शन्नोदेव्यापयः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा" इति याज्ञवल्क्यविरोधात्। यवतिलप्रक्षेपानन्तरं गन्धपुष्पप्रक्षेपणमाह ब्रह्मपुराणम्। "अर्घ्याः

पुष्पैश्च गन्धैश्च ताः प्रपूज्याः स्वशास्त्रतः" अर्घ्या आप इति शेषः स्वशास्त्रतः आत्मीयगन्धपुष्पप्रतिपादकात्। शाट्यायनोऽपि "गन्धपुष्पैरलङ्कृत्य या दिव्येति पठन् सृजेत्। सृजेत् उत्सृजेत् ततो देवब्राह्मणहस्ते प्रागग्रमर्घ्यपात्रीय पवित्रं जलान्तरञ्च प्रक्षिप्य पितृब्राह्मणहस्ते दक्षिणाग्रमर्घ्यपात्रीय पवित्रं जलान्तरञ्च प्रक्षिप्य वामहस्तेऽर्घ्यपात्रं धृत्वा या दिव्येति पठित्वा वाक्येन विप्रकरस्थपवित्रसहितमर्घ्यजलमुत्सृजेत् दद्यात्। तथा च वायुपुराणम्। "ततो वामहस्तेन गृहीत्वा चमसानक्रमात्। पितृतीर्थेन तत्तोयं दक्षिणेन च पाणिना। दत्तदर्भोदके हस्ते विप्रेभ्यश्च पृथक् पृथक्"॥ जलप्रक्षेपानन्तरं या दिव्येति पाठात् पूर्वं पुष्पान्तरेण शिरःप्रभृतिसर्वगात्रपूजनमाह समुद्रकरधृतगोतमः। "शिरसः पादतश्चैव सम्यगभ्यर्च्चयेत्ततः। पूर्ववत् पृथगेकैकमेकैकेनार्च्चयेत् क्रमात्"॥ औडुम्बरं ताम्रपात्रं खाड्गं गण्डो शरोऽस्थिनिर्म्मितं पात्रं मणिमयानि स्फाटिकादीनि यानि वेति अप्रतिषिद्धानि कदलीवृक्षत्वगादीनि च चमसादीनां वैकल्पिकत्वात् अन्यतमेष्विति शब्दाच्चैकजातीयेनैव सर्वाण्यर्घ्यपात्राणि असाविति सम्बोधनान्तनामोपलक्षणम्। "असाविति नाम गृह्णातीति" कात्यायनदर्शनात् यद्यप्यसाविति असम्बुद्धि प्रथमान्तोऽपि सम्भवति तथापि ते इति युष्मत् पदप्रयोगात् सम्बुद्ध्यन्तता प्रतीयते। अतएव छन्दोगपरिशिष्टं "गोत्रनामभिरामन्त्र्य पितॄनर्घ्यं प्रदापयेत्"॥ प्रयोगविधायकगोभिलसूत्रे एतत्तेऽर्घ्य मित्यभिधानात् तद्गृह्योऽप्यर्घ्यमर्घ्य मित्यभिधानाच्च सामगानां सर्वत्राभिलापे नपुंसकलिङ्गेनैव प्रयोगः अभिलापेतरत्र एकोऽर्घ्यं इति गोभिलेन पुंस्त्वेन निर्द्दिष्टः अन्येषां सर्वत्र पुंलिङ्गेनैव प्रयोगः तत्रापि पाद्यार्घ्याभ्यां यदिति

पाणिनिसूत्रेण यद्यद्विधानं तत्सामगप्रयोग एवान्यत्र निर्यंकार एवार्थशब्दः। प्रागुक्त वै जवाधगृह्यवचनेऽर्घ्यपात्रस्थापनीयकुशानां दक्षिणाग्रत्वदर्शनात् तत्पात्रोपरि पवित्रस्थापनेऽपि तद्दृष्ट्या पशुप्रोक्षणवत् तथैव व्यवहारात् आसनास्तरणीय कुशेषु तथादर्शनेन दक्षिणाग्रत्वव्यवहारात् ब्राह्मणहस्ते पवित्रदानेऽपि तथा प्रतीयते अतएव गोभिलीय श्राद्धकल्पभाष्यकृन्महा यशसाढुण्ढुपद्धतौ गार्गीयपद्धतौ च पवित्राणां दक्षिणाग्रत्वं लिखितमिति नव्यवर्द्धमानपशुपत्यपि पालरायमुकुटपद्धतिष्वपि तथा लिखितम् अतएव "वशिष्ठोक्तो विधिः कृत्स्नोद्रष्टव्योऽत्र निरामिशः" इति छन्दोगपरिशिष्टेन वृद्धिश्राद्धे पार्वणधर्मातिदेशेऽपि अर्घ्ये "ज्येष्ठोत्तरकरान् युग्मान् कराग्राग्रपवित्रकान् कृत्वार्घ्यं सम्प्रदातव्यं नैकैकस्यात्र दीयते" इत्यनेन पवित्राणामुत्तराग्रत्वं विधीयते प्रत्येकहस्तेऽर्घ्यदानं निषिध्यते च अतः पार्वणे दक्षिणाग्रत्वं एकैकहस्तदानत्वं प्रतीयते। गोभिलः। "प्रथमे पात्रे संस्रवान् समवनीयपात्रं न्युब्जं कुर्यात् पितृभ्यः स्थानमसि" इति प्रथमे पात्रे पितृपात्रे संस्रवान् पितामहादिपश्चार्घ्यपात्रस्थशेष जलानि समवनीय पशुप्रोक्षणवत् क्रमेण स्थापयित्वा तत्पात्रस्य प्रपितामहपात्रेणाच्छादनमाह शौनकः। "प्रपितामहपात्रेण पिधाय प्रतिष्ठापयति" इति याज्ञवल्क्येन अपि तत्पात्रस्याधस्थत्वाभिधानात् पात्रान्तरेण पिधानमाचितं तथा च याज्ञवल्क्यः। दत्त्वार्घ्यं संस्रवांस्तेषां पात्रे कृत्वा विधानतः। पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः" ॥ विधानतो यथापूर्वं स्थापितं तत्क्रमेण तेन प्रपितामहपात्रेणाधः कृतं पितृपात्रं ऊर्द्ध्वमुखावस्थितं न्युब्जं करोति नतु केवलं पितृपात्रं न्युब्जं करोति तदेवपात्रं पात्रान्तरेणाधः

करोति “पैतृकं प्रथमं पात्रं तस्मिन् पैतामहं न्यसेत् । प्रपितामहं ततो न्यस्य नोद्धरेत् न च चालयेत्” इति यमवचनादिति मैथिलोक्तं युक्तं याज्ञवल्क्यवचने करोतीत्यनुषङ्गापत्तेर्वाक्यभेदापत्तेश्च शौनकोक्तपिधानानन्तरं न्युब्जीकरणानुपपत्तेश्च यमवचनेऽपि पितृपात्रस्य याज्ञवल्क्यीयाधस्थत्वाय शौनकीय प्रपितामहपात्रमात्रपिधामवैकल्पिकं पितामहप्रपितामहपात्रद्वयपिधानभुक्त्वा वचनान्तरान्न्युब्जीकृतस्य तत्पात्रस्योद्धरणादिनिषेध उक्तः तन्न्यासश्च “पितृपात्रे निधायाथ न्युब्जमुत्तरतो न्यसेत्” इति मत्स्यपुराणवचने न्यसेदित्यत्राख्यातोपस्थापितकर्त्तुर्वामपार्श्वे कर्त्तव्यः “तस्मादुद्यस्य दक्षिणतो लक्ष्म भवति तं पुण्यलक्ष्मीकमित्याचक्षते उत्तरतः स्त्रियाः” इति उत्तरायणा हि स्त्रीति शतपथश्रुतेः “उत्तरे चास्य सौवर्णं लक्ष्मपार्श्वे भविष्यति” इति महाभारतवचनाच्च उत्तरशब्दस्य वामवचनता सिद्धा पितृकर्म्मणि प्राच्यादिश्च उत्तरादिक्त्वाच्च तथा च रायमुकुटधृतं पित्र्यमिष्टमुपक्रम्य “ब्राह्मणं या दक्षिणा सा प्राची या पूर्वा सोत्तरा” इति । एवञ्च भोक्तृब्राह्मणानामपि सोत्तरादिगेवेति कल्पतरूक्त्या सहैकवाक्यतापि सिद्धा इति । एवं कर्त्तुर्दक्षिणामुखस्य वामपार्श्वमुत्तरादिग्भवति इति ततश्च कल्पतरुश्राद्धविवेकाभ्याम् एकस्थानं भङ्क्त्वा द्वितयेनाभिहितं स च न्यासोदर्भस्तम्बोपरीत्यनिरुद्धभट्टः । अत्र गोभिलसूत्रे पितृपात्रे इत्यभिधानात् संस्रावानिति बहुवचनाच्च मन्त्रे पितृभ्य इति पितृत्वेन श्राद्धतास्तत्र तिष्ठन्ति पितरः शौनकोऽब्रवीदित्याश्वलायन गृह्यपरिशिष्टवचने पितृत्वेन षड़पस्थितेरावाहनवत् षट्पुरुषानुद्दिश्य सकृदेव न्युब्जीकरणं न तु मातामहादीनां मैथिलोक्तं पृथक् करणमिति ।

अथ गन्धादिदानम्। तत्र गोभिलः। "गन्धपुष्पधूपदीपाच्छादनानां सम्प्रदानमिति"। तत्र गन्धादिपञ्चानां द्वन्द्वनिर्देशाल्लाघवाच्च मिलितानां तन्त्रेणैकोत्सर्गः निवेदनन्तु प्रत्येकशः तथा च शाट्यायनः एष ते गन्ध एतत्ते पुष्पं एष ते धूप एष ते दीप एतत्ते आच्छादनम् इति अत्र बहुषु यवेषु सम्पन्नो यव इति जात्यपेक्षैकवचनं तद्वद्गन्धादीनां प्रत्येकं बहुत्वेऽप्येकवचनान्तत्वेन निर्देशः। "इदं वः पुष्पमित्युक्त्वा पुष्पाणि च निवेदयेत्। अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यमन्नं स्वधा नमः" इति ब्रह्मपुराणादिष्वेकजातीयानेकद्रव्येऽपि एकवचनान्तप्रयोगात् अतएव नवमाध्यायेऽपि "सूर्य्यस्य चक्षुर्गमयतात्" इति मन्त्रे सूर्य्यस्य चक्षुर्बहुत्वेऽप्येकवचनान्तपदनिर्देशात् संसर्गिद्रव्याणामन्नतोयतेजसां प्रयोगे एकवचनान्तप्रयोग इति विचारितम्। अतएव आभ्युदयिके पात्रद्वयाऽन्नोत्सर्गवाक्य एतत्तेऽन्नम् इति सर्वैः पद्धतिकृद्भिर्लिखितम् एवञ्च पितृदत्तगन्धादीनां ब्राह्मणाय निवेदने शाट्यायनोक्त निवेदनवाक्ये ते इत्येकत्वेन निर्दिष्टम् एकब्राह्मणपक्षे ब्रह्मपुराणे व इति बहुवचनेन निर्दिष्टं तदनेकब्राह्मणपक्षे एकस्मिन्नपि गुरुत्वविवक्षया व इत्यविरोधः तत्र गन्धः। विष्णुः "चन्दनकुङ्कुमकर्पूरागुरुपद्मकाष्ठान्यनुलेपनार्थे"।

अथ पुष्पम्। ब्रह्मपुराणे। "शुक्लाः सुमनसः श्रेष्ठाः तथा पद्मोत्पलानि च। गन्धरूपोपपन्नानि यानि चान्यानि कृत्स्नशः" निषेधमाह "जवादिकुसुमं भाण्डीरूपिका सकुरण्टका। पुष्पाणि वर्जनीयानि श्राद्धकर्म्मणि नित्यशः"॥ जवादीत्यादि शब्दादेवं विधं रक्तकुसुमं रूपिका अर्कपुष्पं कुरण्टकः पीता झिण्टी "उग्रगन्धान्यगन्धीनि चैत्यवृक्षोद्भवानि च। पुष्पाणि वर्जनीयानि रक्तवर्णानि यानि च॥

श्राद्धे जात्यः प्रशस्ताःस्युर्मल्लिकाकुन्दयूथिकाः" ॥ दद्यादित्युपक्रम्याह। "केतकीं करवीरञ्च वकुलं चम्पकं तथा। जातीदर्शनमात्रेण निराशाः पितरो गताः" ॥ जातीति रक्तजातिविषयम्।

अथ धूपाः। "ब्राह्मे चन्दनागुरुणी चोभे तथैवोशीरपद्मकं तुरुष्कं गुग्गुलुञ्चैव घृताक्तं युगपद्दहेत्"। उशीरं वीरणमूलं तुरुष्कं सिह्लकम्।

अथ दीपाः। तत्र शङ्खः। "घृतेन दीपो दातव्यस्तिलतैलेन वा पुनः। धूपार्थं गुग्गुलुं दद्यात घृतयुक्तं मधुप्लुतम्"।

अथाच्छादनम्। वायुपुराणे। "आच्छादनन्तु यो दद्यादाहतं श्राद्धकर्म्मणि। आयुः प्रकाममैश्वर्य्यं रूपञ्च लभते शुभम्"॥ आहतमत्रपारिभाषिकमेव "ईषद्धौतं नवं श्वेतं सदशं यन्न धारितम्। आहतं तद्विजानीयात् सर्वकर्म्मसु पावनम्"॥ ब्रह्मपुराणम्। अनङ्गलग्नं यद्वस्त्रं विभवे तद्युगं शुभम्। वस्त्राभावे क्रिया नास्ति यज्ञदानतपांसि च॥ तस्माद्वस्त्राणि देयानि श्राद्धकाले विशेषतः"॥ अतो वस्त्रदानस्यावश्यकत्वं तद्विनाक्रियाभावश्रुतेः।

अथ यज्ञोपवीतानि। वायुपुराणे। "यज्ञोपवीतं यो दद्यात् श्राद्धकाले तु धर्म्मवित्। पावनं सर्वविप्राणां ब्रह्मदानस्य तत्फलम्"॥ अतोऽस्य काम्यत्वं ब्रह्मपुराणे। "श्वेतचन्दनकर्पूरकुङ्कुमानि शुभानि च। विलेपनार्थं दद्यात्तु यच्चान्यत् पितृवल्लभम्"॥ रजतादिजीवतां वा यदभिलषितमासीत् श्राद्धाप्रतिषिद्धं तद्देयमिति। वायुपुराणं "लोके श्रेष्ठतमं सर्वमात्मनश्चापि यत् प्रियम्। सर्वं पितॄणां दातव्यं तदेवाक्षयमिच्छता"॥ गन्धाद्यभावे प्रतिनिधिमाह पैठीनसिः। "काष्ठ-

मूलपत्रपुष्पफलप्ररोहरसगन्धानां सादृश्येन प्रतिनिधिं कुर्य्यात् सर्वालाभे यवः प्रतिनिधिर्भवतीति" काण्डं नालं प्ररोहोऽङ्कुरः सर्वालाभे यव इति कल्पतरुः। अवयव इति नारायणोपाध्यायाः। तथा च वस्त्रयुग्माभावे खण्डवस्त्रं देयमिति।

अथ पात्रस्थानम्। ततो मण्डलं कृत्वा ताम्रादिपात्रं पातयेत् तत्र भृगुः "भस्मना वारिणावापि कारयेन्मण्डलं ततः"॥ मण्डलं चतुष्कोणम् अत्र दैवे ऐशानीमारभ्य दैवत्वात् दक्षिणावर्त्तेन प्रागग्रान्तरेखया वायवीमारभ्य उदगग्रान्तरेखया वा मण्डलं कारयेत्। प्रागुदगग्रेति कात्यायनदर्शनात् पित्र्ये तु नैर्ऋतिमारभ्य पितृत्वाद्वामावर्त्तेन दक्षिणाग्रान्तरेखया मण्डलं विन्यस्य "पात्रे दक्षिणाग्रा" इति च कात्यायनसूत्रात् नव्यवर्द्धमानोऽप्येवम्। मण्डलाकरणे दोषमाह स्मृतिः। "अन्नञ्च मण्डलैर्हीनं राक्षसैर्भुज्यते बलात्"।

अथ पात्राणि। तत्र हारीतः। "काञ्चनेन तु पात्रेण राजतोडुम्बरेण वा। दत्तमक्षयतां याति खड्गेनार्घ्यकृतेन च"॥ औडुम्बरेण ताम्रेण। खड्गेन गण्डकशिरोऽस्थिनिर्म्मितेन आर्घ्यकृतेन त्रैवर्णिककृतेन अन्यदपि पात्रमभिमतमिति कल्पतरुः। एवं कदलीत्वगादीन्यपि ब्रह्मपुराणे "सौवर्णरौप्यताम्राश्म स्फाटिक्य शङ्खशुक्तयः। भिन्नान्यपि नियोज्यानि पात्राणि पितृकर्म्मणि"॥ कल्पतरौ। "राजतं रजताक्तं वा पितृणां पात्रमुच्यते। रजतस्य तथा दानं दर्शनं नाम शस्यते"॥ दैवे तु तन्निषिद्धम्। "अथार्घ्यपिण्डभोज्येषु पितृणां राजतं मतम्। अमङ्गल्यन्तु रजतं दैवकार्य्येषु वर्जयेत्"॥ इति वायुपुराणात्। याज्ञवल्क्यः। "हुतशेषं प्रदद्यात्तु भोजनेषु समाहितः। यथा लाभोपपन्नेषु रौप्येषु च विशेषतः"॥ शातातपः। "पात्रे तु मृण्मये यस्तु श्राद्धे

भोजयते पितॄन्। तत्र दाता पुरोधाश्च भोक्ता च नरकं व्रजेत्" ॥ श्राद्धीयपात्रनिषेधे पैठीनसिः "सीसकायसपाषाणपात्राणि हीनपात्राणि भग्नपात्राणि चेति" न कार्य्याणीति शेषः अत्र पाषाणस्य निषिद्धत्वात् ब्रह्मपुराणे विहितत्वाच्च विहितनिषिद्धत्वमिति ततश्च पात्रान्तराभावे तदुपादेयतेति हीनपात्रलक्षणमाह हारीतः "हीनपात्रन्तु तत्प्रोक्तं न्यूनमष्टाङ्गुलात्तु यत्"। तत्र प्रतिप्रसवमाह ब्रह्मपुराणम्। "रूप्यपात्रेण पाद्यादि तस्मात् सूक्ष्मेण कारयेत्" तस्मात् अष्टाङ्गुलात्।

अथाग्नौकरणम्। तत्र गोभिलः। "उद्धृतघृताक्तमन्नं पृच्छति अग्नौ करिष्यामि कुरुष्वेत्यनुज्ञातः पिण्डपितृयज्ञवद्धुत्वाचेति" ॥ उद्धृत्य श्राद्धस्योपकरणाद्घृताक्तमन्नम् उद्धृत्य घृताक्तमित्यभिधानात् व्यञ्जनादिवर्जं प्रतीयते तथा च विष्णुपुराणम्। "जुहुयाद्व्यञ्जनक्षारवर्जमन्नं ततोऽनले"। अत्र अग्नौ करिष्यामीति निर्देशात् गोभिलगृह्ये अग्नौ करिष्यामीत्यामन्त्रणं होष्यत इति सूत्रे अग्नौ करिष्यामीति श्रुतेः अग्नौ करिष्यामि इति छन्दोगानां प्रश्नवाक्यं होष्यतः हवनं करिष्यतः पुरुषस्यान्येषान्तु तानग्नौ करिष्य इति "प्रणतः प्रार्थयेत् द्विजान् कुरुष्वेति च तैरुक्तो दक्षिणाग्निं समाह्वयेत्" इति कल्पतरुधृतब्रह्मपुराणवचनात् अग्नौ करिष्ये इति प्रश्नवाक्यम् अत्र कुरुष्वेति श्रुतेर्वैदिकप्रश्नोत्तरयोः प्रणवादित्वं प्रतीयते एवञ्च मुन्यन्तरवाक्ये प्रणवासत्त्वेऽपि प्रणवादित्वं कल्प्यते अग्नौ करिष्ये इति मन्त्रेण पृच्छतीति कर्कभाष्यकृताऽस्य मन्त्रत्वाभिधानात् सुतरां तथा अतएव पितृदयितादिष्वपि सर्वत्र प्रणवादित्वेनोल्लेखः। पिण्डपितृयज्ञवदित्यतिदेशेन स्वाहा सोमाय पितृमते स्वाहा अग्नये कव्यवाहनाय

इति पिण्डपितृयज्ञीयहोममन्त्रौ श्राद्धे प्रतीयते एवं पिण्डपितृयज्ञातिदेशात् हविस्तूष्णीमिति बोध्यम्। अत्र स्वाहेत्यनेन हुत्वा सोमायेत्यादि पाठमाह छन्दोगपरिशिष्टं "स्वाहा कुर्य्यान्न मन्त्रान्ते न चैवं जुहुयाद्धविः। स्वाहाकारेण हुत्वाग्नौ पश्चान्मन्त्रं समापयेत्"॥ अत्र सामगेनाग्नौकरणहोममन्त्रान्ते स्वाहा न प्रयोज्या स्वाहां विना होमश्च न कर्त्तव्य इति प्रतिषेधमुक्त्वा स्वाहाकारेणेत्यादि तेन करणप्रकारमाह "स्वाहाकारेण हुत्वा सोमायेति वदेत्"। अत्र होमे अत ऊर्द्ध्वं प्राचीनावीतिना कृत्यमिति गृह्यसूत्रान्तरेऽग्नौकरणहोमानन्तरं प्राचीनावीतित्वाभिधानात् तत् पूर्वमुपवीतित्वप्राचीनावीतित्वयोरेकतरनियमाभावः सूचितः अतएव तद्व्यक्तं छन्दोगपरिशिष्टेन सहेतुकवचनद्वयेन व्यक्तीकृतम्। यथा "अग्नौकरणहोमश्च कर्त्तव्य उपवीतिना। प्राङ्मुखेनैव देवेभ्यो जुहोतीति श्रुतिः श्रुतेः॥ अपसव्येन वा कार्य्यो दक्षिणाभिमुखेन तु। निरूप्य हविरन्यस्मा अन्यस्मै न हि हूयते"॥ इत्यग्न्युद्धरणसत्त्वेऽभिहितं तदसत्त्वे मत्स्यपुराणम्। "अग्न्यभावे तु विप्रस्य पाणावेव जलेऽपि वा"॥ इति हस्तजलयोरप्यग्नौकरिष्यामीति वक्तव्यम्। "तैलं प्रतिनिधिं कुर्य्यात् यज्ञार्थं याज्ञिको यदि। प्रकृत्यैव तदा होता ब्रूयाद्घृतवतीमिति" यज्ञपार्श्ववचनदर्शनात् "शब्देऽविप्रतिपत्तिः" इति श्रौतकात्यायनसूत्राच्च ततश्च प्रतिनिहितद्रव्ये श्रुतशब्द एव प्रयोज्यः श्रुतद्रव्यबुद्ध्या प्रतिनिध्युपादानात् शब्दान्तरप्रयोगे द्रव्यान्तरबुद्धिप्रसङ्गाच्च एवं प्रतिनिहितगुड़ादावपि विप्रपाणावग्नौकरणपक्षे तत्पात्रे हुतशेषं न दद्यात् तथा च छन्दोगपरिशिष्टम्। "पित्र्ये यः पङ्क्तिमूर्द्धन्यस्तस्य पाणावनग्निमान्। हुत्वा मन्त्रवदन्येषां तूष्णीं पात्रेषु निक्षिपेत्"॥

अन्येषामिति ग्रहणात् तत्पात्रे हुतशेषं न देयमिति श्राद्धविवेकः।

अथ हुतशेषदानम्। तत्र गोभिलः। "हुतशेषं दत्त्वा पात्रमालभ्य जपति पृथिवी ते पात्रं द्यौःपिधानं ब्राह्मणस्य मुखेऽमृतेऽमृतं जुहोमि स्वाहा"। इत्यत्र पात्रमात्रश्रुतेर्विश्वदेवपात्रेऽपि हुतशेषदानं प्रतीयते। यत्तु यमवचनं "अग्नौकरणशेषन्तु पित्र्ये तु प्रतिपादयेत्। प्रतिपाद्य पितॄणान्तु न दद्याद्वैश्वदेविके" इति तत् पित्र्येष्विति तु रप्यर्थो न तु नियमार्थः अतएवोत्तरार्द्धेन पितृदानानन्तरं विश्वदेवदानं निषिध्यते न तु विश्वदेवदानानन्तरं पितृदानं निषिध्यते समुद्रकरधृतस्मृतावपि। "अनाहिताग्नेर्विप्रस्य यदग्नौकरणं हुतम्। विश्वदेवाय दातव्यं पश्चात् पित्र्ये निवेदयेत्" इति। हुतशेषं पात्रेषु दत्त्वा पिण्डार्थमवशेषमाह यमः। "हुतोच्छिष्टं ब्राह्मणेभ्यः प्रदाय पिण्डार्थमवशेषयेदिति" हारीतोऽपि "अग्नौकरणशेषन्तु पिण्डार्थमवशेषयेदिति"। एवञ्च हुतशेषमात्रप्रतिपादानात् गोभिलेन हुतशेषं दत्त्वेत्यत्र तथाभिधानात् पारस्करेण च हुतशेषं दत्त्वा पात्रमालभ्य जपति पृथिवी ते इत्यनेन तथैवाभिधानाच्च मन्त्रे चामृतमित्यनेन "अमृतं विघसो यज्ञशेषभोजनशेषयोः" इत्यमरसिंहोक्तात् यज्ञशेषमात्रप्रतीतेः तत् प्रक्षेपानन्तरमेव छन्दोगयजुर्विदोः पात्रालम्भनं तदनन्तरमन्नादिपरिवेशनम् एवमेव अनिरुद्धभट्टप्रभृतयः। यत्तु "हुतशेसं प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहितः। यथा लाभोपपन्नेषु रौप्येषु तु विशेषतः॥ दत्त्वान्नं पृथिवीपात्रमिति पात्राभिमन्त्रणम्। कृत्वेदं विष्णुरित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत्"॥ इति याज्ञवल्क्यवचनेन हुतशेषमन्नान्तरञ्च दत्त्वा पात्रालम्भनमुक्तं तच्छाख्यन्तरीयं मन्त्रलिङ्गविरोधात्

श्रुत्यन्तरकल्पनापत्तेश्च हुतशेषं दत्त्वा पात्राभिमन्त्रणं कृत्वा अन्नं प्रदद्यादिति योजना कार्य्या एतेनान्नादिदानानन्तरं पात्रालम्भनं मैथिलोक्तं निरस्तम्। अतएव पश्चादेवान्नादिपरिवेशनमाह मार्कण्डेयपुराणम्। "हुतावशेषं दद्याच्च भाजनेषु द्विजन्मनाम्। भाजनालम्भनं कृत्वा दत्त्वा चान्नं यथाविधि॥ यथा सुखं जुषध्वं भो इति वाच्यमनिष्ठुरम्" इति।

पात्रालम्भनं दैवेऽनुत्तानहस्ताभ्यां पित्रे उत्तानपाणिभ्यां कार्य्यम्। "दैवेऽनुत्तानपाणिभ्यामुत्तानाभ्याञ्च पैतृके" इति यमवचनात्। गोभिलः। "वैष्णव्यर्चा यजुषा वाऽङ्गुष्ठमन्ने निधायापहता" इति तिलान् विकीर्य्य उष्णमन्नं दद्यादिति वैष्णवी ऋक् इदं विष्णुरित्यादि पूर्वोक्त याज्ञवल्क्यवचनात्। यजुषा कृष्णकव्यमित्यादिना "पृथिवी ते पात्रमित्यन्नममृतं चिन्तयेत् पठन्। कृष्ण कव्यमिदं रक्ष मदीयमिति कीर्त्तयेत्। एकैकस्याथ विप्रस्य गृहीत्वाङ्गुष्ठमादरात्" इति ब्रह्मपुराणात् कव्यमिति पितृपक्षे हव्यमिति देवपक्षे ऊहनीयं व्यक्तं ऋग्वेदीयग्रन्थे "विष्णो हव्यञ्च कव्यञ्च ब्रूयाद्रक्षेति वैक्रमात्"। अत्र याज्ञवल्कीयब्रह्मपुराणयोः ऋग्यजुषोः प्रत्येकमन्त्रोक्तेः गोभिलसूत्रे वा शब्दो विकल्पार्थः समुच्चयार्थत्वे निःसन्देहार्थं द्वन्द्वादिकमेव निर्दिशेत् एवमेव अनिरुद्धभट्टप्रभृतयः। एतेन मैथिलोक्त समुच्चयार्थो हेयः।

ऋक्परिभाषमाह जैमिनिः। "तेषामृक् यथार्थवशेन पादव्यवस्थितिः" इति तेषां मन्त्राणां मध्ये यत्रार्थवशेन एकान्वयत्वेनानुष्टुबादि पादस्थितिः सा ऋक् यजुः परिभाषामपि स एवाह "शेषे यजुः शब्द" इति शेषे ऋक्सामभिन्ने मन्त्रजाते सामपरिभाषामाह स एव "गीतिषु सामाख्या" इति गीतिषु

गीयमानेषु मन्त्रेषु सामसंज्ञेत्यर्थः। ततश्च यन्मन्त्रजातं प्रश्लिष्टपठितं गानपादविच्छेदरहितं तद्यजुरिति एवञ्च यजुष्ट्वात् छन्दो नास्ति इति यत् प्रमाणिकैरुक्तं तदेवैतादृक्मन्त्रपरं न तु यजुर्वेदोक्तमन्त्रमात्रपरं ततश्च भोक्तृब्राह्मणाङ्गुष्ठं गृहीत्वेदं विष्णुरिति कृष्ण कव्यमित्यन्यतरं पठित्वा इदं हविरित्युक्त्वा अन्ने निवेशयेत् "इदं हविरित्येवमङ्गुष्ठमन्नविधां ब्राह्मणेभ्यो दद्यात्" इति पैठीनसिवचनात् अङ्गुष्ठं निवेश्येति शेषः अन्नविधां अन्नप्रकारमिति कल्पतरुः। एषु वचनेषु अन्नेऽङ्गुष्ठनिवेशनमात्रश्रुतेर्जलादावङ्गुष्ठनिवेशनं हेयम्। अत्र "निरङ्गुष्ठञ्च यच्छ्राद्धं वहिर्जानु च यत्कृतम्। वहिर्जानु च यद्भुक्तं सर्वं भवति चासुरम्"॥ इति यमवचने निरङ्गुष्ठश्राद्धे निन्दाश्रुतेर्ब्राह्मणाभावेऽपि तत् प्रतिनिधित्वेन श्राद्धकर्त्ताङ्गुष्ठं निवेशयेत् अतएव गोभिलेन सामान्यतोऽङ्गुष्ठं निधायेत्युक्तम्। ततोऽपहतेति मन्त्रेण तिलान् विकिरेत्। अत्रापहता इति मन्त्रपाठस्तु पितृपक्ष एव रक्षोघ्नत्वात्। देवानान्तु स्वतोरक्षोघ्नत्वात् न तत्रापहता इति मन्त्रापेक्षा अतएव पितृपक्षीयत्वादेव तिलविकरणमुक्तं न तु यवविकरणमिति एवमेव कर्कभाष्यम्। गुणविष्णुनाप्ययं मन्त्रस्तिलविकरणार्थत्वेन व्याख्यातस्ततश्चानिरुद्धभट्टेन यत् देवपक्षेऽपि समन्त्रकयवविकरणमुक्तं तत् गोभिलसूत्रानुपात्तत्वात् हेयम्। ततोऽन्ने मधु तदभावे गुड़ं वा प्रतिनिधिं दत्त्वा गायत्रीं मधुवातेति मन्त्रत्रयं मधुमधुमध्वित्यनेनान्नमभिमन्त्र्य प्रोक्ष्य वामहस्तेन अन्नपात्रं धृत्वा ब्राह्मणे जलगण्डूषं दत्त्वा सोपकरणमन्नं प्रागुक्तगोत्रसम्बन्धाद्युल्लेखेन दद्यात्। "मधुमध्विति यस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम्। गायत्र्यनन्तरं गोत्रमधुमन्त्रविवर्जितः" इति छन्दोगपरिशिष्टवचने पार्वणे भोक्तुमिच्छतां

ब्राह्मणानां श्राव्यत्वेन मधुमध्विति त्रिर्जपो मधुवातेति मन्त्रसहितो गायत्रीजपानन्तरं क्रियते सोऽत्राभ्युदयिकश्राद्धे मधुवातेति मन्त्रवर्जित इति श्राद्धविवेककृद्व्याख्यानात्। "गायत्रीं त्रिःसकृद्वापि जपेद्व्याहृतिपूर्विकाम्। मधुवाता इति त्र्यृचं मध्वित्येतत् त्रिकं जपेत्"॥ इति मिताक्षराधृतपारस्करवचनात्। देवपूर्वं पितृभ्योऽन्न माज्यपूतं मधुप्लुतम्। मन्त्रितं पृथिवीत्येवं मधुवाते त्र्यृचं जगौ" इति ब्रह्मपुराणात्। "अन्नं मधुमयं कृत्वा मधुवाताभिमन्त्रितम्" इति यमवचनात्। "अद्भिरभ्युक्ष्य दद्यादालभ्य" इति हारीतवचनात्। आलभ्य स्पृष्ट्वा "अतो मधुघृताक्तन्तु सोष्णमन्नं तिलान्वितम्। गृहीत्वा दक्षिणेनैव प्रणवेनैव तत् पुनः॥ एतद्वोह्यन्नमित्युक्त्वा विश्वान् देवांश्च संयजेत्। पितृभ्यश्च ततो दद्यादन्नमामन्त्रणेन तु। अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यमन्नं स्वधा नमः"॥ इति ब्रह्मपुराणवचनाच्च। अत्र "सोष्णभागा हि पितरः" इति श्रुतिदर्शनात्। सोष्णमित्युक्तम् अतएव मनुः। "यावदुष्णं भवत्यन्नं यावदश्नन्ति वाग्यताः। तावदश्नन्ति पितरो यावन्नोक्ता हविगुणाः"॥ अत्र वाग्यतत्वाभिधानेनैव श्राद्धभोक्तृणां हविर्गुणानभिधाने सिद्धे यावन्नोक्ता हविर्गुणा इति पुनर्वचनम् इङ्गितादिना गुणप्रतिपादननिषेधार्थम्। अत्र पृथुकादीनामुष्णत्वं नापेक्षितम्। आपस्तम्बेन पर्य्युषितस्यापि प्रतिप्रसूतत्वात्। तथा च प्रतिषिद्धमुपक्रम्य आपस्तम्बः। "कृतान्नं पर्य्युषितं पृथुकतण्डुलकरम्भशक्तुलाजपिष्टकक्षीरविकारौषधिवर्जम्" इति दैवे तिलान्वितमिति शाख्यन्तरीयम्। एषु वचनेषु मधुप्लुतं मधुमयं मधुघृताक्तमिति श्रुत्या मध्वित्येतत् त्रिकं जपेत् इति पारस्करवचनाच्च मधुमध्वितित्रिर्जप इत्यस्य मधुद्रव्यसम्बन्धिमध्विति त्रिर्जप इति व्याख्येयं न तु मधुमध्वित्यस्य त्रिर्जपः

मधुवाताभिमन्त्रितमिति। मधुवातेति ऋक्त्रयेणाभिमन्त्रितम्। तिसृणामासामृचां युगनद्धवाहितयैव सर्व्वत्र प्रयोगदर्शनात्। अभिमन्त्रणमाभिमुख्येन मन्त्रपाठः। तच्च अभिमन्त्रणीयं स्पर्शं विनैव वृषमभिमन्त्रयेदिति वदिति नवीनवर्द्धमानः। एतेन वाचस्पतिमिश्रोक्तमन्त्रस्पर्शपूर्व्वकमभिमन्त्रणं हेयम्। तेनैव वृषोत्सर्गे स्पर्शं विनैव वृषाभिमन्त्रणमित्युक्तम्।

अथ विहिताविहितद्रव्याणि। वायुपुराणे। "कृष्णामाषास्तिलाश्चैव श्रेष्ठाःस्युर्यवशालयः"। शालिर्हैमन्तिकं धान्यं तत् प्रभवतण्डुलादि। अथ वृषकृष्टप्रभवधान्येन वैधकर्म्मकरणं तथा च हरिवंशे शक्रं प्रति सुरभिवाक्यम्। "कर्षकान् पुङ्गवैर्व्रीह्यैर्मध्येन हविषा सुरान्। श्रियं शक्रत् प्रवृत्तेन तर्पयिष्यामहे वयम्"॥ वायुपुराणं "विल्वामलकमृद्वीकापनसाम्रातदाड़िमम्। भव्यं पाणिवताक्षोड़ं खर्जूराम्रफलानि च। कशेरुकोविदारश्च तालकन्दं तथा विषम्"॥ मृद्वीका द्राक्षा भव्यं कामरङ्गं पाणिवतं करमर्दकम् आक्षोड़ं जम्बीराकारफलम् आक्षोड़ं काश्मीरादौ प्रसिद्धम्। कोविदारः श्वेतकाञ्चनसदृश इति श्राद्धविवेकः। तालकन्दं तालमूलीति प्रसिद्धम् विषं मृणालम्। मनुः। "तिलैर्व्रीहियवैर्माषैरद्भिर्मूलफलेन वा। दत्तेन मासं प्रीयन्ते विधिवत् पितरो नृणाम"॥ व्रीहिः शरत्पक्वधान्यम्। याज्ञवल्क्यः। "हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन च वत्सरम्। मात्स्यहारिणकौरभ्रशाकुनिच्छागपार्षतैः॥ ऐणरौरववाराहशाशैर्मांसैर्यथाक्रमम्। मासवृद्ध्याभितृप्यन्ति दत्तेनेह पितामहाः"॥ हविष्यान्नेन शालिव्रीह्यन्नेन मात्स्येति मत्स्यादिमांसैः उरभ्रोमेषः शकुनिर्विहितलावकादिः पृषतश्चित्रमृगः एणः कृष्णमृगःरुरुर्बहुशृङ्गो

मृगः क्षत्रियव्रतोपयुक्तमृगचर्म्म इति दीपकलिका। अत्र "यक्षरक्षःपिशाचान्नं मद्यं मांसं सुरासवम्। तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामश्नताहविः" इति मनुवचनेन मद्यादि साहचर्य्यान्मांसम् आममांसमिति भट्टटीकाकृद्भिर्व्याख्यातं तद्दृष्ट्वा श्राद्धे आममांसं न देयमिति वदन्ति। तन्न "मुन्यन्नानि पयःसोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम्। अक्षारलवणञ्चैव प्रकृत्या हविरुच्यते" इति मनुवचनविरोधात्। अत्रानुपस्कृतमित्यनेन पाकोपस्काररहितमांसमित्युक्तं तदपि हविः। न चानुपस्कृतमविकृतं पूतिगन्धादिरहितमिति कुल्लूकभट्टव्याख्यानं युक्तं शब्दानभिधेयत्वादिति। गौड़दाक्षिणात्याभ्यां तथा व्यवह्रियते मुन्यन्नानि नीवारादीनि वशिष्ठः "अन्नं पर्य्युषितं भावदुष्टं सहृल्लेखं पुनः सिद्धमाम ऋजीषपक्वं काममन्तर्दध्ना घृतेन वारिघारितमुपभुञ्जीतेति" आमन्तण्डुलादि पर्य्युषितादि ऋजीष पक्वान्तमन्नं निषिद्धमपि कामं दध्ना घृतेन वाभिघारितमुपभुञ्जीतेत्यनेन भोज्यान्तरासम्भवे एवं भुञ्जीतेति नैयतकालिककल्पतरुणा व्याख्यातं तत्रामं तण्डुलादि इति व्याख्यातं तद्बीजञ्च। "शस्यं क्षेत्रगतं प्राहुः सतुषं धान्यमुच्यते। आमं वितुषमित्युक्तं स्विन्नमन्नमुदाहृतम्"॥ इति वशिष्ठ-वचनेन स्विन्नास्विन्नतण्डुलयोर्यथा संख्यमन्नत्वेन आमत्वेन च परिभाषितत्वात् पूर्वसूत्रेऽपि अन्नामपदाभ्यां तथैव प्रतीयते नत्वामपदेनार्द्रकादि प्रतीयत इति। ततश्च "अपाद्यनग्नौ तीर्थे च चन्द्रसूर्य्यग्रहे तथा। आमश्राद्धं द्विजैः कार्य्यं शूद्रेण तु सदैव हि" इति प्रचेतोवचनात् तण्डुलादेस्तदानीमभक्ष्यत्वेऽपि पश्चात् पाकेन भक्ष्यत्ववदाममांसस्य तदानीमभक्ष्यत्वेऽपि पश्चात् पाकेन भक्ष्यत्वात् श्राद्धे देयत्वं प्रतीयते। अतएव मनुनैव श्राद्धप्रकरणे "मुन्यन्नानि पयः

सोमो मांसं यच्चानुपस्कृतम्। अक्षारलवणञ्चैव प्रकृत्या हविरुच्यते” इति अनुपस्कृतम् इत्यनेन पाकोपस्काररहितं यत् मांसं तदपि हविरित्युक्तं न चानुपस्कृतमविकृतं पूतिगन्धादिरहितमिति कुल्लूकभट्टव्याख्यानं युक्तं शब्दानभिधेयत्वादिति गौड़दाक्षिणाभ्यां तथा व्यवह्रियते। मुन्यन्नानि नीवारादीनि इत्यस्य तत् ब्राह्मणेन नात्तव्यम् इत्यामतादशायाम्। हारीतः। “कालशाकञ्च वास्तूकं मूलकं कृष्णनालिकाम्। शिताङ्कुरं कलायञ्च पटोलं सर्षपं तथा॥ सूर्य्यावर्त्तं सुनिषसं शाकान्याहुर्मनीषिणः”॥ सूर्य्यावर्त्तं सुलिटया इति ख्यातं सुनिषसं सुषुणीति प्रसिद्धं वायुपुराणे। “वैकङ्कतं नारिकेलं शृङ्गाटकपरूषकम्। पिप्पलीमरिचञ्चैव पटोलं बृहतीफलम्॥ एवमादीनि चान्यानि स्वादूनि मधुराणि च”॥ अन्यानि अनिषिद्धानि। “नागरञ्चात्र वैदेयं दीर्घमूलकमेव च”। नागरमार्द्रकं “कट्फलं किङ्किणी द्राक्षालकुचं मोचमेव च”। कट्फलं गाम्भारिफलं किङ्किणी अम्लरसा द्राक्षा इति रुद्रधरः अलजम्बुरिति हलायुधः। लकुचं डहुफलं मोचं कदलीफलम्। आदित्यपुराणे। “मधुकं रामठञ्चैव कर्पूरं मरिचं गुड़म्। श्राद्धकर्म्मणि शस्तानि सैन्धवं त्रपुषन्तथा”॥ रामठं हिङ्गु। त्रपुषं सुखाशिका। शङ्खः “पिप्पलीं मरिचञ्चैव तथा वै पिण्डमूलकम्। कृतकं लवणं सर्वं वंशाग्रञ्च विवर्जयेत्”॥ कृतकं लवणं क्षारमृत्तिकादिभिः कृत्रिमं लवणम् अतएव मनुनापि हविष्यान्ने अक्षारलवणं विहितम्। अत्र हिङ्गुमरिचशुण्ठीपिप्पलीनां स्वरूपेणादेयता द्रव्यान्तरसंस्कारकत्वेन देयता पूर्ववचनसिद्धा। विष्णुः “कुष्माण्डालावुवार्त्ताकौ ग्राम्यमाहिषदुग्धकम्। पालङ्कीं राजिकां श्राद्धे द्विःस्विन्नञ्च विवर्जयेत्”॥ द्विःस्विन्नञ्च तदेव यत् सूपकारशास्त्रोक्तापेक्षित-

पाकनिष्पत्त्यनन्तरं शैत्यादिनिवृत्तये पुनः पाकान्तरमुक्तं नत्वर्द्धपाकानन्तरं तच्छास्त्रोक्त सम्भारणरूपपाकान्तरमिद्धं व्यञ्जनादि अतीतार्थे क्तनिर्देशात्। अतएव तिलादिभृष्टानन्तरं मोदकं गुड़ादिपक्वमोदकादि शिष्टैर्दीयते भुज्यते च। अन्यथा द्विः संस्कृतस्य भोज्यत्वं न स्यात्। "पर्य्युषितं पुनः सिद्धमभोज्यमन्यत्र हिरण्योदकस्पर्शादिति" सुमन्तूक्तेः। यमः। "यच्च भुक्त्वा पुनर्भुङ्क्ते यस्तु तैलाभिघारितम्। रजस्वलाभिर्यद्दृष्टं तद्वै रक्षांसि गच्छति"॥ तैलाभिघारितमिति घृतसम्भवे तदसम्भवे तैलपक्वमित्यापस्तम्बेन तैलेन पाकविधानात्। "तिलैः श्राद्धं पुष्टिकामः कुर्य्यात् पूपैः ऋद्धिकामो घृतगुड़तैलपक्वैस्तेजस्कामः सौभाग्यारोग्यकामो वा परमान्नकृशरदधिमांसयवागूभिः सर्वकामः" इति हारीतेन फलकथनाच्च। एवञ्चैतेषां काम्याभिलापं विनापि पितृतृप्त्यतिशयसम्पादकत्वेन फलविशेषजनकत्वम्। शातातपः। "गोकुले कन्दुशालायां तैलयन्त्रेक्षुयन्त्रयोः। अमीमांस्यानि शौचानि स्त्रीषु बालातुरेषु च"॥ बालः पञ्चवर्षाभ्यन्तरवयस्कः। अमीमांस्यानि शौचाशौचभागितया न विचारणीयानीति भवदेवभट्टरत्नाकरादयः। अतएव कूर्म्मपुराणम्। "कन्दुपक्वानि तैलेन पायसं दधिशक्तवः। द्विजैरेतानि भोज्यानि शूद्रगेहकृतान्यपि"॥ कन्दुपक्वं जलोपसेकं विना केवलपात्रेण यत् वह्निना पक्वं भृष्टतण्डुलादि। पायसं पाकसंस्कृतं दुग्धं परमान्नपरत्वे पुंलिङ्गनिर्देशापत्तेः। "परमान्नन्तु पायसः" इत्यमरात्। वायुपुराणे। "शर्कराक्षीरसंयुक्ताः पृथुका नित्यमक्षयाः। शक्तून् लाजान् तथा पूपान् कुष्माण्डान् व्यञ्जनैः सह। सर्पिः स्निग्धानि सर्वाणि दध्ना सत्कृत्य भोजयेत्। श्राद्धेष्वेतानि यो दद्यात् पितरः प्रीणयन्ति तम्"॥ अत्रान्नपाके

सपिण्डाधिकारमाह देवलः। "तथैवामन्त्रितो दाता प्रातः स्नातः सहाम्बरः। आरभेत नवैः पात्रैरन्वारम्भं सबान्धवः"॥ तथैवामन्त्रितः सर्वायासविनिर्मुक्तैरित्यादिभिर्निर्मन्त्रितो येन। सहाम्बर इति द्वितीय वस्त्रप्रतिपत्त्यर्थम् एकवस्त्रस्य नग्नत्वप्रतिषेधेन प्राप्तत्वात् एतेन कुशरज्ज्वादिर्वस्त्रप्रतिनिधिर्न भवतीति सूचितम्। एवमेव स्नाने ब्रह्मदत्तभाष्यकल्पतरुप्रभृतयः। श्राद्धपाकार्थतण्डुलस्य सकृत् प्रक्षालनमाह गोभिलः। "त्रिफलीकृतांस्तण्डुलान् त्रिर्देवेभ्यः प्रक्षालयेत् द्विर्मनुष्येभ्यः सकृत् पितृभ्यः" इति।

आमश्राद्धे योगिनीतन्त्रम्। "निरग्नेरामश्राद्धे तु अन्नं न चालयेत् क्वचित्। वृद्धौ तु चालयेदन्नं संक्रामे ग्रहणेषु च"॥ मार्कण्डेयपुराणम्। "यत् सर्वाय च नोत्सृष्टं यत्राभोज्यनिपानजम्। तद्वर्ज्यं सलिलन्तात सदैव पितृकर्म्मणि"॥ "स्मृतिः। पाटेन घटमुत्पाद्य भाजने पूरयेज्जलम्। तज्जलं मदिरातुल्यं भाण्डस्थं सुरया समम्"॥ मदिरा सुरेतररूपा सुरा पैष्टी। वराहपुराणे। "अकृताग्रयणञ्चैव धान्यजातं द्विजोत्तम। राजमाषाननूंश्चैव मसूरांश्च विवर्जयेत्"॥ अकृताग्रयणमकृतनवशस्येष्टिश्राद्धं यथा योग्यं साग्निनिरग्निपरम्। ब्रह्मपुराणे। "द्विः स्विन्नं परिदग्धञ्च तथैवाग्रावलेहितम्। शर्करा कीटपाषाणैः केशैर्यच्चाप्युपद्रुतम्॥ पिण्याकं मथितञ्चैव तथातिलवणञ्च यत्। सिद्धाः कृताश्च ये भक्ताः प्रत्यक्षलवणीकृताः। वाग्भावदुष्टाश्च तथा दुष्टैश्चोपहता स्तथा॥ वाससा चावधूतानि वर्ज्यानि श्राद्धकर्म्मणि"॥ अग्रावलेहितं श्राद्धार्थोपकल्पितं सदुपभुक्ताग्रभागं सिद्धाः कृताः सिद्धेषूत्तरकालं प्रत्यक्षलवणप्रक्षेपकृताः विष्णुपुराणे। "अलावुं गृञ्जनञ्चैव पलाण्डुं पिण्डमूलकम्। गान्धारकं

करम्भाणि लवणान्यौषधानि च ॥ आरक्ताश्चैव निर्यासाः प्रत्यक्षलवणानि च । वर्ज्यान्येतानि वै श्राद्धे यच्च वाचा न शस्यते ॥ नक्ताहृतमनुत्सृष्टं तृप्यते न च यत्र गौः । दुर्गन्धिफेणिलञ्चाम्बु श्राद्धयोग्यं न पार्थिव ॥ क्षीरमेकशफानां यदौष्ट्रमाविकमेव च । मार्गञ्च माहिषञ्चैव वर्जयेत् श्राद्धकर्म्मणि" इति निषेधवचनानि ।

अथ परिवेशनम् । मनुः । "पाणिभ्यां तूपसंगृह्य स्वयमन्नस्य वर्द्धितम् । विप्रान्तिके पितॄन्ध्यायन् शनकैरुपनिक्षिपेत्" ॥ अन्नस्येति षष्ठी तृतीयार्थे वर्द्धितं पूरितं पात्रमिति शेषः । उपनिक्षिपेत् परिवेशनार्थं समीपे धारयेत् तथा च पाकस्थाल्या आकृष्य प्रथमं भोजनपात्रे न देयं किन्तु स्थाल्यादिकं पाणिभ्यां पात्रसमीपे भूमौ संस्थाप्य पश्चादुभाभ्यां पाणिभ्यां पात्रान्तरिताभ्यां श्राद्धे परिवेशनं कुर्य्यात् । "उभाभ्यामपि पाणिभ्यामाहृत्य परिवेशयेत्" इति मत्स्यपुराणात् । यत्तु । श्राद्धे परिवेशनञ्च दक्षिणपाणिमात्रेणैवाङ्गानभिधानादिति मैथिलोक्तं तन्न । "एकेन पाणिना दत्तं शूद्रदत्तं न भक्षयेत्" इत्यादि पुराणीयेनैकपाणिदत्त शूद्रदत्त भक्षणनिषेधेन तन्मात्रपरिवेशनस्यापि निषिद्धत्वात् । पाणिभ्यामपि पात्रान्तरितं कृत्वा देयम् । "हस्तदत्ताश्च ये स्नेहा लवणं व्यञ्जनानि च । दातारं नोपतिष्ठन्ते भोक्ता भुङ्क्ते तु किल्बिषम् ॥ तस्मादन्तरितं देयं पर्णेनाथ तृणेन वा । प्रदद्यात् न तु हस्तेन नायसेन कदाचन" ॥ इति वशिष्ठेन सामान्यतोऽभिधानात् पितृभक्तितरङ्गिण्यामप्येवम् । मनुः । "गुणांश्च सूपशाकाद्यान् पयोदधिघृतं मधु । विन्यसेत् यत्नतः सम्यक् भूमावेव समाहितः ॥ भक्ष्यं भोज्यञ्च विविधं मूलानि च फलानि च । हृद्यानि चैव मांसानि पानानि सुरभीणि

च॥ उपनीय तु सत्सर्वं शनकैः सुसमाहितः। आमिषं पानपात्रञ्च भोक्तुर्दक्षिणतो न्यसेत्॥ परिवेशयेच्च प्रयतो गुणान् सर्वान् प्रचोदयन्"॥ गुणान् उपकरणानि। भूमावेव न तु व्यञ्जनादि पात्रादन्नपात्रोपरि निक्षिपेत् पात्रान्तरासत्त्वे भोजनपात्रेऽपि।

अथान्नोत्सर्गानन्तरकृत्यम्। तत्र गोभिलः। "सकृत् सकृदपो दत्त्वा गायत्रीं मधुवाताञ्च पठित्वा अश्नत्सु जपेत् व्याहृतिपूर्विकां सावित्रीं सप्रणवामिति"॥ एतच्च ब्राह्मणहस्ते सकृत् सकृज्जलम् इच्छातो जुषध्वमित्युक्त्वा भवन्तः प्राशयन्त्विति मन्त्रेणापोशानार्थं दद्यात् "दत्वा जुषध्वमिच्छातो वाच्यमेतदनिष्ठुरम्" इति विष्णुपुराणात्। "दत्त्वापोशानमासीनः सावित्रीं त्रिर्जपेदथ। मधुवाता इति त्र्यृचं मध्वित्यन्तेन भोजयेत्" इति समुद्रकरधृतेन तेभ्यो दद्यादापोशानं भवन्तः प्राशयन्त्विति ब्रह्मपुराणीयेन चैकवाक्यत्वात्। ततो गायत्रीं मधुवातेति त्र्यृचञ्च जपित्वाऽन्नहीनमिति पठेत्। तथा च यमः। "अन्नहीनं क्रियाहीनं विधिहीनञ्च यद्भवेत्। तत्सर्वमच्छिद्रमस्त्वित्युक्त्वा यत्नेन भोजयेत्"॥ ततो भुञ्जानेषु ब्राह्मणेषु सप्रणवां सव्याहृतिकां गायत्रीं जपेत् एतदनन्तरं मधुवातेति ऋक्त्रयं मधुमधुमध्विति च जपेत् तथा च याज्ञवल्क्यः। "सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवाता इति त्र्यृचं जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरं स्तेऽपि वाग्यताः। अन्नमिष्टं हविष्यञ्च दद्यादक्रोधनोऽत्वरः। आतृप्तेस्तु पवित्राणि जप्त्वा पूर्वजपन्तथा"॥ अन्नमिष्टमित्यनेन उत्सर्गानन्तरमपि पितृतृप्त्यर्थमन्नान्तरादिकं देयम्। पवित्राणीत्यनेन विष्णुपुराणाद्युक्तानि सूचितानि। अत्र रक्षोघ्नमन्त्रपाठमाह विष्णुपुराणम्। "यज्ञेश्वरो हव्यसमस्तकव्य भोक्ताव्ययात्मा हरि-

रीक्षतोऽत्र । तत् सन्निधानादपयान्तु सद्यो रक्षांस्यशेषाण्यसुराश्च सर्वे" ॥ याज्ञवल्क्यः । "श्लोकत्रयमपि ह्यस्माद् यः श्राद्धे श्रावयिष्यति । पितॄणां तस्य तृप्तिः स्यादक्षया नात्र संशयः" ॥ अस्मान्मदीयग्रन्थात् । एवञ्च "यश्चैनं श्रावयेत् श्राद्धे ब्राह्मणान् पादमन्ततः । अक्षय्यमन्नपानं वै पितृभ्यश्चोपतिष्ठते" इत्यादि पर्व्वणि श्राद्धे महाभारतीयश्लोकपादादिश्रवणोक्तेः संक्षेपेण भारतवंशद्वयनिरूपत्वेन दुर्य्योधनो मन्युमय इति युधिष्ठिरो धर्म्ममय इति श्लोकद्वयम् । अपहृतगुरुगवीमांसकृतश्राद्धमहत्त्वप्रकाशकपितृगाथात्वेन सप्तव्याधा इति च पठ्यते । कल्पतरौ मत्स्यपुराणम् । "ब्रह्मविष्ण्वर्करुद्राणां स्तोत्राणि विविधानि च । विप्राणामात्मनश्चैव तत् सर्वं समुदीरयेत्" ॥ विप्राणामात्मनश्चेति । श्राव्यत्वेन इति शेषः । एवञ्चात्मनः श्राव्यत्वेन रक्षोघ्नत्वेन पितृतृप्तिकारकत्वेन च दर्भब्राह्मणपक्षेऽपि जपः कार्य्यः । तथा रक्षोघ्नत्वेन पितृतृप्त्यर्थत्वेन च पितृकार्य्यत्वात् प्राचीनावीतिना जपः कार्य्यः । प्राचीनावीति पितॄणामिति श्रुतेः "प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा पित्र्यमानिधनात् कार्य्यं विधिवद्दर्भपाणिना इति मनूक्तेः । भट्टभाष्येऽप्येवम् । पितृदयितायामप्येवम् ।

अथाग्निदग्धादिनान्नविकरणम् । गोभिलः । "तृप्तिं ज्ञात्वा सतिलमन्नं प्रविकीर्य्य अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु पराङ्गतिमिति" ॥ तृप्तिं ब्राह्मणानामिति शेषः । तज्ज्ञानप्रकारमाह स्मृतिः । दीयमानं न गृह्णन्ति अन्नञ्च बहु विद्यते । ज्ञात्वा तृप्तिं तदा देयो दर्भेषु विकिरश्च यः" ॥ अन्नं विशिषयति ब्रह्मपुराणम् । "उच्छिष्टे सतिलान् दर्भान् दक्षिणा-

ग्रान्निधापयेत्। यद्यन्निवेदितं किञ्चित् पितृभ्यश्चाथ तत्र च॥ तस्मात्तस्माच्च भागन्तु गृहीत्वा चमसे शुभे। दत्त्वा मृताभिधानान्तु विप्रेभ्यश्च सकृत् सकृत्"॥ उच्छिष्टे तत् समीपे उच्छिष्टाग्रत इति वक्ष्यमाणात्। प्रविकीर्य्याग्निदग्धाश्चेति मन्त्राभ्यां सकुश भूमेरभ्युक्षणमाह विष्णुः। "भुक्तवत्सु च विप्रेषु भूमिं सकुशामभ्युक्ष्यान्नविकरणमुच्छिष्टाग्रत इति"। अत्र पराङ्कृतिमित्यनन्तरं सूत्रस्थेतिकारेण येषां न माता न पिता इति मन्त्रान्तरमुक्तमित्यादि बहुवचनान्ता गणस्य संसूचका इत्युक्तेः। तथा च मत्स्यपुराणम्। "सार्व्ववर्णिकमन्नाद्यं सन्नीयाप्लाव्य वारिणा। समुत्सृजेत् भुक्तवतामग्रतो विकरन् भुवि॥ अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम। भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्। येषां न माता न पिता न बन्धुर्नैवान्नसिद्धिर्न तथान्नमस्ति॥ तत् तृप्तयेऽन्नं भुवि दत्तमेतत् प्रयान्तु लोकाय सुखाय तद्वत्। असंस्कृतप्रमीतानां योगिनां कुलयोषिताम्॥ उच्छिष्टं भागधेयं स्यात् दर्भेषु विकिरश्च यः"॥ सार्व्ववर्णिकं सर्व्वप्रकारं सन्नीय मिश्रयित्वा ततश्च मन्त्राभ्यां तदुक्तफलमुद्दिश्य कुशोपरि दद्यात्। एतदेवासंस्कृतेत्यादिनोपसंहृतम्। ततो हस्तौ प्रक्षाल्याचम्य हरिं स्मरेत्। "ततः प्रक्षाल्य हस्तौ च तथाचम्य हरिं स्मरेत्। प्रेतभागं विसृज्याथ प्रायश्चित्तोपशान्तये"॥ इति ब्रह्मपुराणात् गोभिलः। सकृत् सकृदपो दत्त्वा पुनर्मधुवातां मधु च त्रिर्जप्त्वा तृप्ताःस्थ इति पृच्छति तृप्ताःस्म इत्युक्ते शेषमन्नमनुज्ञाप्येति" अत्र सकृत् सकृदिति श्रुतेः। प्रतिपक्षे प्रत्यापोशानजलं दद्यात्। "दत्त्वा मृतापिधानन्तु विप्रेभ्यश्च सकृत् सकृत्" इति ब्रह्मपुराणात् एतच्च प्रत्यापोशानजलपानं हस्तं प्रक्षाल्य न कर्त्तव्यम्। तथा च

शातातपः । "हस्तं प्रक्षाल्य यश्चापः पिबेद्भुक्त्वा द्विजाधमः । तदन्नमसुरैर्भुक्तं निराशाः पितरो गताः ॥ इत्यत्र मत्स्यं भुञ्जानस्य हस्तप्रक्षालनानन्तरमेवापोशानस्य वैधत्वात्तेन हस्तं प्रक्षाल्य निरामिषमन्नादिकं भुक्त्वापोशानं कर्त्तव्यं व्यक्तीकृतमेतदाह्निकतत्त्वे । गोभिलेन मन्त्ररहितजलदानाभिधानात् दर्भब्राह्मणेऽपि जलदानाचारः । पुनर्मधुवातेत्यत्र पुनरित्यभिधानं पुनर्गायत्र्यनन्तरमधुवाता प्रतिपत्त्यर्थं तथा च ब्रह्मपुराणम् । "सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीञ्च ततो जपेत् । पाठेन्मधुमतीः पुण्यास्तथा च मधुमध्विति" ॥ प्रत्यापोशानात् परतः । कात्यायनोऽपि तृप्तिं ज्ञात्वा अन्नं प्रकीर्य्य सकृत् सकृदपोदत्वा पूर्ववत् गायत्रीं जपित्वा मधुमतीमधुमधुमध्विति च जपेत् । तृप्ताःस्थ इति पृच्छति शेषमन्नमनुज्ञाप्येति तृप्तिं ज्ञात्वा सर्वेषां तृप्तिमनुमाय तृप्ताःस्थ इति बहुवचननिर्देशात् । सकृदभिधानं तृप्ताःस्म इति तेषामपि सकृत् प्रतिवचनम् । एतच्च कुशब्राह्मणे नास्ति अयोग्यत्वात् अनुज्ञाप्य शेषमन्नं क्व देयमिति ब्राह्मणेभ्यो निवेद्य इष्टेभ्यो दीयतामिति प्रत्युत्तरं गृह्णीयादिति शेषः । तथा च ब्रह्मपुराणम् । "सतानाह पुनः शेषं क्व देयञ्चान्नमित्यपि । इष्टेभ्यो दीयतामेतदिति सम्प्रवदन्ति ते" ॥

अथ पिण्डदानम् । तत्र गोभिलः । "सर्वमन्नमेकत्रोद्धृत्य उच्छिष्टसमीपे दर्भेषु मधुमधुमधु इत्यन्नमीमदन्तेति च जपित्वा त्रींस्त्रीन् पिण्डान् दद्यादवने निज्येति" । अत्रेतिकर्त्तव्यता पिण्डपितृयज्ञवदुपचार इति पित्र्येति पूर्वोक्तसूत्रेणातिदिष्टा प्रत्येतव्या । तत्र देशमाह देवलः । "पुरस्तादुपविश्यैषां पिण्डावापं निवेदयेत् । ततस्तैरभ्यनुज्ञातो दक्षिणां दिशमेत्य सः ॥ उपलिप्ते शुचौ देशे स्थानं कुर्वीत

सैकतम्। मण्डलं चतुरस्रं वा दक्षिणावनतं महत्॥ पवित्रपाणिश्च जपेन्मन्त्रं रक्षोघ्नमुत्तमम्। निहन्मि सर्वं यदमेध्यवद्भवेद्धताश्च सर्वेऽसुरदानवा मया॥ रक्षांसि यक्षाः सपिशाचसङ्घा हता मया यातुधानाश्च सर्वे"॥ इति दक्षिणादिक् श्राद्धकर्त्रपेक्षयेति कल्पतरुः गोभिलसूत्रेऽपि उच्छिष्टसमीप इत्युक्तम् अतएव ब्रह्मपुराणोक्तदिगन्तराभिधानं शाख्यन्तरीयम्। अत्र मण्डलमुपक्रम्याभिहितेन "निहन्मि सर्वमित्यादिर्यस्मिन् देशे च पठ्यते। एष मन्त्रस्तु तं देशं राक्षसा वर्जयन्ति हि" इति ब्रह्मपुराणे निहन्मीत्यनेन मण्डलकरणं प्रतीयते। अनिरुद्धभट्टप्रभृतिभिरपि तथा लिखितम्। पिण्डपितृयज्ञातिदेशेन तत्प्रकृतिभूतान्वष्टका पिण्डीकरेखां मण्डलमध्ये कुर्य्यात्। सव्येन पाणिना दर्भपिञ्जलिं गृहीत्वा रेखामुल्लिखेत्। अपहतेति अन्वष्टकायां गोभिलगृह्यात्। अत्र वामेन दर्भपिञ्जल्याग्रहणमात्रं रेखान्तु वामान्वारब्धेन दक्षिणहस्तेन कुर्य्यात्। "सव्येन पाणिनेत्येवं यदत्रासकृदीरितम्। परिग्रहणमात्रन्तु सव्यस्यादिशति ध्रुवम्॥ पिञ्जल्याद्यभिसंगृह्य दक्षिणेनेतरात् करात्। अन्वारभ्य च सव्येन कुर्य्यादुल्लेखनादिकम्" इति छन्दोगपरिशिष्टात्। अत्र दर्भपिञ्जल्यवनेजनार्थोदकपात्रवासः सूत्रादिग्रहणे यत् सव्येनेति वारं वारं गोभिलगृह्योक्तं तत्र सव्यस्योपदेशो दर्भपिञ्जल्यादिग्रहणार्थः। उल्लेखनादिकन्तु वामकराद्दक्षिणकरेण दर्भपिञ्जल्यादिकं नीत्वा वामान्वारब्ध दक्षिणेन रेखादिकं कुर्य्यादित्यर्थः। पिञ्जलीपवित्रम्। "अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च। प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित्। एतदेव हि पिञ्जल्यालक्षणं समुदाहृतम्" इति छन्दोगपरिशिष्टात्। अत्र गृह्ये रेखाकरणे अपहता इत्यत्र इति कारि-

णाद्यर्थके नापहता इति समुदायमन्त्रो निहन्मीत्यादि समुदायमन्त्रोऽप्युक्तः। निहन्मि सर्वमित्युक्त्वा। "अनेन मन्त्रेण सुसंयतात्मा वेदीञ्च सर्वां सकृदुल्लिखेच्च। शिवाञ्च वृद्धिं ध्रुवमिच्छमानः क्षिपेत् द्विजातिर्दिशमुत्तराञ्च" ॥ इति वायुपुराणैकवाक्यत्वात् निहन्मीत्यादिमन्त्रद्वयं ब्रह्मपुराणेऽपि किन्तु द्विजातिरित्यादौ कुशांस्त एव दक्षिणाग्रानिति पाठे विशेषः। ततश्च वायुपुराणात् तत्पवित्रमुत्तरस्यां दिशि क्षिपेत्। ब्रह्मपुराणपाठात्तु रेखोपरि दक्षिणाग्रान् कुशानास्तरेदित्यर्थः। अतएव अनिरुद्धभट्टेन यन्निहन्मीत्यनेन रेखाकरणमुक्तं तदशुद्धं एवञ्चैक दर्भेण तन्मध्यमुल्लिख्याभ्युक्ष्य तं त्यजेदिति देवलवचनम्। सव्योत्तराभ्यां पाणिभ्यां कुर्य्यादुल्लिखनादिकम्" इति यमवचनञ्च गोभिलगृह्यतत्परिशिष्टविरोधाच्छाख्यन्तरीयम्। ततश्चोक्त गोभिलसूत्रे दर्भेषु पिण्डदानाभिधानाद्रेखोपरि दर्भानास्तीर्य्य प्रागुक्तब्रह्मपुराणवचनेन देवताभ्य इति त्रिः पठेत् पिण्डान् दद्यादवनेनिज्येत्यनेनावने जने पिण्डदानकरणमुक्तं तत्प्रकारन्तु अन्वष्टकोक्तो ग्राह्यः। तथा च गोभिलगृह्यम्। "अत्र पितॄनावाहयति एत पितरः सौम्यास इति तथा अथोदकपात्रं गृहीत्वा अपसलविपूर्वस्यां कर्ष्वां दर्भेषु निनयेत् पितुर्नाम गृहीत्वा असाववनेनिक्ष्व ये चात्र त्वामित्यादि अप उपस्पृश्य एवमेवेतरयोस्तथाऽपसलविदर्भेषु निदध्यात् पितुर्नाम गृहीत्वाऽसावेव ते पिण्डो ये चात्र त्वामनु यांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधेति मन्त्रेण अप उपस्पृश्य एवमेवेतरयोस्तथा निधाय जपति अत्र पितरो मादयध्वं यथा भागमावृषायध्वमिति अपपर्य्यावृत्य पुरोच्छासादभिपर्य्यावर्त्तमानो जपेत् अमीमदन्त पितरो यथा भागमावृषायिषत इति अथाञ्जलिकृते

जपति नमो वः पितरः पितरो नमो वः इति गृहानवेक्षते गृहान्नः पितरो दत्तेति पिण्डानवेक्षते सदो वः पितरो देष्म इति सव्येनैव पाणिना सूत्रतन्तुं गृहीत्वा अपसलविपूर्वस्यां कर्ष्वां पिण्डे निदध्यात् पितुर्नाम गृहीत्वा असावेतत्ते वासो ये चात्र त्वामनुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधेति। अप उपस्पृश्य एवमेवेतरयोः सव्येनैव पाणिना उदकपात्रं गृहीत्वा अपसलवि पिण्डानामुपरि सिञ्चेत्। ऊर्ज्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतं स्वधास्तु तर्पयत मे पितॄन्। मध्यमं पिण्डं पत्नीपुत्रकामाश्नीयादाधत्त पितरो गर्भम् इति अप्सु पिण्डानासादयेत् प्रणीते वा अग्नौ ब्राह्मणान् भोजयेद्वा गवे वा दद्यादिति"। एषामर्थः यद्यप्यन्वष्टकायां पितॄनिति पित्रादित्रिकमत्र परं तथाऽप्यत्र त्रीं स्त्रीन् पिण्डान् दद्यात् इत्यनेन षट्पुरुष पिण्डदानानुरोधेन पितॄनिति षट्पुरुषपरं पूर्वोक्तावाहनानन्तरं तिल-विकरण-श्रुतेरत्राप्यावाहनानन्तरं तिलविकरणम् उदकपात्रं तिलयुक्तं "प्रागग्रेष्वथ दर्भेषु आद्यमामन्त्र्य पूर्ववत्। अपः क्षिपेन्मूलदेशेऽवने निक्ष्वेति निस्तिलाः द्वितीयञ्च तृतीयञ्च मध्यदेशाग्रदेशयोः"॥ इत्याभ्युदयिकप्रकरणीयछन्दोगपरिशिष्टवचनेन आभ्युदयिके निस्तिलत्वाभिधानेनान्यत्र सतिलत्वप्रतीतेः पुष्पयुक्तत्वञ्च। सपुष्पं जलमादाय तेषां पृष्ठे पृथक् पृथक्। अप्रदक्षिणं नेनिज्याद्गोत्रे नामानुमन्त्रितम्" इति ब्रह्मपुराणवचनात् अपसलवि पितृतीर्थेन प्रदेशिन्यङ्गुष्ठयोरन्तरा अपसलवि अपसव्यं वा तेन पितृभ्योनिदधातीति भट्टभाष्यधृतगृह्यान्तरात् अपसव्यशब्देन पितृतीर्थमुच्यते अस्मादेववचनात् तथा च मनुः "प्राचीनावीतिना सम्यगपसव्यमतन्द्रिणा" इत्यादि कर्ष्वामित्यन्वष्टकापरं तत्र तु मण्डलोपरि असाविति, सम्बोधनविभक्त्या

सर्वत्र नामनिर्द्देश इति भट्टभाष्यम् अतएव प्रागुक्त छन्दोगपरिशिष्टे आद्यमामन्त्रपूर्ववदित्युक्तम् आद्यं पितरं पूर्ववत् गोत्रनामभिरामन्त्र्य पितॄनर्घ्यं प्रदापयेदिति वत् पितुरवनेजनं मूलदेशे पितामह प्रपितामहयोस्तु अवनेजनं मध्यदेशाग्रदेशयोः। "द्वितीयञ्च तृतीयञ्च मध्यदेशाग्रदेशयोः" इति छन्दोगपरिशिष्टात्। मातामहादीनामप्येवम्। "मातामह प्रभृतींस्तु एतेषामेव वामतः" इति छन्दोगपरिशिष्टात्। एतेषां पितृणां वामत इत्याभ्युदयिक परम्। अन्यत्र तु दक्षिणतः कर्त्तुर्वामोपचारत्वात्। अतएव पार्वणे प्रागुक्तब्रह्मपुराणेऽप्रदक्षिणं नेनिज्यादित्युक्तम्। तेन सतिलपुष्पोदकपात्रं वामहस्ताद्दक्षिणहस्तेन वामान्वारब्धेन गृहीत्वा "अमुक गोत्र पितरमुक देवशर्म्मन्नवनेनिक्ष्व येचात्र त्वामनु यांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा" इति पितृतीर्थेनावनेजयेत्। अप उपस्पृश्य जलं स्पृष्ट्वा एवं पूर्वोक्तरीत्या पितामहाय प्रपितामहाय पिण्डदानसूत्रं जलस्पर्शनसूत्रञ्च पूर्ववत् व्याख्येयम्। अत्र च गृह्यानुक्तं श्राद्धसूत्रोक्तं सर्वमग्नौकरणशेषं श्राद्धशेषञ्च तथाच छन्दोगपरिशिष्टम्। "यावदन्नमुपादाय हविषोऽर्भकमर्भकम्। चरुणा सह सन्नीय पिण्डदानमुपक्रमेत्"। श्राद्धार्थाद्धविषोऽन्नादेः सकाशात् यावत् भक्ष्यमोदनव्यञ्जनादि ततोऽल्पाल्पं गृहीत्वा अग्नौकरण चरुशेषेण सह मिश्रीकृत्य पिण्डदानमारभेदित्यर्थः। एकस्मिन् पात्रेऽन्नं मध्वादि द्रव्येण मिश्रयेत्। "मध्वाज्यतिलसंयुक्तं सर्वव्यञ्जनसंयुतम्। उष्णमादाय पिण्डन्तु कृत्वा विल्वफलोपमम्। दद्यात् पितामहादिभ्यो दर्भमूलात् यथाक्रमम्" इति ब्रह्मपुराणवचनात् अत्र पितामहपदं पितृपरं वचनान्तरैकवाक्यत्वात्। अत्र पिण्डमात्रस्य विल्वफलोपमत्वश्रुतेः छन्दोगपरिशिष्टे च पित्रादीन्

मातामहादीनुपक्रम्य अवनेजनवत् पिण्डान् कृत्वा विल्वप्रमाणकानिति श्रुतेश्च सामगयजुर्वेदिनोर्विल्वप्रमाणकत्वम्। "पृथङ्मातामहानाञ्च केचिदिच्छन्ति सत्तमाः। त्रीन् पिण्डानानुपूर्वेण साङ्गुष्ठमुष्टिवन्धनान्" इति वायुपुराणीयं शाख्यन्तरीयम्। ततः षट् पिण्डान्मधु घृताभ्यां सेचयेत्। 'अभ्यज्य मधुसर्पिर्भ्यां तान् वपेत् कुशसञ्चय" इति देवलवचनात्। वपेन्निर्वपेदुत्सृजेदिति यावत् तान् पिण्डान् ततोमधुमध्विति सूत्रोक्तेन मधुसम्बन्धि मधु प्रकाशकं सन्नियोग शिष्ट प्राप्तं मधुवातेति ऋक्त्रयं मधुमधुमधु च जपित्वा पितुर्नाम गृहीत्वा सगृह्योक्तविधिना पिण्डं दद्यात्। एवमेव प्रत्येकं जलस्पर्शपूर्वकं पितामहादिपञ्चभ्यस्तत्तदवनेजनस्थाने पिण्डान् दद्यात्। "मूलमध्याग्रदेशेषु ईषत् शक्तांश्च निर्वपेत्" इति छन्दोगपरिशिष्टात् ईषत् शक्तान् पिण्डानित्यर्थः।

ततो दर्भेषु करं संमार्ज्य प्रक्षाल्याचम्य हरिं स्मृत्वा पुनरवनेनिज्य अत्र पितर इति जपेदित्याह ब्रह्मपुराणम्। "ततो दर्भेषु विधिवत् सम्मार्ज्यं च करन्ततः। प्रक्षाल्य च जलेनाथ त्रिराचम्य हरिं स्मरेत्। तेभ्यः संस्रवपात्रेभ्यो जलेनैवावनेजनम्। दत्त्वात्र पितरश्चेति पठेच्चोदङ्मुखस्थितः। चिन्तयंश्च पितॄं स्तुष्टान् सर्वान् भास्वरमूर्त्तिकान्। अमीमदन्त पितरस्त्विति पश्यन् धिया पठेत्"। पश्यन् प्राग्दत्तान् पिण्डानिति शेषः। यद्यपि करमार्जनादीनि पितृपक्षे उक्तानि तथापि पितृपार्वण एव "मातामहानामप्येवं देवपूर्वं श्राद्धं कुर्वीतेति" गोभिलसूत्रेण पितृपक्षधर्मातिदेशादेकोद्दिष्टादि श्राद्धेऽपि आवाहनादिनिषेधानुपपत्त्या पार्वणधर्मातिदेशात् सर्वत्र तानि कार्य्याणि एवञ्च पार्वणे षट् पिण्डदानानन्तरं सामगेतराभ्युदयिकादौ नवपिण्डदानानन्तरञ्च

तन्त्रेणैव तानि कुर्य्यात् लाघवात् आग्नेयादित्रितयेषु प्रयाजादि तन्त्रतावत् किन्तु पितृपक्षास्तृतदर्भेषु करमार्जनं लेपभागिनो वृद्ध प्रपितामहादीं स्त्रीनुद्दिश्य कर्त्तव्यम्। "न्युप्य पिण्डां स्ततस्तांस्तु प्रयतो विधिपूर्व्वकम्। तेषु दर्भेषु तं हस्तं निमृज्याल्लेपभागिनाम्" इति। "लेपभाजश्चतुर्थाद्याः पित्राद्याः पिण्डभागिनः। पिण्डदः सप्तमस्तेषां सापिण्ड्यं साप्तपौरुषम्"॥ इति स्थानद्वयस्थ मनुवचनाभ्यां सहैकवाक्यत्वात्। तदपि दर्भाणां मूले। "दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु पुष्पधूपसमन्वितम्। स्वपित्रे प्रथमं पिण्डं दद्यादुच्छिष्टसन्निधौ। पितामहाय चैवाथ तत्पित्रे च ततः परम्। दर्भमूले लेपभुजस्तर्पयेल्लेपघर्षणैः। पिण्डैर्मातामहांस्तद्वत् गन्धमाल्यादिसंयुतैः। प्रीणयित्वा द्विजाग्र्याणां दद्यादाचमनन्ततः"। इति विष्णुपुराणात् नचैतत् पाठक्रमान्मातामहपिण्डदानात् पूर्वं लेपघर्षणमिति वाच्यम्। "दर्भेषु मधुमध्वित्यत्त्वन्नमो मदन्तेति जपित्वा त्रीं स्त्रीन् पिण्डान् दद्यादवनेनिज्येति" गोभिलसूत्रे "दर्भेषु त्रीं स्त्रीन् पिण्डानवनेनिज्य दद्यात्" इति कात्यायन गृह्ये च त्रीं स्त्रीनिति वीप्सादर्शनात् षट् पिण्डदानमध्ये पिण्डदानेति कर्त्तव्यता व्यतिरिक्तानां निवृत्तिः प्रतीयते। अतएव पितृदयिता श्राद्ध कल्पतरुप्रभृतिषु षट् पिण्डदानानन्तरमेव करघर्षणं लिखितम्। विष्णुपुराणन्तु दर्भमूलविधायकं न तु मातामहादिपिण्डदानपूर्व्वकं करघर्षणक्रमविधायकम् अन्यथा प्रत्यवनेजनदानादेः प्रागपि तदुक्त ब्राह्मणाचमनापत्तेः। पुष्पधूप समन्वितपिण्डदानं शाखिभेदपरमिति। अतो मातामहपक्षे न करमार्जनम्। एकोद्दिष्टे तु लेपभुजामसम्भवेऽपि निरुद्दिश्य करमार्जनाचमनहरिस्मरणानि कार्य्याणि साधारण प्रवृत्त प्रागुक्त ब्रह्मपुराण-

वचनात्। त्रिराचम्येति अत्र श्राद्धचिन्तामणिः त्रिः पिबेदित्यादिना विहितमाचमनं तदत्र त्रिरावर्त्तते आचार प्रदीपोऽप्येवमिति तन्न "त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततोमुखम्" इति मनुवचनेन सह त्रिराचामेद्विः परिमृजीतेति गोभिलैकवाक्यत्वात् किन्तु सकृदेव। तेभ्यः संस्रवपात्रेभ्यः पूर्वदत्तावनेजनसंस्रवपात्रेभ्यः। एतच्च छन्दोगेतर परम्। छन्दोगानान्तु पिण्डपात्रप्रक्षालनेन पूर्ववदवनेजयेत्। यथा छन्दोगपरिशिष्टम्। "तत् पात्रक्षालनेनाथ पुनरप्यवनेजयेत्" अत्राप्यवनेजयेदिति श्रुतेर्द्वितीयावनेजनेति अवनेनिक्ष्वेति वक्तव्यं न तु प्रत्यवनेनिक्ष्वेति ब्रह्मपुराणे अवनेजनं दत्त्वात्र पितरश्चेति क्रमदर्शनात् गोभिल गृह्येपि निधाय जपतीत्यत्र निधायेत्यनेन पुनरवनेजनानन्तरम् अत्र पितर इत्यस्य जपो बोध्यः।

तज्जपानन्तरं कर्त्तव्यमाह गृह्ये अपपर्य्यावृत्येति अत्रापीत्यनेनाप्रादक्षिण्यावर्त्तेन पर्य्यावृत्य गत्वा उदगन्तं दक्षिणान्तं वा तथा च छन्दोगपरिशिष्टं "वाममावर्त्तनं केचिदुदगन्तं प्रचक्षते। सव्यं गोतम शाण्डिल्यौ शाण्डिल्यायन एव च"। गोभिल गृह्ये वामावर्त्तेन यद्गमनमुक्तं तदुत्तरादिक पर्य्यन्तं केचिद्वदन्ति गोतमादयः सव्यं दक्षिणम् अत्रापि उदगन्तमिति वद्दक्षिणाभिमुखान्तमित्याहुः। यद्यप्यत्र विकल्प उक्तस्तथापि बहुवादिसम्मतत्वात् प्रागुक्तत्वाच्च उदङ्मुखीभूय यथाशक्ति श्वासं विधृत्य तेनैव पथा परावर्त्तमानः पितॄन् भास्वरमूर्त्तिकान् परितुष्टान् ध्यायन् विधृतप्राणत्वेन व्यक्तजपस्याशक्तत्वादुपांशुरूपेण अमीमदन्त इति जप्त्वा श्वासं त्यजेत्। एतदङ्गीकृतं छन्दोगपरिशिष्टेन "आवृत्तप्राणानायम्य पितॄन् ध्यायन् यथार्हतः। जपं स्तेनैव चावृत्य ततः

प्राणान् विमोचयेत्"। अञ्जलिकृत इति कृताञ्जलिरित्यर्थः। "गृहान् पत्नीं गृहान्नः पत्नी" इति गृह्यान्तरात् गृहान्न इति मन्त्रेण पत्नीं पश्येदित्यर्थः। पिण्डान् दत्तपिण्डान्। पूर्वस्यां कर्ष्वाम् इत्यन्वष्टकापरम्। पिण्डोपरि सूत्रदाने मन्त्रवाक्यपूर्वकतामाह ब्रह्मपुराणम्। "एतद्वः पितरो वास इति जल्पन् पृथक् पृथक्। अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यं वासः पठेत्ततः। दद्यात् क्रमेण वासांसि श्वेतवस्त्रभवा दशाः"॥ तेन वामहस्तोद्धृतसूत्रतन्तुं दक्षिणहस्तेन गृहीत्वा वामान्वारब्धेन एतद्वः पितरो वास इति पठित्वा गोत्राद्यभिलापपूर्वकमुत्सृज्य पिण्डे दद्यात्।

वासोदानानन्तरं पिण्डपूजादिकमाह ब्रह्मपुराणम्। "पूजयित्वा तु पिण्डस्थान् पितृंश्च प्रणमेदृतून्। वसन्ताय नमस्तुभ्यं ग्रीष्माय च नमो नमः॥ वर्षाभ्यश्च शरत्संज्ञकर्तवे च नमः सदा। हेमन्ताय नमस्तुभ्यं नमस्ते शिशिराय च। माससंवत्सरेभ्यश्च दिवसेभ्यो नमो नमः"॥ इति एवञ्च पिण्डपूजानन्तरं वसन्तायेत्यादिपाठदर्शनादनिरुद्धभट्टोक्तम् अत्र पितर इति पाठानन्तरं वसन्तायेत्यभिधानं प्रमाणशून्यम्। न च "आचम्योदक् परावृत्य त्रिरायम्य शनैरसून्। षडृतूंश्च नमस्कुर्य्यात् पितॄनेव च मन्त्रवत्"॥ इति मनुवचनं प्रमाणम् उदङ्मुखो भूत्वा यथाशक्ति प्राणायामत्रयं कृत्वा वसन्तायेत्यादिना षडृतून् नमस्कुर्य्यादिति कुल्लूकभट्टेन तद्व्याख्यातत्वादिति वाच्यम् उदक् परावृत्य मन्त्रवदित्यनेन याजुर्वेदिक "नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे" इति मन्त्रस्थरसशोषजीवस्वधाघोरमन्युशब्दाभिधेयान् वसन्त-ग्रीष्म-वर्षा-शरद्धेमन्तशिशिररूपान्

ब्राह्मणसर्वस्वे हलायुधेन व्याख्यातान् षडृतून् पितृरूपानेव नमस्कुर्य्यादित्येकस्मिन्नेवान्वये मनुवचनस्य सामगेतरपरत्वात्। गोभिलगृह्ये अत्र पितरो अमीमदन्तेति मन्त्रयोर्मध्ये ऋतुनमस्कारस्याश्रुतत्वात् तत्परिशिष्टेऽपि प्रागुक्तवाममावर्त्तनमिति आवृत्य प्राणानायम्येति वचनाभ्यामप्यावर्त्तने विशेष उक्तः न तु वसन्तायेत्यस्य पाठ इति ततश्च छन्दोगानां क्वापि ऋतुनमस्कारस्यानुपदेशात् पिण्डपूजानन्तरस्थाननियतस्य पौराणिकस्य वसन्तायेत्यस्य पाठो मैथिलाद्युक्तो ग्राह्यः। अस्मात् क्रमपक्षेऽपि तद्विरुद्धक्रमानभिधानात् मनुवचनस्याविरोधाच्च।

पूजने तूष्णीं गन्धादिनिक्षेपमाह छन्दोगपरिशिष्टं "गन्धादिनिक्षिपेत्तूष्णीं तत आचामयेत् द्विजान्"। अत्राचमनं पित्रादिब्राह्मणानां प्रथमतः पश्चाद्वैश्वदेवब्राह्मणानां कारयितव्यम्। तथाच विष्णुधर्म्मोत्तरे। "वैश्वदेवोपरिष्टानां चरमं हस्तधावनम्। विसर्ज्जनञ्च निर्दिष्टं तेषु रक्षा यतः स्मृता"॥ अत्र हस्तधावनम् आचमनम् उदङ्मुखेष्वाचमनं दत्त्वा प्राङ्मुखेषु दद्यादिति देवलवचनैकवाक्यत्वात्। एतच्च न कुशमयब्राह्मणपक्षे अयोग्यत्वात् अत्र ब्रह्मपुराणेन पिण्डस्थपितृपूजानन्तरं वसन्तायेति पाठ उक्तः छन्दोगपरिशिष्टेन तु पिण्डस्थपितृपूजानन्तरं ब्राह्मणायाचमनदानमुक्तं यद्यप्यनयोः पौर्वापर्य्यं साक्षात् केनापि नोक्तं तथापि आचान्तेषूदकपुष्पाक्षताक्षय्योदकञ्च दद्यात्" इति गोभिलकात्यायनसूत्रोक्ताचमनानन्तरजलादिदानाव्यवधानाय वसन्तायेत्यादिपाठानन्तरमाचमनं प्रतीयते। अत्रोदकादिदाने विशेषमाह छन्दोगपरिशिष्टम् "अथाग्रभूमिमासिञ्चेत् सुसुप्रोक्षितमस्त्विति। शिवा आपः सन्त्विति च युग्मानेवोदकेन च॥ सौमनस्यमस्त्विति

च पुष्पदानमनन्तरम् । अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्त्वित्यक्षतान्यपि दापयेत् ॥ अक्षय्योदकदानन्तु अर्घ्यदानवदिष्यते । षष्ठैव नित्यं तत् कुर्य्यान्न चतुर्थ्यां कदाचन" ॥ अग्रभूमिं ब्राह्मणस्य तत आचामयेत् द्विजान् इत्यनेनोपस्थितत्वात् एतच्च भूमिसेचनं सकृदेव कर्त्तव्यं शिवा आप इत्यादिना जलादिदानन्तु दैवपूर्वं ब्राह्मणेषु कर्त्तव्यं ब्राह्मणसम्बन्धिप्राप्तानां कर्म्मणां वैश्वदेवपूर्वं कर्त्तव्यत्वाभिधानात् । तथाच देवलः "यत्र यत् क्रियते कर्म्म पैतृके ब्राह्मणान् प्रति । तत्सर्वं तत्र कर्त्तव्यं वैश्वदैवत्यपूर्वकम्" ॥ युग्मानेवेत्याभ्युदयिके अन्यत्र ब्राह्मणमात्रमासिञ्चेदिति अक्षता यवाः । "अक्षतास्तु यवाः प्रोक्ता भृष्टाधाना भवन्ति ते" ॥ इति भट्टभाष्यधृतवचनात् । अर्घ्यवदित्यतिदेश आभ्युदयिके ज्येष्ठोत्तरकरत्वप्राप्त्यर्थो न तु तन्त्रतानिवृत्त्यर्थः । "अर्घ्येऽक्षय्योदके चैव पिण्डदानेऽवनेजने । तन्त्रस्य विनिवृत्तिः स्यात् स्वधावाचन एव च" ॥ इति वचनात् । एवञ्च षष्ठैवेत्यनेन "गोत्रनामभिरामन्त्र्य पितॄनर्घ्यं प्रदापयेत्" इत्यनेन गोत्रादौ प्राप्तायाः सम्बुद्धेर्नान्दीमुखेभ्यश्चाक्षय्यमिदमस्त्विति संजपन् इति ब्रह्मपुराणोक्तशाख्यन्तरीयचतुर्थ्याश्च परास्तता । एतच्च "गोत्रं स्वरान्तं सर्वत्र गोत्रस्याक्षय्यकर्म्मणि" इत्यादि प्रागुक्तगोभिलवचनत्रये चाक्षय्यकर्म्मणि गोत्रस्येति पितुरिति शर्म्मण इत्यभिधानात् व्यक्तं ततश्च न चतुर्थ्यां कदाचनेति पिण्डपितृयज्ञवदुपचार इत्यतिदेशेन प्राप्तस्य "ये चात्रत्वामनुयांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा" इति चतुर्थीयुक्तस्य मन्त्रस्य निषेधः । गोभिलः । "अघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्ते गोत्रं नो वर्द्धतां वर्द्धतामित्युक्ते स्वधानिनयनीयान् दर्भान् सपवित्रानास्तीर्य्य स्वधां वाचयिष्ये इति पृच्छति वाच्यतामित्यनुज्ञातः पितृभ्यः स्वधोच्यतां पितामहेभ्यः

प्रपितामहेभ्यो मातामहेभ्यः प्रमातामहेभ्यो वृद्धप्रमातामहेभ्यश्च स्वधोच्यताम् इति "अस्तु स्वधेत्युक्ते स्वधानिनयनीयान् वारिधारां दद्यात् ऊर्ज्जं वहन्तीरित्यपो निषिञ्चतीति"। न च सव्येनाघोराः पितरः सन्त्विति दक्षिणां दिशं मनसाकाङ्क्षन् पूर्वाभिमुखः पठेदिति कृत्यप्रदीपः। "दत्त्वाशीः प्रतिगृह्णीयात् द्विजेभ्यः प्राङ्मुखो बुधः। अघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्तः स तैः पुनः"॥ इति मत्स्यपुराणवचनेन "दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन् याचेतेमान् वरान् पितॄन्" इत्यादि मनुवचनैकवाक्यत्वं तत्र प्रमाणमिति वाच्यम्। "पिण्डपितृयज्ञवदुपचारः इति गोभिलसूत्रेण वैश्वदेवकर्म्मातिरिक्ते दक्षिणामुखत्वप्रतीतेः। "दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन्" इति मनुवचनस्य तथार्थत्वे प्रमाणाभावाच्च। अतएव दक्षिणां दिशमाकाङ्क्षन्निति वीक्ष्यमाण इति टीकाकारैर्व्याख्यातम्। मनुना आकाङ्क्षन् इत्यनन्तरं दातार इति पठितं न तु अघोराः पितरः सन्त्विति। मत्स्यपुराणेऽपि अक्षय्योदकदानानन्तरं दत्त्वेति न पठितम्। किन्तु "ततः स्वधा वाचनिकं वैश्वदेवेषु चोदकम्" इत्यनन्तरं दत्त्वाशीरित्यर्द्धं पठित्वा "अघोराः पितरः सन्तु सन्त्वित्युक्तः पुनर्द्विजैः। गोत्रन्नो वर्द्धतामस्तु तथेत्युक्तः स तैः पुनः। दातारो नोऽभिवर्द्धन्तामन्नञ्चैवेत्युदीरयेत्"॥ इत्येव पठितं ततः शाखिविशेषे तादृक् क्रमकर्म्मणि प्राङ्मुखत्वं न तु गोभिलाद्युक्तकर्म्मणि। अतएव पितृदयितादावाशीः प्रार्थने प्राङ्मुखत्वं नाभिहितम्। स्वधानिनयनीयान् स्वधावाचनमात्रार्थान् न तु कृतप्रयोजनान्तरान्। ततश्च नारायणोपाध्यायशूलपाणिप्रभृतिभिर्यदर्घ्य सम्बन्धि पवित्रमात्रास्तरणमुक्तं तत् प्रमाणशून्यम्। कुशान्तरास्तरणरहितत्वेन सूत्रविरुद्धञ्च अन्यथा पिण्डरेखापि अर्घ्य सम्बन्धिपवित्रेण कथं न स्यादिति।

अतएव भट्टनारायणानिरुद्धभट्टकुल्लूकभट्टकर्कहरिशर्म्मप्रभृतिभिर्मैथिलैश्च सपवित्रकुशान्तरास्तरणमुक्तं नत्वर्घ्य सम्बन्धिपवित्रमात्रास्तरणमिति। स्वधानिनयने स्वधावाचने कृत इति शेष इति एतच्च प्रागुक्तसव्येन पाणिना उदकपात्रं गृहीत्वेति गृहीतवारिधारादानस्य स्वधावाचनानन्तरत्वविधायकं लाघवात् न तु वारिधारादानानन्तरविधायकं गौरवात् एतद्व्यक्तीकृतं छन्दोगपरिशिष्टे। "प्रार्थनासु प्रतिप्रोक्ते सर्व्वास्वेव द्विजोत्तमैः। पवित्रान्तर्हितान् पिण्डान् सिञ्चेदुत्तानपात्रकृत्" ॥ इति भट्टनारायणचरणैरपि सव्येनैव पाणिनोदकपात्रं गृहीत्वेति सूत्रस्य व्याख्याने एतच्च परिषेचनमाचम्य ब्राह्मणेष्वाचान्तोदकेषु अग्रभूमिमासिञ्चेत् सुसुप्रोक्षितमस्त्वित्येवं स्वधावाचनं कृत्वोत्तानं पितृपात्रं कृत्वा पवित्राणि च पिण्डानामुपरि दत्त्वा कुर्य्यात् तथाच प्रार्थनासु प्रतिप्रोक्ते इति व्याख्यानं कृत्वा मैथिलैरप्येवं लिखितम्। एवञ्च वासोदानानन्तरं यथाश्रुतगोभिलगृह्यदर्शनात् पितृदयितायां यत् परिषेचनमुक्तं तद्धेयम्। एवं छन्दोगपरिशिष्टेन अस्तु स्वधेत्यनन्तरकर्त्तव्यत्वाभिधानात् तदनन्तरं गृह्योक्तं पत्न्यै भक्षणार्थं पिण्डदानं न तु स्वधावाचनस्य प्राक् तथा सति पितामहपिण्डे स्वधावाचनं न स्यादिति बोध्यं तत्र विशेषयतः शङ्खलिखितौ "पत्नी वा मध्यमं पिण्डमश्नीयादार्त्तवस्नातेति" यमः "पत्नी वा मध्यमं पिण्डं ततः प्राश्नीत वाग्यता"। मत्स्यपुराणे "पत्नीन्तु मध्यमं पिण्डमाशयेद्विनयान्विताम्। आधत्त पितरो गर्भं मन्त्रः सन्तानवर्द्धनम्" ॥ एषमन्त्रः पौराणिकत्वात् साधारणः। अत्रोत्तानपात्रकृदिति यथाश्रुतदर्शनात् परिषेचनकर्त्तृविशेषणतया भट्टेन यद्व्याख्यातं तद्गोभिलश्राद्धसूत्रादर्शनात् तथाच प्रागुक्तपरिषेचनसूत्रानन्तरं गोभिलः। "उत्तानं पात्रं

कृत्वा यथाशक्ति दक्षिणान्दद्यादिति" एवमेवानिरुद्धभट्टप्रभृतिभिर्लिखितम् ।

दक्षिणायां पितृपूर्व्वकतामाह विष्णुपुराणम् । पितॄन् मातामहानुपक्रम्य "पिण्डैर्मातामहांस्तद्वद्गन्धमाल्यादिसंयुतैः । पूजयित्वा द्विजाग्र्याणां दद्यादाचमनन्ततः ॥ पितृभ्यः प्रथमं भक्त्या तन्मनस्को नरेश्वर । सुस्वधेत्याशिषा युक्तां दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम्" ॥ द्विजाग्र्याणां विश्वदेवपितृमातामहपक्षत्रयश्राद्धभोक्तॄणां ब्राह्मणानां मध्ये पितृभ्यः पितृपक्षब्राह्मणेभ्यः प्रथममाचमनं दक्षिणाञ्च दद्यात् अतएव वैश्वदेवोपरिष्टानां चरमं हस्तधावनम् इत्युक्तम् । तथा "ब्राह्मणे दक्षिणा देया यत्र या परिकीर्त्तिता । कर्म्मान्तेऽनुच्यमानायां पूर्णपात्रादिका भवेत्" ॥ इति छन्दोगपरिशिष्टवचनेन दक्षिणादानस्य कर्म्मान्तताविधानात् श्राद्धमुपक्रम्य "दैवाद्यन्तं तदीहेत पित्राद्यन्तं न तद्भवेत् । पित्राद्यन्तन्त्वीहमानः क्षिप्रं नश्यति सान्वयः" ॥ इति मत्स्यपुराणेऽपि श्राद्धकर्म्मणोऽप्यन्तकर्म्मत्वेन प्राप्तस्य दक्षिणादानस्य दैवान्ततानुरोधेन पित्रादित्वमुक्तं श्राद्धविवेकोऽप्येवं सुस्वधेति शाख्यन्तरीयम् । अत्र दक्षिणाया नाचमनाव्यवहितोत्तरत्वं किन्तु आचमनानन्तरं न्युब्जोत्तानान्तं कर्म्म विधाय कर्त्तव्यत्वं प्रागुक्तोत्तानपात्रं कृत्वेत्यादि गोभिलसूत्रात् । एतेन दक्षिणाया दैवपूर्व्वकत्वं मैथिलोक्तं हेयम् ।

आशीःप्रार्थनामाह गोभिलः । "विश्वेदेवाः प्रीयन्तामिति दैवे वाचयित्वा दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदः सन्ततिरेव च । श्रद्धाचनोमाव्यगमद्बहुदेयञ्च नोऽस्त्विति । अन्नञ्च नोबहुभवेदतिथींश्च लभेमहि याचितारश्च नः सन्तु माच याचिष्म कञ्चन । अन्नं प्रवर्द्धतां नित्यं दाता शतं जीवतु येभ्यः सङ्कल्पिता द्विजा स्तेषामक्षया तृप्तिरस्तु एताः सत्या आशिषः

सन्त्विति वाजे वाजे वत वाजिनो नो धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञा अस्य मध्वः पिवत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देव यानैः इत्येतया विसृज्य "आमावायस्य प्रसवो जगम्यादेमे द्यावा पृथिवी विश्वरूपे आमागन्तुं पितरा मातरा युवमामा सोमोऽमृतत्वाय गम्यात्" इत्येतयानुव्रज्य प्रदक्षिणीकृत्याभिवाद्य वामदेव्यं गीत्वा प्रविशतीति दैवे देवपक्षेऽर्थात् उदङ्मुखः विश्वे देवाः प्रीयन्तामिति वाचयित्वा प्रीवन्तामिति प्रतिचनं गृहीत्वा दातार इत्यादिना एताः सत्या आशिषः सन्त्वित्यन्तेन आशिषः प्रार्थयेत्। वेदस्याध्ययनाध्यापन-तदर्थावबोध रूपतदर्थानुष्ठानैर्वृद्धिमेतु। इति याज्ञवल्कीयदीपकलिकायां व्याख्यानादेद इत्येव पाठो न तु वेदा इति ततः सन्त्विति प्रतिवचनादाशिषः प्रतिगृह्य देवताभ्य इत्यस्यान्ते पठनीयत्वेन विसर्जनात् पूर्वं त्रिःपठेत् पितृदयितायामप्येवं ततो वाजे वाज इत्यनेन कुशाग्रेण विसर्जयेत्। "ततस्तानग्रतः कृत्वा प्रतिगृह्योदपात्रिकां वाजे वाज इति जपन् कुशाग्रेण विसर्जयेत्। वहिः प्रदक्षिणीकृत्य पादानष्टावनुव्रजेत्" ॥ इति मत्स्यपुराणात् एतच्च विसर्जनं ब्राह्मणस्य पितॄणां मन्त्रलिङ्गात्। येषामावाहनन्तेषामेव विसर्जनस्य युक्तत्वाच्च। अतएवामावेत्यनेन प्रदक्षिणीकरणाभिवादनमपि ब्राह्मणस्य पितॄणामिति एतेनापाककश्राद्धे विसर्जनाद्यभावो मित्राद्युक्तो हेयः। तत आमावेत्यनेनानुव्रज्य प्रदक्षिणी-कृत्याभिवादयेत्। दर्भमयब्राह्मणमादाय श्राद्धे श्राद्धीयद्रव्यं ब्राह्मणाय प्रतिपादयेत्। तदभावेऽग्नौ जले वा क्षिपेत्। "यद्येकं भोजयेत् श्राद्धे दैवं तत्र कथम्भवेत्। स्तोकं स्तोकं समुद्धृत्य सर्वस्य प्रकृतस्य च॥ देवतायतने कृत्वा ततः श्राद्धं प्रवर्त्तयेत्। तदन्नं प्रक्षिपेदग्नौ दद्याद्वा ब्रह्मचारिणे"॥ इति वशिष्ठोक्तेः "ब्राह्मणस्य च

यद्देयं सान्वयस्य न चास्ति सः। सकुल्ये तस्य निनयेत् तदभावेऽस्य बन्धुषु॥ यदा तु न सकुल्यः स्यान्न च सम्बन्धि बान्धवाः। यद्यात् सजातिशिष्येभ्यस्तदभावेऽप्सु निक्षिपेत्"॥ इति दानकाण्डकल्पतरुधृतनारदवचनेन ब्राह्मणदेयस्य ब्राह्मणाभावे जलप्रक्षेपोक्तत्वाच्च वामदेव्यं गीत्वा गानाशक्तौ कयान इत्यानि त्रिः पठेत्। ततः कर्म्ममात्र प्रामाच्छिद्रावधारणं कुर्य्यात्। तथा च शातातपपराशरौ। "आच्छिद्रमिति यद्वाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः। प्रणम्य शिरसा ग्राह्यमग्निष्टोमफलैः समम्"॥ क्षितिदेवता विप्राः। अग्निष्टोमफलैः सममिति स्तुतिः। विष्णुः। यद्ब्राह्मणास्तुष्टतमा वदन्ति तद्दैवताः कर्म्मभिराचरन्ति। तुष्टेषु तुष्टाः सततं भवन्ति प्रत्यक्षदेवेषु परोक्षदेवाः"॥ ततः साङ्गतार्थं विष्णुं स्मरेत्। "प्रमादात् कुर्वतां कर्म प्रच्यवेताध्वरेषु यत्। स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्पूर्णं स्यादि श्रुतिः॥ तद्विष्णोरिति मन्त्रेण मन्त्रेदप्सु पुनः पुनः। गायत्री वैष्णवी ह्येषा विष्णोः संस्मरणाय वै"॥

तदनन्तरं दक्षिणपाणिना दीपप्रच्छादनमाह देवलः। "निवृत्ते पितृमेधे तु दीपं प्रच्छाद्य पाणिना। आचम्य पाणी प्रक्षाल्य ज्ञातीन् शेषेण भोजयेत्"॥ पाणीप्रक्षाल्याचम्य इत्यन्वयः। "ततो ज्ञातिषु भुक्तेषु स्वान् भृत्यानपि भोजयेत्। पश्चात् स्वयञ्च पत्नी च श्राद्धशेषमुदाहरेत्"॥ निवृत्ते वामदेव्यगानान्ते प्रच्छाद्य आच्छाद्येति पारिजातकल्पतरौ। न निर्वापयेत् दर्शनात् "दीपनिर्वापणात् पुंसः कुष्माण्डच्छेदनात् स्त्रियाः। अचिरेणैव कालेन वंशनाशो भवेत् ध्रुवम्"॥ इति नव्यवर्द्धमानधृतात्। "दीपनिर्वापकोऽन्धः स्यात्" इति मनुवचनाच्च उदाहरेत् अभ्यवहरेत् एष रागप्राप्तत्वान्न विधिः

किन्तु नियमः। तथा च श्राद्धशेषमुपक्रम्यापस्तम्बः। सर्वस्माद्ग्रासावरार्द्धमश्नीयादिति" ग्रासावरार्द्धं ग्रास एव अवरो निकृष्टकोटिर्यस्य स तथा अनियमत्वे सर्वस्मादिति श्राद्धशेषविशेषणं व्यर्थं स्यात्। व्यक्तं शिवरहस्ये। श्राद्धं कृत्वा तु यः शेषं नान्नमश्नाति मन्दधीः। लोभान्मोहाद्भयाद्वापि तस्य तन्निष्फलं भवेत्"॥ लोभात् द्रव्यान्तरस्येति शेषः। अत्र लोभादित्यभिधानाद्वैधोपवासादौ न नियमः। तत्र प्रमाणमाहुः वराहपुराणविष्णुधर्मोत्तरकात्यायनाः। "उपवासो यदा नित्यः श्राद्धं नैमित्तिकं भवेत्। उपवासं तदा कुर्य्यादाघ्राय पितृसेवितम्"॥ एवञ्च "यत्किञ्चित् पच्यते गेहे भक्ष्यं भोज्यमथापि वा। अनिवेद्य न भुञ्जीत पिण्डमूले कथञ्चन"॥ इति शङ्खोक्तं न तच्छ्राद्धशेषेतरभोजनव्यावर्त्तकम्। किन्तु यत् किञ्चिदिति श्राद्धार्थत्वेन विशेषणीयमन्यथा श्राद्धे प्रतिषिद्धद्रव्याणां भक्ष्यत्वं न स्यात् तेन श्राद्धार्थं पक्वं तच्च न दत्त्वा न भक्ष्यमिति तस्यार्थः। शातातपः। "श्राद्धं कृत्वा परश्राद्धे भुञ्जते ये च जिह्वलाः। पतन्ति नरके घोरे लुप्तपिण्डोदकक्रियाः"॥ जिह्वला लोलुपाः। विष्णुपुराणम्। "वर्ज्यानि कुर्वता श्राद्धं कोपोऽध्वगमनं त्वरा। भोक्तुरप्यत्र राजेन्द्र एव मेतत् न शस्यते"॥ स्मृतिः। "द्यूतञ्च कलहञ्चैव सायं सन्ध्यां दिवा शयम्। श्राद्धकर्त्ता च भोक्ता च पुनर्भुक्तञ्च वर्जयेत्"॥ राजमार्त्तण्डे "पुनर्भोजनमध्वानं द्यूताध्ययनमैथुनम्। दानं प्रतिग्रहं सन्ध्यां श्राद्धं कृत्वाष्ट वर्जयेत्"॥ नव्यवर्द्धमानधृता स्मृतिः। "पुनर्भोजनमध्वानं भाराध्ययनमैथुनन्। दानं सन्ध्यां पुनः स्नानं श्राद्धं कृत्वाष्ट वर्जयेत्"॥ अध्वानं अध्वगमनं क्रोशात् परं न कार्य्यम् "अध्वगमनमाक्रोशपूरणमिति" हारीतवचनात् मैथुनम् ऋतुकालीनमपि

न कार्य्यम्। तथा च श्राद्धानन्तरं शङ्खलिखितौ। “ऋतुस्नातां ददहोरात्रं परिहरेदिति” दानं याचितान्नाद्यतिरिक्तस्य “वन्दिभ्यश्चैव मर्थिभ्योऽन्नार्थिभोऽन्नमर्थितः। यदि तत्र न दद्यात्तु विफलं शंसितो भवेत्”॥ वन्दिनो वीर्य्यस्तोतारः अर्थितः सन् यदि एभ्योऽन्नं न दद्यात् तदा श्राद्धं विफलं भवेदित्यर्थः। सूताः पौराणिकाः प्रोक्ताः मागधा वंशशंसकाः। वन्दिनस्त्वमलप्रज्ञाः प्रस्तावसदृशोक्तयः”॥ इत्युक्तेः। इत्यस्य श्राद्धोत्तरदाननिषेधात् श्राद्धे वन्दिप्रभृतिभ्यो दानाकरणे निन्दाश्रवणाच्च श्राद्धात् पूर्वं तदर्थं भोज्यादिकमुत्सृजेत्। वायुपुराणे। “अध्वनीनोभवेदश्वः पुनर्भोजी च वायसः। होमकृन्नेत्ररोगी स्यात् पाठादायुः प्रहीयते। दानं निष्फलतामेति प्रतिग्राही दरिद्रताम्। कर्मकृज्जायते दासो मैथुनी शूकरो भवेत्”॥ कर्मात्र भारोद्वहनादिकम्। मत्स्यपुराणम्। “रतिशक्तिः स्त्रियः कान्ता भोज्यं भोजनशक्तिता। दानशक्तिः सविभवा रूपमारोग्यसम्पदः। श्राद्धपुष्पमिदं प्रोक्तं फलं ब्रह्मसमागमः”॥ पुष्पं तद्वदल्पं फलं तद्वन्महत्।

श्राद्धानन्तरं बलिवैश्वदेवावाह भविष्यपुराणम्। “कृत्वा श्राद्धं महाबाहो ब्राह्मणांश्च विसृज्य च। वैश्वदेवादिकं कर्म्म ततः कुर्य्यान्नराधिप”॥ पार्वणानन्तरं नित्यश्राद्धे विकल्प उक्तो मार्कण्डेयपुराणे “नित्यक्रियां पितॄणान्तु केचिदिच्छन्ति सत्तमाः। न पितॄणां तथैवान्ये शेषं पूर्ववदाचरेत्”॥ न पितॄणामित्यावश्यकत्वनिषेधपरमिति व्यवस्था नित्यश्राद्धप्रमाणप्रयोगावाह्निकतत्त्वेऽनुसन्धेयाविति।

अथ जीवत्पितृकश्राद्धम्। पारस्करः। “पित्रादित्रिषु जीवत्सु श्राद्धं न कर्त्तव्यं अत्र षण्णां पुरुषाणां मध्ये यो यो जीवति तं विहाय पुरुषान्तरमादाय श्राद्धं कर्त्तव्यम्। मातामहादित्रिषु

जीवत्सु पित्रादित्रिकमात्रश्राद्धं कर्त्तव्यम्"। तथाच विष्णुः। "पितरि जीवति यः श्राद्धं कुर्य्यात् पिता येषां कुर्य्यात् तेषां कुर्य्यात् पितरि पितामहे च जीवति पितामहो येषां कुर्य्यात् तेषां कुर्य्यात् पितरि पितामहे प्रपितामहे च जीवति नैव कुर्य्यात्। यस्य पिता प्रेतः स्यात् स पित्रे पिण्डं निधाय प्रपितामहात् परं द्वाभ्यां दद्यात्। यस्य पिता पितामहश्च प्रेतौ स्यातां स ताभ्यां पिण्डौ दत्त्वा पितामहपितामहाय दद्यात् यस्य पितामहः प्रेतः स्यात् स तस्मै पिण्डं निधाय प्रपितामहात् परं द्वाभ्यां दद्यात्। यस्य पिता प्रपितामहश्च प्रेतौ स्यातां स पित्रे पिण्डं निधाय पितामहात् परं द्वाभ्यां दद्यात्। मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्य्यात् विचक्षणः"। इति विष्णु पितृपितामहप्रपितामहेषु यस्य पिता प्रेत इति सावधारणोऽयं निर्देशः। तेन त्रयाणां मध्ये पितैव मृतो न तु पितामहप्रपितामहौ। द्वाभ्यां वृद्धप्रपितामहातिवृद्धप्रपितामहाभ्यां पितामहपितामहायेति कर्त्तुर्वृद्धप्रपितामहायेत्यर्थः; पितामहः प्रेतः स्यादिति साधारणो निर्देशः। अर्थात् पितृप्रपितामहौ न मृतौ द्वाभ्यां वृद्धप्रपितामहातिवृद्धप्रपितामहाभ्यां एतत् पक्षस्येदानीं पार्व्वणे तथा नाचरणादाभ्युदयिकादौ तथा व्यवहारः पिता प्रपितामहश्च प्रेतावित्यनेन पितामहो जीवतीत्यवगम्यते। द्वाभ्यां प्रपितामहवृद्धप्रपितामहाभ्याम् एवं मातामहपक्षेऽपि विशेषस्तु पितरि मृते मातामहादित्रयाणामन्यतममरणेऽपि पार्व्वणाचारः।

अथ पार्व्वणस्य प्रतिमासकर्त्तव्यत्वम्। अत्र मार्कण्डेयपुराणम्। "कार्य्यं श्राद्धममावास्यां मासि मास्युडुपक्षये"। यन्मासि मासि कार्य्यम्। पितॄनुपक्रम्य "मासि मासि वोऽशनम्" इति श्रुतेः। एतच्च श्राद्धं चन्द्रक्षयेऽमावास्यां प्राप्यातिशस्तम्।

अपरपक्षे "यदहः सम्पद्यतेऽमावास्यान्तु विशेषण" इति निगमवचनैकवाक्यत्वात्। अन्यतिथावपि श्राद्धमाह गोभिलः। "अथ श्राद्धममावास्यायां पितृभ्यो दद्यात् पञ्चमीप्रभृति वा परपक्षस्य यथा श्राद्धं सर्वस्मिन् वा द्रव्यदेशब्राह्मणसन्निधौ वा कालनियमः शक्तित इति"। योऽयममावास्यादिकालनियमः सशक्तस्य सद्रव्यस्यारोगिणो बोध्यव्य इति श्राद्धविवेकः। तत्र चतुर्दशीवर्जनमाह मनुः। "कृष्णपक्षे दशम्यादौ वर्जयित्वा चतुर्दशीम्। श्राद्धे प्रशस्तास्तिथयो यथैता न तथेतराः"॥ यत्तु "अमावास्याष्टकाकृष्णपक्षपञ्चदशीषु च" इत्यभिधाय "एतच्चानुपनीतोऽपि कुर्य्यात् सर्वेषु पर्वसु। श्राद्धं साधारणं नाम सर्वकामफलप्रदम्। भार्य्याविरहितोऽप्येतत् प्रवासस्थोऽपि नित्यशः। शूद्रोऽप्यमन्त्रवत् कुर्य्यात् अनेन विधिना बुध"॥ इति मत्स्यपुराणम्। तत्रानुपनीतोऽपीत्यपि शब्देनोपनीतः समुच्चीयते। तत्रानुपनीतस्य अजाताग्नेरुपनीतस्य च साग्नेः सम्भवात्तयोः "न दर्शेन विना श्राद्धमाहिताग्नेर्द्विजन्मनः" इति मनुवचनात कृष्णपक्षीयश्राद्धस्यामावास्यायामेव विधानात्तदेकवाक्यतया मत्स्यपुराणे नित्यश इत्यनेनामावास्यायां नित्यत्वाभिधानं तत् साग्निपरम्। कृष्णपक्षस्य नित्यत्वाभिधानन्तु साग्निभिन्नस्य योग्यत्वात् तत् प्रागेव व्याख्यातम् एवमन्यानि वचनानि व्याख्येयानि।

अथ मलमासे सपिण्डनोत्तरश्राद्धनिषेधः। तत्र लघुहारीतः। "सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं यत् किञ्चित् श्राद्धिकं भवेत्। इष्टं वाप्यथवा पूर्त्तं तन्न कुर्य्यान्मलिम्लुचे"। श्राद्धमेव श्राद्धिकं स्वार्थे ठक् इति श्राद्धविवेकः। इष्टं यागादिपूर्त्तं खातादि। ज्योतिषे। "रविणा लङ्घितो मासश्चान्द्रः ख्यातो मलिम्लुचः। तत्र यद्विहितं कर्म्म उत्तरे मासि कारयेत" इति। चान्द्रः

शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तः "चान्द्रः शुक्लादिदर्शान्तः सावनस्त्रिंशतादिनैः । एकराशौ रविर्यावत् कालं मासः सभास्करः" ॥ इति वचनात् स मासो रविणा लङ्घितस्तत्र राश्यन्तरसंयोगाभावे नातिक्रान्तो मलिम्लुचो भवति । तथा "असंक्रान्तमासोऽधिमासः स्फुटः स्याद्द्विसंक्रान्तमासः क्षयाख्यः कदाचित्" इति असंक्रान्तमासो मलमासः तत्र तस्य वैशाखादित्वेन यद्विहितं कर्त्तुमुचितं तत् प्रकृतवैशाखादौ कर्त्तव्यम् । अत्र सपिण्डीकरणान्तस्य कर्त्तव्यत्वमाह लघुहारीतः । "असंक्रान्तेऽपि कर्त्तव्यमाब्दिकं प्रथमं द्विजैः । तत्रैव मासिकं पूर्वं सपिण्डीकरणन्तथा" ॥ आब्दिकं सपिण्डीकरणम् । तत्रैव असंक्रान्त एव रवौ । सपिण्डीकरणात् पूर्वं मासिकं कर्त्तव्यं तथाच सपिण्डीकरणमिति पञ्चम्यर्थे प्रथमा । पूर्वपदं सपिण्डनोत्तरपार्वणाख्यमासिकश्राद्धनिषेधार्थम् । यत्तु "जातकर्म्मणि यत् श्राद्धं दर्शश्राद्धं तथैव च । मलमासेऽपि तत् कार्य्यं व्यासस्य वचनन्तथा" ॥ इति तत् पिण्डपितृयज्ञाख्यश्राद्धपरम् । "इन्द्राग्नी यत्र हूयेते मासादिः स प्रकीर्त्तितः । अग्नीसोमौ स्मृतौ मध्ये समाप्तौ पितृसोमकौ ॥ तमतिक्रम्य तु रविर्यदागच्छेत् कथञ्चन । आद्यो मलिम्लुचो ज्ञेयो द्वितीयः प्रकृतः स्मृतः" ॥ इति लघुहारीतवचनाभ्यामेकवाक्यत्वात् । तथाहि शुक्लप्रतिपदि इन्द्राग्नीयागः । कृष्णप्रतिपदि अग्नीसोमयागः । एतौ दर्शपौर्णमासान्तर्गतौ पितृविशिष्टसोमदेवताकोऽग्नौ करणहोमः पिण्डपितृयज्ञाङ्गभूतो दर्शे विहितः । मासादिसमाप्तिकीर्त्तनात् शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तो मासशब्दार्थः तं पिण्डपितृयज्ञाख्यश्राद्धयुक्तं मासमतिक्रम्य रविर्यदा गच्छेद्राश्यन्तरसंयोगमियात् तदाद्यो मलिम्लुचः । द्वितीयः प्रकृतः शुद्धः कर्म्मार्ह इति यावत् । ततश्च एकवाक्यत्वानु-

रोधेन मलमासेऽपि लघुहारीतवचनबोधितपिण्डपितृयज्ञाख्यश्राद्धमात्रविधायकं व्यासवचनं नत्वन्वाहार्य्याख्यश्राद्धविधायकं तस्य प्रागुक्तेन वक्ष्यमाणवचनाभ्याञ्च निषेधात् प्रपञ्चितमेतन्मलमासतत्त्वे तथाच समयप्रकाशे कुथुमिः। "संवत्सरातिरिक्तो वै मासो यः स्यात् त्रयोदश। तस्मिंस्त्रयोदशे श्राद्धं न कुर्य्यादिन्दुसंक्षये"॥ संवत्सरप्रदीपे। "एकराशिस्थिते सूर्य्ये यदि दर्शद्वयं भवेत्। दर्शश्राद्धं तदादौ स्यात् न परत्र मलिम्लुचे"॥

अथ प्रतिमासपार्व्वणाशक्तस्य कर्त्तव्यत्वमाह मत्स्यपुराणम्। "अनेन विधिना श्राद्धं त्रिरब्दस्येह निर्व्वपेत्। कन्याकुम्भवृषस्थेऽर्के कृष्णपक्षेषु सर्व्वदा"॥ अत्र सौरेण वाक्यम्। राश्युल्लेखेन विहितत्वात्। श्राद्धत्रयाशक्तस्य कन्यास्थरवौ श्राद्धं कर्त्तव्यं तथाच भविष्यपुराणम्। "हंसे वर्षासु कन्यास्थे शाकेनापि गृहे वसन्। पञ्चम्या उत्तरे दद्यादुभयोर्व्वंशयोर्ऋणम्॥ सूर्य्ये कन्यास्थिते श्राद्धं यो न कुर्य्याद् गृहाश्रमी। कुतस्तस्य धनं पुत्राः पितृनिश्वासपीडनात्"॥ हंसे सूर्य्ये। ऋणमिव ऋणं पितृमातृकुलस्येदमवश्यं परिशोध्यमित्यर्थः। अत्राप्यशक्तौ तुलार्के। यथा ब्रह्मपुराणम्। "यावच्च कन्यातुलयोः क्रमादास्ते दिवाकरः। तावच्छ्राद्धस्य कालः स्यात् शून्यं प्रेतपुरं तदा"॥ यावच्च कन्यातुलयो रविरास्ते तावच्च क्रमाच्छ्राद्धस्य कालः कन्यास्थार्काकरणे तुलार्के कर्त्तव्यम्। अन्यथा रविस्थितिक्रमस्य प्राप्तत्वेनानुवादापत्तेः। तुलार्केऽप्यमावास्यायामतिप्राशस्त्यमाह भविष्यपुराणम्। "येयं दीपान्विता राजन् ख्याता पञ्चदशी भुवि। तस्यां दद्यान्न चेद्दत्तं पितॄणां वै महालये"॥ पञ्चदशी अमावास्या। अमावास्यामधिकृत्य "दीपमालाश्च कर्त्तव्याः शक्त्या देवगृहेषु च। रथ्यापण्यश्मशानेषु नदीपर्व्वतसानुषु"॥ इति ब्रह्मपुराणोक्त-

नानास्थानदीपदानेन दीपान्विता ख्यातायेति विशेषणाच्च। अतएव "एकोऽथवा दीपवरः प्रदेयः" इत्यादिनोक्तविष्णुसम्प्रदानकदीपदानविहिता पौर्णमासी न ग्राह्या। अथाश्वयुक् कृष्णपक्षे ब्रह्मपुराणम् "अश्वयुक् कृष्णपक्षे तु श्राद्धं कुर्य्याद्दिने दिने। त्रिभागहीनं पक्षं वा त्रिभागन्त्वर्द्धमेव वा॥ न सन्ति पितरश्चेति कृत्वा मनसि यो नरः। श्राद्धं न कुरुते तत्र तस्य रक्तं पिबन्ति ते"॥ अश्वयुक् कृष्णपक्षे प्रोष्ठपद्यूर्द्ध्वं कृष्णपक्षे अत्राश्वयुगश्विनीतद्युक्तपौर्णमासीसम्बन्धाल्लक्षणया मासेऽप्यश्वयुक् पदप्रयोगः ततश्च निमन्त्रणादौ आश्विने मासि कृष्णेपक्षे इत्येव स्वारसिकप्रयोगः कर्त्तव्य इति। दिने दिने तिथौ तिथौ "तिथिरेकेन दिवसश्चान्द्रमाने प्रकीर्त्तितः" इति। विष्णुधर्मोत्तरानुसारेण मासस्य चान्द्रत्वेन दिनस्यापि तथैव युक्तत्वात् अत्र यदि सङ्कल्पकरणमात्रं विधेयं तदाश्वयुक् कृष्णपक्षे इत्येवं ब्रूयात्। ततश्च दिन इत्यभिधानेनाश्वयुक् कृष्णपक्षीयतिथेर्निमित्तत्वे विनिगमनाविरहेण एकदिनपदेनैव प्रतितिथिनिमित्तत्वप्राप्तौ पुनर्दिनपदं कृष्णपक्षश्राद्धप्रतिषिद्धचतुर्दशीग्रहणार्थं वीप्सया यावत्तिथिलाभात्। अतएव पाश्चात्यनिर्णयामृतकालमाधवीययोः कार्ष्णाजिनिः। "नभस्यस्यापरे पक्षे श्राद्धं कुर्य्यात् दिने दिने। नैव नन्दादिवर्ज्यं स्यात् नैव वर्ज्या चतुर्दशी"॥ नभस्यस्य मुख्यचान्द्रेण भाद्रस्य श्राद्धविवेकेऽपि दिने दिने इति वीप्सापञ्चदशश्राद्धार्थेत्युक्तम्। त्रिभागहीनं षष्ठ्यादित्रिभागमेकादश्यादिव्यक्तं विष्णुधर्मोत्तरे। "उत्तरादयनात् श्राद्धे श्रेष्ठं स्याद्दक्षिणायनम्। चातुर्मास्यञ्च तत्रापि प्रसुप्ते केशवे हितम्"॥ प्रोष्ठपद्याः परः पक्षस्तत्रापि च विशेषतः। पञ्चम्यूर्द्ध्वञ्च तत्रापि दशम्यूर्द्ध्वमतोऽप्यति। मघायुक्ता च तत्रापि शस्ता राजंस्त्रयोदशी"॥

अर्द्धं त्रिभागस्यार्द्धं त्रयोदश्यादि। न तु पक्षस्यार्द्धं अष्टम्यादि। तथात्वे त्रिभागकरणेनार्द्धमेव वेति नियमानुपपत्तेः। उत्तरोत्तरलघुकालोपदेशात् सान्निध्याच्च यत्तु "आषाढ्याः पञ्चमे पक्षे कन्यासंस्थे दिवाकरे। यो वै श्राद्धं नरः कुर्य्यादेकस्मिन्नपि वासरे। तस्य संवत्सरं यावत् तृप्ताः स्युः पितरो ध्रुवम्॥ नभो वाथ नभस्यो वा मलमासो यदा भवेत्। सप्तमः पितृपक्षः स्यादन्यत्रैव तु पञ्चमः"॥ इति नागरखण्डे एकश्राद्धमुक्तम्। तत् कन्यास्थरविनिमित्तकश्राद्धपरं प्रागुक्तहंसे वर्षास्वित्यादिवचनैकवाक्यत्वात्। नत्वश्वयुक् कृष्णपक्षीयश्राद्धस्य सकृद्विधायकम् अर्द्धमेव वेति नियमभङ्गापत्तेः। आषाढ्याः पञ्चमे पक्ष इति न तत्र सकृच्छ्राद्धविधायकं किन्तु कन्यास्थश्राद्धस्यैव तत्सम्बन्धे वर्षतृप्तिविधायकम् एवञ्च मलमासभाद्रकृष्णपक्षस्य पितृपक्षत्वाभावात्तत्र मृतस्य वर्षान्तरे तत् श्राद्धस्याश्वयुक् कृष्णपक्षपातित्वेऽपि न पार्वणविधिना कर्त्तव्यत्वम्। अमावास्याप्रेतपक्षान्यतरमृतस्यैव "अमावास्यां क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः। सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं तस्योक्तः पार्वणो विधिः"। इति शङ्खवचनेन पार्वणविधानात्। एवं प्रेतपक्षादिमृतस्य पार्वणविधिना सांवत्सरिकश्राद्धे कृते न मातामहादिश्राद्धाय पुनः पार्वणारम्भः। "पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ध्रुवम्" इति बृहस्पतिवचनेन "मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्य्याद्विचक्षणः"॥ इत्यनेन च पितृश्राद्धाधीनप्रवृत्तेः। एवमविभक्तसापत्नभ्रात्रोरेकेन पार्वणे कृतेऽपरेण मातामहश्राद्धाय न पुनः पार्वणं करणीयम्। अतएव द्वैतनिर्णयेऽपि साग्निकौरसेन पितुः क्षयाहे पित्रादित्रिकस्य श्राद्धे कृते तत्र मातामहानां श्राद्धाय न पार्वणारम्भः। वाजिनवत्तस्याप्रयोजकत्वादित्युक्तम्। एवमेव मघात्रयोदश्यां

पुत्रवता पिण्डरहितश्राद्धे कृते न पिण्डानुरोधादश्वयुक् कृष्णपक्षीयश्राद्धान्तरकरणीयम् । अङ्गभूतपिण्डानुरोधेन श्राद्धान्तरं न कार्य्यं "प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत् क्रियते पुनः । तदङ्गस्याक्रियायान्तु नावृत्तिर्न च तत्क्रिया" ॥ इति छन्दोगपरिशिष्टवचनात् तेनैव प्रधाननिर्वाहात् ।

अथ मघात्रयोदशीश्राद्धम् । अत्र प्रौष्ठपद्यूर्द्ध्वं कृष्णत्रयोदश्यां मघायुक्तायामनिषिद्धद्रव्येण श्राद्धमावश्यकं शङ्खादिवचने नक्षत्रयुक्ततिथिश्रुतेः । ततश्च केवलत्रयोदशीकेवलमघाश्राद्धानुवादा अपि क्लृप्तविशिष्टविधिप्राप्तकर्म्मणो नित्यत्वबोधका न तु केवलविध्यन्तरकल्पनं गौरवात् । तथाच शङ्खः । "प्रौष्ठपद्यामतीतायां मघायुक्तां त्रयोदशीम् । प्राप्य श्राद्धं हि कर्त्तव्यं मधुना पायसेन च" ॥ अस्य नित्यत्वमाह विष्णुधर्म्मोत्तरम् । "प्रौष्ठपद्यामतीतायां तथा कृष्णा त्रयोदशी । एतांस्तु श्राद्धकालान् वै नित्यानाह प्रजापतिः" ॥ शातातपः । "पितरः स्पृहयन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च । तस्मात् दद्यात् सदोद्युक्तो विद्वत्सु ब्राह्मणेषु च" ॥ अत्र सदेति श्रुतेर्नित्यत्वं प्रतीयते । अत्रान्नमात्रश्रुतेः शङ्खोक्तः पायसः फलातिशयार्थः । तथाच विष्णुधर्म्मोत्तरम् । "मघायुक्ता च तत्रापि शस्ता राजंस्त्रयोदशी । तत्राक्षयं भवेत् श्राद्धं मधुना पायसेन च" ॥ एवञ्च शूद्रस्याप्यत्राधिकारः तत्र पुत्रवतः पिण्डनिषेधमाह देवीपुराणम् । "भौजङ्गीं तिथिमासाद्य यावच्चन्द्रार्कसङ्गमः । तत्रापि महती पूजा कर्त्तव्या पितृदैवते ॥ ऋक्षे पिण्डप्रदानन्तु ज्येष्ठपुत्रो विवर्जयेत्" ॥ भौजङ्गीं पञ्चमीं चन्द्रार्कसङ्गमोऽमावास्या पितृदैवते ऋक्षे मघायां "मघायां पिण्डदानेन ज्येष्ठपुत्रो विनश्यति" इति वचनान्तरात् पिण्डनिषेधे विशेषमाह शातातपः । "पिण्डनिर्वापरहितं यत्तु श्राद्धं विधीयते ।

स्वधावाचनलोपोऽत्र विकिरस्तु न लुप्यते। अक्षय्यदक्षिणा स्वस्ति सौमनस्यमथास्त्विति"॥ अत्राविभक्तानामपि पृथक् श्राद्धमाह श्राद्धचिन्तामणौ स्मृतिः। "विभक्ता अविभक्ता वा कुर्य्युः श्राद्धमदैविकम्। मघासु च तथान्यत्र नाधिकारः पृथग्विना"॥ अदैविकं प्रत्याब्दिकमेकोद्दिष्टम्। अन्यत्र कृष्णपक्षश्राद्धादौ नाधिकारो न नित्याधिकारः। "सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्राद्धानि षोड़श। पृथङ् नैव सुताः कुर्य्युः पृथग्द्रव्या अपि क्वचित्"॥ इत्यत्रापिना समुच्चितस्यापृथग्द्रव्यस्य पुंसः सपिण्डीकरणान्तानीति विशेषणात्तदुत्तरश्राद्धानां फलातिशयार्थत्वेन पृथक्त्वमपि प्रतीयते। अत्र गजच्छायायोगः फलातिशयार्थः। "नभस्यस्यापरे पक्षे मघास्विन्दुः करे रविः। यदा तदा गजच्छाया श्राद्धे पुण्यैरवाप्यते"। इति स्मृतेः करे हस्तानक्षत्रे कन्यादशमांशोपरि सपादत्रयोविंशतिदिनं यावत् अत्र दशमदिवसे मघायुक्तत्रयोदशीसत्त्वे परदिवसे मघासत्त्वेऽपि न कुञ्जरच्छायायोगः "योगो मघात्रयोदश्यां कुञ्जरच्छायसंज्ञितः। भवेन्मघासंस्थे च शशिन्यर्के करे स्थिते" इत्यत्र मघापदद्वयवैयर्थ्यापत्तेर्मघात्रयोदशीनिमित्तकश्राद्ध एव कुञ्जरच्छायस्य गुणफलत्वविधानात्। एतेन पूर्वदिने मघात्रयोदशीश्राद्धं कृत्वा परदिने कुञ्जरच्छाये श्राद्धं कार्य्यमिति मिश्रोक्तं हेयम्। अत्र कुञ्जरच्छायगजच्छाययोः पर्य्यायत्वात् मलमासे गजच्छायाप्रतिप्रसूतश्राद्धस्य विषयत्वमिति मतं चिन्त्यं वस्तुतोऽसम्भवान्न तथात्वमिति ध्येयम्।

अथ तीर्थश्राद्धम्। अत्र शुचेः प्राप्तुरुत्तरविहितप्रथमदिन एव श्राद्धं तेन पूर्वदिने राक्षसीवेलादावागमनेऽपि परदिने श्राद्धमविरुद्धम्। तथाच हलायुधः। "गत्वैव तीर्थं कर्त्तव्यं

श्राद्धं तत् प्राप्तिहेतुकम्। पूर्वाह्णेऽप्यथवा प्रातर्दर्शे स्यात् पूर्वदक्षिणे"॥ तत्तत्प्राप्तैरवमिति कर्त्तव्यवचनेन तीर्थप्राप्तिनिमित्तक श्राद्धाभिधानेनोक्तस्याबाधात्। अतस्तीर्थप्राप्तिनिमित्तकश्राद्ध एव तन्निवृत्तेरिति तत्त्वम्। गङ्गावाक्यावल्याम्। "संवत्सरं द्विमासोनं पुनस्तीर्थं व्रजेद् यदि। मुण्डनञ्चोपवासञ्च ततो यत्नेन कारयेत्"॥ एतेन दशमासाभ्यन्तरे पुनर्गमने मुण्डनोपवासौ न कार्य्याविति सूचितम्।

अथाष्टकाश्राद्धम्। वायुपुराणम्। "पित्र्यदानाय मूले स्युरष्टकास्तिस्र एव च। कृष्णपक्षे वरिष्ठा हि पूर्वा चैन्द्री विभाव्यते॥ प्राजापत्या द्वितीया स्यात् तृतीया वैश्वदेविकी। आद्या पूपैः सदा कार्य्या मांसैरन्या भवेत्तथा॥ शाकैः कार्य्या तृतीया स्यादेष द्रव्यगतो विधिः"॥ मूले प्रधानस्थाने अमावस्या हि श्राद्धस्य प्रधानकालः तद्वदिति यावत्। ऐन्द्री साग्नेः इन्द्रदेवताकयागसम्बन्धात्। एवं प्रजापत्या वैश्वदेविकी च मांसैः पशोः। तथाच गोभिलः। "यद्युवाल्पतरसम्भारः स्यादिति पशुनैव कुर्य्यादिति" यद्युवेति निपातसमुदायो यद्यप्यर्थे पशुरपि छाग एव "छागोऽनादेशे पशुः" इति गोतमात्। न च "तैष्या ऊर्द्ध्वमष्टम्यां गौः" इति गोभिलसूत्रेण गवोपदेशात् कथमनुपदिष्टत्वमिति वाच्यं तदसम्भवे पशुरित्यनेन यः पशुरुपदिष्टः तस्य विशेषतोऽनुपदिष्टत्वात् वस्तुतो हरिवंशे मृगोऽपि विहितः। "इक्ष्वाकुस्तु विकुक्षिं वै अष्टकायामथादिशत्। मांसमानय श्राद्धाय मृगं हत्वा महाबल"॥ इत्यादिना मृगमांसबोधनात्। पश्वभावे स्थालीपाकेन यथा गोभिलः। अपि वा स्थालीपाकं कुर्वीतेति" एतद्विधानन्तु "स्थालीपाकं पशुस्थाने कुर्य्यात् यद्यानुकल्पिकम्। अपयेत्तं सवत्सायास्तरुण्या गोः पयस्तु" इति।

छन्दोगपरिशिष्टीयं ग्राह्यम्। अन्विति ओदनचरोः पश्चात् अतएव "पितरः स्पृहयन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च। तस्माद्दद्यात् सदोद्युक्तो विद्वत्सु ब्राह्मणेषु च॥ इति शातातपेनोक्तम्। तस्मादन्नं प्रधानं पूजादिकन्तूपकरणत्वेन अन्नानामावश्यकं सदेति श्रवणात्।

अथ नवान्नश्राद्धम्। शातातपः "नवोदके नवान्ने च गृहप्रच्छादने तथा। पितरः स्पृहयन्त्यन्नमष्टकासु मघासु च"॥ नवोदके वर्षोपक्रमे। आर्द्रास्थरवाविति यावत् "आर्द्रादितो विशाखान्तं रविचारेण वर्षति" इति ज्योतिर्वचनात् रविचारेण रविगत्या। "प्रावृट्काले समायाते रौद्र ऋक्षगते रवौ। नाड़ीवेधसमायोगे जलयोगं वदाम्यहम्"॥ इति रुद्रयामलाच्च। रौद्रमार्द्रा। नवान्ने नवान्नागमे अत्र "नक्षत्रग्रहपीड़ासु दुष्टस्वप्नावलोकने। इच्छाश्राद्धानि कुर्वीत नवशस्यागमे तथा"॥ इति विष्णुपुराणाद्वक्ष्यमाणबहुतरवचनेषु नवान्नश्रुतेर्नवान्नागमत्वेनैव निमित्तत्वं लाघवात्। "अमावास्यास्तिस्रोऽष्टका माघीप्रोष्ठपद्यूर्द्ध्वं कृष्णत्रयोदशी व्रीहियवपाकौ च एतांस्तु श्राद्धकालान् वै नित्यानाह प्रजापतिः। श्राद्धमेतेष्वकुर्वाणो नरकं प्रतिपद्यते"॥ इति विष्णुवचनं नवान्नागमश्राद्धस्यैव व्रीहियवोभयप्राप्तिविषयकत्वेन विधायकं ग्रैष्मादिधान्यव्युदासाय शालिधान्यस्य तु प्राप्तिः। "शरद्वसन्तयोः केचिन्नवयज्ञं प्रचक्षते। धान्यपाकवशादन्ये श्यामाको वनिनः स्मृतः"॥ इति छन्दोगपरिशिष्टे व्रीह्यप्राप्त्या नवशस्येष्टौ शालिविधानाद् यज्ञतुल्यन्यायात् श्राद्धेति तथा कल्पनात्। "वृश्चिके शुक्लपक्षे तु नवान्नं शस्यते बुधैः। अपरे क्रियमाणं हि धनुष्येव कृतं भवेत्॥ धनुषि यत् कृतं श्राद्धं मृगनेत्रासु रात्रिषु। पितरस्तत्र गृह्णन्ति नवान्नामिषकाङ्क्षिणः"॥ इति वराह-

वचनाच्च। श्यामाको व्रीहिविशेषः। वनी वानप्रस्थः। अपरे कृष्णपक्षे धनुषि धनुःस्थार्के। "पौषे चैत्रे कृष्णपक्षे नवान्नं नाचरेद् बुधः। भवेज्जन्मान्तरे रोगी पितॄणां नोपतिष्ठते"॥ इति भोजराजवचनैकवाक्यत्वात्। एवञ्च सौरपौषवत् चैत्रोऽपि सौर एव साहचर्य्यात्। अत्र धनुर्मीनपर्य्युदासात् यवश्राद्धमुख्यकालपर्य्यन्तं माघफाल्गुनवैशाखेष्वपि नवान्नश्राद्धं कार्य्यं "एवमागामियागीयमुख्यकालादधस्तनः। स्वकालादुत्तरो गौणः कालः पूर्वस्य कर्म्मणः॥ यद्वागामिक्रियामुख्यकालस्याप्यन्तरालवत्। गौणकालत्वमिच्छन्ति केचित् प्राक्तनकर्म्मणि"॥ हरिहरपद्धतौ तथा दर्शनात् अधस्तनः पूर्वतनः हृत्तवच्छास्त्रे व्यवहारः। अन्तरालवत् मध्यकालस्यैव। वस्तुतस्तु उत्तरक्रियामुख्यकालं विना उत्तरक्रियाकरणपूर्वकाल एव पूर्वक्रिया कर्त्तव्या। "संस्कारा अतिपत्येरन् स्वकालाच्चेत् कथञ्चन। हुत्वैतदेव कुर्वीत येतूपनयनादधः"॥ इति छन्दोगपरिशिष्टात् संस्कारपाते तथा व्यवहारात् अतएव श्राद्धविवेकेऽपि धनुषः पर्य्युदासान्माघादाविति सामान्यत उक्तम्। एवं यवश्राद्धमपि हरिशयनात् पूर्वं कर्त्तव्यम्। "नवान्नं नैव नन्दायां न च सुप्ते जनार्द्दने। न कृष्णपक्षे धनुषि तुलायां नैव कारयेत्"॥ इति ज्योतिर्वचनात् न च सुप्ते जनार्द्दन इति आश्विनशुक्लपक्षेतरपरम्। आश्विनाधिकारे "शुक्लपक्षे नवं धान्यं पक्वं ज्ञात्वा सुशोभनम्। गच्छेत् क्षेत्रौ विधानेन गीतवाद्यपुरःसरः"॥ इत्यभिधाय "तेन देवान् पितॄंश्चैव तर्पयेदर्च्चयेत्तथा" इति ब्रह्मपुराणात् मृगोनेताप्रापकोयासां रात्रीणामिति व्युत्पत्त्या नक्षत्रानेतुरित्यनेनात् विधानात् तत्पदं सिद्धम्। ततश्च मृगशिरःपूर्वार्द्धेन वृश्चिकशेषे रात्र्यारम्भात् चत्वारिंशद्दण्डा-

धिकावशिष्टपञ्चांशयो मृगनेत्रा इति। तथोक्तं ज्योतिषे। “ज्येष्ठाश्लेषार्द्धगे सूर्य्ये मृगनेत्रानिशात्मके। नवान्नैर्भोजनं श्राद्धं जन्मचन्द्रे तिथौ न च”॥ अत्र जन्मतिथिनिषेधात् तथा जन्मर्क्षतारं सितवासरमिति जन्मर्क्षं निषेधाच्च “नन्दायां भार्गवदिने त्रयोदश्यां त्रिजन्मनि” इत्यत्र त्रिजन्मपदं जन्मतिथिनक्षत्रत्रिकपरं परवचने त्रिजन्मान्वित इत्यत्रापि तथा। “सूर्य्ये चैव विशाखगे स्मरतिथौ पापे त्रिजन्मान्विते। नन्दामन्दमहीजकाव्यदिवसे पौषे मधौ कार्त्तिके॥ भेष्वाहि शिवेषु विष्णुशयने कृष्णे शशिन्यष्टमे। श्राद्धं भोजनकं नवान्नविहितं पुत्रार्थनाशप्रदम्”॥ सूर्य्ये चैव विशाखगे मार्गशीर्षस्य विंशतिदण्डाधिक प्रथमदिनचयावस्थिते सूर्य्ये। स्मरतिथौ त्रयोदश्यां पापे पञ्चमतारात्रये नन्दा प्रतिपत् षष्ठी एकादशी मन्दः शनिः महीजो मङ्गलः काव्यः शुक्रः उग्रगणाः पूर्वात्रयमघा भरण्यः अहिरश्लेषा शिव आर्द्रा। भोजराजः। “ब्रह्मा विष्णुबृहस्पती शशधरो मार्त्तण्डपौष्णादिती। मैत्रे चित्रविशाखवायुधनभे मूलाश्विवह्नी तथा॥ शक्रे वारुणऋक्षके शुभदिने श्राद्धं नवं शस्यते। नन्दा भार्गव भूमिजेषु न भवेत् श्राद्धं नवान्नोद्भवम्”॥ ब्रह्मादयः रोहिणी श्रवणा पुष्य मृगशिरो हस्त रेवती पुनर्वसु अनुराधा चित्रा विशाखा स्वाती धनिष्ठा मूलाश्विनी कृत्तिका ज्येष्ठा शतभिषाः। नवान्नश्राद्धे मूला कृत्तिका ज्येष्ठा विधानात्तच्छेषभक्षण-प्राप्ते “अश्लेषा कृत्तिका ज्येष्ठा मूला अजपदकेषु च। भृगु भौमदिने रिक्तातिथौ नाद्यान्नवौदनम्”॥ इति श्राद्धशेषाभोजिमात्रपरम् अजपदं पूर्वभाद्रपदाः।

चन्द्रताराद्यशुद्धौ प्रतीकारमाह देवलः। “कर्म्म कुर्य्यात् फलावाप्त्यै चन्द्रादिशोभने बुधः। मुख्यकालेत्विदं नवं नार्त्तः

कालमपेक्षते ॥ चन्द्रे च शङ्खं लवणञ्च तारे तिथावभद्रे सिततण्डुलांश्च । धान्यञ्च दद्यात् करणर्क्षवारे योगे तिलान् हेममणिञ्च लग्ने” ॥ ऋक्षमविहितमत्र राजमार्त्तण्डे ताराभेदात् लवणपरिमाणमाह “एकत्रिपञ्चसप्तद्विजाय दद्यात् पलानि लवणस्य । क्रमशो जन्मनि विपदि प्रत्यरिमरणाख्यतारकासु ॥ पलन्तु लौकिकैर्मानैः साष्टरक्तिद्विमासकम् । तोलकत्रितयं ज्ञेयं ज्योतिर्ज्ञैः स्मृतिसम्मतम्” ॥ वामनपुराणञ्च “विष्टयोव्यतिपाताश्च येऽन्येदुर्नीतिसम्भवाः । ते नाम स्मरणाद्विष्णोर्नाशं यान्ति महात्मनः” ॥ विष्णुधर्म्मोत्तरे । “सर्वाशुभानां परिमोक्षकारि संपूजनं देववरस्य विष्णोः” इति । ब्रह्मपुराणे । “प्राश्नीयात् दधिसंयुक्तं नवं विप्राभिमन्त्रितम्” । अभिमन्त्रितं “मन्त्रदेनाशे गायत्री” इति वचनाद्गायत्र्या इति । स्मृतिः । “गृहीत्वा ब्राह्मणानुज्ञां सदधि प्राशयेन्नवम्” । अत्र व्रीह्यभावे शालिना नूतनाभावे पुरातनेन अपि श्राद्धादिकमाह भट्टभाष्ये स्मृतिः । “गृहमेधी व्रीहियवाभ्यां शरद्वसन्तयोर्यजेत् । श्यामाकैर्वनी वर्षासु आपत्कल्पे अन्येन पुरातनैर्वेति”॥ गृहमेधीति मेधृमेधाहिंसयोः मेधृसङ्गमे चेत्यत्र चकारेण पूर्वगणस्य मेधाहिंसयोरनुवृत्तेः तेन मेधृहिंसार्थः तेन गृहनिमित्तेन जातायाः “पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्लीपेषण्युपस्करः । कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते याश्च वाहयन्”॥ इति मनूक्तायाः पञ्चसूनारूपहिंसायाः कारीगृहमेधीगृहस्थ इत्यर्थः । सूदयन्ति प्राणैर्वियोजयन्तीति सूना प्राणिवधस्थानानि चुल्लीपाकस्थानं पेषणीदृषदुपलादिः उपस्करः गृहसम्मार्जन्यादि कण्डनी मूषलोदूखलादि याश्च एताः सूना वाहयन् स्व स्व कार्य्ये योजयन् बध्यते पापेन सम्बध्यते इत्यर्थः । श्राद्धचिन्तामणावप्येवम् । प्रेतमातापितृकस्य पुरातनधान्या-

लाभे नवेनैव वैश्वदेवं कृत्वा नवञ्च ब्राह्मणेभ्यो दत्त्वा ब्राह्मणानुज्ञां गृहीत्वा भोजनादिकं कर्त्तव्यमाह रेणुकाचार्य्येनव्यवर्द्धमानधृता स्मृतिः। "दत्त्वैवं ब्राह्मणेभ्यश्च हुत्वा वा वैश्वदेविकम्। अन्योनवान्नमश्नीयादिति बौधायनोऽब्रवीत्"॥ अन्यः श्राद्धकरणासमर्थः श्राद्धानधिकारी च अतएव विधवया नवमेकोद्दिष्टे दीयते भुज्यते चेति।

अथ पौर्णमासीश्राद्धम्। "विष्णुधर्म्मोत्तरे पौर्णमासी तथा माघी श्रावणी च नरोत्तम। प्रौष्ठपद्यामतीतायां तथा कृष्णा त्रयोदशी॥ एतांस्तु श्राद्धकालान् वै नित्यानाह प्रजापतिः"॥ प्रौष्ठपद्यूर्द्ध्वं कृष्णा त्रयोदशी मघायुक्तैव पूर्व्वोक्तवचनात्। अन्यथा विध्यन्तरकल्पनापत्तेः।

अथ श्राद्धवेला। ब्रह्मपुराणम्। "पूर्वाह्णे मातृकं श्राद्धमपराह्णे तु पैतृकम्। एकोद्दिष्टन्तु मध्याह्ने प्रातर्वृद्धिनिमित्तकम्"॥ मातृकमन्वष्टकाश्राद्धं यथा शङ्खः। "पित्रादित्रिकपत्नीषु भोज्यामातॄः प्रति द्विजाः। स्त्रीणामेव तु तद् यस्मान्मातृश्राद्धमिहोच्यते"॥ एतच्चान्वष्टकाश्राद्धं साग्निमात्रेण कर्त्तव्यं तथा च विष्णुः। अन्वष्टकास्वष्टकावदग्नौ हुत्वा मातृपितामह्यै प्रपितामह्यै पूर्ववत् ब्राह्मणान् भोजयित्वेति"। अत्र होमत्वादेवाग्निप्राप्तेरग्निग्रहणं तन्नियमार्थम्। न चाग्नौकरणहोमे विप्रपाण्यादेर्विधानादत्रापि तथेति वाच्यं प्रकृतीभूतश्राद्धविध्युक्तस्याधारान्तरस्य विकृतीभूतश्राद्धे विशेषविहिताधारेण बाधात् शरमयवर्हिषा कुशमयवर्हिर्बाधवत्। न वा लौकिकाग्नौ होमः। "न पैतृयज्ञियो होमो लौकिकाग्नौ विधीयते" इति मनुवचनेन निषेधात्। श्राद्धचिन्तामणावप्येवम्। "अपराह्णे तु पैतृकम्" इति अन्वष्टका शुक्लपक्षविहितपार्वणेतरपार्वणसपिण्डीकरणपरम्। शुक्लपक्षस्य पूर्वाह्णे

श्राद्धं कुर्य्याद्विचक्षणः। कृष्णपक्षापराह्णे तु रौहिणन्तु न लङ्घयेत्"॥ इति वायुपुराणात्। अत्र शुक्लपक्षस्येति अङ्गाङ्गिभावबोधकषष्ठीनिर्देशात् शुक्लपक्षत्वमात्रेण यद्विहितं माघपौर्णमास्यादिपार्वणश्राद्धं तदेव पूर्वाह्णे कर्त्तव्यम्। अतएव कृष्णपक्षत्वेन विहिताविहितपार्वणयोरविशेषेणापराह्णे कर्त्तव्यत्वात्। कृष्णपक्षे षष्ठीनिर्देशो न कृतः। अतो मृताहविहितपार्वणसपिण्डीकरणश्राद्धयोः शुक्लपक्षकृष्णपक्षयोरविशेषेणैवापराह्णकर्त्तव्यता। अत्र पूर्वाह्णपदं सङ्गवपरम्। "प्रातःकालो मुहूर्त्तांस्त्रीन् सङ्गवस्तावदेव तु। मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यादपराह्णस्ततः परम्॥ सायाह्नः स्त्रिमुहूर्त्तः स्याच्छ्राद्धं तत्र न कारयेत्। राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्म्मसु"॥ इति मत्स्यपुराणवचने मध्याह्नापेक्षया परकालस्यापराह्णत्ववत् तत् पूर्वकालस्यैव सङ्गवापरनाम्नः पूर्वाह्णत्वप्रतीतेः अतएव ब्रह्मपुराणेन मत्स्यविष्णुपुराणोक्तप्रातःकालादिभेदेन वृद्ध्यादिश्राद्धमुक्तम् अत्रापि सङ्गवमनभिधाय यत् पूर्वाह्ण इत्युक्तं तत् सङ्गवपरम् अत्र पूर्वाह्णे श्राद्धमभिधाय रौहिणन्तु न लङ्घयेदित्यभिधानेन पूर्वाह्णश्राद्धस्य सङ्गवात् परो रौहिणपर्य्यन्तगौणपूर्वाह्णकालः प्रतीयते। तेन रौहिणः पूर्वाह्णश्राद्धस्य गौणकालत्वेनोत्तरावधिः अपराह्णश्राद्धस्य पूर्वावधिरित्यवगम्यते। ततश्च पूर्वदिने सङ्गवात् परं रौहिणपर्य्यन्तं तिथेर्लाभे परदिने मुहूर्त्तत्रयमात्रे तत्तिथिलाभे पूर्वदिने श्राद्धं रौहिणान्तरूपगौणपूर्वाह्णलाभात् न परदिने तथात्वाभावात्! उभयदिने सङ्गवलाभे परदिने शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्येति वचनात्। रौहिणन्तु दिवसस्य नवममुहूर्त्तस्तस्य ज्योतिषोक्तरोहिणीदैवतत्वात् रौहिणत्वमिति। एवञ्च "ऊर्द्ध्वं मुहूर्त्तात् कुतपात् यन्मुहूर्त्तचतुष्टयम्। मुहूर्त्तपञ्चकं वापि स्वधाभवनमिष्यते"॥ इति मत्स्यपुराणे आप-

राह्णिकश्राद्धे "अह्नो मुहूर्त्ता विख्याता दशपञ्च च सर्वदा । तत्राष्टमो मुहूर्त्तो यः स कालः कुतपः स्मृतः" ॥ इति तद्वचनान्तरोक्तकुतपस्य पञ्चमत्वेनाभिधानं तद्रौहिणादपि गौणापराह्णकालपरम् । न च ऊर्द्ध्वं मुहूर्त्तात् कुतपान्मुहूर्त्तपञ्चकमिति त्रयोदशमुहूर्त्तात्मकं नारायणोपाध्यायोक्तं युक्तमिति वाच्यम् । "अपराह्णे तु संप्राप्ते अभिजिद्रौहिणोदये । यदत्र दीयते जन्तोस्तदक्षयमुदाहृतम्" ॥ इति मत्स्यपुराणविरोधात् तस्मान्मुहूर्त्तपञ्चकमित्यत्र कुतपादिति ल्यब्लोपे पञ्चमी तेन कुतपमारभ्येत्यर्थः । अपराह्णे तु संप्राप्ते इत्यत्र अभिजिद्रौहिणोदये अष्टमनवममुहूर्त्तयोरुदयाचलसम्बन्धे गौणापराह्णकालरूपे यद्दीयते तदक्षयमित्यर्थः एतत् प्रशंसनं "रात्रौ श्राद्धं न कुर्वीत राक्षसी कीर्त्तिता हि सा । सन्ध्ययोरुभयोश्चैव सूर्य्ये चैवाचिरोदिते" इति मनूक्तपर्य्युदस्तेतरकालापेक्षया न तु मुख्यापराह्णापेक्षया मुहूर्त्तचतुष्टयं मुहूर्त्तपञ्चकं चेत्यत्र वाशब्देनानयोर्गौणकालत्वाभिधानात् । ततश्च रात्र्यादिपर्य्युदस्तेतरकालकुतपादिमुहूर्त्तपञ्चकरौहिणादि-मुहूर्त्तचतुष्टय-दशमादमुहूर्त्तत्रयरूपकालचतुष्टयमापराह्णिकश्राद्धे विहितप्रशस्त-प्रशस्ततर-प्रशस्ततमत्वेन बोध्यम् । अक्षयादिफलश्रुतेः । एवमन्यस्मिन् पूर्वाह्णादिविहिते श्राद्धे यथायथं बोध्यम् । अत्र च तिथिविशेषविहितश्राद्धानामुभयदिवसीयमुख्यकाले तत्तत्तिथिलाभे आपराह्णिकश्राद्धस्य पूर्वतिथौ कर्त्तव्यता "ययास्तं सविता याति पितरस्तामुपासते । तिथिन्तेभ्योऽपराह्णो हि स्वयं दत्तः स्वयम्भुवा" ॥ इति गृह्यपरिशिष्टवचने अपराह्णो दत्त इति हेतुवन्निगदेनास्तगामितिथित्वेन पितृणामुपास्यत्वाभिधानात् । उभयदिनमुख्यकालालाभे तु परदिने गौणापराह्णलाभात् तत्रैव श्राद्धं आपराह्णिकेतरश्राद्धे तूभयदिने

ग्राह्यग्राह्योः शुक्लपक्षकृष्णपक्षभेदेन व्यवस्था । "शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामभ्युदितो रविः । कृष्णपक्षे तिथिर्ग्राह्या यस्यामस्तमितो रविः" । इति विष्णुधर्म्मोत्तरात् । "द्वितीयादिकयुग्मानां पूज्यता नियमादिषु । एकोद्दिष्टादिवृद्ध्यादौ ह्रासवृद्ध्यादिचोदना" ॥ इति व्यासनिगमवचनाच्च नियमादिषु व्रतादिदैवकृत्येषु एकोद्दिष्टादिवृद्ध्यादौ एकोद्दिष्टादिश्राद्धनिमित्तीभूततिथिविशेषस्य वृद्ध्यादौ वृद्ध्यादावित्यादिशब्दात् क्षयस्तमितत्वे ग्राह्ये तथात्वे च श्राद्धकरणस्य सन्देहे पूर्वोक्तानुसारेण ह्रासवृद्ध्यादिचोदना ह्रासवृद्ध्यादिविधायको नियामक इति यावत् अत्र ह्रासवृद्धी चन्द्रस्य ताभ्यां शुक्लकृष्णपक्षौ लक्ष्येते शुक्लपक्षे तिथिर्ग्राह्येत्यादि पूर्ववचनैकवाक्यत्वात् आदिशब्देन ययास्तमित्युक्तसूर्य्यास्तसम्बन्धितिथिरिति । एवञ्च "द्वाहन्तु व्यापिनी चेत् स्यान्मृताहस्य तु या तिथिः । पूर्वस्यां निर्वपेत् पिण्डमित्याङ्गिरसभाषितम् इति । सुमन्तुवचने मृततिथेरुभयदिने श्राद्धकालव्यापित्वे पक्षभेदमनादृत्य यत् पूर्वदिने श्राद्धविधानं तन्मृताहविहितपार्वणसपिण्डीकरणोभयश्राद्धपरं ययास्तमित्येकवाक्यत्वात् नत्वेकोद्दिष्टविषयम् । एकोद्दिष्टादिवृद्ध्यादावित्युक्तवचनविरोधात् "एकोद्दिष्टन्तु मध्याह्ने" इति प्रागुक्तवचनविरोधाच्च ।

मध्याह्ने तु विशेषमाह कालमाधवीये व्यासः । "कुतपप्रथमभागे एकोद्दिष्टमुपक्रमेत् । आवर्त्तनसमीपे वा तत्रैव नियतात्मवान्" ॥ आवर्त्तनं पश्चिमदिगवस्थितच्छायायाः पूर्वदिग्गमनारम्भकालः तत्समीपे कुतपशेषदण्डे गौतमः । "आरभ्य कुतपे श्राद्धं कुर्य्यादारौहिणं बुधः । विधिज्ञो विधिमास्थाय रौहिणन्तु न लङ्घयेत्" इति ॥ एतद्वचनद्वयं भुजबलभीमे भोजदेवेन धृतम् । तेन पूर्वदिवसीयकुतपरौहिणयोस्तत्त-

त्तिथेर्लाभे परत्र कुतपमात्रलाभे शुक्लपक्षेऽपि पूर्वदिने एकोद्दिष्टम् उभयप्राप्त्यनुरोधात्। पूर्वदिने कुतपालाभे परत्र तल्लाभे कृष्णपक्षेऽपि परदिन एव समाप्तिकालादारम्भकालस्य बलवत्त्वात्। तथाच बौधायनः। "यो यस्य विहितः कालः कर्म्मणस्तदुपक्रमे। तिथिर्याभिमता सा तु कार्य्यानोपक्रमोज्झिता"॥ अतएव मदनपारिजाते लोकाक्षिः। "गणिताज्ज्ञायते कालो यत्र तिष्ठन्ति देवताः। वरमेकाहुतिः काले नाकाले लक्षकोटयः"॥ उभयत्र कुतपमात्रालाभे शुक्लपक्षेऽपि पूर्वदिने समाप्तिकालानुरोधात् पूर्वदिने रौहिणलाभे परत्र सप्तममुहूर्त्तलाभे कृष्णपक्षेऽपि परदिने मध्याह्नानुरोधात्। ग्रहणादौ रात्रावपि स्नानश्राद्धादिकमाह देवलः। "राहुदर्शनसंक्रान्तिविवाहात्ययवृद्धिषु। स्नानदानादिकं कुर्य्युर्निशिकाम्यव्रतेषु च"॥ आदिशब्दः श्राद्धादिपरः "स्नानं दानं तपः श्राद्धमनन्तं राहुदर्शने। आसुरी रात्रिरन्यत्र तस्मात्तां परिवर्जयेत्"॥ इति यमवचने तथा समभिव्याहारात्।

अथामावास्याश्राद्धकालः। तत्र छन्दोगपरिशिष्टम् पिण्डान्वाहार्य्यकं श्राद्धं क्षीणे राजनि शस्यते। वासरस्य तृतीयांशे नातिसन्ध्यासमीपतः"॥ पिण्डान्वाहार्य्यकमिति "ततः प्रभृतिपितरः पिण्डसंज्ञान्तु लेभिरे" इति मत्स्यपुराणात् पिण्डानां पितॄणाम् अन्वाहार्य्यं मासैकतृप्तिजनकं यत्तथा। तथाच मनुः। "पिण्डानां मासिकं श्राद्धमन्वाहार्य्यं विदुर्बुधाः"। राजनि चन्द्रे शस्यत इत्यनेन क्वचिच्चन्द्रक्षयाभावेऽपि श्राद्धं सूचितम् एतादृग् व्युत्पत्तेः साग्निनिरग्निसाधारणत्वेन वक्ष्यमाणकात्यायनोक्तरीत्या क्षीणा स्तम्भिता वर्द्धमानाभेदः साधारणः वासरस्य तृतीयांशे त्रिधाविभक्तस्य दिनस्य तृतीयभागे नातिसन्ध्यासमीपत इति सन्ध्यासमीपमुहूर्त्त आपद्यपि वर्ज-

मीय इत्यर्थः। तेन राक्षसीवेलायामपि मुहूर्त्तद्वयमनुज्ञातम् अतिशब्दस्वरसात् अतएव हारीतः "त्रिमुहूर्त्तापि कर्त्तव्या पूर्व्वा दर्शा च बह्वृचैः" इति तेन पूर्व्वदिने मुहूर्त्तत्रयमात्रलाभे परदिने वासरतृतीयांशालाभे पूर्व्वदिन एव श्राद्धम्।

दर्शद्वैधे कुत्र श्राद्धं तत्राह छन्दोगपरिशिष्टे कात्यायनः। "यदा चतुर्द्दशीयामं तुरीयमनुपूरयेत्। अमावास्या क्षीयमाणा तदैव श्राद्धमिष्यते"॥ चतुर्द्दशीयाममिति चतुर्द्दशीसम्बन्धिदिनयामं तद्दिनस्यामावास्यासम्बन्धेऽपि चतुर्दशीनिर्द्देशोऽधिकेन व्यपदेशा भवन्तीति न्यायात् तेन चतुर्द्दशीसम्बन्धिदिनस्य चतुर्थप्रहरं कृत्स्नं किञ्चिन्न्यूनं वा अमावास्यानुपूरयेत् व्याप्नोति प्रहरत्रयव्यापिनीकिञ्चिदधिकप्रहरत्रयव्यापिनी वा चतुर्द्दशीत्यवगम्यते। ततश्चोभयवासरीयतृतीयांशसम्बन्धिपञ्चधा विभक्तापराह्णीयैकादशद्वादशमुहूर्त्तयोः "व्रतोपवासनियमे घटिकैका यदा भवेत्। सा तिथिः सकला ज्ञेया पित्रर्थे चापराह्णिकी"॥ इति भविष्यपुराणात् मुहूर्त्तान्यूनदर्शलाभे द्वैधं नत्वेकदिनमात्रे तल्लाभे। अत्र वासरस्य तृतीयांश इत्यनेनैव द्वैधानुदयात् एवं द्वैधे पूर्व्वदिनचतुर्द्दश्यपेक्षया परदिने अमावास्या क्षीयमाणा न्यूनकालव्यापिनी न तु पूर्व्वापरदिवसीययावच्चतुर्द्दश्यपेक्षयाऽनुपस्थितेः। एवं स्तम्भिता वर्द्धमानयोरपि तदैव पूर्व्वदिन एव अत्र चन्द्रक्षयश्चतुर्द्दश्यष्टमयामात् प्रभृत्यमावास्यासप्तमयामपर्य्यन्तमिति वक्ष्यते। ततश्चन्द्रक्षयानुरोधात् पूर्व्वदिने श्राद्धं तदैवेत्येवकारेण तिथिद्वैधे खण्डविशेषो नियम्यते कर्म्मणि खण्डान्तरव्युदासाय एवञ्च यत्र पूर्व्वापरदिने वासरतृतीयांशीयमुख्यापराह्णे मुहूर्त्तो न दर्शलाभस्तत्रापि पूर्व्वदिने श्राद्धं वासरतृतीयांशचन्द्रक्षयातिशब्दस्वरसात् त्रिमुहूर्त्तापीत्यनुरोधाच्च। यत्र तु पूर्व्वदिने त्रिमुहूर्त्तमात्रव्यापिन्यमा-

वास्या परदिने च वासरतृतीयांशमुहूर्त्तव्यापिनी सती क्षीयमाणा तत्र परदिने चन्द्रक्षयाभावेऽपि मुख्यापराह्णलाभात् श्राद्धम् अन्यथा "यदा चतुर्दशीयामं तुरीयमनुपूरयेत्" इति विशेषाभिधानं व्यर्थं स्यात् अथ यत्र पूर्वाह्ने श्राद्धं तत्र "यदहस्त्वेव चन्द्रमा न दृश्येत ताममावास्यां कुर्वीत" इति गोभिलविरोधः। तथाविधचतुर्दशीयुक्तामावास्यायाः सिनीवालीत्वेन प्रातश्चन्द्रदर्शनात्। तत्राह स एव "यदुक्तं यदहस्त्वेव दर्शनं नैति चन्द्रमाः। तत्क्षयापेक्षया ज्ञेयं क्षीणे राजनि चेत्यपि। यदहस्त्वेव चन्द्रमा न दृश्येत ताममावास्यां कुर्वीत" इति यद्गोभिलसूत्रं तच्चन्द्रक्षयाभिप्रायकम् अन्यथा गोभिलीय तादृशसूत्रान्तरेण सह पौनरुक्त्यापत्तेः तस्मात् प्रथमसूत्रं कुहूपरं तच्च वर्द्धमानापक्षे नियतं क्षीणास्तमितयोस्तु यथायोग्यमनुसरणीयम् एवञ्च "यदहस्त्वेव चन्द्रमा न दृश्येत ताममावास्यां कुर्वीत" इति श्रुतिरेतत् समानार्थकं श्रुत्यन्तरं वा तदपि वर्द्धमानादिपरं न तु कात्यायनवचनात्तत्र क्षयलक्षणा कल्पतरुप्रभृतिभिरुक्ता युक्ता। "श्रुतिस्मृतिविरोधे तु श्रुतिरेव गरीयसी" इति विरोधात्। क्षीण इति कात्यायनेन मया यत् क्षीणे राजनीत्युक्तं तदपि चन्द्रक्षयाभिप्रायम् "अथैवं दृश्यमानेऽप्येकदा" इति गोभिलसूत्रान्तरं व्यर्थं यदहस्त्वेवेत्यादिद्वितीयसूत्रप्राप्ततिथेः सिनीवालीत्वेनैव चन्द्रदर्शनप्राप्तिरित्यत आह स एव "यच्चोक्तं दृश्यमानेऽपि तच्चतुर्दश्यपेक्षया। अमावास्यां प्रतीक्षेत तदन्ते वापि निर्वपेत्"॥ दृश्यमानेऽप्येकदेति यदुक्तं तच्चतुर्दश्यां श्राद्धाय पूर्वसूत्रममावास्यापदोपादानाच्चन्द्रक्षये सत्यमावास्याविषयम्। इदं पुनरित्थम्भूतचतुर्दशीविषयमिति श्राद्धविवेकः तत् किममावास्यावत् चतुर्दशीत्यत आह। अमावास्यां प्रतीक्षेतेति उभय-

तिथिप्राप्तौ श्राद्धायामावास्या प्रतीक्षणीया यत्र पूर्वदिने दिवा सार्द्धमुहूर्त्तमात्रेऽमावास्या परदिने च सार्द्धदशममुहूर्त्तमात्रे अमावास्या अत्र चोभयदिने श्राद्धयोग्यामावास्या न प्राप्यते तत्र चतुर्दश्यान्ते निर्वपेत् दद्यात् अत्रैव विषये साग्निनिरग्न्योर्विशेषमाह कालमाधवीये जाबालिः । "अपराह्णद्वयाव्यापी यदि दर्शस्तिथिक्षये । आहिताग्नेः सिनीवाली निरग्न्यादेः कुहूर्मता" । आदिपदादनुपनीतशूद्रयोर्ग्रहणम् । क्षयकालमाह कात्यायनः । "अष्टमेंऽशे चतुर्दश्याः क्षीणो भवति चन्द्रमाः । अमावास्याष्टमांशे च ततः किल भवेदणुः" ॥ चतुर्दश्यष्टमे यामे चन्द्रमाः क्षीणश्चतुर्थभागोनकलावशिष्टो भवति अत्रेन्दुराद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते इत्यादिस्वरसात् अमावास्यष्टमे यामे चाणुर्भवति पुनरुत्पद्यते किलेत्यागमवार्त्तायां तेनामावास्यासप्तमयामे कृत्स्नक्षय इत्यवगम्यते ततश्चान्त्यकलावयवनाशोत्पत्तिरेव क्षयः सा च सूक्ष्मतायां विनाशेऽप्यस्तीति श्राद्धविवेकः । उत्पत्तिराद्यक्षणसम्बन्धः तेन विनाशस्यानन्तत्वेपि नातिव्याप्तिः । अत्र विशेषमाह स एव "आग्रहायण्यमावास्या तथा ज्यैष्ठस्य या भवेत् । विशेषमाभ्यां ब्रुवते चन्द्रचारविदो जनाः" । आभ्यामिति ल्यव्लोपे पञ्चमी इमे प्राप्येत्यर्थः । चन्द्रचारविदो ज्योतिर्विदः । अत्र पौर्णमास्यन्तमास इति परिशिष्टप्रकाशः । अत्र वीजं ब्रह्मपुराणीयतिथिकृत्यत्वं तथा च श्राद्धमधिकृत्य ब्रह्मपुराणम् । "पयोमूलफलैः शाकैः कृष्णपक्षे च सर्वदा" । तत्र कृष्णपक्षे चतुर्दशीव्यतिरिक्तायां यस्यां कस्याञ्चित्तिथौ श्राद्धविधानादमावास्यापि लभ्यत इत्यत्र कोविशेष इत्यत्राह स एव "अत्रेन्दुराद्ये प्रहरेऽवतिष्ठते चतुर्थभागोनकलावशिष्टः । तदन्त एव क्षयमेति कृत्स्नमेवं ज्योतिश्चक्रविदो वदन्ति" ॥ अत्र मास-

द्वये चतुर्थभागोनकलावशिष्टः चतुर्थभागोना या कला तयावशिष्टः कलाभागत्रयमात्रः सप्ताद्यप्रहरे इन्दुरवतिष्ठते अर्थाच्चतुर्दश्यष्टमयामे न क्षयारम्भ इति तदन्त एवामावास्यान्त्ययाम एव कृत्स्नं क्षयमिति अन्यत्रामावास्या सप्तमयाम इति विशेषः तेन मार्गशीर्षज्यैष्ठयोरुभयदिने चन्द्रक्षयलाभे यद्यपि यदा चतुर्दशीयाममिति वचनात् पूर्वदिन एव प्राप्नोति तथापि तद्वचनं चन्द्रक्षयानुरोधमूलमिति कृत्स्नक्षयानुरोधात् क्षीणायामपि परत्रापराह्णलाभे श्राद्धं अन्यथैतद्विशेषाभिधानं व्यर्थं स्यात्। तत्रापि विशेषान्तरमाह स एव "यस्मिन्नब्दे द्वादशैकस्य षष्ठ्यस्तस्मिन् तृतीयया परिदृश्योनोपजायेत"॥ षष्ठो मासः। तृतीयया मात्रया चतुर्थभागोनकलया परिदृश्यश्चन्द्रो न भवति किन्तु तदधिकन्यूनकलयेति तेन मलमाससंयुताब्दे अन्यमासवदनयोरपि चतुर्दश्यन्त्ययामादिदर्शसप्तमयामपर्य्यन्तं क्षय इति मलमासयुताब्दस्तु एकस्मान्मलमासादब्दद्वयानन्तर तृतीयाब्दे मलमासस्यावश्यम्भावादिति चन्द्रक्षयानुरुद्धम्। क्षीणापक्षमुपसंहरति स एव "एवं चारं चन्द्रमसो विदित्वा क्षीणे तस्मिन्नपराह्णे च दद्यात्"। एवं चारं गतिविशेषम्। स्तम्भितायां विशेषमाह स एव "संमिश्रा या चतुर्दश्या अमावास्या भवेत् क्वचित्। खर्व्वितां तां विदुः केचिदुपेध्वमिति चापरे"॥ क्षीणायाः पूर्वमुक्तत्वाद्वक्ष्यमाणायाश्च वक्ष्यमाणत्वादस्य स्तम्भितापरत्वम्। खर्व्वितां नीचां पितृलोकप्रापणानर्हाम्। केचित् यजुर्वेदिनः अपरे ऋग्वेदिनः तामेवोपेध्वम् उपगच्छत श्राद्धायेति शेषः। उपेध्वमित्यत्र गताध्वमिति पाठे गतः प्राप्तः पितृलोकप्रापणायैव अध्वा अनयेति गताध्वां प्रशस्तामित्यर्थः तस्मात् छन्दोगा उभयानुरोधादिच्छात उभयादरं कुर्वन्तीति कात्यायनस्वरसः। व्यक्त-

माह लघुहारीतः 'त्रिमुहूर्त्तापि कर्त्तव्या पूर्वा दर्शा च बह्वृचैः। कुहूरध्वर्य्युभिः कार्य्या यथेष्टं सामगीतिभिः"। अत्र त्रिमुहूर्त्तेत्युपादानात् स्तम्भितायां पूर्वदिने त्रिमुहूर्त्तमात्रलाभेऽपि बह्वृचानां श्राद्धं न मुख्यापराह्णलाभादपि परदिने। सामगानां तत्राप्य नियतः एतादृग्विषय एवोभयत्रापराह्णालाभेऽपीयं व्यवस्थेति श्राद्धविवेकः।

मुख्यापराह्णस्यैकदिनलाभेऽप्युभयदिनालाभात् वर्द्धमानायां व्यवस्थामाह स एव। "वर्द्धमानाममावास्यां लक्षयेदपरेऽहनि। यामां स्त्रीनधिकान् वापि पितृयज्ञस्ततो भवेत्"॥ यामांस्त्रीनिति पूर्वदिवसीययामत्रयन्यूनचतुर्दश्यपेक्षया अथैवं वासरतृतीयांशानुरोधेन श्राद्धविधानात् कथममावास्याश्राद्धे पर्य्युदस्तेतरकालपरिग्रहः सत्यं तिथिद्वैधे क्षीणादिभेदेन खण्डविशेषपरिग्रहाय वासरतृतीयांशापेक्षा अन्यथोभयदिने वासरतृतीयांशाप्राप्तौ श्राद्धलोपापत्तेः प्रागुक्तनिरग्न्यादेः कुहूमतेत्यस्य निर्विषयतापत्तेश्च अतः पर्य्युदस्तेतरकालस्यापि परिग्रहः। यदा तु पूर्वापरखण्डयोरन्यतरस्यैव परिग्रहः तदा यथायोग्यं तत्रैव सायाह्नमुहूर्त्तद्वयपर्य्युदस्तेतरकालकुतपादिमुहूर्त्तपञ्चकरौहिणादि-मुहूर्त्तचतुष्टयवासरतृतीयांशीयापराह्णमुहूर्त्तद्वयकालपञ्चको यथाक्रममापत्सामान्यप्रशस्तप्रशस्ततरप्रशस्ततमत्वेन ज्ञेयः। एतद्विस्तारस्तु तिथितत्त्वे। मलमासपर्य्युदासविचारौ तु मलमासतत्त्वेऽप्यनुसन्धेयाविति।

अथैकोद्दिष्टश्राद्धविचारः। तत्र गोभिलः। "अथैकोद्दिष्टमेकं पवित्रमेकोऽर्घ्य एकः पिण्डो नावाहनं नाग्नौ करणं नात्र विश्वेदेवाः। स्वदितमिति तृप्तिप्रश्नः सुस्वदितमिति प्रत्युत्तरम्। उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने अभिरम्यतामिति विसर्गोऽभिरतोऽस्मीति प्रतिवचनमेतत्प्रेतश्राद्धमिति"॥ अथेत्यने-

नैकोद्दिष्टस्य पार्व्वणानन्तर्य्याभिधानं तयोः प्रकृतिविकृतित्वं सूचयति। अतएवैकोद्दिष्टे ‘पार्व्वणधर्मप्राप्त्यावाहनादिप्राप्तौ नावाहनमित्यादिनिषेध उपपद्यते अन्यथा प्राप्त्यभावान्निषेधोऽनुपपन्नः स्यात् एतत् प्रेतश्राद्धमित्युपसंहारात् एकं प्रेतमुद्दिश्य यद्दीयते श्राद्धं तदेकोद्दिष्टमिति वैदिकप्रयोगाधीनयौगिकम् अतएव प्रतिसांवत्सरिकस्य नैकोद्दिष्टत्वं किन्त्वेकोद्दिष्टविधिकत्वम् अत्रार्घ्यैक्याद्विदलरूपसङ्केतितपवित्रैक्यप्राप्तौ एकं पवित्रमिति पुनरभिधानसार्थकत्वाय तदवयवैकदलपरम्। आज्योत्पवनप्रकरणे "तत एव बर्हिषः प्रादेशमात्रे पवित्रे कुरुते" इति गोभिलसूत्रे पवित्रपदस्य दलपरत्ववत्। न च तत्रापि साङ्केतितद्विदल पवित्रद्वयपरं प्रादेशमात्रे इति विशेषणवैयर्थ्यात् "अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च। प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित्" इति सङ्केतादेव तल्लाभात् दललक्षणा तु "पवित्रेस्थो वैष्णव्याविति विष्णोर्मनसापूतेस्थः" इति मन्त्रयोर्द्विवचनोपपत्तये। एवञ्च छन्दोगपरिशिष्टेन बर्हिर्विशिष्टद्विदले पवित्रपदं सङ्केत्य आज्यस्योत्पवनार्थं यत्तदप्येतावदेव द्विदलेत्यनेन प्रागुक्त गोभिलसूत्रोक्तैकदलपवित्रयोरेकपवित्राभिधानं तत् "देवस्त्वा सवितोत्पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण" इत्यादिमन्त्रस्थ पवित्रेण इत्याद्येकवचनोपपत्तये। अत्र नावाहनं नाग्नौकरणमिति निषेधयोः पौर्व्वापर्य्यादग्नौकरणपूर्व्वकालीनं प्रधानसम्बन्धि श्राद्धसूत्रोद्दिष्टं श्राद्धार्थावाहनमेव निषिध्यते नत्वप्रधान-सम्बन्धि पितृ-यज्ञवदित्यतिदेशप्राप्तं पिण्डार्थावाहनमिति एतेन पिण्डार्थावाहननिषेधो मैथिलोक्तो हेयः। अत्राग्नौकरणनिषेधेन हुतशेषस्यालाभे हुतशेषं दत्त्वा पात्रमालभ्य जपति पृथिवीत्यादि स्वाहा इत्यन्त सूत्रोक्तपात्रालम्भनस्यापि बाधः आनन्तर्य्याभावात् अमृतमिति मन्त्रलिङ्ग-

विरोधाच्च। स्वदितमिति तृप्तिप्रश्न इति तृप्ताः स्थ इति तृप्तिप्रश्ने स्वदितमिति प्रश्नः। कुशमयब्राह्मणपक्षे तु प्रतिवचनानुपपत्त्या प्रश्नस्यापि निवृत्तिः अक्षय्यशब्दस्थाने उपतिष्ठतामिति प्रयोगः अत्रोपतिष्ठतामित्यनेनान्नादिकमित्यस्यान्वये अस्त्वित्यस्यान्वयानुपपत्त्या तस्याप्यप्रयोगः। अतएव पितृदयितायामन्नादिकमुपतिष्ठतामिति लिखितम्। ततश्च "प्रेतायाक्षय्यमस्तु" इति। ब्रह्मपुराणीयं "ततो वदेत् पुनर्धीमानक्षय्यमुपतिष्ठताम्" इति मार्कण्डेयपुराणीयञ्च गोभिलविरुद्धत्वात् शाख्यन्तरीयम्। अभिरम्यतामिति वाजे वाजे इति स्थानेऽभिरम्यतामित्यनेन विसर्जनमिति एतेन "प्रेतश्राद्धेषु सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम्। स्वस्त्यस्तु विसृजे देवं सकृत् प्रणववर्जितम्"॥ इत्याश्वलायनगृह्यपरिशिष्टात् एकोद्दिष्टे प्रणववर्जितस्वस्त्यस्त्वित्यनेन यद्विसर्जनं तत्प्रेतश्राद्धविषयम् अभिरम्यतामिति तु सांवत्सरिकविषयमिति कल्पतरुश्रीदत्तवाचस्पतिमिश्राद्युक्तं निरस्तम्। बह्वृचानामेव पार्वणेऽभिरम्यतामिति विसर्जनस्य प्राप्तत्वादेकोद्दिष्टेऽपि तथा त्वात् सर्वशाखिसाधारणनिषेधानुपपत्तेश्च। एतदिति पूर्वोक्तेति कर्त्तव्यताकश्राद्धमित्यर्थः। प्रेतश्राद्धं प्रेतस्य श्राद्धं न तु पार्वणविकृतित्वेन प्राप्तपितृलोकरूपपितुः श्राद्धम् अकृतसपिण्डीकरणस्य तथाविधपितृत्वाभावात् अतएवैतन्न्यायमूलकमेवाश्वलायनगृह्यपरिशिष्टेऽपि "पितृशब्दं न युञ्जीत पितृहा चोपजायते" इत्युक्तम् अतएव विष्णुना "प्रेतस्य नाम गोत्राभ्यां दत्ताक्षय्योदकेषु"। इत्यत्र प्रेतनामगोत्राभ्यामित्यनेन प्रेतस्येत्युक्तं न तु सम्बन्धिन इत्युक्तं ततश्च मन्त्रे प्राप्तपितृलोकोपाधिक एव पितृपदस्थाने प्रेतपदोहो न तु अग्निस्वात्ताद्युपाधिके एवमभिलापवाक्येऽपि सम्बन्धित्वेन नोल्लेखः किन्तु प्रेतत्वेन

असम्बन्धिनोऽपि मठब्राह्मणादेरपि प्रेतश्राद्धाधिकारित्वात्। अतएव शातातपेनापि "प्रेतान्तनामगोत्राभ्यमुत्सृजेदुपतिष्ठताम्" इत्युक्तम् अत्र प्रेतस्यान्तः प्रेतान्तो न तु सम्बन्धिवाचकस्यान्तः न वा मैथिलोक्तो बहुव्रीहिस्तस्य तत्पुरुषापेक्षया जघन्यत्वात् प्रेतपदस्य सम्बन्धिस्थानीयत्वेन तत्पुरुषस्यैव युक्तत्वाच्च। ततश्च प्रेतान्तनाम च गोत्रञ्च इति द्वन्द्वः अतएव तर्पणे विष्णुः "अपश्च सर्वे शवस्पर्शिनो गत्वा पितृपदस्थाने प्रेतपदोहेन द्वितीयान्तं तर्पयेयुः पितृशब्दोच्चारणे पितृहा भवति" इति एतेषां वचनानां न्यायमूलकत्वात् सांवत्सरिकश्राद्धे एकोद्दिष्टविकृतीभूतेऽपि प्राप्तपितृलोकोपाधिकपितृपदवन्मन्त्रेऽभिलापे च सम्बन्धिबोधकपितृत्वेनैवोल्लेखः। एवञ्च देवताभ्यः पितृभ्यश्चेत्यत्र न प्रेतपदोहः पितृपदस्य दिव्यपितृपरत्वात् एवं नैकवचनोहोपि तथा मधुद्यौरस्तु नः पितेत्यस्य द्यौः स्वर्गः पिता पितेव सर्वस्याधिगम्यत्वात् मध्वस्तु मधुमयी भवत्विति भाष्यव्याख्याने। द्यौरिति पितेति पदयोः सामानाधिकरण्यं प्रतीयते अत्र च द्युत्वपितृत्वयोर्भेदेऽपि सामानाधिकरण्येनाभेदावगमात् दिवः पितृसाधर्म्यप्राप्तिरिति पितृपदं पितृतुल्यपरं न तु जनकपरं प्राप्तपितृलोकपरं वेति तेन अत्र मन्त्रे पितेत्येव वक्तव्यं न तु प्रेतपदोहः न वा पितृशब्दं न युञ्जीतेत्यनेन निषेधः एवमामावेति मन्त्रे पितरेत्यत्र नोहः यदाहं श्राद्धं करोमि तदा मातरपितरावागच्छतामित्यनुव्रजने क्रियमाणे श्राद्धफलस्य प्रार्थनीयत्वात् एवं वृद्धिश्राद्धेऽप्येतेषु नान्दीमुखविशेषणं न देयमेवेति अन्यत्र सर्वत्रोत्सर्गवाक्ये मन्त्रे च पितृपदप्रयोगनिषेधात् प्रेतपदोहः कार्य्यः।

अत्रैकोद्दिष्टे गोभिलानुक्तो निषेधोऽभिधीयते। यथा विष्णुः। "एकवन्मन्त्रानूहेतैकोद्दिष्टे" इति एकवत् एकवचनवदुयाथ

स्यात्तथोहेत अपूर्वोत्प्रेक्षणमूह इत्युक्तेन पूर्वप्राप्तैकवचनान्तरत्वकल्पने बहुवचनान्तान्मन्त्रानविकृतान् कुर्य्यात् एकस्मिन् पितरि बहुवचनस्यासमवेतार्थत्वात् प्रकृतावर्थप्रकाशनाख्यदृष्टप्रयोजनकस्य मन्त्रस्य विकृतौ बहुवचनस्थाने एकवचनोहः कर्त्तव्य इति न्यायमूलमिदं वचनम्। यथा पवित्रेस्थो वैष्णव्यावित्यत्र पवित्रमसि वैष्णवीति न चात्र पवित्रमसि वैष्णव्य इति पितृदयितोक्तं युक्तं पवित्रेस्थो वैष्णव्याविति मन्त्रस्य हे पवित्रे युवां विष्णुदेवताके स्थः भवथः स्त्रीलिङ्गत्वं छान्दसमिति सायनाचार्य्यव्याख्याने गुणविष्णुनापि तथा व्याख्याने सम्बुद्ध्यन्तता प्रतीतेः एवं विष्णोर्मनसा पूतेस्थ इत्यत्रापि पूतमसीति। "अत्र पितरो मादयध्वं यथा भागमावृषायध्वम्" इति मन्त्रे अत्र प्रेत मादयस्व यथा भागमावृषायस्वेत्यूह्यम्। प्रार्थनार्थकलृतीयलकारीयमध्यमपुरुषबहुवचनस्थाने तदेकवचनस्यैव ऊह्यत्वात् न तु भूतार्थकचतुर्थलकारीयमावृषायथा इत्यनिरुद्धभट्टोक्तो युक्तः अतएव श्रीदत्तादिभिरपि मादयस्वेत्युक्तम् अमीमदन्त पितर इत्यत्रामीमदत् प्रेतेति वृषायिषतेत्यत्र वृषायिष्टेति एतपितर इत्यादि पिण्डार्थावाहनमन्त्रे एहि प्रेतेति सोम्यास इत्यत्र सोम्येति दत्तास्मभ्यमित्यत्र देह्यस्मभ्यमिति नियच्छतेत्यत्र नियच्छेति नमोव इत्यादि मन्त्रेषु पितर इति स्थानचतुष्टये प्रेतेत्यूह्यम्। एवं व इत्यत्र ते इति आशीः प्रार्थने येभ्य इत्यत्र यस्मै इति तेषामित्यत्र तस्ये त्यूह्यम्। एतद्वः पितर इत्यत्र तु प्रेता इति विकृतावूहोनतु बहुवचनस्य "एतद्वः पितरो वास इति जल्पने पृथक् पृथक्" इति ब्रह्मपुराणेन प्रकृतावेव पार्वणे पित्रादिषु प्रत्येकमेतद्वः पितर इति बहुवचनान्तमन्त्रप्रयोगात् अत्रानर्थक्येन तद्विकृतावेकोद्दिष्टेऽप्यसमवेतार्थं बहुवचनस्यैव युक्तत्वात् ततश्च प्रकृतौ समवेतार्थ-

स्यैव विकृतावूहः सांवत्सरिकेत्वेकवचनस्यैवोहो न तु पितृपदस्य तत्र प्राप्तपितृलोकत्वेन तस्यैव युक्तत्वात्। स्मृतिः। "प्रेतश्राद्धे यदुच्छिष्टं गृहे पर्य्युषितञ्च यत्। दम्पत्योर्भुक्तशेषञ्च न भुञ्जीत कदाचन"॥ उच्छिष्टं पाकपात्रेऽवशिष्टं गृहे उपरागे पर्य्युषितं स्थितं दम्पत्योराश्रमस्वामिनोर्भोजनानन्तरं पाकस्थाल्यामवशिष्टमिति श्राद्धचिन्तामणिः। यत्तु देवलवचनम् "एकोद्दिष्टस्य शेषन्तु ब्राह्मणेभ्यः समुत्सृजेत्। पश्चात् स्वयञ्च भुञ्जीत पुनर्मङ्गलभोजनम्" इति तस्यैकोद्दिष्टशेषं ब्राह्मणेभ्यः समुत्सृजेत् नत्ववशेषयेत् पुनर्मङ्गलभोजनं पाकान्तरकृतान्नं भुञ्जीतेत्यन्वयः।

अथाशौचान्तद्वितीयदिन आद्यश्राद्धात् पूर्वंकृत्यमाह देवलः। 'अघाहः सु निवृत्तेषु सुस्नाताः कृतमङ्गलाः। आशुच्याद्विप्रमुच्यन्ते ब्राह्मणान् स्वस्तिवाच्य च" मङ्गलं स्वशाखोक्तशान्त्युदक गोहिरण्यादिस्पर्शः जलादिस्पर्शमाह मनुः। विप्रः शुद्ध्येदपः स्पृष्ट्वा क्षत्रियो वाहनायुधम्। वैश्यः प्रतोदं रश्मीन् वा यष्टिं शूद्रः कृतक्रियः"। अशौचकालोत्तरं कृतस्नान इति मिताक्षरा अत्राघाहः सु निवृत्तेष्वित्यनेन एकादशाहादेरशौचान्त द्वितीयाहत्वं सूचितम्। सुस्नाता इत्यादिना विप्रः शुद्ध्येदपः स्पृष्ट्वेत्यादिना च यथाशक्तिसमुच्चय विकल्पाभ्यां तत्तत्करणेन वैदिककर्म्मार्हतेति।

आद्यश्राद्धकालमाह याज्ञवल्क्यः। "मृताहनि तु कर्त्तव्यं प्रतिमासन्तु वत्सरम्। प्रति संवत्सरञ्चैवमाद्यमेकादशेऽहनि"। एकादशेऽहनीति स्वस्व शौचान्तद्वितीयदिनोपलक्षणम्। "क्षत्रादिः सूतकान्ते तु भोजयेदयुजो द्विजान्" इति मत्स्यपुराणैकवाक्यत्वात्। आद्यं षोड़शश्राद्धानामादिभूतम्। तथा च छन्दोगपरिशिष्टम्। "श्राद्धमग्निमतः कुर्य्यात् दाहा-

देकादशेऽहनि। ध्रुवाणि तु प्रकुर्वीत प्रमीताहनि सर्वदा। द्वादशप्रतिमास्यानि आद्यं षाण्मासिके तथा। सपिण्डीकरणञ्चैव इत्येतत् श्राद्धषोड़शम्। एकाहेन तु षण्मासा यदा स्युरपि वा त्रिभिः। न्यूनाः संवत्सराश्चैव स्यातां षाण्मासिके तदा"॥ अग्निमतः श्रौताग्निमतो दाहादेकादशेऽहनि श्राद्धं कर्त्तव्यं तस्य दाहावधिदशाहाशौचित्वात्। अन्येषान्तु मरणावधि। तथाच शङ्खः। "मरणादेव कर्त्तव्यं संयोगो यस्य नाग्निना। दाहादूर्द्ध्वमशौचं स्याद् यस्य वैतानिको विधिः"॥ वैतानिकः श्रौतो होमः तस्मादग्निपदं श्रौताग्निपरम्। ततश्च केवलस्मार्त्ताग्निमतो निरग्नेश्च मरणादेवाशौचम्। ध्रुवाणि एतानि षोड़शश्राद्धानि नित्यानि सर्वदा मृतधनालाभेऽपि प्रमीताहनि मृततिथौ। आद्यश्राद्धषाण्मासिकश्राद्धद्वयेतरश्राद्धानि कार्य्याणि। आद्यश्राद्धस्यैकादशाहे विधानात् षाण्मासिकयोस्तु कालान्तरविधानात् अत्राशौचान्तद्वितीयदिवसीयाद्यश्राद्धस्यादिभवत्वसमाख्यानुरोधेन तदुत्तरकर्त्तव्यमासिकतिथेर्मृततिथित्वानुपपत्त्या तत् सजातीयत्वमेव प्रतीयते। तेन प्रथममृततिथिं विहायान्यमृततिथिमादाय मासिकादिसिद्धिरिति। एवञ्च एकाहेन तु षण्मासान्यूना इत्यनेन मृततिथिपूर्वतिथिः प्रतीयते। एवं त्रिभिरित्यत्रापि तथा संवत्सरस्याप्येकाहादिन्यूने अत्र संवत्सरकर्त्तव्यस्यापि षाण्मासिकत्वं द्वितीयषण्मासभवत्वान्नानुपपन्नम्। संवत्सराभिधानन्त्वादिमध्याधिमासयुक्तप्रथमाब्दस्य द्वादशमासाः संवत्सरः क्वचित् त्रयोदशमासाः संवत्सर इति श्रुत्यनुसारेण त्रयोदशमासघटितत्वात् त्रयोदशमास एव द्वितीयषाण्मासिककरणाय कालः सप्तममासकर्त्तव्यस्य षाण्मासिकत्वं "षष्ट्या तु दिवसैर्मासः कथितो वादरायणैः" इत्यनेनाविरुद्धम्। ननु षोड़शश्राद्धगणने

द्वादशमासिकत्वमुक्तं कथं मलमासयुताब्दे त्रयोदशमासिकत्वमिति चेन्न "संवत्सरस्य मध्ये तु यदि स्यादधिमासकः। तदा त्रयोदशश्राद्धं कार्य्यं तदधिकं भवेत्"॥ इति सत्यव्रतवचनेन द्वादशमासिकादधिकं त्रयोदशमासिकं श्राद्धमित्युक्तेः। एतद्वचनं न्यायमूलकम् एवं मृताहनि प्रतिमासं श्राद्धं कुर्य्यात् "मृताहनि तु कर्त्तव्यं प्रतिमासन्तु वत्सरम्" इति वचनद्वयेन पूर्व्वोक्तश्रुतिप्राप्तत्रयोदशमासात्मकं संवत्सरं व्याप्य मृततिथेर्मृततिथिं यावच्चान्द्र इत्युक्त्वा तत् प्रतिमासकर्त्तव्यमासिकानुरोधेन तत्पक्षीय तत्तत्तिथिषु श्राद्धं बोधयता इति अर्थापत्त्या वैशाखादिमृतस्यान्यमासिकं तन्मासीय तत्पक्षीय तत्तत्तिथिषु कर्त्तव्यमिति बोधनात् मध्येऽधिमासपाते द्वादशे मासि मृतमासीयतिथ्यप्राप्त्या वर्षान्तविहितस्य मासिकस्य सपिण्डनस्य चाप्राप्तेः। एवमाद्याधिमासेऽपि अतएवाद्याब्देऽधिमासपातेऽपि लघुहारीतेन द्वादशमासे यद्द्वादशमासिकमित्युक्तं तदन्याधिमासविषयम्। अत्र द्वादशमासे मृतमासीय तत्तत्तिथिप्राप्तेः। यथा लघुहारीतः "प्रत्यब्दं द्वादशे मासि कार्य्या पिण्डक्रिया द्विजैः। क्वचित्त्रयोदशेऽपि स्यादाद्यं मुक्त्वा तु वत्सरम्॥ चक्रवत् परिवर्त्तेत सूर्य्यः कालवशाद् यतः। अतः सांवत्सरं श्राद्धं कर्त्तव्यं मासचिह्नितम्॥ मासचिह्नन्तु कर्त्तव्यं पौषमाघाद्यमेव हि। यतस्तत्र विधानेन मासः स परिकीर्त्तितः॥ असंक्रान्तेऽपि कर्त्तव्यमाब्दिकं प्रथमं द्विजैः। तथैव मासिकं पूर्व्वं सपिण्डीकरणन्तथा॥ गर्भे वार्द्धुषिकत्वे च मृतानां पिण्डकर्म्मसु। सपिण्डीकरणे चैव नाधिमासं विदुर्बुधाः॥ सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं यत् किञ्चित् श्राद्धिकं भवेत्। इष्टं वाप्यथवा पूर्त्तं तन्न कुर्य्यान्मलिम्लुचे"॥ पिण्डक्रिया सांवत्सरिकश्राद्धं क्वचिन्मलमासयुताब्दे आद्यवार्षिकन्तु न

त्रयोदशे मासि किन्तु द्वादशे मासीत्यर्थः। ननु "यस्मिन्राशिगते भानौ विपत्तिं यान्ति मानवाः। तेषां तत्रैव कर्त्तव्या पिण्डदानोदकक्रिया"॥ इति सत्यव्रतेन सौरमासविशेषचिह्नितमृताहे श्राद्धं विहितम्। ततश्च त्रयोदशे मासि तत्करणे मृताह एव श्राद्धं न कृतं स्यादित्याह चक्रवदिति राशिचक्रे चक्रवत् परिभ्रमन् सूर्य्यो गतेर्मन्दत्वामन्दत्वाभ्यां कदाचिदेकराशिभोगसमाप्तावपि मृततिथिं न स्पृशति तिथिद्वयं वा एकराशौ स्पृशति यदा न स्पृशति तदा श्राद्धलोपः स्यात् यदा चोभयं स्पृशति तदा संशयः स्यादतः सौरमासचिह्नितं श्राद्धं न कर्त्तव्यं किन्तु मुख्यचान्द्रमासचिह्नितं कर्त्तव्यम्। तथाच लघुहारीतः। "इन्द्राग्नी यत्र हूयेते मासादिः स प्रकीर्त्तितः। अग्नीषोमौ स्मृतौ मध्ये समाप्तौ पितृसोमकौ॥ तमतिक्रम्य तु यदा रविर्गच्छेत् कदाचन। आद्यो मलिम्लुचो ज्ञेयो द्वितीयः प्रकृतः स्मृतः॥ तस्मिंश्च प्रकृते मासि कुर्य्यात् श्राद्धं यथाविधि। तथैवाभ्युदयं कार्य्यं नित्यमेकं हि सर्वदा"॥ शुक्लप्रतिपदीन्द्राग्नियागः कृष्णप्रतिपद्यग्नीषोमयागः। अमावास्यायां पितृसोमयागः। एतेषां प्रमाणं मलमासतत्त्वेऽनुसन्धेयम्। अत्रादिमध्यसमाप्तिकीर्त्तनात् शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्त एव मासपदस्य शक्तिः प्रतीयते। ततश्च तथाविधं मासमभिधाय चक्रवदित्यभिधानेन सौरे दोषं प्रदर्श्य दर्शान्त एव मासि सांवत्सरिकं कार्य्यमित्युक्तं तत्रैकस्यास्तिथेर्द्वित्वलोपयोरभावात्। तच्च दर्शान्तस्यानेकत्वात् कुत्र श्राद्धमित्यनध्यवसाये मासविशेषचिह्नितमाह पौषमाघाद्यमिति स पौषादिः कीदृक् तस्य चान्द्रे वा कथं शक्तिरित्यत आह यतस्तत्र विधानेनेति विधानेन श्रुत्यादिना। तथाच श्रुतिः "सा वैशाखस्यामावास्या या रोहिण्या सम्ब-

ध्यते" इति अत्र वृषराशिभोग्यरोहिणीनक्षत्रयुक्तामावास्या वैशाखस्येति प्रतिपादयन्ती श्रुतिः चान्द्र एव शक्तिं बोधयति सौरे वैशाखे तदसम्भवात् तथाहि "सूर्य्याचन्द्रमसोर्यः परः सन्निकर्षः सामावास्या" इति गोभिलाच्चन्द्रार्कयोरेकराश्यवस्थानममावास्येति वृषस्थरवावेव रोहिणीयुक्तवैशाखस्यामावास्यासम्भवात् कृत्यचिन्तामणौ व्यासः। "मीनादिस्थो रविर्येषामारम्भप्रथमक्षणे। भवेत्तेऽब्दे चान्द्रमासाश्चैत्राद्याः द्वादश स्मृताः"॥ येषां शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तानाम् आरम्भप्रथमक्षणे आद्यक्षतिरूपस्यारम्भस्याद्यसमये मीनमेषादिस्थो रविर्भवेत् अब्दे वर्षे त एव शुक्लप्रतिपदादिदर्शान्ताश्चान्द्रमासाश्चैत्रवैशाखाद्यसंज्ञकाः द्वादशमासाः स्मृताः द्वादशेति न पुनर्मलमासेऽपि संज्ञान्तरं किन्तु द्विश्चैत्रादिरिति। तथाच ज्योतिषे "मिथुनस्थो यदा भानुरमावास्याद्वयं स्पृशेत्। द्विराषाढः स विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे"॥ त्रयोदशा अपि द्वादशसंज्ञका इति व्यासेनौपदेशिकी शुक्लादिमासे चैत्रादेः शक्तिरभिहितेति। अतएव श्राद्धविवेके मीनादिस्थरविप्रारब्धशुक्लप्रतिपदादिदर्शान्तश्चैत्रादिरिति। एवञ्च "असंक्रान्तमासोऽधिमासः स्फुटः स्यात् द्विसंक्रान्तमासः क्षयाख्यः कदाचित्। क्षयःकार्त्तिकादित्रये नान्यदा स्यात्तदा वर्षमध्येऽधिमासद्वयं स्यात्" इति ज्योतिःशास्त्रोक्तक्षयमासे व्यासोक्तलक्षणसङ्गतिर्मलमासतत्त्वेऽनुसन्धेया। असंक्रान्त इति असंक्रान्ते मलमासे आब्दिकं प्रथकं सपिण्डीकरणं सपिण्डीकरणमिति पञ्चम्यर्थे प्रथमा। सपिण्डीकरणात् पूर्वं मासिकं प्रेतस्य कार्य्यं न तु सपिण्डीकरणात् परं प्राप्तपितृलोकस्य प्रतिमासविहितं पार्वणं कर्त्तव्यं गर्भे गर्भकृत्ये पुंसवनादौ वार्द्धुषिकृत्ये वैश्यस्य गोभिलाद्युक्ते पिण्डकर्म्मप्रेतपिण्डदानं पुनः सपिण्डीकरणग्रहणं

मलमासेऽपि सपिण्डीकरणापकर्षार्थं श्राद्धमेव श्राद्धिकं स्वार्थे ठक् यत् किञ्चिदित्यनेन पार्वणादिसकलश्राद्धनिषेधः। सामान्यतो निषेधेऽपि मघाश्राद्धादेः प्रतिप्रसवमाह माधवाचार्य्यधृतो व्यासः। "जातकर्म्मान्त्यकर्म्माणि नवश्राद्धं तथैव च। मघात्रयोदशीश्राद्धं श्राद्धान्यपि च षोड़श॥ चन्द्रसूर्य्यग्रहे स्नानं श्राद्धं दानं तथा जपः। कार्य्याणि मलमासेऽपि नित्यनैमित्तिकं तथा" इति। जातकर्म्मान्त्यकर्म्माणि जातकर्म्मान्नप्राशननाम करणानि मुख्यकालकर्त्तव्यानि। अन्यथा "नामान्नप्राशनं चौड़ं विवाहं मौञ्जिबन्धनम्। निष्क्रमं जातकर्म्मापि काम्यं वृषविसर्जनम्॥ अस्तं गते गुरौ शुक्रे बाले वृद्धे मलिम्लुचे। उपायनमुपारम्भं व्रतानां नैव कारयेत्"॥ इति गर्गवचनविरोधः स्यात् अतएव "नामान्नजातकर्म्माणि यथाकालं समाचरेत्। अतिपाते तु कुर्वीत प्रशस्ते मासि पुण्यदे"॥ इति गर्गवचनान्तरं सङ्गच्छते। वृषोत्सर्गे काम्येति विशेषणात् "अशौचान्तद्वितीयेऽह्नि यस्य नोत्सृज्यते वृषः। पिशाचत्वं ध्रुवं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि"॥ इति मैथिलधृतवचनबोधिताशौचान्तात् द्वितीयदिनविहितवृषोत्सर्गः कार्य्य इत्यर्थः। इष्टमग्निहोत्रादि पूर्त्तं खातादि। तथाच जातूकर्णः "वापीकूपतड़ागादिदेवतायतनानि च। अन्नप्रदानमारामाः पूर्त्तमित्यभिधीयते॥ अग्निहोत्रं तपः सत्यं वेदानां चानुपालनम्। आतिथ्यं वैश्वदेवश्च इष्टमित्यभिधीयते"॥ नित्यमेकं हि सर्वदेति नित्यमेकं केवलं नित्यम् अहरहः क्रियमाणं श्राद्धं न नित्यनैमित्तिकं पार्वणश्राद्धादि अतएव नित्यस्य नित्यनैमित्तिकस्य च भेदमाह मार्कण्डेयपुराणम्। "नित्यं नैमित्तिकञ्चैव नित्यनैमित्तिकं तथा। गृहस्थस्य च यत्कर्म्म तन्निशामय पुत्रक॥ पञ्चयज्ञाश्रितं नित्यं यदेतत् कथितं

द्विज। नैमित्तिकं तथाप्यन्यत् पुत्रजन्मक्रियादिकम्। नित्यनैमित्तिकं ज्ञेयं पर्वश्राद्धादिपण्डितैः”॥ सर्वदा मलमासे प्रकृतमासेऽपि।

आद्यश्राद्धेति कर्त्तव्यतायां वराहपुराणम्। “आसनं चोपकल्पेत मन्त्रेण विधिपूर्वकम्”। मन्त्रस्तु “अत्रासने देवराजाभ्यनुज्ञातो विश्राम्यतां द्विजवर्य्यानुग्रहाय प्रसादये त्वासनं गृह्णपूतं ज्ञानाग्निपूतेन करेण विप्र” इति तथा “आवरणार्थञ्च तेच्छत्रं ब्राह्मणाय प्रदीयते। पश्चादुपानहौ दद्यात् पादस्पर्शकरे शुभे॥ सन्तप्तबालुकां भूमिमसिकण्टकितां तथा। सन्तारयति दुर्गाणि प्रेतं दददुपानहौ॥ तिलोपचारं कृत्वा तु विप्रस्य नियतात्मनः। नामगोत्रमुदाहृत्य प्रेताय तदनन्तरम्॥ शीघ्रमावाहयेद्भूमि दर्भहस्तोऽथ भूतले”॥ तच्छत्रं प्रेताय दत्तच्छत्रं प्रदीयते उत्तराप्रतिपत्तिः क्रियते। प्रेतमित्यस्य तु दददित्यभिसम्बन्धात् सम्प्रदानत्वेऽपि सन्तारयतीति सम्बन्धेन कर्म्मतैव। “अपादानं सम्प्रदानं तथाधिकरणं पुनः। करणं कर्म्म कर्त्ता च द्वयोर्योगे परं भवेत्” इत्युक्तेः। भूमीति पृथिव्याः सम्बोधनम्। मन्त्रस्तु “इहलोकं परित्यज्य गतोऽसि परमां गतिम्” इति अयञ्च स्त्री श्राद्धेऽविकृत एव पठनीयः एवमावाहिते गन्धपुष्पादीनि समर्पयेत्। गन्धमन्त्रस्तु। “सर्वः सुगन्धः” इति। पुष्पमन्त्रस्तु। “श्रियादेव्या” इति। धूपमन्त्रस्तु। वनस्पतिरस इत्यादि इदञ्च गन्धादिसमर्पणं प्रेताय गन्धादिदानानन्तरं ब्राह्मणे कार्य्यं लघुहारीतः। “सपिण्डीकरणं यावत् प्रेतश्राद्धानि षोड़श। पक्वान्नेनैव कार्य्याणि सामिषेण द्विजातिभिः”॥ बृहस्पतिः। “वस्त्रालङ्कारशय्याद्यं पितुर्यद्वाहनायुधम्। गन्धपुष्पैः समभ्यर्च्य श्राद्धभोक्त्रे निवेदयेत्। भोजनस्थानेकविधिं कारयेद्व्यञ्जनानि च”। जाबालिः।

"पितृयज्ञन्तु निर्वर्त्त्य मासिके श्राद्ध एव तु। श्राद्धं प्रतिरुचौ चैव मातापित्रोर्मृताहनि। असपिण्डीकृतं प्रेतमेकोद्दिष्टेन तर्पयेत्"॥ पितृयज्ञं पितृतर्पणं निर्वर्त्त्य क्रियमाणे श्राद्धे ऽहरहः क्रियमाण इत्यर्थः। तेनाम्बुघटश्राद्धे मृताहविहित मासिके तथा विशिष्टतीर्थद्रव्यादिप्राप्तौ प्रेतश्राद्धकरणे छायां मातापित्रोर्मृताहनि च असपिण्डीकृतं प्रेतमेकोद्दिष्टेन तर्पयेत्।

षोड़शश्राद्धानां यत् पतितं कृष्णैकादश्यां तत् कर्त्तव्यम्। तथा च लघुहारीतः "श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने मृताहाऽविदिते तथा। एकादश्यां प्रकुर्वीत कृष्णपक्षे विशेषतः"। विशेषत इत्यमावास्यापेक्षया तस्या अपि विघ्नादौ विधानात्। यथा हेमाद्रिधृतं षट्त्रिंशन्मतं "मासिके चाब्दिके त्वह्नि संप्राप्ते मृतसूतके। वदन्ति शुद्धौ तत् कार्य्यं दर्शे चापि विचक्षणैः"॥ राजमार्त्तण्डे। "श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने अन्तरामृतसूतके। एकादश्यां प्रकुर्वीत कृष्णपक्षे विशेषतः। श्राद्धविघ्ने समुत्पन्ने मृतस्याविदिते तथा। अमावास्यां प्रकुर्वीत वदन्त्येके मनीषिणः"। अत्र मृतसूतकोपादानात् ऋष्यशृङ्गवचनेऽशौचपदमेतत् परम्। यत्त्वन्तरामृतसूतकेऽप्येकादश्यां श्राद्धविधानं तत् "दैवे पितॄणां श्राद्धे तु अशौचं जायते यदि। तदशौचव्यतीते तु तेषां श्राद्धं विधीयते। शुचीभूतेन दातव्यं या तिथिः प्रतिपद्यते। सा तिथिस्तस्य कर्त्तव्या नत्वन्या वै कदाचन"॥ इति ऋष्यशृङ्गवचनविरोधात् अशौचान्तदिने मलमासादिरूप विघ्नान्तरेण तदकरणे बोध्यम्। अतएव श्राद्धविवेके अपाटवाद्य शौचाभ्यामपि पतितमेकोद्दिष्टमेकादश्यामशौचान्ते च मलमासे न कर्त्तव्यं किन्तु मलमासाव्याप्त कृष्णैकादश्यामेवेत्युक्तम्। यत्तु "जातकर्म्मणि यच्छ्राद्धं नव-

श्राद्धं तथैव च। प्रातसंवत्सरं श्राद्धं मलमासेपि तत् स्मृतम् । प्रति संवत्सरं श्राद्धमशौचात् पतितन्तु यत् मलमासेऽपि तत् कार्य्यमिति भागुरिभाषितम्” इति ज्योतिर्वचनद्वयं तत्र पूर्ववचनशेषार्द्धस्य “असंक्रान्तेऽपि कर्त्तव्यमाब्दिकं प्रथमं द्विजैः” इति लघुहारीत वचनैकवाक्यतयाद्याधिमासविषयत्वात्। ‘‘मलमासमृतानान्तु श्राद्धं यत् प्रतिवत्सरम्। मलमासेऽपि कर्त्तव्यं नान्येषान्तु कदाचन” इति कालमाधवीयधृत पैठीनसिवचनस्य मलमासमृतविषयत्वाच्च परवचनेऽपि तदुभय श्राद्धस्याशौचपतितस्य मलमासाभ्यरे कर्त्तव्यतोक्ता न तु तद्भिन्नस्य अनुपस्थितस्य तस्य च राजमार्त्तण्डे नैकादश्यां कर्त्तव्यतोक्तेः मृताहाविदितेऽपि ‘अविज्ञातमृते अमावास्यायां श्रवण दिवसे वा” इति प्रचेतोवचनोक्तामावास्यापेक्षया विशेषत इत्यनेन कृष्णैकादश्याः प्राधान्यं प्रतीयते मृतशब्दोऽत्र मृताहपरः अनिश्चितमरणस्यौर्द्ध्वदेहिकाभावादिति श्राद्धविवेकः मृताहनीत्येव सूत्रे पाठो मैथिलपाश्चात्यदाक्षिणात्यानाम् अत्रामावास्यायामिति गमनमाससम्बन्धिन्यां “प्रवासवासरे ज्ञेयं तन्मासेन्दुक्षयेऽथवा” इति स्मरणादिति मिताक्षरा एतच्च मृतदिनमासयोरज्ञाने वक्ष्यमाण बृहस्पतिवचनात्। मृतमासे ज्ञाते मरणदिनाज्ञाने तु तदीयामावास्यायां तथा च हेमाद्रिकालादर्शनिर्णयामृत नव्यवर्द्धमानधृतानि वचनानि। बृहस्पतिः “न ज्ञायते मृताहश्चेत् प्रोषिते संस्थिते सति। मासश्चेत् प्रतिविज्ञातस्तद्दर्शं स्यान्मृताहनि”। मृताहनीत्यत्र यत् कर्त्तव्यमिति शेषः। प्रोषित इत्यज्ञानकारणोपलक्षणम्। मासाज्ञाने तिथिज्ञाने तु स एव “यदि मासो न विज्ञातो विज्ञातं दिनमेव च। तदामार्गशिरे मासि माघे वा तद्दिनं भवेत्”। कालादर्शनिर्णयामृतयोर्मार्गशिर इत्यत्राषाढ़क

इति पाठः। भविष्यपुराणम्। "दिनमेव तु जानाति मासं नैव तु यो नरः। मार्गशीर्षे तथा भाद्रे माघे वा तद्दिनं भवेत्"। एषु मृताहावधारणसान्निध्यान्मासविशेषो ग्राह्यः। मृतदिनमासयोरज्ञाने तु बृहस्पतिः। "दिनमासौ न विज्ञातौ मरणस्य यदा पुनः। प्रस्थानदिनमासौ तु ग्राह्यौ पूर्वोक्तया दिशा"॥ पूर्वोक्तया दिशेति यथा मरण दिनमासज्ञाने तत् ग्रहणम्। तयोरेकतराज्ञाने यथाव्यवस्थापितं तथात्रापीति तेन प्रस्थानदिनमासज्ञाने तत् ग्रहणम्। प्रस्थानमासमात्रज्ञाने तदीयामावास्या ग्राह्या। प्रस्थानतिथिमात्रज्ञाने तु मार्गशीर्षादौ तत्तत्तिथिर्ग्राह्येति। सन्देहेत्वाह यमः। "गतस्य न भवेद्वार्त्ता यावद्द्वादशवार्षिकी। प्रेतावधारणन्तस्य कर्त्तव्यं सुतबान्धवैः। यन्मासि यदहर्यातस्तन्मासि तदहः क्रिया। दिनाज्ञाने कुहूस्तस्य आषाढस्याथवा कुहूः"॥ एवञ्च मरणप्रस्थानदिनमासाज्ञाने श्रवणदिवसस्य विषयः। प्रभासखण्डं "मृतस्याहो न जानाति मासं वापि कथञ्चन। तेन कार्य्यममावास्यां श्राद्धं माघेऽपि मार्गके"॥ कथञ्चनेति मरणप्रस्थानदिनमासस्वरूपेण श्रवणदिनस्वरूपेण च केनाप्यज्ञाने यत्र सर्वत्र तत्तन्मासीय कृष्णैकादश्यभाव एव अमावास्या ग्राह्या श्राद्धविघ्न इति वचनात्। अन्यथा तद्वचनस्य मृताहाविदित इत्यस्य विषयानुपपत्तेः। तस्याह्नामावास्यापेक्षया प्राधान्यं तद्वचने विशेष इत्यभिधानात्।

पतितैकादशाहादिश्राद्धानां कृष्णैकादश्यकरणे श्राद्धान्तरदिने कर्त्तव्यतामाह हेमाद्रिधृतो देवलः। "एकोद्दिष्टे तु सम्प्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते। मासेऽन्यस्मिंस्तिथौ तस्मिंस्तदा दद्यात् प्रयत्नतः"। इत्यत्र लघुहारीतवचने मृताहाविदित इत्यादिना षण्मासिकसांवत्सरिकश्राद्धमेकादश्यां विहितम्

उपस्थितत्वाद्विघ्नेऽपि तस्यैव श्राद्धस्य एकादश्यां कर्त्तव्यत्वं प्रतीयते नत्वमावास्याश्राद्धादेरनुपस्थितत्वात्। एवञ्च ऋष्यशृङ्गवचने देये पितॄणां श्राद्धेऽशौचमित्यत्र देय इत्यनेन यस्य श्राद्धस्य विघ्नेऽप्यवश्यन्देयत्व मुक्तं तस्यैवाशौचान्ते कर्त्तव्यता नत्वमावास्याश्राद्धादेः। तत्राशौचोत्तरश्राद्धप्रशस्तकालप्राप्ततिथावेव श्राद्धमाह शुचीभूतेन दातव्यमित्यादिना। अथा हि दातव्यमित्यत्र शयनीयवत् श्राद्धं दातुमर्हत्यस्मिन् काल इति कृत्ययुटोऽन्यत्रापीति अर्हतावित्यधिकृत्य शकि च कृत्या इत्याभ्यां सूत्राभ्यामर्हाधिकरणे कृत्यप्रत्ययः। अन्यथा पूर्ववचनपरार्द्धेन पौनरुक्त्यापत्तेः। ततश्च दातव्यं श्राद्धपूज्यकालं मध्याह्नादिकं प्राप्य या तिथिः शुचीभूतेन प्राप्यते सा तिथिस्तस्य श्राद्धस्य कर्त्तव्या करणार्हा नत्वन्या कृष्णैकादशी अशौचरूपविघ्ने प्रतीक्षणीया। ततश्च शुचीभूताव्यवहितदिवसीयश्राद्धप्रशस्तकालप्राप्ततिथिखण्डे नियमादप्रशस्तकालेऽपि तत्तत्तिथिखण्ड एव श्राद्धं न तु शुक्लपक्षेऽपि तत् द्वितीयखण्डेऽनुपस्थितेः। एवञ्चाशौचान्ते सङ्गवाभ्यन्तरसमाप्य तिथौ श्राद्धं मैथिलोक्तं न युक्तम् किन्तु तदुत्तरप्रशस्तकालप्राप्ततिथावेव नन्वशौचे तु व्यतीते वै इति वचनादशौचान्त इति प्रयोक्तव्यमिति श्राद्धचिन्तामणिः। नैवं यथा मृताहनि तु कर्त्तव्यमित्यादिना मृताहादेर्निमित्तत्वेऽपि तत्तिथिविशेषत्वे नैवोल्लेखः। यथा वा तत्र विघ्ने एकादश्यादिविधानादेकादश्यादिरूपेणैव निमित्तत्वात्तथैवोल्लेखः। तथात्रापि तदशौचे व्यतीते त्वित्यादिनाऽशौचान्तविहिते श्राद्धे शुचीभूतेन दातव्यमित्यादिना श्राद्धप्रशस्तकाले प्राप्ततिथिविशेषस्यैव निमित्तत्वात्तथैवोल्लेखो नत्वशौचान्तत्वेन व्यवहारोऽपि तथा।

अथ सपिण्डीकरणम्। तत्र गोभिलः। "पूर्णे संवत्सरे

षण्मासे त्रिपक्षे यदहर्वा वृद्धिरापद्येत तदहश्चत्वार्युदकपात्राणि सतिलगन्धपुष्पोदकानि पूरयित्वा त्रीणि पितॄणामेकं प्रेतस्य प्रेतपात्रं पितृपात्रेष्वासिञ्चति। ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम्। ये समानाः समनसो जीवाजीवेषु मामकाः तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिन् लोके शतं समाः”। इति एतेनैव पिण्डो व्याख्यात इति। पूर्णे संवत्सरे इति मुख्यकल्पः। तदशक्तौ नवमो मासः संवत्सरान्ते विसर्जनं “नवममासमित्येके” इति पैठीनसिवचनात्। तदशक्तौ षष्ठो मासः। तत्राप्यशक्तौ त्रिपक्षः तत्राप्यशक्तौ अशौचापगमे प्रथममासस्य द्वादशभिर्दिनैर्द्वादशमासिकानि श्राद्धानि निर्वर्त्त्य त्रयोदशाहः सपिण्डीकरणकालः शूद्रस्य द्वादशाहो न तु त्रयोदशाह एव मासिकार्थवत् द्वादशाहश्राद्धं कृत्वा त्रयोदशेऽह्नि वा तत् कुर्य्यात् मन्त्रवर्ज्जं हि शूद्राणां द्वादशेऽह्नीति विष्णुवचनात्। मासिकार्थवदिति मासिकार्थो मासि मासि क्रियमाणश्राद्धप्रयोजनं प्रेताप्यायनादि तत् युक्तं द्वादशाहक्रियमाणश्राद्धमित्यर्थः। यत्र त्वेकादशमासाभ्यन्तरेऽधिमासपातस्तत्र त्रयोदशसु दिनेषु त्रयोदशमासिकानि कृत्वा चतुर्दशेऽह्नि सपिण्डनं कार्य्यमिति “संवत्सराभ्यन्तरे यद्यधिमासो भवति तदा मासिकार्थं दिनमेकं वर्द्धयेत्” इति विष्णुवाक्यात् शूद्रस्य त्रयोदशदिनेषु त्रयोदशमासिकानि त्रयोदशेऽह्नि सपिण्डनं दृष्टपरिकल्पनान्यायात्। एवञ्च श्राद्धवृद्धिमात्रं न दिनवृद्धिरिति मिश्रोक्तं हेयम्। तद्धृतविष्णुसूत्रे दिनमेकं वर्द्धयेदिति श्रुतेः। श्राद्धाधिक्यमाह सत्यव्रतः “संवत्सरस्य मध्ये तु यदि स्यादधिमासकः। तदा त्रयोदशे श्राद्धं कार्य्यन्तदधिकं भवेत्”। तत्राप्यशक्तौ प्रथममासस्यैकाह एव द्वादश-

मासिकसहितसपिण्डीकरणकालः। "मुख्यं श्राद्धं मासि मासि अपर्य्याप्तावृतुं प्रति। द्वादशाहेन वा कुर्य्यादेकाहे द्वादशाथवा"॥ इति मरीचिवचनात्। अपर्य्याप्तौ अशक्तौ ऋतुर्मासद्वयम्। अत्र कल्पे षष्ठमासिकदिने पञ्चममासिकं कृत्वा प्रथमषाण्मासिकं कृत्वा षष्ठमासिकं कार्य्यं तदानुत्कर्षन्यायात्। न तु तत् पूर्व्वं षाण्मासिकं व्युत्क्रमापत्तेर्न च पञ्चममासिकमपि पूर्व्वदिने मृततिथ्यभावात् एवमेव वाचस्पतिमिश्रः अपकर्षनिमित्तमाह व्याघ्रः "आनन्त्यात् कुलधर्म्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात्। अस्थितेश्च शरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते"॥ एतच्च द्वादशाहपदं शावाशौचान्तद्वितीयदिनमात्रपरमिति प्राचीनमैथिलाः अजहत् स्वार्थलक्षणया स्वजात्युक्ताशौचान्तद्वितीयदिनमात्रोपलक्षकमिति श्राद्धप्रदीपश्राद्धचिन्तामणौ। तद्द्वयमप्ययुक्तं "द्वादशाहेन वा कुर्य्यात्" इति मरीचिवचने "द्वादशाहे श्राद्धं कृत्वा त्रयोदशेऽह्नि वा कुर्य्यात्" इति विष्णुवचनाभ्यामेकवाक्यतया द्वादशाह इत्यस्य द्वादशदिनपरत्वात् कुलधर्म्माणामिति कुलधर्म्मः ज्योतिरागमादिसिद्धानन्तरभाविनाशपरचक्रभयोत्पन्नम्लेच्छदेशगमनादिभिर्निमित्तैरशौचापगमे द्वादशदिनानि षोड़शश्राद्धापकर्षकाल इति शूलपाण्युपाध्यायव्याख्यानात् मरीचिनैव एकाहे द्वादशाथवेति सामान्यत एव एकाहविधानाच्च। अतएव एकाहापेक्षया प्राशस्त्याभिधानमपि सङ्गच्छते अतएव प्रथममासस्य एकाह एव द्वादशमासिकसहितसपिण्डीकरणकाल इति श्राद्धविवेकः। अत्र यानि एकाह कर्त्तव्यतया द्वादशमासिकश्राद्धान्युक्तानि तानि शूद्रेणापि आद्यमासिकदिन एव कार्य्याणि। नत्वाद्यमासिकं कृत्वा तत्परदिने एकादशमासिकानीति ज्ञेयम्। एवञ्च तेषामपकर्षे तन्मध्यतदन्तकालकर्त्तव्यतया षण्मा-

सिकद्वयसपिण्डीकरणापकर्षः सिद्ध्यतीति सुधीभिर्भाव्यम्। यदहर्वा वृद्धिरिति वृद्धिराशास्यमानं पुंसवनादि। आपद्येत आसन्ना भवति तद्दिनेऽपि सपिण्डीकरणम्। तथाहि "प्रागावर्त्तनादह्नः कालं विद्यात्" इति गोभिलगृह्यसूत्रेण पुंसवनादिरूपवृद्धेर्यामद्वयाभ्यन्तरे विधानात् सपिण्डीकरणस्य चापराह्णे विधानात्तयोः कालयोरबाधाय वृद्धिपूर्वदिने अपकर्षः। ननु सपिण्डीकरणस्यापराह्णिकत्वे किं प्रमाणमिति-चेत् "अपराह्णे तु पैतृकम्" इत्युत्सर्गवचनम्। किञ्च "यद्यप्यदन्तकः पूषापैष्टमत्ति सदाचरुम्। अग्नीन्द्रेश्वरसामान्यात्तण्डुलोऽत्र विधीयते"॥ इति छन्दोगपरिशिष्टवचने यथा बहूनामनुरोधात्तण्डुलचरुर्नैकानुरोधात् पैष्टचरुः। "विरुद्धधर्मसमवाये भूयसां स्यात् सधर्मकत्वम्" इति जैमिनिसूत्रात् तद्वदत्रापि बहुदेवताकपार्वणानुरोधादेकोद्दिष्टकालबाध इति। एवञ्च संवत्सरमधिकृत्य "सपिण्डीकरणन्तस्मिन् काले राजेन्द्र तत् शृणु। एकोद्दिष्टविधानेन कार्य्यन्तदपि पार्थिव"॥ इति विष्णुपुराणीयमेकोद्दिष्टांशे तदिति कर्त्तव्यतापरं न तु तत्कालपरम्। तथाच परिशिष्टप्रकाशधृतम्। "श्राद्धद्वयमुपक्रम्य कुर्वीत सहपिण्डताम्। तयोः पार्वणवत् पूर्वमेकोद्दिष्टमथापरम्" इति॥ एवञ्च शुद्धितत्त्वलिखितस्यमन्तकोपाख्यानवत् वृद्धिं निश्चित्य कृतं सपिण्डीकरणं तदानीं विघ्नेन वृद्ध्यभावेऽपि वृद्ध्यारम्भकालान्तरं पूर्णसंवत्सरं प्राप्य पितृत्वप्रापकमिति न सपिण्डनान्तरम्। अत्र "श्वः कर्त्तास्मीति निश्चित्य दाता विप्रान्निमन्त्रयेत्"। इतिवन्निश्चित्येति उत्कटकोटिकसम्भावनोपलक्षणं भविष्यन्निमित्तस्य कर्म्मणः प्रत्यूहार्हत्वात्। एवञ्च वृद्धिश्राद्धं यदर्थं कृतं तत्कर्म्म चेत् विघ्नात्तद्दिने न क्रियते तदा दिनान्तरे तत् कर्म्मणि क्रियमाणे तदङ्गत्वात् पुनर्वृद्धि-

श्राद्धं कर्त्तव्यमेव। “प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत् क्रियते पुनः। तदङ्गस्याक्रियायान्तु नावृत्तिर्न च तत्क्रिया”॥ इति छन्दोगपरिशिष्टेन साङ्गकरणाभिधानात्। हेमाद्रिधृतं “पूर्णे संवत्सरे श्राद्धं षोड़शं परिकीर्त्तितम्। तेनैव च सपिण्डत्वं तेनैवाब्दिकमिष्यते”॥ अत्र पूर्णसंवत्सरक्रियमाणश्राद्धाद्यथोभयनिर्वाहः। तथापकृष्टसपिण्डनादप्युभयनिर्वाहान्न पूर्णसंवत्सरे आब्दिकान्तरं कार्य्यम्। एवञ्च पञ्चदशश्राद्धे कृतेऽप्युन्नेयम्। उदकपात्राणीति अर्घ्यार्थमुदकयुक्तपात्राणि। अत्र त्रीणि पितॄणामेकं प्रेतस्येति पाठक्रमदर्शनात् सर्वत्रछन्दोगानां यजुर्वेदिनाञ्च गृह्यानुरोधात् सपिण्डीकरणे प्रेतकर्म्मकरणं पितृकर्म्मपूर्वकं “तयोः पार्वणवत् पूर्वमेकोद्दिष्टमथापरम्” इति पूर्वलिखितवचने शाब्दक्रमदर्शनात् देवकृत्य-पितृकृत्ययोर्मध्ये प्रेतकृत्येन व्यवधानस्यायुक्तत्वाच्च एतेन “अथ सपिण्डीकरणं संवत्सरमेकं पिण्डमुद्दिश्य संवत्सरान्ते चत्वार्युदकपात्राणि प्रयुनक्ति तत्रैकं प्रेतस्य त्रीणि इतरेभ्यः” इत्याश्वलायनदर्शनात् सर्वशाखिनां सपिण्डीकरणे प्रेतादित्वं मैथिलोक्तं निरस्तम् एतद्वचनस्य तच्छाखिमात्रपरत्वात् किन्त्वर्घ्यदानपात्रे पाठक्रमाच्छाब्दक्रमस्य बलवत्त्वात् ब्रह्मपुराणे प्रेतार्घ्यदानानन्तरं “ततः पितामहादिभ्यः” इति शाब्दक्रमस्याबाधायार्घ्यपात्रेषु गन्धपुष्पदानपर्य्यन्तं पितृपूर्वकता उत्सर्गे तु प्रेतपूर्वकतेति तथा ब्रह्मपुराणं चतुर्भ्यश्चार्घ्यपात्रेभ्य एकं वामेन पाणिना। गृहीत्वा दक्षिणेनैव पाणिना च तिलोदकम्॥ सम्मार्जयित्वा पृथिवीं ये समाना इति स्मरन्। प्रेतविप्रस्य हस्ते तु चतुर्भागं जलं क्षिपेत्॥ ततः पितामहादिभ्यस्तन्मन्त्रैश्च पृथक् पृथक्। ये समाना इति द्वाभ्यां तज्जलन्तु समर्पयेत्॥ अर्घ्यन्तेनैव विधिना प्रेतपात्राच्च पूर्ववत्। तेभ्यश्चार्घ्यं निवेद्यैव पश्चाच्च

स्वयमाचमेत्" ॥ एकं प्रेतपात्रं वामेन अनन्तरं दक्षिणेन गृहीत्वेति सम्बन्धः । ये समाना इति मन्त्रद्वयं पठन् प्रेतपात्रस्थम् उत्सृष्टजलं कुशरेखात्रयेण चतुर्धा विभज्य भागमेकं प्रेतपात्रस्थं जलं क्षिपेत् दद्यात् उत्सृष्टजलपिण्डयोर्विभागे मन्त्रस्य करणत्वं व्यक्तमाह शातातपः । "निरूप्य चतुरः पिण्डान् पिण्डदः प्रतिनामतः । ये समाना इति द्वाभ्यामाद्यन्तु विभजेत्त्रिधा । एष एव विधिः पूर्वमर्घ्यपात्रचतुष्टये" ॥ ततः तदनन्तरं तन्मन्त्रैः पितामहादिभेदेन त्रिरावृत्तैर्या दिव्या इति मन्त्रैश्चकारात् पितामहाद्युत्सर्गवाक्यैरर्घ्यमुत्सृज्य ये समाना इति द्वाभ्यां मन्त्राभ्यामर्घ्यं पुष्पोदकं तज्जलं प्रेतपात्रस्थजलं तेनैव विधिना प्रत्येकं पूर्ववत् चतुर्भागरूपं प्रेतपात्रात् समर्पयेत् तेभ्यः पितामहादिभ्यस्त्रिभ्यस्तास्मिन्मिश्रितपुष्पतिलोदकरूपमर्घ्यं निवेद्य तद्ब्राह्मणहस्ते प्रक्षिप्य पश्चादाचामेदित्यर्थः तेन प्रेतब्राह्मणहस्ते उत्सृज्य दत्तस्यैवार्घ्यजलस्य तदवशिष्टजलस्य भागत्रयं पितामहादुत्सृष्टार्घ्यजलेषु मिश्रीकर्त्तव्यमिति प्रतीयते । अतएव दत्तस्यैव प्रेतपिण्डस्य मिश्रीभाव इति श्राद्धविवेकः । यच्च न च "अत्र दैवं भोजयेत् प्रागेवं दैवेऽर्घ्यमन्नाद्यञ्च दत्त्वा गन्धमाल्यैः पात्रमर्चयित्वा हुतशेषं पितृभ्यः पात्रेषु दद्यात्" इत्याश्वलायनवचने पितृपात्रे दैवं न मिश्रयेदिति कल्पतरुव्याख्यानानुरोधेन मैथिलोक्तं सर्वशाखिनान्तथाचरणं तन्न युक्तम् आश्वलायनेन काण्डानुशयस्योक्तात् बह्वृचानामेव तथा युक्तत्वात् न सामगयजुर्वेदिनोः तयोः पदार्थानुशयस्योक्तत्वात् अतएव श्राद्धसूत्रे समन्त्रये मन्त्रदर्शनात्तत्रैव मन्त्रान्वयः पितृदयितादावुक्तः । वस्तुतस्तु पौराणिकत्वात् देवताभ्य इत्यस्य पाठवत् साधारणस्मृतिकारशातातपोक्तत्वाच्च विभागेऽपि मन्त्रान्वयो युक्तः अतएव मैथिलैरपि तथा लिखितमिति ।

एवञ्च पार्व्वणे प्रागुक्तवचनेन शेषद्रव्येण पिण्डविधानात् तद्विकृतावपि सपिण्डीकरणे तन्नियमात्। यद्यपि शेषाभावेऽपि पिण्डनिवृत्तिरायाति तथापि "यथोक्तवस्त्वसंप्राप्तौ ग्राह्यन्तदनुकारि यत्। यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः"। इति छन्दोगपरिशिष्टवचनात् मुख्याभावेऽपि प्रतिनिधिः शास्त्रार्थ इति न्यायाच्च मध्वाद्यभावे गुड़ादिग्रहणवत् द्रव्यान्तरेणापि पिण्डदानं शेषद्रव्यनियमस्तु तत् सम्भवे द्रव्यान्तरत्यागाय। अन्यथा तदङ्गाभावे कर्म्मवैगुण्यं स्यात् "सहपिण्डक्रियायाम्" इति मनूक्तेः पिण्डस्य प्रेतपिण्डेन सह मिश्रीकरणं यत्रेति सपिण्डीकरणसमाख्यासिद्ध्यर्थं सुतरान्तत्र तथाचरणं प्रतिपत्तिरूपकर्म्माङ्ग एव प्रतिपाद्याभावे तन्निवृत्तिः। पशुयागे लोहितं निरस्यति सक्तून्निरस्यति इत्यादावुक्ता अतएव यज्ञवास्तुरूपप्रतिपत्तियागेऽपि यज्ञो यत्र वसति इति यज्ञवास्तु समाख्यानुरोधेनास्तृतकुशविनाशेऽपि कुशान्तरप्रतिनिधिर्भट्टनारायणैर्गोभिलभाष्ये उक्तः "प्राक्स्विष्टकृत आवापः" इति गोभिलसूत्रस्य व्याख्यानेऽपि आउप्यते इत्यावापः प्रधानहोमः स तु स्विष्टकृद्धोमात् प्राक् न पश्चादित्यर्थः। एवञ्च मुख्यहोमित्वकृते यदि चरुर्नष्टो दुष्टो वा भवति तदान्यः पाच्यः मुख्ये कृते चेन्नाशदुष्टौ तदाज्येनैव स्विष्टकृद्धोम इति सरला। एतेन शेषनाशे पिण्डनिवृत्तिरिति वाचस्पतिमिश्रोक्तं हेयम् एतेनार्घ्यदानविधानेन पिण्डमिश्रणप्रकारो व्याख्यात उक्तः। तथाच ब्रह्मपुराणम्। "अथ तेनैव विधिना दर्भमूलेऽवनेजनम्। पितुर्दत्त्वा तु पिण्डन्तु दद्यात् भक्त्या तु पूर्ववत्॥ दत्त्वा पिण्डान् पितृभ्यस्तु पश्चात् प्रेताय पार्श्वतः। तन्तु पिण्डं त्रिधा कृत्वा आनुपूर्व्याथ सन्ततम्। निदध्यात् त्रिषु पिण्डेषु एवं संसर्जने विधिः"॥ पितृभ्यः पितृपितामहादिभ्यः

पिण्डान् दत्त्वा प्रेताय पार्श्वतः पूर्वदेशे पिण्डं दद्यादित्यर्थः। तं प्रेताय दत्तपिण्डम् आनुपूर्व्या पितामहादिक्रमेण संसर्जने प्रेतपिण्डमिश्रणे। भविष्यपुराणम्। "गन्धोदक तिलैर्युक्तं कुर्य्यात् पात्रचतुष्टयम्। अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत्। ये समाना इति द्वाभ्यामेतज्ज्ञेयं सपिण्डनम्। नित्येन तुल्यं शेषं स्यादेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि"। नित्येनावश्यकेन ततश्च पार्वणांशे पार्वणेन एकोद्दिष्टांशे एकोद्दिष्टे न शेषमङ्गजातं तुल्यम् एकोद्दिष्टमिति एकोद्दिष्टं तद्धर्मग्राहित्वात् सपिण्डीकरणञ्चेत्युभय परम्। "एतत् सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि" इति याज्ञवल्क्यवचनैकवाक्यत्वात्। तेन श्राद्धेषु मध्ये एतच्छ्राद्धद्वयं स्त्रियाः कर्त्तव्यं नत्वाभ्युदयिकश्राद्धादि। अत्र च वा कर्त्तरिकृत्य इति कर्त्तरि षष्ठीति कर्त्तृत्व नियमः। वृद्धिश्राद्धादौ स्त्रीणां भोजनदर्शनान्न भोक्तृत्वनियमः।

पितरि पूर्वं मृते तद्वर्षाभ्यन्तरे पितामहे प्रपितामहे मृते यथा कर्त्तव्यं तथाह छन्दोगपरिशिष्टे कात्यायनः "पितुः सपिण्डतां कृत्वा कुर्य्यान्मासानुमासिकम्। असंस्कृतेन संस्कार्य्यौ पूर्व्वौ पौत्रप्रपौत्रकैः। पितरन्तत्र संस्कुर्य्यादिति कात्यायनोऽब्रवीत्। पापिष्ठमपि शुद्धेन शुद्धं पापकृतापि वा पितामहेन पितरं कुर्य्यादिति विनिश्चयः"। पितुः सपिण्डतां कृत्वा प्रेतीभूतयोरपि पितामहप्रपितामहयोः सत्त्वे प्रतिमासविहितं पार्वणं पितृवृद्धप्रपितामहातिवृद्धप्रपितामहानां कर्त्तव्यं नतु तयोः सपिण्डीकरणापेक्षा कार्य्या ननु सपिण्डनेनासंस्कृताभ्यां सह पिण्डः कथं सपिण्डनाख्य संस्कारस्तस्मात्तदर्थं तयोः सपिण्डीकरणमपकर्षणीयं पितुरेव वा सपिण्डनमुत्कर्षणीयमित्यत आह। असंस्कृताविति। उत्कर्षापकर्षौ

न कार्य्यावित्यनेन वचनेनोक्तं कथमसंस्कृतेन सह संस्कार इत्यत्राह पापिष्ठमपीति पापिष्ठमकृत सपिण्डीकरणं शुद्धेन कृतसपिण्डीकरणेन पितामहेन पापकृता अकृत सपिण्डीकरणेनापि शुद्धं कुर्य्यादिति शास्त्रनिश्चयः। अतोवचनबलाददोष इति तात्पर्य्यम् अत्र तु प्रेतीभूतपितामहेन पितुः सपिण्डने पितामहस्यैकोद्दिष्टमेव। "असपिण्डीकृतं प्रेतमेकोद्दिष्टेन तर्पयेत्" इति प्रागुक्तजाबालवचनात् एवमन्यत्रापि बोध्यं वृद्धप्रपितामहस्य प्रेतत्वे तेन सह न कार्य्यमिति तात्पर्य्यम्।

अत्र मातुः सपिण्डने श्वशुरार्य्यश्वशुरयोः पिण्डौ कुशैराच्छाद्यौ। तथा च गार्ग्यः पतिनैकेन कर्त्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः। सा गता हि मृतैकत्वं कुशैरन्तरयन् पितॄन्। श्वशुरस्याग्रतो यस्माच्छिरः प्रच्छादनक्रिया। पुत्रैर्दर्भेण सा कार्य्या मातुरभ्युदयार्थिभिः"। अन्तरयन्तीत्यर्थे अन्तरयन्निति लिङ्गव्यत्ययेन पुंस्त्वमिति हलायुधः। परवचनं गोभिलश्राद्धसूत्रभाष्यकृतापि लिखितम्। अतएव प्रव्रजिते पतिते वा पितरि मृतेऽपि न पितामहादिभिर्मातुःसपिण्डीकरणं किन्तु पितामह्यादिभिरेव। "स्वेन भर्त्रा सहैवास्याः सपिण्डीकरणं स्त्रियाः। एकत्वं सा गता यस्माच्चरुमन्त्राहुतिव्रतैः। तस्मिन् सति सुताः कुर्य्युः पितामह्या सहैव तु"॥ इत्यत्र तस्मिन् सतीतिश्राद्धानर्हभर्त्तुपलक्षणम्। अतएव "तस्याश्चैव जीवन्त्यां तस्याः श्वश्र्वेति निश्चयः" इति लघुहारीते न श्वश्रूजीवने तस्याः श्वश्र्वोक्तं न तु श्वशुरेणेति क्वचिदप्युक्तम्। एवं पितामह्यादिभिर्मातुः सपिण्डीकरणेऽपि सामगेन "ये चात्र त्वामनु यांश्च तमनु तस्मै ते स्वधा" इति मन्त्रो न पाठ्यः मन्त्रलिङ्गविरोधात् अतएव आभ्युदयिके मातृपक्षे श्रीदत्तादिभिर्मन्त्रान्तरं

लिखितं न तु ये चात्र त्वामिति वस्तुतस्तु आभ्युदयिके छन्दोगानां मातृपक्ष एव नास्तीति वक्ष्यते। एवञ्च "अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत्। ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्व्ववदाचरेत्। एतत् सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि" इति याज्ञवल्क्येन पार्व्वणैकोद्दिष्ट विकृतीभूत पुंसपिण्डनातिदेशात् तद्विकृतीभूतस्त्री सपिण्डनेऽपि ये समाना इति मन्त्रद्वयस्य पार्व्वणोक्तये चात्र त्वामिति मन्त्रस्य च लिङ्गार्थासमवेतत्वेऽपि प्रकृत्यर्थस्य समवेतार्थत्वात् पाठः"। ततश्च "मातामहानामप्येवं श्राद्धं कुर्य्याद्विचक्षणः। मन्त्रोहेन यथान्यायं शेषाणां मन्त्रवर्जितम्" इत्यनेन यच्छेषाणां मन्त्रवर्जनमित्युक्तं तत् "शुन्धन्तां पितामहाः" इत्यादि प्रकृत्यूहयोग्य मन्त्रवर्जनपरमिति प्रागुक्तं मार्कण्डेयपुराणम्। "सर्व्वाभावे स्त्रियः कुर्य्युः स्वभर्तॄणाममन्त्रकम्। तदभावे च नृपतिः कारयेत् स्वकुटुम्बवत्। स्त्रीणामप्येव मेवैतदेकोद्दिष्टमुदाहृतम्। मृताहनि यथान्यायं नृणां यद्वद्विहोदितम्"। स्त्रियोऽत्र असवर्णोढा अपरिणीता वेति श्राद्धविवेकः। सवर्णोढायाः पुत्रपौत्रप्रपौत्राभाव एव विधानात्। यथा शङ्खः। "पितुः पुत्रेण कर्त्तव्याः पिण्डदानोदकक्रियाः। तदभावे तु पत्नी स्यात्तदभावे सहोदरः"। स्त्रीणामिति तु सम्प्रदानपरम्। स्त्रीकर्त्तृकत्वस्य पूर्व्वार्द्धे एवोक्तत्वात्। एवमेवामन्त्रकमित्यर्थं इति श्राद्धविवेकः। अत्र स्त्रिया इत्यस्यासवर्णोढा अपरिणीतापरत्वव्याख्यानात् स्त्रीणां मन्त्रनिषेधोऽपि तत् सम्प्रदानकश्राद्ध एवावगम्यते। न तु स्त्रीसम्प्रदानकमात्रे। कल्पतरौ तु स्त्रीणामप्येवमिति यादृशेन सम्बन्धेन पितृव्यत्वादिना पुरुषाणामेकादशाहादिश्राद्धं तादृशेनैव सम्बन्धेन स्त्रीणामेतत् कर्त्तव्यमिति। एतद्व्याख्याने स्त्रीसम्प्रदानकश्राद्धे सुतरां

मन्त्राः पाठ्याः। याज्ञवल्क्येनापि समन्त्रकमेकोद्दिष्टं सपिण्डीकरणोक्ता एतत् सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपीत्यनेन स्त्रिया अपि तथैवोक्तम। "मातुः सपिण्डीकरणं पितामह्यासहोदितम्। यथोक्तेनैव कल्पेन पुत्त्रिकाया न चेत् सुतः" इति छन्दोगपरिशिष्टेनापि यथोक्तेनैव कल्पेन इत्यनेन मन्त्रादिकं सर्वमतिदिष्टं व्यवहारोऽपि तथेति। अमन्त्रकं स्त्रीकर्त्तृकमन्त्रपाठरहितम् "अमन्त्रा हि स्त्रियो मता" इति वौधायनेन सामान्यतोऽभिधानात्। न तु ब्राह्मणकर्त्तृकमन्त्रपाठरहितपरम्। तथा च वराहपुराणम्। "अयमेव विधिः प्रोक्तः शूद्राणां मन्त्रवर्जितः। अमन्त्रस्य तु शूद्रस्य विप्रो मन्त्रेण गृह्यते"॥ अत्रामन्त्रस्येति विशेषणस्य यावद् मन्त्रव्याप्त्यर्थत्वेन परिभाषारूपत्वान्न प्रेतश्राद्धमात्रस्य विषयः। न वा शूद्रकर्त्तृकश्राद्धमात्रविषयः किन्तु स्त्रीकर्त्तृकश्राद्धमप्यस्य विषयः। व्यक्तं ब्राह्मे। "स्त्रीभिश्चावरवर्णैश्च श्राद्धं विप्रानुशासनात्। मन्त्रवद्विधिपूर्वन्तु वह्निपाकविवर्जितम्"। विप्रानुशासनात् विप्रपाठनात्। मन्त्रवन्मन्त्रयुक्तम्। वह्निपाकविवर्जितमित्यसवर्णस्त्रीकर्त्तृकश्राद्धपरम्। पतिकर्त्तृकश्राद्धेऽपि पत्न्याः पाकाधिकारदर्शनात् तथाच छन्दोगपरिशिष्टं "शाकञ्च फाल्गुनाष्टम्यां स्वयं पत्न्यथवा पचेत्"। पत्नीत्वञ्च सवर्णोढायाः ज्येष्ठा पत्नीति वचनात्। ज्येष्ठामाह मनुः। "यदि स्वाश्च पराश्चैव विन्देरन् योषितो द्विजाः। तासां वर्णक्रमेणैव ज्यैष्ठं पूजा च वेश्म च"॥ कुवेरोपाध्यायधृतम्। "असंस्कृतप्रमीतानां पिता न श्राद्धमाचरेत्। यदि स्नेहेन कुर्वीत सपिण्डीकरणं विना"॥ असंस्कृतप्रमीतानाम् अनुपनीतमृतानाम्। लघुहारीतः "पुत्त्रेणैव तु कर्त्तव्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः। पुरुषस्य पुनस्त्वन्ये भ्रातृपुत्त्रादयोऽपि ये"॥ आदिशब्दग्राह्या-

माह स एव । "भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव वा । सहपिण्डक्रियां कृत्वा कुर्य्यादभ्युदयन्ततः" ॥ भ्राता वा इति वाशब्दात् भ्रात्रपेक्षया प्रधानत्वेन पूर्व्वाधिकारिणां दौहित्रान्तानां समुच्चयः । अतएव सपिण्डत्वेनैव भ्रातृतत्पुत्रयोरधिकारसिद्धौ पृथगुपादानं प्राधान्यज्ञापनार्थम् ।

"महागुरौ प्रेतीभूते वृद्धिकर्म्म न युज्यते" इति शूलपाणिलिखितवचनेन "प्रमीतौ पितरौ यस्य देहस्तस्याशुचिर्भवेत् । नापि दैवं न वा पैत्रं यावत् पूर्णो न वत्सरः" ॥ इति देवीपुराणवचनेन च प्रेतीभूतमातापितृकस्य संस्कर्त्तुः प्रेतीभूतमातापितृकस्य संस्कार्य्यस्य प्रेतीभूतमातापितृकाया अनूढायाः कन्यायाश्च वैदिककर्म्मकर्त्तृत्वकर्म्मत्वानर्हत्वेन तत् परीहाराय "यदहर्वा वृद्धिरापद्येत" इत्यनेन पूर्व्वदिने सपिण्डनं कृत्वा पित्रादिः परदिने अभ्युदयं नामकरणादिकं कुर्य्यात् । ऊढायास्तु "पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्" इति वचनोक्तैकपदेन पत्युरेव महागुरुत्वाभिधानात् तत् प्रेतत्वमात्रे तस्याः कर्म्मानधिकारः । एवञ्च पितृमात्रोर्महागुरुत्वव्यावृत्तेस्तयोर्मरणे ऊढाया न कर्म्मानधिकारः । अत्राभ्युदयसपिण्डनयोरानन्तर्य्यमात्रं क्त्वा-प्रत्ययार्थः न त्वेककर्त्तृकत्वमपि । अन्यथा सपिण्डनाधिकारिण्याः पत्न्याः सत्त्वे अभ्युदयादिकारिणो भ्रातुः सपिण्डनाधिकारापत्तेः । यथा "नानिष्ट्वा तु पितॄन् श्राद्धैः कर्म्मवैदिकमारभेत्" इति शातातपवचने पितृकर्त्तृकवृद्धिश्राद्धानन्तरमेव पुत्रेण विवाहः क्रियते । न तु पुत्रेण श्राद्धानन्तरं क्रियते । अत्र पुरुषस्य पुनस्त्वन्ये इत्यनेन पुत्रवत् शिष्यान्तरस्य सपिण्डने सामान्यतोऽधिकारः प्रतिपादनात् अभ्युदयं विनापि पुरुषस्य सपिण्डनं प्रतीयते । "सहपिण्डक्रियां कृत्वा कुर्य्यादभ्युदयं ततः" । इति सपिण्डीकरणात् पूर्व्वमभ्यु-

द्याभावार्थं नत्वभ्युदयसत्त्व एव सपिण्डीकरणार्थमिति। यत्तु "यानि पञ्चदशाद्यानि अपुत्रस्येतराण्यपि। एकस्यैव तु दातव्यमपुत्रायाश्च योषितः"॥ इति छन्दोगपरिशिष्टीयं सपिण्डीकरणेतरपञ्चदशश्राद्धविधायकं तच्छिष्यपर्य्यन्ताभावे पुरुषस्य बोध्यम् इतराणि एकोद्दिष्टविधानेनैव यानि प्राप्तानि प्रत्याब्दिकश्राद्धानि तान्येव दातव्यं दातव्यानीत्यर्थः। अपुत्रायाश्चेति चकारोऽनुक्तसमुच्चायकं पतिरहिताया इति समुच्चिनोति। "अपुत्रायां मृतायान्तु पतिः कुर्य्यात् सपिण्डताम्" इति पैठीनसिवचनैकवाक्यत्वात्। अत्र छन्दोगपरिशिष्टेऽपुत्रायाः पञ्चदशश्राद्धविधानात् "सपिण्डीकरणन्तासां पुत्राभावे न विद्यते" इति मार्कण्डेयपुराणाच्च बालकपुत्रसत्त्वे सपिण्डीकरणम् अन्येनापि कर्त्तव्यमिति प्रतीयते। एवं पतिः कुर्य्यादित्यत्रापि पतिसत्त्वमात्रं विवक्षितम्। तेन पतितप्रव्रजितपतिसत्त्वेऽपि ऊढया दुहित्रा सपिण्डनं कार्य्यम् अत्र "सर्वासामेकपत्नीनामेका चेत् पुत्रिणी भवेत्। सर्वास्तास्तेन पुत्रेण प्राह पुत्रवतीर्मनुः" इति मनुवचने सपत्नीपुत्रस्य पुत्रत्वातिदेशात् तत्सत्त्वेऽपि स्त्रीणां सपिण्डनं मैथिलैरुक्तं तन्न प्रागुक्तलघुहारीतवचने पुत्रेणैवेत्येवकारेणातिदिष्टपुत्रनिषेधात् अतएव तदुत्तरार्द्धे भ्रातृपुत्रोपादानं संगच्छते। अन्यथा भ्रातृपुत्रसत्त्वे "यद्येकजाता बहवो भ्रातरः स्युः सहोदराः। एकस्यापि सुते जाते सर्वे ते पुत्रिणो मताः"॥ इति बृहस्पतिवचनेन पुत्रत्वातिदेशात् भ्रातृपुत्रस्य पुत्रत्वादिदेशेनैव पितृव्यश्राद्धाधिकारप्राप्ते भ्रातृपुत्रदानं व्यर्थं स्यात् पुत्रत्वादिदेशफलन्तु तत्सत्त्वे पुत्रान्तराकरणं पुन्नामनरकत्राणञ्च।

लघुहारीतः। "सपिण्डीकरणान्तानि यानि श्राद्धानि षोड़श। पृथङ्नैव सुताः कुर्य्युः पृथग् द्रव्या अपि क्वचित्॥

प्रेतसंस्कारकर्म्माणि यानि श्राद्धानि षोड़श । यथाकालन्तु कार्य्याणि नान्यथा मुच्यते ततः"॥ पृथग्द्रव्या अपि विभक्तधना अपि पृथक् न कुर्य्युः सुतरामपृथग्धनाः पृथक् न कुर्य्युः किन्त्वपृथक् कुर्य्युः अत्र विशेषयति मरीचिः । "मृते पितरि पुत्रेण क्रिया कार्य्या विधानतः । बहवः स्युर्यदा पुत्राः पितुरेकत्रवासिनः ॥ सर्वेषान्तु मतं कृत्वा ज्येष्ठेनैव तु यत् कृतम् । द्रव्येण चाविभक्तेन सर्वैरेव कृतं भवेत्" ॥ पुत्रेणेत्यविशेषात् सर्वेषामधिकारे प्राप्ते ज्येष्ठस्य साक्षात् कर्त्तव्यतामाह बहव इति । ज्येष्ठेनापि सर्वेषां भ्रातृणामकरणेनैव करणं भवतु इति मतं ज्ञानं कृत्वा विभक्तत्वे द्रव्यसंश्लेषेण च कृतं कर्म्म सर्वैरेव कृतमेव भवेत् । तदानीं द्रव्यासंश्लेषेण च तस्मात् द्रव्यं प्राप्तव्यमिति कृत्वा कर्त्तव्यम् । यदि तेन तन्न परिशुध्यते तदा स ऋणी भवति प्रत्यवायी च भवतीति । न तु तेन श्राद्धान्तरं कर्त्तव्यमिति श्राद्धविवेकोक्तं युक्तम् । पृथङ् नैव सुताः कुर्य्युरित्यनेन पृथक्करणस्य पर्य्युदस्तत्वेनानधिकारात् । यथाकालमिति अशौचान्तद्वितीयदिनद्वादशमासमृततिथि एकाहन्यूनषण्मासद्वितयसंवत्सरेषु । न च विधानसामर्थ्यादेव तत्तत्कालप्राप्तेरनर्थकमिदमिति वाच्यम् । तत्तत् कालानां द्वादशाहाद्यपेक्षया प्राधान्यबोधनार्थत्वात् । अत्र "आनन्त्यात् कुलधर्म्माणां पुंसाञ्चैवायुषः क्षयात् । अस्थितेश्च शरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते" ॥ इति व्याघ्रवचनोक्तप्रशस्यत इत्यनेन कुलाचारज्योतिःशास्त्रादि-आतझटिति-मरणराष्ट्रोपप्लवादिम्लेच्छदेशादिगमनानुसारादेव सपिण्डीकरणापकर्षे द्वादशाहापेक्षया प्रागुक्तनवममासादिगौणकालपरिग्रहः अथवा यथाकालमित्यादेर्यदहर्वा वृद्धिरापद्येतेत्यनेनावश्यकनामकरणादिवृद्ध्यर्थमेवापकर्षो नत्वनावश्यकेष्टपूर्त्ताद्यर्थापकर्षः कार्य्य इति

तात्पर्य्यम्। अतएव लघुहारीतेन "तथैव काम्यं यत् कर्म्म वत्सरात् प्रथमादृते"। इत्यनेन काम्यस्यापकर्षनिमित्तता नास्तीत्युक्तम्। यदि त्वावश्यकवृद्धिनिमित्तेनापकर्षः कृतस्तदा इष्टपूर्त्तादि काम्यं वत्सराभ्यन्तरेऽपि कर्त्तव्यमिति श्राद्धविवेकोऽप्येवं यद्यपि गोभिलसूत्रादौ सपिण्डीकरणस्यैवापकर्षः प्रागुक्तस्तथापि सपिण्डीकरणापकर्षे तत् पूर्वकर्त्तव्यश्राद्धानामपि तदादितदन्तन्यायादपकर्षः। "सपिण्डीकरणान्ता तु ज्ञेया प्रेतक्रिया बुधैः" इति शातातपवचने प्रेतक्रियायाः सपिण्डीकरणान्तत्वं प्रतीयते। अत्र वृद्धिनिमित्तं विना सपिण्डनापकर्षे कृते पूर्णसंवत्सरकालं प्राप्य प्रेतत्वपरीहारमाह विष्णुधर्म्मोत्तरम्। "कृते सपिण्डीकरणे नरः संवत्सरात् परम्। प्रेतदेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रपद्यते"॥ वृद्धिनिमित्तकसपिण्डीकरणापकर्षे कृते तत्क्षणादेव प्रेतत्वपरीहारः तदर्थं एवापकर्षात् एवञ्चान्यनिमित्तापकर्षे वृद्धिकालं प्राप्य प्रेतत्वपरीहारः तत्कालस्य पूर्णसंवत्सरकालतुल्यत्वात्। "अर्वाक् संवत्सरात् वृद्धौ पूर्णे संवत्सरेऽपि वा। ये सपिण्डीकृताः प्रेता न तेषान्तु पृथक् क्रिया" इति शातातपवचनात्।

अथ सांवत्सरिकश्राद्धं तत्र। गोभिलः। "अत ऊर्द्ध्वं संवत्सरे संवत्सरे प्रेतायान्नं दद्यात् यस्मिन्नहनि प्रेतः स्यादिति"। अत ऊर्द्ध्वं सपिण्डीकरणान्तश्राद्धनिमित्तादाद्यसंवत्सरादूर्द्ध्वं संवत्सरे संवत्सरे प्रतिवर्षं यस्मिन्नहनि मृतस्तस्मिन्नहनि मृताय दद्यात्। व्याघ्रः। "प्रतिसंवत्सरञ्चैवमेकोद्दिष्टं मृताहनि"। एतेन सपिण्डीकरणापकर्षे आद्यसंवत्सरेऽपि मृताहे श्राद्धान्तरं कर्त्तव्यमिति मैथिलोक्तं हेयम्। व्यक्तमाह हेमाद्रिधृतवचनम्। "पूर्णे संवत्सरे श्राद्धं षोड़शं परिकीर्त्तितम्। तेनैव च सपिण्डत्वं तेनैवाब्दिकमिष्यते"॥ अत्र पूर्णसंवत्सरक्रियमाण-

श्राद्धाद्यथोभयनिर्वाहस्तथापकृष्टसपिण्डीकरणश्राद्धादप्युभयनिर्वाहो न पूर्णसंवत्सरे आब्दिकान्तरम्। एवं पञ्चदशश्राद्धेऽप्युन्नेयम्। मत्स्यपुराणम्। “ततःप्रभृतिसंक्रान्तावुपरागादिपर्वसु। त्रिपिण्डमाचरेत् श्राद्धमेकोद्दिष्टं मृताहनि”॥ अतः प्रेतत्वपरीहारात् त्रिपिण्डं त्रैपुरुषं निरुपपदमृताहशब्दः मृतसम्बन्धिमासपक्षतिथिविशेषपरः। उपपदात्तु क्वचित्तिथिविशेषमात्रपरः। यथा मृताहे प्रतिमासं कुर्य्यादित्यादौ।

शङ्खः। “सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते। तत्र तत्र त्रयं कुर्य्यात् वर्जयित्वा मृताहनि॥ अमावास्यां क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः। सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं तस्योक्तः पार्वणो विधिः”॥ त्रयं सम्प्रदानानां त्रयं कुर्य्यात् त्रिभ्यो दद्यादित्यर्थः। मृताहपर्य्युदस्तत्रिदैवतत्वस्य प्रतिप्रसवमाह अमावस्यामिति प्रेतपक्षोऽत्र पितृपक्षः अश्वयुक् कृष्णपक्ष इति यावत् न तु कृष्णपक्षमात्रं कृष्णपक्षसामान्यपरत्वेऽमावास्यापदवैयर्थ्यापत्तेः पितृपक्षं विशेषयति हेमाद्रिमाधवाचार्य्यधृतं नागरखण्डम्। “नभो वाथ नभस्यो वा मलमासो यदा भवेत्। सप्तमः पितृपक्षः स्यादन्यत्रैव तु पञ्चमः”॥ अत्र श्रावणभाद्रयोरन्यतरस्य मलमासत्वे आषाढ़ापेक्षया सप्तमपक्षस्य पितृपक्षत्वात्। अत्र मृतस्यैव प्रेतपक्षमृतत्वं न तु मलमासभाद्रकृष्णपक्षमृतस्य। ततश्च तत्र मृतस्य वर्षान्तरेऽश्वयुक् कृष्णपक्षेऽपि तच्छ्राद्धकरणे न पार्वणं किन्त्वेकोद्दिष्टमिति। अत्र पार्वणो विधिः पार्वणेति कर्त्तव्यताकैकोद्दिष्टविधिरिति नव्यवर्द्धमानप्रभृतयः। तन्न पूर्ववचनोक्तत्रैपुरुषिकस्य मृताहे पर्य्युदस्तस्य पार्वणो विधिरित्यनेन प्रतिप्रसवात् तस्मात् सदैकोद्दिष्टं त्रैपुरुषिकं न तु षाट्पौरुषिकं “कर्षूसमन्वितं मुक्त्वा तथाद्यं श्राद्धषोड़शम्। प्रत्याब्दिकञ्च शेषेषु पिण्डाः स्युः षड़िति स्थितिः”॥ इति

छन्दोगपरिशिष्टवचनेन प्रत्याब्दिकव्यतिरेकेण षट्संख्यानियमात् एवममावास्यादिमरणनिमित्तेन मातुरपि प्रत्याब्दिकं पार्व्वणविधिनैव "अपुत्रा ये मृताः केचित् स्त्रियो वा पुरुषाश्च ये। तेषामपि च देयं स्यादेकोद्दिष्टं न पार्व्वणम्" ॥ इति आपस्तम्बवचने अपुत्रा इति विशेषणोपादानात् सपुत्राणां पार्व्वणाभ्यनुज्ञानात्। एतच्च मात्रादित्रितयदैवतं कार्य्यम्। मात्रे पितामह्यै प्रपितामह्यै च पूर्व्ववत् ब्राह्मणान् भोजयित्वा इत्यन्वष्टकायां तथा दर्शनात् अवसानदिननिमित्तत्वेन पार्व्वणविधिना छन्दोगैरपि मात्रादित्रिकाणां श्राद्धं कर्त्तव्यं न योषिद्भ्यः पृथग्दद्यादवसानदिनादृते"। इति छन्दोगपरिशिष्टवचने विशेषतः प्रतिप्रसवात्। एवं सपिण्डीकरणेऽपि। एतच्च मृताहपार्व्वणं मातापित्रोरेव। तथाच हेमाद्रिधृतकात्यायनवचनं "सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं पित्रोरेव हि पार्व्वणम्। पितृव्यभ्रातृमातृणामेकोद्दिष्टं सदैव तु" ॥ मातृपदं सपत्नीमातृपरम्। सपत्नीमात्रित्यत्र मातृपदस्य राजदन्तादित्वात् परनिपातः ततश्च वाक्ये मातृसपत्नीति न प्रयोज्यं किन्तु सपत्नीमातृमातरित्यादिकम्। एवं साग्निकौरसक्षेत्रजाभ्यां मृताहे पार्व्वणं कर्त्तव्यम्। "औरसक्षेत्रजौ पुत्रौ विधिना पार्व्वणेन तु। प्रत्यब्दमितरे कुर्य्युरेकोद्दिष्टं सुता दश" ॥ इति जाबालवचनस्य "यत्र यत्र प्रदातव्यं सपिण्डीकरणात् परम्। पार्व्वणेन विधानेन देयमग्निमता सदा" इति मत्स्यपुराणवचनस्य चैकवाक्यत्वात्। उशना च। "प्रत्यब्दं दर्शवच्छ्राद्धं साग्निः कुर्व्वीत वै द्विजः। एकोद्दिष्टं सदा कुर्य्यान्निरग्निः श्राद्धदः सुतः" ॥ अत्र प्रागुक्तयुक्त्या प्रेतश्राद्धस्य एकोद्दिष्टत्वाभिधानात् सांवत्सरिकश्राद्धे यदेकोद्दिष्टपदमुक्तं तत् प्रेतश्राद्धधर्म्मग्राहित्वार्थम्। ततश्च योग्यत्वादेकार्घ्यादिलाभः न तु यथा प्रेतश्राद्धे पितृशब्दस्थाने

प्रेतत्वदोषः तथात्रापीति वाच्यं सांवत्सरिके प्रेतत्वाभावात्तथाविधानानुपपत्तेः । एवं प्रतिसांवत्सरिकश्राद्धे सम्बन्धार्थकपदं आशीः प्रार्थनं शेषभोजनञ्च कर्त्तव्यम् ।

रजस्वलायां विशेषयति गौतमः । "अपुत्रा तु यदा भार्य्या सम्प्राप्ते भर्त्तुराब्दिके । रजस्वला भवेत् सा तु कुर्य्यात्तत् पञ्चमे दिने" ॥ कुर्य्याच्छ्राद्धमिति शेषः । यत्तु श्राद्धचिन्तामणौ । एकोद्दिष्टं त्रैवर्णिकेन सिद्धान्नेन कर्त्तव्यम् । "एकोद्दिष्टन्तु कर्त्तव्यं पाकेनैव सदा स्वयम् । अभावे पाकपात्राणां तदहः समुपोषणम्" ॥ इति लघुहारीतवचनात् पाकपात्राभावः पाकसामग्र्यभावोपलक्षकं तदापि नामश्राद्धं किन्तूपोषणमेव श्राद्धस्थानीयमित्यर्थः । स्वयमित्यभिधानादपाटवादिनापि नान्यद्वारा कारयितव्यम् अतएव उपवासेनैव श्राद्धस्थानीयेन तदकरणप्रायश्चित्तेन वा कृतकृत्यतया श्राद्धविघ्न इत्यादिवचनादपि नैकादश्यामनुष्ठानमिति तन्न । पितृतृप्तेरजातत्वेनैकादश्यां तदनुष्ठानस्य युक्तत्वात् । अन्यथा षोड़शश्राद्धाधिकारिणः कदाचित्तथात्वे "यस्यैतानि न दीयन्ते प्रेतश्राद्धानि षोड़श । पिशाचत्वं ध्रुवं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि" ॥ इति यमवचनेन षोड़शश्राद्धाभावे प्रेतत्वपरीहारो न स्यात् तस्मादुपवासो न श्राद्धार्थः किन्तु तदानीन्तनाकरणप्रायश्चित्तार्थः यथा स्वकालाकृतसंस्कारे प्रायश्चित्तं कृत्वा कालान्तरे तत् करणं तथात्रापि तद्दिने उपवासं कृत्वा एकादश्यां श्राद्धं कर्त्तव्यमिति । एकोद्दिष्टं नान्यद्वारा कार्य्यमित्यत्रापि गोत्रजेतरत्वेन विशेषणीयं "न कदाचित् सगोत्राय श्राद्धं कार्य्यमगोत्रजैः इति प्रेतश्राद्धे ब्रह्मपुराणात् । अत्र हि नागोत्रजस्य साक्षात् कर्त्तृत्वं निषिध्यते सगोत्रायेत्यसम्बन्धापत्तेः तस्मादगोत्रजैर्द्वारभूतैः सगोत्राय श्राद्धं न कार्य्यमित्यर्थः । तथाच पर्य्युदासपक्षे गोत्रजद्वारा

कारयितव्यमिति युक्तमेव प्रसज्यपक्षे तु असगोत्रजविशेषणस्वरसात् गोत्रजलाभः। प्रेतश्राद्धधर्मग्राहित्वात् सांवत्सरिकेऽपि तथेति श्राद्धविवेकः। कल्पतरुरत्नाकरयोस्तु स्वगोत्रायेति पठितं स्वमात्मीयं गोत्रं यस्य स स्वगोत्रः विद्यमानगोत्र इत्यर्थः। यस्मै श्राद्धं कर्त्तव्यं तस्य स्वगोत्रजे विद्यमानेऽन्यगोत्रजेन संघातान्तर्गतेन राज्ञा श्राद्धं न कारयितव्यमिति व्याख्यातञ्च। एतन्मतेऽप्यूढदुहित्रादीनामसगोत्रत्वेऽपि न निषेधः। वस्तुतस्तु तत् पाठेऽपि कर्म्मधारयापेक्षया बहुव्रीहेर्जघन्यत्वात् स्वमात्मीयञ्च तत् गोत्रञ्चेति तस्मै अन्यगोत्रजद्वारा श्राद्धं न कार्य्यमित्यर्थः। अतो लघुहारीतवचने स्वयं पदं स्वगोत्रपरम्। अन्यथा ब्रह्मपुराणोक्तागोत्रजपदवैयर्थ्यापत्तेः। एवञ्च भविष्यपुराणप्रभासखण्डयोः। मृताहनि पितुर्यस्तु न कुर्य्यात् श्राद्धमादरात्। "मातुश्चैव वरारोहे वत्सरान्ते मृताहनि। नाहन्तस्य महादेवि पूजां गृह्णामि नोहरिः" ॥ मरीचिः। "पतिताज्ञानिनो मूर्खास्त्रियोऽथ ब्रह्मचारिणः। मृता हंसमतिक्रम्य चाण्डालेष्वभिजायते" ॥ इत्याभ्यां कालमाधवीयधृताभ्यां वचनाभ्यां सांवत्सरिकश्राद्धस्य मृताहकर्त्तव्यत्वेनावश्यकत्वात् भविष्यन्मृताहे स्वयं कर्त्तव्यत्वसम्भावनारहितेन मृताहात् पूर्वकालेऽपि प्रतिनिधीयते। "प्रक्षिप्याग्निं स्वदारेषु परिकल्प्यर्त्विजं तथा। प्रवसेत् कार्य्यवान् विप्रो वृथैव न चिरं क्वचित्" ॥ इति छन्दोगपरिशिष्टोक्तसायं प्रातर्होमप्रतिनिधिवत्। एवं सति प्रतिनिध्यकरण एव एकादश्यां क्रियते। न च पाकस्याङ्गत्वेन प्रधानतिथिकर्त्तव्यतानियम इति वाच्यम्। "व्रतोपवासनियमे घटिकैका यदा भवेत्। सा तिथिः सकला ज्ञेया पित्रर्थे चापराह्णिकी" ॥ इति वचनेन मुहूर्त्तमात्रलाभेऽपि कर्त्तव्यतोपदेशात् तदानीं

पाके तदसम्भवात् । एवमुदीच्याङ्गशेषभोजनेऽपि न तन्नियम इति ।

अथाभ्युदयिकश्राद्धम् । तत्र गोभिलः । "अथाभ्युदयिके श्राद्धे युग्मानाशयेत् । प्रदक्षिणमुपचारः ऋजवो दर्भाः यवैस्तिलार्थः सम्पन्नमिति तृप्तिप्रश्नः दधिवदराक्षतमिश्राः पिण्डा नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामिति दैवे वाचयित्वा नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः पितामहेभ्यः प्रपितामहेभ्यो मातामहेभ्यः प्रमातामहेभ्यो वृद्धप्रमातामहेभ्यश्च प्रीयन्तां न स्वधाञ्च प्रयुञ्जीत" इति । आभ्युदयिके अभ्युदयनिमित्तके अभ्युदय इष्टलाभः विवाहादिः । तदर्थं श्राद्धं आभ्युदयिकम् । तच्च भूतभविष्यद्भेदेन द्विविधं तत्र भूतं पुत्रजन्मादि भविष्यत् विवाहादि एवञ्च श्राद्धविवेकादौ श्राद्धभेदगणने वृद्धिश्राद्धत्वेन कर्म्माङ्गत्वेन च यदुभयत्वमुक्तं तदुभयमेवाभ्युदयिकत्वेनोपपन्नं तेनाभिलापे आभ्युदयिकश्राद्धमिति प्रयोज्यम् अत्र यवैस्तिलार्थं इत्यनेन पार्व्वणश्राद्धप्राप्ततिलस्थाने यवविधानादाभ्युदयिकस्यापि पार्व्वणप्रकृतिकत्वं प्रतीयते । अन्यथा तिलार्थं इत्युपादानं व्यर्थं स्यात् । ततश्च पार्व्वणप्रकृतिकत्वेन पित्र्येऽयुग्मब्राह्मणप्राप्तौ तन्निरासाय पितृपक्षे ब्राह्मणयुग्मत्वोपदेशः दैवे युग्मत्वस्य पार्व्वणप्राप्तत्वान्न तदर्थोपदेशः "अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणामप्रदक्षिणम्" । इति याज्ञवल्क्यवचनेन देवकर्म्मानन्तरं पितृकर्म्मकरणे प्राप्तवामोपचारनिरासाय प्रदक्षिणमुपचारस्तेन देवपितृकर्म्मकरणाय दक्षिणावर्त्तेन मन्तव्यं द्विगुणभुग्नत्वनिरासाय ऋजवो दर्भा इति ऋजुत्वोपदेशः तृप्ताः स्थ इत्यनेन तृप्तिप्रश्ने सम्पन्नमिति प्रष्टव्यं योग्यत्वात् सुसम्पन्नमिति प्रोक्ते वक्ष्यमाणछन्दोगपरिशिष्टवचनाच्च सुसम्पन्नमित्युत्तरम् एतद्धर्म्मयब्राह्मणपक्षेऽप्यबाधितत्वाद्वाच्यम् । दधिवद-

राक्षतमिश्रा इत्यनेन दध्यादिमिश्रणमावश्यकम् अक्षतो यवः "अक्षताश्च यवाः प्रोक्ता भृष्टाधाना भवन्ति ते" इति भट्टनारायणधृतात् अतएव वक्ष्यमाणच्छन्दोगपरिशिष्टवचनेऽक्षतमनूक्ता संयोज्ययवकर्कन्धुदधिभिरिति निःसन्दिग्धत्वमुक्तम्। स्वधावाचनप्रश्ननिवृत्तये नान्दीमुखाः पितरः प्रियन्तामित्युपदेशः तत्र स्वधां वाचयिष्ये इति पितृपक्ष एव प्रश्नः अतएव तन्निवृत्तये दैव इति देवपक्षे नान्दीमुखाः पितरः प्रीयन्तामिति प्रश्नः। उत्तरञ्च प्रीयन्तामिति ततः पितृपक्षे स्वधावाचनस्थानीयत्वेन वृद्धप्रमातामहेभ्यश्चेति चकारनिर्देशेन च स्वधोच्यतामितिवत् प्रत्येकमेव प्रीयन्तामिति पृच्छेत्। प्रत्युत्तरञ्च अस्तु स्वधेतिवत् तन्त्रेणैव प्रीयन्तामिति अत्र नान्दीमुखाः पितर इत्यादि नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः इति निर्देशेन च नान्दीमुखं पितृगणमिति विष्णुपुराणेन च मातामहेभ्यश्च तथा नान्दीमुखेभ्य एव चेति ब्रह्मपुराणे च नान्दीमुखपदश्रुतेस्तद्विशेषणविशिष्टस्यैवाभ्युदयिके देवतात्वं ततश्चात्रापि प्रीयन्तामितिवन्नान्दीमुखेभ्यः पितामहेभ्य इत्यादिवाच्यं न तु नान्दीमुखविशेषणशून्यं पितामहेभ्यः प्रीयन्तामित्यादि पितृदयितोक्तं युक्तं नान्दीमुखेभ्यः पितृभ्यः प्रीयन्तामित्यत्रान्वितस्य नान्दीमुखेभ्य इत्यस्य पितामहेभ्य इत्यादावनन्वयित्वेन प्रागुक्तयुक्त्या प्राप्तस्य नान्दीमुखविशेषणस्य पितामहेभ्य इत्यादावप्राप्तेः। एतेनात्र मैथिलोक्तं तन्त्रता विधानमपि निरस्तम्। पार्वणवत् स्वधाप्राप्तेः तन्निरासाय न स्वधां प्रयुञ्जीतेति अत्र विशेषादभिलापे मन्त्रे च स्वधापदनिवृत्तिः। अभिलापे नम इति ब्रूयात्। "अमुकामुकगोत्रैतत्तुभ्यमन्नं स्वधा नमः"। इति ब्रह्मपुराणे श्राद्धे स्वधा नमः पदयोस्त्यागबोधकत्वेन विकल्पादत्राभ्युदयिके स्वधानिषेधान्नम एवान्वेति। पितॄन्-

प्यत्र दैववदित्यनेनापि पार्वणोक्तविश्वदेवपक्षीय नम एव प्रतीयते। न तु मैथिलोक्तं स्वाहेति श्राद्धे तथा प्रयोगे प्रमाणाभावात्। एवमाश्वलायनगृह्ये यवोऽसीति मन्त्रे तु पुष्पा इति श्रुतेर्मन्त्रमात्रे स्वधापदस्थाने पुष्टिपदप्रयोगः। अतएव "स्वधयेति पदस्थाने पुष्पाशब्दं वदेदिह। पितॄनितिपदात् पूर्वं वदेन्नान्दीमुखानिति" इति बह्वृचकारिका प्रदर्शनात् छन्दोगपरिशिष्टं कात्यायनः "कर्मादिषु तु सर्वेषु मातरः सगणाधिपाः। पूजनीयाः प्रयत्नेन पूजिताः पूजयन्ति ताः॥ प्रतिमासु च शुभ्रासु लिखिता वा पटादिषु। अपि वाक्षतपुञ्जेषु नैवेद्यैश्च पृथग्विधैः॥ कुड्यलग्नां वसोर्धारां सप्तवारान् घृतेन तु। कारयेत् पञ्चवारान् वा नातिनीचां नचोच्छ्रिताम्॥ आयुष्मानिति शान्त्यर्थं जप्त्वा तत्र समाहितः। षड्भ्यः पितृभ्यस्तदनु श्राद्धदानमुपक्रमेत्॥ वशिष्ठोक्तविधिः कृत्स्नो द्रष्टव्योऽत्र निरामिषः। अतःपरं प्रवक्ष्यामि विशेष इह यो भवेत्॥ प्रातरामन्त्रितान् विप्रान् युग्मानुभयतस्तथा। उपवेश्य कुशान्दद्यात् ऋजुनैव हि पाणिना"॥ तथा "निपातो न हि सव्यस्य जानुनो विद्यते क्वचित्। सदा परिचरेद्भक्त्या पितॄनप्यत्र दैववत्॥ पितृभ्य इति दत्तेषु उपवेश्य कुशेषु तान्। गोत्रनामभिरामन्त्र्य पितॄनर्घं प्रदापयेत्॥ नात्रापसव्यकरणं न पित्र्यं तीर्थमिष्यते। पात्राणां पूरणादीनि दैवेनैव तु कारयेत्॥ ज्येष्ठोत्तरकरान् युग्मान् कराग्राग्रपवित्रकान्। कृत्वार्घ्यं सम्प्रदातव्यं नैकैकस्यात्र दीयते॥ मधुमध्विति यस्तत्र त्रिर्जपोऽशितुमिच्छताम्। गायत्र्यनन्तरं सोऽत्र मधुमन्त्रविवर्जितः॥ न चाश्नत्सु जपेदत्र कदाचित् पितृसंहिताम्। अन्य एव जपः कार्य्यः सोमसामादिकः शुभः॥ यस्तत्र प्रकारोऽन्नस्य तिलवद्यववत्तथा। उच्छिष्टसन्निधौ सोऽत्र

तृप्तेषु विपरीतकः ॥ सम्पन्नमिति तृप्ताःस्थः प्रश्नस्थाने विधीयते। सुसम्पन्नमिति प्रोक्ते शेषमन्नं निवेदयेत् ॥ प्रागग्रेष्वथ दर्भेषु आद्यमामन्त्र्य पूर्ववत्। अपःक्षिपेन्मूलदेशेऽवनेनिक्ष्वेति निस्तिलाः ॥ द्वितीयञ्च तृतीयञ्च मध्यदेशाग्रदेशयोः। मातामह प्रभृतींस्तु एतेषामेव वामतः ॥ सर्वस्मादन्नमुद्धृत्य व्यञ्जनैरुपसिच्य च। संयोज्य यवकर्कन्धुदधिभिः प्राङ्मुखस्थितः ॥ अवनेजनवत् पिण्डान् दत्त्वा बिल्वप्रमाणकान्। तत्पात्रक्षालनेनाथ पुनरप्यवनेजयेत् ॥ उत्तरोत्तरदानेन पिण्डानामुत्तरोत्तरम्। भवेदधश्चाचरणादधोधः श्राद्धकर्म्मसु ॥ तस्मात् श्राद्धेषु सर्वेषु वृद्धिमत्स्वितरेषु च। मूलमध्याग्रदेशेषु ईषत् शक्तांश्च निर्वपेत् ॥ गन्धादीन्निःक्षिपेत् तूष्णीं तत आचामयेत् द्विजान्। अन्यत्राप्येष एव स्यात् यवादिरहितो विधिः ॥ दक्षिणाप्लवने देशे दक्षिणाभिमुखस्य तु। दक्षिणाग्रेषु दर्भेषु एषोऽन्यत्र विधिः स्मृतः ॥ अथाग्रभूमिमासिञ्चेत् सुसुप्रोक्षितमस्त्विति। शिवा आपः सन्त्विति च युग्मानेवोदकेन च ॥ सौमनस्यमस्त्विति च पुष्पदानमनन्तरम्। अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्त्वित्य क्षतानपि दापयेत् ॥ अक्षय्योदकदानन्तु अर्घ्यदानवदिष्यते। षष्ठ्यैव नित्यं तत् कुर्य्यान्न चतुर्थ्या कदाचन ॥ प्रार्थनासु प्रति प्रोक्ते सर्वास्वेव द्विजोत्तमैः। पवित्रान्तर्हितान् पिण्डान् सिञ्चेदुत्तानपात्रकृत् ॥ युग्मानेव स्वस्तिवाच्यानङ्गुष्ठग्रहणं सदा। कृत्वा धूर्य्यस्य विप्रस्य प्रणम्यानुव्रजेत्ततः” ॥ कर्म्मादिषु वैदिककर्म्मादिषु। “नानिष्ट्वा तु पितॄन् श्राद्धैः कर्म्म वैदिकमारभेत्” इति शातातपवचनात्। एतच्च न वैदिककर्म्ममात्रे श्राद्धविधायकं किन्तु प्रमाणान्तरेण प्राप्तस्य आभ्युदयिकस्य पूर्वकर्त्तव्यत्वमात्र विधायकं लाघवात्। कर्म्मादिषु तु इत्येकवाक्यत्वाच्च रागप्राप्तमत्र त्वेन लौकिके तु नवगृह-

प्रवेशे यत् श्राद्धं तत्प्रवेशे नववेश्मन इत्यनेन वक्ष्यते । तत्र नवगृहप्रवेशस्य निमित्तस्य क्रियात्वेन क्षणिकस्यापि तन्निश्चयवत एवाधिकारात् संक्रान्तिवत् भूतभविष्यत्वेन द्विधैव निमित्तत्वात् भूते भविष्यति वा गृहप्रवेशे नान्दीमुखश्राद्धाचरणमिति । अत्र वृद्धिश्राद्धस्य निरवकाशत्वान्न त्रयोदश्यादि निषेधः । मातरो गौर्य्यादयः । तथाच बह्वृचगृह्यपरिशिष्टम् । "गौरीपद्माशचीमेधा सावित्री विजया जया । देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः । शान्तिपुष्टिर्धृतिस्तुष्टिरात्मदेवतया सह । आदौ विनायकः पूज्यो ह्यन्ते च कुलदेवताः" । तास्वाभिधाय भविष्ये । "पूज्याश्चित्रेऽथवा कार्य्या वरदाभयपाणयः । मातर इति सर्वासां विशेषणम् अतएव एतत् पाद्यं गौर्य्यै मात्रे नम इति प्रयोगः एता मातरो लोकमातरो ज्ञेयाः । अतएवैतयोर्बहुत्वेन निर्देशः । पूजयन्ति अभ्युदयदानेन प्रीणयन्तीत्यर्थः । शुभ्रासु शुक्लासु रजतस्फटिकादिमयीषु लिखिता चित्रिता आदिशब्दात् भित्त्यादिषु अक्षतपुञ्जेषु यवपुञ्जेषु पृथग्विधैर्नानाप्रकारैर्वसोस्वेदिराजस्य । वसोर्धारामिति वसोर्धाराभिपातेनेत्यादिदर्शनात् अलुक्समासेनैव प्रयोगः कर्त्तव्यः । आयुष्माणि आयुषे हितानि आयुषे मे पवस्वेत्यादीनि शान्त्यर्थमभ्युदयस्यानिष्टनिवृत्त्यर्थं षड्भ्य इति छन्दोगानाम् । "मातृश्राद्धन्तु पूर्वं स्यात् पितॄणां तदनन्तरम् । ततो मातामहानाञ्च वृद्धौ श्राद्धत्रयं भवेत्" इति शातातपोक्तमातृश्राद्धव्युदासार्थम् अतएव तत्रैव छन्दोगपरिशिष्टे षण्णामेव पिण्डेति कर्त्तव्यता वक्ष्यते गोभिलसूत्रेऽपि पित्रादिवृद्धप्रमातामहान्तानामुल्लेखः कृतः न मात्रादीनां "न योषिद्भ्यः पृथग्दद्यादवसानदिनादृते । स्वभर्तृपिण्डमात्राभ्यस्तृप्तिरासां यतः स्मृता" इति छन्दोगपरिशिष्टेन वृद्ध्यादौ योषित्श्राद्धं छन्दोगानां पर्य्युदस्तञ्च । न चाव-

सानदिनेतरत्र योषिद्भ्योऽपृथग्दद्यात् यतः स्वभर्तृपिण्डांशेभ्य उभयोर्दैश्यकदत्तेभ्य एव योषितां तृप्तिः पुरुषाणां योषिज्जीवनादौ पृथक्पिण्डादपि तृप्तिसत्त्वात् योषित्पदमपि सार्थकमिति वाच्यं तथात्वेऽवसानदिनाहृत इति व्यर्थं स्यात् तथाहि परिप्राप्ते योषितां श्राद्धेऽपृथक्त्वं विधीयते। किं वाऽपृथक्श्राद्धवैशिष्ट्यं विधीयते नाद्यः अमावास्यादौ योषिद्दानाप्राप्तौ कथं तदनूद्याऽपृथक्त्वमात्रविधानं न चामावास्यायां पितृभ्यो दद्यादित्यत्र "प्रेते पितृत्वमापन्ने सपिण्डीकरणादनु" इति विष्णुपुराणीयेऽपि योषितामपि पितृत्वात् श्राद्धप्राप्तिरिति वाच्यं पितृभ्यो दद्यादित्यत्र पितृपदं न प्राप्त पितृलोकमात्रपरं किन्तु पितृपितामहप्रपितामहमात्रपरं असावेतत्ते इति यजमानस्य पित्रे असावेतत्ते इति यजमानस्य पितामहाय असावेतत्ते इति यजमानस्य प्रपितामहाय इति श्रुत्याद्येकवाक्यत्वात् "त्रयाणामुदकं कार्यं त्रिषु पिण्डः प्रवर्त्तते। चतुर्थः सम्प्रदातैषां पञ्चमो नोपपद्यते" इत्यत्र त्रयाणामित्यनेन पितृपितामहप्रपितामहानां पत्नीनिरपेक्षाणां तर्पणवद्देवतात्वावगमाच्च। मातामहादिलाभस्तु "पितरो यत्र पूज्यन्ते तत्र मातामहा ध्रुवम्। अविशेषेण कर्त्तव्यं विशेषान्नरकं व्रजेत्" इति वृद्धयाज्ञवल्क्यवचनात् मातामहा इति तदादित्रिकपरम्। इत्यादि बहुवचनान्ता गणस्य संसूचका इत्युक्तेः। श्राद्धेति कर्त्तव्यतायां मातामहादित्रिकोपादानाच्च। नान्त्यः। तथाहि अवसानदिनाहृत इति व्यर्थं स्यात् अवसानदिने तु "ध्रुवाणि तु प्रकुर्वीत प्रमीताहनि सर्वदा" इति छन्दोगपरिशिष्टीयेन स्त्रीपुंसयोः साधारणत्वेन श्राद्धप्राप्त्या "स्त्रीणामप्येवमेवैतदेकोद्दिष्टमुदाहृतम्। मृताहनि यथान्यायं नृणां यद्वदिहोदितम्"॥ इति मार्कण्डेयपुराणीयेन विशेषतः श्राद्धप्राप्त्या

च विशिष्टविधित्वानुपपत्तेः। न चैवं परशाखिकाविरोधिसर्वकर्म्मानुष्ठानप्रसक्तिरिति वाच्यम् अविरोधि चेति चकारेण नाकाङ्क्षितस्यैव लाभात् अतएवानाकाङ्क्षिते गृह्यपरिशिष्टं "बह्वल्पं वा स्वगृह्योक्तं यस्य कर्म प्रकीर्त्तितम्। तस्य तावति शास्त्रार्थे कृते सर्वः कृतो भवेत्" इति। तस्मादवसानदिनाहृत इति वाक्यस्य सार्थकत्वाय पृथक्पदमत्रानुवादः। न च वैपरीत्यं तथात्वे वाक्यानुवादः स्यात्। अव्ययपदानुवादे तु विभक्तेर्नानुवादकतेति। एवमेव ईशानन्यायाचार्य्याः। तस्मात् श्राद्धं सपिण्डकं कुर्य्यात् स्वसूत्रोक्तविधानतः। अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायाञ्च क्षयाहनि। मातुः श्राद्धं पृथक् कुर्य्यादन्यत्र पतिना सह। वृद्धिश्राद्धे तु मात्रादि गयायां पितृपूर्वकम्" इति तीर्थचिन्तामणिधृत वायुपुराणीयेन वृद्ध्यन्वष्टकावसानदिनगयानिमित्तकश्राद्धकरणेषु छन्दोगेतरोऽवसानदिनेतरत्र वृद्ध्यादौ योषिद्भ्यः पृथक् श्राद्धायान्नं दद्यात् अवसानदिने तु छन्दोगात् छन्दोगोभयो योषिद्भ्यो दद्यादित्यर्थात् सिद्धम्। ततश्च वृद्ध्यादौ छन्दोगो योषितां कथं तृप्तिरित्याकाङ्क्षामुत्थाप्य उत्तरार्द्धेनान्वय इति एतदर्थमेव स्वसूत्रोक्तविधानत इत्युक्तम्। सूत्रेति स्वगृह्यशास्त्रपरम्। अन्यत्रामावास्यादौ पतिना सह श्राद्धं भोग्यं कुर्य्यादित्येवार्थः। असावेतत्त इति यजमानस्य पित्र इति प्रागुक्तश्रुत्या श्राद्धे पत्नीनिरपेक्षणपित्रादित्रिकबोधिकया "सपिण्डीकरणादूर्द्ध्वं यत् पितृभ्यः प्रदीयते। सर्वेष्वंशहरा माता इति धर्मेषु निश्चयः" इति स्मृत्या भर्त्तृदत्तांशभागित्वबोधिकया चैकवाक्यत्वात् एतेन षड्भ्य इति जीवन्मातृकविषयमिति हलायुधोक्तं निरस्तम्। जीवन्मातृकेण छन्दोगेतरेण पितामह्यादीनां श्राद्धं क्रियते। "जीवन्तमतिदद्याद्वा प्रेतायान्नोदके द्विज"। इति छन्दोगपरिशिष्टात्। जीवन्त-

मित्यत्र निमित्तविशेषणत्वेन पुंस्त्वमविवक्षितम् अतएव लघुहारीतेनाप्युक्तं सपिण्डीकरणे "स्वेन भर्त्रा सहैवास्याः सपिण्डीकरणं स्त्रियाः। एकत्वं सा गता यस्माच्चरुमन्त्राहुतिव्रतैः। तस्मिन् सति सुताः कुर्य्युः पितामह्या सहैव तु। तस्यां चैव तु जीवन्त्यां तस्याः श्वश्र्वेति निश्चयः" इति। तदनु आयुष्यजपानन्तरं श्राद्धदानं श्राद्धीयद्रव्यदानं वशिष्ठोक्त इति वशिष्ठेन छन्दोगगृह्यपरिशिष्टे पार्वणे यो विधिरुक्तः सोऽत्रामिषव्युदासेन बोध्यः। यत्तु मधुमांसाभ्यञ्जनेति याज्ञवल्क्यादौ ब्रह्मचारिणो निषेधे सन्नियोगशिष्टत्वान्मांसनिषेधे मधुनिषेध इत्युक्तं निरामिषश्राद्धशेषघटितपिण्डानां पिण्डांस्तु दधिमध्वक्तानित्यादिना तदुक्तरूपविशेषणमात्रविधानात्तत्र फलचमसन्यायेन श्राद्धे मधुप्राप्तिरिति द्वैतनिर्णयोक्तञ्च तदयुक्तं "शाल्यन्नं दधिमध्वक्तं बदराणि यवांस्तथा। मिश्रीकृत्य च चत्वारि पिण्डान् श्रीफलसन्निभान्"। इति ब्रह्मपुराणवचनेन पिण्डघटकान्नस्य दधिमध्वक्तत्वेन च पिण्डस्य सर्वस्मात् प्रकृतादन्नात् उद्धृत्य इत्यनेन श्राद्धशेषद्रव्यकर्त्तव्यतया फलचमसन्यायेन श्राद्धेष्वपि मधुप्राप्तेः। एवमेव श्राद्धप्रदीपे वर्द्धमानोपाध्यायाः। तन्न्यायश्च राजन्यवैश्यकर्त्तृके ज्योतिष्टोमे फलचमसमस्मै भक्ष्यं ददातीति श्रुत्या ऋत्विग्भक्ष्यत्वेन फलचमसविधानात् ऋत्विग्भक्ष्यस्य च यज्ञशेषद्रव्यत्वेन तत्सिद्धे यज्ञेऽपि फलचमसलाभः फलचमसश्च दधिमिश्रितवटत्वक्चूर्णमिति। अतएव मधुजपोऽन्नोत्सर्गानन्तरं मधुवाता इत्यादि जपश्चाभ्युदयिके मधुसत्त्वे मधुद्रव्यप्रकाशकत्वात् दृष्टार्थकः अन्यथा दृष्टार्थकता स्यात्। व्यक्तमाह गोभिलभाष्ये यशोधरधृतवचनम्। "कृत्वा नान्दीमुखश्राद्धं दधिमध्वाज्यद्रव्यकम्। अन्नञ्च प्राशयेदन्नपत इत्यभिमन्त्रितम्"। गोभिलानुक्तस्यान्नप्राशनस्याप्र-

नैनाभ्युदयिकश्राद्धवत्त्वं प्रतीयते। प्रातरामन्त्रितानिति पूर्वद्दिननिमन्त्रणनिरासार्थं युग्मानिति अयुग्मव्यावृत्त्यर्थम् उभयतः पितृपक्षे मातामहपक्षे च दैवपक्षे युग्मत्वस्य पार्वणे प्राप्तत्वात् तथा पार्वणवदुदङ्मुखीकृत्य ब्राह्मणानुपवेश्य वक्ष्यमाणप्रकारेण कुशान् दद्यात्। कर्त्तुस्तु पार्वणवन्न दक्षिणाभिमुखत्वं किन्तु प्राङ्मुखत्वं पिण्डदाने तथादर्शनात्। एवञ्चाभ्युदयिके युग्मा ब्राह्मणाः समूला दर्भाः "प्राङ्मुखेभ्य उदङ्मुखो दद्यात् उदङ्मुखेभ्यः प्राङ्मुखो वा" इत्याश्वलायनवचनेऽपि द्वितीयकल्पाभिधानं छन्दोगपितृपक्षपरम्। न चैतद्देवपक्षपितृपक्षोभयसाधारणाच्छन्दोगपरमस्तु अविशेषादिति वाच्यम् आभ्युदयिके छन्दोगानामपि देवपक्षस्य पार्वणतुल्यत्वात् "ये चात्र विश्वेदेवार्थं पूर्वं विप्रा निमन्त्रिताः। प्राङ्मुखान्यासनान्येषां द्विदर्भोपहितानि च" इति देवलोक्तसर्वशाखिगोचरसामान्यविधीनां सङ्कोचे हेत्वभावात्। किञ्च यथा पार्वणे छन्दोगेतरेषां ब्राह्मणयुग्मत्वप्राङ्मुखत्वयोः कर्त्तुरुदङ्मुखत्वस्य च दैवे प्राप्तत्वेन विध्यभावात् पितृपक्ष एव ब्राह्मणयुग्मत्वं प्राङ्मुखत्वं कर्त्तुरुदङ्मुखत्वं विधेयम्। तथा छन्दोगानामपि साहचर्य्यात् पार्वणप्राप्तब्राह्मणोदङ्मुखत्वमनूद्य पितृपक्ष एव कर्त्तुः प्राङ्मुखत्वमात्रविधेयत्वम्। एतेन छन्दोगानां दैवब्राह्मणोदङ्मुखत्वं मैथिलमतं निरस्तम्। अन्यथा पार्वणेनैव ब्राह्मणोदङ्मुखत्वस्य प्राप्तत्वे पितृब्राह्मणस्य च प्राप्तत्वे विध्यनुवादापत्तेः। किन्त्वत्र वसुसत्ययोर्दैवतात्वं पितृपक्षवत् मधुमन्त्रवर्जनञ्चेति पार्वणाद्विशेषः। ऋजुना देवतीर्थेन न तु पितृतीर्थेन सव्यस्य वामस्य देववत् दक्षिणजानुपातेन प्रागग्रकुशद्वययुक्तासनेन च। पूर्वम् ऋजुहस्तेन कुशदानमुक्तं तत्सम्प्रदानप्रकारञ्च पितृभ्य इतीति इतीत्यनेन गोत्रनामभिरामन्त्र्येति

प्रशंस्यमानप्रकारेण पितृभ्यो दत्तेषु कुशेषु तान् ब्राह्मणानुपवेश्य गोत्रनामभिः पितॄन् सम्बोध्यार्घ्यं प्रदापयेदित्यर्थः। अपसव्यं प्राचीनावीतित्वं नात्र किन्तूपवीतित्वं पितृतीर्थं तर्जन्यङ्गुष्ठयोर्मध्यरूपं नात्र किन्त्वङ्गुल्यग्ररूपं देवतीर्थम्। पात्राणामर्घ्यपात्रादीनाम् आदिशब्दात् आसनादिदानं दैवेन तीर्थेनेति शेषः। ज्येष्ठोत्तरकरान् ज्येष्ठस्य पङ्क्तिश्रेष्ठस्य उत्तर उपरिकरो येषां तत्तथा। कराग्राग्रपवित्रकानिति कराग्रेऽग्रपवित्रकं पवित्राग्रं येषां ते तथा। नैकैकस्य नैकैकपित्रादिसम्बन्धिब्राह्मणस्य न तु यथा पार्वणे एकस्य पितृब्राह्मणस्य हस्ते तथाऽपरस्य पितामहब्राह्मणस्य हस्ते तथाऽपरस्य प्रपितामहब्राह्मणस्य हस्ते दीयते तथात्रेति। एतेन पितृब्राह्मणयोर्हस्तोपरि उत्तराग्रं पवित्रं दत्त्वाऽर्घ्योत्सर्गान्तमुक्त्वा एवमेव पितामहादीनां पञ्चानामेकैकशः द्वयोर्द्वयोर्ब्राह्मणयोर्दद्यादिति पितृदयितोक्तं निरस्तम्। एवं कराग्राग्रपवित्रकत्वमाभ्युदयिके विशेषः इत्यायाति तथा चैतद्वैपरीत्यं पार्वणे स्यादिति चेन्नैवं मिलितहस्ते पवित्रदानमभिधाय नैकैकस्यात्र दीयते इति यत् पुनरभिधत्ते तेन ज्ञापयति इदमेवात्र विधीयते कराग्राग्रपवित्रकत्वमनूद्य इति कृत्यप्रदीपोक्तमपि निरस्तम्। नैकैकस्यात्र दीयत इत्यभिधानं विना पित्रादित्रयब्राह्मणानां मिलितहस्तोपरि दानानुपपत्त्या नैकैकस्यात्र दीयत इत्यस्य पुनरभिधानानुपपत्तेः। न च ज्येष्ठोत्तरकरत्वेनैव मिलितहस्तलाभः ज्येष्ठोत्तरकरत्वस्य च पित्रादि प्रत्येकब्राह्मणद्वयापेक्षयापि सम्भवेन तथात्वानुपपत्तेः। कराग्राग्रपवित्रकत्वस्यापि पार्वणे केनाप्यनुक्तत्वेनाभ्युदयिकेऽनुवादानुपपत्तेश्च। तस्मात् ज्येष्ठोत्तरकराग्राग्रपवित्रकत्वस्य पित्रादित्रयमिलितब्राह्मणहस्तोपरि दानस्य च विशेषादाभ्युदयिक एव विधानं

पार्व्वणेत्वासनादिदर्भवत् अर्घ्यदानेऽपि पवित्रदानस्य दक्षिणाग्रत्वं प्रतीयते। मधुमध्विति यस्त्वत्रेति पार्व्वणे भोक्तुमिच्छतां ब्राह्मणानां श्राव्यत्वेन मधुद्रव्यप्रकाशकमध्विति त्रिर्जपो मधुवातेति मन्त्रसहितो गायत्रीजपानन्तरं क्रियते सोऽत्र मधुवातेति मन्त्रवर्ज्जितः कार्य्यः। एतेन भोजनादिकालत्रये मधुमन्त्रपाठो न निषिद्धः मधुमन्त्रपाठनिषेधाच्च मधुनो निवृत्तिर्नास्तीत्यवगम्यते। अन्यथा प्रधाननिवृत्तौ गुणनिवृत्तेरप्यर्थसिद्धत्वात् विधातुमयोग्यत्वात्। न च गुणनिवृत्त्या प्रधाननिवृत्तिः गुणलोपे न मुख्यस्येति न्यायविरोधात् मधुमध्विति जपाभ्यनुज्ञानञ्च न स्यादिति श्राद्धविवेकः। पितृसंहितायामिति पितृमहत्त्वप्रकाशकमन्त्रमात्रोपलक्षणार्थम्। यस्त्वत्रेति तत्र पार्व्वणे तृप्तेषु ब्राह्मणेषु अन्नस्य प्रकारोऽन्नस्य विकरणं तिलवत्तिलयुक्तं यथा स्यात्तथोक्तम् अत्र तु यवयुक्तं यथा स्यात्तथा विपरीतकः अतृप्तेषु ब्राह्मणेषु कार्य्यः। कल्पतरुस्तु विरीतको देवतीर्थादिदानेनेत्याह तदयुक्तम्। "पात्राणां पूरणादीनि देवेनैव हि कारयेत्" इत्यनेन प्राप्तत्वेनानुवादकतापत्तेः। पार्व्वणे तृप्तास्थ इति यः प्रश्नस्तत्स्थाने सम्पन्नमिति वाच्यं प्रश्नानन्तरं सुसम्पन्नमिति ब्राह्मणैः प्रोक्ते शेषमन्नं क्व देयमिति पृच्छेत्। इष्टेभ्यो दीयतामिति प्रतिवचनम्। "स तानाह पुनः क्व देयञ्चान्नमित्यपि। इष्टेभ्यो दीयतामेतत् इति सम्प्रवदन्ति ते"॥ इति ब्रह्मपुराणात्। आद्यं पितरं पूर्व्ववत् गोत्रसम्बन्धनामभिरामन्त्र्य द्वितीयं पितामहं तृतीयं प्रपितामहं मध्यदेशाग्रदेशयोर्दर्भस्येति शेषः एतेषां पिण्डस्थाने आवाहितानां पित्रादीनां वामतो दक्षिणस्यां दिशि एवञ्चेत् कर्त्तुर्दक्षिणोपचारो भवति एतेन कृत्यप्रदीपे दक्षिणस्थितप्रागग्रकुशमूलमध्याग्रेषु मात्रादिभ्यो मध्यस्थितप्रागग्रकुशमूलमध्या-

मूत्रोच्चारं यदा कुर्य्यात् अहोरात्रेण शुध्यति" इति यमवचनात्। पुत्रानुत्पत्तौ पारस्करः। "सा यदि गर्भं नादधीत निदिग्धिकायाः सिंह्याः श्वेतपुष्पायाः उपोष्य पुष्येण मूलमुद्धृत्य चतुर्थेऽहनि स्नातायां निशायामुदकेन पिष्ट्वा दक्षिणस्यां नासिकायामासिञ्चतीति। इयमोषधी त्रायमाणा सहमाना सरस्वती। अस्या अहं पुत्रः पितुरिव नाम जनयत्यभित इति" सा परिणीता ऋतुकाले कृताभिगमना यदि गर्भं न धारयति तदा उपोष्य पुष्ये नक्षत्रे श्वेतकण्टकारिकाया मूलमुत्थाप्य चतुर्थेऽहनि ऋतुस्नातायां सत्यां रात्रावुदकेन पिष्ट्वा दक्षिणनासापुटे पतिरियमोषधी त्रायमाणा" इति मन्त्रेण सिञ्चति। "नस्यं दधाति दक्षिणहस्तानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां गृहीत्वा प्राक्शिरः संविष्टाया इति" गोभिलस्मरणात्। आयुर्वेदीयेऽपि। "पिप्पल्या शृङ्गवेरञ्च मरिचं नागकेशरम्। आज्येन सह भुञ्जीत अपि वन्ध्या प्रसूयते। याज्ञवल्क्यः। "एवं गच्छन् स्त्रियं क्षामां मघां मूलञ्च वर्जयेत्। सदोपवीतिना भाव्यं सदा बद्धशिखेन च। विशिखो व्युपवीतश्च यत् करोति न तत् कृतम्"। अत्र पूर्वार्द्धेनापि नित्यता उत्तरार्द्धेनापि कर्माङ्गता बोधिता अन्यथा उपवीताभावदशायां कृतं साङ्गमेव न स्यात्। पुरुषस्य प्रत्यवायो भवेत्। अत्र वदन्ति करोति कृतवान् कृतमित्यकृतत्वातिदेशः। पितृकृत्यादौ उपवीतित्वाभावात् कथं न प्रत्यवायः न च बाधकाभावे सतीति पूरणीयम्। सदा पदसङ्कोचापत्तेः। न च पदाहवनीय इति वाच्यं सत्युपवीते यज्ञसूत्रान्तरमादाय प्राचीनावीतित्वोपपत्तेः। अतएव व्युपवीत इत्यनेन पितृकृत्यादावप्युपवीतोपयोग उक्तः तथा चात्र समुच्चय एवेति उच्यते "यज्ञोपवीतिनिर्वर्त्यं ततः पर्य्युक्षणादिकम्"। इत्यत्र ततो यज्ञोपवीती

व्याख्यानात् तथाग्नौकरणहोमोऽपसव्येन वा कार्य्य इत्यत्र वाकारेण समुच्चयानुपपत्तेः ततश्च व्युपवीतपदं यज्ञसूत्रमात्रपरं सदोपवीतिनेत्यत्रापि यज्ञसूत्रधारणवतेत्यर्थः। न च मुख्याधारणेऽपि तत् स्यात्। धारणे विहिते इति विशेषणात्। न च मुख्यादिधारणं कुत्रापि कर्मणि विहितं न चैवं कर्माङ्गत्वेन सूत्रार्थत्वेन कर्माचरणकाले प्राचीनावीतित्वेनापि स्थित्यापत्तिः। उपनयनकाले यज्ञसूत्रविन्यासस्य प्राथमिकत्वात् औत्सर्गिकत्वेन बाधकं विना तदत्यागात्। "अस्त इन्द्रो सकृत् पुत्रं ब्राह्मण्यं जनयेत् पुमान्"। सकृदेकवारम् अत्र सम्यगाधानहेतुतया उत्तानकरचरणामेव कुर्वीत नातिर्य्यक् आहितकरचरणां स्त्रियम् ऋत्वभिगमनानन्तरं दक्षिणपार्श्वेण स्वापयेत्। पुरुषायिते तु गर्भानुत्पत्तिरिति शेषः। दक्षः। "प्रदोषपश्चिमौ यामौ वेदाभ्यासेन वै नयेत्। यामद्वयं शयानस्तु ब्रह्मभूयाय कल्पते"॥ इति ब्रह्मपुराणे। "इत्येतदखिलं प्रोक्तमहोरात्राश्रितं मया। ब्राह्मणानां कृत्यमेतदपवर्गफलप्रदम्॥ नास्तिक्यादथवालस्यात् ब्राह्मणो न करोति यः। स याति नरकं घोरं पशुयोनौ च जायते"॥ इति श्रीहरिहरभट्टाचार्य्यात्मज-श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्य्य-विरचितमाह्निकाचारतत्त्वं सम्पूर्णमिति।

# प्रायश्चित्ततत्त्वम्।

नमो गणेशाय।

प्रणम्य सच्चिदानन्दं सृष्टिस्थित्यन्तकारिणम्।
प्रायश्चित्तस्य तत्त्वानि वक्ति श्रीरघुनन्दनः॥

"प्रायश्चित्तस्य लक्ष्मात्र तथा तन्त्रप्रसङ्गकौ। कर्त्तृसंस्कारकाङ्गानां प्रतिकर्म्मनिवर्त्तनम्॥ गोग्रासभक्षणाच्छुद्धिस्तदभावादशुद्धता। प्रायश्चित्तं भवेन्नित्यं काम्यं नैमित्तिकन्तथा॥ काम्यादप्यङ्गहानौ स्यात् कियांस्तत्र फलोदयः। श्रद्धया लक्षणं पुण्यमज्ञानादपि सम्भवेत्॥ प्रायश्चित्ताद्विजातीयात्तादृक् पापविनाशनम्। गोधूमावयवे यव्यावयवस्तत्र साधकम्॥ लाघवं गौरवं वीक्ष्य सकृदावृत्तितस्तथा। दानव्रतादिमन्त्रेण पापमात्रस्य नाश्यता॥ चान्द्रायणादौ ग्रासानां परिसंख्याव्यवस्थितिः। प्रायश्चित्ते गुरौ भूते लघुपापस्य संक्षयः॥ गङ्गामाहात्म्यविस्तारो रात्रावपि च तत् क्रिया। बालादिना कृते पापे प्रायश्चित्तस्य हीनता॥ प्रायश्चित्ते तु वक्तव्येऽनुग्रहद्वयमेव हि। प्रायश्चित्तोपदेशादिचौराल्लाभविनिर्णयः॥ क्रयस्य निर्णयस्यैव तद्धानेः कालनिर्णयः। प्रायश्चित्तस्य पूर्वाह्नकृत्यं बाल्यभिदा तथा॥ धेनुमूल्यव्यवस्था च ज्ञानकृतनिरूपणम्। विप्रादिस्वामिभेदेन गोवधव्रतनिर्णयः॥ एकवर्षादिभेदेन रोधादेश्च निमित्ततः। अपालननिमित्तेन गोवधव्रतनिर्णयः॥ अपवादो गोवधस्य नरस्य च वधे तथा। चाण्डालपतितादीनामोदनादेश्च भक्षणे॥ प्रायश्चित्तविधिस्तत्र कृतघ्नस्य निरूपणम्। यवनादेस्तथोत्पत्तिस्तद्धास्यादौ व्रतन्तथा॥

अन्त्यजादेः स्त्रियाः सङ्गे भोजने च प्रतिग्रहे । चण्डालस्पृष्टतोयादौ गोमांसादौ च भक्षिते ॥ भार्य्यायां मातृवचने उपवीतस्य भेदने । निबध्यन्तेऽत्र संक्षेपात् सतां मुदमभीप्सता । प्रायश्चित्तविवेकादावन्यज्ज्ञेयं विचक्षणैः” ॥

अथ प्रायश्चित्तलक्षणम् । तत्र हारीतः । “प्रयतत्वाद्वोपचितमशुभं नाशयतीति” प्रायश्चित्तमिति यत्तपःप्रभृतिकं कर्म्म उपचितं सञ्चितमशुभं पापं नाशयतीति कृततत्तत्कर्म्मभिः कर्त्तुः प्रयतत्वात् वा शुद्धत्वादेव तत् प्रायश्चित्तं तथाच । पुनर्हारीतः । “यथा क्षारोपस्वेदचण्डनिर्णोदनप्रक्षालनादिभिर्वासांसि शुद्ध्यन्ति एवं तपोदानयज्ञैः पापकृतः शुद्धिमुपयान्ति”। शुद्धिं पापक्षयम् । यथा महाभारते । “अद्भिर्गात्राम् मलमिव तमो ह्यग्निभयाद् यथा । दानेन तपसा चैव सर्वपापमपोहति” ॥ तेन पापक्षयमात्रसाधनत्वेन विधिबोधितं कर्म्म प्रायश्चित्तम् । मात्रार्थलाभस्तु प्रयतत्वाद्वेत्येवकारार्थकवाशब्दात् । तथाच विश्वः । “वास्याद्विकल्पोपमयोरेवार्थे च समुच्चये” । एवञ्च “अश्वमेधेन शुद्ध्यन्ति महापातकिनस्त्विमे” । इति विष्णूक्तस्याश्वमेधस्यापि प्रायश्चित्तत्वम् । पापक्षयस्वर्गोभयसाधकस्य तु तस्यापि न प्रायश्चित्तत्वम् । प्रायश्चित्तस्य स्वध्वंसादिजनकत्वेऽपि तदंशे विधिबोधितत्वाभावान्नासम्भवः ।

अथ तन्त्रप्रसङ्गकौ । तत्रानेकमुद्दिश्य सकृत् प्रवृत्तिस्तन्त्रता । यथा दर्शपौर्णमासयोराग्नेयादीनाम् । यथाग्नेयाष्टाकपालोऽमावास्यायां पौर्णमास्याञ्चाच्युतो भवति उपांशुयाजमन्तरा यजति ताभ्यामग्नीषोमीयमेकादशकपालं पौर्णमासे प्रायच्छत् ऐन्द्रं दध्यमावास्यायामैन्द्रं पयो अमावास्यायामिति कर्म्मस्वरूपज्ञापकरूपोत्पत्तिश्रुत्युक्तानां षसां प्रधानयागानां

मध्ये आग्नेयाष्टाकपालैन्द्रदधिपयो यागानां त्रयाणाम् आग्नेयाष्टाकपालोपांशु-याजाग्नीषोमीयैकादश-कपाल—यागानां त्रयाणां सकृत् सकृदनुष्ठितेन प्रयाजाद्यङ्गेन उपकारः सिध्यति। प्रयाजादयश्च समिधो यजति तनूनपातं यजति इडो यजति बर्हिर्यजति स्वाहाकारं यजति इत्येवंरूपाः पञ्च। तथा नानाब्रह्मवधसत्त्वे सर्वोद्देशेन सकृत् प्रायश्चित्ते कृते सर्वब्रह्मवधजन्यपापनाशः। यथा वधानुवृत्तौ भविष्ये। “ब्राह्मणस्य ब्राह्मणयोर्ब्राह्मणानाञ्च पुत्रक। प्रायश्चित्तस्य चैकत्वं जातिमाश्रित्य लक्ष्यते॥ क्षामवत्यादिना यद्वत् कर्म्मणा पृतनापते। दैवदोषादकरणे जाते दोषकदम्बके॥ होमेनैकेन दोषाणां सर्व्वेषां क्षयमादिशेत्”॥ एवञ्च एकप्रायश्चित्तेनानेकदोषक्षयाय क्षामवतीष्टिः सर्व्वत्र दृष्टान्तः। तन्त्रताया हेतुश्च अदृष्टार्थैकजातीयकर्म्मणः कालदेशकर्त्रादीनां प्रयोगानुबन्धवैधहेतुभूतानामभेदे उद्देश्यविशेषाभाव इति। एवञ्च “स्नातोऽधिकारी भवति दैवे पैत्रे च कर्म्मणि”। इति विष्णूक्तम्। “अस्नात्वा नाचरेत् कर्म्म जपहोमादिकिञ्चन”। इति दक्षोक्तञ्च। क्रियाङ्गस्नानं कर्त्तृसंस्कारद्वारैव तद्दिनकर्त्तव्याशेषकर्म्मार्थमेकमेव न तु प्रतिकर्म्म कर्त्तव्यं तच्चारुणोदयस्नानादपि सिद्ध्यति। “सर्व्वमर्हति पूतात्मा प्रातःस्नायी जपादिकम्”। इति दक्षोक्तेः। “अस्नातस्य क्रियाः सर्व्वा भवन्तीह यतोऽफलाः। प्रातः समाचरेत् स्नानमतो नित्यमतन्द्रितः”॥ इति विष्णुधर्म्मोत्तराच्च। “अस्नातस्तु पुमान्नार्हो जप्यादिहवनादिषु। प्रातःस्नानं तदर्थन्तु नित्यस्नानमुदाहृतम्” ॥ इति शङ्खवचनाच्च। प्रातरित्यरुणोदयकालपरम्। “प्रातःस्नाय्यरुणकिरणग्रस्तां प्राचीमवलोक्य स्नायात्” इति विष्णुवाक्यैकवाक्यत्वात्। “सूर्य्योदयं विना नैव स्नानदानादिकाः क्रियाः”

इति तु अहःस्नानप्रधानकालपरम्। "दिवाकरकरैः पूतं दिवास्नानं प्रशस्यते"। इति पराशरेण प्रशस्यते इत्येकवाक्यत्वात् एवञ्च "प्रदोषे घटिकायुग्मं प्रभाते घटिकाद्वयम्। दिनवत् सर्वकर्म्माणि कारयेन्न विचारयेत्" इति हलायुधधृतवचनम् गौणकालपरम्। घटिकाऽत्र दण्डद्वयम्। "त्रियामां रजनीं प्राहुस्त्यक्त्वाद्यन्तचतुष्टयम्। नाडीनां तदुभे सन्ध्ये दिवसाद्यन्तसंज्ञिते"॥ इत्येकवाक्यत्वात् तथा चामरः। त्रियामा क्षणदा क्षपा इति यद्वा सूर्य्योदयपदं सूर्य्यकरस्पर्शपरम्। विष्णुपुराण एव अनुदितसूर्य्ये कर्मानधिकारमुक्त्वा अंशुस्पर्शे कर्माधिकारविधानात्। यथा "सत्कर्मयोग्यो न जनोनैवापः शुद्धिकारणम्। यस्मिन्ननुदिते तस्मै नमो देवाय भास्वते। स्पृष्टो यदंशुभिर्लोकः क्रियायोग्योऽभिजायते। पतित्रता कारणाय तस्मै शुद्धात्मने नमः"॥ सूर्य्योदयात् प्रागपि प्रकाशेन तत्करस्य विद्यमानत्वात्। एवञ्च "उपस्पृश्य द्विजो नित्यं शुद्धः पूतो भवेन्नरः"॥ इति मरीच्युक्ताचमनेन कर्त्तुः संस्काराभिधानात्। शुद्धः प्रक्षालितपाणिपाद इत्यर्थः। "यज्ञोपवीतिना आचान्तोदकेन कृत्यम्"। इति गोभिलोक्तं "क्रियां यः कुरुते मोहादनाचम्यैव नास्तिकः। भवन्ति हि वृथा तस्य क्रियाः सर्वा न संशयः"॥ इति वायुपुराणोक्तञ्च। कर्माङ्गाचमनं प्रयतेन प्रतिकर्म न कर्त्तव्यम् अतएव पाठकामस्यैव प्रयतस्याचमनं विशेष्य। मन्वत्र्यङ्गिरो बृहस्पतय आहुः। यथा "सुप्त्वा क्षुत्वा च भुक्त्वा च निष्ठीव्योक्त्वानृतं वचः। पीत्वापोऽध्येष्यमाणश्च आचामेत् प्रयतोऽपि सन्"॥ भक्तकामस्याप्याहापस्तम्बः। "भोक्ष्यमाणः प्रयतोऽपि द्विराचमेत्"। इति तच्च द्विजस्य ब्राह्मेण तीर्थेन। तथा याज्ञवल्क्यः। "प्राग्ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत्"। प्राक्प्राङ्मुख उप-

स्पृशेत् आचामेत् द्विजो न स्त्रीशूद्राविति मिताक्षरा। स्त्रीशूद्रयोस्तु दैवेन तीर्थेन। यथा नारदः "स्त्रियास्त्वैदशिकं तीर्थं शूद्रजातेस्तथैव च। सकृदाचमनाच्छुद्धिरेतयोरेव चोभयोः" ॥ एवञ्च साधारणाङ्गमात्रे प्रधानदेशकालान्वयानियम इत्युक्तम्। यत्तु अङ्गानां प्रयोगविध्यैक्ये हि तन्त्रतेत्युक्तम्। तत्कर्त्तृसंस्कारकाङ्गभिन्नानामेव यथा श्राद्धभेदेऽर्घ्यादीनामिति।

अथ प्रसङ्गः। अन्योद्देशेन प्रवृत्तावन्यस्यापि सिद्धिः प्रसङ्गः। यथा पश्वर्थमनुष्ठितेन प्रयाजादिना पशुतन्त्रमध्यपातिनः पुरोडाशस्यापि उपकारः सिद्ध्यति। यथा वा तप्ते पयसि दध्यानयति। सा वैश्वदेव्यामिक्षा भवति वाजिभ्यो वाजिनमित्यत्रामिक्षार्थं प्रवृत्तौ अनुद्दिश्य वाजिनस्यापि सिद्धिः। अतएव क्वचिदपचारे आमिक्षा पुरुषं प्रयोजयति न तु वाजिनम्। तस्य प्रसङ्गसिद्धत्वादित्युक्तम्। आमिक्षा घनीभूतं पयः। तथाच भट्टवार्त्तिकम्। "पय एव घनीभूतमामिक्षेत्यभिधीयते"। तदवशिष्टं जलं वाजिनम्। यथा वा काम्ययागनिष्पत्त्यर्थमनुष्ठितैराग्नेयादिभिर्नित्ययागसिद्धिरिति मिताक्षरोक्तम्। यथा वा दण्डनिपातप्रायश्चित्तेनैव गुरुणा तन्नान्तरीयकावगोरणप्रायश्चित्तमपि सम्पद्यत इति प्रायश्चित्तविवेकोक्तम्। तथा ब्राह्मणवधोद्देशेन द्वादशवार्षिके कृते क्षत्रियवधनिमित्तकत्रैवार्षिकप्रायश्चित्तस्य सिद्धिः। एवञ्च तन्त्रप्रसङ्गयोरनावृत्तेनैव कर्मणा नानादृष्टफलसिद्धौ लाघवमेव हेतुः। नन्ववगोरणक्षत्रियवधप्रायश्चित्तयोः कथं प्रसङ्गेन सिद्धिः सङ्कल्पादेरभावात् तयोः सङ्कल्पादिः कुत इति चेत् प्रायश्चित्तत्वात् तथात्वेऽपि कथं सङ्कल्प इति चेत् काम्यत्वात्। काम्यत्वमाह जावालः। "काम्यानां स्वफलार्थञ्च दोषघातार्थमेव च। अतः काम्यं नैमित्तिकञ्च प्रायश्चित्तमिति स्थितिः" ॥ सहजतसन्द-

लोकावाप्त्यादिफलकत्वेन काम्यानां चान्द्रायणादीनां क्वचित् स्वफलार्थं क्वचिद्दोषघातार्थञ्च कर्त्तव्यत्वं तत्र स्वफलार्थं स्वं चान्द्रायणादिकं फलं येषां पापानां तानि तथा तदर्थं तन्निमित्तं पापनिमित्तमिति यावत्। पापज्ञानवतएव चान्द्रायणाद्याचरणात्। तत्फलत्वम् अतो नैमित्तिकत्वं दोषघातार्थम् अतः काम्यत्वम् आसत्तिक्रमेणान्वयः। अतः पापक्षयकामनावदधिकारिकर्त्तव्यत्वेन पापनिश्चयवदधिकारिकर्त्तव्यत्वेन च काम्यत्वं नैमित्तिकत्वञ्चेति द्वयोरेवावगम्यमानत्वात् जातेष्टिवदधिकारयोः सम्वलनम् इति एवञ्च काम्यस्य सर्वशक्त्यधिकरणे सर्वाङ्गोपेतस्यैव फलवत्त्वाभिधानात् तस्यापि प्रसङ्गविषयत्वेन काम्ये हि काम्याभिलापसहितकुशतिलजलत्यागरूपः सङ्कल्पः शास्त्रार्थ इति प्रक्रमाधिकरणोक्तेन। "प्रत्येकं नियतं कालमात्मनो व्रतमादिशेत्। प्रायश्चित्तमुपासीनो वाग्यतस्त्रिसवनं स्पृशेत्"॥ इति शङ्खलिखितवचने प्रत्येकं नियतं कालमिति तत्तद्व्रतकालसंख्याम् आत्मनो व्रतम् आत्मसम्बन्धित्वेन आत्मकर्त्तृत्वेन इति यावत्। तेनामुकव्रतमहं करिष्ये इति चादिशेदुल्लेखं कुर्य्यात् इत्यनेन च प्राप्तस्य सङ्कल्पस्य वाधः। एवं तदन्ते दक्षिणायाः शुद्ध्यर्थं श्राद्धस्य च वाधः। तदभिहितं भविष्ये। "क्रियते शुद्धये यत्तु ब्राह्मणानाञ्च भोजनम्। शुद्ध्यर्थमिति तत् प्रोक्तं वैनतेयमनीषिभिः"॥ यत्तु शुद्धये इति प्रायश्चित्तादौ तदाह जावालः। "प्रारम्भे सर्वकृच्छ्राणां समाप्तौ च विशेषतः। श्राद्धं कुर्य्यात् व्रतस्यान्ते गोहिरण्यान्नदक्षिणम्" इति। वाचस्पतिमिश्र आह। तन्न समाप्तावित्यस्य व्याख्यातत्वात् व्रतस्यान्ते इत्यस्य पुनरुक्तत्वापत्तेश्च। श्राद्धविवेककारास्तु आरभ्य इत्यर्द्धानन्तरम् "आज्येनैव हि शालाग्नौ जुहुयात् व्याहृतीः पृथक्"। इत्यर्द्धमधिकं

लिखितवन्तः। प्रायश्चित्तानन्तरं पापक्षयार्थं श्राद्धं कर्त्तव्यमिति व्याख्यातवन्तश्चेति। शालाग्नावित्युपादानात् साग्नेरेव होमः। व्रतस्यान्त इति प्रायश्चित्तमात्रस्योपलक्षणम्। भविष्ये शुद्धये इति सामान्यतोऽभिधानात्। अन्यथा त्रैमासिकव्रताद्युक्तदक्षिणाविशेषस्तदनुकल्पधेनुदानादौ प्रायश्चित्तविवेकाद्युक्तोऽपि न स्यात्। "वृषभैकादशा गाश्च दद्यात् सुचरितव्रतः" इत्यभिधानात्। एवञ्च शुद्धिहेतुपार्वणश्राद्धं जीवत्पितृकेणापि कर्त्तव्यं संस्काराङ्गवृद्धिश्राद्धवत्। "जीवे पितरि वै पुत्रः श्राद्धकालं विवर्जयेत्। येषां वापि पिता कुर्य्यात् तेषामेके प्रचक्षते"॥ इति हारीतवचनोत्तरार्द्धेन प्रधानसाङ्गतार्थं श्राद्धविधानात्। एवं प्रायश्चित्तोत्तरकर्त्तव्यपापक्षयज्ञापकगोग्रासस्यापि वाधः। यथा चरितव्रतविधौ याज्ञवल्क्यः। "घटेऽपवर्जिते ज्ञातिमध्यस्थो यवसं गवाम्। प्रदद्यात प्रथमं गोभिः सत्कृतस्य हि सत्क्रिया"॥ अपवर्जिते प्रक्षिप्ते। "प्रायश्चित्ते तु चरिते पूर्णकुम्भमपां नवम्। तेनैव सार्द्धं प्रास्येयुः स्नात्वा पुण्यजलाशये"॥ इति मनूक्तेः। तेन ज्ञातिना प्रास्येयुः क्षिपेयुः कृतप्रायश्चित्ता इति शेषः। गवां सत्कारश्च तद्दत्ततृणभक्षणमेव। यदि तु गावस्तद्दत्तयवसं न गृह्णीयुस्तदा पुनः प्रायश्चित्तमनुतिष्ठेत्। यथा हारीतः। "स्वशिरसा यवसमादाय गोभ्यो दद्यात् यदि ताः प्रमुदिता गृह्णीयुरथैनं प्रावर्त्तयेयुरिति"। एनं कृतप्रायश्चित्तम् इतरथा नेत्यभिप्रेतमिति मिताक्षरा। एवञ्च हारीतयाज्ञवल्क्यवचनैकवाक्यतया वक्ष्यमाणमनुवचनद्वयमपि सामान्यप्रायश्चित्तोत्तरकर्त्तव्यतापरम्। न तु प्रकरणादसत्प्रतिग्रहमात्रपरं ततश्चासत्प्रतिग्रहमात्रपरतया यत् कुल्लूकभट्टव्याख्यानं तत् प्रदर्शनमात्रपरम्। एवं घटापवर्जनमपि न पतितमात्रविषयम्। यथा मनुः।

"उपवासकृशं तन्तु गोव्रजात् पुनरागतम्। प्रणतं परिपृच्छेयुः साम्यं सौम्येच्छसीति किम्। सत्यमुक्ता तु विप्रेषु विकिरेत् यवसं गवाम्। गोभिः प्रवर्त्तिते तीर्थे कुर्य्युस्तस्य परिग्रहम्"॥ सत्यमिति नाहमेतत् पापं करिष्यामीति। तीर्थे गोभिस्तृणभक्षणेन पवित्रीकृते देशे। उच्यते। प्रायश्चित्तस्य नित्यत्वेनाङ्गवैकल्येऽपि फलसिद्धिः। तथाच प्रायश्चित्तस्य नैमित्तिकत्वं निमित्तत्वञ्च मिताक्षराकृदाह। नैमित्तिकोऽयं प्रायश्चित्ताधिकारः। अत्र चार्थवादावगतपापक्षयेऽपि जातेष्टिन्यायेन साध्यतया स्वीक्रियते। न च दुरितपरिजिहीर्षयानुष्ठीयते एतावता काम्याधिकारमात्रशङ्का न कार्य्या। यस्मात्। "चरितव्यमतो नित्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये। निन्द्यैश्च लक्षणैर्युक्ता जायन्ते निष्कृतैनसः"॥ इति मनुवचनेऽकरणे दोषश्रवणेनावश्यकतावगमात्। तथाच याज्ञवल्क्यः। "प्रायश्चित्तमकुर्वाणाः पापेषु निरता नराः। अपश्चात्तापिनः कष्टान्नरकान् यान्ति दारुणान्"॥ प्रायश्चित्तमकुर्वाणा दुःसहान्नरकान् प्राप्नुवन्ति इत्यन्तेन। वस्तुतस्तु पूर्वोक्तमनुवचने नित्यमिति श्रवणात् नित्यत्वम् अतएव सर्वैरेव निबन्धृभिः श्राद्धविशेषस्य नित्यत्वे एतांस्तु श्राद्धकालान् वै नित्यानाह प्रजापतिरित्युक्तम्। तथाचोक्तं "नित्यं सदा यावदायुर्न कदाचिदतिक्रमेत्। उपेत्यातिक्रमे दोषश्रुतेरत्यागदर्शनात्॥ फलाश्रुतेर्वीप्सया च तन्नित्यमिति कीर्त्तितम्। तस्मात् कर्त्तव्यमेवेह प्रायश्चित्तं विशुद्धये"॥ इति शङ्खलिखितवाक्ये एवकारेण नियमादवश्यं करणं प्रतीयते। अवश्यकरणञ्चाकरणान्निवृत्तिः तदतिक्रमे तु "विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात्। अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति"॥ इति याज्ञवल्क्यवचने प्रत्यवायश्रुतेः। नित्यत्वम् अङ्गिरसापि।

"कृते निःसंशये पापे न भुञ्जीतानुपस्थितः। भुञ्जानो वर्द्धयेत् पापमसत्यं पर्षदिब्रुवन्"॥ इत्यनेन पापवतो भुञ्जानस्य प्रायश्चित्तार्थमनुपस्थितस्य पापवृद्धिदर्शनात् प्रायश्चित्तस्य नित्यत्वमभिहितम्। यथा स्मृतिसागरे देवलः। "कालातिरेके द्विगुणं प्रायश्चित्तं समाचरेत्। द्विगुणं राजदण्डञ्च दत्त्वा शुद्धिमवाप्नुयात्"॥ कालातिरेके संवत्सरातिरेके। "संवत्सराभिशमस्य दुष्टस्य द्विगुणो दमः"। इति मनुवचने संवत्सरात् परतो द्विगुणदण्डदर्शनेन दण्डवत् प्रायश्चित्तानि भवन्तीति न्यायेन एकत्र निर्णीतः शास्त्रार्थो बाधकमन्तरेणान्यत्रापि तथा इति न्यायाच्च। आकाङ्क्षितत्वेन प्रायश्चित्तेऽपि तथैव युक्तत्वात्। अधिकन्यूनकाले तु तदनुसारादेव व्यवस्थेति। अतएव यथा "क्षारोपस्वेदचण्डनिर्णोदनप्रक्षालनादिभिर्वासांसि शुद्ध्यन्ति एवं तपो दानयज्ञैः पापकृतः शुद्धिमुपयान्ति ध्मायमाना इव धातवोऽग्नौ दोषेभ्यस्तस्मात् विभ्रमात् स्नेहात् लोभात् भयात् प्रमादाद्वा अशुभं कृत्वा सद्यः शौचमारभेत्" इति हारीतेन सद्यः करणमुक्तम्। अत्रापि व्यवहारचिन्तामणौ विशेषः। "नाष्टम्यां न चतुर्दश्यां प्रायश्चित्तपरीक्षणे। न परीक्षा विवाहश्च शनिभौमदिने तथा"॥ एवञ्च प्रायश्चित्तस्य नित्यत्वे जावालोक्तं काम्यत्वं कथं सङ्गच्छते। काम्यत्वं हि अनित्यत्वम् असति कामे परित्यक्तुं शक्यत्वात्। तथा सत्येकस्य कर्मणो नित्यत्वकाम्यत्वाभ्यां द्वैरूप्याङ्गीकारे नित्यानित्यसंयोगविरोधः। मैवं संयोगपृथक्त्वन्यायात् स च न्यायश्चतुर्थाध्याये उक्तः यथा "खादिरे पशुं बध्नाति खादिरं वीर्य्यकामस्य यूपं कुर्वीत" इति श्रूयते अत्र संशयः काम्यस्यैव खादिरता नित्येऽपि स्यात् उत नेति। तत्र फलार्थत्वेनानित्यतया खादिरताया नित्यप्रयोगाङ्गता न

युक्ता। यच्च नित्येऽपि खादिरत्वश्रवणं तत्काम्यस्यैव पशुबन्धनाय यूपाश्रयज्ञापनार्थमतो न नित्ये खादिरतेति प्राप्तेराद्धान्ताय चतुर्थाध्यायसूत्रम्। एकस्योभयत्वे संयोगपृथक्त्वमिति। तत्र संयोगः सम्बन्धमात्रम्। एकस्य खादिरस्य क्रत्वर्थत्व पुरुषार्थत्व रूपोभयात्मकत्वे वाक्यद्वयेन च क्रतुशेषत्व फलशेषत्व लक्षणसंयोगभेदावगमात् न नित्यानित्यसंयोगविरोधः। न चाश्रयज्ञानार्थं नित्यवाक्यम्। सन्निधानादेवाश्रयलाभात् अत उभयार्था खादिरतेति। एवं "दध्ना जुहोति दध्नेन्द्रियकामस्य" इत्यादावुभयार्थतैव दधित्वस्य द्वेधाश्रवणात्। तस्मात् प्रायश्चित्तं नित्यं नैमित्तिकं काम्यञ्चेत्यतो यत्र प्रसङ्गसम्भावना तत्र नित्यत्वात् काम्याभिलापदक्षिणाद्यङ्गं विनाऽपि प्रधाननिष्पत्त्या फलनिष्पत्तिः। अतएव "क्षयं केचिदुपात्तस्य दुरितस्य प्रचक्षते। अनुत्पत्तिं तथा चान्ये प्रत्यवायस्य मन्वते॥ नित्यक्रियां तथा चान्ये ह्यनुसङ्गफलां श्रुतिम्"॥ इति जावालभविष्यपुराणाभ्यां सङ्कल्पादिकं विनाऽपि सन्ध्यादिवत् नित्यकर्म्मणा कृतेनैव पापक्षय उक्त इति। नित्यक्रियां नित्या क्रिया यस्याः श्रुतेः तां प्राप्येति शेषः। फलमिति पाठे तु छान्दसत्वम्। केवलावगोरणादौ प्रकारान्तरकृतप्रधाननिष्पत्तिरूप-वाधकाभावेन काम्यत्वात् काम्याभिलापादिरपि क्रियते। वस्तुतस्तु काम्ये नित्ये वा वैदिकमात्रे यथा कथञ्चित् प्रधाननिष्पत्तौ नाङ्गानुष्ठानार्थं प्रधानावृत्तिः। तथाच छन्दोगपरिशिष्टम्। "प्रधानस्याक्रिया यत्र साङ्गं तत् क्रियते पुनः। तदङ्गस्याक्रियायान्तु नावृत्तिर्न च तत्क्रिया"॥ अतएव नान्दीमुखश्राद्धप्रकरणशेषे प्रधानानामपि काम्यानां तत्तद्देशकालविहितानां तन्त्रेणैव सिद्धिरिति श्राद्धचिन्तामणिः। अथैवं मुमुक्षोर्नित्यकरणात् कथं न काम्यफलसिद्धिरिति चेन्न।

“सम्यक् संसाधनं कर्म्म कर्त्तव्यमधिकारिणा। निष्कामेण सदा पार्थ काम्यं कामान्वितेन च”॥ इति भविष्यपुराणेन स्वर्गादिकाम्ये कामनावतएवाधिकारात् अतएव काम्यो नैमित्तिको वार्थो नित्यमर्थं विकृत्याभिनिविशते न नित्य इत्युक्तम्। द्वादशाध्याये सम्यक्संसाधनं प्रथमकल्पादिनाकरणं यस्य तत्तथा। अधिकारिणार्थिना विदुषा समर्थेन। निष्कामेणेति नित्यपरं मुमुक्षुपरञ्च। अतएव मार्कण्डेयपुराणेऽपि फलार्थिनं प्रति तत्तत्फलदातृत्वं तदनर्थिनं मुमुक्षुं प्रति मुक्तिदातृत्वं पितॄणामाह रुचिः। “पितॄन्नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताः स्वधा भुजः काम्यफलाभिसन्धौ। प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां विमुक्तिदा येऽनभिसंहितेषु”॥ एवं देवतानामपि फलदातृत्वमधिकारिभेदेनेति।

अथाङ्गहीने काम्येऽपि फलम्। ननु काम्ये अङ्गाभावे फलसिद्धौ साङ्गाद्धि वैदिककर्म्मणः फलावश्यम्भावनियम इत्यस्य सर्वशक्त्यधिकरणोक्तस्य का गतिरिति चेत् समग्रफलविषयतया गृहाण तथाच कल्पतरौ योगियाज्ञवल्क्यः। “श्रद्धाविधिसमायुक्तं कर्म्म यत् क्रियते नृभिः। सुविशुद्धेन भावेन तदानन्त्याय कल्पते”॥ श्रद्धा शास्त्रार्थे दृढप्रत्ययः। “प्रत्ययो धर्म्मकार्य्येषु तथा श्रद्धेत्युदाहृता। नास्ति ह्यश्रद्दधानस्य धर्मकृत्ये प्रयोजनम्”॥ इति देवलवचनात्। अत्राङ्गप्रकर्षेण फलप्रकर्ष उक्तः। अङ्गाप्रकर्षे तु न फलाभावः। किन्तु फलाल्पत्वमाह योगियाज्ञवल्क्यः। “आर्षं छन्दश्च दैवत्यं विनियोगस्तथैव च। वेदितव्यं प्रयत्नेन ब्राह्मणेन विशेषतः”॥ मन्त्राणामित्यनुषज्यते। विशेषतो विशेषफलाय। “अविदित्वा तु यः कुर्य्यात् याजनाध्यापनं जपम्। होममन्तर्जलादीनि तस्य चाल्पफलं भवेत्”॥ अन्तर्जलादीनि

जलमध्यक्रियमाणानि अघमर्षणजपादीनि। होममन्यच्च यत्किञ्चिदिति क्वचित्पाठः। अतएव प्रतिनिधावङ्गहानेरावश्यकत्वेऽपि काम्यायामपि देवप्रतिष्ठायां विहितद्रव्याभावे प्रतिनिधिमाह कल्पतरौ भविष्यपुराणम्। "काञ्चनं हरितालञ्च सर्वाभावे विनिक्षिपेत्। दद्याद्वीजौषधिस्थाने सहदेवां यवानपि"॥ सहदेवा मेदिन्युक्ता यथा "सहदेवा बला दण्डोत्पलयोः शारिवौषधौ। सहदेवौ तु सर्प्याक्ष्यां सहदेवौ तु पाण्डवौ"। प्रायश्चित्तविवेकेऽपि पापवत् पुण्येऽपि अज्ञानात् ज्ञाने द्वैगुण्यमाहापस्तम्बः। "यः प्रमत्तो हन्ति प्राप्नोति दोषफलं सङ्कल्पेन भूय एवमन्येष्वपि दोषवत्सु कर्मसु तथा पुण्यक्रियासु च"। यथा ब्रह्मवधादिषु पापस्य निषिद्धतयोपयुक्तब्राह्मणादिज्ञाने द्वैगुण्यं तथा गङ्गास्नानादिषु पुण्यस्य विधेयतावच्छेदकगङ्गादिज्ञाने द्वैगुण्यं ततश्च गङ्गादिज्ञानं विनापि पुण्यं भवत्येव किन्तु गङ्गादिज्ञानात् यथा म तथेति एवञ्चाज्ञानतः पुण्यकर्मणः स्वर्गादिकामनां विनापि तत्तत्फलसिद्धेर्न कामनाया अवश्यापेक्षा अतएव प्रासङ्गिकी फलसिद्धिरप्युपपन्ना अतएव विष्णुपुराणे। आकाशवागपि "अनुक्तापि वचः किञ्चित् कृतं भवति कर्मणः" इति प्रासङ्गिकादितरत्र ज्ञानकृतपुण्यकर्मणि तु स्वर्गादिकामनायाः सम्भवात् द्वैगुण्यफलार्थं कामनाद्यपेक्षन्ते धीमन्तः। व्यक्तं प्रतिष्ठाकाण्डे कल्पतरौ विष्णुसर्पणे भविष्यपुराणम्। "दुष्कृतं सुकृतं वापि ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा। तत्सर्वमात्मना सार्द्धं मया तुभ्यं निवेदितम्"॥ एवं ज्ञानाभावादभिलापादेः कः प्रसङ्गः तथा च विष्णुपुराणम्। "भगवद्विष्णोः पादाङ्गुष्ठविनिर्गतजलस्यैतन्माहात्म्यं यन्न केवलमभिसन्धिपूर्वकस्नानाद्युपयोगेषूपकारकमनभिसंहितमप्यपेतप्राणस्यास्थिचर्मस्नायुकेशाद्युत्सृष्टं शरीर-

जमपि तदुपरि पतितं सद्यः शरीरिणं स्वर्गं नयति” इति तथा शिवरात्रिव्रते दैववशसम्पन्न लुब्धदेहसंसर्गेण जलश्रीफलपत्र पातादिनापि श्रीमहादेवपादादीनां प्रीतिरित्यादि दर्शनाच्चाङ्गहीनादपि प्रधानात् फलसिद्धिः। अतएव लोके पुण्यबुद्ध्या अर्च्चाद्यङ्गं विनापि यथा कथञ्चित् दीयते इति व्यवहारः तथा च दानरत्नाकरे। “सर्वत्र गुणवद्दानं श्वपाकादिष्वपि स्मृतम्। देशे काले विधानेन पात्रे दत्तं विशेषतः” ॥ गुणवत् फलवत् देशे स्वभावतः कृष्णसारप्रचरणदेशे अत्रापि स्वभूमौ परभूमौ तु तदनुमतायाम्। तथा च महाभारतम्। “नाननुज्ञातभूमिर्हि यज्ञस्य फलमश्नुते” ॥ यज्ञस्येति वैदिककर्म्मोपलक्षणम्। काले रात्र्यादीतरत्र विधानेन प्राङ्मुखत्वादिना। पात्रे विद्यातपस्या युक्ते। दत्तं दानं विशेषतः समग्रफलार्थेत्यर्थः। तथा च दृष्टान्ततया ज्ञानकृतपापस्य भवदेवभट्टेनापि शूद्रगतवस्त्रादिदानकामस्यैव भ्रान्त्या ब्राह्मणगतवस्त्रादिदानत्वेऽपि न कामनाकृतब्राह्मणगतदानफलम्। अपि तु ब्राह्मणगतदानमात्रफलम् इत्यभिहितम्। एवञ्च दानादिकर्म्म मया कर्त्तव्यम् इति सम्यक्सङ्कल्पजनितेच्छापि धर्म्मकारणम्। “सम्यक्सङ्कल्पजः कामो धर्म्ममूलमिदं स्मृतम्” ॥ इति याज्ञवल्क्यवचनात्। तथा “धर्म्माय पुनरारम्भः सङ्कल्पोऽपि न निष्फलः” इति तट्टीकायां यत्तु योगियाज्ञवल्क्यवचनम्। “विधिहीनं भवेद्दुष्टं कृतमश्रद्धया तु यत्। तद्धरन्त्यसुरास्तस्य मूढस्य दुष्कृतात्मनः” इति तत् पूर्वोक्तश्रद्धाविधिसमायुक्तमित्यस्य प्रशंसार्थम्। यथा व्यस्ततिथेर्निन्दा युग्मतिथेः प्रशंसार्था अन्यथा वाक्यभेदः स्यात् पूर्वोक्तापस्तम्बवचनविरोधश्च स्यात्।

अथ विजातीयप्रायश्चित्तात् विजातीयपापनाशः। तथा

च प्रायश्चित्तविवेके दण्डनिपातप्रायश्चित्तेनैव गुरुणा तन्नान्तरीयकस्यावगोरणस्य प्रायश्चित्तमपि सम्पद्यते इत्युक्तम्। ननु दण्डनिपातप्रायश्चित्तात् तदन्तःपातिनोऽवगोरणप्रायश्चित्तस्य कथं सिद्धिः। तथा हि मनुः। "अवगूर्य्य चरेत् कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने"॥ अवगूर्य्य ब्राह्मणताड़नार्थं दण्डमुद्यम्य शतयातनाजनकं यत् पापमुत्पादितं तत्पापक्षयकामः कृच्छ्रं प्राजापत्यव्रतं चरेत्। तदुक्तं शंय्वधिकरणे। शंयोः प्रजापतेः प्रार्थनया देवैर्ब्राह्मणावगोरणफलत्वेन शतयातनाभिहिता। तथा च श्रुतिः। "शंयुः प्रजापतिः प्रजाविनेता प्रजाहितेरतश्च देवानां हविर्वह्नाशिषोऽयाचत देवास्त्ववगोरणे शतयातनास्त्वित्याशिषो ददत" इति शास्त्रदीपिकादौ दर्शपौर्णमासप्रकरणे "देवा वै शंयुं वार्हस्पत्यम् अब्रुवन् हव्यं नोवहेति किं मे प्रजाया इति ते ब्रुवन् यो ब्राह्मणायावगुरेत्तं शतेन यातयेद् यो निहन्यात्तं सहस्रेण यो लोहितमकरोत् यावतः पांशून् व्यनक्ति तावतः परिवत्सरान् स स्वर्गात् प्रच्यवेत् तस्मात् ब्राह्मणान्नावगुरेत् न हन्यात् न लोहितं कुर्य्यात् इति"। इतिहासात्मकं ब्राह्मणञ्च। अत्र संशयः। ब्राह्मणावगोरणादिनिषेधोऽयं दर्शार्थः पुरुषार्थो वेति। अत्र पूर्वपक्षः। प्रकरणात् दर्शार्थोऽयं दर्शेऽवगोरणादिकं न कार्य्यमित्यर्थः। तदुक्तं फलाभावात् क्रतोश्चापि प्रकृतत्वात् तदर्थता इति अत्र राद्धान्ताय जैमिनिसूत्रम्। शंयौ सर्वपरीदानादिति। शंयौ शंयुपदयुक्तप्रागुक्तब्राह्मणसंज्ञकवेदेऽवगोरणाद्यभावो न दर्शयागाङ्गं कुतः सर्वपरीदानात् प्रकरणात् वाक्यस्य बलवत्त्वेन सर्वस्मिन् कालेऽवगोरणादीनां खण्डनात् तदुक्तम्। "क्रमत्वात्तु फलस्यायं पुरुषार्थो न तु क्रतोः इति"॥ ननु कथमाशु विनाशिनोऽवगोरणस्य कालान्तरभाविशतयातनाहेतुत्वम् इति

चेन्न हेतुहेतुमतोर्लिंङिति पाणिनिसूत्रानुशिष्टलिङावगोरणशतयातनयोर्हेतुहेतुमद्भावोऽवगम्यते। आशुविनाशिनस्तदनुपपत्त्या तद्द्वारीभूतदुरितापूर्वकल्पनात्। एवं पञ्चम्या तृतीयया विशेषणेन च साधनत्वं प्रतीयते। यथा याज्ञवल्क्यः। “विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात्। अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति”॥ मनुः। “शरीरजैः कर्मदोषैर्याति स्थावरतां नरः। वाचिकैः पक्षिमृगतां मानसैरन्त्यजातिताम्”। यमः। सुरापो ब्रह्महा गोघ्नः सुवर्णस्तेयकृन्नरः। पतितैः संप्रयुक्तश्च कृतघ्नो गुरुतल्पगः। एते पतन्ति सर्वेषु नरकेष्वनुपूर्वशः”॥ अत्रैते सुरापादयः पतन्तीति सुरापादीनां पतनकर्त्तृत्वावगतेः। कर्त्तृत्वञ्च साधनत्वविशेषः। अतः सुरापानादिविशिष्टस्य पतनसम्बन्धे विशेषणस्य सुरापानादेः पतनसाधनत्वमवगम्यते। तत्र चिरध्वस्तं फलायालं न कर्मातिशयं विना”इति न्यायेनावगोरणादेर्व्यापाररूपं पापं शतयातनादेः कारणं कल्प्यते। अत्र यद्यपि पापस्य कार्य्यानन्वितत्वात् तत् सत्तायामप्रामाण्यं प्रतिभाति। यदाह जैमिनिः। “आम्नायस्य क्रियार्थत्वात् आनर्थक्यमतदर्थानामिति”आम्नायस्य वेदस्य क्रियार्थत्वात् कार्य्यप्रतिपादकत्वात् प्रामाण्यमिति शेषः। एतदर्थानां कार्य्यप्रतिपादकानाम् आनर्थक्यम् अप्रमाण्यमिति तथापि “विधिनात्वेकवाक्यत्वात् स्तुत्यर्थेन विधीनां स्युस्तद्वद्भूतार्थानां क्रियार्थेन सह आम्नायादिति” आभ्यां जैमिनिसिद्धान्तसूत्राभ्यां क्वचिद्विधिशक्तिरेवावसीदन्तीत्यादिभिरुत्तभ्यते। इति विध्येकवाक्यत्वात् क्वचिद्भूतार्थानां सिद्धार्थानां क्रियार्थत्वेन सहैकवाक्यत्वाच्च प्रामाण्यमुक्तं तथा अत्रापि “क्षारोपस्वेदचण्डनिर्णोदनक्षालनादिभिर्वासांसि शुध्यन्ति। एवं तपोदानयज्ञैः पापकृतः शुद्धिमुपयन्ति ध्मायमाना इव

धातवोऽग्नौ दोषिभ्यस्तस्मात् विस्रम्भात् स्नेहात् लोभाद्भयादशुभं कृत्वा सद्यः शौचमारभेदिति” हारीतादिप्रायश्चित्तविधिवाक्यसमभिव्याहारात् पापस्य सत्त्वे प्रामाण्यम् इति याज्ञवल्क्यः। “विप्रदण्डोद्यमे कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने”।

कल्पतरुमिताक्षरयोर्गौतमः। “अथातः कृच्छ्रान् व्याख्यास्यामो हविष्यान् प्रातराशान् भुक्त्वा तिस्रो रात्रीर्नयेदथापरं त्र्यहं नक्तं भुञ्जीत अतःपरं त्र्यहं न कञ्चन याचेत अथापरं त्र्यहमुपवसेत्” इति। अयमेव मनुना प्राजापत्यत्वेन परिभाषितो यथा। “त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं सायं त्र्यहमद्यादयाचितम्। त्र्यहं परन्तु नाश्नीयात् प्राजापत्यं चरन् द्विजः”॥ ग्राससंख्या पराशरेणोक्ता। “सायं द्वाविंशतिर्ग्रासाः प्रातः षड्विंशतिः स्मृताः। अयाचिते चतुर्विंशः परञ्चानशनं स्मृतम्”॥

अतिकृच्छ्रमाह मनुः। “एकैकं ग्रासमश्नीयात् त्र्यहाणि त्रीणि पूर्ववत्। त्र्यहञ्चोपवसेदन्त्यमतिकृच्छ्रं चरन् द्विजः”॥ त्र्यहाणि त्रीणि नवाहानि पूर्ववत् प्रातःसायमयाचितैः प्राजापत्यवत्। एवञ्चातिकृच्छ्रमध्ये कथं कृच्छ्रसिद्धिः। न ह्येकग्रासमध्ये द्वाविंशतिग्रासाः सम्भवन्ति सत्यं नियमपक्षे एवं दोषो भवतु परिसंख्यापक्षे तु नैष दोषः। एकग्रासातिरिक्तभोजनाभावे द्वाविंशतिग्रासाद्यतिरिक्तभोजनाभावः सिद्ध्यति। एवञ्चेत् भवतु दण्डनिपातप्रायश्चित्तादवगोरणप्रायश्चित्तसिद्धिः। किन्तु प्रचारिणो गुरुदारगमनप्रायश्चित्तेनैव गुरुणा लघ्ववकीर्णप्रायश्चित्तं कृतं भवेदिति प्रायश्चित्तविवेककृदुक्तं कथं सङ्गच्छते। तथा हि याज्ञवल्क्यः। “आचार्य्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः। छित्वा लिङ्गं वधस्तस्य सकामायास्तु योषितः”॥ तथा “अवकीर्णी भवेद्गत्वा ब्रह्मचारी तु योषितम्। गर्दभं पशुमालभ्य नैर्ऋतं स विशुध्यति”॥ अत्र मरणेन कथं

योगसिद्धिरिति चेन्न मरणवैकल्पिकचतुर्विंशतिवार्षिकव्रतप्रतिनिधिधेनुदाने एतद्यागप्रतिनिधिधेनुदानसम्भवात् गुरुप्रायश्चित्तेनैव लघुपापनाशस्य वक्ष्यमाणत्वाच्च। अथ यत्र विहितयवादीनामवघातादिना नाशे यवादिसाध्यत्वं पुरोडाशस्य न स्यादतोऽवयवपर्य्यन्तः शास्त्रार्थः। एतच्च यवानामपचारे प्रतिनिधीभूतगोधूमादिगतयवाद्यवयवेषु प्रत्यभिज्ञानसम्भवात् प्रतिनिधिन्यायावसर इति। अथ गोधूमादिगताः कथं यवाद्यवयवाः न खल्वन्यत्रान्यावयवाः सम्भवन्ति। उच्यते। अवयवाः खलु केचन यवादिमात्राणां केचन गोधूममात्राणां केचन उभयवर्गाणां निष्पादकाः। तत्रोभयनिष्पादकानामुभयत्र सम्भवात् गोधूमादिगता अपि यवाद्यवयवा यवाद्यवयवत्वेन प्रत्यभिज्ञायन्ते व्यवह्रियन्ते च। किन्तु यवादिमात्रारम्भकाणामसम्भवात् तदितरमात्रारम्भकाणाञ्च सम्भवात् न यागादीनां पूर्णनिष्पत्तिः अतो मुख्यालाभ एव प्रतिनिधिरिति अतएव जीमूतवाहनप्रभृतिभिरुक्तं यथा मुद्गापचारे माषप्रतिनिधौ मुद्गानां माषाणाञ्च यज्ञसम्बन्धेऽयज्ञिया वै माषा इति माषा निषिद्धाः माषगतमुद्गावयवोपादानेऽपि माषाणां यज्ञसम्बन्धो नास्तीति वक्तुं न शक्यते माषामिश्रितानामेव यज्ञसम्बन्धप्रतीतेरित्यन्तेन तत्र माषामिश्रितानामिति माषमात्रारम्भकावयवामिश्रितानामित्यर्थः अन्यथा मुद्गेऽप्युभयारम्भकावयवत्वे माषारम्भकस्यापि तत्र सत्त्वात् यागे तद्ग्रहणमनुपपन्नं स्यात्। अतएवोक्तं यत्र यत्र सौसादृश्यं तत्र तत्रावयवानां भूयस्त्वेन त्यागायोगात्। सुसदृशा एव गृह्यन्ते तस्यासम्भवे तु यत्किञ्चिदवयवसत्त्वेनापीति। परिशिष्टप्रकाशेऽपि। यत्र विहितद्रव्यावयवा एव प्रत्यभिज्ञायन्ते यथा गवये गवावयवास्तत्र हि प्रतिनिधिन्याय इत्युक्तम्।

एवञ्च व्रताचरणधेनुदानयोः प्रतिनिधिन्यायासम्भवात् कथं प्रतिनिधित्वम् इति चेन्न वचनाद्भविष्यति यथा मनुः। "ख्यापनेनानुतापेन तपसाध्ययनेन च। पापकृत् मुच्यते पापात् तथा दानेन चापदि"॥ आपदीत्यनेन अध्ययनतपसोर्दानं प्रतिनिधिरित्यर्थः। मरणयागादीनामपि तपस्त्वं यैर्यैर्व्रतैरपोहेतेत्युक्त्वा मरणादीनामपि मनुनोक्तत्वात्। "उमेति चपला पुत्रि न क्षमं तावकं वपुः। सोढुं क्लेशस्वभावस्य तपसः सौम्यदर्शने"॥ इति मत्स्यपुराणोक्तवैधक्लेशजनकस्वभावत्वाच्च। उमेति चपलात्वमिति शेषः। अतएव शातातपः। "देवतार्थे पितॄणाञ्च ब्राह्मणार्थे च नित्यशः। स्वं चिन्वतां स्ववृत्तेषु यो नः क्लेशः स नस्तपः"॥ स्वं धनं चिन्वतां सञ्चयं कुर्वतां स्ववृत्तेषु प्रतिग्रहादिषु इति कल्पतरुः। अत्र विशेषदानमाह संवर्त्तः। "हिरण्यदानं गोदानं भूमिदानं तथैव च। नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि"॥ यमः। "तिलं ददाति यः प्रातस्तिलान् स्पृशति खादति। तिलैः स्नातस्तिलैर्जुह्वत् सर्वं तरति दुष्कृतम्"॥ अग्निपुराणम्। ब्रह्महत्याकृतं पापमन्नदानात् प्रणश्यति। अन्नदः पापकर्त्तापि पूतः स्वर्गे महीयते"॥ हिंसात्मके तु दानस्य प्राधान्यं तपसः प्रतिनिधित्वमाह मनुः। "दानेन वधनिर्णेकं सर्पादीनामशक्नुवन्। एकैकशश्चरेत् कृच्छ्रं द्विजः पापापनुत्तये"॥ वधनिर्णेकं वधात् शौचम्। वस्तुतस्तु पापक्षयसाधनत्वेनोक्तानां कृच्छ्रचान्द्रायणादीनां यथा कथञ्चित् येन केनाप्यनुष्ठितेन यस्य कस्यापि पापस्य क्षयः। तथा च विश्वामित्रः। "कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि शुद्धाभ्युदयकारणम्। प्रकाशे च रहस्ये च संशयेऽनुक्तके स्फुटे॥ प्राजापत्यः शान्तपनः शिशुकृच्छ्रः पराकः। अतिकृच्छ्रः पर्णकृच्छ्रः सौम्यः कृच्छ्रातिकृच्छ्रकः॥

महाशान्तपनः शुद्धौ तप्तकृच्छ्रस्तु पावनः । जलोपवासकृच्छ्रस्तु ब्रह्मकूर्चस्तु शोधकः ॥ एते व्यस्ताः समस्ता वा प्रत्येकमेकशोऽपि वा । पातकादिषु सर्व्वेषु पातकेषु प्रयततः । कार्य्याश्चान्द्रायणैर्युक्ताः केवला वा विशुद्धये ॥ शिशुचान्द्रायणं प्रोक्तं यतिचान्द्रायणन्तथा । यवमध्यं तथा प्रोक्तं तथा पिपीलिकाकृतिः ॥ उपवासस्त्रिरात्रन्तु मासः पक्षस्तदर्द्धकम् । षड़ब्दद्वादशाब्दादिकार्य्यं शुद्धिफलार्थिना ॥ उपपातकयुक्तानामनादिष्टेषु चैव हि । प्रकाशे च रहस्ये च अभिसन्ध्याद्यपेक्षया ॥ जातिशक्तिगुणान् दृष्ट्वा सकृत् बुद्धिकृतं तथा । अनुबन्धादिकं दृष्ट्वा सर्व्वं कार्य्यं यथाक्रमम्" ॥ प्रकाशे बहुभिर्ज्ञाते पाप इति शेषः । रहस्ये बहुभिरज्ञाते संशये पापस्य अनुक्तके अतिपातकाद्यन्यतमत्वेन विशेषतोऽनुक्ते प्रकीर्णक इति यावत् । अस्फुटेऽव्यक्तेऽज्ञाते इति यावत् आदिपदविवरणं प्राजापत्य इत्यादि । सौम्यः सौम्यकृच्छ्रः व्यस्ता असमस्ता अनेकश इति यावत् प्रत्येकम् एकमेकं प्रति तत्तथा एकशो व्रतमिति शेषः षड़ब्दद्वादशाब्दादीत्यत्रादिशब्दोऽयमनुक्तप्रायश्चित्तपरिग्रहार्थः । अथैवं समस्ता इति निर्व्विषयं स्यात् न ह्येकत्र मरणद्वादशवार्षिकादिसम्भव इति चेन्न कामतः शूद्रकर्त्तृकाग्निहोत्रादिगुणयुक्तब्राह्मणवधे विषयसम्भवात् । "द्विगुणा क्षत्रियाणान्तु वैश्यानां त्रिगुणा मता । चतुर्गुणा तु शूद्राणां परिषदुक्ता महात्मना ॥ परिषद्व्रतं प्रोक्तं शुद्धये पापकर्म्मणाम् । अधमानान्तु वर्णानामुत्कृष्टहनने गुरु । दोषो गुरुतरो ज्ञेयः क्षयादीनां न संशयः" ॥ इति भविष्ये ब्राह्मणापेक्षया चतुर्गुणप्रायश्चित्तश्रुतेः । "समो द्विगुणसाहस्रमानन्त्यञ्च यथाक्रमम् । दाने फलविशेषः स्यात् हिंसायां तद्वदेव हि" ॥ इति दक्षवचनाच्च । अतो द्वादशवार्षिकव्रताद्यनन्तरमपि

मरणसम्भवात्। व्रतन्तु द्वादशवार्षिकादतिरिक्तकालिकं न भवति यच्च यावज्जीवनव्रतं तदपि द्वादशवार्षिकद्वैगुण्येन संकलितम् अन्यथा तत्संसर्गिणो जीवनकालानियतत्वेन प्रायश्चित्तकल्पनानध्यवसायापत्तेरेवमेव प्रायश्चित्तविवेकः। अभिसन्धेस्तारतम्यं मातृपोषणपरदारत्वादिना। जातेस्तारतम्यं ब्राह्मणत्वादिना। शक्तिर्बालत्वादिना। गुणस्य विद्यत्वादिना। अनुबन्धः पौनःपुन्येनाभिनिवेशः।

अथ चान्द्रायणादौ भोजनपरिसंख्या। भोजनस्य रागप्राप्तत्वात् नाप्राप्तप्रापको विधिः। स चाहरहः सन्ध्यामुपासीत इत्येवं रूपम्। नापि तद्भक्षणस्यानावश्यकत्वेन स्वायोगव्यवच्छेदमात्रफलको नियमविधिः। स च तत्तत्तिथौ तत्तद्ग्रासान् भुञ्जीतैवेत्येवं रूपः। तथा च "स्वरुच्या क्रियमाणे च यत्रावश्यं क्रिया क्वचित्। चोद्यते नियमः सोऽत्र ऋतावभिगमो यथा"॥ तथात्वे पितृमरणादावपि भोजनं प्रसज्येत हविष्यान्नभोजनव्रतादावपि उपवासाभाव एव आपद्येत तद्भक्षणस्य समकालमेवान्यभक्षणेऽपि न दोषः स्यात्। तस्मादगत्या "श्रुतार्थस्य परित्यागादश्रुतार्थस्य कल्पनात्। प्राप्तस्य बाधादित्येवं परिसंख्या त्रिदोषिका"॥ इत्युक्तस्वार्थहान्यर्थान्तरकल्पनरागप्राप्तबाधरूपदोषत्रयदुष्टापि अन्ययोगव्यवच्छेदफलिका परिसंख्या एव युक्ता सा च सति भोजने तत्तत्तिथौ तत्तद्ग्रासानेव भुञ्जीत नान्यदित्येवं रूपा तस्मात्तदतिरिक्तभोजनाभावपरत्वेन उपवासेऽपि दोषाभावः। तदुक्तं भट्टपादैः। "अन्यार्थश्रूयमाणा च यान्यार्थप्रतिषेधिका। परिसंख्या तु सा ज्ञेया यथा प्रोक्षित भोजनम्"॥ अन्यथा प्राजापत्यव्रतेऽपि त्र्यहमद्यादयाचितमिति। "अयाचितन्तु मध्याह्ने चतुर्विंशतिशुद्धये"। इति ब्रह्मपुराणोक्तस्यायाचितस्यालाभे व्रतलोपा-

पत्तिः स्यात्। चतुर्विंशतिरिति चतुर्भिरधिका विंशतिर्यत्र तत्तथा अयाचितन्तु स्वकीयानुद्योगेन पराहृतं दत्तं वस्तु। तथा च यतिधर्मे उशना। "भिक्षाशनमनुद्योगात् प्राक् केनाप्यनिमन्त्रितम्। अयाचितन्तु तद्भैक्ष्यं भोक्तव्यं मनुरब्रवीत्"॥ याज्ञवल्क्यः। "अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः। अन्यत्र कुलटाषण्डपतितेभ्यो द्विषस्तथा"॥ एतेन तदानीमयाचितत्वेन गृहस्थितानामयाचितत्वमिति निरस्तम्। प्राजापत्ये परिसंख्या व्यक्तमाह गोतमः। "अथापरं त्र्यहं न कञ्चन याचेत" इति। तथा प्रायश्चित्तविवेककृद्भिरप्यज्ञानादिजातप्राणिवधे मनूक्तघृतप्राशनस्य प्रायश्चित्तरूपत्वात् शवानुगमननिमित्त इव शरीरशुद्धिहेतुरूपत्वाभावाद्व्रतान्तरनिवृत्तिरवसीयते इति वदद्भिः सर्वप्रायश्चित्ते परिसंख्या दुर्गसिंहोऽपि अश्राद्धभोजीत्यस्य सति भोजनेऽश्राद्धमेव भुङ्क्ते न श्राद्धमिति न तु नियमः। तथात्वे व्रतलोपः स्यात्। यथा मया स्नानं कर्त्तव्यमिति नियमे सत्यस्नानात् व्रतभङ्ग इत्याह अतएव कृच्छ्रभूयस्त्वमप्युपपद्यतेऽत्र विशेषयति वौधायनः। "अष्टौ तान्यव्रतघ्नानि आपो मूलं फलं पयः। हविर्ब्राह्मणकाम्या च गुरोर्वचनमौषधम्"॥ अतएव फलाहारादौ तथाचारः।

अथ गुरुप्रायश्चित्तेन लघुपापनाशः। "पापे गुरुणि गुरूणि लघुनि च लघूनि च। प्रायश्चित्तानि मैत्रेय जगुः स्वायम्भुवादयः"॥ इति विष्णुपुराणात्। "एवं विषयभेदाद्धि व्यवस्थाप्यानि पुत्रक। प्रायश्चित्तानि सर्वाणि गुरूणि च लघूनि च॥ अन्यथा हि महाबाहो लघूनामुपदेशतः। गुरूणामुपदेशो हि निष्प्रयोजनतां व्रजेत्"॥ इति भविष्यपुराणात्। "स्वल्पसाध्ये च दुःसाध्यं श्रावयेत् सततं जने। यथा पापे न वर्त्तेत प्रायश्चित्तभयादिह॥ न निर्दिशेदल्पसाध्यं प्राय-

श्चित्तं नरे वुधः। तस्मिन् संक्रमते पापं कर्त्ता तु तद्विमुच्यते"॥ इति गङ्गावाक्यावलीधृतस्कन्दपुराणवचनात्। "यस्मिन् कर्म्मण्यस्य कृते मनसः स्यादलाघवम्। तस्मिंस्तावत्तपः कुर्य्यात् यावत्तुष्टिकरं भवेत्"॥ इति मनुवचनाच्च। अभ्यस्तानभ्यस्ताभ्यां कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि इत्यादि विश्वामित्रवचनैः सर्वप्रायश्चित्तानां सर्वपापक्षयहेतुतोक्ता एवञ्च पापविशेषे प्रायश्चित्तविशेषोपदेशो मुनीनां तत्तुल्यप्रायश्चित्तप्रदर्शनाय अन्यथा प्रायश्चित्तविशेषकल्पनायामनध्यवसायः स्यात्। अतएव विश्वामित्रेणापि। "कृच्छ्रांस्तु चतुरः कुर्य्यात् गोवधे वुद्धिपूर्व्वके"। इत्यादिविशेषवचनेन तदभिहितं तेन प्राजापत्यादिसाध्यपापक्षयस्य तदन्यूनक्लेशे प्रायश्चित्तान्तरसाध्यतापि अतएव। "प्राजापत्यव्रताशक्तौ धेनुं दद्यात् पयस्विनीम्"। इति प्राजापत्यव्रतानुकल्पत्वेन श्रुतं धेनुदानं तत्तुल्यत्वेन संकलय्य पापान्तरेऽपि कल्प्यते। अतएव वौधायनेन सामान्यत उक्तम्। "वहूनामेकधर्म्माणामेकस्यापि यदुच्यते। सर्वेषामेव तत् कुर्य्यादेकरूपा हि ते स्मृताः"॥ एवं पूर्वोक्तगर्दभपशुयागसाध्यपापनाशस्यापि तदधिकक्लेशेन मरणेन प्रसङ्गात् सिद्धिः। अतएव ब्रह्मवधपापक्षयार्थिनो गोसहस्रदानेन तदनधिकसर्वपापक्षयमाहाङ्गिराः। "गवां सहस्रं विधिवत् पात्रेभ्यः प्रतिपादयेत्। ब्रह्महा वै प्रमुच्येत सर्वपापेभ्य एव हि"॥ यमः। "गवाह्निकं देवपूजावेदाभ्यासः सरित्प्लवः। नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि"। गवाह्निकं गोर्दिनभक्ष्यम् अपि ना ब्रह्महत्यापनाशकस्य सुतरामल्पपापनाशकतावगम्यते। तथा च छन्दोगपरिशिष्टम्। "वेदाश्छन्दांसि सर्वाणि ब्रह्माद्याश्च दिवौकसः। जलार्थिनोऽपि पितरो मरीच्याद्यास्तथर्षयः। उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्नानार्थं ब्रह्मवादिनः। यियासूननुग-

च्छन्ति संहृष्टा ह्यशरीरिणः। समवायश्च यत्रैषां तत्रान्ये बहवोऽमलाः। न्यूनं सर्वे क्षयं यान्ति किमुतैकं नदीरजः" एषां वेदादीनां यत्र नदीजले समवायस्तत्र गुरुतरा एव ब्रह्महत्यादयो दोषाः कार्त्स्न्येन नाशं यान्ति किमुतैकं नदीरजः। अतएव अविज्ञाते गर्भवधे पुरुषशङ्कया पुंवधप्रायश्चित्तमेवोक्तम्। गुरुणा पुंवधप्रायश्चित्तेन लघुनः स्त्रीवधपापक्षयस्य सम्भवात्। यथा वशिष्ठः "ब्राह्मणं हत्वा भ्रूणहा भवति अविज्ञातञ्च गर्भम् अविज्ञाता हि गर्भाः पुमांसो भवन्ति तस्मात् पुंस्कृत्या जुह्वती" इति प्रायश्चित्तविवेकः महाभारते। "यद्यकार्य्यशतं कृत्वा कृतं गङ्गाभिषेचनम्। सर्वं दहति गङ्गाम्भस्तूलराशिमिवानलः" ॥

अथ गङ्गामाहात्म्यम्। भविष्ये। "गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन् ध्यायन् जाग्रद् भुञ्जन् वसन् वदन्। यः स्मरेत् सततं गङ्गां स च मुच्येत बन्धनात्" ॥ तथा "भवनानि विचित्राणि विचित्राभरणाः स्त्रियः। आरोग्यं वित्तसम्पत्तिर्गङ्गास्मरणजं फलम्"। ब्रह्माण्डे। "यैः पुण्यवाहिनी गङ्गा सकृद्भक्त्यावगाहिता। तेषां कुलानां लक्षन्तु भवात्तारयते शिवा"। दानधर्मे। "अन्धाः क्लीवा जडा व्यङ्गाः पतिता रोगिणोऽन्त्यजाः। गङ्गां संसेव्य पुरुषा देवैर्गच्छन्ति तुल्यताम्" ॥ स्कान्दभविष्ययोः। "स्नानमात्रेण गङ्गायां पापं ब्रह्मवधादिकम्। दुराधर्षं कथं याति चिन्तयेद् यो वदेदपि। तस्याहं प्रददे पापं कोटिब्रह्मवधोद्भवम्। स्तुतिवादमिमं मत्वा कुम्भीपाके महीयते ॥ आकल्पं नरकं भुक्त्वा ततो जायेत गर्दभः" ॥ ब्रह्माण्डे। "ये गच्छन्ति स्वतो गङ्गां परांश्च प्रेरयन्ति ये। इह ते सर्वभोगानामन्ते स्थानस्य भाजनम्" ॥ यज्ञपार्श्वपरिशिष्टम्। "वित्तान्यर्जयितुं युक्तः प्रवासी ह्यग्निहोत्रिणः। वित्ते हि

सम्भवेदिच्छा तीर्थार्थं न तु व्रजेत्" ॥ स्कान्दमत्स्ययोः। "तीर्थयात्रादिकं कृत्स्नमकुर्वाणोऽपि मानवः। गङ्गातोयस्य माहात्म्यात् सोऽप्यत्र फलभाग् भवेत्" ॥ यात्राकरणे तु भविष्यपुराणम्। "गङ्गास्नानसमायुक्तो विधिना स्वगृहात्ततः। निर्गत्य मध्ये च नरः कुदेशे म्रियते यदि। गङ्गास्नानफलं सोऽपि नियतात्मा लभेत् सदा" ॥ समायुक्तः समुद्युक्तः विधिना यथोक्तविधिना। तथाविधकृतयात्र इत्यर्थः। तद्विधिमाह ब्रह्मपुराणम्। "यो यः कश्चित्तीर्थयात्रान्तु गच्छेत् सुसंयतः स च पूर्वं गृहे स्वे। कृतोपवासः शुचिरप्रमत्तः संपूजयेद् भक्तिनम्रो गणेशम्। देवान् पितॄन् ब्राह्मणांश्चैव साधून् धीमान् प्रीणयन् वित्तशक्त्या प्रयत्नात्। प्रत्यागतश्चापि पुनस्तथैव देवान् पितॄन् ब्राह्मणान् पूजयेच्च। एवं प्रकुर्वतस्तस्य तीर्थाद् यदुक्तं फलं तत् स्यान्नात्र सन्देह एव" ॥ सुसंयतः पूर्वदिने कृतैकभक्तादिनियमः। तदुत्तरदिने कृतोपवासस्तदुत्तरदिने गणेशं ग्रहानिष्टदेवताश्च संपूज्य वृद्धिश्राद्धं कृत्वा ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततः शुभलग्ने यात्रां कुर्य्यात् तीर्थयात्रान्तु गच्छेदित्युपक्रमादुपवासदिने मुण्डनमपि। "प्रयागे तीर्थयात्रायां पितृमातृवियोगतः। कचानां वपनं कार्य्यं न वृथा विकचो भवेत्" ॥ इति विष्णुपुराणवचनात्। प्रवेशेऽपि तीर्थयात्रायामिति वक्तव्यम्। "गच्छन् देशान्तरं यत्तु श्राद्धं कुर्य्यात्तु सर्पिषा। यात्रार्थमिति तत् प्रोक्तं प्रवेशे च न संशयः"। इति भविष्यपुराणादिति गङ्गावाक्यावली। वस्तुतस्तु तीर्थप्रत्यागमनोत्तरस्वगृहप्रवेशे इत्येव वक्तव्यम्। यात्राप्रत्यागमनोत्तरस्वगृहप्रवेशयोर्भेदात् प्रत्यागमनोत्तरलाभस्तु प्रत्यागतश्चापीति प्रागुक्तत्वात् व्यक्तमाह हलायुधधृतं कूर्मपुराणवचनम्। "तीर्थयात्रासमारम्भे तीर्थात् प्रत्यागमेऽपि

च। वृद्धिश्राद्धं प्रकुर्वीत बहुसर्पिः समन्वितम्”॥ ततश्च प्रवेशे चेति चकारेण श्राद्धमात्रं समुच्चितम्। न तु तस्य यात्रार्थत्वमपैति। एवं देवान् पितॄनित्यभिधानात् तत् पूजनमेव पुनः कार्य्यं न तूपवासादिकमपि अन्यथा देवानित्यादिकं व्यर्थं स्यात्। मत्स्यपुराणम्। “तिलोदकाञ्जलिर्देयो जलस्थैस्तीर्थवासिभिः। सदानहस्तेनैकेन गृहे श्राद्धं समिष्यते”॥ अत्र जलस्थैरित्यनेन स्थलस्थानामपि जलस्थत्वं नियम्यते। तथा हि “अन्तरुदके आचान्तो अन्तरेव शुद्धो भवति। वहिरुदके आचान्तो वहिरेव शुद्धो भवति। तस्मादन्तरेकं वहिरेकञ्च पादं कृत्वा आचामेत् सर्वत्र शुद्धो भवति” इति पैठीनस्युक्तेन जलैकचरणकृताचमनेन उभयत्र कर्मार्हत्वात्। तर्पणकाले तीर्थे जलैकचरणत्वं प्रतीयते। अन्यत्र त्वनियमः। तद्रूपाणां जले च तर्पणमविरुद्धमिति। गृह इति स्थलोपलक्षणम्। देवीपुराणे। “अकालेऽप्यथवा काले तीर्थश्राद्धं तथा नरैः। प्राप्तैरेव सदा कार्य्यं कर्त्तव्यं पितृतर्पणम्। पिण्डदानं तत्र शस्तं पितृणाञ्चातिदुर्लभम्। विलम्बो नैव कर्त्तव्यो न च विघ्नं समाचरेत्। श्राद्धं तत्र तु कर्त्तव्यमर्घ्यावाहनवर्जितम्। श्वध्वाङ्क्षगृध्रकाकाणां नैव दृष्टिहतञ्च यत्”॥ ध्वाङ्क्षो दण्डकाकः। अत्राकाल इति न रात्र्यादाविति पर्य्युदस्तप्रतिप्रसवः। तथात्वे तद्बाधापत्तेः। किन्तु पर्य्युदस्तेतराप्रशस्तकालपरम्। “तत् सादृश्यमभावश्च तदन्यत्वं तदल्पता। अप्राशस्त्यं विरोधश्च नञर्थाः षट्प्रकीर्त्तिताः”॥ इत्यनुसारात्। काल इति प्रशस्तापराह्लादिकालपरम्। अत्र शुचेः प्राप्तुरुत्तरविहितप्रथमदिन एव श्राद्धं तेन पूर्वदिने राक्षसीवेलादावागमनेऽपि परदिने श्राद्धमविरुद्धम्। तथा च हलायुधधृतम्। “गत्वैव तीर्थं कर्त्तव्यं श्राद्धं तत् प्राप्ति-

हेतुकम्। पूर्व्वाह्णेऽप्यथवा प्रातर्देशे स्यात् पूर्व्वदक्षिणे"॥ पूर्व्वाह्णे सङ्गवे पूर्व्वदक्षिणे अग्निकोणे। पिण्डदानमिति श्राद्धासम्भवे केवलपिण्डदानमिति न पौनरुक्त्यम्। पिण्डप्रतिपत्तिमाह मत्स्यपुराणम्। "पिण्डांस्तु गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा। तीर्थश्राद्धे सदा पिण्डान् क्षिपेत्तीर्थे विचक्षणः"। महाभारते। "यो लुब्धः पिशुनः क्रूरो नास्तिको विषयात्मकः। सर्व्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एव सः"॥ तथा "विषयेष्वतिसंरागो मानसोऽमल उच्यते। तेष्वेव हि विरागोऽस्य नैर्म्मल्यं समुदाहृतम्। पिण्डदानं तपः शौचं तीर्थसेवाश्रुतन्तथा। सर्व्वाण्येतान्यतीर्थानि यदि भावो न निर्म्मलः"॥ भावः सात्त्विकराजसतामसान्यतममनोवृत्तिः स च निर्म्मलः सात्त्विक इत्यर्थः। एतानि तीर्थे कृतान्यपि अतीर्थान्यतीर्थकृतानि। यथा "प्रतिग्रहादपावृत्तः सन्तुष्टो येन केनचित्। अहङ्कारविमुक्तश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ तीर्थेन प्रतिगृह्णीयात् पुण्येष्वायतनेष्वपि। निमित्तेषु च सर्व्वेषु अप्रमत्तो भवेन्नरः"॥ निमित्तेषु संक्रान्त्यादिषु। तथा "स्वकार्य्ये पितृकार्य्येऽपि देवताभ्यर्च्चनेऽपि वा। निष्फलं तस्य तत्तीर्थं यावत्तद्धनमश्नुते"॥ शङ्खः। "तीर्थं प्राप्यानुषङ्गेन स्नानं तीर्थे समाचरन्। स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्रा फलं न तु"॥ तथा "यस्य पादौ च हस्तौ च मनश्चैव सुसंयतम्। विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते॥ नृणां पापकृतां तीर्थे भवेत् पापस्य संक्षयः। यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम्"॥ हस्तसंयमोऽत्र निन्दितप्रतिग्रहादिनिवृत्तिः। पादसंयमस्तु अगम्यदेशादिगमननिवृत्तिः। मनःसंयमः कामक्रोधादिनिवृत्तिः। विद्या तत्तत्तीर्थफलबोधकसच्छास्त्रवेदाद्यधिगमरूपा। तपः आमिषादिनिवृत्तिः। कीर्त्तिर्धर्म्मार्थितीर्थगमने धार्म्मिकत्वादिना प्र-

सिद्धिः। फलं सम्यगिति शेषः। एतच्च हस्तसंयमनादितीर्थयात्राङ्गं महाभारते तीर्थयात्रामुपक्रम्याभिधानात्। तीर्थस्नानादि कर्माङ्गञ्च। प्रसङ्गेन यात्राप्रकरणमन्तरेणैव स तीर्थफलमश्नुते इति सामान्याभिधानात्। इति कल्पतरुः। अतएव पैठीनसिः। "षोड़शांशं स लभते यः परार्थेन गच्छति। अर्द्धं तीर्थफलं तस्य यः प्रसङ्गेन गच्छति"॥ परार्थेन वेतनादिना प्रसङ्गेन उद्देश्यान्तरप्रसङ्गेन।

"तथा प्रतिकृतिं कृत्वा तीर्थवारिणि मज्जयेत्। मज्जयेत्तु यमुद्दिश्य अष्टभागं लभेत सः"॥ प्रतिकृतिः प्रतिनिधिः। अत्र दर्भवटुः। शान्तिदीपिकायाम्। "सप्तभिर्नवभिर्वापि सार्द्धद्वितयवेष्टितम्। प्रणवेन च मन्त्रेण द्विजः कुर्य्यात् कुशद्विजम्"॥ नवभिरित्यत्र पञ्चभिरिति कर्मोपदेशिन्यां पाठः। रत्नाकरे तु गृह्यपरिशिष्टम्। "ऊर्द्धकेशो भवेद् ब्रह्मा लम्बकेशस्तु विष्टरः। दक्षिणावर्त्तको ब्रह्मा वामावर्त्तस्तु विष्टरः"॥ केशोऽत्राग्रः। तन्मज्जने मन्त्रः। "कुशोऽसि कुशपत्रोऽसि ब्रह्मणा निर्मितः पुरा। त्वयि स्नाते स च स्नातो यस्यार्थे ग्रन्थिबन्धनम्"॥ स्कान्दे। "स्नापयेत् स्निग्धमित्रादीन् ज्ञातींस्तीर्थे नरोत्तमः। अन्यथापहरन्त्येते बलात्तीर्थभवं फलम्"॥ विष्णुः। "स्वयमुद्दिश्य कर्त्तव्यं स्वार्थं तीर्थं नरोत्तमैः। अकर्तॄणां हरन्त्येते तीर्थं पूर्वञ्च यत्कृतम्"॥ नरोत्तमैः स्वयं स्वार्थमात्मीयार्थमुद्दिश्य तीर्थं कर्त्तव्यम्। एते आत्मीयाः मदनपारिजाते मार्कण्डेयपुराणम्। "मातरं पितरं जायां भ्रातरं सुहृदं गुरुम्। यमुद्दिश्य निमज्जेत अष्टभागं लभेत सः"॥ अत्रिसंहितायामप्येतत्। निमज्जेत स्वयमिति शेषः। मत्स्यपुराणे। "ऐश्वर्य्यलाभमाहात्म्याद् गच्छेद् यानेन यो नरः। निष्फलं तस्य तत्तीर्थं तस्माद् यानं विवर्जयेत्"॥ गङ्गावाक्या-

वत्स्याम्। "संवत्सरं द्विमासोनं पुनस्तीर्थं व्रजेद्यदि। मुण्डनञ्चोपवासञ्च ततो यत्नेन कारयेत्" ॥ एतेन दशममासाभ्यन्तरे पुनर्गमने मुण्डनोपवासौ न कार्य्याविति सूचितम् एवं तीर्थप्राप्तिनिमित्तकश्राद्धमपि। आकाङ्क्षायास्तौल्यात्। तदुक्तं भट्टपादैः। "काकेभ्योरक्षतामन्नमिति बालोपदेशतः। उपघातप्रधानत्वात् किं श्वादिभ्यो न रक्ष्यते" ॥

स्कान्दे। "मुण्डनञ्चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः। वर्जयित्वा गयां गङ्गां विशालां विरजां तथा" ॥ यत्तु "गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मातापित्रोर्मृते गुरौ। आधाने सोमपाने च वपनं सप्तसु स्मृतम्" ॥ इति स्मृतिसमुच्चयलिखितवचनं भास्करक्षेत्रं प्रयागः। तत्र पूर्ववचनं सामान्यतो गङ्गायां निषेधकं परवचनन्तु प्रयागावच्छिन्नगङ्गायां विधायकमिति न विरोधः। सप्तमत्वन्तु गङ्गात्वभास्करक्षेत्रत्वभेदात्। अत्र सर्वतीर्थं पुराणभारतादिप्रसिद्धदेशविशेषतीर्थपरं शिष्टपरिग्रहात् प्रयागेऽकरणे दोषोऽपि। तथा च "गङ्गायां भास्करक्षेत्रे मुण्डनं यो न कारयेत्। स कोटिकुलसंयुक्त आकल्पं रौरवे वसेत्" ॥ अत्र गङ्गाप्रयागयोर्वैशिष्ठ्यं स्फुटम्। प्रयागे स्त्रीणामपि मुण्डनं न तु वक्ष्यमाणवचनाभ्यां केशानां द्व्यङ्गुलच्छेदमात्रम्। "केशमूलान्युपाश्रित्य सर्वपापानि देहिनाम्। तिष्ठन्ति तीर्थस्नानेन तस्मात्तान्यत्र वापयेत्" ॥ इति वचनात्। अत्र कारयेत् वापयेत् इति श्रवणात् वपनं कारयिष्ये इति प्रयोगः। मुण्डने फलमपि तथा च प्रयागमधिकृत्य "केशानां यावती संख्या छिन्नानां जाह्नवीजले। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते ॥ यावन्ती नखलोमानि वायुना प्रेरितानि वै। पतन्ति जाह्नवीतोये नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥ तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते" ॥ सर्वतीर्थेष्वित्यत्र कर्मधारयः।

न च प्रयागमधिकृत्य ब्रह्मपुराणम्। "एवं कुरुष्व कौन्तेय सर्वतीर्थाभिषेचनम्। यावज्जीवकृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति"॥ इत्यत्र समस्यन्यपदार्थबहुव्रीहिदर्शनात्तदत्रापि तथेति वाच्यम्। लक्षणाप्रसङ्गात् ब्रह्मपुराणवचनेऽन्यथानुपपत्त्या तथा कल्पने बहुवचनानुपपत्तेश्च। न च ग्रहं संमार्ष्टीतिवदुद्देश्यगतत्वेन बहुत्वसंख्याया अविवक्षितत्वमिति वाच्यं प्रमाणान्तराप्राप्तत्वेनास्योद्देश्यत्वाभावात्। किन्तु पशुना यजेतेत्यत्र पश्वेकत्ववत् बहुत्वस्य विधेयत्वमिति गङ्गादिविशेषनिषेधानुपपत्तेश्च। न चायज्ञिया वैमाषा इति वदत्यन्तनिषेधार्थमिति वाच्यम्। तत्र मौद्गश्चरुर्भवतीत्युपदेशेऽपि प्रतिनिधिना माषप्राप्तेर्युक्तो निषेधः। अत्र प्रयागे मुण्डनं कुर्य्यादित्युक्ते गयादौ प्रसक्त्यभावात् कुतो निषेधः। सर्वतीर्थपदस्य तीर्थमात्रपरत्वे गयादौ प्रसक्त्या निषेधः सूपपन्नः। सामान्यशास्त्रप्राप्त्युपजीवित्वात् पर्य्युदास एव तत्त्वम्। न च "गङ्गायां भास्करक्षेत्रे पित्रोश्च मरणं विना। वृथा छिनत्ति यः केशांस्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्" इति कालिकापुराणवाक्यादन्यत्र निषेध इति वाच्यं पूर्वोक्तस्मृतिसमुच्चयवचनेनास्योपलक्षणत्वात्। विष्णुनापि "प्रयागे तीर्थयात्रायां पितृमातृवियोगतः। कचानां वपनं कुर्य्यात् वृथा न विकचो भवेत्" इत्यत्र तीर्थयात्रायामित्यधिकमुक्तम्। ततः प्रयागेऽवश्यमुण्डनमन्यतीर्थेषु गयागङ्गाविशालाविरजेतरेषु मुण्डने उपवासवत् फलाधिक्यम्। कूर्म्मपुराणे। "गङ्गायां ज्ञानतो मृत्वा मुक्तिमाप्नोति मानवः। अज्ञानात् ब्रह्मलोकञ्च याति नास्त्यत्र संशयः"॥ तथा "गङ्गायाञ्च जले मोक्षो वाराणस्यां जले स्थले। अन्तरीक्षे च गङ्गायां गङ्गासागरसङ्गमे"॥ चकारात् स्थलेऽपि। स्मृतिः। "शुक्लपक्षे दिवा भूमौ गङ्गायामुत्तरायणे।

धन्या देहं विमुञ्चन्ति हृदयस्थे जनार्दने" ॥ आग्नेये । "अर्द्धोदके तु जाह्नव्यां म्रियतेऽनशनेन यः । स याति न पुनर्जन्म ब्रह्मसायुज्यमेति च"। अर्द्धोदकं चरणान्नाभिपर्य्यन्तम् । स्कान्दे । "गङ्गायां त्यजतः प्राणान् कथयामि वरानने । कर्णे तत् परमं ब्रह्म ददामि मामकं पदम्" ॥ प्रागुक्तकूर्म्मपुराणवचनात् गङ्गात्वज्ञानेन मुक्तिः तदज्ञाने ब्रह्मलोकगमनम् । इति ब्रह्माण्डे । "स्नानन्तु भक्त्या गङ्गायां कर्त्तुकामस्य गच्छतः । पदे पदेऽश्वमेधस्य फलं मर्त्यस्य जायते" ॥ ब्रह्माण्डाग्नेययोः । "दृष्टा तु हरते पापं स्पृष्टा तु त्रिदिवं नयेत् । प्रसङ्गेनापि या गङ्गा मोक्षदा त्ववगाहिता ॥ अनेकजन्मसम्भूतं पापं पुंसां प्रणश्यति । स्नानमात्रेण गङ्गायां सद्यः स्यात् पुण्यभाजनम् ॥ अन्यस्थानकृतं पापं गङ्गातीरे विनश्यति । गङ्गातीरे कृतं पापं गङ्गास्नानात् विनश्यति" ॥ ब्रह्मपुराणे । "षष्ठ्यादौ कृष्णपक्षे तु भूमौ सन्निहिता भवेत् । यावत् पुण्यममावास्यां दिनानि दश नित्यशः" ॥ गङ्गेति शेषः । तेनात्राधिकं फलमित्यर्थः । भविष्ये । "द्वादश्यां श्रवणर्क्षे तु षष्ठ्यां पुष्ययोगतः । आर्द्रायाञ्च चतुर्दश्यां गङ्गास्नानं सुदुर्लभम्" ॥ तथा "कृष्णाष्टम्यां सहस्रन्तु शतं स्यात् सर्वपर्वसु । अमावास्यां शतगुणं सहस्रन्तु दिनक्षये" ॥ शतगुणं पर्वत्वेन पूर्वमुक्तं शतशतगुणमयुतमित्यर्थः । अन्यथा पर्वत्वेन शतगुणप्राप्ते अमावास्यामिति वैयर्थ्यं स्यात् । तथा "संवत्सरफलं तस्य नवम्यां कार्त्तिके तथा । मन्वादौ च युगादौ च मासत्रयफलं लभेत् ॥ नैरन्तर्य्येण गङ्गायां मासं यः स्नाति मानवः । स शक्रलोकेषु चिरं स्थित्वा कालं सगोत्रजैः ॥ ततो ब्रह्मपुरे तिष्ठेत् कल्पकोटिशतायुतम्" ॥ तथा "षण्मासं स्नाति गङ्गायां नैरन्तर्य्येण यो नरः । सर्वपापविनिर्मुक्तः समस्तकुलसंयुतः ॥ समस्तभोगसंयुक्तो विष्णुलोके महीयते ।

परार्द्धद्वितयं यावत् नात्र कार्य्या विचारणा ॥ षण्मासमेकन्वपरं सकृद्देवोत्तरायणे । एतदेव भवेत् पुण्यं विषुवे च तथैव च" ॥ ब्रह्माण्डे । संक्रान्तिषु व्यतीपाते ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः । पुष्ये स्नात्वा तु गङ्गायां कुलकोटीः समुद्धरेत्" ॥

व्यतीपातमाह बृहन्मनुः । "श्रवणाश्विधनिष्ठार्द्रा नागदैवतमस्तके । यद्यमारविवारेण व्यतीपातः स उच्यते" ॥ नागदैवतमश्लेषा । मस्तकं मृगशिरः । गङ्गामृतग्रन्थे भविष्यपुराणम् । "चतुर्दश्यां यदा योगो व्यतीपातेन चार्द्रया । तदा पुण्यतमः कालो देवानामपि दुर्लभः ॥ तदा यः स्नाति गङ्गायां भक्त्या तत्फलमाप्नुयात् । यत्र यत्र विपन्नो हि गङ्गामरणजन्तु सः" ॥ व्यतीपातेन चन्द्रमा इति गङ्गावाक्यावल्युक्तपाठोऽनन्वितत्वाद्धेयः । तथा "आत्मनो जन्मनक्षत्रे जाह्नवी गाङ्गते दिने । नरः स्नात्वा तु गङ्गायां कुलकोटीः समुद्धरेत्" ॥ नक्षत्रद्वैधे मार्कण्डेयपुराणम् । "तन्नक्षत्रमहोरात्रं यस्मिन्नस्तं गतो रविः । यस्मिन्नुदेति सविता तन्नक्षत्रं दिनं स्मृतम्" ॥ पूर्वार्द्धमुपवासनक्तैकभक्तेषु । "तत्रैवोपवसेदृक्षे यन्निशीथादधो भवेत् । उपवासे यदृक्षं स्यात्तद्धि नक्तैकभक्तयोः" ॥ इति स्कन्दपुराणात् । "उपोषितव्यं नक्षत्रं येनास्तं याति भास्करः । यत्र वा युज्यते राम निशीथे शशिना सह" ॥ इति विष्णुधर्म्मोत्तराच्च । यस्मिन्नुदेतीति तु परिशेषात् स्नानादाविति । गङ्गामर्त्त्यावतरणमाह आदित्यपुराणम् । "वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां जनार्द्दनः । यवानुत्पादयामास युगञ्चारब्धवान् कृतम् ॥ ब्रह्मलोकात् त्रिपथगां पृथिव्यामवतारयत् । तस्यां कार्य्यो यवैर्होमो यवैर्विष्णुं समर्च्चयेत् ॥ यवान् दद्यात् द्विजातिभ्यः प्रयतः प्राशयेद् यवान् । पूजयेच्छङ्करं गङ्गां कैलाशञ्च हिमालयम् ॥ भगीरथञ्च नृपतिं सागराणां सुखावहम्" ॥

सागराणां सगरवंशभवानां "स्नानं दानं तपः श्राद्धं जपहोमादिकञ्च यत्। श्रद्धया क्रियते तत्र तदानन्त्याय कल्पते" ॥ ब्राह्मे। "वैशाखे शुक्लसप्तम्यां जाह्नवी जह्नुना पुरा। क्रोधात् पीता पुनस्त्यक्ता कर्णरन्ध्रात् सुदारुणात् ॥ तां यत्र पूजयेत् देवीं गङ्गां गगनमेखलाम्" ॥ शङ्खः। "वैशाखे शुक्लपक्षे तु तृतीयायां तथैव च। गङ्गातोये नरः स्नात्वा मुच्यते सर्वकिल्बिषैः" ॥ नन्दास्नानफलमाह भविष्ये। "सप्तजन्मसु यद्भुक्तं पतितान्नञ्च तैः सह। संसर्गश्च कृतः पञ्च पातकानि महान्ति च ॥ तथानिर्वचनीयानि पापानि क्षयतामिषुः। रजस्वलायाः स्पृष्टान्नभोजनेनापि यद्भवेत् ॥ सततासत्यभाषेण स्वर्णस्य हरणेन च। मणेश्चापि च रत्नस्य सामान्यसकलस्य च ॥ वस्तुनश्चापि हरणैर्बधैः सख्युर्द्विजातयः। मित्रहिंसा विप्रहिंसा मातृहिंसादिभिश्च यत् ॥ जनितानि महान्तीह रौरवादीनि यानि च। तेष्वनवरतं विप्रास्ताड़नञ्च निवारयेत् ॥ यमस्य किङ्कराणां वै पापमाजन्म तत् कृतम्। बाल्ययौवनवार्द्धक्यदशा पापचयो भवेत् ॥ ब्रह्मपुरे वसेद्दृष्ट्वा हंसञ्च परमन्ततः। धेनूनां कपिलानाञ्च लक्षं दत्त्वा द्विजन्मने ॥ चतुर्वेदाधीतकाय यत् फलं लभते नरः। श्रीमन्नारायणस्येह वसते दक्षिणे भुजे ॥ मर्त्यलोके ततो जन्म ततो गुणाश्रयो भवेत्। भुङ्क्ते सर्वसुखं भोगं यथश्चाप्नोति मानवः। नन्दास्नानेन गङ्गायां नात्र कार्य्या विचारणा" ॥

अथात्र प्रयोगः। तत्सदद्येत्यादि। सप्तजन्मावच्छिन्नपतितान्नभक्षणपतितसंसर्गकृतपापपञ्चमहापातकानिर्वचनीयपापक्षयरजस्वला-स्पृष्टान्नभोजनसततासत्यभाषणस्वर्णमणिरत्नापहरणसामान्यसकलवस्त्वपहरणसखिवधमित्रहिंसा विप्रहिंसा मातृहिंसादिजनितमहारौरवाद्यनवरतयमकिङ्करताड़-

ननिवारणाजन्मबाल्ययौवनवार्द्धक्यदशा पापक्षयब्रह्मलोकाधिकरणकपरमहंसदर्शनपूर्वकवाशाधीतचतुर्वेदब्राह्मणसम्प्रदानककपिलाधेनुलक्षदानजन्यफलश्रीमन्नारायणदक्षिणभुजवासतदुत्तरमर्त्यलोकीयजन्मगुणाश्रयत्वसर्वसुखभोगयशः—प्राप्तिकामो गङ्गायां नन्दायां स्नानमहं करिष्ये। गङ्गायां रजो योगे प्रतिप्रसवमाह छन्दोगपरिशिष्टम्। "यव्यद्वयं श्रावणादिसर्वा नद्यो रजस्वलाः। तासु स्नानं न कुर्वीत वर्जयित्वा समुद्रगाः"॥ यत्तु "आदौ कर्कटके देवी त्र्यहं यावद्रजस्वला। चतुर्थेऽहनि संप्राप्ते शुद्धा भवति जाह्नवी"॥ इति तद्रजो योगमात्रं बोधयति न तु स्नानादिनिषेधकम्। अतएव निगमः। "गङ्गा धर्मद्रवी पुण्या यमुना च सरस्वती। अन्तर्गतरजो योगे सर्वाहः स्वेव निर्मलाः"॥ त्र्याहिकरजो योगस्तु नीराजनाद्यर्थं इति शङ्खधर इति कृत्यतत्त्वार्णवः। नारदीये। "किमष्टाङ्गेन योगेन किं तपोभिः किमध्वरैः। वास एव हि गङ्गायां ब्रह्मज्ञानस्य कारणम्॥ यज्ञैर्यमैश्च नियमैर्दमैः सन्न्यासतोऽपि वा। न तत् फलमवाप्नोति गङ्गां प्राप्य सरिद्वराम्॥ गङ्गामेवापरस्येह दिवसार्द्धेन यत् फलम्। न तत् फलं समर्थो न प्राप्तुं क्रतुशतैरपि"॥ दानधर्मब्रह्माण्डाग्नेयेषु। "जाह्नवीतीरसम्भूतां मृदं मूर्द्ध्ना बिभर्त्ति यः। बिभर्त्ति रूपं सोऽर्कस्य तमोनाशाय केवलम्"॥ गङ्गामधिकृत्य वाराहे। "ब्रह्महा गुरुहा गोघ्नः स्पृष्टो वा सर्वपातकैः। तस्यास्तोयैर्नरः स्पृष्टः सर्वपापैः प्रमुच्यते"। ब्रह्मपुराणे। प्रवाहमवधिं कृत्वा यावद्धस्तचतुष्टयम्। अत्र नारायणः स्वामी नान्यः स्वामी कदाचन। अत्र न प्रतिगृह्णीयात् प्राणैः कण्ठगतैरपि"॥ अत्र साधारणत्वेन सारदातिलोक्तहस्तो ग्राह्यः तथा च "चतुर्विंशत्यङ्गुलाढ्यं हस्तं तत्त्वविदो विदुः। यवानामष्टभिः क्लृप्तं मानाङ्गुलमुदीरितम्"॥

प्रमाणञ्च पार्श्वेन। "षड्यवाः पार्श्वसम्मिताः" इति कात्यायनदर्शनात्। अनयोर्व्यवस्थामाह कपिलपञ्चरात्रम्। "अष्टभिस्तैर्भवेज्ज्यैष्ठं मध्यमं सप्तभिर्यवैः। कन्यसं षड्भिरुद्दिष्टमङ्गुलं मुनिसत्तम"॥ कन्यसं कनिष्ठम्। यवानां तण्डुलानाह कालिकापुराणम्। "यवानां तण्डुलैरेकमङ्गुलञ्चाष्टभिर्भवेत्। अदीर्घयोजितैर्हस्तश्चतुर्विंशतिभिरङ्गुलैः"॥ दानधर्मे। "भाद्रकृष्णचतुर्दश्यां यावदाक्रमते जलम्। तावद्गर्भं विजानीयात् तदूर्द्ध्वं तीरमुच्यते"॥ ब्रह्मपुराणे। सार्द्धहस्तशतं यावत् गर्भतस्तीरमुच्यते"॥ गङ्गावाक्यावल्याम्। "गङ्गातीरे कृतं यत्नात् कोटिकोटिगुणं भवेत्"॥ स्कान्दे। "यज्ञो दानं तपो जाप्यं श्राद्धञ्च सुरपूजनम्। गङ्गायान्तु कृतं सर्वं कोटिकोटिगुणं भवेत्"॥ गङ्गायामिति तीरपरमिति गङ्गावाक्यावली। पाद्मे "तीरे प्रतिग्रहस्त्यज्यस्त्याज्यो धर्मस्य विक्रयः"॥ स्कान्दे "तीराद्गव्यूतिमात्रन्तु परितः क्षेत्रमुच्यते। अत्र दानं तपो होमो गङ्गायां नात्र संशयः। अत्रस्थास्त्रिदिवं यान्ति ये मृतास्ते पुनर्भवाः"॥ गव्यूतिः क्रोशयुगम्। न श्मशानं न चादेशी गङ्गायां परिकीर्त्त्यते"॥ तीर्थचिन्तामणौ ब्रह्मपुराणम्। "अत्र दूरे समीपे वा सदृशं योजनद्वयम्। गङ्गायां मरणेनेह नात्र कार्य्या विचारणा"॥ भविष्ये। "सुलभं सकलं पुण्यं यज्ञदानादिजं फलम्। गङ्गातोयैश्च सतिलैर्दुर्लभं पितृतर्पणम्"॥ अत्र निषिद्धेऽपि दिने तिलतर्पणम्। यथा स्मृतिः। "तीर्थे तिथिविशेषे तु गङ्गायां प्रेतपक्षके। निषिद्धेऽपि दिने कुर्य्यात् तर्पणं तिलमिश्रितम्"॥ निषिद्धदिनमाह तत्रैव। "रविशुक्रदिने चैव द्वादश्यां श्राद्धवासरे। सप्तम्यां जन्मदिवसे न कुर्य्यात्तिलतर्पणम्"॥ मत्स्यपुराणञ्च "संक्रान्त्यां निशि सप्तम्यां रविशुक्रदिने तथा। श्राद्धे

जन्मदिने चैव न कुर्य्यात्तिलतर्पणम्" ॥ श्राद्धपदम् अमावास्या श्राद्धेतरपरम्। "नीलषण्डविमोक्षेण अमावास्यां तिलोदकैः। वर्षासु दीपदानेन पितृणामनृणो भवेत्" ॥ इति वचनात् तीर्थेतरप्रतिप्रसवमाह स्मृतिः "अयने विषुवे चैव संक्रान्त्यां ग्रहणेषु च। उपाकर्म्मणि चोत्सर्गे युगादौ मृतवासरे। सूर्य्यशुक्रादिवारेऽपि न दोषस्तिलतर्पणे" इति। एवञ्च भविष्ये। सतिलगङ्गातोयस्य दुर्लभत्वाभिधानेन तीर्थे तिलाभावेऽपि प्रतिनिधिना तर्पणं सूचितम्। "तिलानामप्यभावे तु सुवर्णरजतान्वितम्। तदभावे प्रसिञ्चेत्तु दर्भैर्मन्त्रेण चाप्यथ" इति योगियाज्ञवल्क्येनाभिधानात्। सुवर्णरजतान्वितं सुवर्णरजतस्पृष्टजलम् अतएव महाभारते। "त्रिषु लोकेषु ये केचित् प्राणिनः सर्व्व एव ते। तर्प्यमाणाः परां तृप्तिं यान्ति गङ्गाजलैः शुभैः" ॥ भविष्ये। "ये नरा दुःखिताः सम्यक् सर्वे ते सकुशैस्तिलैः। तर्पिता जाह्नवीतोयैर्नरेण विधिना सकृत्। प्रयान्ति स्वर्गलोकन्तु नात्र कार्य्या विचारणा" ॥ आभ्यां वचनाभ्यां तीर्थचिन्तामणौ केवल गङ्गाजलेन सतिलजलेन च वाक्यभेदो लिखितः। यत्तु "तीर्थमात्रे तु कर्त्तव्यं सतिलेनैव तर्पणम्। योऽन्यथा तर्पयेन्मूढः स विष्ठायां कृमिर्भवेत्" ॥ इति स्कन्दपुराणीयतीर्थे तिलरहिततर्पणनिन्दा साऽपि सप्तम्यादिनिषिद्धतिलतर्पणस्य तीर्थे तिथिविशेषे चेत्यादिना प्राप्तप्रतिप्रसवपरा। सुवर्णादिप्रतिनिधिरहितपरा वा अन्यथा तिलाभावेऽपि प्रधानस्य बाधः। वचनप्राप्तप्रतिनिधेर्बाधश्च तीर्थे स्यात् ततश्च वचनान्तरप्राप्तप्रतिप्रसवेनैव उपपत्तौ बाधकल्पनाया अन्याय्यत्वात्। "नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं स्नानमिष्यते। तर्पणन्तु भवेत्तस्य अङ्गत्वेन व्यवस्थितम्" ॥ इति जावालोक्तस्नानाङ्गतर्पणात्। यथा "तर्पणन्तु

शुचिः कुर्य्यात् प्रत्यहं स्नातको द्विजः” इति योगियाज्ञवल्क्योक्तस्य पितृयज्ञस्तु तर्पणमिति छन्दोगपरिशिष्टोक्तस्य च प्रधानतर्पणस्य सिद्धिस्तथा गङ्गादि काम्यतर्पणं सिद्ध्यति कामनावतः प्रधाननिर्वाहस्य विशेषात्। एतेन गङ्गावाक्यावल्योक्तं पृथक् तर्पणं निषिद्धम्। भविष्ये। “गयाश्राद्धं कृतं तेन उत्सृष्टश्च वृषस्तथा। येन तद्वीचिसंसिक्ते तीरे श्राद्धमकारि च। गङ्गायाञ्च गयायाञ्च पिण्डदानं समं स्मृतम्। विशेषतः कलियुगे गङ्गापिण्डः प्रशस्यते” ॥ ब्राह्मे। “सर्वाणि येषां गाङ्गेयैस्तोयैः कृत्यानि देहिनाम्। देहं त्यक्त्वा नराः शैवे पदे तिष्ठन्ति सर्वदा” ॥ तथा “भक्त्या तज्जलपक्काशी तज्जलं सेवते तु यः। अनायासेन हि नरो मोक्षोपायं स विन्दति”। स्कान्दे “गङ्गातीरं परित्यज्य येऽन्यतीर्थाभिलाषिणः। ब्रह्महत्याफलं तेषां सततं संशयात्मनाम्” ॥ स्मृतिः “षष्टिविघ्नसहस्राणि गङ्गां रक्षन्ति सर्वदा। निवारयन्त्यभक्तांश्च पापकर्मरतांस्तथा” ॥ महाभारते। “प्रद्युम्ननगराद् याम्ये सरस्वत्यास्तथोत्तरे। तद्दक्षिणप्रयागस्तु गङ्गातो यमुना गता। स्नात्वा तत्राक्षयं पुण्यं प्रयाग इव लभ्यते” ॥ दक्षिणप्रयाग उन्मुक्तवेणी सप्तग्रामाख्यदक्षिणदेशे। तथा “गङ्गाद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे। स्नात्वैव ब्रह्मणो विष्णोः शिवस्य च पुरं व्रजेत्”। भविष्ये। “यत् पुण्यं जायते पुंसां दर्शने परमात्मनः। तद्भवेदेव गङ्गाया दर्शने भक्तिभावतः”। स्कान्दे। “गण्डूषमात्रपानेन अश्वमेधफलं लभेत्। स्वच्छन्दश्च पिबेदापः तस्य मुक्तिः करे स्थिता। त्रिभिः सारस्वतं तोयं सप्तभिस्त्वथ यामुनम्। नार्मदं दशभिर्मासैर्गाङ्गं वर्षेण जीर्य्यति। वर्षैर्द्वादशभिर्याति शालग्रामशिलाजलम्। नाभ्यन्तर्गततोयानां मृतानां क्वापि देहिनाम्। तत्तत्तीर्थफलावाप्तिर्नात्र कार्य्या विचारणा।

स्रोतस्थमुद्धृतं वापि शीतमुष्णमथापि वा। गाङ्गेयं हरते पापमाजन्ममरणान्तिकम्" ॥ भविष्ये। "अप्सु नारायणं देवं स्नानकाले स्मरेत् सदा। साक्षात् ब्रह्मस्वरूपिण्यां गङ्गायाञ्च विशेषतः। गङ्गायां मौषलं स्नानं महापातकनाशनम्" ॥ तस्यां स्नाने मन्त्रौ विद्याकरलिखितौ। "विष्णुपादार्घ्यसम्भूते गङ्गे त्रिपथगामिनि। धर्मद्रवीति विख्याते पापं मे हर जाह्नवि। श्रद्धया भक्तिसम्पन्ने श्रीमातर्देवि जाह्नवि। अमृतेनाम्बुना देवि भागीरथि पुनीहि मां" ॥ अत्र "ब्रह्मक्षत्रविशामेव मन्त्रवत् स्नानमिष्यते। तूष्णीमेव हि शूद्रस्य सनमस्कारकं मतम्" ॥ इति योगियाज्ञवल्क्योक्तस्याप्यबाधः। गङ्गासागरसङ्गमे मन्त्रः। "त्वं देव सरितां नाथ त्वं देवि सरितां वरे। उभयोः सङ्गमे स्नात्वा मुञ्चामि दुरितानि वै" ॥ गाङ्गेये। "पूजितायान्तु गङ्गायां पूजिताः सर्वदेवताः। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन पूजयेदमरापगाम्" ॥ पूजाजपमन्त्राः भविष्ये। "गां गङ्गायै विश्वमुख्यै शिवामृतायै शान्तिप्रदायिन्यै नारायण्यै नमो नमः" ॥ इति तथा "गङ्गायै नारायण्यै शिवायै च नमो नमः। इति मन्त्रेण सततं शतमष्टोत्तरं जपेत्" ॥ तथा। "वासो हिरण्यरत्नानि पत्रपुष्पफलानि च। अन्नपानादिकञ्चापि यस्य यद्भवति प्रियम् ॥ तत्तद्दत्त्वैव गङ्गायै यः प्रयच्छति मानवः। तत्तत्सुखमनन्तं हि संप्राप्येह च जन्मनि ॥ प्रेत्यमाप्नोति निर्वाणं परमं यन्निरञ्जनम्" ॥ देवसम्प्रदानकदानेऽपि ब्राह्मणाय दक्षिणा देया। "तस्मात् सर्वात्मना पात्रे दद्यात् कनकदक्षिणाम्" इति नन्दिपुराणादिति गङ्गावाक्यावलौ। वस्तुतस्तु देवस्यापि पात्रत्वात् तस्यैव दक्षिणा देया। तथा च भविष्ये। "सर्वेषामेव पात्राणां परं पात्रं महेश्वरः। पतन्तं त्रायते यस्मादतीव नरकार्णवात्" ॥ महेश्वर इति

प्रदर्शनं हेतोरविशेषात्। तथा च नन्दिपुराणम्। "पात्राख्याध्यात्मिका मुख्या विशुद्धास्त्वग्निहोत्रिणः। देवताश्च तथा मुख्या गोदानं ह्येतदुत्तमम्"॥ सान्तानिकादीत्युपक्रम्य। "एतेभ्योऽपि द्विजातिभ्यो देयमन्नं सदक्षिणम्"॥ इति मनुवचने यस्मै दानं तस्मै दक्षिणा देया दक्षिणेति दर्शनाच्च। व्यक्तं मत्स्यसूक्ते। "देवे दत्त्वा तु दानानि देवे दद्याच्च दक्षिणाम्। तत् सर्वं ब्राह्मणे दद्यादन्यथा निष्फलं भवेत्"॥ दत्त्वा त्वित्यत्र देयानीति वाराहीतन्त्रे पाठः। भविष्ये। "सर्वतत्त्वमयीं गङ्गां परमात्मस्वरूपिणीम्। त्रैलोक्यपावनार्थाय गाङ्गतां प्रणमेत् सदा॥ यथा गौरी तथा गङ्गा तस्माद्गौर्य्यास्तु पूजने। विधिर्योऽभिमतः सम्यक् सोऽपि गङ्गाप्रपूजने"॥ अतएव छागघातसमाचारः।

गङ्गायां अस्थिप्रक्षेपः। आदिपुराणे। "भागीरथी यत्र यत्रास्ति तीर्थं कुलद्वये चापि यदा विपन्नः। तदा तदा तत्र तस्याथ भक्त्या भावेन चास्थीनि विनिक्षिपेच्च। स्नात्वा ततः पञ्चगव्येन सिक्त्वा हिरण्यमध्वाज्यतिलैश्च योज्य। ततश्च मृत्पिण्डपुटे निधाय पश्यन् दिशं प्रेतगणोपगूढ़ाम्। नमोऽस्तु धर्माय वदन् प्रविश्य जलं स मे प्रीत इति क्षिपेच्च। उत्थाय भास्वन्तमवेक्ष्य सूर्य्यं सदक्षिणां विप्रमुखाय दद्यात्"॥ एतदर्द्धं तीर्थचिन्तामणौ अन्यथा पठितम्। तद्यथा। "स्नात्वा तथोत्तीर्य्य च भास्करञ्च दृष्ट्वा प्रदद्यादथ दक्षिणान्तु" इति। "एवं कृते प्रेतपुरस्थितस्य स्वर्गे स्थितिः स्याच्च महेन्द्रतुल्या"। प्रेतगणोपगूढ़ां दक्षिणां दिशं नमोऽस्तु धर्मायेति गङ्गाजलप्रवेशमन्त्रः। स मे प्रीतो भवत्विति अस्थिनिक्षेपमन्त्रः। इत्यनिरुद्धभट्टाः। अत्र विष्णुपुराणीये। गतप्राणाभिधानात् मृतस्यैवास्थिगङ्गासम्बन्धे पुण्यजनकमिति तेन जीवतो दन्तादि-

स्थाप्यते पश्चात्तत्सम्बन्धाय इत्याचारः। तत्र क्रमः। स्नात्वाचम्यापसव्यं कृत्वाऽस्थीनि पञ्चगव्येन सिक्त्वा हिरण्यमध्वाज्यतिलैश्च संयोज्य मृत्तिकापुटे स्थापयित्वा दक्षिणहस्तेन तत्पुटकमादाय दक्षिणां दिशं पश्यन् नमोऽस्तु धर्मायेति वदन् जलं प्रविश्य स मे प्रीतो भवत्विति उक्त्वा प्रक्षिपेत्। ततो मज्जनं कृत्वा उत्थाय सूर्य्यं दृष्ट्वा दक्षिणामुत्सृजेत्। आदिपुराणम्। "मातुःकुलं पितृकुलं वर्जयित्वा नराधमः। अस्थीन्यन्यकुलोत्थस्य नीत्वा चान्द्रायणञ्चरेत्"॥ एतत्तु धनग्रहणादिना। "अस्थीनि मातापितृपूर्वजानां नयन्ति गङ्गामपि ये कदाचित्। सद्भावकस्यापि दयाभिभूतास्तेषान्तु तीर्थानि फलप्रदानि" इत्यादिपुराणे सद्भावकस्य भावशुद्धस्यान्यकुलजस्यापि कृपातिशयात् धर्म्मबुद्ध्यास्थिप्रक्षेपे फलाभिधानात्। कौर्म्मे। "यावन्त्यस्थीनि गङ्गायां तिष्ठन्ति पुरुषस्य च। तावद्वर्षसहस्राणि स्वर्गलोके महीयते। यावदस्थि मनुष्यस्य गङ्गातोयेषु गच्छति"॥ इति दानधर्मे पूर्वार्द्धेन पाठात् कालस्यापि तावत्त्वं प्रतीयते यमः। "दशाहाभ्यन्तरे यस्य गङ्गातोयेऽस्थि मज्जति। गङ्गायां मरणे यादृक् तादृक् फलमवाप्नुयात्"॥ मिताक्षरायां स्मृतिः। "आत्मनस्त्यागिनां नास्ति पतितानां तथा क्रिया। तेषामपि तथा गङ्गातोये संस्थापनं हितम्"॥ भविष्ये। "सर्वतीर्थमयीं गङ्गां सर्वदेवमयीं पराम्"। तथा "सर्वानन्दप्रदायिन्यां गङ्गायाञ्च नरोत्तमः। अष्टाक्षरं जपेन्नित्यं मुक्तिस्तस्य करे स्थिता। नमो नारायणायेति प्रणवाद्यष्टवर्णकः"॥ स्कान्दमात्स्ययोः। "क्रोधलोभैकवृत्तीनां विपरीतक्रियावताम्। कामिनाञ्च तथान्यत्र जपयज्ञादिनिष्फलम्॥ गङ्गायां यत् कृतं सर्वं सफलं नात्र संशयः। परं ब्रह्मस्वरूपिण्यां गङ्गायाञ्च स्वभावतः"॥ ब्रह्माण्डे। "सर्वभावा विशुद्धौ हि

गङ्गायां ब्रुवते तु यः। सम्पूर्णफलमाप्नोति हेलया तस्य कर्मणः ॥ पापानां पापहन्त्री त्वं स्वर्गमोक्षाप्तिहेतुता। स्वभाव एव गङ्गायाः शैत्यं हिमवतो यथा" ॥ अन्यत्र शङ्खः। "अश्रद्दधानः पापात्मा नास्तिको छिन्नसंशयः। हेतुनिष्ठश्च पञ्चैते न तीर्थफलभागिनः" ॥ अच्छिन्नसंशयः फलोपायेतिकर्त्तव्यतासु निश्चयशून्यः। पुलस्त्यः। "कपटेनापि गङ्गायां स्नानदानादि कर्म्म यत्। यो लाभख्यातिपूजार्थं कुर्य्यात् सोऽपि दिवं व्रजेत् ॥ चन्द्रसूर्य्यग्रहे चैव मृतानां पिण्डकर्म्मणि। महातीर्थे तु संप्राप्ते व्रतदोषो न विद्यते" ॥ अन्यत्र तु देवलः। "सव्रणः सूतकी सूयी मत्तोन्मत्तरजस्वलाः। मृतबन्धुरबन्धुश्च वर्ज्यामष्टौ स्वकालतः" ॥ इत्यनेन वर्ज्यतामाह अशुचित्वमप्याह। "दन्तलग्नमसंहार्य्यं लेप्यं मन्येत दन्तवत्। न तत्र बहुशः कुर्य्यात् यत्नमुद्धरणे पुनः ॥ भवेदशौचमत्यन्तं व्रणवेधात् व्रणे कृते" ॥ रत्नाकरादयोऽप्येवम्। ब्रह्माण्डे। "गङ्गां पुण्यजलां प्राप्य चतुर्दश विवर्जयेत्। शौचमाचमनं केशं निर्माल्यं मलघर्षणम् ॥ गात्रसंवाहनं क्रीड़ां प्रतिग्रहमथो रतिम्। अन्यतीर्थरतिश्चैव अन्यतीर्थप्रशंसनम् ॥ वस्त्रत्यागमथाघातं सन्तारञ्च विशेषतः" ॥ आचमनं मुखशोधनाचमनपरम्। "गन्धादीन्निक्षिपेत्तूष्णीं तत आचमयेत् द्विजान्"। इति कात्यायनवचने। "भुक्त्वाचामेद्यथोक्तेन विधानेन समाहितः। शोधयेन्मुखहस्तौ च मृदद्भिर्घर्षणैरपि" इत्याचारमाधवीयधृतदेवलवचने च तथा दर्शनात्। न तु कर्माङ्गाचमनादिपरम्। तदबाधेन चरितार्थत्वे तद्बाधायोगात् वस्त्रत्यागमिति जले स्नानसाटीत्यागपरम्। स्कान्दे। "नाभ्यङ्गितश्च प्रविशेत् गङ्गायां न मलार्दितः। न जल्पन्न मृषा वीक्षन्न वदन्नानृतं वचः। मृषा वीक्षन्नितस्ततो वीक्ष्यमाणः" ॥ ब्राह्मे। "स्नायीत तैल-

वान् विप्रस्तटभूमिमुपेयिवान्"। तटे गात्रं प्रक्षाल्य स्नायादित्यर्थः। योगियाज्ञवल्क्यः। "अगाधास्त्वागता आपो नद्याः प्रथमवेगिकाः। प्रक्षोऽभितास्तु केनापि याश्च तीर्थाद्विनिःसृताः"॥ तीर्थाद्विनिःसृता इति गङ्गाप्रवाहाद्विच्छिन्नाः। प्रवाहमध्ये विच्छेदे तु अन्तःसलिलप्रवाहित्वान्न दोषः। अन्यथा इदानीं गङ्गायाः सागरगामित्वानुपपत्तेः। "स्रवन्तीष्वनिरुद्धासु त्रयो वर्णा द्विजातयः। प्रातरुत्थाय कर्त्तव्यं देवर्षिपितृतर्पणम्॥ निरुद्धासु न कुर्वीरन्नंशभाक् तत्र सेतुकृत्। तस्मात् परकृतान् सेतून् कूपांश्च परिवर्जयेत्। उद्धृत्य त्रीन् पिण्डान् वा कुर्य्यादापत्सु नो सदा"॥ इति वौधायनवचने निरुद्धाया अपि स्रवन्तीत्वश्रुतेः सुतरामेवान्तःसलिलवाहित्वम्। योगियाज्ञवल्क्यः। "तूष्णीमेवावगाहेत यदा स्यादशुचिर्नरः। आचम्य प्रयतः पश्चात् स्नानं विधिवदाचरेत्"॥ शुचिरपि क्रियाङ्गस्नाने स्नातोऽधिकारी भवति दैवे पैत्रे च कर्मणीत्युपपत्तये प्राङ्निमज्जति क्रियाङ्गस्नानस्य मज्जनरूपत्वात् तीर्थावाहनाद्युपक्रम्य वशिष्ठः। "योऽनेन विधिना स्नाति यत्र तत्राम्भसि द्विजः। स तीर्थफलमाप्नोति तीर्थेषु द्विगुणं स्मृतम्" व्यासः। "नाभेरूर्द्धं हरेदायुरधोनाभेस्तपः क्षयः। नाभेः समजलं कृत्वा स्नानं तर्पणमाचरेत्"॥ नाभिमात्रे जले स्थित्वा इत्याद्युपक्रम्य ततस्त्रिराप्लुत्येत्यत्र। यद्यपि नाभिमात्रे जले स्थित एव कर्म कर्त्तुं शक्नोति नोपविष्टस्तथापि। स्थित्वेत्युपादानाद्बहूदक एव नियमः। स्वल्पोदके तूपविष्टोऽपि एवमङ्गानां बाधकं विना प्रधानसमदेशत्वनियमात्। सङ्कल्पादि तत्रैव। स्कान्दे। "वारुणेन समायुक्ता मधौ कृष्णा त्रयोदशी। गङ्गायां यदि लभ्येत सूर्य्यग्रहशतैः समा"॥ वारुणं शतभिषा। "शनिवारसमायुक्ता सा महावारुणी

स्मृता। गङ्गायां यदि लभ्येत कोटिसूर्य्यग्रहैः समा। शुभयोगसमायुक्ता शनौ शतभिषा यदि। महामहेति विख्याता त्रिकोटिकुलमुद्धरेत्"। ब्रह्मपुराणम्। "महाज्यैष्ठ्यान्तु यः पश्येत् पुरुषः पुरुषोत्तमम्। विष्णुलोकमवाप्नोति मोक्षं गङ्गाम्बुमज्जनात्। ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा। पूर्णिमा गुरुवारेण महाज्यैष्ठी प्रकीर्त्तिता"। ऐन्द्रे ज्येष्ठायाम्। प्रजापत्ये रोहिण्याम्। विना गुरुवारेणापि। "ऐन्द्रे गुरुः शशी चैव प्राजापत्ये रविस्तथा। पूर्णिमा ज्यैष्ठमासस्य महाज्यैष्ठी प्रकीर्त्तिता"॥ अनुराधास्थ गुरावपि। "ऐन्द्रे मैत्रे यदा जीवस्तत्पञ्चदशके रविः। पूर्णिमा शक्रचन्द्रेण महाज्यैष्ठी प्रकीर्त्तिता"॥ अनुराधास्थ चन्द्रेऽपि व्याघ्रभूतिः। "ऐन्द्रर्क्षे त्वथवा मैत्रे गुरुचन्द्रौ यदा स्थितौ। पूर्णिमा ज्यैष्ठमासस्य महाज्यैष्ठी प्रकीर्त्तिता"॥ राजमार्त्तण्डे। "ज्यैष्ठसंवत्सरे चैव ज्यैष्ठमासस्य पूर्णिमा। ज्येष्ठाभेन समायुक्ता महाज्यैष्ठी प्रकीर्त्तिता"॥ ज्यैष्ठसंवत्सरः "ज्येष्ठामूलोपगे जीवे वर्षं स्यात् शक्रदैवतम्"। इति विष्णुधर्म्मोत्तरोक्तो ग्राह्यः। न तु संवत्सरादिपञ्चकान्तर्गतो वर्षविशेषः। ज्यैष्ठः इति विशेषणवैयर्थ्यापत्तेः। संवत्सरे यदि स्यादिति पाठस्तु काल्पनिकः। प्रपञ्चस्तु मलमासतत्त्वेऽनुसन्धेयः। वारुण्यादिषु पूर्णतिथौ मध्याह्नादिसमये नक्षत्रसत्त्वे परदिने पूर्वाह्नतिथिनक्षत्रलाभेऽपि पूर्वदिन एव स्नानम्। "षष्टिदण्डात्मिकायाश्च तिथेर्निष्क्रमणे परे। अकर्म्मण्यं तिथिमलं विद्यादेकादशीं विना"॥ इति स्मृतेः। न च "कर्म्मणो यस्य यः कालस्तत्कालव्यापिनी तिथिः। तया कर्म्माणि कुर्वीत ह्रासवृद्धी न कारणम्"॥ इति वृद्धयाज्ञवल्क्यवचनात्। "मैत्रं प्रसाधनं स्नानं दन्तधावनमञ्जनम्। पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानाञ्च

पूजनम्"॥ इति मनुवचनाच्च। पूर्वदिन एव कथमिति वाच्यम्। "दिवाकरकरैः पूतं दिवास्नानं प्रशस्यते। अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दर्शनात्"॥ इति पराशरवचने दिवामात्रस्य स्नानाङ्गत्वात् मनुवचने मैत्रसाहचर्य्यात् स्नानपदं प्रातःस्नानपरम् एवमेव कुल्लूकभट्टः। मैत्रं पुरीषोत्सर्गः। मित्रदेवताक् पायुसम्बन्धात्। यत्तु वृद्धवशिष्ठः। "अर्व्वाग् विचारयेत् स्नानं मध्याह्नात् प्राग्विशेषतः"। इति तत् पूर्वाह्ने विहिततत्तत्तिथ्यादिलाभे बोध्यम् अत्र अर्व्वागित्युपादानात् चण्डालादिपरिस्पर्शे न रोगिणः स्नानम्। स्पष्टमाह रत्नाकरे बृहस्पतिः। "तीर्थे विवाहे यात्रायां संग्रामे देशविप्लवे। नगरग्रामदाहे च स्पृष्टास्पृष्टि न दुष्यति॥ आपद्यपि च कष्टायां रुग्भये पीड़िते तथा। मातापित्रोर्गुरोश्चैव निदेशे वर्त्तनात्तथा"॥ स्पृष्टास्पृष्टि इत्यव्ययं क्रियाव्यतीहारे तथेति न दुष्यतीर्थः॥ प्रत्युत गङ्गायामुत्तरोत्तरकालप्राशस्त्यमाह भविष्यपुराणम्। "प्रातःस्नानाद्दशगुणं तुल्यं मध्यदिनं तथा। सायंकाले शतगुणमनन्तं शिवसन्निधौ" इति। "प्रातर्निशि तथा सन्ध्या मध्याह्नादिषु संस्मरन्। नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयं नरः"॥ इति विष्णुपुराणोक्तवत्। "न देशनियमस्तत्र न कालनियमस्तथा। नोच्छिष्टादौ निषेधोऽस्ति हरेर्नामनि लुब्धक"॥ इति संवत्सरप्रदीपोक्तवत् राहुदर्शनवच्च रात्रावपि गङ्गायां प्रतिप्रसवमाह ब्रह्मपुराणम्। "दिवारात्रौ च सन्ध्यायां गङ्गायाञ्च प्रसङ्गतः। स्नात्वाश्वमेधजं पुण्यं गृहेऽप्युद्धृत्य तज्जलैः"॥ रात्रिस्नानाधिकारमुपक्रम्यादिपर्वणि गान्धर्ववाक्यञ्च। "अतो रात्रौ प्राप्नुवतो जलं ब्रह्मविदो जनाः। गर्हयन्ति जलान् सर्वान् वनस्थान्नृपतीनपि"॥ अत्रार्जुनस्य प्रतिवचनम्। "समुद्रे हिमवत्पार्श्वे नद्यामस्याञ्च दुर्म्मते।

रात्रावपि च गङ्गायां कस्य गुप्तः परिग्रहः ॥ असंवाधा देवनदी स्वर्गसंवादिनी शुभा । कथमिच्छति तां रोद्धुं नैष धर्मः सनातनः ॥ अनिवार्य्यमसंवाधं तव वाचा कथं वयम् । न स्पृशामो यथा कामं पुण्यं भागीरथीजलम्" ॥ स्मृतिः । "न मन्त्रो न विधिश्चैव न मृदो न च गोमयम् । न कालनियमस्तत्र गङ्गां प्राप्य सरिद्वराम्" ॥ भविष्ये । "सर्व्व एव शुभः कालः सर्व्वो देवस्तथा शुभः । सर्व्वो जनस्तथा पात्रं स्नानादौ जाह्नवीजले" ॥ गृहस्थरत्नाकरे देवलः । "महानिशा तु सा ज्ञेया मध्यमं प्रहरद्वयम् । तस्यां स्नानं न कुर्व्वीत काम्यनैमित्तिकादृते" ॥ अतएव कल्पतरुः । न नक्तं स्नायादिति वौधायनवचनं रागप्राप्तस्नानविषयम् । अतएव "नद्यः पुण्याः सदा सर्व्वा जाह्नवी च विशेषतः" । इति शङ्खवचनं तद्धृतमपि सङ्गच्छते । कृत्यतत्त्वार्णवेऽपि स्कन्दपुराणम् । "विशेषतस्तु जाह्नव्यां सर्व्वदा तर्पयेत् पितॄन् । न कालनियमस्तत्र क्रियते सर्व्वकर्मसु" ॥ एवञ्च गङ्गास्नानस्य दिवारात्रि कर्त्तव्यत्वाविशेषात् तत्तन्निमित्ततिथिविशेषस्यापि दिवारात्रिसम्बन्धित्वेनाविशेषः । कालमाधवीयेऽपि विशेषवचनाभावे सामान्यस्य स्वीकर्त्तव्यत्वादित्युक्तं तच्च "कर्म्मणो यस्य यः कालः" इति प्रागुक्तत्वात् । "अह्नःसु तिथयः पुण्याः कर्म्मानुष्ठानतो दिवा । नक्तादिव्रतयोगे तु रात्रियोगो विशिष्यते" ॥ जाबालोक्तस्य दिवाविहितकर्म्मानुष्ठाने अह्नःसु तिथयः पुण्याः नक्तादिव्रतयोगे रात्रिविहितकर्म्मणि रात्रिसम्बन्धितिथयः पुण्या इत्युक्तत्वाच्च । न च रात्रौ गङ्गायां तीर्थश्राद्धं स्यात् इति वाच्यं तस्य तीर्थप्राप्तिमात्रनिमित्तकत्वात् न तु गङ्गात्वेन निमित्तकत्वमिति । एतेन वारुण्यादौ महाफलजनकत्वात् रात्रावपि गङ्गास्नानं कर्त्तव्यमिति महाव्यामोह

एव तस्या राहुदर्शनादिप्रतिप्रसूतेतरसर्वत्रकर्म्मणि पर्य्युदस्तत्वादिति निरस्तम्। स्नानेऽपि मुहूर्त्तन्यूनतिथिर्न ग्राह्या। यथा स्कन्दपुराणं “व्रतोपवासस्नानादौ घटिकैका यदा भवेत्। उदये सा तिथिर्ग्राह्या विपरीता तु पैतृके”॥ पद्मपुराणे। ग्राह्या इत्यत्र भद्रेति पाठः विष्णुधर्मोत्तरे। श्राद्धादावस्तगामिनीति चतुर्थचरणे पाठः। घटिकात्र मुहूर्त्तपरा पैतृक इत्यनुरोधात्। भविष्ये भोजदेवधृतम्। “चैत्रकृष्णचतुर्दश्यामङ्गारकदिनं भवेत्। पिशाचत्वं पुनर्न स्यात् गङ्गायां स्नानभोजनात्”॥ भविष्ये। “माहात्म्यं ये च गङ्गायां शृण्वन्ति च पठन्ति च। तेऽप्यसंख्यैर्महापापैर्मुच्यन्ते नात्र संशयः”॥

गोवधादौ बालत्वादिना प्रायश्चित्तभेदः। “कृच्छ्रांस्तु चतुरः कुर्य्यात् गोवधे बुद्धिपूर्वके। अमत्या तु द्वयं कुर्य्यात् तदर्द्धं बालवृद्धयोः॥ स्त्रीशूद्रयोरेवमेतद्वधे चैव न संशयः”॥ अत्र शूद्रकर्त्तृकवधे अर्द्धस्मृतेः। “गोघ्नवद्विहितः कल्पश्चान्द्रायणमथापि वा। अभ्यासे तु तयोर्भूयस्ततः शुद्धिमवाप्नुयात्”॥ इत्यनेन उपपातकमात्रे गोवधधर्मातिदेशात्। तत्र शूद्रस्यार्द्धमन्येषां वर्णानां सम्पूर्णमिति। एवञ्च “शूद्राणाञ्च सधर्म्माणः सर्वेऽपध्वंसजाः स्मृताः”॥ इति मनूक्तेः प्रतिलोमजातानामप्यर्द्धं यत्र एकस्याव्यक्तेर्बालत्वं स्त्रीत्वञ्च तत्र यथा बालत्वादिना अर्द्धं तथा स्त्रीत्वात्तदर्द्धं पादमात्रमिति यावत्। यथा मिताक्षरायाम्। “अर्वाक् द्वादशवर्षीयादशीतेरूर्द्धमेव च। अर्द्धमेव भवेत् पुंसां तुरीयन्तत्र योषिताम्”॥ न चैवं तस्याः शूद्रत्वात्तदर्द्धमिति वाच्यम्। अनुग्रहे पादमात्रावधेरुक्तत्वात्। यथा हारीतः। “यथा वयो यथाकालं यथा प्राणश्च ब्राह्मणे। प्रायश्चित्तं प्रयोक्तव्यं ब्राह्मणैर्धर्म्मपाठकैः”॥ वयो बाल्यादि। कालो ग्रीष्मादिः। यथा प्राणमशक्तत्वादि। “तस्मात् कृच्छ्र-

मथाप्यर्द्धं पादं वापि विधानतः। ज्ञात्वा बलाबलं कालं प्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत्"॥ पादं वेति पादमेवेत्यर्थः। "वा स्याद्विकल्पोपमयोरेवार्थे च समुच्चये"। इति विश्वदर्शनात्। अतएव "पादं वेति ततो न्यूनं प्रायश्चित्तं न कल्पयेत्" इति प्रायश्चित्तविवेकः। शास्त्रीयं प्रायश्चित्तमुदाहृत्य पश्चादनुग्रहः कार्य्यः इत्याहाङ्गिराः। "कृत्वा पूर्वमुदाहारं यथोक्तं धर्म्मवर्त्तिभिः। पश्चात् कार्य्यानुसारेण शक्त्या कुर्वन्त्यनुग्रहम्"॥

अथ प्रायश्चित्तोपदेशादि। यमः। "एको द्वौ वा त्रयो वापि यद् ब्रूयुर्धर्म्मपाठकाः। स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः"॥ वृद्धशातातपः। "अबुद्ध्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं वदन्ति ये। प्रायश्चित्ती भवेत् पूतस्तत्पापं तेषु गच्छति"॥ अतएव यमः। "वेदाः प्रमाणांस्मृतयः प्रमाणं धर्म्मार्थसंयुक्तवचः प्रमाणम्। यस्य प्रमाणं न भवेत् प्रमाणं कस्तस्य कुर्य्याद्वचनं प्रमाणम्"॥ धर्मार्थसंयुक्तवचःमीमांसकसन्निबन्धृवाक्यम्। यस्येत्यनन्तरोक्तं प्रमाण एवं यो न मन्येत इत्यर्थः। मनुरपि। "आर्षं धर्मोपदेशञ्च वेदशास्त्राविरोधिना। यस्तर्केणानुसन्धत्ते स धर्मं वेद नेतरः"॥ ऋषिजुष्टत्वादार्षं वेदं धर्मोपदेशं तन्मूलं स्मृत्यादिकम्। यस्तदविरुद्धेन तर्केण मीमांसादिना अनुसन्धत्ते विचारयति स धर्मं वेद जानाति न तु मीमांसानभिज्ञः। अतएव भट्टपादैरुक्तम्। "धर्मे प्रमीयमाणे हि वेदेन करणात्मना। इति कर्त्तव्यताभागं मीमांसा पूरयिष्यति"॥ इति मीमांसा वेदविचारः। सा च कर्मब्रह्मभेदात् जैमिनिवादरायणप्रणीता द्विविधा। अतएव बृहस्पतिः। "केवलं शास्त्रमाश्रित्य न कर्त्तव्यो विनिर्णयः। युक्तिहीनविचारे तु धर्महानिः प्रजायते"॥ वशिष्ठोऽपि। "इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्। बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रहरिष्यति"॥

श्रुतमर्थविबोधकव्याकरणमीमांसादिशास्त्राण्यष्टादश । यथा विष्णुपुराणम् । “अङ्गानि वेदाश्चत्वारो मीमांसान्यायविस्तरः । धर्मशास्त्रं पुराणञ्च विद्या ह्येताश्चतुर्दश ॥ आयुर्वेदो धनुर्वेदो गान्धर्वश्चेति ते त्रयः । अर्थशास्त्रं चतुर्थञ्च विद्या ह्यष्टादशैव ताः” ॥ चतुर्दशधर्मप्रमितिप्रधानानि चतस्रः पुनर्दृष्टप्रधानाः क्वचिदलौकिकमर्थप्रमाणयन्त्यो धर्मेऽपि प्रमाणम् । अङ्गानि षड़ित्यष्टादशप्रायश्चित्तं जानतामनुपदेशे दोषमाहाङ्गिराः । “आर्त्तानां मार्गमाणानां प्रायश्चित्तानि ये द्विजाः । जानन्तो न प्रयच्छन्ति तेऽपि तद्दोषभागिनः” ॥ प्रायश्चित्तोपदेशे पुण्यमात्र स एव । “यत् पुण्यमुद्धृते विप्रे म्रियमाणे जलादिषु । तत् पुण्यं तारिते पापात् प्रायश्चित्तैस्तु मानवे” ॥ अर्चां विना न वक्तव्यम् “अनर्चितैरनाहूतैरस्पृष्टैश्चैव संसदि । प्रायश्चित्तं न वक्तव्यं जानद्भिरपि जल्पते” ॥ इत्यङ्गिरोवचनात् । व्यवहारचिन्तामणौ ज्योतिषे च । “नाष्टम्यां न चतुर्दश्यां प्रायश्चित्तपरीक्षणे । न परीक्षा विवाहश्च शनिभौमदिने तथा” ॥ विष्णुः । “ब्राह्मणादीनामशौचे यः सकृदन्नमश्नाति तस्य तावदेवाशौचं यावत्तेषाम् । अशौचापगमे प्रायश्चित्तं कुर्य्यादिति” । अशौचापगमे प्रायश्चित्तविधानादशौचादभ्यन्तरे प्रायश्चित्तानाम् । “नैमित्तिकानि काम्यानि निपतन्ति यथा यथा । तथा तथैव कार्य्याणि न कालस्तु विधीयते” ॥ इति दक्षवचनेनापि न प्रतिप्रसवः । प्रायश्चित्तोपदेशाय वस्त्रादिना ब्राह्मणस्तोषणीयः । यथा मिताक्षरायां पराशरः । “पापं प्रख्यापयेत् पापी धेनुं दत्त्वा तथा वृषम्” । एतच्चोपलक्षणम् । “प्रख्याप्य पापं वक्तृभ्यः किञ्चिद्दत्त्वा व्रतं चरेत्” इति स्मृतेः । देवलवचने तोषयित्वा द्विजोत्तमानिति । अत्र तोषयित्वेति श्रवणात् आनतिकरत्वेन तद्ग्रहणान्न दोषः । पापिभ्यः

प्रतिग्रह एव दोषश्रुतेः। प्रतिग्रहस्त्वदृष्टार्थत्यक्तद्रव्यस्वीकार इति प्रायश्चित्तविवेकः। अतएव प्रायश्चित्तद्रव्यग्रहणे दोषं वदन्ति। क्षत्रियादिभ्यः प्रायश्चित्तोपदेशो ब्राह्मणमन्तर्धाय करणीयः। यथाहाङ्गिराः "न्यायतो मार्गमाणस्य क्षत्रियादेः प्रमाणिनः। अन्तरा ब्राह्मणं कृत्वा व्रतमेतत् समादिशेत्"॥ गोवधे तु स्वामिने गोमूल्यं दत्त्वा व्रतं करणीयम्। "आदौ गोपतये दत्त्वा गोमूल्यं साधुकल्पितम्"॥ इति ब्रह्मपुराणात्। न चैतद्ग्रहणे दोषः। "गवां विक्रयकारी च गविलोमानि यानि च। तावद्वर्षसहस्राणि गवां गोष्ठे कृमिर्भवेत्" इति यमवचनादिति वाच्यम्। तद्ग्रहणस्य विक्रयत्वेन व्यवहाराभावात्। अवस्थितस्य गवादेर्मूल्यग्रहण एव व्यवह्रियते प्रतिरूपकस्थानीयत्वाच्च न हि प्रतिरूपकग्रहणं विक्रयः। तथा च पराशरः। "प्रमापणे प्राणभृतां प्रदद्यात् प्रतिरूपकम्। तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यब्रवीन्मनुः"॥ प्रतिरूपकं तत्तुल्यप्राण्यन्तरम्। एवं चौरात् स्वामिनो वा क्रीतगवादिकं गोस्वामिने दत्त्वा तन्मूल्यं गृह्णतो न विक्रयः किन्तु उपाधिं विना यत्र स्वेच्छया लाभाय वा विक्रीणीते तत्र तथेति।

अथ चौरालाभविनिर्णयः। याज्ञवल्क्यः। "विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धिः स्वामी द्रव्यं नृपोदमम्। क्रेता मूल्यमवाप्नोति तस्माद् यस्तस्य विक्रयी"॥ क्रेतुश्चौरत्वेनाभिशस्तत्वे सति विक्रेतुर्दर्शनाच्छुद्धिः। एतदप्रकाशक्रये। यथा वृहस्पतिः "प्रकाशं वा क्रयं कुर्य्यात् मूलं वापि समर्पयेत्"॥ मूलं विक्रेतारम्। यस्तस्यापहृतद्रव्यस्य विक्रयी चौरस्तस्मात् स्वामी नष्टधनः सन् "नाष्टिकस्यैव कुरुते तद्धनं ज्ञातिभिः स्वकम्। अदत्तत्यक्तविक्रीतं कृत्वा स्वं लभते धनी"॥ इत्युक्तरीत्या स्वं द्रव्यं नृपश्चापराधानुरूपं दण्डं "धान्यं दशभ्यः

कुम्भेभ्यो हरतोऽप्यधिकं वधः" ॥ इति मनूक्तादिदण्डं क्रेता च मूल्यमवाप्नोति। कुम्भपरिमाणमाह कात्यायनः। "दश द्रोणा भवेत् खारी कुम्भोऽपि द्रोणविंशतिः"। द्रोण उक्तो मिताक्षरायाम्। "अष्टमुष्टिर्भवेत् कुञ्चिः कुञ्चयोऽष्टौ तु पुष्कलम् पुष्कलानि च चत्वारि आढकः परिकीर्त्तितः। चतुराढको भवेत् द्रोण इत्येतन्मानलक्षणम्" कल्पतरौ द्वादशप्रसृतिभिः कुडवस्तच्चतुर्गणोत्तरं प्रस्थाढकद्रोणा इत्युक्तं कुडवचतुर्गुणादष्टचत्वारिंशत् प्रसृतिभिः प्रस्थस्तच्चतुर्गुणा द्विनवत्यधिकशतेन प्रसृतिभिराढकः। तच्चतुर्गुणादष्टषष्ट्यधिकसप्तशतप्रसृतिभिर्द्रोणः। तद्दशगुणादशीत्यधिकषट्शत्यधिकसप्तसहस्रप्रसृतिभिः खारी द्रोणविंशतिगुणात् षष्ट्यधिकत्रिशताधिकपञ्चदशसहस्रप्रसृतिभिः कुम्भः। तेन षट्प्रसृतिभिः कुञ्चिः। प्रस्थपुष्कलयोः पर्य्यायता इति कुञ्चितण्डुलाश्च पुरुषाहारयोग्या इति गोपथब्राह्मणाच्च। "द्वात्रिंशत्पलिकं प्रस्थमुक्तं स्वयमथर्वणा। आढकस्तु चतुःप्रस्थश्चतुर्भिर्द्रोण आढकैः। पलप्रमाणन्तु वक्ष्यते। प्रकाशक्रये तु स्वामिनो ग्रहणे नारदबृहस्पती। "वणिग्वीथीपरिगतं विज्ञातं राजपूरुषैः। अविज्ञाता श्रयात् क्रीतं विक्रेता यदि वा मृतः। स्वामी दत्त्वार्द्धमूल्यन्तु प्रगृह्णीत स्वकन्धनम्। अर्द्धं द्वयोरपहृतं तत्र स्यात् व्यवहारतः। अविज्ञातक्रये दोषस्तथा चापरिपालनम्। एतद्द्वयं समाख्यातं द्रव्यहानिकरं परम्"।

अथ क्रयनिर्णयः। मूल्यं दास्यामीति कृत्वा ग्रहणादपि क्रयसिद्धिः। तथा विवादचिन्तामणौ कात्यायनः। "पण्यं गृहीत्वा यो मूल्यमदत्त्वैव दिशं व्रजेत्। ऋतुत्रयस्योपरिष्टात्तद्धनं वृद्धिमाप्नुयात्" ॥ अतएव बृहस्पतिः। "गृहक्षेत्रादिकं क्रीत्वा तुल्यमूल्याक्षरान्वितम्। पत्रं कारयते यस्तु

क्रयलेख्यं तदुच्यते"। क्रीतेऽपि समयविशेषाभ्यन्तरे पश्चात्तापादसिद्धिः। यथा मनुः। "क्रीत्वा विक्रीय वा किञ्चित् यस्येहानुशयो भवेत्। सोऽन्तर्दशाहे तत् द्रव्यं दद्याच्चैवाददीत वा"। एतत् याज्ञवल्क्येतरपरम्। यथा याज्ञवल्क्यः। "दशैकपञ्चसप्ताहमासत्र्यहार्द्धमासिकम्। बीजायो वाह्यरत्नस्त्रीदोह्या पुंसां परीक्षणम्"॥ अत्र बृहस्पतिः "अतोऽर्वाक् पण्यदोषस्तु यदि संजायते क्वचित्। विक्रेतुः प्रतिदेयन्तत् क्रेता मूल्यमवाप्नुयात्"॥ अतस्तत् द्रव्यपरीक्षणकालात्। कात्यायनः। "अविज्ञातन्तु यत् क्रीतं दुष्टं पश्चाद्विभावितम्। क्रीतं तत् स्वामिने देयं पण्यं कालेऽन्यथा न तु"। काले प्रागुक्तपरीक्षाकालाभ्यन्तरे। परीक्षे तु बृहस्पतिः। "परीक्षेत स्वयं पण्यमन्येषान्तु प्रदर्शयेत्। परीक्षितं बहुमतं गृहीत्वा न पुनस्त्यजेत्"॥ अत्र विशेषयति नारदः। "क्रीत्वा मूल्येन यो द्रव्यं दुष्क्रीतं मन्यते क्रयी। विक्रेतुः प्रतिदेयन्तत् तस्मिन्नेवाह्न्यविक्षतम्। द्वितीयेऽह्नि ददत् क्रेता मूल्यात् त्रिंशांशमाहरेत्। द्विगुणन्तु तृतीयेऽह्नि परतः क्रेतुरेव तत्"। आहरेत् दद्यात् विक्रेत्रे इति शेषः। द्विगुणं त्रिंशांशस्य इति याज्ञवल्क्यः। "राजदैवोपघातेन पण्यदोषे उपागते। हानिर्विक्रेतुरेवासौ याचितस्याप्रयच्छतः"॥ नारदः। "उपहन्येत वा पण्यं दह्येतापह्रियेत वा। विक्रेतु रेव सोऽनर्थो विक्रीयासंप्रयच्छतः। दीयमानं न गृह्णाति क्रीतं पण्यन्तु यः क्रयी। स एवास्य भवेत् दोषो विक्रेतुर्योऽप्रयच्छतः"॥

अथ प्रायश्चित्तपूर्वाह्न कृत्यम्। शङ्खलिखितौ। "वाप्य केशान् नखान् पूर्वं घृतं प्राश्य वह्निर्निशि। प्रत्येकं नियतं कालमात्मनो व्रतमादिशेत्। प्रायश्चित्तमुपासीनो वाग्यतस्त्रिसवनं स्पृशेत्"॥ घृतप्रशंसामाह मत्स्यपुराणं "यस्मात्तेजो-

मयं ब्रह्म हुते तत्र व्यवस्थितम्। तेजोऽमृतमयं दिव्यं महापातकनाशनम्"॥ वह्निर्निशीतिपरेणान्वयः। "व्रतं निशामुखे ग्राह्यं वह्निस्तारकदर्शनात्" इति लघुहारीतवचनैकवाक्यत्वात् प्रत्येकमित्यादि पूर्वं व्याख्यातम्। केशधारणेच्छायां द्विगुणव्रतादिमाह लघुहारीतः। "राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः। केशानां वपनं कृत्वा प्रायश्चित्तं समाचरेत् केशानां धारणार्थन्तु द्विगुणं व्रतमाचरेत्। द्विगुणेऽपि व्रते चीर्णे द्विगुणा दक्षिणा भवेत्'। विद्वद्विप्रादीनान्तु महापातकादि दोष एव मुण्डनम्। "विद्वद्विप्रनृपस्त्रीणां नेष्यते केशवापनम्। ऋते महापातकिनो गोहन्तुश्चावकीर्णिनः"॥ इति मिताक्षराधृतवचनात्। हारीतेन प्रायश्चित्तपूर्वाह्ने मुण्डनविधानात्। धेनुदानादावपि तथा। स्त्रीणां विशेषमाह भवदेवभट्टधृतं "वपनं नैव नारीणां नानुव्रज्या जपादिकम्। न गोष्ठे शयनं तासां न चादध्याद्गवाजिनम्। सर्वान् केशान् समुद्धृत्य छेदयेदङ्गुलिद्वयम्। सर्वत्रैव हि नारीणां शिरसो मुण्डनं स्मृतम्"॥ पराशरस्यैतदिति मिताक्षरा। सर्वत्र इति प्रागुक्तमहापातकादिपरं न तु प्रयागपरं केशमूलान्युपाश्रित्य इति वचनात्।

अथ बाल्यादिभेदात् प्रायश्चित्तम्। तत्रोनषोड़शवर्षीयस्यार्द्धम्। "अशीतिर्यस्य वर्षाणि बालो वाप्यून षोड़शः। प्रायश्चित्तार्द्धमर्हन्ति स्त्रियो रोगिण एव च" इति विष्णुशातातपवचनात्। "पादो बालेषु दातव्यः सर्वपापेष्वयं विधिः"॥ इति लघुहारीतवचनन्तु ऊनैकादशवर्षपञ्चवर्षाधिकबालविषयम्। यथाङ्गिराः "ऊनैकादशवर्षस्य पञ्चवर्षाधिकस्य च। चरेत् गुरुः सुहृद्वापि प्रायश्चित्तं विशुद्धये। ततो न्यूनतरस्यास्य नापराधो न पातकम्। न चास्य राजदण्डोऽपि प्रायश्चित्तं न

विद्यति" ॥ ब्रह्मपुराणे । "रोगी वृद्धस्तु पोगण्डः कुर्वन्त्यन्यैर्व्रतं सदा" । दशमस्कन्धीयद्वादशाध्यायटीकायां श्रीधरस्वामिधृतवचनम् । पोगण्डमाह । "कौमारं पञ्चमाब्दान्तं पोगण्डं दशमावधि । कैशोरमापञ्चदशाद्यौवनन्तु ततः परम्" ॥ दशमावधीत्यापञ्चदशादित्येकवाक्यत्वात् ऊनैकादशवर्षेत्यूनषोडश इत्येतयोर्दशपञ्चदशपरतेति । दशवर्षाभ्यन्तरीयस्य बालस्य पादविधानान्नास्यानुग्रहान्तरमिति प्रागेवोक्तम् ।

अथ धेनुमूल्यव्यवस्था । संवर्त्तः । "प्राजापत्यव्रताशक्तौ धेनुं दद्यात् पयस्विनीम् । धेनोरभावे दातव्यं तुल्यं मूल्यं न संशयः" ॥ पयस्विनीमिति विशेषणं दुग्धोपयोगाय सा च वत्सं विना न सम्भवति । अतः सवत्साया एव दानं मुख्यं तदभावे यथोचितं तन्मूल्यं तदभावे पुराणत्रयम् । "द्वात्रिंशत्पणिका गावो वत्सः पौराणिको भवेत्" इति कात्यायनवचनात् । षट्त्रिंशन्मतमिति कृत्वा पठन्ति । "धेनुः पञ्चभिराढ्यानां मध्यानां त्रिपुराणिकी । कार्षापणैकमूल्या हि दरिद्राणां प्रकीर्त्तिता" ॥ अत्र पुराणत्रयलभ्यं गोतमोक्तं हिरण्यादिकमेव देयं तद्यथा । हिरण्यं गौर्वासोऽश्वो भूमिस्तिलाघृतमन्नमिति देयानि । एतान्येवानादेशे विकल्पेन क्रियेरन्निति अन्यथा इदमनर्थकं स्यात् इति प्रायश्चित्तविवेकः तच्चिन्त्यं हिरण्यं गौरित्यादिना गोविकल्पकत्वेन हिरण्यामुक्तं न तु गोमूल्यत्वेन ततश्च द्वात्रिंशत्पणिका इत्यादिवचनात् कार्षापणत्रयदानमेव युक्तम् । तत्र "ताम्रिकः वार्षिकः पणः" इति याज्ञवल्क्यवचनेन "गुञ्जाः पञ्चाद्यमाषकः । ते षोडशाक्षः कर्षोऽस्त्री पलं कर्षचतुष्टयम्" इत्यमरसिंहोक्तेन अशीतिरत्तिकापरिमितताम्रे पणशब्दः सङ्केतितः स च तावत्संख्यकवराटकैर्लभ्यत इति वराटकेष्वपि

तथा व्यवहारः। एतन्मूलकं भविष्यमत्स्यतन्त्रयोर्वचनम्। "अशीभिर्वराटकैः पण इत्यभिधीयते। तैः षोडशैः पुराणं स्यात् रजतं सप्तभिस्तु तैः" इति गोतमोक्तपरिगणनीयनियमस्तु अनादिष्टे प्राथमिककल्पाय आदिष्टे तत्तद्द्रव्यप्राधान्यं हिरण्यादेरानुकल्पिकत्वमिति विशेषः। अतएव यमेन सामान्यतो दानमुक्तं यथा। "शोषणेन शरीरस्य तपसाध्ययनेन च। पापकृन्मुच्यते पापात् दानेन दमनेन च"॥ अतः कार्षापणत्रयलभ्यं रजतादि दीयते। यत्तु मिताक्षरायाम्। "गवामभावे निष्कः स्यात्तदर्द्धं पाद एव च" इति स्मरणान्निष्कादिकमुक्तं तच्छक्तमाद्यपेक्षया तत्रापि "चतुःसौवर्णिको निष्कः" इति मनूक्तनिष्कस्य न ग्रहणम् अत्यन्तविसदृशमूल्यत्वात् साष्टशतसुवर्णनिष्कवत्। किन्तु दीनारनिष्कस्य ग्रहणं तथा चामरः। "साष्टे शते सुवर्णानां हेम्न्युरो भूषणे पले दीनारेऽपि च निष्कोऽस्त्री" इति दीनार उक्तो विष्णुगुप्तेन। "दीनारो रोपकैरष्टाविंशत्या परिकीर्त्तितः। सुवर्णसप्ततितमो भागो रोपक उच्यते"॥ सुवर्णस्त्वशीतिरक्तिकापरिमितं हेम। तथा च मनुः। "पञ्चकृष्णलको माषस्ते सुवर्णस्तु षोडश" इति अत्र काञ्चनं व्यक्तमाहामरसिंहः। "सुवर्णविस्तौ हेम्नोऽक्षः" इति। एवञ्च सप्तमांशाधिकहेमरक्तिकारोपकः तदष्टाविंशत्या द्वात्रिंशद्रक्तिकापरिमितो दीनारो निष्कः।

अथ ज्ञानकृतादिनिरूपणम्। तत्र गोवधस्य बुद्धिपूर्वकं तदा भवति यदि गां ज्ञात्वा एतां हन्मीति इच्छया हन्ति तदा कामनाद्वारैव ज्ञानस्य प्रवृत्त्यङ्गत्वात्तदभावे त्वबुद्धिपूर्वकत्वम्। अतएव प्रवृत्त्यङ्गज्ञानस्य कामनाव्यभिचाराभावादेव। "कृच्छ्रांस्तु चतुरः कुर्य्यात् गोवधे बुद्धिपूर्वके। अमत्या च द्वयं कार्य्यम्" इति विश्वामित्रवचनेन ज्ञानाज्ञानाभ्यां

द्वैविध्यमुक्तम् अन्यत्र कामाकामाभ्याम् इत्युक्तम्। यथा वृहस्पतिः। "कामाकामकृतं त्वेवं महापापं द्विधा मतम्। पुरुषापेक्षया चैव निष्कृतिर्द्विविधा स्मृता" ॥ इत्यञ्च गवयादिभ्रमेण यो गोवधस्तत्र गोवधस्य न ज्ञानकृतत्वं गोत्वेनाज्ञानात् यदि गोत्वेन जानन्नप्यन्योद्देशच्छिन्ननाराचादिना यदि हन्ति तदापि न ज्ञानकृतत्वं तद्विषयकहननेच्छारूपद्वाराभावात्। वधनिरुक्तिरग्निपुराणे। "स्यात् प्राणवियोगफलकव्यापारो हननं स्मृतम्। रागाद्द्वेषात् प्रमादाद्वा स्वतः परत एव वा" ॥

अथ विप्रादिस्वामिकगोवधप्रायश्चित्तम्। तत्र मनुना "गोषु ब्राह्मणसंस्थासु" इत्यनेन दण्डप्रकरणे ब्राह्मणस्वामिकत्वेन गोर्गुरुत्वमभिहितम्। नारदेन च। "देवब्राह्मणराज्ञान्तु द्रव्यं विज्ञेयमुत्तमम्। इत्युक्तम् अतस्तद्वधे गुरुप्रायश्चित्तं युक्तम्। तदाह मनुः। "उपपातकसंयुक्तो गोघ्नो मासं यवान् पिबेत्। कृतवापो वसेद्गोष्ठे चर्म्मणा तेन संवृतः ॥ चतुर्थकालमश्नीयादक्षारलवणं मितम्। गोमूत्रेण चरेत् स्नानं द्वौ मासौ नियतेन्द्रियः ॥ दिवानुगच्छेत्तागास्तु तिष्ठन्नूर्द्ध्वं रजः पिबेत्। शुश्रूषित्वा नमस्कृत्वा रात्रौ वीरासनं वसेत्। तिष्ठन्तीष्वनुतिष्ठेत्तु व्रजन्तीष्वप्यनुव्रजेत्। आसीनासु तथासीनो नियतो वीतमत्सरः ॥ आतुरामभिशस्तां वा चौरव्याघ्रादिभिर्भयैः। पतितां पङ्कलग्नां वा सर्वप्राणैर्विमोचयेत् ॥ उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम्। न कुर्वीतात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥ आत्मानो यदि वान्येषां गृहे क्षेत्रे खलेऽथ वा। भक्षयन्तीं न कथयेत् पिबन्तं चैव वत्सकम् ॥ अनेन विधिना यस्तु गोघ्नो गामनुगच्छति। स गोहत्याकृतं पापं त्रिभिर्मासैर्व्यपोहति ॥ वृषभैकादशा गाश्च दद्यात् सुचरितव्रतः। अविद्यमाने सर्वस्वं वेदविद्भ्यो निवेदयेत्" ॥ उपपातकसंयुक्तो

गोघ्नो न तु यागाद्यर्थं गोवधकर्त्तापि अतएव सामान्यत उक्तं हारीतेन "वृथा पशुघाते प्राजापत्यम्"। इति यागाद्यर्थोऽपि गोवधः कलौ निषिद्धः। "दीर्घकालं ब्रह्मचर्य्यं धारणं च कमण्डलोः। गोत्रान्मातृसपिण्डाद्वा विवाहो गोवधस्तथा॥ नराश्वमेधौ मद्यञ्च कलौ वर्ज्यं द्विजातिभि":॥ इति हलायुधशूलपाणिगृहस्थरत्नाकरधृतब्रह्मपुराणवचनात्। मद्ये निषेधं स्पष्टयत्युशना। "मद्यमपेयमदेयमनिर्ग्राह्यमिति"। एवञ्च दुर्गापूजादौ यन्मद्यदानमुक्तं तत्कलीतरपरम्। कृतवापः कृतसशिखवपनो धृतगवीचर्म्मा कृतपरिधानोत्तरावगुण्ठनो मासत्रयं गोष्ठे वसेत्। तत्र प्रथममासं यवान् यवागूकृतान् पिबेत्। अपरमासद्वये चतुर्थकालमश्नीयात्। पूर्व्वदिने उपोष्य परदिने रात्रौ भुञ्जीत। मुनिभिर्द्विरशनं प्रोक्तमिति श्रवणात्। अक्षारलवणम् अकृत्रिमलवणं मितं स्वल्पम्। मासत्रयधर्म्मानाह दिवानुगच्छेत् इति। अनुः सहार्थः। तिष्ठन्तीष्वित्यादिषु बह्वीनां धर्म्मः कार्य्यः। स चात्मक्लेशकरः वीरासनं भित्त्याद्यनाश्रित्योपवेशनम् अभिशस्ताम् अतिक्रान्तां भयैर्भयनिमित्तैः सर्व्वप्राणैः सर्व्वसामर्थ्यैः। विमोचयेत्तदपसारयेत्। अतएव विष्णुपुराणम्। "शमं नयति यः क्रुद्धान् सर्व्वबन्धुरमत्सरः। भीताश्वासनकृत् साधुः स्वर्गस्तस्याल्पकं फलम्"॥ गां न कथयेन्निवारणाभिप्रायेण पिबन्तं स्तन्यमिति शेषः। सुचरितव्रतः सम्यक्चरितव्रतः। दक्षिणार्थं वृषभसहितदश गा दद्यात् तदभावे स्वल्पमपि सर्व्वस्वं दक्षिणार्थं दद्यात्। धेनुसंकलनमाह। त्रैमासिकव्रते मासयवपानं प्राजापत्यद्वयतुल्यं यतो यमेन अस्थ्यादिभङ्गे मासार्द्धयवपानमुक्तं तत्रैव गोभिलेन प्राजापत्यमुक्तम्। यथा भवदेवभट्टधृतयमवचनम्। "अस्थिभङ्गं गवां कृत्वा लाङ्गूलच्छेदनं तथा।

पाटने कर्णशृङ्गाणां मासार्द्धन्तु यवान् पिबेत्" ॥ स्मृतिसागरे गोभिलः । "कर्णलाङ्गूलयोश्छेदमस्थिभङ्गं विधाय च । प्राजापत्यव्रतं कुर्य्युश्चत्वारो ब्राह्मणादयः" ॥ अत्र यत् शूद्रस्य द्विजतुल्यप्रायश्चित्तमुक्तं तदस्थिभङ्गादिमात्रपरं वैश्यतुल्यशूद्रमात्रपरं वा एवञ्च यत् प्रायश्चित्तविवेके मासयावकपानं क्वचित् द्वादशप्राजापत्यतुल्यमुक्तं तद् गोमूत्रमात्रसिद्धयावकपरं क्वचिच्च प्राजापत्यद्वयतुल्यं तत् सिद्धानन्तरप्रक्षिप्त-गोमूत्रपरमित्यविरोधः । मासद्वयचतुर्थकालभोजने त्रिंशदुपवासास्त्रिंशता नक्तैर्दशोपवासाः । तथा च शूलपाणिमहामहोपाध्यायैस्त्रिंशच्च निरन्तरोपवासाः पञ्चदश प्राजापत्यतुल्याः । मासोपवास धेनुसंकलने उक्ताः । अत्रैकान्तरितत्वादितिकर्त्तव्यतायोगाच्च । एकादशप्राजापत्यतुल्याः तत्र त्रिंशन्नक्तभोजनं चतुःप्राजापत्यतुल्यं मिलित्वा त्रैमासिकव्रतं सप्तदशप्राजापत्यतुल्यं तदभावे सप्तदशधेनवो देया इति बहुसम्मता व्यवस्था । भवदेवभट्टसम्मता तु द्वादशधेनव इति पूर्वोक्ता च दक्षिणा देया । तदशक्तौ एकपञ्चाशत्षट्त्रिंशद्वा कार्षापणा देया । दक्षिणायान्तु वृषभमूल्यं कार्षापणपञ्चकं गोदशकमूल्यं कार्षापणदशकमिति । पञ्चदशकार्षापणाः एतच्च ज्ञानत इति । अज्ञानतोऽर्द्धम् । ततो ब्राह्मणान् भोजयित्वा गौरेका दक्षिणा देया । "भुक्तवत्सु च विप्रेषु गां वै दद्याद्विचक्षणः । गवामभावे दातव्यं गोमूल्यञ्च न संशयः" ॥ इति संवर्त्तवचनात्तन्मूल्यं कार्षापणमेकं वा दद्यात् एतच्च शस्त्रमुष्टिलोष्ट्रलगुडविषाग्न्यादिभिः प्रायिकमृत्युफलकैर्हनने बोध्यम् । तथा बृहस्पतिः । "शस्त्रादिना तु गां हत्वा मानवं व्रतमाचरेत्" । स्त्रीशूद्रबालवृद्धानामर्द्धम् एकस्योभयपरत्वे पादः । एवञ्च ब्राह्मणादीनां सगुणत्वनिर्गुणत्वादिना कालदेशादितारतम्येन च लघु-

गुरुप्रायश्चित्तान्तरं बोध्यम्। "समद्विगुणसाहस्रमानन्त्यञ्च यथा क्रमम्। दाने फलविशेषः स्यात् हिंसायां तद्वदेव हि"॥ इति दक्षवचनात्। "सममब्राह्मणे दानं द्विगुणं ब्राह्मणब्रुवे। अधीते शतसाहस्रमनन्तं वेदपारगे"॥ ब्राह्मणब्रुवश्चाङ्गिरसोक्तः यथा। "गर्भाधानादिसंस्कारैर्युक्तश्च नियमव्रतैः। नाध्यापयति नाधीते स ज्ञेयो ब्राह्मणब्रुवः"॥

क्षत्रियसम्बन्धिन्या गोवधे तु देवलः। "गोघ्नः षण्मासान् तच्चर्म्मणा परिवृतो गोग्रासाहारो गोव्रती यवाशी गोभिरभिसञ्चरन् विप्रमुच्यत इति"। गोग्रासाहारो गोग्रासाहर्त्ता कर्मण्यनिति साधुः। षण्मासयावकभक्षणं द्वादशप्राजापत्यतुल्यं दक्षिणा च विशेषानुपदेशाद् यथाशक्ति देयेति। एतज्ज्ञानादज्ञानादर्द्धं स्त्रीशूद्रबालवृद्धानामर्द्धम् एकस्योभयपरत्वे पादः।

वैश्यसम्बन्धिन्या गोवधे तु। शातातपः। "पञ्चगव्येन गोघाती मासैकेन विशुध्यति। गोमतीञ्च जपेद्विद्यां गवां गोष्ठे च संवसेत्"॥ पञ्चगव्यमाह शातातपः। "गोशकृत् द्विगुणं मूत्रं सर्पिर्विद्याच्चतुर्गुणम्। क्षीरमष्टगुणञ्चैव पञ्चगव्ये तथा दधि"॥ तथाष्टगुणम्। यमः। "आहृत्य प्रणवेनैव उत्थाप्य प्रणवेन च। प्रणवेन समालोड्य प्रणवेनैव तत् पिबेत्"॥ उत्थाप्य मिश्रीकृत्य एतद्वैकल्पिकं द्रव्यपरिमाणानन्तरम्। मन्त्रान्तरञ्च ग्रन्थगौरवान्नोक्तम्। गोमतीविद्यामाह। प्रायश्चित्तकाण्डकल्पतरौ यमः। "गोमतीं कीर्त्तयिष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम्। तान्तु मे गदतो विप्राः शृणुध्वं सुसमाहिताः॥ गावः सुरभयो नित्यं गावो गुग्गुलुगन्धिकाः। गावः प्रतिष्ठाभूतानां गावः स्वस्त्ययनं महत्॥ अन्नमेव परं गावो देवानां हविरुत्तमम्। पावनं सर्वभूतानां क्षरन्ति च हवींषि च॥

हविषा मन्त्रपूतेन तर्पयन्त्यमरान्दिवि। ऋषीणामग्निहोत्रेषु गावो होमप्रयोजिकाः॥ पावनं सर्वभूतानां गावः शरणमुत्तमम्। गावः पवित्रं परमं गावो मङ्गलमुत्तमम्॥ गावः स्वर्गस्य सोपानं गावो धन्याः सनातनाः। नमो गोभ्यः श्रीमतीभ्यः सौरभेयीभ्य एव च॥ नमो ब्रह्मसुताभ्यश्च पवित्राभ्यो नमो नमः। ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेकं द्विधाकृतम्॥ एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति"॥ मन्त्राज्ञाने मिताक्षरायां षट्त्रिंशन्मतम्। "जपहोमादि यत्किञ्चित् कृच्छ्रोक्तं सम्भवेन्न चेत्। सर्वं व्याहृतिभिः कुर्य्यात् गायत्र्या प्रणवेन च"॥ गवां गोष्ठ इति श्रवणकुण्डलवत् तात्कालिकगोसत्त्वावबोधाय गोमतीजपसहितमासपञ्चगव्यपानं प्राजापत्यपञ्चकतुल्यम् एतदज्ञानकृते ज्ञानकृते तु द्वैगुण्यम्। स्त्रीशूद्रबालवृद्धानामर्द्धम् एकस्योभयधर्मपरत्वे पादः। शूद्रसम्बन्धिन्या गोर्वधे तु विश्वामित्रः। "कृच्छ्रांस्तु चतुरः कुर्य्यात् गोवधे बुद्धिपूर्वके। अमत्या च द्वयं कार्य्यं तदर्द्धं बालवृद्धयोः। स्त्रीशूद्रयोरेवमेतद्वधे चैव न संशयः"॥ कृच्छ्रान् प्राजापत्यानि। तच्चतुष्टयाशक्तौ चतस्रो धेनवः। द्वादशकार्षापणा वा। एतज्ज्ञानकृते अज्ञानकृते प्राजापत्यद्वयं तदशक्तौ द्वे धेनू षट्कार्षापणा वा देयाः। स्त्रीशूद्रबालवृद्धानामर्द्धम्। एकस्योभयधर्मपरत्वे पादः। स्वामिकृतविशेषस्तु प्रायश्चित्तविवेकानुसारादुक्तः। व्यवस्था तु तदुपदेशकं वस्त्रादिना परितोष्य ग्राह्या। पत्रदाने तु शूद्रेणाज्ञानकृतशूद्रस्वामिकगवीवधजन्यपापक्षयाय प्राजापत्यव्रतं प्रायश्चित्तं करणीयम्। तदशक्तावेकधेनुदानं तदशक्तौ कार्षापणत्रयम्। दक्षिणा च यथाशक्ति दातव्या। एतत्सर्वं पूर्वदिने सशिखवपनं कारयित्वा घृतं प्राश्य उपोष्य करणीयम्। प्रायश्चित्तानन्तरं पार्वणविधिना

शुद्ध्यर्थं श्राद्धं कर्त्तव्यम्। दशान्यूनब्राह्मणेभ्यो भोज्यादिकं देयम्। एतत्सर्वं गोस्वामिनं मूल्यादिना परितोष्य करणीयम्। अमुकस्य मतमेतदेवमन्यत्राप्यूहेन लेख्यम्। विशेषदक्षिणोक्तौ तु सैव लेख्या। केशरक्षणे तु प्रायश्चित्तद्वैगुण्यं दक्षिणा च द्विगुणा। योषितां मुण्डने तु अङ्गुलिद्वयपरिमितसर्वकेशाग्रच्छेदनं करणीयमिति लेख्यम्। प्रायश्चित्तकरणे तु अमुकपापक्षयकाम इदं काञ्चनमिति वाक्ये विशेषो बोध्यः। नारायणश्च स्मर्त्तव्यः। "प्रातर्निशि तथा सन्ध्या मध्याह्नादिषु संस्मरन्। नारायणमवाप्नोति सद्यः पापक्षयं नरः" ॥ इति विष्णुपुराणे पापक्षयश्रुतेः। गर्भिण्यादौ तु विशेषमाह वृहस्पतिः "गर्भिणीं कपिलां दोग्ध्रीं होमधेनुञ्च सुव्रताम्। रोधादिना घातयित्वा द्विगुणं गोव्रतञ्चरेत्" ॥ गर्भिणीवधे तु विशेषमाह वृद्धयमः। "गवां निपतने चैव गर्भनाशो यदा भवेत्। एकैकन्तु चरेत् कृच्छ्रं यथा पूर्वं तथा परम्" ॥ कृच्छ्रपदं व्रतपरम्। द्विगुणं गोव्रतमित्येकवाक्यत्वात् "पादमुत्पन्नमात्रे तु द्वौ पादौ गात्रसम्मिते। पादोनं व्रतमाचष्टे हत्वा गर्भमचेतनम्। अङ्गप्रत्यङ्गसम्पन्ने गर्भे चेतः समन्विते। द्विगुणं गोव्रतं कुर्य्यात् प्रायश्चित्तं विशुद्धये" ॥ मध्यमवचनं भवदेवव्याख्यातम्। यथा लगुडाद्यभिघातेन गौर्जीवति गर्भमात्रपातो भवति तदोत्पन्नगर्भमात्रपाते यथोक्तप्रायश्चित्तपादाचरणम्। गात्रावयवोत्पत्तौ प्रायश्चित्तपादद्वयं सकलगात्रसम्पत्तौ चैतन्याभावे प्रायश्चित्तपादत्रयम्। अर्थाच्चैतन्ययुक्तगर्भघाते कृत्स्नमेव प्रायश्चित्तमूहनीयम्। मिताक्षरायान्तु। गर्भिणीवधे यदा गर्भोऽपि निहतो भवति तदा प्रतिनिमित्तं नैमित्तिकमावर्त्तत इति न्यायादविशेषेण द्विगुणव्रतप्राप्तौ षट्त्रिंशन्मते विशेष उक्तः। "पाद उत्पन्नमात्रे तु द्वौ पादौ दृढ़तां गते। पादोनं व्रतमुद्दिष्टं

हत्वा गर्भमचेतनम्। अङ्गप्रत्यङ्गसम्पन्ने गर्भे चेतः समन्विते। द्विगुणं गोव्रतं कुर्य्यादेषा गोघ्नस्य निष्कृतिः"॥ दोग्ध्रीं बहुक्षीराम्। बृहस्पतिः। "अतिवृद्धामतिकृशामतिबालाञ्च रोगिणीम्। हत्वा पूर्वविधानेन चरेदर्द्धं व्रतं द्विजः"। पूर्वविधानेन मन्वाद्युक्तत्रैमासिकादिना अतिवृद्धा तृणच्छेदनासमर्था अतिकृशा कृशत्वेन दोहनवाहनायोग्या अतिबाला वर्षपर्य्यन्तं बाला तदतिक्रान्ता द्विवर्षीया। तथा च बृहदङ्गिराः। "वर्षमात्रा तु बाला स्यादतिबाला द्विवार्षिकी। अतः परन्तु सा गौः स्यात्तरुणी दन्तजन्मनि"॥ अतएव वक्ष्यते "द्विपादस्तु द्विहायने" इति संवर्त्तः। "व्यापन्नानां बहूनाञ्च बन्धने रोधनेऽपि वा। भिषङ्मिथ्योपचारे च द्विगुणं गोव्रतञ्चरेत्"॥ एकप्रयत्ने निष्पन्ने बहूनां गवां वधे प्रायश्चित्तगौरवमुक्तं न तु तन्नता पापभेदाभावात्। एकप्रयत्नजन्यत्वेनैकमेव गुरुतरपापमिति प्रायश्चित्तमपि तथा। बहूनामित्येकाधिकपरम्। तदविवक्षायामपि गोद्वयवधे प्रयत्नाभेदेऽपि विशेषवचनाभावात् प्रायश्चित्तद्वैगुण्यं युक्तम्। अपिशब्दात् गृहदाहादिना क्रमकृते तु प्रायश्चित्तावृत्तिः। यथोपपातकानुवृत्तौ यमः। "गोघ्नवद्विहितः कल्पश्चान्द्रायणमथापि वा। अभ्यासे तु तयोर्भूयस्ततः शुद्धिमवाप्नुयात्"। तयोर्गोवधतदन्योपपातकयोः प्रकृतिविकृतिरूपयोः संवर्त्तापस्तम्बौ। "एकाचेद्बहुभिः क्वापि दैवाद्व्यापादिता भवेत्। पादं पादञ्च हत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक्"। हत्याया यत्र यद्विहितं व्रतं तत्र तस्यैव पादं प्रत्येकं कुर्य्युः। एकाचेदित्युपलक्षणम् अतो बहुभिर्द्वयोर्बहूनाञ्च हनने प्रतिपुरुषं पादद्वयं त्रयं वा कल्पनीयमिति मिताक्षरा। वस्तुतस्तु एकाधिकानामेकैकपुरुषस्यैकप्रयत्नजन्य

बधे व्यापन्नानां बहूनामिति पूर्वोक्तवचनात् एकैकपुरुषस्य द्विपादं कृत्वा प्रायश्चित्तं प्रयत्नभेदे तु गोघ्नवदित्यनेन तन्त्रताया अभावात् प्रत्येकं प्रतिपुरुषं द्विपादावृत्तिरिति। एतच्चाकामतो बधे द्रष्टव्यम्। दैवादिति विशेषोपादानात् कामकृते तु बहूनामपि प्रत्येकं कृत्स्नदोषसम्बन्धात् पूर्णप्रायश्चित्तं युक्तम् सत्रिणां फलमिव प्रतिपुरुषं कृत्स्नव्यापारसमवायात्। "एकं घ्नतां बहूनाञ्च यथोक्ताद्द्विगुणो दमः"॥ इति प्रत्येकं दण्डद्वैगुण्यदर्शनाच्चेति मिताक्षरा। वस्तुतस्तु सर्वत्र पापे "स्यात्त्वकामकृते यस्तु द्विगुणं बुद्धिपूर्वके"॥ इत्यङ्गिरोवचनेनाज्ञानात् ज्ञाने द्वैगुण्यदर्शनादत्रापि ज्ञाने द्विपाद एव युक्तः। सत्रे तु सप्तदशावरा ऋद्धिकामाः सत्रमुपासीरन्निति श्रवणात्तथेति। एकं घ्नतामिति परवचनन्तु गोबधातिरिक्तविषयम्। गोबधे एकाचेदित्युपदेशेन दण्डवत् प्रायश्चित्तानि भवन्तीत्यतिदेशानवसरात्। तदवसरत्वे प्रत्येकं पूर्णं प्रायश्चित्तद्वैगुण्यं स्यात् न पूर्णं प्रायश्चित्तमात्रम् अतएव प्रायश्चित्तविवेके एकं घ्नतां बहूनामिति मनुष्यबधे उक्तं बहुभिरित्युपादानात् द्वाभ्यां हनने तु प्रत्येकं सम्पूर्णप्रायश्चित्तम्।

अथैकहायनादि गोबधप्रायश्चित्तम्। वृद्धप्रचेताः। "एकवर्षे गवि हते कृच्छ्रपादो विधीयते। अबुद्धिपूर्वं पुंसः स्यात् द्विपादस्तु द्विहायने। त्रिहायणे त्रिपादः स्यात् प्राजापत्यमतः परम्"॥ इदमपि प्रायश्चित्तलाघवेन अबुद्धिपूर्वकाधमशूद्रस्वामिकबधविषयमिति प्रायश्चित्तविवेकः। तेन यत्स्वामिकबधे यत् प्रायश्चित्तं तस्यैव तत्र पादादिकमूहनीयमत एवातिबालामित्यत्र तस्यैवोक्तम् अतःपरम् चतुर्हायणे इत्यर्थः बुद्धिपूर्वे एतदेव द्विगुणमित्यर्थः।

अथ रोधादिनिमित्तक गोबधप्रायश्चित्तम्। अङ्गिराः।

"रोधने बन्धने चापि योजने च गवां रुजः। उत्पाद्य मरणं वापि निमित्ती यत्र लिप्यते। पादञ्चरेद्रोधबधे द्वौ पादौ बन्धने चरेत्। योजने पादहीनं स्याच्चरेत् सर्वं निपातने"। निमित्ती लिप्यत इति यथा कथञ्चित् मरणनिमित्ततारतम्येन "यो भूय आरभते तस्मिन् फले विशेषः" इत्यापस्तम्बवचनात् पापविशेषेण लिप्यते तद्विशेषात् प्रायश्चित्तविशेषमाह पादञ्चरेदित्यादि। रोधः क्षीणाया गोराहारप्रचारनिर्गमविरोधः। बन्धनमयथाबन्धनमकालबन्धनञ्च। योजनं हलशकटादौ योजनं तत्रातिवाहादिनेति शेषः। अत्रैव विषये च्यवनः। "प्राजापत्यद्वयं गोहत्याप्रायश्चित्तं रोधनबन्धनयोक्तृबधे पादकृच्छ्रा नखानि लोमानि शिखावर्जं सशिखं वपनं त्रिसवनं गवानुगमनं सहशयनं सुमहत्तृणानि रथ्यासु चारयेत् व्रतान्ते ब्राह्मणभोजनमिति"। रोधनबन्धनयोक्तृबध इत्यादेरयमर्थः रोधनिमित्तकबधे प्राजापत्यस्य पादः प्रायश्चित्तं नखच्छेदनमात्रम्। बन्धननिमित्तबधे प्राजापत्यस्य द्वौ पादौ नखानां लोम्नाञ्च छेदनम्। योक्तृनिमित्ते च बधे प्राजापत्यपादत्रयं नखलोमशिखावर्जकेशच्छेदनञ्च। दण्डादिप्रहारबधे संपूर्णं प्राजापत्यम्। नखलोमकेशशिखाच्छेदनञ्च इति कल्पतरुः। एतद्विषय एव मिताक्षराधृतं संवर्त्तवचनम् इत्येकवाक्यत्वात्। तद्यथा। "पादेऽङ्गलोमवपनं द्विपादे श्मश्रुणोऽपि च। त्रिपादे च। शिखावर्जं सशिखन्तु निपातने"॥ अत्र प्राजापत्यस्य पादादित्वे किं मानमिति चेत्। पराशरवचनम्। "रोधने तु चरेत् पादं बन्धने चार्द्धमेव हि। योजने पादहीनं स्यात् प्राजापत्यं निपातने। कृच्छ्रमज्ञानताड़ने" इति वार्हस्पत्यात्। दण्डोऽत्र हस्तप्रमाणो ग्राह्यः। तदधिके तु द्विगुणप्रायश्चित्तविधानात्। यथाऽङ्गिराः। "अङ्गुष्ठमात्रः

स्थौल्येन बाहुमात्रः प्रमाणतः। साद्रश्च सपलाशश्च दण्ड इत्यभिधीयते। अस्मादूर्द्ध्वं प्रहारेण यदि गां विनिपातयेत्। द्विगुणन्तु भवेत्तत्र प्रायश्चित्तमिति स्थितिः"॥ सपलाशः सपत्रः। एतद्वचनविषय एव च्यवनोक्त प्राजापत्यद्वयमिति एतच्चाज्ञानतः। यथा बृहस्पतिः। "पादश्चरेद्रोधवधे कृच्छ्रार्द्धं बन्धघातने। अतिवाहे च पादोनं कृच्छ्रमज्ञानताड़ने"॥ अज्ञानञ्च क्षीणायामक्षीणत्वभ्रमः। क्षैण्यज्ञाने तु प्रायिकमरणं ज्ञात्वा प्रवर्त्तकस्य चान्द्रायणपादादिकम्। यथा हारीतः। "नासाच्छेदनदाहेषु कर्णच्छेदनबन्धने। अतिदोहातिवाहाभ्यां कृच्छ्रं चान्द्रायणं चरेत्"॥ हत्वेति शेषः। कृच्छ्रं व्रतं तेन चान्द्रायणव्रतमित्यर्थः। इति शूलपाणि महामहोपाध्यायाः। भवदेवभट्टैस्तु। निपातने कूपावटादिषु इति व्याख्यातं तदपि युक्तम् अन्यथा तत्र पातजनकभयादिदर्शकस्य प्रायश्चित्तस्यानध्यवसायापत्तेः। "शस्त्रादिना तु हत्वा गां मानवं व्रतमाचरेत्'। रोधादिनात्वाङ्गिरसमापस्तम्बोक्तमेव चेति बृहस्पत्युक्तस्य प्रथमादि-पदाङ्गुष्ठ-लोष्ट्रलगुड़विषाग्न्यादीनां प्रायिकमृत्युफलानां ग्रहणं रोधादिनेति यथा कथञ्चिन्निमित्तमात्रस्य बन्धादेरिति शूलपाणिव्याख्यान्तराच्च। तस्मान्निपातनपरम् उभयपरम् एतच्च रात्रौ रक्षणार्थं रोधबन्धनव्यतिरिक्तविषयम्। "सायं सञ्जमनार्थन्तु न दुष्येद्रोधबन्धयोः" इति अङ्गिरो वचनात्। बन्धने मिताक्षरायां विशेषमाह व्यासः। "न नारिकेलैर्न च शालतालैर्न चापि मौञ्जैर्न च बन्धशृङ्खलैः। एतैस्तु गावो न हि बन्धनीया बद्धा तु तिष्ठेत् परशुं गृहीत्वा। कुशैः काशैश्च बध्नीयात् स्थाने दोषविवर्जिते"॥

अथापालननिमित्तगोबधप्रायश्चित्तम्। तत्र पराशरः। "शीतानिलहता चैव उद्बन्धनमृतापि वा। शून्यागाराद्युपेक्षायां

प्राजापत्यं विनिर्दिशेत्। अपालनात् प्रणश्येत्तु गौश्चरन्ती कथञ्चन। जलौघपङ्कले मग्ना नागविद्युद्धताऽपि वा। श्वभ्रे वा पतिता कस्मात् श्वापदैर्वापि भक्षिता। प्राजापत्यं चरेत् कृच्छ्रं गोस्वामी व्रतमुत्तमम्। सशिखं वपनं कार्य्यं त्रिसन्ध्यमवगाहनम्। शृङ्गैर्वापि खुरैर्युक्तं लाङ्गूलश्रवणादिभिः। आर्द्रमेव हि तच्चर्म परिधाय स गां व्रजेत्। तासां मध्ये वसेद्रात्रौ दिवा ताभिः समं व्रजेत्। ब्राह्मणस्य विशेषेण तथा राजन्यवैश्ययोः। प्रायश्चित्ते ततश्चीर्णे कुर्य्यात् ब्राह्मणभोजनम्॥ अनडुत्सहितां गाञ्च दद्याद्विप्राय दक्षिणाम्"। अत्र गोस्वामीत्यभिधानात् उत्सृष्टवृषवत्सतरीषु स्वत्वाभावादपालननिमित्तकतद्वधे तदुत्स्रष्टुर्दोषो नास्ति इति प्रतीयते। तत्स्वत्वाभावेनान्येषां सम्भाव्यमानमौपादानिकस्वत्वं निराकरोति कल्पतरुधृतब्रह्मपुराणम्। "अथ वृत्ते वृषोत्सर्गे दाता वक्रोक्तिभिः पदैः। ब्राह्मणानाह यत् किञ्चित् मयोत्सृष्टन्तु निर्जने। तत् कश्चिदन्यो न नयेद्विभाज्यञ्च यथाक्रमम्। न वाह्यं न च तत्क्षीरं पातव्यं केनचित् क्वचित्"॥ वक्रोक्तिभिः काकूक्तिभिः स्वाम्यभावेनोत्-सृष्टपशोः पालननियमाभावाद्धान्यादि-भक्षणे मोच्यत्वमप्याह याज्ञवल्क्यः। "महोक्षोत्सृष्टपशवः सूतिकागन्तुकादयः। पालो येषाञ्च ते मोच्या दैवराजपरिप्लुताः"। महोक्षोऽनिर्वार्य्यः महाबलीवर्दः। उत्सृष्टपशवः देवतोद्देशेन पित्रादिनिष्ठफलोद्देशेन चक्राद्यङ्कितास्त्यक्तपशवः। सूतिका अनिर्गतदशाहाः। आगन्तुका ग्रामान्तरादागताः। आदिशब्दात् उशनसोक्ताश्च यथा। "अदण्ड्या हस्तिनोऽश्वाश्च प्रजापाला हि ते स्मृताः। अदण्ड्याः काणकुण्ठाश्च वृषभः कृतलक्षणः"॥ कुण्ठः खञ्जः। अत्र काणकुण्ठशब्दाभ्यामत्यन्ताक्षम उच्यते। वृषभः कृतलक्षणः। प्रागुक्तोत्सृष्टपशुः एते सपाला विपाला वा सर्वथा

मोच्याः। तथा च मनुः। "अनिर्दशाहां गां सूतां वृषान् देवपशूंस्तथा। सपालान् वा विपालान् वा अदण्ड्यान् मनुरब्रवीत्"। एतद्भिन्नानां येषाञ्च पालोऽस्ति तेऽपि मोच्याः। अर्थात्तत्र पालो दण्डनीयः। दैवराजपरिप्लुताः। गर्जादिश्रवणात् सेनादिदर्शनाद्वा पलायिताः पशवो यदि क्षेत्रे चरन्ति तदा न दोष इत्यर्थः। पालकान्तरसत्त्वे तु मनुः। "दिवा वक्तव्यता पाले रात्रौ स्वामिनि तद्गृहे। योगक्षेमेऽन्यथा चेत्तु पालो वक्तव्यतामियात्"। दिवा पशूनां पालहस्तन्यस्तानां योगक्षेमविषये दोषे जाते पालकस्य गर्हणीयता रात्रौ पुनः पालप्रत्यर्पितानां स्वामिनां दोषः। अन्यथा यदि रात्रावपि पालहस्तगता भवन्ति तदा दोषे उत्पन्ने पाल एव गर्हणीयतां प्राप्नोति इति कुल्लूकभट्टः। स्मृतिसागरसारे बृहदङ्गिराः। "अनागतस्य चानेता आगतस्य च रक्षकः। रात्रावपि यदान्योऽस्ति तदा स्वामी न दोषभाक्" ननु दण्डप्रकरणोक्तमनुवचनं प्रायश्चित्ते कथमिति चेन्न दण्डवत् प्रायश्चित्तानि भवन्तीति श्रुतेः तथा व्यवहाराच्च। एवञ्च "यत्रापवर्त्तते युग्यं वैगुण्यात् प्राजकस्य च। तत्र स्वामी भवेद्दण्ड्यो हिंसायां द्विशतं दमः"। इति मनुवचने यत्र सारथेरकौशलात् यानमन्यथा गच्छति तत्र हिंसायामसुशिक्षित सारथिनियोगात् स्वामी द्विशतं दण्डं दाप्यः स्यादिति कुल्लूकभट्टव्याख्यानदर्शनात् अयोग्यपालकसमर्पणे स्वामिनो दोषात्तस्यैव प्रायश्चित्तमुक्तम्। "यावत् शस्यं विनश्येत्तु क्षेत्रे तावत् फलं लभेत्। पालस्ताड्योऽथ गोस्वामी पूर्वोक्तं दण्डमर्हति" याज्ञवल्क्यवचने गवादिदोषेण यावत् शस्यं विनश्यति। तावदेव पालकात् प्राप्तव्यं पालकाशक्तौ पालकस्ताड्यः पूर्वोक्तं दण्डादिकमर्हतीति दर्शनाच्च। गोवधप्रायश्चित्ते पालकाद्द्व्या-

सम्भवे स्वामिना द्रव्यं दत्त्वा प्रायश्चित्तं कारयितव्यं कर्त्तव्यं वा । म्लेच्छपालके स्वयं कर्त्तव्यम् । सशिखवपनमित्यत्र नैमित्तिकेन सशिखवपनेन सदा बद्धशिखेन तु इत्यस्य "गायत्र्या तु शिखां बद्ध्वा नैरृत्यां ब्रह्मरन्ध्रतः । जुटिकान्तु ततो बद्ध्वा ततः कर्म समाचरेत्" । इति ब्रह्मपुराणोक्तस्य च नित्यत्वस्य बाधो न दोषाय फलचमसेन सोमस्य बाधवत् गोदोहेन चमसस्य बाधवच्च । "सशिखं वपनं कार्य्यमास्नानात् ब्रह्मचारिणा" इति कात्यायनकृतछन्दोगपरिशिष्टेऽप्येवम् । एतदेकश्रुतिमूलकत्वात् तद्धृतपारस्करीये । पर्य्युप्तशिरसमिति सूत्रेऽपि तथैवार्थः तद्भाष्यकृता हरिशर्म्मणापि परिसर्वतोभावेनोप्तशिरसं मुण्डितशिरसमिति व्याख्यातम् । न च "एते लूनशिखास्तस्य दशनैरचिरोद्गतैः । कुशाः काशा विराजन्ते वटवः सामगा इव" । इति विष्णुपुराणीयेन सामगा इति विशेषणान्नान्येषां लूनशिखत्वमिति वाच्यं प्रागुक्तवचनात् सर्वेषां सशिखवपनप्राप्तेः विध्यन्तरकल्पनापत्तेश्च । तृणसामगयोरौपम्यन्तु हरिणसुखहेतुत्वेनाप्युक्तं तयोः सुखहेतुत्वञ्च भक्ष्यत्वेन गायकत्वेनेति शेषः । एवं प्राचीनावीतित्वादिना सदोपवीतिना भाव्यमित्यस्यापि बाध इति प्रसङ्गादुक्तम् । ब्राह्मणस्य विशेषेणेति ब्राह्मणगवानुगमनं मुख्यम् एतेनापालनकृतगोवधे प्राजापत्यं करणीयमिति श्रुतेति कर्त्तव्यतापि प्राजापत्यतुल्येति पण्डितसर्वस्वे हलायुधः । वृषभो गौश्च दक्षिणा ब्राह्मणभोजनं विशेषयति यज्ञपार्श्वः । "गर्भाधानादिकृत्येषु ब्राह्मणान् भोजयेद्दश" । प्राजापत्यद्वयाशक्तौ धेनुद्वयं तदशक्तौ षट्कार्षापणाः । एवञ्च वृषमूल्यं पञ्च कार्षापणाः । गोमूल्यं कार्षापणैकः । शूलपाणिप्रभृतिभिस्तु इतिकर्त्तव्यतायां विशेषो नादृतः । एतच्च शूद्रस्वामिकेतरवधविषयम् । शूद्रस्वामिकस्याम्नानात् साक्षाद्वधे यत्-

किञ्चिद्दक्षिणककृच्छ्रद्वयस्य निबन्धृभिर्व्यवस्थापितत्वेनापालनकृतवधे तदधिकस्यायुक्तत्वात् वरं तत्तुल्यं कृच्छ्रद्वयं युक्तमुत्पश्यामः। अतएव एतद्विषय एव स्मृतिसागरसारे बृहदङ्गिराः। “अरक्षिते तु कूपादौ हते व्याघ्रादिभक्षिते। व्रतार्द्धमाचरेत् स्वामी रक्षिते नास्ति दूषणम्”॥ व्रतार्द्धं कामकृतव्रतार्द्धं नास्ति दूषणमिति यदि प्रमत्ता गौर्निवारयन्तं पालमतिक्रम्य गर्त्तकान्तारादौ म्रियते तदा नेत्यर्थः। अन्यत्र सत्येव पालके सम्यक्पालनाभावेन श्वभ्रादौ पाताद्गोमरणे प्रायश्चित्तमाह विष्णुः “पङ्कलौघवृकव्याघ्रश्वापदादिनिपातने। श्वभ्रोद्बन्धनसर्पाद्यैर्मृते पादोनमाचरेत्॥ अपालने तु कृच्छ्रं स्यात् शून्यागाराद्युपप्लवे”॥ पादोनं प्राजापत्यमेव उत्तरवचने कृच्छ्रश्रवणात्। तथा “पादश्चाप्राप्तके देयो वत्से स्वामिन्यरक्षिते”। अप्राप्तके अप्राप्तदम्यावस्थे त्रिहायणपर्य्यन्ते इति यावत्। एवम्भूते वत्सेऽरक्षिते श्वभ्रपातादिना मृते सति स्वामिना प्राजापत्यपादः करणीयः। अत्र पादमात्रप्रायश्चित्तत्वात् बालत्वादिना नानुग्रहः ततश्चाप्राप्तदम्यावस्थवत्सापालननिमित्तकवधजन्यपापक्षयकाम इति प्रयोज्यम्। अत्र “बिभृयाद्वेच्छतः सर्वान् ज्येष्ठो भ्राता यथा पिता। भ्राताशक्तः कनिष्ठो वा शक्त्यपेक्षा कुले स्थितिः”॥ इति नारदोक्तैकगृहिरूपतया स्थितानामविभक्तानां संसृष्टानाञ्चापालनाद्गोप्रणाशस्तत्रैकतमकृतेन प्रायश्चित्तेन सर्वेषां पापनाशः “एकपाकेन वसतां पितृदेवद्विजार्च्चनम्। एकं भवेद्विभक्तानां तदेव स्यात् गृहे गृहे”॥ इति बृहस्पतिवचनेन “भ्रातॄणामविभक्तानामेको धर्म्मः प्रवर्त्तते। विभागे सति धर्मो हि भवेदेषां पृथक् पृथक्”॥ इति नारदवचनेन च एकत्रवासिनामेकतमकृतवैदिककर्म्ममात्रेण सर्वेषां फलभागित्वात्। अन्य-

चैकतमकृतपञ्चमहायज्ञैस्तादृशानां सर्वेषां पञ्चसूनापापनाशो न स्यात् तदुक्तं मनुना। "अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो वलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्॥ पञ्चैतान् यो महायज्ञान्न हापयति शक्तितः। स्वगृहेऽपि वसन्नित्यं सूनादोषैर्न लिप्यते"॥ सूनादोषैः "पञ्चसूना गृहस्थस्य चुल्ली पेषण्युपस्करः। कण्डनी चोदकुम्भश्च बध्यते यास्तु वाहयन्" इति श्लोक्तैः। सूना हिंसास्थानानि चुल्ली पाकस्थानं पेषणी दृषदुपलादि। उपस्करः सम्मार्जन्यादि। कण्डनी मुषलोदूखलादि। एताः सूनाः स्वस्वकार्य्ये प्रापयन् पापेन युज्यते पुरुष इत्यर्थः। अन्यथा च दम्पत्योर्मध्यगं धनम् इत्यनेन तत्र गवि पत्न्याः स्वामित्वात्तस्या अपि प्रायश्चित्तान्तरं स्यात्। ननु "आम्नाये स्मृतितन्त्रे च लोकाचारे च सूरिभिः। शरीरार्द्धं स्मृता जाया पुण्यापुण्यफले समा" इति वृहस्पतिवचनाज्जायापत्योर्विभागो न विद्यते तथा पुण्यापुण्यफलेष्वित्यापस्तम्बवचनाच्च। एवम्भूतविषये भर्त्तृकृतादेव प्रायश्चित्तान्नाश इति चेद् भ्रात्रादीनाम् अप्येकपाकेन वसतामिति प्रागुक्तवचनद्वयात्तथेति तु साधारणधनदानेन प्रायश्चित्तं कृतं तत्र सुतरां सर्वेषां पापक्षयः। अतएव विवादकल्पतरुप्रभृतिषु वृहस्पतिः। "बहूनां सम्मतो यस्तु दद्यादेकं धनं नरः। करणं कारयेद्वापि सर्वैरेव कृतं भवेत्"॥ तथा च "पापमेवाश्रयेदस्मान् हत्वैतानाततायिनः" इत्याद्युक्तपापक्षयायाश्वमेधिके पर्वणि युधिष्ठिरं प्रति व्यासवाक्यम्। "अश्वमेधो हि राजेन्द्र पावनः सर्वपाप्मनाम्। तेनेष्ट्वा वै विपाप्मा त्वं भविता नात्र संशयः"॥ तत्रैव भगवद्वाक्यं "भीमसेनार्जुनौ चैव तथा माद्रवतीसुतौ। इष्टवन्तो भविष्यन्ति त्वयीष्टवति पार्थिव"॥ उपसंहारेऽपि वैशम्पायनः। "गत्वा चावभृथे

राजा विपाप्मा भ्रातृभिः सह। सम्राज्यमानः शुशुभे महेन्द्रस्त्रिदशैरिव"॥ अविभक्तानां पालकानामप्येकं प्रायश्चित्तं विभक्तानाञ्च पादं पादम् एका चेदिति प्रागुक्तत्वात् बहूनां गवामपालने तु द्विगुणं प्रायश्चित्तं व्यापन्नानां बहूनाम् इति प्रागुक्तत्वात्तत्रापि विभक्त बहुकर्त्तृके तु द्विपादं प्रत्येकं प्रायश्चित्तमिति। गोवधे लघुगुरुप्रायश्चित्तान्तराणि यथायोग्यं द्रव्यतत्स्वामिसगुणत्वात्यन्तनिर्गुणत्वदेशकालविशेषप्रयोजकादिभेदेन व्यवस्थेयानि।

अथ गोवधापवादः। पराशरः। "धूर्य्येषु वह्यमानेषु दण्डेनाभिहतस्य च। काष्ठेन लेष्टुना वापि पाषाणेन तु ताड़ितः। मूर्च्छितः पतितश्चैव मृतो वा सद्य एव च॥ एवं गतानां धूर्य्याणां प्रवक्ष्यामि यथाविधि। उत्थितस्तु पदं गच्छेत् पञ्च सप्त दशाथवा॥ ग्रासं वा यदि गृह्णाति तोयं वा पिबति स्वयम्। पूर्वव्याधिविनष्टानां प्रायश्चित्तं न विद्यते"॥ यदि व्याधिप्रयुक्तानां वृषाणां हलयोजनमात्रेण स्वल्पतरदण्डाघातेन वा मूर्च्छया पतनं भवति अनन्तरं गमनग्रासादौ कृते मरणं भवति तदागमनग्रासग्रहणतोयपानैस्तदानीन्तनमरणे हेत्वभावं निश्चित्य पूर्वव्याधिविनष्टत्वं ज्ञायते। यदि तु पूर्वव्याधिरहित एव प्रहारजनितव्याधिना ग्रासादि कृत्वापि म्रियते तदा प्रायश्चित्तमस्त्येव संवर्त्तः। "यन्त्रणे गोचिकित्सायां मूढ़गर्भविमोचने। यत्ने कृते विपत्तिः स्यात् प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ औषधं स्नेहमाहारात् दद्याद्गो ब्राह्मणेषु च। प्राणिनां प्राणहत्यर्थं प्रायश्चित्तं न विद्यते॥ दाहच्छेदशिराभेदप्रयत्नैरुपकुर्वताम्। द्विजानां गोहितार्थं वा प्रायश्चित्तं न विद्यते"॥ मूढ़गर्भः अन्तर्मृतगर्भः। मुहवैचित्ते इत्यनेन तथार्थत्वात्। याज्ञवल्क्यः। "क्रियमाणोपकारे तु मृते विप्रेण पातकम्। विपाके गोवृषा-

णाञ्च भेषजाग्निक्रियासु च" ॥ विशेषमाहाङ्गिराः । "शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च चर्मनिर्मोचनेऽपि वा । दशरात्रं चरेत् वत्सं सुस्था सा यदि गौर्भवेत्" ॥ द्विजानां गवाञ्च हितार्थमित्यर्थः । अत्र प्राणरक्षार्थमाहारादिदानैर्मरणे दोषाभावस्य वाचनिकत्वात् गललग्नानुमरणेनात्मघातादि । एवं "गोपालको गवां गोष्ठे धूमं यस्तु न कारयेत् । मक्षिकालीननरके मक्षिकाभिः स भक्ष्यते" ॥ इति देवीपुराणानुसारादग्निं प्रज्वाल्य तत्रैव स्थितस्य दैवात्तदग्निना मरणे दोषाभावः । तत्रास्थितस्य तु अपालननिमित्तगोवधजन्यदोषः । मिताक्षरायां पराशरः । "कूपे खाते च धर्मार्थे गृहदाहे च ये मृताः । ग्रामदाहे तथा घोरे प्रायश्चित्तं न विद्यते" ॥ इदन्तु बन्धनरहितस्य पशोः कदाचित् दाहादिना मृतविषयम् । इतरत्रापस्तम्बोक्तम् । "कान्तारेष्वथवा दुर्गे गृहदाहावटादिषु । यदि तत्र विपत्तिः स्यात् पाद एको विधीयते" ॥ इति ज्ञेयम् एतद्वचनं यमस्येति भवदेवभट्टः । चिकित्सायां पापाभावो यथावदुपचारो बोध्यः । न पुनः सन्निपाताभिभूतस्योदकपानादिना । अतएव मनुः । "चिकित्सायाञ्च सर्वेषां मिथ्याप्रचरतां दमः" । काश्यपोऽप्यत्र प्रायश्चित्तमाह । "दोग्ध्री दमनातिदोहान्नासापाशदामघण्टाभरणयोजनात् । तैलपानौषधविनियोगाद्व्यापन्नानां प्रायश्चित्तं ब्राह्मणेभ्यो विनिवेद्य सशिखवपनं कृत्वा प्राजापत्यकृच्छ्रमाचरेत् । चीर्णान्ते गां दक्षिणां ब्राह्मणाय दद्यात् धेनुं तिलधेनुं वेति" । अत्र गोधेनुतिलधेनुदानानां शक्त्यपेक्षो विकल्पः । तिलधेनुमाह रत्नार्णवे वराहपुराणम् । "तिलधेनुं प्रवक्ष्यामि सर्वपापप्रणाशिनीम् । यां दत्त्वा पापकर्मापि मुच्यते नरकान्नरः ॥ चतुर्भिः सैतिकाभिश्च प्रस्थ एकः प्रकीर्तितः । ते षोडश भवेद्धेनुश्चतुर्भिर्वत्सको भवेत् ॥ इक्षुदण्ड-

मयाः पादा दन्ताः पुष्पमयास्तथा। नासागन्धमयी तस्या जिह्वा गुड़मयी तथा॥ पृष्ठे ताम्रमयी सा स्याद्घण्टाभरणभूषिता। ईदृशीं कल्पयित्वा च स्वर्णशृङ्गीं प्रकल्पयेत्॥ कांस्योपदोहां रौप्यखुरां पूर्वधेनुविधानतः। तिलधेनुं ततो दत्त्वा द्वादश्यां नियतः शुचिः॥ आत्मानं तारयेद्दुर्गात् नारकात् कामभाग्भवेत्”॥ सेतिका कुड़वः। स च द्वादशप्रसृतिपरिमितः। चतुर्भिरिति प्रस्थैरिति शेषः। कांस्योपदोहां कांस्यक्रोड़ाम्। एतच्च गोः शक्तिमनपेक्ष्यैव दमनादितो मरणे बोध्यम्। यत्तु व्यासेन “घण्टाभरणदोषेण विपत्तिर्यदि गोर्भवेत्। कृच्छ्रार्द्धमाचरेत्तत्र भूषणार्थं हि तत् कृतम्॥ विरेकवमनाभ्याञ्च संघाते योजने तथा। लता सङ्कुलपाशेन मृते पादोनमाचरेत्”॥ इत्युक्तं तद्गोररण्यप्रवेशेन लतादिवन्धघण्टादिदोषमरणे ज्ञेयम्। पुनर्व्यासः। “औषधं लवणञ्चैव स्नेहं पिण्याकमेव च। अतिरिक्तं न दातव्यं काले स्वल्पञ्च दापयेत्॥ अतिरिक्ते विपन्नानां कृच्छ्रपादो विधीयते। औषधे तु न दोषोऽस्ति स्वेच्छया पिबते यदि॥ अन्यथा दीयमाने तु प्रायश्चित्तं न संशयः”॥ अन्यथा इच्छां विनातिरिक्तौषधे। तेनानिच्छया स्वल्पदाने दोषाभावात्तथा व्यवहारः। भवदेवभट्टहरिनाथोपाध्यायधृतं संवर्त्तवचनम्। “शृङ्गभङ्गेऽस्थिभङ्गे च कटिभङ्गे तथैव च। यदि जीवति षण्मासान् प्रायश्चित्तं न विद्यते”॥ अत्र षण्मासोत्तरमरणे तद्दोषोपशमनाय प्रायश्चित्तं नास्ति तदभ्यन्तरमरणे बधप्रायश्चित्तं भवति एवञ्च शृङ्गभङ्गादिनिमित्तकपापे पृथक् प्रायश्चित्तं न कर्त्तव्यम्। बधप्रायश्चित्तेनैव गुरुणा प्रसङ्गात्तदपगमसिद्धेः। षण्मासोत्तरन्तु शृङ्गभङ्गादिनिमित्तकपूर्वोक्तं मासार्द्धयवपानं प्राजापत्यं वा कर्त्तव्यमिति। चर्मनिर्मोचनादिनिमित्तविहितप्रायश्चित्तमु-

मालती तुलसी अपि ॥ रेवती चाश्विनीभेषु रोहिणी शुभदा भवेत्" ॥ कृत्यचिन्तामणौ। "नेत्रे यस्याः केकरे पिङ्गले वा स्याद्दुःशीला श्यावलोलेक्षणा च। कूपो यस्या गण्डयोः सम्मित योनिः सन्दिग्धां बन्धकीं तां वदन्ति" ॥ नन्दिकेश्वरपुराणे। "श्यामा सुकेशी तनुलोमराजी सुभ्रूः सुशीला सुगतिः सुदन्ता ॥ वेदी विमध्या यदि पङ्कजाक्षी कुलेन हीनापि विवाहनीया। धृष्टा कुदन्ता यदि पिङ्गलाक्षी लोम्ना समाकीर्णसमाङ्गयष्टिः ॥ मध्ये पुष्टा यदि राजकन्या कुलेऽपि योग्या न विवाहनीया" ॥ हारीतः। "तस्मात् कुलनक्षत्रविज्ञानोपपन्नां वरयेत्। नक्षत्रोपपन्नां नाडीनक्षत्रहीनाम्"॥

नाडीनक्षत्रमाह स्वरोदये। "अश्विन्यादि लिखेच्चक्रं सर्पाकारं त्रिनाडिकम्। तत्र वेधवशात् ज्ञेयं विवाहादिशुभाशुभम् ॥ त्रिनाडीवेधनक्षत्रमश्विन्यार्द्रा युगोत्तराः। हस्तेन्द्रमूलवारुण्यः पूर्वभाद्रपदास्तथा ॥ याम्यः सौम्यो गुरुर्योनिश्चित्रामित्रजनाह्वयम्। धनिष्ठा चोत्तरा भद्रा मध्यनाडी व्यवस्थिता ॥ कृत्तिका रोहिणी सर्पो मघा स्वाती विशाखके। उत्तरा श्रवणा पौष्णं पृष्ठनाडी व्यवस्थिता ॥ अश्व्यादिनाडीवेधर्क्षे षष्ठं द्वितीयकं क्रमात्। याम्यादितुण्ड तुर्य्यश्च कृत्तिकादिद्विषट्ककम् ॥ एवं निरीक्षयेद्वेधं कन्यामन्त्रे सुरे गुरौ। पण्य श्रीस्वामिमित्रेषु देशे ग्रामे पुरे गृहे ॥ एकनाडीस्थधिष्ण्यानि यदि स्युर्वरकन्ययोः। तदा वेधं विजानीयात् गुर्वादिषु तथैव च ॥ प्रकटं यस्य जन्मर्क्षं तस्य जन्मर्क्षतो व्यधः। प्रनष्टं जन्मभं यस्य तस्य नामर्क्षतो वदेत् ॥ द्वयोर्जन्मभयोर्वेधो द्वयोर्नामभयोस्तथा। नामजन्मर्क्षयोर्वेधो न कर्त्तव्यं कदाचन ॥ एकनाडीस्थिता चेत् स्यात् भर्त्तुर्नाशाय चाङ्गना। तस्मान्नाडीव्यधो वीक्ष्यो विवाहे शुभमिच्छता ॥

प्राङ्नाड्या वेधतो भर्त्ता मध्यनाड्यो भयं तथा। पृष्ठनाड़ीव्यधे कन्या म्रियते नात्र संशयः॥ एकनाड़ीस्थिता यत्र गुरुर्मन्त्रश्च देवता। तत्र द्वेषं रुजं मृत्युं क्रमेण फलमादिशेत्॥ प्रभुः पत्न्याङ्गनामित्रं देशो ग्रामः पुरं गृहम्। एकनाड़ी गता भव्या अभव्या वेधवर्जिताः"॥ प्रतिप्रसवमाह ज्योतिषे। "एकराश्यादियोगे तु नाड़ीदोषो न विद्यते'। स यथा "एकराशौ च दाम्पत्ये शुभं स्यात् समसप्तके। चतुर्थे दशमे चैव तृतीयैकादशे तथा"॥ समग्रहणाद्विषमसप्तके दोषः। तथा च। "घोटके सप्तके मेषतुले युग्मद्वयो तथा। सिंहघटौ सदा वर्ज्यौ मृतिं तत्राब्रवीच्छिवः"॥ श्रीपतिव्यवहारनिर्णये। "सुहृदेकाधिपयोगे तारावले वश्यराशौ वा। अपि नाड्यादिवेधे भवति विवाहो हितार्थाय"॥ राजमार्त्तण्डे। "न राजयोगे ग्रहवैरिता च न तारशुद्धिर्न गणत्रयं स्यात् न नाड़ीदोषो न च वर्णदुष्टिर्गर्गादयस्ते मुनयो वदन्ति"। राजयोगस्तु एकराश्यादियोग एव तत्रैव नाड्यादिप्रतिप्रसवात्। श्रीपतिरत्नमालायाम्। "अश्वे भाजफणिद्वयं श्व वृषभृङ्गे षोन्दुरुमूषिकसाखुगौः क्रमशस्ततोऽपि महिषौ व्याघ्रः पुनः सौरभो"। व्याघ्रणौ मृगकुक्कुरौ कपिरथोरभ्रद्वयं वानरः सिंहोऽश्वो मृगराट् पशुश्च करटीयोनिश्च भानामियम्। गोव्याघ्रं गजसिंहमश्वमहिषं श्वैणञ्च बभ्रूरगं वैरं वानरमेषकञ्च सुमहत्तद्वद्विड़ालोन्दुरम्। लोकानां व्यवहारतोऽन्यदपि च ज्ञात्वा प्रयत्नादिदं दम्पत्योर्नृपभृत्ययोरपि सदा वर्ज्यं शुभस्यार्थिभिः। मकरसमेतं मिथुनं कन्या कलसौ मृगेन्द्रमीनौ च। वृषभतुले अलिमेषौ कर्कटधनुषौ च मित्रविधौ"। षट्काष्टकाविति शेषः।

अरिषड़ष्टकमाह। "मकरः करिकुलरिपुणा कन्या

मेषेण सह झषस्तुलया। कर्किघटौ वृषधनुषौ वृश्चिकमिथुने चारिविधौ॥ यदि कन्याष्टमे भर्त्ता भर्त्तुः षष्ठे च कन्यका। षट्काष्टकं विजानीयात् वर्जितं त्रिदशैरपि॥ पुंसो गृहात् सुतगृहे सुतहा च कन्या धर्मे स्थिता सुतवती पतिवल्लभा च। द्विर्द्वादशे धनगृहे धनहा च कन्या रिष्फे स्थिता धनवती पतिवल्लभा च"॥ षड़ष्टकादौ तारानियममाह भीमपराक्रमः। "सौहृद्ये ह्युभयोर्द्वयोरपि तयोरैकाधिपत्येऽपि वा ताराषट्सुमित्रमित्रज्वलनक्षेमार्थसम्पद्द यदि। षट्काष्टे नवपञ्चके व्ययधने योगे च पुंयोषितोः प्रीत्यायुः सुखबुद्धिपुष्टिजनकः कार्य्यो विवाहस्तदा"। गर्गः। "मरणं तारविरोधे ग्रहरिपुभावे चिरेण। रोगादिनरनार्य्योः षट्काष्टके वैरमवश्यं भवेदाशु"॥ व्यासः। "मैत्रादियोगेऽपि षड़ष्टकादौ ताराविपत् प्रत्यरिनैधनाख्याः। वर्ज्या विवाहे पुरुषोडुतो हि प्रीतिः परा जन्मसु तारकासु। नक्षत्रमेकं यदि भिन्नराशिर्न दम्पती तत्र सुखं लभेताम्॥ विभिन्नमृक्षं यदि चैकराशिस्तदा विवाहः सुतसौख्यदायी। एकर्क्षं च यदा कन्या राश्येका च यदा भवेत्। धनपुत्रवती नारी साध्वी भर्त्तृप्रिया सदा॥ षड़ष्टके गोमिथुनं प्रदेयं कांस्यं सरूप्यं नवपञ्चके तु। द्विर्द्वादशाख्ये कनकान्नताम्रं विप्रार्च्चनं हेम च नाड़िदोषे॥ मरणं नाड़ीदोषे कलहः षट्काष्टके विपत्तिर्वा। अनपत्यता त्रिकोणे द्विर्द्वादशे दारिद्र्यम्"॥

कृत्यचिन्तामणौ। "हस्ता स्वातिश्रुतिमृगशिरः पुष्यमैत्राश्विभानि पौष्णादित्ये जगुरिह बुधा देवसंज्ञानि भानि। पूर्वास्तिस्रः शिवभभरणी रोहिणी चोत्तराश्च प्राहुर्मर्त्याह्वयमुडुगणं नूनमेतं मुनीन्द्राः॥ चित्राश्लेषा निरृति पितृभे वासवं वासवर्क्षं शक्राग्न्योर्भे वरुणदहनर्क्षे च रक्षो गणोऽयम्"॥

फलमाह श्रीपतिः "स्वकुले चोत्तमा प्रीतिर्मध्यमा देवमानुषे। देवासुरे कनिष्ठा च मृत्युर्मानुषराक्षसे॥ राक्षसी च यदा कन्या मानुषश्च वरो भवेत्। तदा मृत्युर्न दूरस्थो निर्धनत्वमथापि वा"॥ राजमार्त्तण्डे। "यदि स्याद्राक्षसो भर्त्ता कन्यका मानुषी भवेत्। विवाहे सुखमाप्नोति वैपरीत्यं विवर्जयेत्"॥ युद्धजयार्णवे। "देवा जयन्ति युद्धेन सर्वथा नात्र संशयः। रक्षसां मानुषाणाञ्च संग्रामे निश्चया मृतिः॥ कर्किमीनालयो विप्राः क्षत्राः सिंहतुला हयाः। वैश्या युग्माजकुम्भाख्याः शूद्रा वृषमृगाङ्गनाः॥ सर्वाः परिणयेद्विप्रः क्षत्रियो नवभाग्भवेत्। षडाश्रयो भवेद्वैश्यस्तिस्रः शूद्रे प्रकीर्त्तिताः॥ वर्णश्रेष्ठा च या नारी हीनवर्णश्च यः पुमान्। महत्यपि कुले जाता नासौ भर्त्तरि रज्यते"॥

अथ नववध्वागमनम्। दीपिकायां "स्त्रीशुद्ध्यालि घटाजसंयुतरवौ काले विशुद्धे भृगुं संत्यज्य प्रतिलोमगं शुभदिने यात्रा प्रवेशोचिते। त्यक्त्वा हस्तु निरंशकं नववधूयात्राप्रवेशौ पतिः कुर्य्यादेकपुरादिषु प्रतिभृगोर्नेच्छन्ति दोषं बुधाः। पैत्रागारे कुचकुसुमयोः सम्भवो वा यदि स्यात् कालः शुद्धो न भवति यदा संमुखो वापि शुक्रः। मेषे कुम्भेऽलिनि च भवेत् भास्करश्चेत्तथापि स्वामी भद्रेऽहनि नववधूं वेशयेन्मन्दिरं स्वम्। भर्त्तुर्गोचरशोभने दिनपतौ नास्तं गते भार्गवे सूर्य्ये कीटघटाजगे शुभदिने पक्षे च कृष्णेतरे। हित्वा च प्रतिलोमगौ बुधसितौ जीवस्य शुद्धौ तथा चानीता गुणशालिनी नववधूर्नित्योत्सवा मोदते। एकग्रामे चतुःशाले दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे। पतिना नीयमानायाः पुरः शुक्रो न दुष्यति"॥ तथा "काश्यपेषु वशिष्ठेषु भृग्वादित्याङ्गिरःसु च। भारद्वाजेषु वात्स्येषु प्रतिशुक्रो न दोषभाक्"॥

श्रीपतिसंहितायां प्रचेताः। "पुष्यादित्यसमीरणादितिवसुस्वप्युत्तरा रेवती तारानायकरोहिणीषु शुभदो मेषालिकुम्भे रवौ वारेष्विज्यसितेन्दुवित्सु शुभदे तारे प्रशस्ते विधौ कन्यामन्मथमीनतौलिमृगभे स्यादङ्गना ह्यागमः"। नारायणपद्धतौ "वृत्ते पाणिग्रहे गेहात् पितुः पतिगृहं प्रति। पुनरागमनं बध्वा स्तद्विरागमनं विदुः"॥ ज्योतिःसारसंग्रहे "विवाहमासि प्रथमं बध्वा नागमनं यदि। तदा सर्वमिदं चिन्त्यं युग्माद्यब्दं विचक्षणैः"॥ कृत्यचिन्तामणौ। "श्वश्रूं हन्त्यष्टमे वर्षे श्वशुरञ्च दशाब्दिके। संप्राप्ते द्वादशे वर्षे पतिं हन्ति द्विरागमे"॥ मत्स्यसूक्ते "भुक्त्वा पितृगृहे कन्या भुङ्क्ते स्वामिगृहे यदि। दौर्भाग्यं जायते तस्याः शपन्ति कुलनायिकाः"॥

अथ प्रथमरजोयोगः। नारायणपद्धतौ। "आदित्ये विधवा नारी सोमे चैव पतिव्रता। वेश्या मङ्गलवारे च बुधे सौभाग्यमेव च॥ बृहस्पतौ पतिः श्रीमान् शुक्रे चापत्यमेव च। शनौ बन्ध्यां विजानीयात् प्रथमे स्त्री रजस्वला॥ पूर्वात्रये याम्यभुजङ्गरौद्रे वैधव्यमस्या विदधाति नूनम्। मघे सशोकाप्यथभेऽदितीशे सा बन्धकीन्द्रानलभे दरिद्रा। पुष्पं दृष्टं निन्दिते भे यदि स्यात् शान्तिं कुर्य्यादङ्गनानाञ्च पूर्वम्॥ तत्संयोगं बान्धवा वर्जयेयुर्यावद् भूयो दृश्यते शस्तभे तत्। ज्यैष्ठे स्याद्विधवा नारी आषाढ़े धनसंयुता। श्रावणे च मृतापत्या भाद्रे च बहुरोगिणी॥ आश्विने च मृतापत्या कार्त्तिके कुलनाशिनी। मार्गशीर्षे धर्मशीला पौषे च रतिविह्वला॥ माघे पतिव्रता नारी फाल्गुने बहुपुत्रिणी। चैत्रे च मदनोन्मत्ता वैशाखे प्रियवादिनी"॥ इति मासफलम्। "कृत्तिकादीनि ऋक्षाणि दिक्ष्वष्टसु लिखेद्बुधः। चत्वारि दिक्षु ऋक्षाणि

कोणेषु च त्रयं लिखेत्॥ पूर्वादिक्रमतो लेख्यं फलं तेनैव निर्दिशेत्। स्त्री वन्ध्या सुभगा चैव विपुत्रा पुत्रिणी तथा॥ विधवा सर्वसम्पन्ना वेश्या चेति क्रमात् फलम्। आद्ये रजसि संभूते स्त्रीणामृक्षफलं भवेत्"॥ इति नक्षत्रफलम्।

अथ गर्भाधानम्। "ज्येष्ठा मूला मघाश्लेषा रेवती कृत्तिकाश्विनी। उत्तरा त्रितयं त्यक्त्वा पर्ववर्जं व्रजेत्ततो"॥ पर्वाण्याह विष्णुपुराणम्। "चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्याथ पूर्णिमा। पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च"॥ शौनकः "पुंनक्षत्राणि चैतानि तिष्यो हस्तः पुनर्वसुः। अभिजित् प्रोष्ठपच्चैवानुराधाषाढ़श्चाश्वयुक्॥ हस्तो मूलं श्रवणः पुनर्वसुर्मृगशिरस्तथा पुष्यश्च गर्भाधानादिकार्य्येषु पुंनामायं गणः शुभदः। रोहिण्यन्तकचित्राहिविशाखा शतवर्जिते। भे पुंग्रहाहे स्त्री शुद्धा फलबन्धनमिष्यते॥ पुष्यार्कचन्द्रशिवमूलपुनर्वसुः स्यादाषाढ़युग्महरिभाद्रपदद्वयञ्च। एतानि पुंसि कथितानि शुभानि भानि चान्येषु गर्भपतनादिभयञ्च भेषु। नन्दा भद्रा भवेत् पुंसि स्त्रीषु पूर्णा जया स्मृता। रिक्ता नपुंसके त्वाहुस्तस्मात्तां परिवर्जयेत्। स्त्रीणामृतुर्भवति षोड़शवासराणि तत्रादितः परिहरेच्च निशाश्चतस्रः। युग्मासु रात्रिषु नराविषमासु नार्य्यः कुर्य्यान्निषेकमथ तास्वपि पर्ववर्जम्। मूलर्क्षं स्मृतिदुष्टत्वाद्गर्भाधानेषु नेष्यते। तस्य पुंसवनादौ तु पुंसंज्ञत्वे प्रयोजनम्"। यथा याज्ञवल्क्यः। "एवं गच्छन् स्त्रियं क्षामां मघां मूलाञ्च वर्जयेत्। शस्त इन्दौ सकृत् पुत्रं लक्षण्यं जनयेत् पुमान्"॥ क्षामाम् आहारलाघवादिना क्षीणाम्। फलञ्च "युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियो युग्मासु रात्रिषु। तस्माद् युग्मासु पुत्रार्थी संविशेदार्त्तवे स्त्रियम्॥ पुमान् पुंसोऽधिके शुक्रे स्त्री भवत्यधिके स्त्रियाः"

इति मनूक्तम् । एवञ्च "युग्मायामपि रात्रौ चेत् शोणितं प्रचुरं तदा । कन्या पुंवद्भवति शुक्राधिक्ये पुमान् भवेत् ॥ कन्यैव युग्मरात्रौ च प्राधान्यं समवायिनः । निमित्तकारणात् कालाच्छुक्रशोणितयोर्यतः ॥ पीड़ा राशौ भौमदृष्टे शशाङ्के मासं मासं योषितामार्त्तवं स्यात् । वंशे शान्तं यच्च रक्तं जवाभं तद्गर्भार्थं वेदनागन्धहीनम्" ॥ गर्भयोग्य ऋतुनिरूपणम् । "पापासंयुतमध्यगेषु दिनकृत् लग्नक्षपा स्वामिषु तद्यूनेषु शुभोज्झितेषु विकुजे छिद्रे विपापे सुखे । सद्युक्तेषु त्रिकोणकण्टकविधुष्वायत्रिषष्ठान्विते पापे युग्मनिशासु गण्डसमये पुंशुद्धितः सङ्गमः । मूलमघाश्विनीनामाद्यं ज्येष्ठान्त्यसर्पाणाम् । अन्त्यं गण्डपदं त्यक्त्वा षोड़शाहे ऋतौ व्रजेत् । अशक्तौ तु भुजबलभीमे "अन्त्यं पौष्णेन्द्रसर्पाणामाद्यं पित्रश्विमूलगम् । गण्डं दण्डत्रयं ख्यातं सर्वकार्य्येषु कल्पितम् । पुमान् विंशतिवर्षश्चेत् पूर्णषोड़शवर्षया । स्त्रिया सङ्गच्छते गर्भाशये शुद्धे रजस्यपि । अपत्यं जायते भद्रं तयोर्न्यूनेऽधमं स्मृतम् । मासेशैः सितकुजगुरुरविशशिसौम्यलग्नपशशीनैः कलुषैः पीड़ा गर्भस्य पीड़ितैः पतनमन्यथा पुष्टिः" ॥ कालुष्यं मासेशेन पापग्रहयोगशत्रुग्रहाधिस्थिति नीचग्रहयोग उपग्रहयोगादि । मासेशजन्मनक्षत्रे पापग्रहयोगः पीड़ा येषां जन्मर्क्षाणि १६ । ३ । २० । २२ । ११ । ८ । २७ । २ । मासेशशान्त्यादौ कृते न गर्भपीड़ा । अथ प्रश्नात् पुत्रादिज्ञानम् । "विवाहलग्नं विषमर्क्षसंस्थः सौरोऽपि पुंजन्मकरो विलग्नात् । स्त्र्यादिग्रहाणामवलोक्य वीर्य्यं वाच्यः प्रसूतौ पुरुषोऽङ्गना वा"।

अथ षोड़शवर्षीया गर्भिणीचिन्ता । "या सूता षोड़शे वर्षे तत्र वा धृतगर्भिका । मृत्युस्तस्याः सपुत्रायाः पितुश्चापि च सम्मतः ॥ मांसीप्रियङ्गुरजनीगुग्गुलुर्वंशलोचना । तालिशेन

तिलालाजा गर्भिणीस्नानमुत्तमम् ॥ गौरीं संपूज्य तत्पश्चात् संक्रमेच्छिवसन्निधौ। छागी गर्भवती देया दैवज्ञायाथ गोयुगम्। कांस्यपात्रस्थितं चन्द्रं सितवस्त्राब्जसंयुतम्। वस्त्रैः कृष्णैश्च शतपुष्पैश्चन्दनागुरुधूपकैः। कृत्वापमार्जयेन्नारीं भोजयेद् ब्राह्मणांस्ततः” ॥

अथ पुंसवनम्। “कुर्य्यात् पुंसवनं सुयोगकरणे नन्दे सभद्रे तिथौ भाद्राषाढ़नृभेश्वरेषु नृदिने वेधं विनेन्दौ शुभे। अक्षीणे नवपञ्चकण्टकगते सौम्ये शुभे वृद्धिषु स्त्रीशुद्ध्या घटयुग्मसूर्य्यगुरुभेषूद्यत्सु मासत्रये” ॥ नृदिने पुंग्रहवारे। वेधो दग्धयोगभङ्गः। वृद्धिरुपचयस्थानम्।

अथ पञ्चामृतम्। “रेवत्यश्विपुनर्वसुद्वयमरुन्मूलानुराधामघाहस्तासूत्तरफल्गुभेषु भृगुजे जीवार्कवारे तथा। लग्नर्क्षोडुपशोभने च नियतं संत्यज्य रिक्तां तिथिं न देयं मासि तु पञ्चमे सुकरणे पञ्चामृतं योषिताम्। दुग्धं सशर्करं चैव घृतं दधि तथा मधु। पञ्चामृतमिदं प्रोक्तं विधेयं सर्वकर्म्मसु” ॥

अथ सीमन्तोन्नयनम्। “षष्ठे मासेऽष्टमेऽर्केज्यकुजदिनकृतां नन्दभद्रे तिथौ च मैत्रे मूले मृगाङ्के करपितृपवने पौष्णविष्णुत्रियुग्मे। तिष्याश्व्यादित्यरौद्रे युवतिहरिझषे वृश्चिके वापि लग्ने चन्द्रे ताराऽनुकूले शुभमपि नियतं स्याच्च सीमन्तकर्म्म”। त्रियुग्मे पूर्वोत्तरत्वेन युग्मरूपासु फल्गुन्याषाढ़भाद्रपदासु। “भृगाजरहिते लग्ने नवांशे पुंग्रहस्य च। केचिद्वदन्ति सीमन्तं तथा रिक्तेतरे तिथौ” ॥ शङ्खलिखितौ वस्त्रदानं नवबध्वै। “मघाष्टकेऽम्बुत्रितयेऽदितिद्वये पौष्णद्वये धातृयुगे गुरूदये। मासे च षष्ठेऽथ चतुष्टये स्त्रियाः शुद्धराशिमन्त्राह वह्निर्घटौ शुभा” ॥ गर्भस्पन्दने सीमन्तोन्नयनं यावन्न वालप्रसव इति। भुजबले “श्रीफलञ्च करे दत्त्वा स्थित्वा

भद्रासने तथा। गृह्योदितेन होमञ्च शान्तिं चैवात्र कारयेत्॥ ऊर्णासूत्रेण संग्रथ्य जीवं जातिञ्च विद्रुमम्। गुवाकं रजतं हेम दद्यात् स्तनतटान्तरे॥ तत्प्रभृतिनदीतीरं देवखातोदकं त्यजेत्। सम्प्याटनं तरोर्मूलं तथा देवगृहं त्यजेत्"॥ बृहद्राजमार्त्तण्डे। "या नार्य्यः कृतसीमन्ता प्रसूते च कदाचन। अङ्के निधाय तं बालं पुनः संस्कारमर्हति"॥ अतएव छन्दोगपरिशिष्टं "संस्कारा अतिपत्येरन् स्वकालाच्चेत् कथञ्चन। हुत्वैतदेव कुर्व्वीत ये तूपनयनादधः"॥ इति सामान्यत उक्तम्। देवलः "सकृच्च संस्कृता नारी सर्व्वगर्भेषु संस्कृता"।

अथ जातभद्रादि। तत्र दन्तजन्मचिन्ता। "जातः सदन्तः पितृमातृहन्ता तातं विहन्यात् प्रथमे तु मासे। अम्बां द्वितीये सहजं तृतीये मासे चतुर्थे शुभकारकः स्यात्॥ मिष्टान्नभोजी सुभगः सुताख्ये षष्ठे सुखी पण्डितकल्पबुद्धिः। ततोऽधिकः स्याद्बलवान् युनाख्ये मासेऽष्टमे वित्तसुखैर्विहीनः। सुरप्रतापी नवमे मृत्युश्च दशमे तथा॥ एकादशे द्वादशे च सुखी च सुभगी भवेत्। अष्टौ पुत्तलकान् कृत्वा सुगन्धैर्गन्धकैस्तथा॥ स्रोतःसु संक्रमे चापि स्नापयेत् शुक्लपुष्पकैः। स्नानं संक्रमणस्याधः शम्भोर्दर्शनमन्ततः॥ होमं विप्रार्च्चनञ्चैवमशुभे दन्तदर्शने"॥

प्रसवात् पूर्व्वं गृहसंस्कारमाह सांख्यायनगृह्यम्। "काकादन्या मेचकधातक्या बृहत्याः कोषातक्याः कालक्लीतकस्येति मूलानि पेषयित्वा उपलेपयेद्देशं यस्मिन् प्रजायते रक्षसामपहत्यै" इति। काकादनी काकजङ्घा मेचकधातकी काकमोचिका कोषातकी घोषकः कालक्लीतकाः यष्टिमधुकेति कल्पतरुः। अतएव हरिवंशे। "एष मानुष्यको यत्नो मानुषैरेव साध्यते। श्रूयतां येन दैवं हि मद्विधैः प्रति-

हन्यते। मन्त्रपामैः सुविहितैरौषधैश्चैव योजितैः। यत्नेन चानुकूलेन दैवमप्यनुलोम्यते”। इत्यनुचरान् प्रति कंसवाक्यम्। “अस्ति गोदावरीतीरे जम्भला नाम राक्षसी। तस्याः स्मरणमात्रेण विशल्या गर्भिणी भवेत्। पञ्चरेखाः समुल्लिख्य तिर्य्यगूर्द्ध्वक्रमेण हि। पदानि षड्दशापाद्य त्वेकमाद्ये मुनौ त्रयम्। नवमे सप्त दद्यात्तु बाणं पञ्चदशे तथा। द्वितीयेऽष्टावष्टमे षट् दिशि द्वौ षोड़शे श्रुतिम्। एकादिना समं देयम् इच्छार्द्धाङ्कं त्रिकोणके। तदा द्वात्रिंशदादिः स्यात् चतुःकोष्ठेषु सर्व्वतः। दर्शनाद्धारणात्तासां शुभं स्यादेषु कर्म्मसु। द्वात्रिंशत् प्रसवे नार्य्याश्चतुस्त्रिंशद्रणे नृणाम्। भूताविष्टेषु पञ्चाशत् मृतापत्यासु वै शतम्। द्वासप्ततिस्तु सन्ध्यायां चतुःषष्टीरणाङ्गनि। विषे विंशो धान्यकीटेष्वष्टाविंशतिरेव च। चतुरष्टौ च बालानां रोदने परिकीर्त्तिता” भीमपराक्रमे “वाच्यं शिशोर्जन्मपितुः परोक्षं क्षपाकरे पश्यति नैव लग्नम्। चरस्थितेऽर्केऽष्टमधर्म्मगे वा जातः परोक्षे पितरीति वाच्यम्। लग्नस्थिते वा दिननाथभूमौ यामित्रसंस्थेऽप्यथवा महीजे। चन्द्रे च शुक्रेन्दुजमध्यगे वा विदेशसंस्थे पितरि प्रजातः। सुप्रसूतिर्भवेच्चन्द्रे शुभग्रहयुतेक्षिते। दुर्ग्रहेक्षितयुक्ते च प्रसूतिर्दुःखदा भवेत्। द्वारं वास्तुनि केन्द्रोपगात् ग्रहादसति वा विलग्नर्क्षात्। दीपोऽर्कादुदयाद्वर्त्तिरिन्दुतः स्नेहनिर्देशः। लग्ने याद्विरंशांशस्तदभिमुखं सूतिकागृहद्वारम्। वासगृहोद्यानगतं द्वारं दिग्वलिग्रहाद्बलोपेतात्। द्वादशभागविभक्ते वासगृहे व्यवस्थिते सहस्रांशौ। दीपश्चरस्थिरादिषु तथैव वाच्यः प्रसवकाले। लग्नस्य यस्तु वर्णो निर्दिष्टो वर्त्तिस्तेन निर्देश्या। यावान् भागःक्षयमुपगतो दीपवर्त्तेश्च। तस्यास्तावद्भागे क्षयमुपगते लग्नराशेः प्रसूतिः। इन्दोर्भागवशाद्राशौ दीपे तैलस्य संस्थितिः। केचित्

पूर्णादिभेदेन वदन्त्येवं मनीषिणः। मेषे चापमृगेन्द्रयोः किल शिशुः प्राची शिवा जायते गोकन्या मकरेषु दक्षिणशिरा जातो भवेन्निश्चितम्। मीने वृश्चिककर्किणोर्यदि तदा कौबेरमूर्द्धा भवेत् कुम्भर्क्षे घटयुग्मयोर्यदि तदा पाश्चात्यमूर्द्धा नतः। युग्मायुग्मलग्नवशात् प्रसवस्य च कारिणी। विधवा सधवा ज्ञेया क्रमात् खलु विचक्षणैः"। बृहज्जातके। "मेषकुलीरतुलालिघटैः प्रागुत्तरतो गुरुसौम्य गृहेषु। पश्चिमतश्च वृषेण निवासो दक्षिणभागकरौ मृगसिंहौ। वास्तुदेशे प्रागादिगृहप्रसवस्थानम्। द्वौ द्वौ राशी मेषात् पूर्वादिषु संस्थितौ गृहविभागे। कोणेषु द्विशरीराणि लग्नस्थाने शिशोः शयनानि"। गृहस्य प्रागादिदिग्विभागे बालस्य शय्या। लग्ननवांशकतुल्यतनुः स्यात् वीर्य्ययुतग्रहतुल्यतनुर्वा। चन्द्रमसे तु नवांशपवर्णः कादिविलग्नविभक्तभगात्रः। लग्नादयो राशयः कादिषु शिरः प्रभृतिगात्रेषु परिकल्प्य तेन तदधिपात्तदैर्घ्यादिभेदात् तदङ्गानां तथा। यथाह सत्यः। दीर्घपतिदीर्घगृहस्थितोऽवयवदीर्घ क्षङ्गवति। मिश्रत्वे मिश्रफलमेवमन्येषु वाच्यम्। कदृक्श्रोत्रनसाकपोलहनवो वक्त्रञ्च होरादयस्ते कण्ठांशकबाहुपार्श्वहृदयक्रोडानि नाभिस्ततः। वस्ति शिश्नगुदे ततश्च वृषणावूरू ततो जानुनी। जङ्घाङ्घ्री ह्युभयत्र वाममुदितैर्द्रेक्काणभागैस्त्रिधा। लग्नादयो राशयस्त्रिधा द्रेक्काणभागैस्तत्र प्रथमे शीर्षादयो भवन्ति ते लग्नादयः द्वितीये कण्ठादयः तृतीये वस्त्यादयः उदितैरुदय प्राप्तैर्भुक्तैरिति यावत्। तैर्द्वादशभिः राशिभिर्वाममङ्गमिति शेषः। अर्थात् द्वितीयादिभिर्भागैर्दक्षिणं तेन लग्नात् द्वितीयो राशिर्दक्षिणं चक्षुः द्वादशश्च वाममित्यादि ज्ञेयम्। "तस्मिन् पापयुते व्रणं शुभयुते सौस्यं हि लक्ष्मादिशेत्। स्वक्षांशे स्थिरसंयुतेषु सहजः स्यादन्यथा गन्तुकः।

मन्देश्वानिलजोऽग्निशस्त्रविषजो भौमे बुधे भूभवः सूर्य्ये काष्ठचतुष्पदेन हिमगो शृङ्ग्यब्जजोन्यैः शुभः"। तस्मिन् द्रेक्काणे। द्रेक्काणस्थितग्रहफलनिर्णयः। "शीर्षमुखबाहुहृदयोदराणि कटिवस्तिगुह्यसंज्ञकानि। ऊरुजानूकजङ्घे चरणाविति च राशयोऽजाद्याः। इति कालनरस्याङ्गे सदसद्ग्रहयोगतः। पुंसामपि तदङ्गेषु शुभाशुभफलं वदेत्। न लग्नमिन्दुञ्च गुरुर्निरीक्षते न वा शशाङ्कं रविणा समायुतम्। सपापकोऽर्केण युतोऽथवा शशीपरेण जातं प्रवदन्ति निश्चयात्। भग्नपादर्क्षसंयोगात् द्वितीया द्वादशी यदि। सप्तमी चार्कमन्दारे जायते जारजो ध्रुवम्। जारजयोगः। "गुरुक्षेत्रगते चन्द्रे तद्युक्ते वाथवेश्मनि। तद्द्रेक्काणे नवांशे वा जायते न परेण सः"। जारजयोगभङ्गः इति लग्ननिर्णयः।

"यादृक् पश्यति सौम्यस्तत्तुल्यगुणं सुतं समाधत्ते। पितृजननीसादृश्यं रवेः शशाङ्काच्च बलयोगात्। सत्त्वं रजस्तमो यत्तु त्रिंशांशे रविस्तादृक्"। एतेऽन्तरात्मानः स्वां प्रकृतिं जन्तोः प्रयच्छन्ति सत्त्वादिग्रहात्रिंशांशके रविस्थित्या सात्त्विकादिज्ञानम्। विष्णुधर्मोत्तरे। "तामसा राजसाश्चैव सात्त्विकाश्च तथा स्मृताः। मनुष्या भृगुशार्दूल वातपित्तकफाधिकाः।

अथ गण्डयोगः। "अश्विनीमघमूलानां गण्डा आद्यास्त्रिनाड़िकाः। अन्त्याः पौष्णोरगेन्द्राणां पञ्चैव यवना जगुः। मूलेन्द्रयोर्दिवागण्डो निशाच पितृसर्पयोः। सन्ध्याद्वये तथा ज्ञेये रेवतीतुरगक्षयोः। सन्ध्यारात्रि दिवाभागे गण्डयोगोद्भवः शिशुः। आत्मानं मातरं तातं विनिहन्ति यथाक्रमम्। सर्वेषां गण्डजातानां परित्यागो विधीयते। तातेनादर्शनं वापि यावत् षाण्मासिको भवेत्। कुङ्कुमं चन्दनं कुष्ठं गोर-

चनमथापि वा। घृते नैवान्वितं ज्ञात्वा चतुर्भिः कलसैर्बुधः। सहस्राक्षेण मन्त्रेण बालकं स्नापयेत्ततः। पितृयुक्तं दिवाजातं मातृयुक्तञ्च रात्रिजम्। स्नापयेत् मातृपितृभ्यां सन्ध्ययोरुभयोरपि। कांस्यपात्रं घृतैः पूर्णं गण्डदोषोपशान्तये। दद्याद्धेनुं हिरण्यञ्च ग्रहांश्चापि प्रपूजयेत्। मूलायाः प्रथमे पादे पितुर्वपुः प्रणश्यति। द्वितीये नियतां पीड़ां मातुः कुर्य्यात् पितुस्तथा। तृतीये धननाशाय चतुर्थे सर्वसम्पदः। व्यत्ययेन फलं ज्ञेयमश्लेषास्वपि पूर्ववत्। बल्मीकमृत्तिकां दद्यात् नद्याश्च तटमृत्तिकाम्। गोविषाणमृदश्चैव दन्तिमृदश्च निक्षिपेत्। तीर्थाम्भः पञ्चगव्येन स्नानं मातुः पितुः शिशोः। दिवा जाता तु या कन्या निशि जातस्तु यः पुमान्। नोभयोर्गण्डदोषोऽस्ति नाचलो हन्ति पर्वतम्। दिवागण्डे निशाजातो निशिगण्डेऽथवा दिवा। नोभयोर्गण्डदोषः स्यान्नाचलो हन्ति पवतम्'॥ इति गण्डनिर्णयः। "मयूरचुलिकामूलमादित्यग्रहणोद्धृतम्। बालस्य च गले बद्धं समस्तग्रहदोषहृत्"॥ मयूरचूलिका अपामार्गः। "शङ्खोत्पलवचा कुष्ठं कृष्णलोहविधारणम्। सर्वोपद्रवतो बालं क्ष्वड़ादपि च रक्षति॥ अर्कदुग्धं निशा शुण्ठी गोघृतेन विलेपनम्। सर्वोपद्रवदोषेभ्यो बालं रक्षति सन्ततम्॥ मागधिकासैन्धवसुरभिपित्तमधुमरिचरचितमतिप्रकटम्। भूतहरमञ्जनमिदं दुर्द्धरग्रहदर्पविदारणम्॥ सुरभिपित्तं गोपित्तं मागधिका पिप्पली। दारुहरिद्रां पुष्ये मूत्ररसेन मर्दयित्वा रचिता॥ अञ्जनगुटिका ग्रहवृन्दवन्दिता भूतविद्रावणी मूत्ररसेन कुष्माण्डरसेन।

अथ पताकीवेधः। "तिर्य्यगूर्द्धगता रेखास्त्रयो देयाः पताकया। युताः कार्य्या वेदविदा सर्वसङ्गतरेखया॥ दक्षस्थोद्गतरेखातो वामं मेषादिराशयः। पञ्चाष्टयुग्मविंशाश्च

षड्दशेन्द्राग्निसागराः ॥ कर्कटान्मीनपर्य्यन्तमङ्का देया यथाक्रमम्। बालस्य जन्मकालीनग्रहलग्नमजादिषु ॥ विन्यस्य चिन्तयेत् प्राज्ञः शुभाशुभं यथाक्रमम्। शुभदण्डयोगवेधैर्लग्नाद्बालस्य शोभनम्। पापदण्डयोगवेधैराशङ्का दृष्टिकालवत्। बलाधिके दिनं मध्ये मासो हीने च हायनम्। कर्किमीनधनुर्भ्याञ्च हरिः कीटघटेन च। स्त्रियास्तौलिमृगाभ्याञ्च घटे मीनेन कन्यया। धनुषो मृगकर्किभ्यां मकरे धनुषा स्त्रिया। मीने कर्कितुलाभृद्भ्यां मीनस्त्रीधनुषात्मजे। तुलाकर्किमृगैर्द्वन्द्वे कीटकुम्भवृषेषु च। सिंहवद्वेध एतेषु वामदक्षिणसंमुखे। राहुकेत्वर्कसौरारैः पापैर्विद्धो युतोऽशुभः। तदन्यैर्युतविद्धस्तु लग्नराशिः शुभप्रदः। एकोनविंशतिः कर्के सिंहे सप्तदशैव तु। षट्त्रिंशदबलायाञ्च षड्विंशतिस्तुलाधरे। वृश्चिके सिंहवत् ज्ञेय मूनत्रिंशच्छरासने। षड्विंशं मकरे ज्ञेयं कुम्भे सप्तदश स्मृता। नवयुग्मे तथा मीने मेषे षड्दशभिस्तथा। वृषभे च यथा सिंहे युग्मेऽङ्कहरलोचने। त्रितयाङ्कादियं संख्या दिनमासाब्दनिर्णये। एकाङ्कात् द्विग्रहाङ्काद्वा क्वचित् दृष्टेश्च सम्भवः। वारेशादर्द्धयामेषु रात्र्यङ्कोः पञ्चषट् क्रमात्। अधिपाः स्युर्ग्रहास्तत्र यथार्काहि भवन्ति हि। वरीज्येन्दुभृगुक्ष्माजशनिज्ञरवयो निशि। रविशुक्रज्ञरात्रीशशनीज्यकुजभास्कराः। दिने तूह्याः परेष्वेवं तथा ऋच्चाश्चतुर्ग्रहाः। पापदण्डे भवेद्रिष्टिः शुभदण्डे शुभं भवेत्। शुभग्रहस्य दण्डे तु कर्म्मारम्भाच्छुभं भवेत्। आरम्भात् पापदण्डे तु कर्म्म निष्फलतां व्रजेत्। यस्यार्द्धयामस्तस्यैव प्राग्दण्डः समुदाहृतः। षट्षट् परीत्य दण्डाश्च त्रयो रात्रौ मतास्तथा। आदित्ये भृगुजो बुधोऽपि च शशी सोमे शनीज्यौ कुजो भौमेऽर्कः सितसोमजौ च शशिजे सोमः शनिर्वाक्पतिः।

जीवेऽङ्गाररवी भृगुर्भृगुसुते सौमेन्दुमार्त्तण्डजाः। काले जीवमहीजतिग्मकिरणा रात्रौ च दण्डाधिपाः। यामार्द्धाधिपसंख्यातो द्वितीयस्तु तदर्द्धतः। तदर्द्धात्तु तृतीयः स्यात्तदर्द्धात्तु तुरीयकः। अङ्गाभावे तु राहुः स्यात्तदङ्गो वसुसंख्यकः। भग्नाङ्गस्य परित्यागाद्दिवादण्डाधिपा यथा। रविदनुजबुधग्लौश्चन्द्रसुरासुरज्ञा कुजरविदनुजज्ञाः ज्ञेन्दुसुरासुराश्च। गुरुशशिरविदैत्याः शुक्रभौमार्कदैत्याः शनिकुजरविदैत्या दण्डपाद्यर्द्धयामे"। दनुजो राहुः। अर्द्धयामे। दिनार्द्धप्रहरे। शुभदण्डमाह। "शेषावर्कस्य दण्डौ सततशुभकरावादिशेषौ तथेन्दोः शेषो दण्डः कुजस्याप्यथ गुरुबुधयोराद्यमाद्यं प्रशस्तम्। आदिर्दण्डस्तथैको भृगुकुलनृपतेः सर्वकार्य्ये हि शस्तः। दण्डाश्चत्वार एते क्वचिदपि समये नैव सौरेः प्रशस्ताः। प्रतिदण्डं पलान्येषां ज्ञात्वा वाच्यं क्वचिच्छुभम्। रवौ च वेदा वसवः सुधांशौ कुजे चराणां शशिजे तथाङ्गाः। शनावृतुर्दिक् च बृहस्पतौ स्याद्राहौ तुरङ्गा भृगुजे च रुद्राः। अशुभे दण्डसंयोगे सर्वत्र पुण्यवर्जिते। बालस्य मरणं शीघ्रं यदि पापैः समन्वितम्। अशुभग्रह दण्डे तु सर्वत्र पापवर्जिते। बालस्य कुशलं सर्वं शुभैर्यदि समन्वितम्। अशुभो दण्डनाथो हि वेधश्चेत्तेन लभ्यते। मरणं तत्र वक्तव्यं बालस्य नान्यथा भवेत्। पापस्य दण्डमात्रे तु तद्योगवेधवर्जिते। बालस्य कुशलं तत्र शुभैर्यदि समन्वितम्"। इति पताकीवेधः।

"पापास्त्रिकोणकेन्द्रे सौम्याः षष्ठाष्टमव्ययगताः। सूर्य्योदये प्रसूतः सद्यः प्राणांस्त्यजति जन्तुः"। सूर्य्यरिष्टम्। "षष्ठेऽष्टमे च चन्द्रः सद्यो मरणाय पापसंदृष्टः। अष्टाभिश्च शुभैर्दृष्टो वर्षैर्मिश्रैस्तदर्द्धेन"। चन्द्ररिष्टम्। "सुतमदननवान्त्यलग्नरन्ध्रेष्वशुभयुतो मरणाय शीतरश्मिः। भृगुसुतशशिपुत्रदेव-

पूज्यैर्यदि बलिभिर्न युतोऽवलोकितो वा”। पापयुतचन्द्ररिष्टम्। “द्यूनचतुरस्रसंस्थे पापद्वयमध्यगे शशिनि जातः। विलयं प्रयाति नियतं देवैरपि रक्षितो बालः”। पापमध्यगचन्द्ररिष्टम्। “क्षीणे शशिनि विलग्ने पापैः केन्द्रेषु मृत्युसंस्थैर्वा। भवति विपत्तिरवश्यं जवनाधिपतेर्मतञ्चैतत्”॥ क्षीणचन्द्ररिष्टम्। “नाग ८। गो ९। सिद्ध २४। जातौ २२। इषु ५। क्ष्मा १। अब्धि ४। त्र्यश्वि २३। धृति १८। नखाः २०। क्ष्माग्नि २१। दिक् १०। चेत्यजाद्यंशे तत्तुल्याब्दैर्विधौ व्यसुः”। मेषादीनां त्रिंशांशविशेषस्थचन्द्ररिष्टम्। “भौमे विलग्ने शुभदैरदृष्टः षष्ठेऽष्टमे वार्कसुतेन युक्तः। सद्यः शिशुं हन्ति वदेन्मुनीन्द्रः स्मरे यमारौ न शुभे क्षितौ च”। त्रिविधभौमरिष्टम्। “कर्कटधामनि सौम्यः षष्ठाष्टमराशिगो विलग्नर्क्षात्। चन्द्रेण दृष्टमूर्त्तिर्वर्षचतुष्टयेन मारयति”॥ बुधरिष्टम्। “बृहस्पतिभौमगृहेऽष्टमस्थः सूर्येन्दुभौमार्कजदृष्टमूर्त्तिः। वर्षैस्त्रिभिर्भार्गवदृष्टिहीनो लोकान्तरं प्रापयति प्रसूतम्” ॥ बृहस्पतिरिष्टम्। “रविशशिभवने शुक्रो द्वादशरिपुरन्ध्रगोऽशुभैः सर्वैः। दृष्टः करोति मरणं षड्भिर्वर्षैः किमिह विचित्रम्” ॥ शुक्ररिष्टम्। “मारयति षोड़शाहात् शनैश्चरः पापवीक्षितो लग्ने। संयुक्तो मासेन वर्षाच्छुद्धस्तु मारयति” ॥ त्रिविधशनिरिष्टम्। “राहुश्चतुष्टयस्थो मरणाय वीक्षितो भवति पापैः। वर्षैर्वदन्ति दशभिः षोड़शभिः केचिदाचार्याः ॥ घटसिंहवृश्चिकोदयकृतस्थितिजीवितं हरति राहुः। पापैर्निरीक्ष्यमाणः सप्तमितैर्निश्चितैर्वर्षैः” ॥ राहुरिष्टम्। “केतुर्यस्मिन्नृक्षेऽभ्युदितस्तस्मिन् प्रसूयते जन्तुः। रौद्रे सर्पमुहूर्त्ते वा प्राणैः संत्यजते चाशु” ॥ केतुरिष्टम्। लग्ने ये द्रेक्काणा निगड़ाहिविहङ्गमपाशधरसंज्ञाः। मरणाय सप्तवर्षे क्रूरयुतान्

क्षपति दृष्टाः। द्रेक्काणरिष्टम्। "मीनकर्कटयोरन्त्यौ वृश्चिकस्याद्यमध्यमौ। सर्पाश्चत्वार एवैते द्रेक्काणा निगडाश्च ते॥ तुलामध्यान्तसिंहाद्य कुम्भाद्याः पक्षिणः स्मृताः। वृषाद्यमकराद्यन्ता द्रेक्काणाः पाशधारिणः॥ लग्नाधिपजन्मपती षष्ठाष्टमरिप्-फगौ प्रसवकाले। अस्तमितौ मरणकरौ राशिप्रमितैर्वर्षैः"॥ जन्मपतिर्जन्मराश्यधिपः लग्नाधिपजन्माधिपरिष्टम्। "सौम्याः षष्ठाष्टमगाः पापैर्वक्रोपगतैर्दृष्टाः। मासेन मृत्युदास्ते यदि न शुभैस्तत्र संदृष्टाः"॥ सौम्यग्रहरिष्टम्। "एकः पापोऽष्टमगः शत्रुगृहे शत्रुवीक्षितो वर्षात्। मारयति नरं प्रसूतं सुधारसो येन पीतोऽपि"॥ पापग्रहरिष्टम्। "होरायाः सप्तमे सौरिर्हिबुकस्थश्च भास्करः। यस्मिन् योगे तु यो जातः सोऽल्पायुर्भवति प्रिये॥ वसुषष्ठगते जीवे समसप्तगते शनौ। द्वादशस्थो यदा भानुर्वर्षमेकं न जीवति॥ प्रतिपद्युत्तराषाढा नवम्यामेव कृत्तिका। पूर्वभाद्रपदष्टम्यामेकादश्याञ्च रोहिणी॥ द्वादश्याञ्च यदाश्लेषा त्रयोदश्यां यदा मघा। एभिर्जातो न जीवेत यदि शक्रसमो भवेत्"॥ इति मिश्ररिष्टम्।

"लग्नाच्चतुर्थगः पापो यदि स्याद्बलवत्तरः। तदा मातृवधं कुर्य्यात्तत्केन्द्रे चापरो यदि॥ केन्द्रत्रिकोणगः पापो मातृहा सप्तवासरात्। सपापात् भार्गवात् पापो हिबुके मातृनाशकृत्॥ चन्द्रमा यदि पापेन त्रयेणैवेह वीक्षितः। मातृनाशो भवेत्तस्य षष्ठः पापो भवेद् यदा"॥ इति मातृरिष्टम्। "कर्मस्थाने स्थिते सौम्ये रिपुस्थाने च चन्द्रमाः। कुजे च सप्तमस्थाने म्रियते पितृसंज्ञकः॥ तमोघ्ना यदि पापेन त्रयेणैव हि वीक्षितः। शुभैरयुतदृष्टश्च पितुरप्यन्तमादिशेत्'॥ इति पितृरिष्टम्। "लग्नाच्चतुर्थो रविजोऽथ भौमः कर्मस्थितो मातृवियोगदुःखम्। ददाति शीघ्रं खलु सप्तमे च तातस्य

मृत्युं यदि लग्नसंस्थः ॥ दिवाकरेन्दोः स्मरगौ कुजार्कजौ रोगप्रदौ पुंगवयोषितस्तदा । व्ययस्थगौ मृत्युकरौ युतौ यदा तदेकदृष्टा मरणाय कल्पितौ ॥ यमवक्रौ द्युने चार्कात् पुंसो रोगप्रदौ स्त्रियाश्च चन्द्रात् । तन्मध्यगयोर्मृत्युस्तदेकयुतदृष्टयोश्चापि” ॥ इति माता पितृहायोगः ।

“एकोऽपि केन्द्रभवने नवपञ्चमे वा भास्वन्मयूखविमलीकृतदिग्विभागः । निःशेषदोषमपहृत्य शुभं प्रसूतं दीर्घायुषं विगतरोगभयं करोति” ॥ सर्वरिष्टभङ्गः । “सौम्यग्रहैरतिबलैर्विबलैश्च पापैर्लग्नञ्च सौम्यभवनं शुभदृष्टिदृष्टम् । सर्वापदा विरहितो भवति प्रसूतः पूजाकरः खलु यथा दुरितैर्ग्रहाणाम् ॥ चन्द्रः पूर्णतनुः सौम्यर्क्षगतः स्थितः शुभस्यांशे । प्रकरोति रिष्टभङ्गं विशेषतः शुक्रसंदृष्टः ॥ सौम्यद्वयान्तरगतः संपूर्णस्निग्धमण्डलः शशभृत् निःशेषरिष्टहन्ता भुजङ्गलोकस्य गरुड़ इव । स्वोच्चस्थः स्वगृहेऽपि वा स्वसुहृदां वर्गेऽपि सौम्येऽपि वा संपूर्णः शुभवीक्षितः शशधरो वर्गे स्वकीयेऽपि वा.। शत्रूणामवलोकनेन रहितः पापैरयुक्ते क्षितो रिष्टिं हन्ति सुदुस्तरं दिनपतिः प्रालेयराशिं यथा ॥ शुक्रः पञ्चसहस्राणि बुधः पञ्चशतानि च । लक्षमेकन्तु दोषाणां हन्याच्चैवोदिते गुरुः ॥ सप्ताष्टषष्ठाः सौम्या हरन्ति शशिनः कष्टफलम् । पापैरमिश्रचाराः कल्याणघृतं यथोन्मादम् ॥ पक्षे सिते भवति जन्म यदि क्षपायां कृष्णे तथाहनि शुभाशुभदृष्टमूर्त्तिः । तं चन्द्रमा रिपुविनाशगतोऽपि यत्नादापत्सु रक्षति पितेव शिशुं न हन्ति । तुलाकोदण्डमीनस्थो लग्नस्थश्च शनिर्यदा ॥ सर्वरिष्टं निहन्त्याशु शेषे जातो भवेद्वसुः । राहुस्त्रिषष्ठलाभे लग्नात् सौम्यैर्निरीक्षितः सद्यः नाशयति सर्वरिष्टं मारुत इव तूलसङ्घातम् । अजवृषभकर्किलग्ने रक्षति राहुः समस्तरिष्टिभ्यः ।

पृथिवीपतिः प्रसन्नः कृतापराधं यथा पुरुषम्”॥ भौमपराक्रमे। “निधनारिगते चन्द्रे लग्नांशं जायते यदि। अथ केन्द्रगते जीवे जीवेद्वर्षशतं नरः॥ कर्कटस्थो यदा जीवः सप्तमो भार्गवो यदि। बुधे च लग्नसंप्राप्ते शतं जीवति बालकः”॥ इति रिष्टभङ्गः। “स्वर्क्षस्थैश्च चतुष्टयेऽथ बलिभिः स्वोच्चस्थितैर्वा ग्रहैः शुक्राङ्गारकमन्दजीवशशिजैरेतैर्यथानुक्रमम्। मानव्यो रुचकः शशोऽथ कथितो हंसश्च भद्रस्तथा माहात्म्यात् पुरुषाः कुलाधिकतया ख्यात्यादिभाजः सदा। विद्यावान् जनसुभगः सत्यरतो धार्मिकः सदा पुरुषः॥ बान्धवसुहृदुपकर्त्ता केन्द्रकोणे स्थिते जीवे। स्वोच्चस्थितः शुभफलं प्रकरोति पूर्णं नीचर्क्षगस्तु विफलं रिपुमन्दिरेऽल्पम्॥ पादं फलस्य हितभे स्वगृहे तथार्द्धं पादत्रयं शुभखगः स्थितवांस्त्रिकोणे। नीचर्क्षगः सकलमेव करोति दोषं नूनञ्च किञ्चिदरिभे विफलं सुतुङ्गे। पादत्रयं हितगृहे विहगः शुभोऽर्द्धं स्वर्क्षे फलञ्च चरणं स्थितवांस्त्रिकोणे”॥ इति भावफलम्। “यत्र तत्र स्थितो भौमो गुरुणापि समायुतः। तत्रोच्चफलमाप्नोति स्वादुच्चे त्रिगुणं फलम्”॥ राजयोगमाह। “नीचस्थिते जन्मनि यो ग्रहस्य तद्राशिनाथोऽपि तदुच्चनाथः। यदा त्रिकोणे यदि केन्द्रवर्त्ती भवेत्तदासौ नृपचक्रवर्त्ती॥ अन्धं दिगम्बरं मूर्खं परपिण्डोपजीविनम्। कुर्य्यातामतिनीचस्थौ पुरुषं शशिभास्करौ॥ वक्रिणास्तु महावीर्य्याः शुभा राज्यप्रदा ग्रहाः। पापा व्यसनदाः सर्व्वे कुर्व्वन्ति च वृथाटनम्”॥

अथ जन्मराशिफलम्। ‘मेषः सौख्यमुपैति गर्व्वमपि गौर्नानामतिर्मन्मथे क्रूरः कर्कटके धृतिर्व्वनचरे कन्या च मायाविनी। सत्यं रौति तुलाप्यलौ मलिनता चापस्तु पापाश्रयो मौर्ख्यं मकरे घटे चतुरता मीने च धीरा मतिः

क्रूरः स्वल्पेऽप्यपराधे बहुवैरानुबन्धकृत्”। इष्टवियोगानिष्टप्राप्तौ चित्तस्य यथा पूर्वमवस्थानम्। अस्थिरविभूतिमित्रं चलमटनं स्खलितनियममपि चरभे। तद्विपरीतं क्षमान्वितं दीर्घसूत्रञ्च। द्विशरीरे त्यागयुतं कृतज्ञमुत्साहिनञ्च विविधचेष्टम्। ग्राम्यारण्यजलोद्भवराशिषु जातास्तथा शीलाः। अदीर्घसूत्रश्च भवेत् सर्वकर्मसु पार्थिवः। दीर्घसूत्रस्य भूपतेः कर्मनष्टं भवेत् ध्रुवम्। रागे दर्पे च माने च द्रोहे पापे च च कर्मणि। अप्रिये चैव कर्त्तव्ये दीर्घसूत्रं प्रशस्यते”॥
इति राशिफलम्।

अथ जन्मनक्षत्रफलम्। “शतानलादित्यविशाखमैत्रशक्रोद्भवा मिश्रगुणाः प्रदिष्टाः। शिवाजहस्ता हि भवाजघन्याः शेषोद्भवाः सत्पुरुषा भवन्ति॥ कालात्मा दिनकृत् मनस्तुहिनगुः सत्त्वं कुजोज्ञोवजोजीवोज्ञानसुखे सितश्च मदनो दुःखे दिनेशात्मजः। राजानौ रविशीतगू क्षितिसुतो नेता कुमारो बुधः। सूरिर्दानवपूजितश्च सचिवौ प्रेष्यः सहस्रांशुजः”॥ समुत्साहः शौर्य्यमिति भट्टोत्पल नेता सेनाध्यक्षः। “बलाबलात् ग्रहाणां स्यादात्मादीनां बलाबलम्। नृपाद्याः प्रबला कुर्य्युः स्वं रूपं शनिरन्यथा”॥

सत्याचार्य्यः। “षट्सूर्य्यस्य दशा ज्ञेयाः शशिनो दश पञ्च च। अष्टावङ्गारके प्रोक्ता बुधे सप्तदश स्मृता॥ शनैश्चरे दश प्रोक्ता गुरोरेकोनविंशतिः। राहौ द्वादशवर्षाणि भृगोरप्येकविंशतिः। दिक्षु त्रयं त्रयं ज्ञेयं विदिक्षु च चतुष्टयम्। कृत्तिकादिप्रदातव्यं दिगम्बरमता दशा॥ कृत्तिकादित्रये सूर्य्यः सोमो रौद्रचतुष्टये। मघादित्रितये भौमो बुधो हस्तचतुष्टये॥ अनुराधा त्रये सौरिर्गुरुः पूर्वचतुष्टये। धनिष्ठात्रितये राहुः शेषे शुक्रः प्रकीर्त्तितः॥ सूर्य्योपप्लव-

भौमार्किंदशातिकष्टदा नृणाम्। गुरुश्चचन्द्रशुक्राणां यथेप्सितफलप्रदा"॥ वराहः "स्वशाकहीनशाकाब्दात् प्रत्यब्दं पञ्च वासरान्। तिथींश्च चन्द्रशिखिनौ क्ष्मागुणौ च कृताश्विनौ॥ दण्डपलविपलान्यनुपलानि च सावने। वर्द्धयित्वा ऋक्षशेषभोग्यात्तु गणनक्रमात्"॥ अन्तर्दशाज्ञानमाह। "स्वदशाभिर्दशां हत्वा नवभिर्भागमाहरेत्। लब्धा मासास्तु तच्छेषं पूरयित्वा तु त्रिंशता॥ अङ्कैर्हृत्वा दिनं लभ्यं तच्छेषे षष्टिपूरिते। नवभिश्च हृते लब्धा ज्ञेया दण्डास्तदन्तरे॥ रवेः षड्वर्षमध्ये तु वेदा ४ मासा रवेर्निजाः। चन्द्रस्य दश मासाश्च दिक्‌दिनं पञ्च मासकाः॥ कुजस्य ज्ञस्य रुद्रास्तु मासादिक्‌दिवसाः शनेः। ऋतुमासाद्युविंशश्च गुरोर्वर्षाद्युविंशतिः॥ राहोर्मासाष्टका ज्ञेया भृगोर्वर्षस्तु मासकौ। एवं ग्रहाणामन्येषामूह्याश्चैवान्तरोदयः॥ यद्ग्रहस्यान्तरे यस्तु यत् संख्यं कालमाप्तवान्। तत् संख्यं स्वान्तरे तस्मै स दद्यादिति निश्चयः॥ स्वान्तरग्रहणे स्वांशं स्वांशेन पूरयेत् सदा"॥ दशाफलन्तु। "उद्विग्नचित्तपरिखेदितवित्तनाशक्लेशप्रवासगदपीड़ितपक्षघातैः। संक्षोभितस्वजनबन्धुवियोगदुःखैर्भानोर्दशा भवति कष्टकरी नराणाम्"॥ र। "सौख्यं विभर्त्ति वरवाहनयानरत्नकीर्त्तिप्रतापबलवीर्य्यशुभान्वितञ्च। मिष्टान्नपानशयनासनभोजनानि चान्द्री ददाति धनकाञ्चनभूमिशङ्खम्"॥ च। "शस्त्राभिघातवधबन्धनरेन्द्रपीड़ाचिन्ताज्वरं विकलताञ्च गृहे करोति। चौराग्निदाहभयभङ्गविपत्तिरोगकीर्त्तिप्रतापधनहा च दशा कुजस्य"॥ म। "दिव्याङ्गनावदनपङ्कजषट्पदत्वं लीलाविलासशयनासनभोजनञ्च। नानाप्रकारविभवागमकोषवृद्धिः क्षिप्रं भवेद्बुधदशासु हितार्थसिद्धिः"॥ बु। "मिथ्यापवादवधबन्धनकार्य्यहानिमालस्य्ययुक्प्रियसुखद्रविणे-

विहीनः। मित्रेषु वैरमभिवाञ्छति वैरयुक्तः कष्टासु पापदशासु शनैश्चरस्य" ॥ श। "रम्यं गृहं विनयसञ्चयमानवृद्धिं प्राप्नोति सौख्यधनधान्यविभूतियोगम्। धर्मार्थकामसुखभोगबहूपयुक्तं यावत् वृहस्पतिदशा पुरुषो हि तावत्" ॥ वृ। "बुद्ध्याविहीनमतिनाशवियोगदुःखं नष्टार्थसिद्धिभयभङ्गविषार्त्तिरोगम्। सन्तापशोकपरदेशगतं करोति राहोर्दशा भवति जीवनसंशयाय" ॥ रा। "मन्त्रप्रभावनिपुणः प्रमदाविलासः श्वेतातपत्रनृपपूजितदेशलाभः। हस्त्यश्वलाभधनपूर्णमनोरथः स्यात् शौक्रीदशा भवति निश्चलराजलक्ष्मीः" ॥ शु। रवेः स्थूलदशावर्षाणि ६। तस्यैवान्तर्दशा मासाः ४। तत्फलम्। "उद्विग्नचित्तपरिखेदितवित्तनाशक्लेशप्रवासगदभीतिमहाभिघातान्। दुःखप्रवासबधबन्धभयानि चैव भानोर्दशा प्रकुरुते खलु राजपीड़ाम्" ॥ रर। सोमस्य मासाः १०। तत्फलम्। "मदसङ्कटसन्त्रासं स्वेच्छाहानिं धनक्षतिम्। कुरुते रजनीनाथो भानोरन्तर्दशां गतः" ॥ रच। कुजस्य मासाः ५। दिनानि १०। फलम्। "स्वर्णप्रवालसौख्यानि रत्नानि कीर्त्तिमुत्तमाम्। ददाति भूसुतोऽभीष्टं भानोरन्तर्दशाङ्गतः" ॥ रम बुधस्य मासाः ११। दिनानि १०। "दद्रुं विचर्चिकाञ्चैव बलदुष्टादिबाधकान्। चन्द्रजः कुरुते शोकं भानोरन्तर्दशां गतः" ॥ बुर। शनेर्मासाः ६ दिनानि २०। फलम्। "सन्तापं वित्तनाशञ्च बन्धुनाशं पराजयम्। सौरिः करोति वैकल्यं भानोरन्तर्दशाङ्गतः" ॥ रश। गुरोर्वर्षादि १।०।२०। "धर्मार्थकामसौख्यानि ददाति विबुधार्च्चितः। कुष्ठादिव्याधिहन्ता च भानोरन्तर्दशां गतः" ॥ रबृ। राहोर्मासाः ८। "अशुभाशुभवोद्वेगं व्याधिभीतिसुतक्षयान्। कुरुते सिंहिकासूनू रवेरन्तर्दशाङ्गतः" ॥ ररा। शुक्रस्य वर्षं १। मासौ २।

“कोष्ठग्रीवाशिरोरोगज्वरान् शूलादिदारुणान्। शोकं करोति भृगुजः सूर्य्यस्यान्तर्दशाङ्गतः” ॥ रशु। एवं रवेर्वर्षाणि। ६। चन्द्रस्य स्थूलदशावर्षाणि १५। तस्यैवान्तर्दशावर्षं २। मासः १। फलम्। “कुर्य्याद्विभूतिवरवाहनमातपत्रक्षेमप्रतापबलवीर्य्यसमन्वितानि। मिष्टान्नपानशयनासनभोजनानि चान्द्रीदशा प्रचुरकाञ्चनभूमिदात्री” ॥ चच। कुजस्य वर्षं १। मासाः ८। दिनानि १०। फलम्। “पित्तशोणितपीड़ाञ्च चौरागाञ्च भयं तथा। मङ्गलः कुरुते नित्यं विधोरन्तर्दशाङ्गतः” ॥ चम। बुधस्य वर्षं २। मासाः ४। दिनानि १०। “सर्वत्र द्रव्यलाभञ्च गजाश्वगोधनानि च। चन्द्रजः कुरुते सौख्यं विधोरन्तर्दशां गतः” ॥ चबु। शनेर्वर्षं १। मासाः ४। दिनानि २०। “बन्धुक्लेशं नृपाद्भीतिं व्यसनं शोकशङ्कुलम्। विनाशं कुरुते शौरिश्चन्द्रस्यान्तर्दशाङ्गतः” ॥ चश। गुरोर्वर्षं २। मासाः ७। दिनानि २०। “दानसौख्यानि सम्भोगवस्त्रालङ्कारभूषणम्। कुरुते विबुधाचार्य्यो विधोरन्तर्दशाङ्गतः” ॥ चवृ। राहोर्वर्षं १। मासाः ८। “वह्निशस्त्रभयं दुःखं शोकं बन्धुधनक्षयम्। कुरुते राहुरत्यर्थं चन्द्रपाकदशाङ्गतः” ॥ चरा। शुक्रस्य वर्षं २। मासाः ११। “सेव्यते वरनारीभिर्नरो लक्ष्मीः प्रवर्त्तते। मुक्ताहारमणिप्राप्तिर्विधोरन्तर्गते सिते” ॥ चशु। रवेर्मासाः १०। “ऐश्वर्य्यं बहुसौख्यञ्च व्याधिनाशमरिक्षयम्। नृपतेजो रविः कुर्य्यात् विधोः पाकदशाङ्गतः”। चर। एवं चन्द्रस्य वर्षाणि १५ कुजस्य स्थूलवर्षाणि ८। तस्यान्तर्दशा मासाः ७। दिनानि ३। दण्डाः २०। “क्रूराभिघातबधबन्धभयानि धत्ते चिन्ताज्वरं विकलशून्यगृहाश्रमञ्च। चौराग्निभीतिधनहानिनरेन्द्रपीड़ाः कुर्य्याद्विनाशनिधनञ्च दशा कुजस्य” ॥ मम। बुधस्य वर्षं १। मासाः ३। दिनानि ३। दण्डाः २०। “परमैश्वर्य्य-

मतुलं नानाविधसुखाश्रयम् । करोति सोमपुत्रश्च क्षितिजान्तर्दशाङ्गतः” ॥ मबु । शनेर्मासाः ८। दिनानि २६ । दण्डाः ४० । “रिपुचौराग्निभीतिश्च रोगमन्तरमन्तरम् । महाजनकृतो द्वेषः कुजस्यान्तर्गते शनौ” ॥ मश । गुरोर्वर्षं १ । मासाः ४ । दिनानि २६ । दण्डाः ४० । “पुष्पधूपान्नवस्त्राद्यैर्देवब्राह्मणपूजनम् । नृपतुल्यत्वमाप्नोति कुजस्यान्तर्गते गुरौ” । मवृ । राहोर्मासाः १० । दिनानि २० । “कार्य्यार्थनाशं सर्वत्र बन्धचौरादिसाध्वसम् । कुरुते सिंहिकापुत्रो भौमस्यान्तर्दशां गतः” ॥ मरा । शुक्रस्य वर्षं १ । मासाः ६ । दिनानि २० । “धनवृद्धिसुखादींश्च नानावस्त्रं वरस्त्रियः । प्राप्नोति विपुलां लक्ष्मीं कुजस्यान्तर्गते भृगौ” ॥ मशु । रवेर्मासाः ५ । दिनानि १० । “नानारत्नञ्च सौख्यञ्च भूमिलाभमथापि वा । नृपपूजामवाप्नोति कुजस्यान्तर्गते रवौ” ॥ मर । सोमस्य वर्षं १ । मासाः १ । दिनानि १० । “धनलाभं सुखं भोगं शरीरारोग्यमेव च । लोकानन्यमवाप्नोति क्षितिजान्तर्गते विधौ” ॥ मच । एवं कुजस्य वर्षाणि ८ । अथ बुधस्य स्थूलदशा वर्षाणि १७ । तस्यान्तर्दशा वर्षं २ । मासाः ८ । दिनानि ३ । दण्डाः २० । फलम् । “दिव्याङ्गनावदनपङ्कजषट्पदत्वं लीलाविलासवरभोगसुखोदयञ्च । नानाप्रकारविभवागमकोषवृद्धिं क्षिप्रं सृजेद्बुधदशा विपुलाञ्च सिद्धिम्” ॥ बुबु । शनेर्वर्षं १ । मासाः ६ । दिनानि २६ । दण्डाः ४० । “वातश्लेष्मकृता पीड़ा विरहो बन्धुभिः सह । विदेशगमनञ्चैव बुधस्यान्तर्गते शनौ” ॥ बुश । गुरोर्वर्षं २ । मासाः ११ । दिनानि २६ । दण्डाः ४० । “व्याधिशत्रुभयैस्त्यक्तो धनाढ्यो नृपवल्लभः । लभेद्भार्य्यां सुपुत्रञ्च बुधस्यान्तर्गते गुरौ” ॥ बुवृ । राहोर्वर्षं १ मासाः १० । दिनानि २० । “बन्धुनाशं मनस्तापं देशत्यागञ्च बन्धनम् । करोति बहु-

दुःखानि बुधस्यान्तर्गतं तमः" ॥ तमो राहुः। बुरा। शुक्रस्य वर्षाणि ३। मासाः २। दिनानि २०। "धनाढ्यं बहुपुत्रञ्च धर्मवृद्धिं धनागमम्। कुरुते दानवाचार्य्यो बुधपाकदशाङ्गत"॥ बुशु। रवेर्मासाः ११। दिनानि १०। "श्रिया परमयायुक्तं गजवाजिधनान्वितम्। प्रभाकरः करोत्याशु बुधपाकदशाङ्गतः" ॥ बुर। सोमस्य वर्षं २। मासाः ४। दिनानि १०। "कण्टकादिप्रवेशञ्च शृङ्गिभ्यो भयमेव च। निशाकरः करोत्याशु बुधपाकदशाङ्गतः" ॥ बुच। कुजस्य वर्षं १। मासाः ४। दिनानि ३। दण्डाः २०। "कफपित्तसमुद्भूतां शिरःपीड़ां भयावहाम्। मङ्गलः कुरुते शोकं बुधस्यान्तर्दशाङ्गतः" ॥ बम। एवं बुधस्य वर्षाणि १७। अथ शनेः स्थूलदशा वर्षाणि १०। तस्यान्तर्दशा मासाः ११। दिनानि ३। दण्डाः २०। "मिथ्याप्रवासवधबन्धनिराश्रयत्वं चौरादिभूपतिभुजङ्गमभीतिमुग्राम्। आशानिरासमथवार्जनकार्य्यहानिं पङ्गोर्दशा प्रकुरुते नियतं नराणाम्" ॥ शश। गुरोर्वर्षं १। मासाः ८। दिनानि ३। दण्डाः २०। "देवतानुरतं शान्तं नानाप्राप्तिं करोति च। तुङ्गसौख्यसमायुक्तं पङ्गोरन्तर्गतो गुरुः" ॥ शवृ। राहोर्वर्षं १। मासः १। दिनानि १०। "नृपाद्भयं ज्वरं घोरं दुःखञ्च प्राणसंशयम्। धनक्षयञ्च कुरुते शनेरन्तर्गतं तमः" ॥ शरा। शुक्रस्य वर्षं १। मासाः ११। दिनानि १०। "सुहृद्बन्धुधनैः पूर्णो भार्य्या वित्तसमन्वितः। स्वर्णं सुखञ्च लभते सौरस्यान्तर्गते सिते" ॥ शशु। रवेर्मासाः ६। दिनानि २०। "परदाराभिगमनं करोति खरदीधितिः। जीवनस्य च सन्देहं शनेरन्तर्दशाङ्गतः" ॥ शर। सोमस्य वर्षं १। मासाः ४। दिनानि २०। "स्त्रीनाशं कुक्षिरोगञ्च कफपित्तगदं शशी। बन्धुद्वेषञ्च कुरुते पङ्गोरन्तर्दशाङ्गतः" ॥ शच। कुजस्य मासाः ८।

दिनानि २६ । दण्डाः ४० । फलं "देहवैकल्यं महारोगं नानादुःखानि भूमिजः । धननाशञ्च कुरुते शनेरन्तर्दशाङ्गतः" ॥ शम । बुधस्य वर्षं १ । मासाः ६ । दिनानि २६ । दण्डाः ४० । "आयुरारोग्यविजयं बहुवित्तानि सोमजः । करोति चादरं लोके शनेरन्तर्दशाङ्गतः" ॥ शबु । एवं शनेर्वर्षाणि १० । गुरोः स्थूलदशा वर्षाणि १९ । तस्यैवान्तर्दशा वर्षाणि ३ । मासाः ४ । दिनानि ३ । दण्डाः १० । "राज्यास्पदं तनयवित्तविनाशभोगान् पर्य्याप्तसौख्यधनधान्यसमाश्रयञ्च । विद्याप्रसादवररत्नसुखार्थभोगसिद्धिं दशा सुरगुरोः कुरुते श्रियञ्च" ॥ बृबृ । राहोर्वर्षं २ । मासः १ । दिनानि १० । "बन्धुद्वेषं मृषावादं स्थानभ्रंशं निराश्रयम् । कलहं कारयेद्राहुर्गुरोरन्तर्दशाङ्गतः" ॥ बृरा । शुक्रस्य वर्षाणि ३ । मासाः ८ । दिनानि १० । "कलहं बन्धुभिः सार्द्धं वित्तनाशं धनक्षतिम् । स्त्रीवियोगञ्च कुरुते जीवस्यान्तर्गतः सितः" ॥ बृशु । रवेर्वर्षं १ । दिनानि २० । "बहुमित्रं बहुधनं सौभाग्यं राजवल्लभम् । कुरुते भास्करः शान्तिं गुरोरन्तर्दशाङ्गतः" ॥ बृर । सोमस्य वर्षं २ । मासाः ७ । दिनानि २० । "भोगाढ्यो बहुभार्य्यश्च रिपुरोगविवर्जितः । नृपतुल्यो भवेच्चैव गुरोरन्तर्दशाङ्गतः" ॥ बृच । कुजस्य वर्षं १ । मासाः ४ । दिनानि २६ । दण्डाः ४० । "तीक्ष्णरोषो रिपोर्हन्ता गजवल्लीमदर्शनः । सुखसौभाग्यसंयुक्तः कुजे चान्तर्गते गुरोः" ॥ बृम । बुधस्य वर्षं २ । मासाः ११ । दिनानि २६ । दण्डाः ४० । "सुस्थोऽसुस्थः सुखीदुःखी शत्रुवृद्धिः पुनः पुनः । देवार्चनपरो नित्यं जीवस्यान्तर्गते बुधे" ॥ बृबु । शनेर्वर्षं १ । मासाः ९ । दिनानि ३ । दण्डाः २० । "वेश्याजनाश्रयात् सौख्यं भवेद्वित्तविवर्जितः । लुप्तनीतिमना नित्यं गुरोरन्तर्गते शनौ" ॥

बृश। एवं गुरोर्वर्षाणि १९। राहो स्थूलदशा वर्षाणि १२। तस्यान्तर्दशा वर्षं १। मासाः ४। "भार्य्यादिदूषणनिदानविवादबन्धशस्त्राभिघातभयहीनपराक्रमश्च। अप्राप्तसौख्यधनकाञ्चनहीनदेहो राहोर्दशा भवति जीवनसंशयाय"॥ रारा। शुक्रस्य वर्षे २। मासाः ४। फलम्। "शिरोरोगं कुदेहञ्च कुर्य्याद्भार्य्याञ्च चञ्चलाम्। बान्धवैः कलहो नित्यं राहोरन्तर्गते भृगौ"॥ राशु। रवेर्मासाः ८। "शिरोरोगभयं घोरं मृत्युशोकञ्च दारुणम्। वृहदग्निभयं कुर्य्याद्राहोरन्तर्गतो रविः॥ रार। सोमस्य वर्षं १। मासाः ८। "स्त्रीपुत्रकलहश्चैव वित्तनाशं मनःक्षतिम्। करोति क्लेशमत्यन्तं राहोरन्तर्गतो विधुः"॥ राच। कुजस्य मासाः १०। दिनानि २०। "विषशस्त्राग्निचौरेभ्यो नियतं दारुणं भयम्। पातस्यान्तर्गतः कुर्य्यान्नरस्य भूमिनन्दनः"॥ राम। बुधस्य वर्षं १। मासाः १०। दिनानि २०। "ज्वरक्षुदक्षिपीड़ाश्च कलहं स्वजनैः सह। भृत्यापत्येषु विद्वेषं कुर्य्यात् पातान्तरे बुधः"॥ राबु। शनेर्वर्षं १। मासः १। दिनानि १०। "स्त्रीपुत्रैः कलहो नित्यं बान्धवैः सह वैरिता। भवेत्तु बहुधा दुःखं राहोरन्तर्गते शनौ"॥ राश। गुरोर्वर्षे २। मासः १। दिनानि १०। "व्याधिदुःखभयैस्त्यक्तो देवब्राह्मणपूजकः। कार्य्यसिद्धिर्भवेदिष्टा राहोरन्तर्गते गुरौ"॥ राबृ। एवं राहोर्वर्षाणि १२। शुक्रस्य स्थूलदशा वर्षाणि २१। तस्यान्तर्दशा वर्षाणि ४। मासः १। फलम्। "मन्त्रप्रचाररुचिरप्रमदाविलाससम्मानदाननृपपूजनकोषलाभान्। हस्त्यश्वयानपरिपूर्णमनोरथञ्च शौक्री दशा सृजति निश्चलराजलक्ष्मीम्"॥ शुशु। रवेर्वर्षं १। मासौ २। "देहस्तीव्रव्रणाक्रान्तस्तीव्रतापोऽधनान्वितः। त्यक्तः स्याद्बान्धवैः सर्वैर्भार्गवान्तर्गते रवौ"॥

शुर। सोमस्य वर्षं २। मासाः ११। "सम्माननाशो रोगश्च कर्म्मनाशश्च नित्यशः। शुक्रस्यान्तर्गते चन्द्रे स्त्रीनाशो नियतं भवेत्"॥ शुच। कुजस्य वर्षं १। मासाः ६। दिनानि २०। "उत्साही धनधान्याढ्यः कल्यश्च सुमनाः सुखी। भूमिलाभो भवेच्चैव शुक्रस्यान्तर्गते कुजे"॥ शुम। बुधस्य वर्षाणि ३। मासाः ३। दिनानि २०। "सर्वत्र लभते सौख्यं मानसञ्चयभूषणम्। भार्य्या सुशीलतामेति भार्गवान्तर्गते बुधे"॥ शुबु। शनेर्वर्षं १। मासाः ११। दिनानि १०। "शत्रुक्षयमवाप्नोति मित्रवृद्धिश्च जायते। चौराद्वित्तस्य लाभः स्याच्छुक्रस्यान्तर्गते शनौ"॥ शुश। गुरोर्वर्षाणि ३। मासाः ८। दिनानि १०। "राजपूजा सुखं प्रीतिः कन्याजननमेव च। भार्गवान्तर्गते जीवे चौरान्नष्टञ्च लभ्यते"॥ शुवृ। राहोर्वर्षं २। मासाः ४। "बन्धनं बन्धुपुत्रादेर्बन्धुनाशो रिपोर्भयम्। शरीरदैन्यमाप्नोति राहावन्तर्गते भृगोः"॥ शुरा। एवं शुक्रस्य वर्षाणि २१। इत्यन्तर्दशाफलम्।

अथ प्रत्यन्तर्दशाफलम्। "ग्रहान्तरं दिनं कृत्वा षष्टिलब्धं ध्रुवं भवेत्। ध्रुवञ्च गणयेद्धीमान् रव्यादिक्रमतो यथा॥ रवौ च वेदा वसवः सुधांशौ कुजे च बाणा नव चन्द्रपुत्रे। शनौ रसादिक् च वृहस्पतौ च राहौ तुरङ्गा भृगुजे च रुद्राः॥ रवेरन्तरमध्ये तु वसवश्च रवेर्निजाः। चन्द्रस्य षोड़श प्रोक्ताः कुजस्य च दश स्मृताः॥ बुधस्य वसुचन्द्रौ च द्वादशश्च शनेः क्रमात्। गुरोश्च विंशतिश्चैव राहोश्चतुर्दश स्मृताः॥ एष एव विधिः प्रोक्तो भृगोर्द्वाविंशतिः क्रमात्। एवं दिनानि चान्येषां ज्ञात्वा प्रत्यन्तराणि च॥ यस्मिन् प्रत्यन्तरे यस्तु यत्संख्यं दिनमाप्तवान्। तद्दिनस्य प्रमाणेन शुभाशुभफलं वदेत्"॥ ध्रुवाणि ध्रुवाङ्काः वेदाङ्कैः पूरयित्वा यत्संख्यं तत्संख्यदिनं रवेः प्रत्यन्तर्दशायाम् एवमन्येषां ग्रहाणामित्यर्थः।

अथ वर्षपताकी। "रविश्चन्द्रः कुजः सौम्यः शनिर्जीवस्तमो भृगुः। इन्द्रेशाद्यष्टरेखासु मध्ये केतुरिमेऽब्दपाः॥ कृत्तिकादित्रिरावृत्तिर्यथा केतौ मघा भवेत्। स्वनक्षत्राद्वर्षफलं ज्ञेयं केतोः पताकया॥ रविणा भ्राम्यते देशान् सन्तापव्याधिपीड़ितः। कान्तारसङ्कटं शोकं करोति च भयान्वितम्"॥ र। "चन्द्रे तुष्टिस्तथा पुष्टिः सुखसम्पत्तिरेव च। आरोग्यं लभते नित्यं धनपुत्रसमन्वितम्"॥ च। "भौमे सदा कार्य्यहानिः क्रूरकर्म्मणि योजनम्। चर्म्मरोगो भवेत्तत्र सन्तापश्च दिने दिने"॥ म। "बुधे बोधश्च कार्य्येषु कन्यालाभो महासुखम्। राजसम्मानभाङ्नित्यं धनलाभो दिने दिने"॥ बु। "जीवे विद्या सुखं मानं लोकपूजाधनागमः। सर्वाङ्गाभरणं कण्ठे स्वर्णहारविभूषणम्"॥ वृ। "शुक्रः पौरुषमाख्याति पुष्टिकर्मसुखानि च। मुक्तारत्नप्रवालञ्च राजसम्मानमेव च"॥ शु। "शनौरोगभयं शोकं बन्धनं भयमेव च। अर्थहानिं कुवाक्यञ्च प्राणनाशं करोति च"॥ श। "रक्तस्रावो भवेदङ्गे राहौ द्वेषो जनस्य च। विदेशगमनञ्चैव वह्निवारिभयं तथा"॥ रा। "राजकार्य्यभयं चौर्य्यं गृहदाहश्च बन्धनम्। केतोर्वर्षे भवेद् घातस्तेषामन्तर्दिनानि तु"॥ के। अथास्य वर्षगणः। "दिनत्रयं विंशदण्डान् खदशाभिः प्रपूरयेत्। वर्षेश्वरात् समारभ्य नाक्षत्रिकविधानतः॥ रवेर्नखा २० चन्द्रमसः खबाणाः ५० कुजेऽष्टयुग्मे २८ विदिषट् च पञ्चकं ५६ शनेर्गुणाग्नी ३३ गुरुतोऽग्निकालौ ६३ राहोः खवेदा ४० भृगुतः खशैलाः ७०"। राहोरित्येकदेहत्वात् केतुपरमपि तेन राहुकेत्वोर्विंशतिर्विंशतिः इति वर्षफलम्। "लग्ने द्विपापे पतितस्त्रिपापे सङ्करोऽधमः। आत्महा स्याच्चतुष्पापे भवेदेके तु वाच्यता॥ वर्गोत्तमगते चन्द्रे चतुरादिभिरीक्षिते। विलग्ने

वा नृपजन्म भवति राज्यं नृपयोगे बलयुत दशायाम् ॥ कुलतुल्यः कुलश्रेष्ठो बन्धुमान्यो धनी सुखी । क्रमात् नृपसमो भूयात् अर्काद्यैः स्वगृहस्थितैः" ॥ नृपादियोगः । "सूर्य्याद्व्ययगैर्व्योशिर्द्वितीयगैश्चन्द्रवर्जितैर्वेशिः । उभयस्थितैर्ग्रहैन्द्रैरुभयचरीणामतः कथिता" ॥ व्योश्यादियोगः । "रविवर्ज्जं द्वादशगैरनफाचन्द्रात् द्वितीयगैः सुनफा । उभयस्थितैर्दुरधुराकेमद्रुमसंज्ञितोऽन्यः" ॥ अनफादियोगः । "मन्ददृगस्थिरवचनः परिभूतपरिश्रमो भवेद्व्योशी । उद्घृष्टवचाः स्मृतिमान् स्तब्धगतिः सात्विको भवेद्वेशी ॥ सुभगो बहुभृत्यधनो बन्धूनामाश्रयो नृपतितुल्यः । नित्योत्साही हृष्टो भुनक्ति भोगानुभयचर्य्याम्" ॥ व्योश्यादिफलम् । "सच्छीलं विषयसखान्वितं प्रभुं ख्यातियुक्तमनफायां सुनफायां धीधनकीर्त्तियुक्तमात्मार्जितैश्वर्य्यञ्च बहुभृत्यकुटुम्बारम्भमुद्विग्नचित्तमपि दौरधुरे । भृतकं दुःखिनमधनं जातं केमद्रुमे विद्यात्" ॥ अनफादिफलम् । "एते न च यदा योगाः केन्द्रञ्च ग्रहवर्जितं शशाङ्कस्य । केमद्रुमोऽतिकष्टः शशिनि समस्तग्रहादृष्टे लग्नादतीव वसुमान् वसुमान् शशाङ्कात् सौम्यग्रहैरुपचयोपगतैः समस्तैः द्वाभ्यां समोऽल्पवसुमांश्च तदूनतायाम् अन्येषु सत्स्वपि फलेष्विदमुत्कटेन लग्नचन्द्रोपचयस्थशुभग्रहैर्वित्तज्ञानम् । अधमसमवरिष्ठान्यर्ककेन्द्रादिसंस्थे शशिनि विनयवित्तज्ञानधीनैपुणानि । अहनि निशि च चन्द्रे स्वेऽधिमित्रांशके वा सुरगुरुसितदृष्टे वित्तवान् स्यात् सुखी च । सूर्य्यकेन्द्रादिस्थानत्रयस्थचन्द्रवशेन विनयादीनामधमादिनिर्णयः । प्रायः शुभाः समेता धनभोगयशोऽन्वितं भूपतियुष्टम् । पापाश्च दुःखतप्तं कुर्वन्त्यधनं स्वदुर्भगं दीनम्" ॥ ग्रहयोगफलं "बुधगुरुभार्गवदृष्टो विद्वान् दीर्घायुरर्थपरिपूर्णः । सुवचाः सुशरीरधरः सुतधनसौख्यान्वितः

ख्यातः। रविशनिरीक्षितदृष्टो जातो मलिनोऽलसश्च रोगार्त्तः। निर्धनो विरूपदेहः प्रेष्यो मूढ़ः खलोऽतिदीनश्च। जीवेक्षितः पण्डितशान्तमूर्त्तिर्वेदार्थशास्त्रागमपारदृष्टिः। दीर्घायुरत्यन्तशुचिः सुशीलो जातः सुपूर्णां भजते विभूतिम्॥ यं पश्यति भृगुतनयो लग्ने जन्मनि कटाक्षमात्रेण। सौरिः कुलाचलकुलिशः कुत्सितकुलजोऽपि राजा स्यात्॥ शान्तात्मा चिरजीवी च सुशीलोऽपि बहुप्रजः। शोभनाङ्गो महाप्राज्ञश्चन्द्रदृष्टो भवेन्नरः॥ द्व्यादिग्रहसंदृष्टं प्रायेण शुभावहं भवति लग्नम्। एकेनापि शुभेन न च पापैरिष्यते सद्भिः॥ लग्ने सर्वग्रहदृष्टे नृपतुल्योऽथवा भवेत्। शुभक्षेत्रे त्विदं वाच्यं पापर्क्षे रिष्टवर्जितम्॥ लग्ने पापग्रहे रोगी दुर्बलः शत्रुपीड़ितः। शुभेक्षिते तु तत्रैव भवेत् परवधूरतः"॥

अथ क्रमेण लग्नदृष्टिफलम्। "स्त्रीजितो मृदुवाक्यश्च स्थूलशेफाश्च शिल्पवित्। सच्छीलश्च सुरूपश्च दुःखी सूर्यादिवीक्षणात्॥ सौम्यग्रहस्य वर्गे जातः सुखभाग्विनीतरुचिराङ्गः। धीधर्मख्यातियुतो विद्वान् दीर्घायुरतिसुभगः॥ जातश्च पापवर्गे दुःखी मलिनोऽलसश्च रोगार्त्तः। प्रैष्यः खलोऽतिदीनो मूर्खस्तेनोऽर्थहीनश्च"॥ इति षड्वर्गफलम्।

युद्धजयार्णवे। यस्मिन्नृक्षे स्थितो भानुस्तदादि त्रीणि मस्तके। मुखे त्रीणि तथा द्वे भे स्कन्धयोर्भुजयोरुभे॥ द्वे हस्तयोः पञ्च हृदि नाभावेकं तथा गुदे। तथा जानुयुगे द्वे द्वे पादयोर्जलधिं न्यसेत्॥ चरणर्क्षेषु यो जातः सोऽल्पायुर्भवति प्रिये। जानुनोर्भ्रमणाशक्तो गुह्ये स्यात् पारदारिकः॥ नाभौ स्वल्पधनो देवि हृदये स्यान्महाधनः। पाण्योर्जातो भवेच्चौरो भुजयोर्दुःखभाजनम्॥ स्कन्धयोर्भोगभोगी च मुखे धर्मरतो धनी। मूर्द्ध्नि राजा भवेद्देवि बालानां जन्मतो

वदेत्" ॥ स्वरोदये। "मुखे शीर्षे शतं वर्षं नवतिः स्कन्दयोर्द्वयोः। पञ्चाशीतिर्हृदि प्रोक्ता हस्तयोः सप्ततिः क्रमात्॥ बाह्वोः षट्षष्टिवर्षाणि गुह्ये षट्षष्टिका क्रमात्। पञ्चाशत् जङ्घयोः पादे निर्धनश्चाल्पजीवनः" ॥ इति जातकचक्रम्।

"चतुरादिभिरेकस्थैः प्रव्रज्यां स्वां ग्रहः करोति बली। बहुवीर्य्यैस्ता बह्व्य प्रथमा वीर्य्याधिकस्यैव"। ग्रहैः प्रव्रज्यायोगो भवति तेषां मध्ये यो बली स स्वां प्रव्रज्यां करोतीत्यर्थः। प्रव्रज्यायोगः। "तापसबुद्धश्रावकरक्तपटाजीविभिक्षुचरकाणाम्। निर्ग्रन्थानाञ्चार्कात् पराजितैः प्रच्युतिर्बलिभिः। रविस्तपस्वी चन्द्रो बुद्धः सन्न्यासीत्यादि ज्ञेयम्। प्रव्रज्यानिर्णयः लग्ने सूर्य्येऽक्षिरोगी शशिनि बलयुते रूपवान् वित्तयुक्तो भौमे व्यङ्गः सुवाग्मी शशधरतनये सर्वशास्त्रार्थवेत्ता। जीवे दाता पवित्रः सुकविरथ गते भार्गवे मण्डलेशः सौरौ कण्डूतिगात्रस्तमसि च नियतं वञ्चितो धर्म्महीनः" ॥ १ ॥ "वित्तेऽर्के चैव रोगी सततगदयुतो रात्रिनाथे धनाढ्यो भौमे नित्यं प्रवासी कृषिसुतधनवान् सोमपुत्रे प्रधानः। जीवे लक्ष्मीप्रमोदी विलसति भृगुजे दर्पितः श्रीनिकेतः। सौरे दीनोऽतिनित्यं तमसि च नियतं चौरिकावित्तजीवी"। २। "भ्रातर्य्यर्के सधर्म्मः स भवति नियतं भ्रातृहा रात्रिनाथे। हिंस्रो भौमेऽनुजानां सपदि बधकरो भूमिकावृत्तिजीवी। सौम्ये सत्यस्य हन्ता भवति सुरगुरौ कामदेवस्वरूपः। शुक्रे राज्याधिकारी रविजदनुजयोर्भ्रातृहन्ता धनाढ्यः"। ३। "अर्के बन्धौ सुदुःखी स्वजनपरिवृतः शीतगौ जानुरोगी। भौमे कुग्रामवासी भवति शशिसुते भ्रातृपुत्रान्वितोऽपि। जीवे रत्नोपजीवी त्रिदशरिपुगुरौ सर्वसौख्याधिकारी। सौरौ गेहे निवासी भवति शशिरिपौ मन्दकर्मा कुचेलः" ॥ ४ ॥ "पुत्रस्थेऽर्के नरोऽसौ प्रथमसुतहतः

सिंहराशौ सुपुत्रः। सोमे सर्वाधिकारी भवति धरणिजे पुत्रशोकाकुलोऽसौ। सौम्ये सुस्थः सुदेहः प्रचुरधनयुतो देवपूज्यः सुपुत्रःकन्यायुक्तो हि शुक्रे रविजदनुजयोः पुत्रपौत्रैर्विहीनः"।५। "षष्ठेऽर्के शत्रुशङ्कारिपुगणरहितः क्षीणचन्द्रे गतायुः। पूर्णे शत्रुञ्च हन्यात् भवति धरणिजे हीनदेहोऽतिदीनः। सौम्ये शास्त्रार्थयुक्तस्त्रिदशपतिगुरौ राज्यसौख्योपभोगी। दैत्याचार्य्येऽतिरोगी रविजदनुजयोः पापभुङ्नित्यदुःखी"।६। "पत्नग्रामर्के च जायापतिरतिविमुखो शीतरश्मौ सुपुत्रः। सुस्थो भूयान्नरोऽसौ भवति धरणिजे हीनभार्य्यश्च नूनम्। सौम्येऽसुस्थः सुदेहस्त्रिदशपतिगुरौ शास्त्रवेत्ता शतायुः। शुक्रे पुत्रप्रमोदी रविजदनुजयोर्हीनभार्य्यश्च हीनः"।७। "मृत्यौ चार्के स्वमृत्युर्भवति च नियतं शीतरश्मौ गतायुःभूमेः पुत्रे च रोगी शशधरतनये शूलरोगी विकर्म्मा। जीवे तीर्थेषु मृत्युर्भवति भृगुसुते धार्मिकस्तीर्थगोऽसौ, सौरौ शूली गतायुर्भवति विधुरिपौ वेदमुक्तो गतायुः"।८। "धर्मे चार्के नरोऽसौ विविधधनयुतः शीतगौ पुण्यकर्मा, लक्ष्मीवान् पुण्यचेता भवति धरणिजे देववित्तापहारी। सौम्ये धर्म्मः सुशीलस्त्रिदशपतिगुरौ राजतुल्यः सुधर्मा, शुक्रे तीर्थानुरागी रविजदनुजयोः पापशीलः सुदुःखी"।९। "कर्मण्यर्के प्रतापी प्रचुरधनयुतः स्त्रीपटौ क्रोधदृष्टिः, सोमे श्लेष्मान्वितोऽसौ विविधधनयुतो भूमिजे बन्धुहीनः। नित्योत्साही च सौम्ये प्रचुरधनयुतो देवपूज्योऽतिमानी,दिव्यस्त्रीशोऽपि शुक्रे नृपतिसमधनः सौरिदैत्ये सुखी च"।१०। "आये चार्के नरोऽसौ पितृधनसहितः शीतगौ चारुशीलो, भौमे नित्यं स रोगी शशधरतनये सर्वदा क्रोधयुक्तः। जीवे श्रीमान् प्रदाता करितुरगपतिर्भार्गवे शास्त्रविज्ञश्च स्त्रीरत्नादियुक्तो रविदनुजयोः क्रूरकर्मा कुचेलः।११। "अर्के संस्थे व्ययेऽसौ पुर-

धनरहितः सर्वभोगी सुदुःखी। सोमे खेदान्वितोऽसौ भवति धरणिजे द्युतरक्तो विबुद्धिः। सौम्ये धर्मार्थकारी दिनकररहिते देवपूज्योऽतिमानी, शुक्रे शास्त्रानुरागी रविजदनुजयोः क्रूरकर्मा कुचेलः"। १२। इति लग्नादिस्थग्रहफलम्। बृहज्जातके। "तीक्ष्णांशुः शशिना समं प्रकुरुते यन्त्राश्मकारं नरं भौमेनाघरतं बुधेन निपुणं सौभाग्य सौख्यान्वितं क्रूरं वाक्पतिनाऽन्यकार्य्यनिरतं शुक्रेण वङ्गायुधैर्लब्धस्वं रविजेन धातुकुशलं भाण्डप्रकारेण वा"। १। "कूटस्त्यासवदन्तपण्यमशिवं मातुः सवक्रः शशीसज्ञः सूनृतवाक्यमर्थनिपुणं सौभाग्यकीर्त्यान्वितम्। विक्रान्तं कुलमुख्यमस्थिरमतिं वित्तेश्वरं साङ्गिराः वस्त्राणां ससितः क्रयादिकुशलं सार्किः पुनर्भूसुतम्। मूलादिस्नेहकूटे व्यवहरति वणिक् बाहुयोद्धा ससौम्ये पृथ्वीध्यक्षः सजीवे भवति नरपतिः प्राप्तविद्यो द्विजो वा। गोपो मल्लोऽथ दक्षः परयुवतिरतो द्यूतकृत् सासुरेज्ये दुःखार्त्तो सत्यसन्धः सवितृतनये भूमिजे निन्दितश्च। सौम्ये रङ्गचरो बृहस्पतियुते गीतप्रियो नृत्यवित् वाग्मी भूगणपः सितेन शशिना मायापटुर्लङ्घकः। सद्विद्यो धनदारवान् बहुगुणः शुक्रेण युक्ते गुरौ। ज्ञेयःस्तब्धकरोऽसितेन घटकृज्जातोऽश्मकारोऽपि वा। असितसितसमागमेऽल्पचक्षुर्युवतिसमाश्रय संप्रबद्धचित्तः। भवति च लिपिचित्रपुस्तकवेत्ता कथितफलैः पुरतोऽपरेऽपि कल्प्याः"। इति द्विग्रहयोगफलम्। "नानागमग्रन्थविशेषबोध व्याख्यातनामा नृपपूजितश्च"। "साधुः सधर्मा भवति लग्नस्थिते चन्द्रसुते चिरायुः। तुङ्गिफलमाह "सुविक्रमः सत्यवचाः सुरूपः प्रियंवदो धर्म्मपरो नरेन्द्रः। सौम्ये तु तुङ्गोपगते विलग्ने विलक्षणः कान्तिधरो गरिष्ठः। रुचिरतर प्रमदाजनरक्तः शुक्रे निर्मलविद्यायुक्तः। लग्नगते

रुचिराङ्गजमूर्त्तिः धर्म्मरतः पृथुमाङ्गसवृत्तिः। प्रचण्डरूपः पुरुषः प्रलापी प्रजाधिपः स्वल्पवचाः सहिष्णुः पित्तप्रधानः प्रणतप्रियश्च बुधे विलग्ने भवति प्रजातः। शुभं वर्गोत्तमे जन्म वेशिस्थाने च सद्ग्रहे। अशून्येषु च केन्द्रेषु कारकर्त्ते ग्रहेषु च"। सत्याचार्य्यः वर्गोत्तमे कुले मुख्यकारकर्त्ते प्रागुक्तकारकर्त्ते। "धर्म्माधिपः पश्यति धर्म्मभावं लग्नाधिपः पश्यति चेद्विलग्नं मृत्युं यदा पश्यति मृत्युनाथस्तदा तु तीर्थे नियतं मृतिः स्यात्। षष्ठाष्टमकण्टकगोगुरुरुच्चे भौमसंज्ञलग्ने वा। शेषैर्बलैर्जन्मनि मरणे वा मोक्षगतिमाहुः"। जन्ममरणकालयोर्मोक्षनिर्णयः। "त्रयो ग्रहा यदैकत्र राशिलग्नविवर्जिता। भुक्त्वा च विविधान् भोगान् म्रियते जाह्नवीजले। सूर्य्यादिभिर्निधनगैर्हुतवहसलिलायुधज्वरामयजः। तृट्क्षुत्कृतश्च मृत्युः परदेशादौ चरादिभे निधने निधनस्थग्रहबलेन निर्याणनिर्णयः। यो बलवान्निधनं पश्यति तद्धातुकोपजो मृत्युः। निधनयुगाधिकविंशद्रेक्काणेशस्य मृत्युबीजम्"। ग्रहधातवश्च। "स्नाय्वस्थ्यसृक्त्वगथ शुक्ररसे च मज्जा मन्दार्कचन्द्रबुधशुक्रसुरेज्यभौमाः" स्नायुर्वस्तिबन्धनम्। "रविः पित्तौ शशी वातकफात्मा पैत्तिकः कुजः। वातपित्तकफौ ज्ञश्च कफौज्यो भृगुनन्दनः। कफवातात्मको ज्ञेयः शनिर्वातात्मकस्तथा"। बलवद्ग्रहदर्शनादिभिर्निर्याणज्ञानम्। "पापद्रेक्काणे दाहो द्वाविंशे शुभद्रेक्काणे क्लेदः। शेषो मिश्रद्रेक्काणे विष्ठान्त्यो व्याड़वर्गेषु"॥ अग्न्यादिनाशवपरिमाणज्ञानम्। "व्याड़ाः कुम्भालिमध्याद्याः कर्किमीनान्त्यसम्भवौ। सिंहाद्यन्त्यौ मृगाद्यश्च तुला मध्यान्त्यसम्भवौ"॥ व्याडद्रेक्काणाः। "स्त्रीपुंसोर्जन्मफलं तुल्यं किन्त्वत्र चन्द्रलग्नस्थम्। तद्बलयोगाद्वपुराकृतिः सौभाग्यमस्तमये॥ बाल्ये विधवा भौमे पतिसंत्यक्ता दिवा-

करेऽस्तगे सौरे पापैर्दृष्टे कन्यैव जरां समुपयाति। क्रूरैरस्ते विधवा पुनर्भूः शुभाशुभैर्नारी॥ क्रूरेऽष्टमेऽपि विधवा सत्स्वर्थे सा स्वयं म्रियते। ओजे लग्नेन्द्वोः स्त्री दुःशीला शीलसंयुता युग्मे॥ शून्येऽबले कदर्थ्यः पतिश्चरे हस्ते प्रवासी स्यात्"॥ इति स्त्रीणां शुभादि। भविष्ये। "यस्य पाणितले रेखा कनिष्ठामूलमुत्थिता। गतामूलं प्रदेशिन्याः सजीवेच्छरदांशतम्॥ दक्षिणे तु कराङ्गुष्ठे यवो यस्य च विद्यते। सर्वविद्या प्रवक्ता च स भवेन्नात्र संशयः॥ चिपिटा विरला शुष्का यस्याङ्गुल्यो भवन्ति वै। स भवेद्दुःखितो नित्यं बलहीनश्च वै गुरुः॥ श्वेतैर्नखैर्विरुक्षैश्च पुरुषा दुःखभागिनः। कुशीलाः कुनखा ज्ञेयाः कामभोगविवर्जिताः॥ नखैस्ताम्रैस्तथैश्वर्य्यं पुष्पितैः सुभगो भवेत्। चतुरस्रमुखो धूर्त्तो मण्डलास्या शठा भवेत्॥ अप्रजा वाजिवक्त्रा च महावक्त्रा च दुर्भगा। अधना स्त्री कृशग्रीवा दीर्घग्रीवा च बन्धकी॥ ह्रस्वग्रीवा स्थिरापत्या स्थूलग्रीवा च दुःखिता। स्पष्टं रेखात्रयं यस्याः ग्रीवायां चतुरङ्गुलम्॥ मणिकाञ्चनरत्नाढ्यं सा दधाति विभूषणम्"॥ अन्यत्र तु। "तातस्यैव सुतः प्रोक्तो मेलने मध्यरेखयोः। पृथक्त्वे जारजो ज्ञेयो लक्षणैरिति निश्चितम्॥ कनिष्ठाङ्गुलिमूले तु रेखयोर्दारनिर्णयः। रेखाभिर्बहुभिः क्लेशं स्वल्पाभिर्धनहीनता॥ रक्ताभिः सुखमाप्नोति कृष्णाभिः प्रेष्यतां व्रजेत्। तर्जनीमूलगामिन्यां रेखायां छिद्रता यदि॥ श्वापन्मूषिकमार्जारसर्पदष्टो भविष्यति"॥ विष्णुधर्मोत्तरे। "दृष्टिः प्रसन्ना मधुरा च वाणी मत्तेभतुल्या च गति प्रशस्ता। एकैककूपप्रभवाश्च रोमाः सकृत्क्षुतं हास्यमनुत्तमञ्च॥ श्रान्तस्य यानमशनञ्च बुभुक्षितस्य पानं तृषा परिगतस्य भयेषु रक्षा। एतानि यस्य पुरुषस्य भवन्ति काले तं धन्यमाहुरिह

वै पुरुषं द्विजेन्द्राः॥ पतिप्रिया पतिप्राणा या नारी पतिदेवता। अलक्षणापि सा ज्ञेया सर्व्वलक्षणसंयुता॥ संक्षेपतस्ते कथितं मयैतद् यल्लक्षणं चारु नितम्बिनीनाम्। प्रायो विरूपासु भवन्ति दोषा यत्राकृतिस्तत्र गुणा वसन्ति"॥ इति देहलक्षणम्।

अथ जातकर्म्म। मनुः "प्राङ्नाभिवर्द्धनात् पुंसो जातकर्म्म विधीयते। मन्त्रवत्प्राशनञ्चास्य हिरण्यमधुसर्पिषाम्"॥ नाभिवर्द्धनात् नाभिसम्बद्धनाडीच्छेदनात्। वर्द्धनं छेदनेऽथ द्वे इत्यमरः। वैजवापः। "जन्मनोऽनन्तरं कार्य्यं जातकर्म्म यथाविधि। दैवादतीतः कालश्चेत् अतीते सूतके भवेत्"॥ एवञ्च "मृदु ध्रुवचरक्षिप्रभेष्वेषामुदयेऽपि वा। गुरौ शुक्रेऽथवा केन्द्रे जातकर्म च नाम च"॥ इति ज्योतिःशास्त्रोक्तं दैवात्कालोत्कर्षे वेदितव्यं अनुत्कर्षेऽपि नक्षत्रादि नियमो न नैमित्तिकस्य निमित्तान्तरभावित्वेन निरवकाशत्वात्।

अथ षष्ठीपूजा। विष्णुधर्म्मोत्तरे। "सूतिकावासनिलया जन्मदा नाम देवताः। तासां यागनिमित्तार्थं शुद्धिर्जन्मनि कीर्त्तिता॥ षष्ठेऽह्नि रात्रियागन्तु जन्मदानाञ्च कारयेत्। रक्षणीया सदा षष्ठी निशा तत्र विशेषतः। राम! जागरणं कार्य्यं जन्मदानां तथा बलिः"॥ रामेति सम्बोधनम्। तत्राशौचान्तरदोषोऽपि नास्ति। "अशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत्। कर्त्तुस्तात्कालिकी शुद्धिः पूर्व्वाशौचाद्विशुध्यति"॥ इति प्रजापतिवचनात्। पुत्रजन्मेति श्रवणात् पितुरेवाशौचाभावः न तु मातुः कर्त्तुरिति पुंलिङ्गनिर्देशाच्च। कारयेदिति अन्यगोत्रजाभिप्रायेण। तत्रादौ विनायकादिसहितषोडशमातृकापूजनम्। तथा च कृत्यचिन्तामणौ। "छागजागरणं कार्य्यं खड्गो धार्य्यः समीपतः। आवाह्य पूजयेद्देवीं

गणेशं मातरं शिविम्" ॥ देवीं षष्ठीं गिरिं मन्थानदण्डम् । मातृनामान्याह वसुचन्द्रपरिशिष्टम् । "गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया । देवसेना स्वधा स्वाहा मातरो लोकमातरः ॥ शान्तिः पुष्टिर्धृतिस्तुष्टिरात्मदेवतया सह । आदौ विनायकः पूज्योऽन्ते च कुलदेवता" ॥ तासामभिधाय भविष्ये "पूज्याश्चितेऽथवा कार्य्या वरदा भयपाणयः" । मातर इति सर्वासां विशेषणम् अतएव गौर्य्यै मात्रे नम इत्यादिप्रयोगः । एता मातरो लोकमातरो ज्ञेयाः अतएव तयोर्बहुत्वेन निर्देशः । गणेशपूजायां प्रार्थनमन्त्रो यथा । "सर्वविघ्नहरो देव एकदन्तो गजाननः । षष्ठीगृहेऽर्चितः प्रीत्या शिशुं दीर्घायुषं कुरु ॥ आयाहि वरदे देवी महाषष्ठीति विश्रुता । शक्तिरूपेण मे पुत्रं रक्ष जागरवासरे" ॥ इति षष्ठ्या आवाहनम् । ततः षष्ठीं पूजयेत् । "गौर्य्याः पुत्रो यथा स्कन्दः सदा संरक्षितस्त्वया । तथा ममाप्ययं बालो रक्ष्यतां षष्ठि ते नमः" ॥ इति त्रिःपूजयेदिति भोजराजः । "गणेशश्चैव नन्दा च पूतनामुखमण्डिका । विवानिका शकुनिका शुष्कनन्दां च जम्भिका ॥ आचार्य्यका रेवती च पिलिपिच्छा ततः परम् । स्कन्दा च द्वादशैतेऽश्वर्गा रक्षार्थं मातृका ग्रहाः" ॥ कृत्यचिन्तामणौ स्तुतिः । "जय देवि जगन्मातर्जगदानन्दकारिणि । प्रसीद मम कल्याणि नमोऽस्तु षष्ठि देवि ते" ॥ वरप्रार्थनं "रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भगवति देहि मे । पुत्रान् देहि धनं देहि सर्वान् कामांश्च देहि मे ॥ धात्रि त्वं कार्त्तिकेयस्य महाषष्ठीति विश्रुता । त्वत्प्रसादादविघ्नेन चिरं जीवतु बालकः ॥ देवतानामृषीणाञ्च सर्वेषां हितकारिणि । समर्पितं रक्ष पुत्रं महाषष्ठि नमोऽस्तु ते" ॥ इत्यनेन बालं व्यजनस्थं कृत्वा समर्पयेत् । मन्थानदण्डं पूजयेत् ।

"मन्थानमन्दरोऽसि त्वं मथितः सागरस्त्वया । तथा ममापि पुत्रस्य मन्थविघ्नं नमोऽस्तु ते" ॥ ततः षट्कृत्तिकाः पूजयेत् । ताश्च । "शिवा सम्भूतिनाम्नी च कीर्त्तिः सन्ततिरेव च । अनसूया क्षमा चैव षड़ेताः कृत्तिकाः स्मृताः" ॥ मार्कण्डेयपुराणम् । "अग्न्यम्बुपशुशून्ये च निर्यूपे सूतिकागृहे । अदीपशस्त्रमुषले भूतिसर्षपवर्जिते ॥ अनुप्रविश्यया जातमपहृत्यात्मसम्भवम् । क्षणप्रसविनी बालं तत्रैवोत्सृज्यते द्विज ॥ सा जातहारिणी नाम सुघोरा पिशिताशना । तस्मात् संरक्षणं कार्य्यं यत्नतः सूतिकागृहे" ॥ यूपो बद्धछागस्तम्भः पशुश्छागः छागजागरणं कार्य्यमित्येकवाक्यत्वात् । पाद्मे "पायसं सर्पिषा मिश्रं द्विजेभ्यो यः प्रयच्छति । गृहं तस्य न रक्षांसि धर्षयन्ति कदाचन" ॥

अथ नामकरणम् । श्रुतिः । "एकादशे द्वादशे वाह्नि पिता नाम कुर्य्यादिति । एकादशे इति मुख्यः कल्पः असमर्थस्य क्षेपायोगादिति न्यायात् अतएव भट्टभाष्ये श्रुतिः । "न श्वः समुपासीत को हि समर्थस्य श्वो वेदेति" लिङ्गपुराणे । "श्वः कार्य्यमद्य कर्त्तव्यं पूर्वाह्णे चापराह्णिकम् । न हि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य न वा कृतम्" ॥ एतच्च परपरप्रशस्ततरतमकालोदितकर्मेतरकर्मपरम् । गोभिलः । "जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे संवत्सरे वा नामधेयकरणमिति" व्युष्टे गते । गर्गः । "आदौ घोषवदक्षरं यवरलान्मध्ये पुनः स्थापयेदन्ते दीर्घं विसर्जनीयरहितं नाम प्रयत्नात् कृतम् । ऋक्षे तिष्यकराश्विसौम्यवसुभे चित्रानुराधोत्तरे पौष्णे चादितिरोहिणीषु शुभकृत् पुंसां समैरक्षरैः" ॥ दीपिकास्वरसात् स्वातौ शतभिषा श्रवणा अत्र ग्राह्या गोभिलसम्मतं पूर्वार्द्धं तेन नारायणजनार्दनादि नाम कुर्य्यात् । यत्त

नामकरणम्। "कुलदेवता नक्षत्राभिसम्बन्धं पिता नाम कुर्य्यादन्यो वा कुलवृद्धः" इति कल्पतरुधृतशङ्खलिखितवचने नाभिवादनीयं नामधेयं कल्पयित्वा देवताश्रयं नक्षत्राश्रयं गोत्राश्रयमप्येक इति गोभिलसूत्रेणोपनयनकाले च नक्षत्राभिसम्बन्धेन नामाभिधानं तत्शतपदचक्रानुसारात् स्वनक्षत्रपदानुसारात् ज्ञेयम्। पाश्चात्यानां तथैव व्यवहारः। यत्र तु न तथाकृतं तत्र नामाक्षरानुसारनक्षत्रादपि फलं ज्ञेयम्। अत्र कुलवृद्ध इति दर्शनात् संस्कारान्तरे तथैव व्यवहारः। मनुः। "स्त्रीणां सुखोद्यमक्रूरं विस्पष्टार्थं मनोहरम्। माङ्गल्यं दीर्घवर्णान्तमाशीर्वादाभिधानवत्"॥ गोभिलः। अयुग्मान्तं स्त्रीणामिति। यथा यशोदा वसुदादि। नारायणपद्धतौ। "नामकरणं स्थिरलग्ने केन्द्रपञ्चनवमस्थिते सौम्ये। त्र्यायषष्ठसमधिष्ठितपापे जीवशुक्रशशिसौम्यदिनेषु"॥ प्रसादप्राप्तनाम्नाप्येवम्। व्यासः। "न स्नायादुत्सवेऽतीते निर्वर्त्त्यापि च मङ्गलम्। अनुव्रज्य सुहृद्बन्धून् पूजयित्वेष्टदेवताः"॥

अथ निष्क्रामणम्। विष्णुधर्मोत्तरे। "चतुर्थे मासि कर्त्तव्यं शिशोर्निष्क्रमणं गृहात्"। दीपिकायाम्। "आर्द्राधोमुखवर्जितानुपहते हृक्षेष्वरिक्ते तिथौ वारे भौमशनीतरे घटतुलाकन्यामृगेन्द्रोदये। सद्दृष्टेऽथ चतुर्थमासि यदि वा मासे तृतीये विधावक्षीणे शुभदे शिशोरभिनवं निष्क्रामणं कारयेत्"। अधोमुखानि भानि च। "अश्लेषवह्नियमपित्रविशाखयुक्तं पूर्वात्रयं शतभिषा च नवाप्युडूनि। एतान्यधोमुखगणानि शिवानि नित्यं विद्यार्घभूमिखननेषु च भूषितानि"। चतुर्थमासीति ऋग्वेदियजुर्वेदिनोः। यथाह विष्णुः। "चतुर्थमास्यादित्यदर्शनमिति"। शौनकोऽपि। "चतुर्थे मासि पुष्यर्क्षे शुक्ले निष्क्रमणं शिशोः"। पारस्करः। "चतुर्थे

मासि निष्क्रमणिका सूर्य्यमुदीक्षयति तच्चक्षुरितीति"। मासे तृतीय इति तु छन्दोगानां गोभिलेन जननान्तरं तृतीयशुक्लपक्षतृतीयायां चन्द्रदर्शनरूपनिष्क्रामणविधानात् यथा गोभिलः। जननाद् यस्तृतीयो ज्यौत्स्नस्तत्तृतीयायामित्यादि। ज्यौत्स्नः शुक्लपक्षः। अत्रैव कृत्यचिन्तामणिः। "तस्मात् स्वस्वविधानतोऽर्कशशिनोरर्घ्यं शिशुं दापयेत्"। अर्घ्यमन्त्रश्च। "एहि सूर्य्य सहस्रांशो तेजोराशे जगत्पते। अनुकम्पय मां भक्तं गृहाणार्घ्यं दिवाकर"॥ चन्द्रार्घ्यमन्त्रश्च। "क्षीरोदार्णवसम्भूत अत्रिनेत्रसमुद्भव। गृहाणार्घ्यं शशाङ्केदं रोहिण्या सहितो मम"॥

अथान्नप्राशनम्। "ततोऽन्नप्राशनं षष्ठे मासि कार्य्यं यथाविधि। अष्टमे वाथ कर्त्तव्यं यद्वेष्टं मङ्गलं कुले"॥ षष्ठ इति मुख्यः कल्पः प्रागुक्तन्यायात्। कृत्यचिन्तामणौ। "अन्नस्य प्राशनं कार्य्यं मासि षष्ठेऽष्टमे बुधैः। स्त्रीणान्तु पञ्चमे मासि सप्तमे प्रजगौ मुनिः॥ द्वादशीं सप्तमीं नन्दां रिक्तासु पञ्चपर्वसु। बलमायुर्यशो हन्यात् शिशूनामन्नभक्षणम्"॥ भुजबलभीमे। "षष्ठे मासि निशाकरे शुभकरे रिक्तेतरे वा तिथौ सौम्यादित्यसितेन्दुजीवदिवसे पक्षे च कृष्णेतरे। प्राजेशादिति पौष्णवैष्णवयुगैर्हस्तादि षट्कोत्तरैराग्नेयाप्पतिमित्रभैश्च नितरामन्नादि भक्ष्यं शुभम्"॥ युगैरिति प्राजेशादौ प्रत्येकं सम्बध्यते। तथात्रापि तिथ्यादिविद्धमृक्षं विवर्जयेत्॥ वृषद्वन्द्वधनुर्मीनकन्यालग्नेऽन्नभक्षणम्। त्रिकोणाष्टकयुक्तान्यग्रहा यद्वत्तथा फलम्॥ दुष्टः शशधरो लग्नात् षष्ठाष्टस्थोऽन्नभक्षणे"॥ मार्कण्डेयः। "देवता पुरतस्तस्य पितुरङ्कगतस्य च। अलङ्कृतस्य दातव्यमन्नं पात्रे च काञ्चने॥ मध्वाज्यकनकोपेतं प्राशयेत् पायसं ततः। कृतप्राशनमुत्सङ्गे मातु-

धौतन्तु तं न्यसेत् ॥ देवाग्रतोऽथ विन्यस्य शिल्पभाण्डानि सर्व्वश: । शास्त्राणि चैव शस्त्राणि तत: पश्येत्तु लक्षणम् ॥ प्रथमं यत् स्पृशेद्बाल: शिल्पभाण्डं स्वयं तथा । जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भविष्यति" ॥

अथ नवान्नम् । दीपिकायाम् । "त्रयोदशीं जन्मदिनञ्च नन्दां जन्मर्क्षतारां सितवासरञ्च । त्यक्त्वा हरौज्येन्दुकरान्त्यमैत्रध्रुवेषु च श्राद्धविधानमिष्टम् ॥ भेषूग्रा हि शिवान्येषु विभौमशनिवासरे । अन्नप्राशनवत् कुर्य्यान्नवान्नफलभोजनम् ॥ सूर्य्ये चैव विशाखगे स्मरतिथौ पापे त्रिजन्मान्विते नन्दा मन्दमहीजकाव्यदिवसे पौषे मधौ कार्त्तिके । भेषूग्रा हि शिवेषु विष्णुशयने कृष्णे शशिन्यष्टमे श्राद्धं भोजनकं नवान्नविहितं पुत्रार्थनाशप्रदम् । ज्येष्ठाश्लेषार्द्रगे सूर्य्ये मृगनेत्रानिशात्मके । नवान्नैर्भोजनं श्राद्धं जन्मचन्द्र तिथौ न च" ॥ ब्रह्मपुराणे । "प्राश्नीयाद्दधिसंयुक्तं नवं विप्राभिमन्त्रितम्" ॥

अथ जन्मतिथि: । "जन्मर्क्षयुक्ता यदि जन्ममासे यस्य ध्रुवं जन्मतिथिर्भवेच्च । भवन्ति संवत्सरमेव तावत् नैरुज्यसम्मानसुखानि तस्य । कृतान्तकुजयोर्वारे यस्य जन्मतिथिर्भवेत् ॥ अनृक्षयोगसंप्राप्तौ विघ्नस्तस्य पदे पदे । तस्य सर्व्वौषधिस्नानं ग्रहविप्रसुरार्चनम् ॥ सौरारयोर्दिने मुक्ता देयानृक्षे तु काञ्चनम् । जन्मन्यृक्षे यदि स्यातां वारौ भौमशनैश्चरौ । मास: सकल्मसो नाम मनो दु:खप्रदायक:" ॥

अथ चूडाकरणम् । मनु: । "चूडाकर्म्म द्विजातीनां सर्व्वेषामेव धर्म्मत: । प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं स्मृतिचोदनात्" ॥ मात्र प्रागुक्तन्यायात् प्रथमाब्दस्य प्राधान्यं किन्तु तृतीयाब्दस्य । तथा च "चूडाकार्य्यं तृतीयाब्द: सर्व्वगृह्यादिसम्मत: तत्कालेऽशौचवृद्धस्य मुख्य इत्यवगम्यते" ॥ शङ्ख-

लिखितौ । "तृतीयवर्षे चूड़ाकरणं पञ्चमे वा" इति । ज्योतिषे । अयुग्माब्दे चूड़ाभौमशनैश्चरे । "अर्केन्दुकालशुद्धौ च जन्ममासेन्दुभेतरे । रिक्ता दर्शाष्टमी षष्ठी प्रतिपद्वर्जिते सिते"॥ दक्षोऽपि सामान्यतो दोषमाह । "षष्ठ्यष्टमी पञ्चदशी उभे पक्षे चतुर्दशी । अत्र सन्निहितं पापं तैले मांसे भगे क्षुरे॥ मेषसिंह तुला कर्किवृश्चिकेतरलग्नके । श्रवणादित्रयस्वाती चित्रा पुष्याश्विचन्द्रभे । आदित्यरेवतीहस्ताज्येष्ठामूले च चौड़कम् । पौष्णाश्विपुष्यवसुवामवासुदेवब्रह्मार्कचन्द्रवरुणादितिचित्रभेषु । वारेषु सोमबुधवाक्पतिभार्गवाणां क्षौरं करोति कुशलं खलु मानवानाम्" इति वचनात् रोहिण्यामपि चूड़ाकरणम् । अत्रापि तिथ्यादिविद्धमृक्षं वर्जयेत् । "सूर्य्ये दक्षिणमार्गगामिनि हरौ सुप्ते निरंशे रवौ क्षीणे शीतरुचौ महीजयमयोर्वारे निशासन्ध्ययोः । भुक्तेऽभ्यक्ततनौ निषिद्धसमयेऽलङ्कारयुक्ते शिशौ क्षौराद्रोगभयं वदन्ति यवना मृत्युं तथान्ये जगुः" ॥ राजमार्त्तण्डे । "मानं हरेत् क्षौरमिहायुषोऽर्कः शनैश्चरः पञ्च कुजस्तथाष्टौ । आचार्य्य भृग्विन्दु बुधाः क्रमेण दद्युर्दशैकादशसप्तपञ्च" ॥ जीवादिवारे क्षौरं प्रशस्तम् । भोजराजः । "उत्तरशिखिसन्निधाने च चूड़ाकरणं जगुः शुभं यवनाः । चैत्रे मासि दिवाकरवारे वर्त्मनि सवितरि दिवाकरवारविनिर्मोके तु" ॥ गर्गः । "जन्मर्क्षे जन्ममासे च युग्ममासे च वत्सरे । न कुर्य्यात् प्रथमं क्षौरं विशेषाच्चैत्रपौषयोः"॥ ज्येष्ठपुत्रकन्ययोस्तु ज्यैष्ठदशाहाभ्यन्तरे चूड़ानिषेधो विवाहप्रकरणे उक्तः । नित्यक्षौरे तु राजमार्त्तण्डः । "न स्नानमात्रगमनोत्सुकभूषितानामभ्यक्तभुक्तरणकालनिरासनानाम् । सन्ध्या-निशा-शनि-कुजार्कदिनेषु रिक्ते क्षौरं हितं प्रतिपदह्नि न चापि रिष्याम् ॥ प्राचीमुखः सौम्यमुखोऽपि भूत्वा कुर्य्यान्नरः क्षौरमनुत्कटस्थः ।

उत्तरात्रितययाम्यरोहिणीरौद्रसर्पपितृभेषु चाग्निभे। श्मश्रुकर्म्मसकलं विवर्जयेत् प्रेतकार्य्यमपि बुद्धिमान्नरः। प्रेतकार्य्यं पतितप्रेतसम्प्रदानकदासी घटदानविषयकम्। अन्यथा वक्ष्यमाणवचनविरोधः स्यात् "चन्द्रशुद्धिर्यदा नास्ति तारायाश्च विशेषतः। अक्षौरिभेऽपिकर्त्तव्यं चन्द्रचन्द्रजयोर्दिने॥ मानं क्षौरे हन्ति गुरुः शुक्रं शुक्रो धनं रविः। आयुरङ्गारको हन्ति सर्वं हन्ति शनैश्चरः"॥ श्रीपतिरत्नमालायाम्। "आज्ञया नरपतेर्द्विजन्मनां दारकर्म्ममृतसूतकेषु च। बन्धमोक्षमखदीक्षणेष्वपि क्षौरमिष्टमखिलेषु चोडुषु॥ देवकार्य्ये पितृश्राद्धे रवेरंशपरिक्षये। क्षुरिकर्म्म न कुर्वीत जन्ममासे च जन्मभे"॥ वृद्धगार्ग्यः। "केशवमानन्तपुरं पाटलिपुत्रं पुरीमहिच्छत्राम्। दितिमदितिञ्च स्मरतां क्षौरविधौ भवति कल्याणम्"॥ अत्र क्रमो वराहपुराणे। "श्मश्रुकर्म कारयित्वा नखच्छेदमनन्तरम्"।

अथ कर्णवेधः। माण्डव्यबृहद्राजमार्त्तण्डकृत्यचिन्तामणिषु। "यदापत्यद्वयं तिष्ठेत् सम्भवोऽप्यपरस्य च। षट्कर्णं तं विजानीयात् गर्हितञ्च त्रयस्य च॥ इत्याशङ्क्य द्वयोर्मध्ये शुद्धिर्यस्याश्च वत्सरे। कर्णवेधौ हितस्तस्य नात्र ज्येष्ठविचारणा॥ षट्कर्णोत्पत्तिमाशङ्क्य भानोः शुद्धा समेऽपि च। कर्णौ वेध्यौ न दोषः स्यात् अन्यथा मरणं भवेत्"॥ राजमार्त्तण्डे "न जन्ममासे न च चैत्रपौषे न युग्मवर्षे न हरौ प्रसुप्ते। रवौ च दुष्टे न च कृष्णपक्षे न जन्मभे कर्णविधिः प्रशस्तः"॥ दीपिकायाम्। "नो जन्मेन्दुभमास सूर्य्यरविजक्ष्माजाहसुप्ताच्युते शस्तोऽर्के लघुयुग्मविष्णुमृदुभे स्वात्युत्तरादित्यभे। सौम्यैस्त्र्यायत्रिकोणकण्टकगतैः पापैस्त्रिलाभारिगैरोजोऽब्दे श्रुतिवेध इज्यसितभे लग्ने तु काले शुभे"॥ अत्रापि तिथ्यङ्गादिविद्धमृक्षं वर्जयेत्। गर्गः। "कर्णवेधव्रते कुर्य्यादुदग्मार्गस्थिते रवौ। दक्षिणाशास्थिते भानौ नैव कुर्य्याद्विचक्षणः"॥

अथ विद्यारम्भः। विष्णुधर्मोत्तरे। “संप्राप्ते पञ्चमे वर्षे अप्रसुप्ते जनार्दने। षष्ठीं प्रतिपदञ्चैव वर्जयित्वा तथाष्टमीम् ॥ रिक्तां पञ्चदशीञ्चैव सौरिभौमदिनं तथा। एवं सुनिश्चिते काले विद्यारम्भन्तु कारयेत् ॥ पूजयित्वा हरिं लक्ष्मीं देवीञ्चापि सरस्वतीम्। स्वविद्या सूत्रकारांश्च स्वाञ्च विद्यां विशेषतः” ॥ नमस्ते वहुरूपाय विष्णवे परमात्मने। स्वाहेत्यनेन हरिं त्रिःपूजयेत्। “भद्रकाल्यै नमो नित्यं सरस्वत्यै नमो नमः। वेदवेदान्तवेदाङ्गविद्यास्थानेभ्य एव च” स्वाहेति ब्रह्मपुराणीयेन च त्रिःपूजयेत्। लिखनविधिमाह नन्दिपुराणम्। ‘शुभे नक्षत्रदिवसे शुभे वारे दिनग्रहे। लेखयेत् पूज्यदेवेशान् रुद्रब्रह्मजनार्दनान्॥ पूर्वदिग्वदनो भूत्वा लिपिज्ञो लेखकोत्तमः। निरोधो हस्तबाह्वोश्च मसीपत्रावधारणे” ॥ मत्स्यपुराणञ्च। “शीर्षोपेतान् सुसम्पूर्णान् समश्रेणिगतान् समान्। अक्षरान् विलिखेद् यस्तु लेखकः स परः स्मृतः” ॥ नाधीयीतेत्यनुवृत्तौ मनुः। “रुधिरे च स्रुते गात्रात् शस्त्रेण च परीक्षते”। रुधिरस्रवं विना शस्त्रेण क्षतमात्रेऽपि। दीपिकायाम्। “लघुचरशिवमूलाधोमुखत्वष्टृपौष्णशशिषु च हरिवोधे शुक्रजीवार्कवारे। उदितवति च जीवे केन्द्रकोणेषु सौम्यैरपठनदिनवर्जं पाठयेत् पञ्चमेऽब्दे’ ॥ मदनपारिजाते। “विद्यारम्भे गुरुः श्रेष्ठो मध्यमौ भृगुभास्करौ। मरणं शनिभौमाभ्यामविद्या वुधसोमयोः” ॥ “विद्यारम्भः सुरगुरुसितज्ञेष्वभीष्टार्थदायी कर्त्तुश्चायुश्चिरमपि करोत्यंशुमान् मध्यमोऽत्र। नीहारांशौ भवति जड़ता पञ्चता भूमिपुत्रे छायासूनावपि च मुनयः कीर्त्तयन्त्येव माद्याः ॥ रवेर्गुरोर्भृगोर्लग्ने तत् स्थेऽर्केऽपीन्दुवृद्धितः। गुर्वर्केन्दूडुशुद्धौ च विद्यारम्भः प्रशस्यते’ ॥ वृहस्पतिः। “प्राङ्मुखो गुरुरासीनो वरुणाभिमुखं शिशुम्।

अध्यापयेच्च प्रथमं द्विजाशीर्भिः प्रपूजितम् ॥ कूर्म्मपुराणम् । "स्वाध्यायस्य त्रयो भेदा वाचिकोपांशुमानसाः" । शिवधर्मे । "संस्कृतैः प्राकृतैर्वाक्यैर्यः शिष्यमनुरूपतः । देशभाषाद्युपायैश्च बोधयेत् स गुरुः स्मृतः" ॥ आदिः ग्रन्थकरणादिः नन्दिपुराणम् । "प्रशस्तशब्दसंयोगे कुर्य्याद्यतिविरामणम्" । विरामणं तद्दिनपाठसमाप्तिम् । "समाप्ते वाचकाभीष्टं कुर्य्यादेव विचक्षणः । सुश्रुतं सुव्रतं भूयादस्तु व्याख्या तु नित्यदा ॥ लोकः प्रवर्त्ततां धर्म्मे राजा चास्तु सदा जयी । धर्म्मवान् धनसम्पन्नो गुरुश्चास्तु निरामयः ॥ इति प्रोच्य यथायातं गन्तव्यञ्च विभावितैः । शिष्टैः परस्परं शास्त्रं चिन्तनीयं विचक्षणैः ॥ कथावस्तुप्रसङ्गेन नानाव्याख्यानसम्भवैः । युक्तिभिश्च स्मरेद्व्याख्यां चिह्नैश्चापि स्वयं कृतैः ॥ एवं दिने दिने व्याख्यां शृणुयान्नियतो नरः" ॥ विष्णुपुराणम् । "पुत्रैरध्यापिता ये च ते पतन्ति स्वभोजने" । सूत उवाच । "प्रागल्भ्यहीनस्य नरस्य विद्या शस्त्रं यथा कापुरुषस्य हस्ते । न तुष्टिमुत्पादयते शरीरे अन्धस्य दारा इव दर्शनीयाः" ॥ लिङ्गपुराणम् । "यो गुरुं पूजयेन्नित्यं तस्य विद्या प्रसीदति । तत्प्रसादेन यस्मात् स प्राप्नुते सर्व्वसम्पदः" ॥ दुर्वासाः । "सन्ध्यायां गर्जिते मेघे शास्त्रचिन्तां करोति यः । चत्वारि तस्य नश्यन्ति आयुर्विद्यायशो बलम्" ॥ अधीतस्यार्थिने दानमावश्यकम् । तथा च श्रुतिः । "योऽधीत्यार्थिभ्यो विद्यां न प्रयच्छेत् स कार्य्यहा स्यात् श्रेयसो द्वारमावृणुयात्" । इति । तद्दानञ्च । अध्यापनेन व्याख्यया विलिख्यार्पणेन च सम्भवतीत्यतोधीमद्भिर्निर्बन्धः क्रियते । तथा च विष्णुपुराणम् । "प्राणिनामुपकाराय यदेवेह परत्र च । कर्म्मणा मनसा वाचा तदेव मतिमान् भजेत्" ॥ बृहस्पतिरपि । "अज्ञानतिमिरोपेतान्

सन्देहपटलान्वितान् । निरामयान् यः कुरुते शास्त्राञ्जनशलाकया ॥ इह कीर्त्तिं राजपूजां लभते सद्गतिञ्च सः । षाण्मासिकेऽपि समये भ्रान्तिः संजायते यतः ॥ धात्राक्षराणि सृष्टानि पत्रारूढ़ान्यतः पुरा । उपदेष्टानुमन्ता च लोके तुल्यफलौ स्मृतौ” ॥ एवञ्च । एकलव्येनानुपदेष्टापि द्रोणाचार्य्यो गुरुः कृतः । अतो ग्रन्थकर्त्तुः सुतरां गुरुत्वम् । यथा महाभारते । “अरण्यमनुसंप्राप्य कृत्वा द्रोणं महीमयम् । तस्मिन्नाचार्य्यवृत्तिञ्च परमामास्थितस्तदा ॥ इष्वस्त्रे योगमातस्थे परं नियममागतः” ॥ शङ्खलिखितौ । “न वेदमनधीत्यान्यां विद्यामधीयीतान्यत्र वेदाङ्गस्मृतिभ्यः” ॥ अङ्गानि च “शिक्षाकल्पौ व्याकरणं छन्दो ज्योतिषमेव च । निरुक्तञ्चेत्यङ्गानि वेदानां गदितानि षट्” ॥ स्मृतिस्तु धर्मसंहितेत्यमरः । शिष्यस्य गुरुषु ऋणित्वमाह लघुहारीतः । “एकमप्यक्षरं यस्तु गुरुः शिष्ये निवेदयेत् । पृथिव्यां नास्ति तद्द्रव्यं यद्दत्त्वा सोऽनृणी भवेत्” ॥ नन्दिपुराणे । “यश्च श्रुत्वान्यतः शास्त्रं संस्कारं प्राप्य वै दृढ़म् । अन्यस्य जनयेत् कीर्त्तिं गुरोः स ब्रह्महा भवेत् ॥ विस्मरेच्च तथा मौढ्यात् योऽपि शास्त्रमनुत्तमम् । स याति नरकं घोरमक्षयं भीमदर्शनम्” ॥ अतएव गृहस्थादीनामपि पुनरध्ययनमाह आपस्तम्बः “यया विद्यया न विरोधेत पुनराचार्य्यमुपेत्य साधयेदिति” ॥ विष्णुः । “यश्च विद्यामासाद्य तया जीवेत् न च सा तस्य परलोकफलप्रदा भवति यश्च विद्यया परेषां यशो हन्तीति” । देवलः । “इष्टं दत्तमधीतं यद्विनश्यत्यनुकीर्त्तनात् । श्लाघानुशोचनाभ्याञ्च भग्नतेजो विभिद्यते ॥ तस्मादात्मकृतं पुण्यं वृथा न परिकीर्त्तयेत्” ॥ अनुकीर्त्तनं कथनम् । श्लाघा प्रशंसा अनुशोचनं धनव्ययेन पश्चात्तापः ॥ भग्नतेजः फलजनकशक्तिहीनं वृथा रक्षादि

प्रयोजनं विना । वैष्णवामृते भविष्यपुराणम् । "उपाध्याय स्य यो वृत्तिं दत्त्वाध्यापयति द्विजान् । किन्न दत्तं भवेत्तेन धर्मकामार्थमिच्छता" ॥

अथोपनयनम् । उपनयनकालश्च । "गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनं राज्ञामेकादशे सैके विशामेके यथा कुलम् । ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्य्यं विप्रस्य पञ्चमे" ॥ सैके द्वादशे । तत्राशक्तौ प्रायश्चित्तं कृत्वा तदुत्तरे कार्य्यम् । "गृह्योक्तकर्मणा येन समीपं नीयते गुरोः । बालो वेदाय तद्योगं बालस्योपनयं विदुः ॥ रवौ ह्वावे तथा शस्त्रहते पाठनिषेधनात् । उपनयनं तत्र स्यादिति मन्वादिसम्मतम्" ॥ कृत्यचिन्तामणौ । "जन्मोदये जन्मसु तारकासु मासेऽथवा जन्मनि जन्मभे वा । व्रतेन विप्रो न बहुश्रुतोऽपि विद्याविशेषैः प्रथितः पृथिव्याम् ॥ अस्तं गते दैत्यगुरौ गुरौ वा रूक्षेऽपि वा पापयुतेऽप्यनुक्ते । व्रतोपनीतो दिवसे प्रणाशं प्रयाति देवैरपि रक्षितो यः" ॥ उदये लग्ने व्रतेन उपनयनेन । भुजबलभीमकृत्यचिन्तामण्योः "स्वातीशक्रधनाश्विमित्रकरभे पौष्णेज्यचित्राहरिष्विन्दौ तोयपतौ भगे दितिसुते भाद्रद्वये सागरे । केन्द्रस्थे भृगुजेऽङ्गिरः शशिसुते चन्द्रे च तारे शुभे कर्त्तव्यं व्रतकर्ममङ्गलतिथौ वाराः सितार्केज्यकाः" ॥ तोयपतिः शतभिषा अदितिसुत उत्तरफल्गुनी सागर पूर्वाषाढ़ा दीपिकायाम् । "जीवार्केन्दूडुशुद्धौ हरिशयन वह्निभास्करे चोत्तरस्थे स्वाध्याये वेदवर्णाधिप दृढ शुभदे चौरिभे नादितौ च । शुक्रार्केज्यत्त्रलग्ने रविमदनतिथिं प्रोज्झ्य षष्ठाष्टमेन्दुं नो जीवास्तातिचारेऽर्कसितगुरुदिने कालशुद्धौ व्रतं स्यात्" ॥ रविमदनतिथिं सप्तमीं त्रयोदशीम् । कृत्यचिन्तामणौ । "माघे द्रविणशीलाढ्यः फाल्गुने च दृढव्रतः । चैत्रे भवति मेधावी वैशाखे कोविदो भवेत् ॥ ज्यैष्ठे

गच्छन्नीतिश्च आषाढ़े क्रतुभाजनः । शेषेष्वन्येषु रात्रिः स्यान्निषिद्धं निशि च व्रतम्" ॥ राजमार्त्तण्डे । "पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमर्हति" । वृद्धगर्गः । "स्मृतिषूक्ताननध्यायान् सप्तमीं च त्रयोदशीं पक्षयोर्माघमासस्य द्वितीयाम्" ॥ परिवर्जयेत् चैत्रशुक्लतृतीया आषाढ़शुक्लदशमी मन्वन्तरादित्वेन निषिद्धा वैशाखशुक्लतृतीया युगादित्वेन निषिद्धेति । षष्ठ्यामशुचिरभार्य्यो रिक्तासु बहुदोषभाक् । शुक्लपक्ष एव विहितः प्रागुक्ताश्वलायनवचनात् । सामगानां कुजवारेऽप्युपनयनं श्रीपतिरत्नमालाकृत्यचिन्तामणिधृत वाक्यवचनात् यथा । "शाखाधिपे बलिनि केन्द्रगतेऽथवास्मिं वारेऽस्य चोपनयनं कथितं द्विजानाम् । नीचस्थितेऽरिगृहगेऽथ पराजिते वा जीवे भृगावुपनयनः स्मृतिकर्महीनः" ॥ अस्य शाखाधिपस्य दीपिकायाम् । "ऋग्वेदाधिपतिर्जीवो यजुर्वेदाधिपः सितः । सामवेदाधिपो भौमः शशिजोऽथर्ववेदराट्" । वेदाधिपकथनम् । "ब्राह्मणे शुक्रवागीशौ क्षत्रिये भौमभास्करौ । चन्द्रो वैश्ये बुधः शूद्रे पतिर्मन्दोऽन्त्यजे जने" ॥ वर्णाधिपकथनम् । पराजयलक्षणं वक्ष्ये यात्रायाम् । अत्रापि विवाहवद्दशयोगभङ्गवर्जनम् । विष्णुधर्मोत्तरे । "षोड़शाब्दो हि विप्रस्य राजन्यस्य द्विविंशतिः । विंशतिः स चतुर्थी च वैश्यस्य परिकीर्त्तिता । सावित्री नातिवर्त्तेत अत ऊर्द्धं निवर्त्तते" ॥ अत्र षोड़शवर्षस्य उपनयनाङ्गता प्रतीयते । "पतिता यस्य सावित्री दशवर्षाणि पञ्च च । ब्राह्मणस्य विशेषेण तथा राजन्य वैश्ययोः ॥ प्रायश्चित्तं भवेदेषां प्रोवाच वदतां वरः" । इति यमवचने तदनङ्गता प्रतीयते अनयोर्गर्भजन्मप्रभृतिगणनाभ्यामविरुद्धार्थता तथा च माण्डव्यः । व्रतबन्धविवाहे च वत्सरपरिकल्पनमाहुराचार्य्याः । आधानपूर्वकमेके प्रसूति-

पूर्वं सदाश्वे तु । यत्तु द्विजानुपक्रम्य पैठीनसिवचनं द्वादशषोड़श विंशतिश्चेदतीता अव्रत्यकाला भवन्ति इति द्वादशवर्षाद्युपरि ब्राह्मणादीनां महाव्याहृति होमप्रायश्चित्तार्थम् । षोड़शोपरि तु व्रात्यहोमादि गुरुप्रायश्चित्तार्थमिति इत्युपनयनम् ।

अथ समावर्त्तनम् । "भौमभानुजयोर्वारे नक्षत्रे च व्रतोदिते । ताराचन्द्रविशुद्धौ च समावर्त्तनमिष्यते" इति समावर्त्तनम् अथाग्निग्रहणम् । "वह्निग्रहं कुजगुरुज्ञदिनेशवारे माघादिषट्सु च मृदुध्रुववह्निभेषु । कुम्भाजभांशकविलग्नमपास्य कालं लग्नस्थशीतगुसितौ च विधाय कुर्य्यात्" ॥ अग्निग्रहणशुद्धिः । अथ सन्यासग्रहणम् । जीवार्केन्दूडुशुद्धौ ध्रुवमृदुभगणे चोत्तरस्थे दिनेशे प्रव्रज्येशे सुवीर्य्ये स्थिरभवनविलग्नस्थितेऽर्कज्यवारे । प्रव्रज्याख्येषु योगेष्वशुभगगनगैर्वीक्ष्यहीनैः सवीर्य्ये जीवे धर्मेऽम्बरे वा स्थिरभवननरांशोदये मोक्षदीक्षा" । इति सन्यासकरणम् । "शुभग्रहार्कवारेषु मृदुक्षिप्रध्रुवेषु च । शुभराशिविलग्नेषु शुभं शान्तिकपौष्टिकम्" ॥ शान्तिकादिशुद्धिः । ज्ञानग्रहणं रत्नमालायाम् । "शीतांशौ बुधराशिस्थे शुभेषूदयवर्त्तिषु । ज्ञानस्य ग्रहणं कार्य्यं हित्वा पापग्रहोदयम्" ॥ राजमार्त्तण्डे । "वसुपुनर्वसुपूर्वभुजङ्गमैः करनिशाकरशङ्करदैवतैश्च सह वाक्पतिभिः सह चित्रायां गुणगणार्जनमेभिरभीप्सितम्" । गुणार्जनविधिः ।

"ग्रामान्तरं रसैर्मिश्रं बाणघ्नं ऋक्षहारितम् । शेषाङ्को ग्रामराशिः स्यात् शुभाशुभकरं नृणाम् ॥ दीर्घप्रस्तारहस्ताङ्कं त्रियुतं वसु[illegible]रेत् । तच्छेषाङ्केन बोद्धव्या वास्तुजातिर्विचक्षणैः ॥ र [illegible] जातिर्लभेत् ध्रुवम् । ब्राह्मणः

क्षत्रियो वैश्यः शूद्रश्च नीचसंज्ञकः ॥ जवनो नर्त्तको हाड़ी भवन्त्येते यथाक्रमम् । धननाशकरो विप्रः क्षत्रियो युद्धदायकः ॥ धनहा च भवेद्वैश्यः शूद्रः पीड़ाकरः स्मृतः । नीचः सम्मानदाता च जवनो धनदायकः । नित्यानन्दकरो नर्त्तो हाड़ी च सर्व्वलक्षणः" ॥

अथ गृहादि । "सुनिश्चितां मन्दिरभूमिमादौ निखाय तोयावधि यत्नतस्ताम् । कुर्य्याद्विशल्यामथवा नृमाणं खात्वाथवा प्रश्नवशाद्विधिज्ञः ॥ दूर्वाप्रवालाक्षतपुष्पपाणिः शुचिः शुचिं दैवविदं समेत्य । पृच्छेद्विनीतो मधुरस्वरेण शल्यस्य तत्त्वं भवने तदीशः ॥ ततः प्रश्नादिमो वर्णः सन्धार्य्यो यत्नतोऽथवा । क्रमात् पुष्पापगादेव फलानां ब्राह्मणादितः ॥ प्रणवो धरणीधारिणौ करौ च तदनन्तरम् । न भूत्यै नम इत्येष मन्त्रो वह्निप्रियात्मकः" ॥ वह्निप्रिया स्वाहा । "मन्त्रेणानेन काठिनीमभिमन्त्र्य विभाजयेत् । नवधा सदनक्षेत्रं तया पश्चाद्विलेखयेत् ॥ वकचत एहाः शपया नव चेत् प्रश्नाक्षराणि जायन्ते । प्रागादिकोष्ठे नवके वर्णास्ते शल्यमाख्यान्ति ॥ प्रश्ने वकारः परतो नरास्थि ब्रवीति शल्यं मरकप्रदायि । क्षौणीशदण्डोरगहेतुमृत्युप्रदं वकारः खरशल्यमग्नौ ॥ याम्यां चकारः प्लवगास्थिवेश्मप्रभोर्विनाशं प्रकरोति शल्यम् । रक्षोदिशि श्वास्थिगृहस्थितानां महद्भयं वक्ति सुनिश्चितं तः । एः पाशिदिश्यस्थि शिशोर्ब्रवीति मृत्युं प्रवासाद्गृहमेव शल्यम् ॥ होवायुकोणे नरकूपमस्थिदारिद्र्यमित्रक्षयदं विधत्ते । धनपदिशि शकारः प्राह विप्रास्थिवित्तक्षयकृत्तदथ पकारो वक्ति कूर्चास्थिशम्भो ॥ तदिह कुलविनाशं गोधनानाञ्च हानिं वितरति गृहनाथस्यापि गुप्तस्य दैवैः । यो मध्यभागे भसितं कपालं कालायसं चाह कुलक्षयाय ॥ यत्नादपास्यान्यधुना प्रमाणं सर्व्वत्र तथ्यं कथयामि

शल्ये । इन्द्ररक्षो जलेशाने शल्यं सार्द्धकरे कटौ । वह्न्यन्तककुवेरेषु पुरुषे मध्यवातयोः" ॥ इति शल्योद्धारः ।

देवीपुराणम् । "पुरुषाधः स्थितं शल्यं न गृहे दोषदं भवेत् । प्रासादे दोषदं शल्यं भवेत् यावज्जलान्तकम् ॥ गृहारम्भेऽतिकण्डूतिः स्वाम्यङ्गे यदि जायते । शल्यं त्वपनयेत्तत्र प्रासादे भवनेऽपि वा" ॥ वाटीव्यवस्था हस्तोऽप्यत्र कफोन्युपक्रममध्यमाङ्गुल्यग्रपर्य्यन्तः । मध्यमाङ्गुलीकुर्परयोर्मध्ये प्रामाणिकः कर इत्यभियुक्तस्मरणादिति कल्पतरुरत्नाकरौ । भीमपराक्रमे भोजराजः "स्वामिहस्तप्रमाणेन धर्मपत्नीकरेण वा । मापयेद्धर्ममात्रन्तु गृहकर्मणि कोविदः ॥ रूपाष्टके ८१ विनिहतो भवनस्य बन्धः कर्त्तुः स्वहस्तमित युग्मशरैकनिघ्नं १५२ । एकीकृतं रसनिशाकरयुग्मभक्तशेषं ततो भवति पिण्डपदं गृहस्य । गृहभूमिसमाहृतपिण्डपदं वसुलोचनरन्ध्रगजैर्गुणितम् । रविभूधरत्रिंशत्योगहृतं भवनायव्ययस्थिति ऋक्षपदम्" ॥ रूपाष्टकैकाशीत्या विहिनतः पूरितः । भवनस्य बन्धो दीर्घप्रस्तारमिलितहस्तः स्वहस्तं तत्संख्यानं युग्मशरैकविघ्नं द्विपञ्चाशदुत्तरशतपूरितम् एकीकृतं पूर्वाङ्केन मिलितं रसनिशाकरयुग्म २१६ । भक्तशेषं षोड़शाधिकद्विशतहृतावशिष्टं संख्यानं पिण्डपदसंज्ञं गृहस्य भवति तद्गृहभूमिसमाहृतपिण्डपदं वसुलोचनरन्ध्रगजैः अष्टद्विनवाष्टभिर्यथाक्रमं गुणितं पूरितं यथाक्रमं रविभूधरत्रिंशद्योगहृतं द्वादशसप्तत्रिंशत्सप्तविंशतिभिर्हृतं गृहस्य यथाक्रमम् आयव्ययस्थिति ऋक्षपदं भवतीत्यर्थः । "रुद्रहस्तमिते बन्धे भरण्या योगतो यथा । आयादयो भवन्त्येव वसुषट्तिथियुञ्जिताः" ॥ ८ । ६ । १५ । २ । अत्र यन्नक्षत्रं दीयते पश्चात्तदेवायातीति । यत्र तु शेषो नास्ति तत्र हारकाङ्कः शेषः "शेषाङ्केन फले बोध्ये

शेषाभावे तु हारकात्। अङ्कादेव फलं बोध्यमिति तत्त्वविदां मतम्"॥ इत्युक्तत्वात्। "व्ययाधिकं न कर्त्तव्यं गृहमायाधिकं शुभम्। अष्टाविंशप्रेतभागा नरभागाश्च विंशतिः। भागा द्वादश गन्धर्वाश्चत्वारो देवतांशकाः। प्रेतभाग परित्यज्य नरभागे गृहं शुभम्"॥ सारसंग्रहे। "न कोणेषु गृहं कुर्य्यात् नाप्यन्तेनापि मध्यतः। कोणे च धनहानिः स्यादन्ते रिपुभयं भवेत्॥ मध्ये च सर्वनाशः स्यात्तस्मादेतद्विवर्जयेत्। पूर्वप्लवो वृद्धिकरो धनदश्चोत्तरप्लवः॥ दक्षिणप्लवतो मृत्युः धनहा पश्चिमप्लवः"॥ वास्तुनः प्रागादिनीचत्वफलम्। "प्रागादिस्थे सलिले सुतहानिः शिखिभयं रिपुभयञ्च। स्त्रीकलहः स्त्रीदौष्ट्यं नैःस्वं वित्तात्मजविवृद्धी च॥ भवनस्य वटः पूर्वे जातः स्यात् सर्वकामिकः। उडुम्बरस्तथा याम्ये वारुणे पिप्पलः शुभः॥ प्लक्षश्चोत्तरतो धन्यो विपरीतो विपर्य्यये। जम्बीरपूगपनसाम्रककेतकीभिर्जातीसरोजतगरपत्रमल्लिकाभिः॥ यन्नारिकेलकदलीदलपाटलाभिर्युक्तं तदाश्रमपदं श्रियमातनोति। शोभना दाडिमाशोकपुन्नागबिल्वकेशराः॥ रक्तपुष्पाद्भयं प्राज्ञः क्षीरिणा च पशोर्भयम्। कण्टक्यरिभयं कुर्य्यात् गृहभेदश्च शाल्मलिः॥ कृत्तिकाद्यास्तु पूर्वादौ सप्तसप्तोदिताः क्रमात्। यद्दिश्यं यस्य नक्षत्रं तत्र तस्य शुभं गृहम्"॥ स्वनक्षत्रेण गृहदिङ्निर्णयः। "वास्तु प्रमाणेन तु गात्रकेण वामेन शेते खलु नित्यकालम्। त्रिभिस्तु मासैः परिहृत्य भूमौ तं वास्तुनागं प्रवदन्ति सिद्धाः॥ भद्रादिके वासवदिक्शिराः स्यात् मार्गादिकेषु त्रिषु याम्यमूर्द्धा। प्रत्यक्शिराः स्यात् खलु फाल्गुनादौ ज्यैष्ठादिकौबेरशिराः सनागः। मूर्द्धि खाते भवेन्मृत्युः पृष्ठे स्यात् पुत्रभार्य्ययोः। जघनेऽर्थक्षयं विद्यात् सर्वसम्पत्तथोदरे। एवं नागोडुसंशुद्धौ द्वे चेद्दक्षिणपश्चिमे

त्रिशालं पूर्वतो हीनं कार्य्यं वा सौम्यवर्जितम् ॥ केचिद्दक्षिणभागे तु वदन्त्येकं गृहं बुधाः । ऐशान्यां देवशाला स्यात् आग्नेय्याञ्च महानसम् ॥ आयुष्करन्तु नैर्ऋत्यां वायव्यां कोषमन्दिरम्" ॥ मत्स्यपुराणे । "चैत्रे व्याधिमवाप्नोति यो गृहं कारयेन्नरः । वैशाखे धनरत्नानि ज्यैष्ठे मृत्युस्तथैव च ॥ आषाढ़े धनरत्नानि पशुवर्जमवाप्नुयात् । श्रावणे काञ्चनं पुत्रान् हानिं भाद्रपदे तथा ॥ पत्नीनाश इषे मासि कार्त्तिके धनधान्यभाक् । मार्गशीर्षे तथा भक्तं पौषे तस्करतो भयम् ॥ माघे चाग्निभयं विद्यात् फाल्गुने काञ्चनं सुतान् । शुक्लपक्षे भवेत् सौख्यं कृष्णे तस्करतो भयम्" ॥ विशेषयति भोजः । "कर्किकुम्भहरिनक्रगतेऽर्के पूर्वपश्चिममुखानि गृहाणि । तौलिमेषवृषवृश्चिकजातदक्षिणोत्तरमुखानि कुर्य्यात् ॥ अन्यथा यदि करोति दुर्मतिर्व्याधिशोकधनहानिमश्नुते । मीनचापमिथुनाङ्गनागते कारयेन्न गृहमेव भास्करे ॥ न प्रधानगृहारम्भं कुर्य्यात् पौषे शुचावपि । यदि कुर्य्यात् सोऽचिरेण महतीमापदं व्रजेत्" ॥ महाभारते । "निषिद्धेऽपि हि काले तु स्वानुकूले शुभे दिने । तृणवस्त्रगृहारम्भे मासदोषो न विद्यते ॥ छेदनं संग्रहञ्चैव काष्ठादीनां न कारयेत् । श्रवणादौ बुधः षट्के न गच्छेद्दक्षिणां दिशम् ॥ अग्निपीड़ा भयं शोको राजपीड़ा धनक्षयः । संग्रहे तृणकाष्ठानां कृते वस्त्रादिपञ्चके ॥ क्षीरिवृक्षोद्भवं दारु गृहेषु न निवेशयेत् । कृताधिवासं विहगैरनिलानलपीड़ितम् ॥ गजैर्विभग्नञ्च तथा विद्युन्निर्घातपीड़ितम् । चैत्यदेवालयोत्पन्नं वज्रभग्नं श्मशानजम् ॥ देवाद्यधिष्ठितं दारु नीपनिम्बविभीतकान् । कण्टकिनोऽसारतरून् वर्जयेत् गृहकर्म्मणि ॥ वटाश्वत्थौ च निर्गुण्डीं कोविदारविभीतकौ । प्लक्षकं शाल्मलीञ्चैव पलाशञ्च विवर्जयेत् ॥ विस्तारात् द्विगुणोच्छ्रायं द्वारं कुर्य्या-

त्तथा गृहम्" ॥ गृहारम्भस्तु श्रवणादावप्याह राजमार्त्तण्डः। "आदित्येज्यभरोहिणी-मृगशिरश्चित्राधनिष्ठोत्तरापौष्णीविष्णुशतानुराधपवनैः शुद्धैः सुताराञ्चितैः। सौम्यानां दिवसेऽथ पापरहिते योगे विरिक्ते तिथौ विष्टित्यक्तदिने वदन्ति मुनयो वेश्मादिकार्य्यं शुभम्" ॥ मात्स्ये। "चन्द्रादित्यबलं लब्ध्वा लग्नं शुभनिरीक्षितम्। स्तम्भोच्छ्रायादिकर्त्तव्यमन्यत्र परिवर्जयेत् ॥ अश्विनीरोहिणीमूलमुत्तरत्रयमैन्द्रवम्। स्वातीहस्तानुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते ॥ वज्रव्याघातशूले च व्यतीपातेऽतिगण्डके। विष्कुम्भगण्डपरिघवर्जं योगेषु कारयेत् ॥ आदित्यभौमवर्ज्यास्तु सर्वे वाराः शुभावहाः। प्रसादेऽप्येवमेव स्यात् कूपवापीषु चैव हि" ॥ कल्पतरौ देवीपुराणम्। "यस्य देवस्य यः कालः प्रतिष्ठाध्वजरोपणे। गत्वा पूरशिलान्यासे शुभदस्तस्य पूजितः" ॥ यस्य देवस्य प्रतिष्ठाध्वजरोपणे यः कालः शुभदस्तस्य गर्त्तापूरशिलान्यासे स कालः पूजित इत्यर्थः। मात्स्ये। "चैत्रेऽथ फाल्गुने वापि ज्यैष्ठे वा माधवेऽपि वा। माघे वा सर्वदेवानां प्रतिष्ठा शुभदा भवेत्" ॥ प्रतिष्ठासमुच्चये ज्यैष्ठाषाढ़कयोर्वापि इत्युक्तेराषाढ़े दक्षिणायनेऽपि दुर्गाप्रतिष्ठामाह देवीपुराणम्। "महिषासुरहन्त्र्याश्च प्रतिष्ठा दक्षिणायने"। यत्तु कृत्यचिन्तामणौ। "गृहेषु यो विधिः प्रोक्तो विनिवेशप्रवेशयोः। स एव विदुषा कार्य्यो देवतायतनेष्वपि" ॥ एतत्तु मासव्यतिरिक्तशुभचन्द्रादिविषयम् अन्यथा प्रागुक्तविरोधापत्तेः। ज्योतिषे। "उग्रं विशाखामदितिञ्च शक्रं भुजङ्गमग्निञ्च विहाय गेहम्। शाम्य स्वलग्नस्थिरमन्दिरेषु कुर्य्याच्छुभैर्युक्तनिरीक्षितेषु ॥ नवग्रहा भवेयुश्च यदि केन्द्रत्रिकोणगाः। दोषस्तदा क्षयं याति तमः सूर्य्योदये यथा" ॥ राजमार्त्तण्डे। "पूर्णिमातोऽष्टमीं यावत् पूर्वास्यं

वर्जयेद् गृहम्। उत्तरास्यं न कुर्वीत नवम्यादिचतुर्दशीम्॥ अमावास्याष्टमीमध्ये पश्चिमास्यं विवर्जयेत्। नवमीतश्च याम्यास्यं यावच्छुक्लचतुर्दशीम्"॥ दीपिकायाम्। "गणेशं गन्धपुष्पाद्यैर्लोकपालानथ ग्रहान्। पूजयेत् क्षेत्रपालांश्च क्रूरभूतांश्च वाह्यतः। ब्रह्माणं वास्तुपुरुषं तदङ्गस्थाश्च देवताः"॥ ताश्च शिखिप्रभृतयो यथा। "शिखि चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः। सूर्य्यः सत्यो भृगुश्चैव आकाशो वायुरेव च॥ पूषा च वितथश्चैव गृहक्षतयमावुभौ। गन्धर्वो भृगुराजश्च मृगः पितृगणस्तथा॥ दौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो जलाधिपः। असुरः शेषपापौ च रोगो हि मुख्य एव च॥ भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा। आपश्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च॥ अर्य्यमा सविता चैव विवस्वा विबुधाधिपः। मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात्॥ आपवत्सस्तथा ब्रह्मवास्तुदेहगतास्त्विम। चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी॥ स्कन्दार्य्यमा जम्भकाश्च पिलिपिञ्जस्तथाष्टमः। एतान् मत्स्यपुराणोक्तान् गृहारम्भे प्रपूजयेत्"॥ महाकापिलपञ्चरात्रे "जलाधारगृहाथञ्च यजेद्वास्तु विशेषतः। ब्रह्माद्यादितिपर्य्यन्ताः पञ्चाशत्त्रयसंयुताः॥ सर्वेषां किल वास्तूनां नायकाः परिकीर्त्तिताः। असंपूज्य हितान् सर्वान् प्रासादादीह कारयेत्॥ अनिष्पत्तिर्विनाशः स्यादुभयोर्धर्मधर्मिणोः"॥ तत्तद्देवताभेदेन वलिमन्त्रोभयविशेषानुक्ता। "स्वर्गपातालमर्त्त्येषु ये देवा वास्तुसम्भवाः। गृह्णन्त्विम वलिं सर्व्वं तुष्टायान्तु स्वमालयम्॥ मातरो भूतवेताला ये चान्ये वलिकाङ्क्षिणः। विष्णोः पारिषदा ये च तेऽपि गृह्णन्त्विमं वलिम्॥ पितृभ्यः क्षेत्रपालेभ्यो वलिं दत्त्वा प्रकामतः। अभावादुक्तमार्गस्य कुशपुष्पादिभिर्यजेत्॥ आकुञ्चितकरं

वास्तुमुत्तानमसुराकृतिम् । स्मरेत् पूजासु कुड्यादिनिवेशी त्वधराननम्” ॥ देवीपुराणे । “मध्यभागे ततः कुर्य्यात् वास्तुदेवस्य पूजनम् । श्रियश्च पूजनं कुर्य्याद्वासुदेवगणस्य च । गन्धार्घ्यपुष्पनैवेद्यधूपाद्यैः सुरसत्तम । ततः संपूजयेत्तस्मिन् सर्व्वलोकधरां महीम् ॥ सुरूपां प्रमदारूपां दिव्याभरणभूषिताम् । ध्यात्वा तामर्च्चयेद्देवीं परितुष्टां स्मिताननाम् ॥ ततः प्रणम्य विज्ञाप्य तन्मयत्वेन चिन्तयेत्” ॥ तथा । “एवं प्रपूजिता देवाः शान्तिपुष्टिप्रदा नृणाम् । अपूजिता विनिघ्नन्ति गृहारम्भेषु कारकम् ॥ गृहादेः शिल्परूपत्वात् विश्वकर्म्मापि पूज्यते । शिल्पाचार्य्याय देवाय नमस्ते विश्वकर्म्मणे । स्वाहा ब्रह्मपुराणीयमन्त्रेणेति मतं मम” ॥ ज्योतिषे । “तद्धस्तायतमात्रगर्त्तमतुलं कर्त्तुर्विशुद्धे दिने स्नात्वा शाद्वलगोमयैः शुचितरं कृत्वाम्बुपूर्णं सुरान् । संपूज्यामलपुष्पकैर्जलघटं कृत्वाम्रशाखायुतं दद्यादर्घ्यमनेन विप्रवचसा मन्त्रेण वास्तोष्पतेः ॥ वास्तोष्पते त्वमुत्तिष्ठ संसारस्थितिकारक । गृहाणार्घ्यं मया दत्तं गृहारम्भं करोम्यहम् ॥ मम सर्व्वहितार्थाय विष्णुलोकाय वै नमः । गर्त्ते तस्मिन् सलिलभरिते निश्चलं वारिभर्त्तुः स्थैर्य्यं प्रकुर्य्याज्जनयति हितं दक्षिणावर्त्तयोगात् । वामावर्त्तं भवति विपदे स्वामिनाशञ्च कुर्य्यात् भूमिच्छेदाद् व्रजति लघुतां वित्तनाशं लभेद्वा” ॥ देवीपुराणे । “ततो गर्त्तं खनेन्मध्ये हस्तमात्रं प्रमाणतः । चतुरङ्गुलमात्रं तदधः खन्यात् सुसंमितम् । आचार्य्यः प्राङ्मुखो भूत्वा ध्यायेद्देवं चतुर्मुखम् । अर्घ्यं दद्यात् सुरश्रेष्ठ कुम्भतोयेन मन्त्रवित् । तस्मिन् शुक्लानि पुष्पाणि प्रक्षिपेदोमितिस्मरन् । तदागर्त्तं परीक्षेत दधिभक्तान्वितं क्षिपेत् । ईशाने सूत्रपातः स्यादाग्नेय्यां स्तम्भरोपणम् । द्वारं नवमभागे तु कार्य्यं वामात् प्रदक्षिणम्” ।

द्वारस्य विशेषमाह "तृतीयतुर्य्ययोः प्राच्यां याम्ये तुर्य्ये च पश्चिमे। तुर्य्यपञ्चमयोः पञ्च त्रिचतुर्थेषु चोत्तरे"। वामात् प्रदक्षिणमिति गृहाभ्यन्तरे स्थित्वा ऐशान्यादिक्रमेण कार्य्यमित्यर्थः। तत्र प्रयोगः। कृतस्नानादिः शुभे लग्ने वास्तुदक्षिणभागे चतुरङ्गुलखातहस्तमात्रगर्त्ते बहुतरनूतनदृणगोमयोपलिप्तजलपूरिते शालग्रामे वा गणेशादीन् प्रणवादि नमोऽन्तेन स्व स्व नाम्ना पूजयेत्। गणेशाय इन्द्राय वह्नये यमाय नैर्ऋताय वरुणाय कुवेराय ईशानाय ब्रह्मणे अनन्ताय सूर्य्याय सोमाय मङ्गलाय बुधाय बृहस्पतये शुक्राय शनैश्चराय राहवे केतुभ्यः क्षेत्रपालेभ्यः क्रूरभूतेभ्यः ब्रह्मणे वास्तुपुरुषाय शिखिने पर्ज्जन्याय जयन्ताय इन्द्राय सूर्य्याय सत्याय भृशाय आकाशाय वायवे विष्णवे पूष्णे वितथाय गृहक्षताय यमाय गन्धर्वाय भृङ्गराजाय मृगाय पितृभ्यः दौवारिकाय सुग्रीवाय पुष्पदन्ताय वरुणाय असुराय शोषाय पापाय रोगाय अहये मुख्याय भल्लाटाय सोमाय सर्पाय अदित्यै दित्यै आपाय सावित्रे जयाय रुद्राय अर्य्यम्णे सवित्रे विवस्वते इन्द्राय मित्राय राजयक्ष्मणे पृथ्वीधराय आपवत्साय ब्रह्मणे चरक्यै विदार्य्यै पूतनायै पापराक्षस्यै स्कन्दाय अर्य्यम्णे जम्भकाय पिलिपिञ्जाय वासुदेवाय। नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा इत्यनेन पूजयेत्। श्रियै वासुदेवगणाय पृथिव्यै। ८१। पृथिव्यर्घ्यमन्त्रस्तु। "हिरण्यगर्भे वसुधे शेषस्योपरिशायिनि। वसाम्यहं तव पृष्ठे गृहाणार्घ्यं धरित्रि मे"॥ ततः प्रणम्य प्रार्थयेत् "शुभे च शोभने देवि! चतुरस्रे महीतले। शुभदे शुभगे देवि! गृहे काश्यपि रम्यताम्॥ अव्यङ्गे चाक्षते पूर्णे मुनेराङ्गिरसः सुते। तुभ्य कृता मया पूजा समृद्धिं गृहिणः कुरु। वसुन्धरे वरारोहे स्थानं मे दीयतां शुभे॥ त्वत्प्रसादान्महादेवि! कार्य्यं

मे सिध्यतां हुतम्। अग्निभ्योऽप्यथ सर्पेभ्यो ये चान्ये तत्समाश्रिताः। तेभ्यो वलिं प्रयच्छामि पुण्यमोदनमुत्तमम्। भूतानि राक्षसा वापि येऽत्र तिष्ठन्ति केचन॥ ते गृह्णन्तु वलिं सर्वे वास्तुगृह्णाम्यहं पुनः"। इति मन्त्राभ्यां माषभक्तवलिं दद्यात्। ततः "प्रणमेद्दण्डवद्भूमौ मन्त्रेणानेन भक्तितः। भूतानि यानीह वसन्ति तानि वलिं गृहीत्वा विधिनोपपादितम्॥ अन्यत्र वासं परिकल्पयन्तु क्षमन्तु तानीह नमोऽस्तु तेभ्यः"। ततस्तस्मिन् गर्त्ते दधिदूर्वापुष्पफलाम्रपल्लवमुखेनाम्बुपूर्णघटेन एषोऽर्घ्यः वास्तोष्पतये नम इत्यर्घ्यं दद्यात्। "शिल्पाचार्य्याय देवाय नमस्ते विश्वकर्मणे"। स्वाहेत्युचार्य्य विश्वकर्मणे नम इति पूजयेत्। ततः "वास्तुदेवगणाः सर्वे पूजामादाय याज्ञिकात्। इष्टकर्मप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च"। क्षमध्वमिति विसर्जयेत्। ततस्तदर्घ्यजलपूरितगर्त्ते प्रणवेन शुक्लपुष्पं क्षिप्त्वा शुभाशुभं पश्येत् निश्चलं चेत् कर्त्तुः स्थैर्य्यं जनयति दक्षिणावर्त्तात् हितं वामावर्त्तात् विपदं नाशं भूमिच्छेदाद्वित्तनाशं लघुतां वा ततस्तत्र दधिदूर्वादिकं दत्त्वा मृत्तिकया गर्त्तं पूरयेत्। ततः सूत्रपाताय ईशानादि प्रदक्षिणाच्चतुरः कीलकान् "विशन्तु ते तले नागा लोकपालाश्च कामगाः। गृहे त्वस्मिंश्च तिष्ठन्तु आयुर्वलकराः सदा" इति मन्त्रेण चतुष्कोणेषु दृढं रोपयेत्। तत ईशानादिक्रमेण सूत्रेण तं वेष्टयेत्। तत आग्नेय्यां गर्त्ते गन्धपुष्पाद्यलङ्कृतं स्तम्भं रोपयेत्। तत्र मन्त्रः। "यथाचलोगिरिर्मेरुर्हिमवांश्च यथाचलः। शुभप्रदगृहस्तम्भ तथात्वमचलो भव"॥

अथ गृहप्रवेशः। "स्थाप्यं समाप्यं क्रतुयूपकाष्ठं गृहप्रवेशो गजवाजि बन्धः। ग्रामे प्रवेशो नगरे पुरे वा दिने प्रशस्तानि शनैश्चरस्य॥ ज्येष्ठादितिभ्यां संयुक्तं गृहारम्भोदि-

तच्च यत् । सत्त्वं योजयेद्वेश्मप्रवेशे दैवचिन्तकः" ॥ विष्णुधर्मोत्तरे । "गोपुच्छविन्यस्तकरः प्रविशेच्च गृहं गृही । अनुलिप्तः सुक्षौमस्रग्वीसपत्नीकस्तथैव च ॥ कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं दध्यक्षताम्रदलपुष्पफलोपशोभम् । दत्त्वा हिरण्यवसनानि तदा द्विजेभ्यो माङ्गल्यशान्तिनिलयं निलयं विशेच्च" ॥ महाभारते "पारावतमयूराश्च शुका वै सारिकास्तथा । गृहस्थेन सदा पोष्या आत्मनः श्रेय इच्छता" ॥ मत्स्यपुराणम् । "गोगजाश्वादिशालासु तत् पुरीषस्य निर्गमम् । अस्तं गते न कर्त्तव्यं देवदेवे दिवाकरे" ॥ गृहमुपक्रम्य गोभिलः । "वर्जयेत् पूर्वतोऽश्वत्थमक्षं दक्षिणतस्तथा । न्यग्रोधमपराद्देशादुत्तराच्चाप्युडुम्बरम् ॥ अश्वत्थोऽग्निभयं कुर्य्यात् अक्षो ब्रूयात् प्रमायुकान् । न्यग्रोधो राजसं पीड़ा कुच्यामयमुडुम्बराः" ॥ अक्षः पर्कटी प्रमायुकान् प्रकृष्टपित्तानमायुः पित्तमित्यमरः । इति गृहारम्भप्रवेशौ ।

"ब्राह्मानुराधवसुतिष्यविशाखहस्तचित्रोत्तराश्विपवनादितिरेवतीषु । जन्मर्क्षजीवबुधशुक्रदिनोत्सवादौ धार्य्यं नवं वसनमीश्वरदेवतुष्ट्यै । नववस्त्रपरीधानम् ॥ पुष्यार्कादितिपित्रमित्रशशभृद्धित्तध्रुवत्वाष्ट्रेषु मुक्तादन्तसुवर्णविद्रुममणीन् दध्यादिमुखे हरौ । पुष्टेज्ये समये शुभे ध्रुववसुराचार्य्यादितीशेऽङ्गना नो रत्नं विभृयात् प्रवालकमणीन् शङ्खं हिता स्वामिने" । इति रत्नधारणम् । पूर्वं स्त्रीपुंसामान्येन विधाय पश्चात् स्त्रिया विशेषनिषेधः । "मूलेन्दुपूर्वात्रययाम्यपित्र्यसर्पाग्निशक्रानिलशूलिनश्च । खड्गादिसन्धारणमेषु कुर्य्यात् तिथौ विलग्ने च शुभे शुभाहे" इति खड्गादिधारणम् । "मैत्रेन्दुपौष्ण-पितृभादितिवाजिचित्रा-हस्तोत्तरात्रयहरीज्यविधातृभानि । एतेष्वभीष्टशयनासनपादुकादि-सम्भोगकार्य्यमुदितं

मुनिभिः शुभाह्नि"। श्रीपतिसंहितायाम्। "हस्तादिति श्रवगुरूत्तरेषु पौष्णाश्विमूलेन्दुभचित्रभेषु। वारेन्दुजीवेज्यसितेन्दुजानां शय्यासनादीनि हितप्रदानि"। चिन्तामणौ हारीतः। "हरिकरमरुदनुराधाविधातृपौष्णादितिद्वयोत्तरभे भोजनविधिशय्यासनभोगारम्भो हितार्थाय" इत्यलङ्कारादिधारणम्।

"पुष्या मैत्रकरोत्तरत्ववरुणब्रह्माश्वपितेन्दुभैः शस्तेऽर्के शुभवारयोस्तिथिषु क्रूरे खवीर्य्येषु च। पूर्णेन्दौ जलराशिगे हिमगौ शुक्रे शुभांशोदये प्रारम्भः सलिलालयस्य शुभदो जीवेन्दुपुत्रोदये। वारुणमूलविशाखसौम्यध्रुवहस्तपौष्णपुष्येषु। तरुगुल्मलतादीनामारोपणं प्रशस्तम्"॥ वृक्षादिरोपणम्।

अथ पुष्करिण्यारम्भः। मत्स्यपुराणे। "प्राप्य पक्षं शुभं शुक्लमतीते चोत्तरायणे। आषाढ़े द्वे तथा मूलमुत्तरात्रयमेव च॥ ज्येष्ठाश्रवणरोहिण्यः पूर्वभाद्रपदे तथा। हस्ताश्विनी रेवती च पुष्यो मृगशिरस्तथा॥ अनुराधा तथा स्वाती प्रतिष्ठादिषु शस्यते"॥ अतीते प्राप्ते गत्यर्थस्य प्राप्त्यर्थत्वात्। भविष्ये। "प्रतिपच्च द्वितीया च तृतीया पञ्चमी तथा। दशमी त्रयोदशी चैव पौर्णमासी च कीर्त्तिता॥ सोमो बृहस्पतिश्चैव शुक्रश्चैव तथा बुधः। एते सौम्यग्रहाः प्रोक्ताः प्रतिष्ठायागकर्म्मणि"॥ व्यवहारसमुच्चये। "प्रतिष्ठा सर्वदेवानां केशवस्य विशेषतः। उत्तरायणमापन्ने शुक्लपक्षे शुभे दिने॥ कृष्णपक्षे च पञ्चम्यामष्टम्याञ्चैव शस्यते। द्वादश्येकादशीराका शुक्ले कृष्णे च पञ्चमी॥ अष्टमी च विशेषेण प्रतिष्ठायां हरेः शुभाः। ध्रुव लघु मृदुवर्गे वारुणे विष्णुदैवे मरुददितिधनिष्ठे शोभने वासरे च। त्रिदशमदनजन्मैकादशे शीतरश्मौ विबुधकृतिरभीष्टा नाड़िनक्षत्रहीने"॥ देवताघटनम्। प्राजेशवासव-

करादितिभाश्विनीषु पौष्णामरेज्यशशिभेषु तथोत्तरासु। कर्त्तुः शुभे शशिनि केन्द्रगते च जीवे कार्य्या हरे शुभतिथौ विधिवत् प्रतिष्ठा ॥ पुष्याश्विशक्रभमदैवतवासवेषु पौष्णानिलेशमघरोहिणीमूलहस्ते पौष्णानुराधहरिभेषु पुनर्वसौ च कार्य्याभिषेकतरुभूतपतिप्रतिष्ठा" ॥ महेशादिप्रतिष्ठा। ध्रुवमृदुनक्षत्रगणे रवि शुभवारेषु सुतिथौ दीक्षा। स्थिरलग्ने शुभे चन्द्रे कोणे शुभे गुरौ धर्मे ; दीक्षाकरणम्। भुजवले। "युगादावयने पुण्ये कर्त्तव्यं विषुवद्वये। चन्द्रसूर्य्यग्रहे वापि दिने पुण्येऽथ पर्वसु ॥ या तिथिर्यस्य देवस्य तस्यां वा तस्य दीक्षणे। गृह्यागमविशेषेण प्रतिष्ठा मुक्तिदायिनी" ॥ पद्मपुराणे। "प्रतिपद्धनदस्योक्ता पवित्रारोहणे तिथिः। श्रिया देव्या द्वितीया च तिथीनामुत्तमा स्मृता ॥ तृतीया त्वथवान्या च चतुर्थी तत्सुतस्य च। पञ्चमी सोमराजस्य षष्ठी प्रोक्ता गुहस्य च ॥ सप्तमी भास्करस्योक्ता दुर्गायाश्चाष्टमी तिथिः। मातॄणां नवमी प्रोक्ता दशमी वासुकेस्तथा ॥ एकादशी ऋषीणाञ्च द्वादशी चक्रपाणिनः" ॥ चक्रपाणिन इति पणव्यवहार इत्यस्मात्। "त्रयोदशी त्वनङ्गस्य शिवस्य च चतुर्दशी। मम चापि मुनिश्रेष्ठ पौर्णमासी तिथिः स्मृता" ॥ इति देवप्रतिष्ठा।

"झभहरिघटलग्ने देवराट्युग्मशाखात्रिनयनविधियाम्यद्वन्द्वसर्पान्यभेषु सुकरणतिथियोगे शुक्रजीवार्कवारे तरणिघटनमिष्टं चन्द्रताराविशुद्धौ"। नौकाघटनं "शुभाहे विष्णुयुग्मेन्दुभगमैत्राश्विपाणिषु। चालनं घटनस्थानात् नावः शुभतिथीन्दुषु" ॥ निष्पन्न नौकाचलनम्। "अश्विकरेज्यसुधासुधानिधिपूर्वामित्रधनाच्युतभे शुभलग्ने। तारकयोगतिथीन्दुविशुद्धौ नौगमनं शुभदं शुभवारे" ॥ नौयात्रा। हारीतः। "जन्माधाने निधनभे प्रत्यरौ च विपत्करे। यदि व्याधिः

समुत्पन्नः क्लेशाय मरणाय वा ॥ यदा ताराः शुभाः पुंसां नक्षत्रस्याशुभं फलम् । तत्र नात्यन्तिकं ज्ञेयमेवमन्यत्र पण्डितैः ॥ तथात्र चन्द्रमास्तस्य गोचरे चाशुभप्रदः । तदा नूनं भवेन्मृत्युः सुधासम्पीतदेहिनः ॥ शिखिगुणरसेन्द्रियानलशशिविषयगुणर्त्तुपञ्चमपक्षाः । विषयैकचन्द्रयुग्मार्णवाग्निरुद्रानिलदहनाः । भूतशतपक्षवसवो द्वौ त्रिंशच्छततारकामानम्" ॥ तदनुसारेण फलकथनम् । "आर्द्रा श्लेषा स्वाती पूर्वा ज्येष्ठासु च यस्य रोगजन्म स्यात् । धन्वन्तरिणापि चिकित्सितस्य तस्यासवो न स्युः" कौशिकः । "कृत्तिकासु यदा व्याधिर्नृणां संप्रतिपादितः । नवरात्रं भवेत् पीड़ा त्रिरात्रं रोहिणीषु च ॥ मृगशीर्षे पञ्चरात्रमार्द्रायां मुच्यतेऽसुभिः । पुनर्वसौ तथा पुष्ये सप्तरात्रं विधीयते ॥ नवरात्रं तथाश्लेषे मासमेकं मघासु च । द्वौ मासौ पूर्वफल्गुन्यामुत्तरासु त्रिपक्षकम् ॥ हस्ते च सप्तमे मोक्षश्चित्रायामर्द्धमासकम् । मासद्वयं तथा स्वात्यां विशाखे दिनविंशतिः ॥ मैत्रे चैव दशाहानि ज्येष्ठायामर्द्धमासकम् । मूले न जायते मोक्षः पूर्वाषाढ़े त्रिपक्षकम् ॥ उत्तरे विंशतिर्ज्ञेया द्वौ मासौ श्रवणे तथा । धनिष्ठायामर्द्धमासं वारुण्याञ्च दशाहकम् ॥ न च भाद्रपदे मोक्ष उत्तरासु त्रिपक्षकम् । रेवत्यां दिनविंशत्या चाहोरात्रं तथाश्विनौ ॥ प्राणैर्विमुच्यते नित्यं भरण्यां नात्र संशयः । कौशिकेन समादिष्टा नक्षत्रव्याधिसम्भवाः ॥ नक्षत्रं प्रतिकर्त्तव्यं नक्षत्रपथजानता । क्षीरवृक्षस्य समिधो जुहुयादश्विदैवते ॥ तिलमक्षतान् याम्ये घृतमेवाग्निदैवते । प्राजापत्ये जुहुयात्तु ग्राम्यबीजकरञ्जकम् ॥ सौम्ये गव्यं पयो रौद्रे सर्पिर्मधुसमन्वितम् । अदितिर्देवता यस्य घृताक्तास्तिलतण्डुलाः ॥ पायसं सर्पिषा चैव बृहस्पत्यधिदैवते । शास्त्रो-

अधिश्च पयश्च सर्पिः सर्पाधिदैवते ॥ पितरो देवता यस्य घृताक्तास्तिलतण्डुलाः । अक्षता नाज्ययुक्ताश्च भगे सर्पिस्तथोत्तरे ॥ सावित्रे दधिहोमो त्वाष्ट्रे चित्रौदनं हविः । यवाः स्वात्याञ्च होतव्याश्चन्द्राग्निभे तु पायसम् ॥ मैत्रे सर्पिस्तु जुहुयात्तदेव चेन्द्रदैवते । यथोपपन्नमन्नञ्च जुहुयान्नैर्ऋते तथा ॥ अब्दैवते शालिवीजं वैश्वदेवे तु रूषकम् । रक्तानां तण्डुलानाञ्च होतव्यं विष्णुदैवते ॥ न्यग्रोधोडुम्बराश्वत्थसमिधो वसुदैवते । वारुणे वारिजातानां पुष्पाणां होम इष्यते ॥ अजैकपादे होतव्यं प्राजापत्येन तत्समम् । अहि व्रध्ने तु नक्षत्रे पिष्टकान्नं प्रशस्यते ॥ पौष्णे फलान्यखण्डानि हुनेदष्टोत्तरं शतम् । सावित्र्या हुतमेतत्तु ब्राह्मणाभिहितं पुरा ॥ ज्ञात्वा चैव तु होतव्यं सद्यो ज्वरहरं परम्" ॥ भीमपराक्रमे । "कृत्तिकायां पिष्टकच्छागमुखे दध्युदकञ्च देयम् । रोहिण्यां पिष्टकगोमुखे शाकम् ॥ मृगशिरसि पिष्टकमृगमुखे माषो देयः । आर्द्रायां पिष्टकगोमुखे रक्तम् । पुनर्वसौ पिष्टकवराहमुखे पटोलम् । पुष्ये पिष्टकच्छागमुखे पायसम् । अश्लेषायां पिष्टकवराहमुखे घृतम् । मघायां पिष्टकवानरमुखे तिलाः । पूर्वफल्गुन्यां पिष्टकनरमुखे मुद्गतिलपूपिकाः । उत्तरफल्गुन्यां पिष्टकवलीवर्दमुखे शाकम् । हस्तायां पिष्टकमहिषमुखे पुष्करमूलम् । चित्रायां पिष्टकव्याघ्रमुखे तगरपुष्पम् । स्वात्यां पिष्टकमार्जारमुखे तिलाः । विशाखायां पिष्टकव्याघ्रमुखे गुड़भक्तम् । अनुराधायां पिष्टकमृगमुखे कुलत्थम् । ज्येष्ठायां पिष्टकमूषिकमुखे धन्याकम् । मूले पिष्टकमार्जारमुखे तिलम् । पूर्वाषाढ़ायां पिष्टककुम्भीरमुखे वचा । उत्तराषाढ़ायां पिष्टकवृषमुखे शाकभक्तम् । श्रवणायां पिष्टकमहिषीमुखे रक्तम् । धनिष्ठायां पिष्टकनरमुखे शाकभक्तम् । शतभिषायां पिष्टक-

वानरमुखे पिप्पली। पूर्वभाद्रपदायां पिष्टकनरमुखे सिततण्डुलाः। उत्तरभाद्रपदायामप्येवम्। रेवत्यां पिष्टकनरमुखे गुड़भक्तम्"। अश्विनी भरण्योरप्येवम्। एवं नक्षत्रदोहदे कृते ज्वरो नश्यति। एतद्विधानन्तु प्रथमं गन्धपुष्पधूपदीपनैवेद्यैः सदीपमाल्यपताकैः प्रपूज्य कार्य्यम्। "उरगमृताभिषार्द्राज्येष्ठयाम्यत्रिपूर्वास्वपि च रविजभौमे चार्कवारेण योगे। यदि भवति चतुर्थी द्वादशी भूतषष्ठी निगदित इह जन्तोर्नाशकालः प्रविष्टः॥ चरराशौ विलग्नस्थे द्विदेहार्द्धे च पश्चिमे। रोगस्य प्रशमः प्रश्ने विपर्य्यासे विपर्य्ययः॥ शुभग्रहाः सौम्यनिरीक्षिताश्च विलग्नसप्ताष्टमपञ्चमस्थाः। त्रिषड्दशा येषु निशाकरः स्यात् शुभं वदेद्रोगनिपीड़ितानाम्॥ पापर्क्षेषु प्रश्नलग्ने पापसंयुतवीक्षिते। तथैव चाष्टमस्थाने रोगिणां मरणं भवेत्"॥ मरणसूचकयोगद्वयम्। "मन्दः पापसमेतो लग्नान्नवमः शुभैरयुतदृष्टः। रोगार्त्तः परदेशे चाष्टमगो मृत्युकर एव"॥ परदेशस्थस्य रोगस्थानं मृत्युस्थानञ्च। "मूलमघार्द्राश्लेषा भरणी विशाखाग्निदैवतेषु नरः। गरुड़प्रियोऽपि दष्टो न प्राणिति दन्दशूकेन॥ पानाञ्जनालेपनलावणैस्तु दैवविषं समुत्सारयति"॥ दष्टस्य गारुड़ीमूलं यदि घृष्टमश्नामलं भवति। गारुड़ी पुनर्नवा। "अर्कजटावल्कलमसृणं चूर्णमतिशिशिरसलिलसंयुक्तम्। पीतमक्षिकमकगोनाशहयारिविषाणां विद्रावणम्॥ घोषसलिलमसृणवर्त्तितकाकलिकामूलपानलेपनेन। अपसरति मण्डलिविषं मारुतविक्षतमिव घनवृन्दम्"॥ घोषसलिलं काञ्जिकं काकलीमूलं गुञ्जामूलम्। "लज्जालुकामूलं नीलीमूलमातपतण्डुलजलेन। मण्डलिविषमतिविषममपि पीतं निवारयति॥ यः पिबति पुष्यदिवसे जलपिष्टं सितं पुनर्नवामूलम्। पार्श्वेनापि न खलु विचरति तस्याहि वृश्चिकौ

वर्षम्"॥ शातातपीयकर्म्मविपाके। "महापातकजं चिह्नं सप्तजन्मसु जायते। उपपातकजं पञ्च त्रीणि पापसमुद्भवम्॥ दुष्कर्मजा नृणां रोगा यान्ति चैव क्रमात् शमम्। जपैः सुरार्चनैर्होमैर्दानैस्तेषां शमो भवेत्॥ पूर्व्वजन्मकृतं पापं नरकस्य परिक्षये। बाधते व्याधिरूपेण तस्य कृच्छ्रादिभिः शमः॥ कुष्ठञ्च राजयक्ष्मा च प्रमेहो ग्रहणी तथा। मूत्रकृच्छ्राश्मरीकाशा अतीसारभगन्दरौ॥ दुष्टव्रणं गण्डमाला पक्षाघातोऽक्षिनाशनम्। इत्येवमादयो रोगा महापापोद्भवाः स्मृताः॥ जलोदरयकृत्प्लीहशूलरोगव्रणानि च। श्वासाजीर्णज्वरच्छर्दिभ्रममोहगलग्रहाः॥ रक्तार्बुदविसर्पाद्या उपपापोद्भवा गदाः। दण्डापतान कश्चित्र वपुः कम्पविचर्च्चिकाः॥ वल्मीकपुण्डरीकाद्या रोगाः पापसमुद्भवाः। अर्श्व आद्या नृणां रोगा अतिपापोद्भवा मताः॥ अन्ये च बहवो रोगा जायन्ते रोगसङ्कराः। उच्यन्तेऽथ निदानानि प्रायश्चित्तानि च क्रमात्॥ महापापे तु सर्वं स्यात्तदर्द्धन्तूपपातके। दद्यात् पापे तु षष्ठांशं कल्प्यं व्याधिबलाबलम्॥ लक्षमुच्चावचं पुष्पं प्रदद्याद्देवतार्च्चने। दद्याद्द्विजसहस्राय मिष्टान्नं द्विजभोजने॥ गोदाने वत्सयुक्ता गौः सुशीला च पयस्विनी"॥ गोदानमधिकृत्यादिपुराणे। "अरोगश्चैव जायेत तेजस्वी च भवेन्नरः"॥ मनुः। "औषधान्यगदो विद्या दैवी च विविधा स्थितिः। तपसैव प्रसिध्यन्ति तपस्तेषां हि साधनम्"॥ अगदोनैरुज्यम्। शातातपः। "यथा निदानं दोषोत्थः कर्मजो हेतुभिर्विना। महारम्भोऽल्पके हेतावन्तिमो दोषकर्मजः"॥ सारावल्याम्। पथ्याशिनां शीलवतां नराणां सद्वृत्तिभाजां विजितेन्द्रियाणाम्। एवं विधानामिदमायुरत्र चिन्त्यं सदा वृद्धमुनिप्रवादः"॥ व्यक्तमाह याज्ञवल्क्यः। "वर्त्त्याधारस्नेहयोगाद् यथा दीपस्य

संस्थितिः। विक्रियापि च दृष्टैवमकाले प्राणसंशयः"॥ यथा चाविकलवर्त्त्यादिसत्त्वे प्रचण्डवातादिना दीपनाशस्तथा सत्यप्यायुषि चाशुभकर्मवशात् नौदुर्गवर्त्मयुद्धापथ्यसेवित्वादिना प्राणनाश इति। आयुर्वेदे। "यथाशास्त्रञ्च निर्णीतो यथा व्याधिचिकित्सितः। न शमं याति यो व्याधिः स ज्ञेयः कर्मजो बुधैः"॥ तच्चिकित्सायां भारतीशभट्टाचार्य्यः। "दानैर्दयादिभिरपि द्विजदेवता गोगुर्वर्चनाप्रणतिभिश्च जपैस्तपोभिः। इत्युक्तपुण्यनिचयैरुपचीयमानाः प्राक् पापजा यदि रुजः प्रशमं प्रयान्ति"॥ अतएव हेमाद्रिधृतदानखण्डे तत्तद्रोगे तत्तद्दानाभिधानपूर्वकं भगवद्वाक्यम्। "सुवर्णदानं सर्वेषां रोगाणां शमकारणम्। तस्मात् सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यं कमलोद्भव"॥ कर्मदोषोभयजव्याधौ च। "दानादिभिः कर्मभिरौषधौभिः कर्मक्षये दोषपरिक्षये च। सिद्ध्यन्ति ये यत्नवतां कथञ्चित्तत्कर्मदोषप्रभवा गदास्तु"॥ अतएवोक्तम्। "प्रायश्चित्तमकृत्वा तु कर्म कुर्य्यान्न किञ्चन। अनिस्तीर्णमघं यस्माद्द्विगुणं परिपच्यते"॥ केवलदोषजे तु। "स्वहेतुदुष्टैरनिलादिदोषैरुपप्लुतैः स्वेषु परिस्खलद्भिः। भवन्ति ये प्राणभृतां विकारास्ते दोषजा भेषजशुद्धिसाध्याः"॥ बृहस्पतिः। "अज्ञातौषधमन्त्रस्तु यश्च व्याधेरतत्त्ववित्। रोगिभ्योऽर्थं समादत्ते सदण्ड्यश्चौरवद्भिषक्"॥ नन्दिपुराणे। "अप्येकं नीरुजं कृत्वा जन्तुं यादृशतादृशम्। आयुर्वेदप्रभावेण किन्न दत्तं भवेद्भुवि"॥ किन्न दत्तं भवेदिति सर्वदानफलं लभते इत्यर्थः। लिङ्गपुराणम्। "आयुष्ये कर्मणि क्षीणे लोकोऽयं दूयते मया। औषधानि च मन्त्राश्च न होमो न पुनर्जपः। त्रायन्ते मृत्युनोपेतं जरया वापि मानवम्"॥ इति कालवाक्यम्। हरिवंशेऽपि। "दैवं पुरुषकारेण न शक्यमति-

वर्त्तितुम्” इति। “न गच्छन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः। दीपनिर्वाणगन्धञ्च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम्”॥ विष्णुधर्मोत्तरे। “हरिं गोद्विजचन्द्रार्कसुराग्नीन् प्रतिपूज्य च। शृण्वन् मन्त्रमिमं पुण्यं विद्वान् भेषजमारभेत्॥ ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्राभूचन्द्रार्कानिलानलाः। ऋषयश्चौषधिग्रामा भूतसंघाश्च पान्तु ते॥ रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा। स्वधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते”॥ स्वयं भक्षणे तु ते इत्यत्र मे इति वदेत्। अविशेषेण भक्षणेऽपि पठेत्। “द्व्यङ्गोदये गुरुबुधेन्दुसितेषु तेषां वारे रवेश्च सुविधौ सुतिथौ सुयोगे भेषूग्रपन्नगविशाखग्निवेतरेषु जन्मर्क्षविष्टिरहितेष्वगदः शुभाय”॥ औषधकरणम् “चित्रायुगे विधियुगे मित्रयुगे लघुषु वारुणविष्णौ। वस्तिविरेचनवेधाः शुभदिनतिथिचन्द्रलग्नेषु”॥ वस्तिश्चर्मपुटः विरेचनं विरेकः। वेधो व्रणादिवेधः। “पौष्णाश्विनौ द्रविणशक्रसमीन्द्रपुष्याहस्तादितीन्दुहरिमूलहुताशमित्रैः। चित्रान्वितैर्भैर्गुबुधेन्दुरवीज्यवारे भैषज्यपानमचिरादपहन्ति रोगान्”॥ उत्तरात्रयेऽपि बहुलमृगेति वचनात्। रत्नमालायाम्। द्यूनशत्रुनिधनव्ययशुद्धौ सद्ग्रहेषु नितरां बलवत्सु। आयुषश्च हितकारिणि योगे कीर्त्तिता नियतमौषधसेवा”। द्यूनादिषु पादयोगे सप्तशून्येषु आयुष्मानित्यादिनित्ययोगे। भौमपराक्रमे। “भैषज्यपाने गुरुसोमशुक्राः शुभं विलग्नं दिवसो रवेश्च। तिथावरिक्ते करणे च शस्ते योगे च लग्ने द्विशरीरसञ्ज्ञे”॥ तत्रैव “रोहिणी चानुराधा च शस्तमौषधभक्षणे” इति वचनाद्रोहिण्यामपि। “व्यादित्येषु चरेषु शक्रादिनक्षत्पुष्योग्रचन्द्रेषु च। क्रूराहव्यतिपातविष्टिदिवसेष्विन्द्रावशस्ते तथा॥ केन्द्रस्थेष्वशुभेष्वकामतिथिषु स्नानं गदी मुक्तितः। शस्तं तत्र न शोभनाविधिभुजङ्गर्क्षेन्दु सद्वासराः”॥ रोगिस्नानम्। “सेवा

चक्रे सप्तशीर्षे सप्तपृष्ठे तथोदरे। पादयोः सप्त ऋक्षाणि साभिजिन्ति न्यसेद्बुधः॥ स्वामिभाद्भृत्यभं गण्यं भृत्यभात् स्वामिभं ततः। निष्फलं पादपृष्ठस्थे सफलं मस्तकोदरे"॥ सेवा चक्रम्। "ध्रुवलघुमृदुवर्गे वासवे विष्णुदैवे विकुजरविजवारे केन्द्रकोणेषु सत्सु। द्वितनुवृषभपश्चास्योदये चन्द्रशुद्धौ सुतिथिकरणयोगे दर्शनं भूमिपानाम्"॥ राजदर्शनम्। मत्स्यपुराणे। "राज्ञस्तु दक्षिणे पार्श्वे वामे चोपविशेत्तथा। पुरस्तात्तु तथा पश्चात् आसनन्तु विगर्हितम्॥ स्वयं तथा न कुर्वीत स्वगुणाख्यापनं पुनः। स्वगुणाख्यापने चैव परमेव प्रयोजयेत्। परार्थमस्य वक्तव्यं सुस्थे चेतसि भार्गव। स्वार्थं सुहृद्भिर्वक्तव्यं न स्वयन्तु कदाचन"॥ अस्य राज्ञः। "अज्ञाप्यमाने चान्यस्मिन् समुत्थाय त्वरान्वितः। अहं किं करवाणीति वाच्यो राजा विजानता। नातिवक्ता न निर्वक्ता न च मात्सरिकस्तथा॥ आत्मसम्भावितश्चैव न भवेच्च कथञ्चन। आराधनासु सर्वासु भृत्यवच्च विचेष्टिते। कथासु दोषं क्षिपति वाक्यभङ्गं करोति च। विरक्तलक्षणं ह्येतदनुरक्तस्य लक्षणम्। दृष्ट्वा प्रसन्नो भवति वाक्यं गृह्णाति चादरात्। कुशलादिपरिप्रश्नो संप्रापयति चासनम्। इति रक्तस्य कर्त्तव्या सेवा रविकुलोद्भव। यदप्यल्पतरं कर्म तदप्येकेन दुष्करम्॥ पुरुषेणासहायेन किन्तु राज्यं महत्पदम्। कामं क्रोधं मदं मानं लोभं हर्षं तथैव च। जेतव्यमरिषड्वर्गं सत्वरं पृथिवीक्षिता। न राज्ञा मृदुना भाव्यं मृदुर्हि परिभूयते। न भाव्यं दारुणेनापि तीक्ष्णादुद्विजते जनः। अदीर्घसूत्रश्च भवेत् सर्वकर्मसु पार्थिवः। दीर्घसूत्रस्य नृपतेः कर्म नष्टं भवेत् स्वयम्। रोगे दर्पे च मान्ये च द्रोहे पापे च कर्मणि। अप्रिये चैव कर्त्तव्ये दीर्घसूत्रः प्रशस्यते। भृत्यैः सह महीपालः परोक्षा-

मद्य वर्जयेत्। भृत्याः परिभवन्तीह नृपं हर्षणसत्कथम्। पौरुषं दैवसम्पत्त्या काले फलति पार्थिव। त्रयमेतन्मनुष्यस्य पिण्डितं स्यात् फलावहम्। कृषेर्वृष्टिसमायोगात् दृश्यन्ते फलसिद्धयः। तास्तु काले प्रदृश्यन्ते नैवाकाले कथञ्चन"॥ महाभारते। "लाभेन हर्षयेद् यस्तु न व्यथेद् यो विमानितः। असंमूढश्च यो नित्यं स राजवसतिं वसेत्। बलवान् शूर अग्लानश्छायेवानुगतः सदा। सत्यवादी मृदुर्दान्तः स राजवसतिं वसेत्"॥ नयमाह हरिवंशे नारदः। "अनुक्ते वापि सुहृदा वक्तव्यं जानता हितम्। न्याय्यञ्च प्राप्तकालञ्च पराभवमजानता। वक्तव्यं सर्वदा सद्भिरप्रियञ्चापि यद्धितम्। आनृण्यमेतत् स्नेहस्य सद्भिरेवाहृतं पुरा। यस्योत्तापकरं पश्चात् आरब्धं कार्य्यमीदृशम्। आरभेन्नैव तद्विद्वान् स च बुद्धिमतां नयः। कुमित्रे सौहृदं नास्ति कुभार्य्यायां कुतो रतिः। कुतः पिण्डं कुपुत्रे तु नास्ति सत्यं कुराजनि। कुसौहृदे क्व विश्वासः कुदेशे न प्रजीव्यते। कुराजनि भयं नित्यं कुपुत्रे सर्वदा भयम्। अपकारिणि विश्रब्धं यः करोति नराधमः। अनाथो दुर्बलो यस्तु न चिरं स तु जीवति। न विश्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत्। विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति। राजसेविषु विश्वासं गर्भसङ्करितेषु च। यः करोति नरो मूढो न चिरं स तु जीवति। ऋणशेषमृणाच्छेषं शेषमग्नेश्च भूमिप। पुन[illegible]न्ति संभूय ततः शेषं न शेषयेत्। अद्रोहं समयं कृत्वा मुनीनामग्रतो हरिः। जघान् नमुचिं पश्चादपां फेनेन पार्थिव। कृत्वा सम्बन्धकं चापि विश्वसेच्छत्रुणा न हि। पुलोमानं जघानादौ जामातापि शतक्रतुः। न चासन्ने निवस्तव्यं सवैरे वर्द्धिते रिपौ। पातयेत्तं समूलं हि नदीकूलमिव द्रुमम्"। विष्णुपुराणे। "अल्पहानिस्तु सोढव्या वैरेणार्थागमं त्यजेत्।

उपायतः समारब्धा सर्वे सिध्यन्त्युपक्रमाः" ॥ ज्योतिषे । "अन्धकं तदनुमन्दलोचनं मध्यलोचनमतः सुलोचनम् । रोहिणीप्रभृतिभं चतुर्विधं नूनमत्र गणयेत् पुनः पुनः । लाभोऽन्धके निकट एव हृतस्य चौरैर्द्रव्यस्य लब्धिरिह केकरके प्रयत्नात् । द्रव्यश्रुतिर्भवति मध्यमलोचनार्क्षे न प्राप्तिरुत्तमविलोचनभे कदाचित्" । मत्स्यपुराणे । "कार्त्तवीर्य्यार्जुनो नाम राजा बाहुसहस्रभृत् । येन सागरपर्य्यन्ता धनुषा निर्जिता मही । यस्तस्य कीर्त्तयेन्नाम कल्यमुत्थाय नित्यशः । न तस्य वित्तनाशः स्यान्नष्टञ्च लभते पुनः" ॥ कल्यं प्रातः ।

अथ परीक्षा । "नो शुक्रास्तेऽष्टमेऽर्के गुरुसहितरवौ जन्ममासेऽष्टमेन्दौ विष्टौ मासे मलाख्ये कुजशनिदिवसे जन्मतारासु चाथ । नाड़ीनक्षत्रहीने गुरु रविरजनीनाथ ताराविशुद्धौ प्रातः कार्य्या परीक्षा हितनुचरगृहांशोदये शस्तलग्ने । अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यां प्रायश्चित्तपरीक्षणे । न परीक्षा विवाहश्च शनिभौमदिने भवेत् । प्रायश्चित्तं अनुराधा स्वधनिष्ठा पुष्या हस्तात्रयं तथा । ज्येष्ठावारुणपौष्णे च नाट्यारम्भे शुभोगणः" । नाट्यारम्भः ।

अथ कृषिकर्म । तत्र कूर्म्मचक्रम् । "प्राङ्मुखो भगवान्देवः कूर्म्मरूपी व्यवस्थितः । आक्रम्य भारतं वर्षं नव भेदं यथाक्रमम् । मध्यप्रागग्नि याम्यादि कृत्तिकादित्रयत्रयैः क्रूरवेधयुतैस्तैस्तु पीड्यन्ते तन्निवासिनः । पूर्वापरे भवे[illegible]धोवेधश्चोत्तरदक्षिणे । ईशानरक्षसोर्वेधो वेध आग्नेय मारुते । तारात्रयान्वितं तत्र सौरिं यत्नेन चिन्तयेत् । नाभिशीर्षचतुष्पादकक्षपुच्छे च संस्थितम् । अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषिकाः खगाः । स्वचक्रं परचक्रञ्च सप्तैते सम्भवन्ति च । एवं देशगृहग्रामक्षेत्रनामर्क्षतो वदेत्" ॥ तथा च "यत्र यत्र

च गच्छते दिव्यपार्थिवनाभसाः। दृश्यन्ते सुमहोत्पाताः स्वां दिशं तत्र पीड़येत्। सौरिर्वलाधिको दुष्टः स्वल्पवीर्य्यः शुभावहः। एकदा पीड़येद् यत्र भानुजः कूर्म्मपञ्चके। तत्र स्थाने महाविघ्नो जायते नात्र संशयः। दुष्टस्थाने गते चन्द्रे कर्त्तव्यं शान्तिपौष्टिकम्”। कूर्म्माङ्गस्थदेशानाह। “मध्ये सारस्वतामत्स्याः शूरसेनाः समाथुराः। पञ्चालशाल्वमाण्डव्यकुरुक्षेत्रगजाह्वयाः। मरुनैमिषविन्ध्याद्रिपाण्डरघोषाः सयामुनाः। काश्ययोध्या प्रयागश्च गया वैदेहकादयः। प्राच्यां मागधशोणौ च वारेन्द्रीगौड़राढ़काः। वर्द्धमानतमोलिप्त प्राग्ज्योतिषोदयाद्रयः। आग्नेय्यामङ्गवङ्गोपवङ्गत्रैपुरकोशलाः। कलिङ्गौड्रान्ध्रकिष्किन्ध्या-विदर्भशवरादयः। दक्षिणेऽवन्ति-माहेन्द्रमलया ऋष्यमूककाः। चित्रकूटमहारण्यकाञ्चीसिंहलकोङ्कनाः। कावेरी ताम्रपर्णी च लङ्कात्रिकूटकादयः। नैर्ऋते द्रविड़ानर्त्तमहाराष्ट्राश्च रैवतः। जवनः पल्लवः सिन्धुः पारसीकादयो मताः। पश्चिमे हैहयास्ताद्रिम्लेच्छवासशकादयः। वायव्ये गुज्जराटश्च नाटजालन्धरादयः। उत्तरे चीननेपालहूनकैकेयमन्दराः। गान्धारहिमवत्क्रौञ्चगन्धमादनमालवाः। कैलाशमद्रकाश्मीरम्लेच्छदेशाः खशादयः। ईशाने स्वर्णभौमश्च गङ्गाद्वारश्च टङ्कनः। काश्मीरब्रह्मपुरककिरातादरदादयः” ॥ इति कूर्मचक्रम्। देवलः। “सिन्धुसौवीरसौराष्ट्रास्तथा प्रत्यन्तवासिनः। अङ्गवङ्गकलिङ्गौड्रान् गत्वा संस्कारमर्हति” ॥ तीर्थयात्राव्यतिरेकेणेति द्रष्टव्यमिति मिताक्षरा। व्यासः। “ऊषरा बहुला भूमिः पन्थानस्तस्कराहृताः। सर्वे वाणिजकाश्चैव भविष्यन्ति कलौ युगे॥ शस्यानिष्पत्तिरफला तरुणा वृद्धशीलिनः। भविष्यत्यफलो हर्षः क्रोधश्च सफलो नृणाम्॥ पुरुषाल्पं बहुस्त्रीकं तद्युगान्तस्य लक्षणम्” ॥ तत्र ग्रामादिषु

स्वनामफलम्। ज्योतिषे। "अवर्गेऽष्टाविषुः के च षट्चे वेदाष्टवर्गके। एकं ते सप्त पे वर्गे ये द्वयं शे च वह्नयः॥ इत्यमष्टसु वर्गेषु याः संख्याः कथिताः क्रमात्। नाम्निवर्गात् स्वराश्चैव प्रत्येकं तां प्रकल्पयेत्॥ एकीकृत्याष्टभिर्भुक्ते शेषसंख्या ध्वजादयः। ध्वजो धूम्रश्च सिंहः श्वा वृषभो रासभो गजः॥ ध्वाङ्क्षश्चक्रमतो ज्ञेयः फलं तत्र बलक्रमात्। ध्वाङ्क्षधूम्रवृषभा गजः सिंहो ध्वजः खरः॥ यथोत्तरबला एते ज्ञातव्याः स्वरपारगैः। प्रभौ योधे पुरे देशे मित्रनारी गृहेषु च॥ बलात् प्रायो भवेल्लाभो न लाभो बलवर्जितात्। अ गरुड़ः क मार्जारश्च सिंहश्च शुनीसुतः॥ त भुजङ्गः प आखुः स्यात् य वर्गे भः श मेषकः। नामादिवर्णतो ज्ञेया अष्टौ वर्गाः क्रमादमी॥ यद्वर्गभक्ष्यो यः प्रोक्तस्तस्मात्तस्य भवेत् क्षयः। ग्रामवर्गस्य ये भक्ष्यास्त्यज्यास्तद्ग्रामवासिनः॥ एवं दुर्गे रणे त्यज्या न कर्त्तव्या गड़ाधिपाः। अवर्गाद्यष्टकं ज्ञेयं प्रागाद्यष्टदिशां क्रमात्। स्ववर्गात् पञ्चमे स्थाने खण्डिभङ्गश्च जायते"॥ व्यासः। "धनिनः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यश्च पञ्चमः। पञ्च यत्र न विद्यन्ते तत्र न दिवसं वसेत्"॥ मत्स्यपुराणे। "फालकृष्टे [illegible] देशे सर्ववीजानि रोपयेत्। त्रिपञ्चसप्तरात्रेण यत्र रोहन्ति तान्यपि। ज्येष्ठामध्याकनिष्ठाभूर्वर्जनीयेतरा मता"॥

अथ लाङ्गलचक्रं स्वरोदये। "लाङ्गलं दण्डिका यूपं योक्त्रद्वयसमन्वितम्। दण्डिकादिलिखेद्भानि दिनेशाक्रान्तभादितः॥ दण्डिका हलयूपानां द्विद्विस्थाने त्रिकं त्रिकम्। योक्त्रयोश्च त्रिकञ्चैव मध्ये पञ्चाग्रके द्वयम्॥ दण्डस्थे च गवां हानिर्यूपस्थे स्वामिनो भयम्। लक्ष्मीर्लाङ्गलयोक्त्रादौ चेत्रारम्भदिनर्क्षके"॥ इति लाङ्गलचक्रम्।

अथ बीजोप्तिचक्रम्। "सूर्य्यभादुरगः स्थाप्यस्त्रिनाड्येका-

न्तरक्रमात्। मुखे त्रीणि गले त्रीणि भानि द्वादश तूदरे ॥ पुच्छे चतुर्वह्निः पञ्च दिनभाच्च फलं वदेत्। वदने चोचकं विद्यात् गलकेऽङ्गारकस्तथा ॥ उदरे धान्यवृद्धिः स्यात् पुच्छे धान्यक्षयो भवेत्। इति रोगभयं राज्ये चक्रे वीजोप्तिसम्भवे"॥ सूर्य्यभात् सूर्य्यभुज्यमाननक्षत्रात्। त्रिनाड्येकान्तरक्रमादिति यद्यश्विन्यां रविस्तदा तामारभ्य गणयेत्। त्रिनाडीषु अश्विनी-भरणीकृत्तिका दत्त्वा रोहिणी वहिः कार्य्या मृगशिरस आर्द्रा पुनर्वसु नाड़ीषु दत्त्वा पुष्यो वहिः कार्य्यः एवं क्रमेणान्या लेख्याः। चोचकं शस्यशून्यताम्। ईतयः। "अतिवृष्टिरनावृष्टिः शलभा मूषिकाः खगाः। प्रत्यासन्नाश्च राजानः षड़ेते ईतयः स्मृताः"॥ इति वीजोप्तिचक्रम्।

अथ वृषचक्रम्। "वृषचक्रं वृषाकारं सर्वावयवसंयुतम्। लिखित्वा विन्यसेद्भानि वृषनामर्क्षपूर्वकम् ॥ मुखाक्षिकर्ण-शीर्षेषु शृङ्गे स्कन्धे द्विकं द्विकम् ॥ त्रीणि पृष्ठे द्वयं पुच्छेऽष्टौ पादे तूदरे त्रिकम्। हलप्रवाहवीजोप्तिप्रारम्भादिदिनर्क्षकम् ॥ यदङ्गेषु स्थितं तस्माद्वाच्ये सर्वं शुभाशुभम्। आस्ये हानिः सुखं नेत्रे कर्णे भिक्षाटनं तथा ॥ शीर्षे धृतिस्तथा शृङ्गे सौख्यं स्कन्धे च मङ्गलम्। पृष्ठे कष्टं शुभं पुच्छे भ्रमः पादे सुखं हृदि। चन्द्रयोगादिदं प्रोक्तं वृषचक्रफलं वुधैः"॥ इति वृषचक्रम्।

दीपिकायाम्। "पूर्वाग्नियाम्यफणिपित्रशिवान्यभेषु रिक्ताष्टमीविगतचन्द्रतिथिं विहाय। द्व्यङ्गानिगोसमुदाये विकुजार्किवारे शस्तेन्दुयोगकरणेषु हलप्रवाहः। हलप्रवाहवद्वीजवपनस्य विधिः स्मृतः। चित्रायाञ्च शुभे केन्द्रे स्थिर स्वमनुजोदये"॥ भीमपराक्रमे। "वामे कृष्णं वलीवर्द्दं दक्षिणे लोहितं न्यसेत्। उत्तराभिमुखो भूत्वा कर्षकः कृषिमारभेत् ॥

हले तु योजिते यत्र क्षेत्रे ग्रासं करोति गौः। तत्र स्याद्द्विगुणं शस्यमवश्यं गर्गभाषितम्"॥ कृत्यचिन्तामणौ वलभद्रः। "सुखदः प्रतिपच्चैव द्वितीया कार्य्यसाधिनी। आरोग्यदा तृतीया च चतुर्थी कीटकृत् सदा॥ पञ्चमी श्रीपदा नूनं षष्ठी च कलहप्रिया। सप्तमी स्यानदा भोग्या वृषं हन्ति तथाष्टमी। नवमी शस्यनाशाय दशमी भूतिदा सदा। एकादशी तथा कुर्य्याद्धनं धान्यं मनोरथम्। द्वादशी प्राणसन्देहा सर्वसिद्धा त्रयोदशी। चतुर्दशी पतिं हन्ति पञ्चदश्येव निष्फला। अमावास्याष्टमी षष्ठी रिक्ता च परिवर्जयेत्। सौरिभौमदिने चैव कृष्यारम्भे धनक्षयः। प्राजेशविष्णुतिष्येषु पितृकरोत्तरेषु च अश्विनी वातपौष्णेषु मूलादितीन्दुभे तथा। वारे भानुजशुक्रे च जीवे शीतकरे तथा। लग्ने स्त्रीगोमीनयुग्मे कृष्यारम्भं शुभं विदुः। ऐशान्यां पुष्पनैवेद्यैः क्षेत्रपालञ्च पूजयेत्। सालङ्कारो हलधरः स्रग्भिश्च पूजितं हलम्। दध्याज्यमधुभिः श्रेष्ठं फालाग्रञ्च प्रलेपितम्। कर्षं प्रावर्त्तयेत् प्राज्ञो नूतनेन हलेन च। हस्ताश्वितिष्यचन्द्रेषु ब्रह्मेन्द्रविष्णुवारुणे। वायव्येन्द्राग्निभे चैव रोहिण्यामुत्तरासु च। वारे जीवज्ञशुक्रे च सोमे दिनकरे तथा। युग्मे युवति गो मीने शस्तं स्याद्बीजवपनम्"॥ राजमार्त्तण्डे। "प्राजेशश्रवणोत्तरादिति मघा मार्त्तण्डतिष्याश्विनी पौष्णानुष्णमरीचयः शतभिषा स्वातिर्विशाखा तथा। जीवार्केन्दुसितेन्दुनन्दनदिने वारे स्थिरस्योदये शस्यानां वपने भवन्ति लवने शस्ते तिथौ रोपणे"। देवलः। "गुरुसोमसूर्य्यशुक्राः क्षेस्याः सम्पत्कराः शुभाः। बुधार्किभूमिपुत्राश्च न भवन्ति फलप्रदाः। हन्ति मेषः पशून् सर्वान् स्वभावेनाथ वृश्चिकः। कर्कटे न भवेत् सौख्यं तुलायां न प्ररोहति। केशरी शस्यघाती स्यात् पार्थिवोपद्रवं,

धनुः ॥ मकरे चैव कुम्भे च भयमेव विनिर्दिशेत् । गोस्त्रीमन्मथमीनेषु शस्यं सम्पद्यते महत् ॥ प्रशस्ते चन्द्रतारे च शुचिः शुक्लेन वाससा । स्नात्वा गन्धैश्च पुष्पैश्च पूजयित्वा विधानतः ॥ पृथ्वीञ्च ग्रहसंयुक्तां पूजयित्वा प्रजापतिम् । अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य दीयते भूरिदक्षिणा ॥ कृष्णौ वृषौ नियोक्तव्यौ नवनीतैर्घृतेन वा । मुखपार्श्वं तयोर्लिम्प्यात् फालाग्रं कनकैः स्पृशेत् ॥ उत्तराभिमुखो भूत्वा क्षीरेणार्घ्यं प्रदापयेत् । ततः शुभकरः श्रीमान् कृषिकर्म समाचरेत् ॥ वर्जयेद्भग्नशृङ्गञ्च क्षुरभग्नञ्च वर्जयेत् । विकलं छिन्नलाङ्गूलं कपिलं वृषभं तथा ॥ हलप्रवाहनं कार्य्यं नीरुग्भिः कृषिकर्मकैः । हलादिभिर्दृढैः क्षेमं कुदृढैर्न शुभं वदेत् ॥ वृषभा यदि मुह्यन्ति तस्य विघ्नप्रदा भवेत्" ॥ कृषिरिति शेषः "तस्मात् सर्वप्रयत्नेन निर्विघ्नं कारयेत् सदा । एका जयकरी रेखा तृतीया चार्थदायिका ॥ पञ्चमी या भवेद्रेखा बहुशस्यफला हि सा । अत ऊर्द्ध्वं न कर्त्तव्यं महादोषस्ततो भवेत् ॥ संपूज्याग्निं द्विजं देवं कुर्य्याद्धलप्रवर्त्तनम् । हेमनिघृष्टफालाग्रं छिन्नरेखां न कारयेत् ॥ स्मर्त्तव्या वसवश्चेन्द्रः पृथूरामः सचन्द्रमाः । पराशरो बलभद्रः सर्वविघ्नोपशान्तये ॥ हले प्रवाह्यमाने तु कूर्म्म उत्पद्यते यदि । गृहिणी म्रियते तस्य ततोऽग्नेश्च भयं भवेत् ॥ लाङ्गूलं भिद्यते चापि प्रभुस्तत्र विनश्यति । ईशाभङ्गो यदा कर्त्तुः संशयो जीवितस्य च ॥ सुतनाशो युगाभङ्गे समीने म्रियते सुतः" ॥ समीने योक्त्रबन्धनकाष्ठद्वये । "योक्त्रच्छेदे तु व्यासङ्गः शस्यहानिश्च जायते । हले प्रवाह्यमाने तु गौरिकः प्रपतेद् यदि ॥ प्रपतेन्मुक्तमात्रस्तु बन्धनं स प्रपद्यते । ज्वरातिसाररोगेण कृषिभङ्गं विनिर्दिशेत् ॥ प्रवाहमुक्तमात्रस्तु ततो गौः प्रपतेत् यदि । वत्सालोढेन नर्दन्ति

ततो शस्यं चतुर्गुणम् ॥ हेमवारिविलिप्तस्य वीजस्योन्नयतः शुचिः । इन्द्रं चित्ते निधायाथ स्वयं मुष्टित्रयं वपेत् ॥ कृत्वा चान्योन्यप्रोत्साहं नर्त्तको हृष्टमानसः । प्राङ्मुखः कलसं गृह्य इमं मन्त्रमुदीरयेत् ॥ त्वं वै वसुन्धरे सीते बहुपुष्पफलप्रदे । नमस्ते मे शुभं नित्यं कृषिं मेधां शुभे कुरु ॥ रोहन्तु सर्वशस्यानि काले देव प्रवर्षतु । कर्षकास्तु भवन्त्यग्रा धान्येन च धनेन च स्वाहा" ॥ कृत्यरत्नाकरे ब्रह्मपुराणम् । "चैत्रे च कृष्णपञ्चम्यां काश्मीरा च रजस्वला । नित्यं भवति तस्मात्तां कृत्वा शैलमयीं स्त्रियम् ॥ अभ्यङ्गवस्त्रनैवेद्यैः पूजयेच्च दिनत्रयम् । पुष्पालङ्कारधूपैश्च गोरसं वर्जयन्ति च" ॥ काश्मीरा पृथ्वी । "अष्टम्याञ्च ततः स्नाप्य ताभिरेव गृहे गृहे । सुस्नाताभिः प्रहृष्टाभिर्जीवपत्नीभिरेव च ॥ अनन्तरं द्विजः स्नाप्य सर्वौषधियुतैर्जलैः । गन्धैर्वीजैस्तथा रत्नैः फलैः सिद्धार्थकैस्तथा ॥ स्नापयित्वा च तां देवीं गन्धैर्माल्यैश्च पूजयेत् । तन्निवेदितशिष्टन्तु प्राशितव्यं गृहे गृहे ॥ अतःपरं स्नाता गर्भं गृह्णाति ऋतुमेदिनी" ॥ तथा "ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च काश्यपः सुरभीगृहे । इन्द्रः प्रचेताः पर्जन्यः शेषश्चन्द्रार्कवह्नयः ॥ वलदेवे हलं भूमिर्वृषभं रामलक्ष्मणौ । रक्षोघ्नी जानकी सीता युगं गगनमेव च" ॥ सीता लाङ्गलपद्धतिः । युगं युगकाष्ठम् । "एते द्वाविंशतिः प्रोक्ता प्रजानां पतयः शुभाः । गोमङ्गले तु संपूज्याः कृष्यारम्भे महोत्सवे ॥ अर्घ्यैः पुष्पैश्च धूपैश्च माल्यै रत्नैः पृथक् पृथक् । हलेन वाहयेद्भूमिं स्वयं स्नातः स्वलङ्कृतः" ॥ तथा । "उप्ता वीजन्तु तत्रैव भोक्तव्यं बान्धवैः सह" ॥ वीजवपनं प्राजापत्यतीर्थेन यथा हारीतः । "कनिष्ठायाः पश्चात् प्राजापत्यमावपनं होमतर्पणे प्राजापत्येन कुर्य्यात्" इति । राजमार्त्तण्डे । "नित्यं दश हले लक्ष्मीर्नित्यं पञ्च हले

धनम्। नित्यञ्च त्रिहले भक्तं नित्यमेकहले ऋणम्" ॥ होमतर्पणे लाजहोमसनकादितर्पणे पराशरः। "वैशाखे वपनं श्रेष्ठं मध्यमं रोहिणी रवौ। अतःपरस्मिन्नधमं न जातु श्रावणे शुभम्" ॥ ज्योतिषे। "पूर्वभाद्रपदा मूलं रोहिण्युत्तरफल्गुनी। विशाखा शतभिषा वाथ धान्यानां रोपणे वरा ॥ सदोषा रजनीं नीलीं पुत्रवित्तैर्वियुज्यते। स्वयं जाते पुनस्ते द्वे पालयन्नैव दुष्यति ॥ आरामे गृहमध्ये वा मोहात् सर्षपमावपन्। पराभवं रिपुर्याति ससाधनधनक्षयम् ॥ निशा नीली पलाशश्च चिञ्चा श्वेतापराजिता। कोविदारश्च सर्वत्र सर्वं निघ्नन्ति मङ्गलम्" ॥ निशा हरिद्रा। कोविदारको रक्तकाञ्चनः। "हेमाम्भसा वृक्षबीजं स्नातो मन्त्रेण रोपयेत्। वसुधेति सुशीतेति पुण्यदेति धवेति च ॥ नमस्ते शुभगे नित्यं द्रुमोऽयं वर्द्धतामिति। अरिष्टाशोकपुन्नागवकुलाम्रप्रियङ्गवः ॥ माङ्गल्याः पूर्वमारामे रोपणीया गृहेषु च। अश्वत्थमेकं पिचुमर्दमेकं द्वौ चम्पकौ त्रीण्यथ केशराणि ॥ तालाष्टकं श्रीफलसप्तकञ्च पञ्चाम्ररोपी नरकं न पश्येत्" ॥ दानरत्नाकरे देवीपुराणम्। "ये च पापा दुराचाराः श्रीतरुच्छेदकारिणः। तेऽप्यवीच्यादिनरके पच्यन्ते ब्रह्मणो दिनम् ॥ मृतास्ते जीव्यमानास्तु ब्रह्मघ्नकीर्त्तिता भुवि।' तस्मिन् देशे भयं नित्यं राजानो न चिरायुषः। न च नन्दत्ययं लोके यत्र श्रीफलभेदिनः" ॥ श्रीतरुर्विल्वः। "लिखित्वालक्तकेनापि मन्त्रं शस्येषु वन्धयेत्। न व्याधिकीटहिंस्राणां भयं तत्र भवेत् क्वचित् ॥ सिद्धिः प्रचलतरङ्गतरलितमृदुतरसमीरण वनोद्देशे श्रीमद्रामभद्रपादाः कुशलिनः समुद्रतटे नानाशतसहस्रवानराणां मध्ये खरनखरपञ्चोर्द्धलाङ्गूलं पवनसुतं वायुवेगं परचक्रप्रमथनं श्रीमद्धनूमन्तमाज्ञापयन्ति अमुकस्याखण्डक्षेत्रे वाता-

भोऽम्भोगाम्भीवृतीपाण्डरमुण्डीधूली शृङ्गारतल्पाक्षपरा ङ्गताफड़िङ्गा एलावानरा गरुड़ा इमडुकमहिषादिरोगम्। खण्डयतक्षणमपि विलम्बं माचरतः विलम्बं कारयत तदा युष्मान् शतखण्डं कारयामीति। ग्रां ग्रीं ग्रौं श्रीरामाय नमः"॥ इति शस्येषु वन्धयेत्।

अथ मुष्टिग्रहणम्। दीपिकायाम् "याम्याजपादाहिधनानलतोयशक्रचित्रेतरेषु कुजार्कजवारवर्जम्। शस्तेन्दुयोगकरणेषु तिथौ विरिक्ते धान्यच्छिदिः स्थिरनरस्तमृगोदयेषु"॥ वलभद्रः। "रेवतीहस्तमूलेषु श्रवणे नागयाम्ययोः। पितृदेवे तथा सौम्ये धान्यच्छेदं मृगोदये"॥

अथ धान्यच्छेदनप्रकारः। "सपत्नौ मासमुद्गौ च यवधान्ये सकाण्डके। छिन्द्यात्तिलश्च निष्पत्रमेतत् पाराशरं मतम्"॥ पराशरः। "न मुष्टिग्रहणं कुर्य्यात् कदाचिद्वटपौषयोः। ईशाने लवनं कुर्य्यात् सार्द्धमुष्टिद्वयं शुचिः॥ पौष्णे पुष्ये शुभाह्ने वा पूजयित्वेष्टदेवताम्। शस्यविघ्नप्रशान्त्यर्थं चैत्रे वा हव्यभोजनम्"॥ वौधायनः। "रथाश्वगजाधान्यानां गवां चैव रजः शुभम्। अथाशस्तं समूहिन्याः श्वाजाविखरवायसाम्"॥ समूहिनी संमार्जनी। कृत्यचिन्तामणौ मेधिरोपणम्। "वटश्च सप्तपर्णश्च गम्भारी शाल्मली तथा। औडुम्बरी तथा धात्री या चान्या क्षीरधारिणी॥ स्त्रीनाम्नी कर्षकैर्नित्यं मेधिः कार्य्या फलप्रदा"॥

अथ वीजसञ्चयः। "हस्ता चित्रादितिस्वाती रेवत्यां श्रवणद्वये। स्थिरे लग्ने गुरौ शुक्रे वीजं धार्य्यं ज्ञवासरे॥ माघे वा फाल्गुने वापि सर्व्ववीजानि संग्रहेत्। शोषयेत्तापयेद्रौद्रे रात्रौ चोपनिधापयेत्॥ ततश्च पुटिकां वद्धा शोषयेच्च पुनः पुनः। स्थापयेच्च प्रयत्नेन यथा भूमिञ्च न स्पृशेत्॥ दीपा-

ग्निना च संसृष्टं दृष्ट्वा चोपहतञ्च यत् । वर्जनीयं तथा वीजं यत् स्यात् कीटसमन्वितम् ॥ याम्याग्निरुद्राहि विशाखपूर्वामाहेन्द्रपित्र्येतरभैः शुभाहे । धान्यादिसंस्थापनमेषु शस्तं मृगस्थिरद्व्यङ्गगृहोदयेषु ॥ सौम्यादितिमघा ज्येष्ठानुरात्तरेषु च कारयेत् । मीने लग्ने शुभे चन्द्रे निधनक्रूरवर्जिते ॥ क्षेमव्यं कोष्ठके धान्यं गर्गो वदति सर्वदा । धनदाय सर्वलोकहिताय देहि मे धान्यं स्वाहा ॥ नम ईहायै ईहादेवी सर्वलोकविवर्द्धिनी कामरूपिणि धान्यं देहि स्वाहा । लेखयित्वा इमं मन्त्रं धान्यागारे विनिक्षिपेत्” ॥ पुराणसर्वस्वे । “मन्त्रं लिखित्वा पत्रे च मध्ये धान्यस्य धारयेत् । पत्रञ्च धान्यराशेस्तु मूषिकादिनिवृत्तये ॥ दक्षिणादिक्षु खगमनं स्यादभिनवासु नारीषु । व्ययमपि शस्यफलानां न बुधो बुधवासरे कुर्य्यात् ॥ त्रिपूत्तरे रेवत्यां धनिष्ठा वारुणेषु च । एतेषु षट्सु विज्ञेयं धान्यनिष्क्रमणं बुधैः ॥ श्रवणात्रयं विशाखा ध्रुवपौष्णपुनर्वसूनि पुष्यश्च । अश्विन्यथ ज्येष्ठा धनधान्यविवर्द्धिनी कथिता” ॥ धान्यादिस्थापनम् । “कुम्भमासेऽपि सर्वेषां मन्दिराणामुपक्रमम् । महर्षयः प्रशंसन्ति धान्यागारं विहाय च” ॥ अत्र प्रयोगः । पौर्णमास्यन्तचैत्रीकृष्णपञ्चम्यां पृथ्वी रजस्वला तां दिनत्रयमेकस्मिन् पर्वताकारे उच्चप्रदेशे सधवाः स्त्रियः प्रपूजयेयुरष्टम्यां तां स्नापयित्वा ताः पूजयेयुः । ततः शुभदिने वीजवपनदिने वा सर्वौषधिगन्धवीजरत्नफलश्वेतसर्षपैः पृथ्वीं स्नापयित्वा गन्धादिभिः पूजयेत् । नैवेद्यशेषञ्च पश्चाद्भोक्तव्यम् । अथ हलप्रवाहदिने वीजवपनदिने च कृतस्नानादिराचान्तो गर्त्तं क्षेत्रे कृत्वा जलेनापूर्य्य तत्र प्रजापतिं सूर्य्यादिनवग्रहान् पृथ्वीञ्च पूजयेत् । “हिरण्यगर्भे वसुधे शेषस्योपरिशायिनि । वसाम्यहं तव पृष्ठे गृहाणार्घ्यं धारित्रि मे” ॥ इति मन्त्रेण

क्षीरेणार्घ्यं दद्यात्। ऐशान्यां पुष्पनैवेद्यैः प्रणवादिनमोऽन्तेन ब्रह्मणे नमः नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहा इत्यनेन त्रिःपूजयेत्। रुद्राय कश्यपाय सरस्वत्यै इन्द्राय तदर्घ्यमन्त्रस्तु। "शक्रः सुरपतिः श्रेष्ठो वज्रहस्तो महाबलः। शतयज्ञाधिपो देव तुभ्यमिन्द्राय वै नमः"॥ प्रचेतसे पर्ज्जन्याय शेषाय चन्द्राय अर्काय वह्नये बलदेवाय हलाय भूमये वृषभाय रामाय लक्ष्मणाय जानक्यै सीतायै स्वर्गाय गगनाय इति द्वाविंशतिं पूजयेत् क्षेत्रपालमग्निं द्विजञ्च पूजयेत्। अग्निं प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाय दक्षिणां दद्यात्। आम्रपल्लवोदनदधीनि गर्त्ते निक्षिप्य मृत्तिकाभिः पूरयेत् कृष्टौ वृषौ नवनीतघृतेन वा मुखपार्श्वयोर्निक्षिपेत्। हलप्रवाहकान् गन्धादिना भूषयित्वा हलं माल्यादिभिः पूजयित्वा दधिघृतमधुभिः फालाग्रं प्रलिप्य हेम्ना फालाग्रं घर्षयित्वा कर्षयेत् वस्विन्द्रपृथुरामेन्दु पराशरबलभद्रान् स्मरेत्। एका तिस्रः पञ्च रेखा हलेन कार्य्याः भग्नशृङ्गखुरलाङ्गूलाः कपिलाश्च वृषा न योक्तव्या हलप्रवाहकाश्च समर्थाः कर्त्तव्याः हलानि नवानि दृढ़ानि कर्त्तव्यानि वृषभयुद्धादिकं न शुभदं वृषभाणां नर्द्दनेन चतुर्गुणं शस्यं मूत्रपुरीषोत्सर्गे तथा। बीजवपने त्विदमधिकं सुवर्णजलसंयुक्तं बीजमुष्टित्रयम् इन्द्रं ध्यायन् स्वयं प्राजापत्येन तीर्थेन वपेत् उभयत्रैव प्राङ्मुखः जलपूर्णकलसं गृहीत्वा "त्वं वै वसुन्धरे सीते बहुपुष्पफलप्रदे। नमस्ते मे शुभं नित्यं कृषिं मेधां शुभे कुरु॥ रोहन्तु सर्वशस्यानि काले देवः प्रवर्षतु। कर्षकास्तु भवन्त्वग्रा धान्येन च धनेन च" स्वाहेति प्रार्थयेत्।

अथ षष्टिसंवत्सरगणना। "शकेन्द्रकालः पृथगाकृति २२। घ्नः शशाङ्कनन्दाश्वियुगैः ४२९१ समेतः। शराद्रिवस्विन्दु

१८७५ । हृतः सलब्धः षष्ठ्यावशिष्टाः प्रभवादयोऽब्दाः । वर्षवर्जन्तु यच्छेषं सूर्य्यैः संपूर्य्य खोर्मिभिः । ६० । हृत व्युत्क्रमतः खाग्निहृतेऽंशे मासकादयः” ॥ अस्यार्थः । शाकेन्द्रकालः शक राजाब्दकालः पृथक् आकृतिघ्नः २२ । द्वाविंशत्या पूरितः शशाङ्कनन्दाश्वियुगैरेकनवत्यधिकशतद्वयाधिकचतुःसहस्रैः समेतोऽङ्कः शरादिवस्विन्दुहृतः पञ्चसप्तत्यधिकाष्टादशशतैर्यावत् संख्यं हर्त्तुं शक्नोति तावता हृतः कर्त्तव्यः सलब्धः पूर्वशकाब्दः शरेत्यादिना लब्धसंख्यया युतः कार्य्यः षष्ठ्यामशेषे पश्चादेषोऽङ्कः पूर्ववत् षष्ठ्याहृतलब्धस्यावशिष्टे प्रभवादयः एकावशेषे प्रभवः द्व्याद्यवशिष्टे विभवादिः वर्षवर्जन्तु यच्छेषं वर्षातिरिक्तं शरादिवस्विन्दुहृतावशिष्टं तत् सूर्य्यैर्द्वादशभिः संपूर्य्य खोर्मिभिः षष्ठ्याहृतं व्युत्क्रमत इत्यनेन षष्टिहृतावशिष्टाः अङ्का दण्डाः षष्टिहृतलब्धांशके खाग्निहृते त्रिंशता हृतेऽवशिष्टा अंशकालब्धा मासाः स्युरिति । प्रभवादि वर्षाण्युपक्रम्य “आद्या तु विंशतिर्ब्राह्मी द्वितीया वैष्णवी स्मृता । तृतीया रुद्रदैवत्या श्रेष्ठा मध्याधमा भवेत्” ॥ भविष्यपुराणे भैरव उवाच । “षष्ठ्यब्दं कथयाम्यत्र क्रूराः सौम्याश्च ये प्रिये । संवत्सरफलं मुख्यं प्रभवादौ वरानने ॥ बहुतोयास्तथा मेघा बहुशस्या च मेदिनी । बहुक्षीरास्तथा गावो व्याधिरोगविवर्जिताः ॥ प्रशान्ताः पार्थिवाश्चैव प्रभवे परिकीर्त्तिताः । १ । “सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सर्वे व्याधिविवर्जिताः । प्रशान्ता मानवास्तत्र बहुशस्या वसुन्धरा । हृष्टास्तुष्टा जनाः सर्वे विभवे च वरानने” । २ । “रोगा बहुविधाश्चैव मनुष्या वाजिकुञ्जराः । सर्वे एव प्रनश्यन्ति शुक्ले वर्षे वरानने” । ३ । “उन्मत्तञ्च जगत् सर्वं धनधान्यसमाकुलम् । नित्योत्सवः प्रजावृद्धिः प्रमोदे जायते प्रिये” । ४ । “नीरोगाश्च निराबाधा मानवा विगतद्विषः ।

बहुक्षीरास्तथा गावः प्राजापत्ये वरानने"।५। "निरातङ्कं जगत् सर्वं धनयौवनगर्वितम्। अङ्गिरसि प्रजाः सर्वा नित्योत्साहा वरानने"।६। "सुभिक्षं क्षेममारोग्यं वर्षाकालं सुशोभनम्। शस्यवृद्धिं विजानीयात् श्रीमुखे सुरवन्दिते'।७। "बहुक्षीरास्तथा गावो धान्यञ्च बलवत्तरम्। जायन्ते सर्वशस्यानि भावे वर्षे वरानने"। ८। महार्घं जायते सर्वं घृततैलरसादिकम्। प्रजानाञ्च भवेद्वृद्धिर्यूनिसंवत्सरे शुभे।९। "निष्पत्तिः सर्वशस्यानां मध्या धातरि कीर्त्तिता। इक्षुक्षीरगुडादीनां प्रबलत्वं वरानने" ॥१०। "सुभिक्षं क्षेममारोग्यं कार्पासस्य महार्घता। लवणं मधुगव्यञ्च ईश्वरे दुर्लभं प्रिये"।११। "सुभिक्षं क्षेममारोग्यं प्रशान्ताः पार्थिवाः प्रिये। तस्करोपहृतं वित्तं बहुधान्ये वरानने"॥१२। "राष्ट्रभङ्गश्च दुर्भिक्षं तस्करैश्चोपपीडनम्। जानीयाद्विग्रहं घोरं प्रमाथिनि वरानने"।१३। "जायन्ते सर्वशस्यानि मेदिनी निरुपद्रवा। लवणं मधुगव्यञ्च महार्घं विक्रमे प्रिये"॥१४। "कोद्रवाः शालिमुद्गाश्च सक्तुमाषास्तथैव च। महार्घं जायते सर्वं वृषे च सुरवन्दिते"।१५। "चनकामुद्गमाषाश्च अन्यच्च विदलं प्रिये। महार्घं जायते सर्वं चित्रभानौ वरानने"।१६। "सुभिक्षं क्षेममारोग्यं विश्वञ्च निरुपद्रवम्। व्यवहारो भवेत् हृष्टः स्वर्भानौ देवपूजिते"।१७। "अतिवृष्टिश्च जायेत धान्यस्याथ प्रपीड़नम्। शस्यं भवति सामान्यं दारुणे सुरवन्दिते"।१८। "बहुशस्यानि जायन्ते सर्वदेशे सुलोचने। सौराष्ट्रे लाटदेशे च पार्थिवे नात्र संशयः"।१९। "दुर्भिक्षं जायते घोरं सर्वोपद्रवसंयुतम्। अनावृष्टिः समाख्याता व्यये संवत्सरे प्रिये"।२०।"उद्यतो वर्षणे मेघो जलं नैवोपजायते। महार्घं सर्वजिद्वर्षे सर्वमेव वरानने"।२१। "कोद्रवाः शालि-

मुद्गाश्च कङ्गुमाषास्तथैव च। सुलभं जायते सुस्थं जगद्वै सर्वधारिणि"।२२।"अनग्निप्रबला लोका धान्यौषधिप्रपीड़नम्। जायते मानुषे कष्टं विरोधिनि न संशयः"।२३। "सर्वाः प्रजाः प्रपीड्यन्ते व्याधिः शोकश्च जायते। शिरोवक्षोऽक्षिरोगाश्च पापाद्धि विकृते जनाः"।२४। "उपद्रुतं जगत् सर्वं तस्करैर्मूषिकैः खगैः। पीड़िताश्च प्रजाः सर्वाः देशभङ्गा खरे प्रिये"।२५। सुभिक्षं क्षेममारोग्यं शस्यं भवति शोभनम्। बहुक्षीरास्तथा गावो नन्दनं नन्दने प्रिये"।२६। "अल्पतोयास्तथा मेघा वर्षन्ति खण्डमण्डले। नश्यन्ति सर्वशस्यानि विजये नात्र संशयः"।२७। "क्षत्रियाश्च तथा वैश्याः शूद्राश्च नटनर्त्तकाः। पीड़ितास्ते वरारोहे जये सर्वे न संशयः"।२८। "सरोगश्च तथा देवि दाहज्वरसमन्वितम्। अभिभूतं जगत् सर्वं मन्मथे सुरवन्दिते"।२९। "औषधान्यक्षयो देवि सर्वशस्यमहार्घता। व्यवहाराश्च नश्यन्ति दुर्मुखे दुर्मुखाः प्रजाः"॥३०। "पीड्यन्ते सर्वशस्यानि देशे देशे शुचिस्मिते। हेमलम्बे प्रजाः सर्वाः क्षीयन्ते नात्र संशयः"।३१। "तस्करैः पार्थिवैश्चैव अभिभूतमिदं जगत्। अर्घो भवति सामान्यो विलम्बे तु भयं महत्"।३३। "विषमस्थं जगत् सर्वं विरोधे भयसंप्लवम्। विकारी सर्वतोपायो मम वाक्यन्तु नान्यथा"।३३। "क्वचिद्वर्षति पर्जन्यो देशे संच्छिन्नमण्डलः। दुर्भिक्षं सर्वरीवर्षे व्यवहारो विपर्य्ययः"।३४। "दुर्भिक्षं जायते सर्वा मेदिनी दुष्यति प्रिये। प्लवे प्लवन्ति तोयानि पीड़िता मानवा भुवि"।३५। "सुवर्णरूप्यधान्यानि जगत् सर्वं सुशोभनम्। ब्राह्मणा वणिजस्तुष्टाः सुभिक्षे शुभकृत् प्रिये"।३६। "सुभिक्षं क्षेममारोग्यं तथा गोब्राह्मणाः प्रिये। सुस्थिताः शोभने वर्षे प्रजाः सर्वाः सुलोचने"।३७। "विषमस्थं जगत् सर्वं व्याकुलं समु-

दाहृतम् । जनानां जायते भद्रे क्रोधे क्रोधः परस्परम्” ।३८। “सर्वत्र जायते क्षेमं सर्वशस्यमहार्घता । विश्वावसौ वरारोहे कार्पासस्य महार्घता” । ३९ । “पार्थिवैर्नृपसैन्यैश्च समस्तैः खण्डमण्डले । प्रपीड्यन्ते जनाः सर्वाः भयभीताः पराभवे” । ४० । “तृणधान्यानि पीड्यन्ते ग्रीष्मे वर्षति वासवाः । प्लवङ्गे पीड़िताः सर्वाः प्रजाश्च सुरवन्दिते” । ४१ । “जायन्ते सर्वशस्यानि सुभिक्षं निरुपद्रवम् । सौम्यदृष्टिर्भवेद्राजा कालिके च शुभं वदेत्” । ४२ । “सुभिक्षं क्षेममारोग्यं सुखञ्च निरुपद्रवम् । सौम्यदृष्टिर्भवेद्राजा सौम्ये सौख्यं प्रकीर्त्तितम्” ।४३। “तोयपूर्णो भवेन्मेघो वर्षते च दिने दिने । निरुपद्रवाश्च राजानः सर्वसाधारणे प्रिये” । ४४ । “वासवो वर्षते देवि ! देशे चाखण्डमण्डले । अहिच्छत्रे कान्यकुब्जे विरोधिकृषिनाशकृत्” । ४५ । “अभिभूतं जगत् सर्वं क्लेशैर्बहुविधैः प्रिये । मारुतैः फलदाहैश्च परिवारिणि शोभने” । ४६ । “निष्पत्तिः सर्वशस्यानां सुभिक्षं भवति प्रिये । प्रमाथिनि जलोद्गारो जलदो मोदते प्रजाः” । ४७ । “निष्पत्तिः सर्वशस्यानां सर्वशस्यमहार्घता । घृतं तैलसमं याति आनन्दे नन्दिनि प्रजाः” । ४८ । “कोद्रवाः शालिमुद्गाश्च पीड्यन्ते वरवर्णिनि । सर्वौषधीनि धान्यनि राक्षसे निष्ठुराः प्रजाः” । ४९ । “दुर्भिक्षं जायते घोरं धान्यौषधिप्रपीड़नम् । अनले च समाख्यातं नात्र कार्य्या विचारणा” । ५० । “देशभङ्गः सुदुर्भिक्षं समासात् कथयाम्यहम् । पिङ्गले चारुपद्माक्षि दुर्भिक्षं नर्मदातटे” । ५१ । “गोमहिष्यो विनश्यन्ति ये चान्ये नटनर्त्तकाः । वासवो वर्षते देवि शस्यञ्च न हि जायते” ॥ “तिलसर्षपमाषादिकार्पासानां महार्घता । गोमहिष्यः सुवर्णानि कांस्यताम्राद्यशेषतः ॥ तत् सर्वं देवि विक्रीय कर्त्तव्यो धान्यसञ्चयः । तेन

धान्येन लोकोऽयं निस्तरिष्यति दुर्दिनम् ॥ पार्थिवामोषकादीनाः कालयुक्ते प्रपीड़िताः"। ५२। "तोयपूर्णाः स्मृता मेघा बहुशस्या च मेदिनी। निष्ठुराः पार्थिवा देवि सिद्धार्थे च वरानने"। ५३। "अल्पतोयघनाश्चैव कीटकाः प्रबला स्मृताः। विरुद्धाः पार्थिवा देवि रौद्रे संवत्सरे प्रिये"। ५४। "दुर्भिक्षं मध्यमं प्रोक्तं व्यवहारो न वर्त्तते। भवेद्दै मध्यमा वृष्टिर्दुर्मतौ समुपस्थिते"। ५५। "दुर्भिक्षं जायते लोकाः सर्वे द्रविणवर्जिताः। प्राणिनां जायते हर्षो दुन्दुभौ वरवर्णिनि"। ५६। "महिषीगोहिरण्यादिताम्रकांस्याद्यशेषतः। तत् सर्वं देवि विक्रीय कर्त्तव्यो धान्यसञ्चयः॥ रक्ते संवत्सरे देवि क्रूरबुद्धिर्नराधिपः। मानवाः क्रूरचेष्टाश्च संग्रामे रुधिरं भवेत्"। ५७। "दुर्भिक्षं मरणं घोरं धान्यौषधिप्रपीड़नम्। पापरोगो भवेद्देवि रक्ताक्ष्येऽमरवन्दिनि"। ५८। "रोगी मरणदुर्भिक्षं विरोधीत्तरसङ्कुलम्। क्रोधे तु विषमं सर्वं समाख्यातं हरप्रिये"। ५९। "मेदिनी लभते देवि सर्वभूतं चराचरम्। देशभङ्गश्च दुर्भिक्षं क्षये संक्षीयते प्रजाः॥ सौराष्ट्रे मालवे देशे दक्षिणे कोङ्कने तथा। दुर्भिक्षं जायते घोरं क्षये संवत्सरे प्रिये॥ कौमुदी नर्मदाद्याश्च यमुना नर्मदातटम्। विन्ध्यायां सैन्धवश्चापि विनश्यति न संशयः॥ सिंहलं मध्यदेशश्च कालञ्जरं तथैव च। क्षये क्षयन्ति सर्वाणि नान्यथा वरवर्णिनि"। ६०। वराहसंहितायाम् "नक्षत्रेण सहोदयमस्तं वा याति येन सुरराजमन्त्री। तत्संज्ञं कर्त्तव्यं वर्षं मासक्रमेणैव। वर्षाणि कार्त्तिकादीनि आग्नेयाद्भद्वयानुयोगीनि क्रमशस्त्रिभञ्च पञ्चममन्त्यमुपान्त्यञ्च विज्ञेयं नक्षत्रेण गुरुभुज्यमाननक्षत्रेण। आग्नेयं कृत्तिका पञ्चमं फाल्गुनं वर्षम् अन्त्यमाश्विनम् उपान्त्यं भाद्रम्। अन्त्योपान्त्यौ त्रिभौ ज्ञेयौ फाल्गु-

नच त्रिभो मतः। शेषा मासास्त्रिभा ज्ञेया कृत्तिकादिव्यवस्थया। द्वे द्वे चित्रादिताराणां पूर्णपर्वेन्दुसङ्गते। समास्त्वेवादयो ज्ञेया स्त्रिभैः षष्ठान्त्यसप्तमाः” इति सङ्कर्षणकाण्डाच्च। पूर्णपर्वेन्दुसङ्गते पौर्णमासीयुते द्वे द्वे तारे तदेकवाक्यतया पूर्ववचने पौर्णमासी लाभः। यथा मासानां पौर्णमास्यां कृत्तिकादिसम्बन्धात् कार्त्तिकादित्वं तथा वर्षाणामपि गुरोः कृत्तिकादावस्तोदयसम्बन्धात् कार्त्तिकादित्वं तेन कृत्तिका रोहिण्योरेकतरस्मिन् गुरोरस्तोदयेऽन्यतरलाभे कार्त्तिकं वर्षम् एवं मार्गशीर्षादि। अत्र वर्षद्वयघटकयोर्नक्षत्रयोरेकतरस्मिन्नस्तं गतो गुरुरन्यतरस्मिन्नुदेति तत्र का गतिरिति चेत् कार्त्तिकोत्तरं मार्गशीर्षं ततः पौषमित्यादिक्रमाद्गतिरिति। फलानि च। शकटानलोपजीविकपीड़ा व्याधिशोकः वृद्धिस्तु रक्तपीतककुसुमानां कार्त्तिके वर्षे ॥ १ ॥ “सौम्येऽब्देऽनावृष्टिमृगाखुशलभाण्डजैश्च शस्यनाशः। व्याधिभयं मित्रैरपि भूपानां जायते वैरम्” ॥ २ ॥ “शुभकृज्जातः पौषे निवृत्तवैराः परस्परं भूपाः। द्वित्रिगुणो धान्यार्घः पौष्टिककर्मप्रसिद्धिः” ॥ ३ ॥ “पितृपूजापरिवृद्धिर्माघे हार्दश्च सर्वभूतानाम्। आरोग्यवृष्टिधान्यार्घसम्पदो वित्तलाभश्च” ॥ ४ ॥ “फाल्गुने वर्षे विद्यात् क्वचित् क्वचित् क्षेमवृष्ट्यादिशस्यानि। दौर्भाग्यं प्रमदानां प्रबलाश्चौरा नृपाश्चोग्राः” ॥ ५ ॥ “चैत्रे मन्दा वृष्टिः प्रियमन्नं क्षेममवनिपा मृदवः। वृद्धिश्च कोषधान्यस्य भवति पीड़ा च रूपवताम्” ॥ ६ ॥ “वैशाखे विगतभया धर्मपराः प्रमुदिताः प्रजाः सनृपाः। यज्ञक्रियाप्रवृत्तिर्निष्पत्तिः सर्वशस्यानाम्” ॥ ७ ॥ “ज्यैष्ठे ज्ञातिकुलधर्मश्रेणी श्रेष्ठा नृपाः स्वधर्मज्ञाः। पीड्यन्ते धान्यानि च हित्वा कङ्गुशमीजानि” ॥ ८ ॥ “आषाढ़े जायन्ते शस्यानि क्वचित् वृष्टिरन्यत्र। योग-

क्षेमं मध्यं शस्यव्यग्रा भवन्ति भूपाः" ॥ ९ ॥ "श्रावणे वर्षे क्षेमं शस्यानि पाकमुपयान्ति। क्षुद्रा ये पार्थिवास्ते पीड्यन्ते ये च तद्भक्ताः" ॥ १० ॥ "भाद्रपदे वल्लीजं निष्पत्तिं याति सर्वशस्यञ्च। न भवत्यपरं शस्यं क्वचित् सुभिक्षं क्वचिच्च दुर्भिक्षम्" ॥ ११ ॥ "आश्वयुजेऽप्यजस्रं पतति जलं प्रमुदिताः प्रजाः क्षेमम्। प्राणचयः प्राणभृतां सर्वेषामर्थबाहुल्यम्" ॥ "रुद्रमैत्राङ्कतिथ्यद्रिविश्वदेवोनविंशतिः। ११। १७। ९। १५। ७। १३। १९। सप्तभिः शेषितच्छाकात् क्रमाद्वर्षादिकं वदेत्। वर्षा धान्यं तृणञ्चैव शीतं घर्मं समीरणम्। प्रजावृद्धिं तत्क्षयञ्च राजविग्रहमेव च" ॥ रुद्रमैत्राङ्कतिथ्यद्रिविश्वदेवोनविंशतिः। एकादशसप्तदशनवपञ्चदशसप्तत्रयोदशोनविंशतयः। तत्र सप्तभिर्हृते शकाब्दे एकावशेषे तद्वर्षे रुद्रसंख्या वर्षा मैत्रसंख्यं धान्यमित्यादि। मालान्यायेन रुद्रमैत्राभ्यां क्षयविग्रहौ ज्ञेयौ। एवं द्व्यवशेषे मैत्रसंख्या वर्षादि। एवमन्यत्र। "जीवार्कबुधमन्दारकाव्यचन्द्रमसः क्रमात्। राजा मन्त्री जलाधीशः शस्यपोऽद्रिहृतात् शकात्" ॥ अत्रापि मालान्यायेन सप्तहृतशकाब्दे एकावशेषे जीवो राजा अर्को मन्त्री बुधो वर्षाधिपः शनिः शस्याधिपः द्व्यवशेषे रव्यादिरेवमन्यत्र। राजफले शौनकः मार्त्तण्डे। "परिशोषमेति सलिलं सोमे पयो विस्तरं क्षौणीजेऽपि च वर्षणं कथमपि ज्ञे च प्रभूतं पयः। पृथ्वी शस्यवती गुरौ भृगुसुते शस्यञ्च नानाविधं मन्दे प्राणिकबन्धशङ्खधवला वर्षाधिपे निश्चितम्। लग्नेशो जन्मराशीशो यस्मिन् वर्षे नृपो भवेत्। उच्चस्थो वा हर्षितो वा क्रूरोऽपि शुभमादिशेत्। त्रिषु तैः शाकवर्षे तु चतुर्भिः शेषिते क्रमात् ॥ आवर्त्तं विद्धि संवर्त्तं पुष्करं द्रोणमम्बुदम्। आवर्त्तो निर्जलो मेघः संवर्त्तश्च बहूदकः ॥ पुष्करो दुष्करजलो द्रोणः शस्य-

प्रपूरकः। पूर्वाषाढ़ां गतो भानुर्जीमूतैर्यदि दृश्यते। तदा त्रयोदशाहानि मिथुनादिषु वर्षति"॥ भुजबलभीमे। "व्रजति यदि कुजः पतङ्गमार्गं घट इव भिन्नतलो जलं ददाति अथ भवति दिवाकराग्रतश्चेत् प्रलयघनानपि शोषयत्यवश्यम्। यावन्मार्त्तण्डसूनुश्चरति धनुरथो मन्मथं मीनकन्ये तावद् भिक्षपीड़ा भवति च मरणं क्षुत्पिपासादिघोरम् उर्व्वीं निस्तूर्यशब्दाशवशिरपटले नर्त्तयन्ते पिशाचाः ग्रामाः शून्या भवेयुर्नरपतिरहिता ह्यस्थिकङ्कालमाला। वक्रं करोति रविजो धरणीसुतो वा मूलर्क्षहस्तमघरेवतिमैत्रभेषु। छत्रोपभङ्गपतनादि च सैनिकानां सर्वत्र लोकमरणं जलधौतदेशः। यदा च सौरिः सुरराजमन्त्रिणा समेत्य तिष्ठेत् क्वचिदृक्षमण्डले। तदाङ्गवङ्गान्ध्रककोशलेषु त्रिभागशेषां कुरुते वसुन्धराम्। तिष्ठेतां यावदेकर्क्षे वाक्पत्यवनिजौ पदे। तावत् क्षुद्रोगसंग्रामात् प्रजानां क्षयमादिशेत्। आरभ्य शुक्लप्रतिपत्तिथिं मार्गात्तु चैत्रकं गर्भोनीहारजलदैरिति प्राहृट्परीक्षणम्। यन्नक्षत्रं गतवति विधौ जायते तत्र गर्भः पश्चादस्मान्नवतिशतके चाह्नि तस्य प्रसूतिः"॥ वराहः। "पञ्चम्यादिषु पञ्चषु कुम्भेऽर्कं यदि भवति रोहिणीयोगः। अधमतमाधममध्यममतिमहदम्भसां पातः। प्रतिपदि मधुमासे भानुवारः सितायां यदि भवति तदा स्यान्निर्जला वृष्टिरब्दे। अविरतजलधारासान्द्रविन्दुप्रवाहैर्धरणितलमशेषं व्याप्यते सोमवारे। अवनितनयवारे वारिवृष्टिर्न सम्यक् बुधगुरुसितवारे शस्यसम्पत् प्रमोदः। जलनिधिरपि सौरे शुष्यते क्वाम्बुवृष्टिः सकलमिदमुदारेणाम्बुवेद्यं पृथिव्याम्। आषाढ्यां पौर्णमास्यां सुरपतिककुभोवातिवातः सुवृष्टिम्। शस्यध्वंसं प्रकुर्य्यादिश दहनदिशो मन्दवृष्टिर्यमेन। नैरृत्यां निष्फला स्यात् वरुणबहुजलो वायुना

वायुकोपः कौवेर्य्यां शस्यपूर्णा भवति समुदिता मेदिनी शम्भुनापि। रवेः कर्कटसंक्रान्तौ द्रेक्काणत्रयभेदतः। आदिमध्यान्तभेदेन वर्षायाः कालनिर्णयः। त्रिंशद्योजनविस्तीर्णं शतयोजनमायतम्। आढ़कस्य भवेन्मानं मुनिभिः परिकीर्त्तितम्। युग्माजगोमीनगते शशाङ्के रविर्यदा कर्कटकं प्रयाति। जलं शताढ़ं हरिकार्मुकेऽर्द्धं वदन्ति कन्या मृगयोरशीतिम्। कुलीरकुम्भालि तुले शशाङ्के षड्भिश्च युक्तां नवतिं वदन्ति। समुद्रे दशभागाः स्युः षड्भागाश्चापि पर्वते। पृथिव्यां चतुरो भागान् सदा वर्षति वासवः। दशादिभिस्तु भागाङ्कैः पूरयित्वा शतादिकम्। विंशत्या हारलब्धाङ्काः समुद्रादौ प्रकीर्त्तिताः"। यदा। १००। तदास ५० प ३० पृ २० यदा ५० स २५ प १५ पृ १० यदा ८० स ४० प २४ पृ १६ यदा ९६ स ४८ प २८ रेखात्रयम्। पृ १९। रेखैका एवमाढ़का ज्ञेयाः। सार्द्धदिनद्वयं कृत्वा पौषे पौषादिना बुधः। गणयेत् कालिकीं वृष्टिमवृष्टिं वानिलक्रमात्। मतान्तरञ्च चापे च मीने परिवृत्तशाके। ज्यैष्ठे शुचौ कर्कटके च सिंहे कन्यातुलायां मकरे च कुम्भे मार्गे स्वयं शुध्यति पौषमासः। शुचेर्निशांशे प्रथमेऽतिवृष्टिः शस्यानि सर्वाण्युपयान्ति सिद्धिम्। आद्ये द्वितीये तिलमुद्गमाषा भागे तृतीये खलु शारदानि। चित्रास्वातीविशाखासु ज्यैष्ठे मासि निरभ्रता। तास्वेव श्रावणे मासि यदि वर्षति वर्षति। शुचौ शुक्ले नवम्याञ्चेत् उदेत्यर्को निरभ्रकः। परिवेशो मध्यदिने चास्तं यातो घनावृतः। त्र्यहं द्विकमथैकं वा वृष्टिमिष्टां समादिशेत्। अश्लेषायां गतो भानुर्यदि वृष्टिं न मुञ्चति। मघापञ्चकमासाद्य करोत्येकार्णवां महीम्। चतुर्थ्यां कर्कटस्थार्के वृष्टिर्जानपदे यदि। विफलाः सर्वसंक्लेशाः कर्षकाणां भवन्ति च। दृष्टे द्युभागे प्रथमे सुवृष्टि-

र्भवेत् द्वितीये तिलकीटसर्पाः। वृष्टिस्तु मध्यापरभागवृष्टेर्निश्छिद्रवृष्टिस्तु निशाप्रवृत्ते। स्वातीमैत्रैन्द्ररुद्रेषु प्राजापत्योत्तरासु च। सञ्चरन् जलदान् हन्ति भौमः संवर्त्तकानपि। चित्रां गते भृगौ जीवे सौरियुक्तेऽम्बुवर्षणम्। शुभायुक्तसिंहकुजे शोषं याति महाघनः। पापवर्षंशुभायुक्त तुलाशुक्रे महार्घता। प्रावृषि शीतकरो भृगुपुत्रात् सप्तमराशिगतः शुभदृष्टः। सूर्य्यसुतान्नवपञ्चमगो वा सप्तमगश्च जलागमनाय। श्रीपतिव्यवहारनिर्णये। "माघे मासि च सप्तम्यां पञ्चम्यां फाल्गुनस्य च। चैत्रस्य तृतीयायां वैशाखप्रथमेऽहनि मेघस्य गर्जितं श्रुत्वा जलदस्य च दर्शने। आरभ्य चतुरो मासान् सम्यग्वर्षति वासवः॥ सप्तम्यां स्वातियोगे यदि भवति नभो दृष्टचन्द्रार्कतारं विज्ञेया प्रावृडेषा बहुजलविपुला सर्वशस्यानुकूला। वर्षप्रश्ने सलिलराशिमाश्रित्य चन्द्रो लग्नं यातो भवति यदि वा केन्द्रगः शुक्लपक्षे। सौम्यैर्दृष्टः प्रचुरमुदकं पापदृष्टोऽल्पमम्भः प्रावृट्काले सृजति हि तदा चन्द्रवत् भार्गवोऽपि। प्रश्नात् सद्यो वृष्टिज्ञानम्। "यद्येकराशौ वसतः सितेन्दुजौ पयोऽतिपूर्णां कुरुते वसुन्धराम्। तयोश्च मध्ये यदि पद्मबान्धवो न संशयं शोषमुपैति मेदिनी। विनोपघातेन पिपीलिकानामण्डोपसंक्रान्तिरहिव्यवायः। द्रुमादिरोहश्च भुजङ्गमानां वृष्टिर्निदानानि गवां प्लुतानि। रथ्यायां शिशवः सेतून् रवान् भेकाश्च कुर्वते पवनश्च यदा शीतो वात्यायाश्च विवर्त्तनम्। गवां निरीक्षणं व्योम्नि तदाश्वेव प्रवर्षति"॥ भौमपराक्रमे। "तरुशिखरेषु गताः कृकलासा गगनतलस्थिरदृष्टिनिपाताः। यदि गवां निरीक्षणमूर्द्धं निपतति वारिपतनमचिरेण। यदि स्थिता गृहपटलेषु कुक्कुरा रुवन्ति वा यदि विततं दिवोन्मुखाः दिवातलं मुदित पिनाकिदिङ्मुखा तथा

क्षमा भवति जलौघसंप्लुता निदाघवातातप उष्णशीतले रटन्ति मण्डूकशिवाह्विचातकाः मयूरकण्ठद्युति सूर्य्यमण्डले दिनत्रयं वा विपतन्ति भूतले" ॥ बृहस्पतिः । "कुषीदं कृषिवाणिज्यं प्रकुर्वीता स्वयं कृतम् । आपत्काले स्वयंकुर्वन्नैनसा लिप्यते द्विजः ॥ राज्ञे च दत्त्वा षड्भागं देवतानाञ्च विंशकम् । त्रिंशद्भागञ्च विप्राणां कृषिं दत्त्वा न दोषभाक्" ॥ तथा "मूषितं घातितं यत्र सीमायाश्च समन्ततः । अकृतोऽपि भवेत् साक्षी ग्रामस्तत्र न संशयः" ॥ हारीतः । "अष्टागवं धर्म्महलं षड्गवं जीवितार्थिनाम् । चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं ब्रह्मघातिनामिति विष्णुधर्म्मोत्तरे पाठः । "अह्नः पूर्वं द्वियामं वा धुर्य्याणां वाहनं स्मृतम् । विश्रामेन्मध्यभागे च भागे चान्ते यथासुखम्" ॥ उशनाः । "गोभिः प्रणाशितं धान्यं यो नरः प्रतियाचते । पितरस्तस्य नाश्नन्ति नाश्नन्ति च दिवौकसः" ॥ ज्योतिषे । "हशपूरीरवं मूल्यं पक्षादौ लक्षयेद्बुधः । उक्तमूले समं विद्याच्छेषे धान्यमधःक्षयः ॥ हस्ताशतभिषा पूर्वादित्रयरोहिण्यः । उत्तरादित्रयकृत्तिकामूलारेवत्यः हशेत्याद्यक्षरात् सूचिताः ॥ रवौ शनौ कुजे वारे पौषे दर्शो भवेद् यदि । तदा धान्यस्य मूलं स्यादेकद्वित्रिगुणं क्रमात् ॥ दर्शे पौषस्य रात्रौ चेत् ज्येष्ठामूलाजलानि च । क्रमान्मूल्यविवृद्धिः स्यात् धान्यानां वत्सरे तथा ॥ संक्रान्ति ऋक्षं तिथिवारयुक्तं द्रव्याक्षरं रामहृतं भवेत्तु । एके समर्घं समतां द्वितीये शून्ये महार्घं मुनयो वदन्ति ॥ यमाद्विशक्राग्निहुताशपूर्वा नेष्टाः क्रये विक्रयणे प्रशस्ताः पौष्णाश्विचित्राशतविष्णुवाताः क्रये हिता विक्रयणे निषिद्धाः" ॥ विष्णुधर्म्मोत्तरे । "क्षिप्राणि यानि ऋक्षाणि चराणि च मृदूनि च । वाणिज्ये तानि शस्यन्ते तिथिं रिक्तां विवर्जयेत् ॥ प्रतिपद्द्वादशीषष्ठीनक्षत्राणि

ध्रुवाणि च । कुषीदे वर्जनीयानि दिनं सूर्य्यसुतस्य च" ॥ क्रयविक्रयनक्षत्राणि । "दर्शाष्टमीभूततिथिप्रजेशपूर्वोत्तराकेशवयाम्यचित्राः । क्रूराह्नविष्टिव्यतिपातयोगा नेष्टा गवां विक्रयचालनादौ ॥ आजं यमद्वन्द्वमहित्रयञ्च शक्रद्वयं वायुयुगं महेशः । कार्य्यो न चैतेषु धनप्रयोगो मृदौ गणे ग्राह्यमृणं न देयम्" ॥ धनप्रयोगनिषेधः ।

अथाद्भुतम् । अद्भुतसागरे आथर्वणाद्भुतवचनं प्रकृतिविरुद्धमद्भुतवचनम् । प्रकृतिविरुद्धमद्भुतमापदः प्राक् प्रबोधाय देवाः सृजन्तीति । तेनापज्ज्ञानाय भूम्यादीनां पूर्वं स्वभावप्रच्यवो देवकर्त्तृकोऽद्भुत इति । एवञ्च बुधोदयपर्वणि ग्रहादीनां गणितागणितत्वेन प्रकृतानामपि यदुत्पातत्वं तद्भाक्तं तत्कारणञ्च गर्गसंहिता-वार्हस्पत्ययोः । "अतिलोभादसत्याद्वा नास्तिक्याद्वाप्यधर्मतः । नरापचारान्नियतमुपसर्गः प्रवर्त्तते ॥ ततोऽपचारान्नियतमपवर्जन्ति देवताः । ताः सृजन्त्यद्भुतांस्तास्तु दिव्यनाभसभूमिजान् । त एव त्रिविधा लोके उत्पाता देवनिर्मिताः । विचरन्ति विनाशाय रूपैः सम्बोधयन्ति च" ॥ तांश्च परं न दर्शयेदित्याह विष्णुः । "नोत्पातं दर्शयेदिति" । तत्र वेलानक्षत्रमण्डलनिरूपणम् । यथा दीपिकायाम् । "प्राग्द्वित्रिचतुर्थयामेषु द्युनिशोरद्भुतेषु सर्वेषु अनिलाग्निशक्रवरुणा मण्डलपतयः शुभाशुभाभैश्च । अर्य्यमादिचतुष्कचन्द्रतुरगादित्येषु वायुर्भवेत् देवेज्याजविशाखयाम्ययुगले पित्र्यद्वये चानलः । विश्वादित्रयधातृमैत्रयुगलेष्विन्द्रो भवेन्मण्डलः सर्पोपान्त्यमृगन्त्यमूलयुगले शानेष्वपामीश्वरः । पवनदहनो नेष्टो योगस्तयोरतिदुष्करः । सुरपवरुणौ शस्तौ योगस्तयोरतिशोभनः सवरुणमरुन्मिश्रः शक्रस्तथाग्निसमायुतः । फलविरहितः सेन्द्रो वायुस्तथाग्नियुतोऽम्बुपः । यन्मण्डलेऽद्भुतं

जातं शान्तिस्तद्देवताश्रया तथा शान्तिद्वयं कार्य्यं मण्डलद्वयजाद्भुत" ॥ विष्णुधर्म्मोत्तरे। "ग्रहर्क्षवैकृतं दिव्यमान्तरीक्षं निबोध मे। उल्कापातो दिशां दाहः परिवेशस्तथैव च ॥ गन्धर्व्वनगरञ्चैव वृष्टिश्च विकृता तथा। एवमादीनि लोकेऽस्मिन् नाभसानि विनिर्दिशेत्। चरस्थिरभवं भौमं भूकम्पमपि भूमिजम्। जलाशयानां वैकृत्यं भौमं तदपि कीर्त्तितम्। भौमं चाल्पफलं ज्ञेयं चिरेण परिपच्यते। नाभसं मध्यफलदं मध्यकालफलप्रदम्। दिव्यं तीव्रफलं ज्ञेयं शीघ्रकारि तथैव च। शीतोष्णताविपर्य्यासो ऋतूनां रिपुजं भयम्। पुष्पे फले च विकृते राज्ञो मृत्युं तथा दिशेत्। अकालप्रभवा नार्य्यः कालातीताः प्रजास्तथा। विकृताः प्रसवाश्चैव युग्मप्रसवनं तथा। हीनाङ्गा अधिकाङ्गाश्च जायन्ते यदि वा त्रयः। पशवः पक्षिणश्चैव तथैव च सरीसृपाः। विनाशं तस्य देहस्य कुलस्य च विनिर्दिशेत्। प्रदोषे कुक्कुटारावो हेमन्ते चापि कोकिलाः। अर्कोदयेऽर्काभिमुखः श्वारावो नृभयं दिशेत्। उलूको वसते यत्र निपतेद्वा तथा गृहे। ज्ञेयो गृहपतेर्मृत्युर्धननाशस्तथैव च। गृध्रः कङ्कः कपोतश्च उलूकः श्येन एव च। चिल्लश्च चर्म्मचिल्लश्च भासः पाण्डर एव च। गृहे यस्य पतन्त्येते गेहं तस्य विपद्यते। पक्षान्मासात्तथा वर्षान्मृत्युः स्याद् गृहमेधिनः। पत्न्याः पुत्रस्य वा मृत्युर्द्रव्यञ्चापि विनश्यति। ब्राह्मणाय गृहं दत्त्वा दत्त्वा तन्मूल्यमेव वा। गृह्णीयाद् यदि रोचेत शान्तिञ्चेमां प्रयोजयेत्; मांसास्थीनि समादाय श्मशानाद् गृध्रवायसाः। श्वाशृगालोऽथवा मध्ये पुरस्य प्रविशन्ति चेत्। विकिरन्ति गृहादौ च श्मशानं सा मही भवेत्। चौरैश्च हन्यते लोकः परचक्रसमागमः। संग्रामश्च महाघोरो दुर्भिक्षं मरकन्तथा। अद्भुतानि प्रसूयन्ते तत्र देशस्य विद्रवः। अकाले

फलपुष्पाणि देशविद्रवकारणम्”। मत्स्यपुराणे। “अतिवृष्टिरनावृष्टिर्दुर्भिक्षादिभयं मतम्। अनृतौ तु दिनादूर्द्ध्वं वृष्टिर्ज्ञेया भयाय च। निरभ्रे वाथ रात्रौ वा श्वेतं याम्योत्तरेण तु। इन्द्रायुधं ततो दृष्ट्वा उल्कापातं तथैव च। दिग्दाहपरिवेशौ च गन्धर्वनगरं तथा। परचक्रभयं विद्याद्देशोपद्रवमेव च”। भासो वनकुक्कुटः। कंसनिधनसूचने हरिवंशः। “वक्रमङ्गारकश्चक्रे चित्रायां घोरदर्शनः। चलत्यपर्वणि महौ गिरीणां शिखराणि च”॥ वाणोत्पाते स एव। “दक्षिणां दिशमास्थाय धूमकेतुः स्थितो भवेत्। वक्रमङ्गारकश्चक्रे कृत्तिकासु भयङ्करः”॥ कृत्यचिन्तामणौ। “त्यक्ता शौचविवेकतत्त्व वसुधा लोकाः क्षुधापीड़िताः विप्रा वेदहतास्तथाप्रचलिता वह्नाग्निनो दुःखिताः। क्षौणी मन्दफला नृपाश्च विकलाः संग्रामघोरा महौ प्रेताघातदुरन्तपीड़िततरा देवेज्यराह्वोर्युतौ। रक्ते शास्त्रोद्योगो मांसास्थिवशादिभिर्मरकः। धान्यहिरण्यत्वक्फलकुसुमाद्ये वर्षिते भयं विद्यात्। अङ्गारपांशुवर्षे विनाशमुपयाति तन्नगरम्। उपलं विना जलधरैर्विकृता वा यदा प्राणिनो वृष्ट्या। छिद्रं वाप्यतिवृष्टिं शस्यानामीति संजननम्”। बुधकौशिकसंवादे। “वल्वग्राः प्रपाते च फलं शरटस्य प्ररोहणे। शीर्षे राजश्रियोऽवाप्तिर्भानौ चैश्वर्य्यमेव च। कर्णयोर्भूषणावाप्तिर्नेत्रयोर्बन्धुदर्शनम्। नासिकायाश्च सौगन्ध्यं वक्त्रे मिष्टान्नभोजनम्। कण्ठे चैव श्रियोऽवाप्तिर्भुजयोर्विभवो भवेत्। धनलाभो बाहुमूले करयोर्धनवृद्धयः। स्तनमूले च सौभाग्यं हृदि सौख्यविवर्द्धनम्। पृष्ठे नित्यं महीलाभः पार्श्वयोर्बन्धुदर्शनम्। कटिद्वये वस्त्रलाभो गुह्ये मृत्युसमागमः। जङ्घे चार्थक्षयो नित्यं गुदे रोगभयं भवेत्। ऊर्वोस्तु वाहनावाप्तिर्जानुजङ्घेऽर्थसंक्षयः। वामदक्षिणयोः पादोर्भ्रमणं

नियतं भवेत्। वल्ल्याः प्ररोहणे चैव पतने शरटस्य च। व्यत्यासाच्च फलञ्चैव तद्वदेवं प्रजायते। वल्ल्याः प्ररोहणं रात्रौ शरटस्य प्रपातनम्। निधनार्थाय भवति व्याधिपीड़ा विपर्य्ययौ। पतनानन्तरञ्चैवारोहणं यदि जायते। पतने फलमुत्कृष्टं रोहणेऽन्यत् फलं भवेत्। आरोहणञ्चोर्द्ध्ववक्त्रे अधोवक्त्रे च पातनम्। भवेदिष्टफलं तस्य तत्फलं जायते ध्रुवम्। स्पृष्टमात्रेण यः सद्यः सचेलं जलमाविशेत्। पञ्चगव्यप्राशनञ्च कुर्य्यादर्कावलोकनम्। वल्लीरूपं सुवर्णस्य रक्तवस्त्रेण वेष्टयेत्। पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैस्तदग्रे पूर्णकुम्भके। पञ्चगव्यं पञ्चरत्नं पञ्चामृतं स पल्लवम्। पञ्चवृक्षकषायञ्च निक्षिप्यावाहयेत्ततः। पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैर्लोकपालांस्तथा क्रमात्। मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण समिद्भिः खदिरैः शुभैः। तिलैर्व्याहृतिभिर्होममष्टोत्तरसहस्रकम्"। वल्ली गृहगोधिका। मृत्युञ्जयमन्त्रस्त्र्यम्बकमन्त्र इति विद्याकरः। गर्गसंहितावार्हस्पत्ययोः। "ये तेषु शान्तिं कुर्वन्ति न ते यान्ति पराभवम्। ये तु न प्रतिकुर्वन्ति क्रिययाऽश्रद्धयान्विताः। दाम्भिक्याद्वा विमोहाद्वा विनश्यन्त्येव तेऽचिरात्"। अत्र निमित्तनिश्चयवतोऽधिकारः अन्यथा दोष इत्याह मत्स्यपुराणम्। "भिन्नमण्डलवेलायां ये भवन्त्यद्भुताः क्वचित्। तत्र शान्तिद्वयं कार्य्यं निमित्ते सति नान्यथा। निर्निमित्तकृता शान्तिर्निमित्तमुपपादयेत्"। एतच्च तत्तद्विशेषविहितशान्तिविषयम्। अन्यथा वेलामण्डलसन्देहे शान्तिर्न स्यात्। अतएवोक्तं योगियाज्ञवल्क्येन। "यत्र यत्र च संकीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः। तत्र तत्र तिलैर्होमो गायत्र्या समुदाहृतः। गायत्र्या प्रयतः शुद्धः सर्वपापैः प्रमुच्यते। शान्तिकामश्च जुहुयात् गायत्रीमक्षतैः शुचिः। हन्तुकामश्च नृपतेर्हुं तेन जुहुयात् शुचिः। सावित्र्या शान्तिहो-

मांश्च कुर्य्यात् पर्वसु नित्यशः। प्रणवव्याहृतिभ्याञ्च स्वाहान्ताहोमकर्मणि। प्रतिलोमा प्रयोक्तव्या फट्कारान्ताभिचारिके”। विश्वामित्रेणापि निमित्तसन्देहे कृच्छ्रादीन्युक्तानि यथा। “कृच्छ्रचान्द्रायणादीनि शुद्ध्यभ्युदयकारणम्। प्रकाशे च रहस्ये च संशयेऽनुक्तकेऽस्फुटे”। मार्कण्डेयपुराणम्। “दिग्देशजनसामान्यं नृपसामान्यमात्मनि। नक्षत्रग्रहसामान्यं नरो भुङ्क्ते शुभाशुभम्। परम्पराभिरक्षाभिर्ग्रहदोषेषु जायते”। तथा। “तस्माच्छान्तिपरः प्राज्ञो लोकवादरतस्तथा। लोकवादांश्च शान्तींश्च ग्रहपीड़ासु कारयेत्। भूदोहानुपवासांश्च शस्तचैत्याभिवन्दनम्। कुर्य्यात् होमं तथा दानं श्राद्धं क्रोधविवर्द्धनम्। अद्रोहं सर्वभूतेषु मैत्रीं कुर्य्याच्च पण्डितः। वर्जयेदुषतीं वाचमतिवादास्तथैव च। ग्रहपूजाञ्च कुर्वीत सर्वपीड़ासु मानवः। एवं शाम्यन्त्यशेषाणि घोराणि द्विजसत्तम। प्रयतानां मनुष्याणां ग्रहर्क्षोत्थान्यनेकशः”। लोकवादाश्च तत्रैवोक्ता यथा। “आकाशाद्देवतानाञ्च देव्यादीनाञ्च सौहृदात्। पृथिव्यां प्रतिलोके च लोकवादा इति स्मृताः”। ते च सर्वभूतडाकिन्याद्यभिभवशान्त्यर्थं लौकिकौषधमन्त्रादयः विषहरीमङ्गलचण्डिकागीतादयः चैत्यवृक्षादौ क्षेत्रपालदेवतापूजा च। तथा चापस्तम्बः। “स्त्रीभ्योऽवरवर्णेभ्यो धर्मशास्त्रं प्रतीयादित्येक इति”। धर्मशेषान् श्रुतिस्मृतिसदाचारेष्वप्रसिद्धानिति नारायणोपाध्यायः। भूदोहश्च पात्रं विना भूमौ गोस्तनं निष्पीड्य दुग्धोत्सर्गः। चैत्यः पूज्यत्वेन ख्यातो वृक्षः। तथा च बाणोत्पाते हरिवंशः। “अनेकशाखश्चैत्यश्च निपपात महीतले। अर्चितः सर्वकन्याभिर्दानवानां महात्मनाम्”॥ उषतीमकल्याणीम्। अतिवादश्च पूज्यमतिक्रम्य भाषणम्। मत्स्यपुराणम्। “काकस्यै-

करवश्राव: प्रभाते दुःखदायकः। काको मैथुनकासक्तः श्वेतो वा यदि दृश्यते ॥ उलूको वसते यत्र निपतेद्वा तथा गृहे। ज्ञेयो गृहपतेर्मृत्युर्धननाशस्तथैव च" ॥ वराहसंहितायाम्। "क्रीड़ानुरक्तो रतिमांसलुब्धो भीतो रुजार्त्तः पतितो विहङ्गः। नासौ गृहस्थस्य विनाशहेतुर्दोषः समुत्पाद्यत आहुरार्य्याः ॥ गृहे पक्षिविकारेषु कुर्य्याच्चामरतर्पणम्। देवाः कपोता इति वा जप्तव्यं सप्तभिर्द्विजैः ॥ गावश्च देया विविधा द्विजानां सकाञ्चना वस्त्रयुगोत्तरीयाः। एवंकृते पापमुपैति शान्तिं मृगैर्द्विजैर्वापि निवेदितं यत्" ॥ द्विजैः पक्षिभिः अपि नाऽन्यैरपि।' भुजबलभीमे। "एकोवृषस्त्रयोगावः सप्ताश्वा नव दन्तिनः। सिंहप्रसूतिकाश्चैव कथिताः स्वामिघातकाः" ॥ मत्स्यपुराणे। "अङ्गे दक्षिणभागे तु शस्तं विष्फुरणं भवेत्। अप्रशस्तं तथा वामे पृष्ठस्य हृदयस्य च ॥ लाञ्छनं पिटकं चैव ज्ञेयं विष्फूर्जितं तथा। विपर्य्ययेण विहितं सर्वं स्त्रीणां फलं तथा ॥ अनिष्टचिह्नोपगमे द्विजानां कार्य्यं सुवर्णेन च तर्पणं स्यात्" सिंहप्रसूतिका गावः। शङ्खः। "दुःस्वप्नानिष्टदर्शनादौ घृतं हिरण्यञ्च दद्यादिति"। मात्स्ये। "नमस्ते सर्वलोकेश नमस्ते भृगुनन्दन। कवे सर्वार्थसिद्ध्यर्थं गृहाणार्घ्यं नमोऽस्तु ते ॥ एवं शुक्रोदये कुर्वन् यात्रादिषु च कारयेत्। सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोके महीयते ॥ नमस्तेऽङ्गिरसां नाथ वाक्पतेऽथ बृहस्पते। क्रूरग्रहैः पीड़ितानाममृताय नमो नमः ॥ संक्रान्तावपि कौन्तेय यात्रास्वभ्युदयेषु च। कुर्वन् बृहस्पतेः पूजां सर्वान् कामान् समश्नुते" ॥ वैष्णवामृते व्यासः। "ग्रहयज्ञैः शान्तिकैश्च किं क्लिश्यन्ति नरा द्विज। महाशान्तिकरः श्रीमांस्तुलस्या पूजितो हरिः ॥ उत्पातान् दारुणान् पुंसां दुर्निमित्ताननेकशः। तुलस्या पूजितो भक्त्या

महाशान्तिकरो हरिः" ॥ अत्र ब्रह्मपुराणीयो मन्त्रः। "नमस्ते बहुरूपाय विष्णवे परमात्मने स्वाहेति"। छन्दोगपरिशिष्टम्। "अथातो रजस्वलाभिगमने गोऽश्वभार्य्यासु गमने यमजजनने विजातीयजनने वा काककङ्कगृध्रवकश्येनभासभिल्लकपोतानां गृहप्रवेशे महिषस्योपरि विश्रामणे एषामेव क्रियमाणे गृहद्वारारोहणे वाद्भुतेषु कल्पदृष्टेन विधिनाऽग्निमुपसमाधाय प्रायश्चित्ताज्याहुतीर्जुहोति अद्भुताय अग्नये स्वाहा सोमाय विष्णवे रुद्राय वायवे सूर्य्याय मृत्यवे विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहेति स्थालीपाकहुतान्यादिति" ॥ कपोतं विशेषयति शौनकः। "रक्तपादः कपोताख्यो अरण्यौकाः शुकच्छविः। स चेच्छालां विशेच्छाला समीपस्थं व्रजेद्यदि ॥ अन्येषु गृहमध्ये वा वल्मीकस्योद्गमादिषु" ॥ कल्पदृष्टेन विधिना गृह्योक्तेन प्रायश्चित्ताज्याहुतीः अद्भुतदोषप्रशमनार्थाः सप्ताज्याहुतीः। अद्भुतायाग्नये स्वाहा इत्यादिमन्त्रैः तत्र स्थालीपाकेतिकर्त्तव्यतायां पायसचरुभिरेतेभ्यो देवेभ्यो जुहुयात्। छन्दोगपरिशिष्टम्। "पश्चात् घृतपायसेन ब्राह्मणान् भोजयित्वा गोवरं दत्त्वा शान्तिर्भवतीति गोवरं गोश्रेष्ठं दक्षिणां तां गां कृत्वा दोषशान्तिर्भवतीति"। तथाचोक्तम्। "गौर्विशिष्टतमा लोके देवेष्वपि निगद्यते। न ततोऽन्यद्वरं यस्मात्तस्माद्गौर्वरमुच्यते" ॥ छन्दोगपरिशिष्टम्। "यस्त्वेषामन्यतममापन्नः प्रायश्चित्तं न कुर्य्यात् तस्य गृहपतेर्मरणं सर्वस्वनाशो वा भवति तस्मात् प्रायश्चित्तं कर्त्तव्यं कर्मापवर्गे वामदेव्यगान शान्तिः शान्तिरिति" अपवर्गे समाप्तौ। वामदेव्यगानं शान्तिः कार्य्या आवृत्तिः प्रकरणसमाप्त्यर्था। बार्हस्पत्ये। "शमयन्त्या सप्ताहात् कम्पादिकृतं निमित्तमाश्वेव। अतिवर्षणोपवासव्रतदीक्षाजप्यहवनानि" ॥ वराहः। "ये च न दोषं जनयन्त्युत्पातांस्तानृतुस्वभावकृतान्

ऋषिपुत्रकृतैः श्लोकैर्विद्यादेभिः समासोक्तैः"। तथा च मत्स्यपुराणम्। "वज्राशनिमहीकम्पसन्ध्यानिर्घातनिस्वनाः। परिवेशरजोधूमरक्तार्कास्तमयोदयाः। द्रुमेभ्योऽथ रसस्नेहमधुपुष्पफलोद्गमाः। गोपक्षिमदवृद्धिश्च शिवाय मधुमाधवे। तारोल्कापातकलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलम्। अनग्निज्वलनं स्फोटं धूमरेणुमिवाकुलम्। रक्तपद्मारुणा सन्ध्या नभःक्षुब्धार्णवोपमम्। सरितां चाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं वदेत्। शक्रायुधपरीवेशौ विद्युच्छुष्कविरोहणम्। कम्पोद्वर्त्तनवैकृत्यं रसनं दरणं क्षितेः। नद्युदपानसरसां वृष्टर्द्धा भवनप्लवाः। पतनञ्चाद्रिगेहानां वर्षासु न भयावहम्"॥ हरिवंशे वर्षावर्णनायाम्। "क्वचित् कन्दरहासाढ्यं शिलीन्ध्राभरणं क्वचित्" इति दर्शनात् वर्षासु शिलीन्ध्रोद्गमो न भयावहः। "दिव्यस्त्रीभूतगन्धर्वविमानाद्भुतदर्शनम्। ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनञ्च दिवाम्बरे॥ गीतवादित्रनिर्घोषो वनपर्वतसानुषु। शस्यवृद्धिरसोत्पत्तिरपापाः शरदि स्मृताः॥ शीतानिलतुषारत्वं नर्दनं मृगपक्षिणाम्। रक्षोयक्षादिसत्त्वानां दर्शनं वागमानुषी॥ दिशो धूमान्धकाराश्च शलभा वनपर्वताः। उच्चैः सूर्य्योदयास्तत्वं हेमन्ते शोभना मताः॥ हिमपातानिलोत्पातविरूपाद्भुतदर्शनम्। दृष्टाञ्जनाभमाकाशं तारोल्कापातपिञ्जरम्॥ चित्रागर्भोद्भवाः स्त्रीषु गोजाश्वमृगपक्षिणाम्। पत्राङ्कुरलतानाञ्च विकाराः शिशिरे शुभाः॥ ऋतुस्वभावजा ह्येते दृष्टाः स्वर्त्तौ शुभावहाः। ऋतावन्यत्र चोत्पाता दृष्टास्ते भृशदारुणाः॥ उन्मत्तानाञ्च या गाथाः शिशूनां चेष्टितञ्च यत्। स्त्रियो यच्च प्रभाषन्ते तत्र नास्ति व्यतिक्रमः॥ पूर्वं चरति देवेषु पश्चाद्गच्छति मानुषान्। नादेषिता वाग्वदति सत्या ह्येषा सरस्वती"॥ बृहस्पतिः। "ज्योतिर्ज्ञानं तथोत्पात-

मविदित्वा तु ये नृणाम्। श्रावयन्त्यर्थलोभेन विनेयास्तेऽपि यत्नतः" ॥ विनेया दण्डनीयाः।

अथ यात्रा। मत्स्यपुराणे। "ऋक्षेषु षट्सु शुद्धेषु ग्रहेष्वनुग्रहेषु च। प्रश्नकाले शुभे जाते परान् यायान्नराधिपः" ॥ ऋक्षेषु षट्सु नाड़ीनक्षत्रेषु। दुर्ग्रहवतान्तु "अर्थो ह्यनर्थतां याति दुर्भगाणां यथा विभो। विषमे तत्समुद्भूतमस्माच्चामृतकाङ्क्षया" ॥ अस्मात् समुद्रमथनात्। भागुरिः। "दिगीशं हृदये ध्यात्वा गन्तव्याशामुखः स्थितः। अन्तःसमीरणे देहप्रवेशे समुपस्थिते। स्वस्तीति दक्षिणं पादमासनादवतारयेत्"। राजमार्त्तण्डे। "व्रजेद्दिगीशं हृदये निधाय यथेन्द्रमैन्द्र्यामपरास्व तद्वत्। सुशुक्लमाल्याम्बरभृन्नरेन्द्रो विसर्जयेद्दक्षिणपादमादौ। स्नातः सिताम्बरधरः सुमनाः सुवेशः संपूजितोऽमरगुरुद्विजगोदिगीशः। कृत्वा प्रदक्षिणशिखं शिखिनं कृताशीर्गच्छेन्नरः शकुनसूचितकार्य्यसिद्धिः" विष्णुपुराणम्। "माङ्गल्यपुष्परत्नाद्यैः पूज्याननभिवाद्य च। न निष्क्रमेत् गृहात् प्राज्ञः सदाचारपरो नरः ॥ गृहाद् गृहान्तरं गर्गः सीम्नः सीमान्तरं भृगुः। शरक्षेपाद्भरद्वाजो वशिष्ठो नगराद्बहिः" ॥ यात्रानन्तरं वराहः। "संत्यजेद्भोजनागारं तथा शयनमन्दिरम्। दूरस्थं जलमध्यस्थं शयानं व्याधिपीड़ितम् ॥ गच्छन्तमपि यानस्थं ब्राह्मणं नाभिवादयेत्" ॥ बृहत्यात्रायां राजमार्त्तण्डे "प्राच्यामहानि मुनयः प्रवदन्ति सप्त याम्यामतीव शुभदानि दिनानि पञ्च। त्रीण्येव पश्चिमदिशि क्षितिनायकानां प्रस्थानकेषु दिवसत्रयमुत्तरस्याम् ॥ एतच्चायुक्तमित्याहुर्होराशास्त्रविदो बुधाः। यात्रां त्रिपञ्चसप्ताहा पुनर्भद्रेण योजयेत् ॥ वाञ्छितार्थफलावाप्तौ यात्रापरिसमाप्यते। जन्मर्क्षे चाष्टमे चन्द्रे वारे भौमशनैश्चरे ॥ प्रस्थितेऽपि न गन्तव्यमत्यन्तगर्हिते दिने। जन्मभे जन्ममासे वा योग-

च्छेदष्टमे विधौ ॥ आयुक्षयमवाप्नोति व्याधिञ्च वधबन्धने" ॥ विष्णुपुराणम् । "वर्षातपादिके छत्री दण्डी रात्र्यटवीषु च । शरीरत्राणकामो वै सोपानत्कः सदा व्रजेत् ॥ नोर्द्ध्वं न तिर्य्यग्दूरं वा निरीक्षन् पर्य्यटेत् बुधः । युगमात्रं महीपृष्ठं नरो गच्छेद्विलोकयन् ॥ चतुष्पथान्नमस्कुर्य्यात् चैत्य वृक्षं तथैव च । प्रश्ने मनोरमाभूमाङ्गल्यद्रव्यदर्शनश्रवणे ॥ यदि वादरेण पृच्छति दैवज्ञं निर्दिशेद्विजयम्" ॥ यात्राप्रश्नविधिः । "स्तनचरणतलोष्ठाङ्गुष्ठहस्तोत्तमाङ्गश्रवणवदन-नासा गुह्यरन्ध्राणि भूपः । स्पृशति यदि कराग्रैर्गण्डकव्यशकं वा द्युतिगतिशुभशब्दान् व्याहरन् शास्ति शत्रून्" ॥ प्रश्ने स्पर्शादिभिर्जयज्ञानम् । व्यासः । "चिरप्रवासयात्रायां गृहे कर्णस्य वेधने । चूड़ाकृतौ प्रतिष्ठायां भानुशुद्धिर्विधीयते ॥ आरोग्यमृक्षेण धनं क्षणेन कार्य्यस्य सिद्धिं तिथिनाप्नुयाच्च । राश्युद्गमे चाध्वनि सिद्धिमाहुः प्रायः शुभानि क्षणदाकरेण" ॥ संवत्सरप्रदीपे । "सिंहे धनुषि मीने च स्थिते सप्ततुरङ्गमे । यात्रोद्वाहगृहारम्भक्षौरकर्माणि वर्जयेत्" ॥ एष यात्राप्रतिषेधो राजेतरपरः । "मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद्यात्रां महीपतिः । फाल्गुनं वाथ चैत्रं वा मासं प्रति यथाबलम्" ॥ इति मनुवचनात् । "श्रावणे भाद्रमासे युवतिगृहगते चार्थलाभः प्रदिष्टो मासे पौषे तु यात्रा भवति नरपतेरर्थसिद्धिप्रदात्री" इति राजमार्त्तण्डाच्च । "शुक्लाद्या स्याच्छुभे चन्द्रे कुजार्कभृगुराशिगे । तत्पक्षे शुभदा यात्रा कृष्णपक्षे ततोऽन्यथा" ॥ यात्रायां पक्षशुद्धिः । "षष्ठाष्टमौ द्वादशीषु न गच्छेत् त्रिदिनस्पृशि । पूर्णिमाप्रतिपद्दर्शरिक्तावमदिनेषु च ॥ तथा यामद्वितीयायां यात्रायां मरणं भवेत् । अजातचन्द्रा प्रतिपत्तिथिर्या सा सर्वथा सिद्धिकरी न पुंसाम् ॥ कलौ न चन्द्रा प्रतिपत्तिथिर्या सा सर्वदा सिद्धिकरी नियुक्ता ।

प्रतिपत्सु प्रयातानां सिद्धिरेव न संशयः। द्वितीयायां शुभः पन्थास्तृतीयायां जयो भवेत्॥ वधबन्धनसंक्लेशश्चतुर्थ्यां नात्र संशयः। पञ्चम्यामीप्सितार्थः स्यात् षष्ठ्यां व्याधियुतो भवेत्॥ सप्तम्यामर्थलाभः स्यादष्टम्यामस्त्रपीड़नम्। नवम्यां मृत्युसंयोगान्न गन्तव्यं कदाचन॥ दशम्यां भूमिलाभः स्यादेकादश्यामरोगिता। द्वादश्याञ्च न गन्तव्यं सर्वसिद्धा त्रयोदशी॥ चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां गमनञ्च निषेधयेत्। संत्यजेद्दिवसे यात्रां सूर्य्यावार्कीन्दुवक्रिणाम्॥ अष्टवर्गदशापाकेष्वनिष्टफलदस्य च। सूर्य्यदिनेऽध्वनि नाशश्चन्द्रे शक्तिक्षयोऽर्थहानिश्च। ज्वलनास्त्रक्पित्तरुजः कौजे बुधे सुहृत्प्राप्तिः। जैवे धनजयलब्धिः शौक्रे स्त्रीवस्त्रगन्धधनलाभान्॥ दैन्यवधबन्धरोगान् प्राप्नोति दिनेऽर्कपुत्रस्य। उपचयगृहदिने सिद्धिः क्रूरेऽपि यायिन्यां भवति॥ सौम्येऽप्यनुपचयस्थे न भवति यात्रा शुभा यातुः। शुक्रादित्यदिने न वारुणदिशं न ज्ञे कुजे चोत्तरां मन्देन्द्वोश्च दिने न शक्रककुभं याम्यां गुरौ न व्रजेत्॥ शूलानीति विलङ्घ्य यान्ति मनुजा ये सौख्यवित्ताशया भ्रष्टाशाः पुनरापतन्ति यदि ते शक्रेण तुल्या अपि। दिगीशाह्ने शुभा यात्रा पृष्ठाह्ने मरणं ध्रुवम्"॥ गर्गोऽपि। "दिगीशवारे गमनं प्रशस्तं विहाय सौम्यं यदि जीविताशया॥ न वारदोषाः प्रभवन्ति रात्रौ विशेषतोऽर्कावनिभूशनीनाम्। गुणवति तिथा हृत्तेऽनिष्टे दिवागमनं हितम्। निशि च भगुणैः शस्तं यानं तिथिगुणवर्जिते"॥ भतिथिगुणवर्जिते। "भतिथि कथितान् दोषान् प्राप्नोत्यतः प्रतिलोमगः॥ गुणमपि तयोर्यस्मात् सम्यग्जगाद भृगुमुनिः। याम्यायने निशायात्रा शुभा स्यादुत्तरे दिवा॥ चन्द्रसूर्य्यौ मृगादिस्थौ पूर्वां यायात्तथोत्तराम्। दक्षिणां पश्चिमामाशां कर्क्यादौ तौ स्थितौ यदा॥ अन्यथा वधबन्धा-

दिक्ष शमाप्नोत्यसंशयम्" ॥ योगिनी तु । "प्रतिपन्नवमी पूर्व्वे रामारुद्राश्च पावके । शरत्रयोदशी याम्ये वेदामासाश्च नैर्ऋते ॥ षष्ठी चतुर्दशी पश्चात् वायव्यां मुनिपूर्णिमे । द्वितीया दशमी यक्षे ऐशान्यामष्टमी कुहूः ॥ योगिनी नवदण्डास्तु शेषा वर्ज्या विशेषतः । दक्षसंमुखयोगिन्यां गमनं नैव कारयेत् । वामे शुभकरी देवी पृष्ठे सर्वार्थसाधनी" ॥ राहुभ्रमणचक्रम् । "पश्चादर्के विधौ वह्नौ सौम्यां ज्ञे वायवे कुजे । रक्षो दिशि भृगौ याम्यां गुरावीशे शनौ दिने ॥ राहुर्भ्रमति यामार्द्धदक्षगत्या च वामतः । प्रतीच्यां वह्निकोणे तु ततः सौम्यामतो सृपे ॥ ततो प्राच्यामतो वायौ तस्माद् याम्यां ततः शिवे । रवावेवमन्यवारेषूह्यमेवं क्रमेण हि ॥ द्यूते युद्धे विवादे च यत्रायां संमुखस्थितम् । राहुं विवर्जयेत् यत्नाद् यदीच्छेत् कर्म्मणः फलम्" ॥ राहुसांमुख्यनिषेधः । "अश्विहस्तगुरुमैत्रदेवतैः पौष्णविष्णुवसुशीतरश्मिभिः । यानमेभिरतिसुन्दरं विदुः सर्व एव मुनयस्तु नेतरैः ॥ चित्राश्लेषास्वाति विशाखा भरणी पित्रेशक्रकृत्तिकाः । नातिशुभदा प्रयाणे शेषाणि शुभाशुभानि धिष्ण्यानि ॥ दग्धं शत्रुपुरं सदग्निभमुदेत्यर्को न चेदुत्तरे रोहिण्याश्च विशाखभे च न गमः पूर्वाह्णकाले शुभः । मध्याह्ने न शिवाहिमूलवलभिद्वह्निशेषेऽश्विनीहस्तापुष्यमरुत्सुचित्रशशिमैत्रान्त्ये न रात्र्यादितः । रात्रेर्मध्यमसत्तु पूर्वभरणी पित्रेषु शेषे निशी हर्यादित्रितयादितिष्वपि जलं मध्याह्नरात्र्यन्त्ययोः । पुष्याहस्तमृगाच्युतेषु शुभदाः सर्वेऽपि कालास्तथा सार्वद्वारिकसंज्ञितानि गुरुभं हस्ताश्विमैत्राणि च । पूर्वार्द्राग्निमघानुराधवसुभादीन्यत्र दण्डोऽन्तरे वायूग्न्योर्न स लङ्घ ऐक्यमनलप्राच्योस्तथान्याविदिक् । लग्ने दिग्वदनेऽतिदण्डगमनं प्राच्यादि शूलं विना

तज्ज्येष्ठाजपदं सरोजनिलयः स्यादुत्तराफल्गुनी"। प्रतिदण्डगमनं दण्डमुल्लङ्घ्य गमनम्। "दिशोरष्टमभागश्च विदिक्कोणश्च कथ्यते। मेषाद्यास्त्रिभ्रमाज्ज्ञेयाः प्रागादि दिङ्मुखाः ग्रहाः। शीर्षोदये समभिवाञ्छितकार्य्यसिद्धिः पृष्ठोदये विकलता चलचित्तता च। यातव्यदिङ्मुखगतस्य सुखेन सिद्धिर्वर्त्मभ्रमो भवति दिक्प्रतिलोमलग्ने। केचिदाहुर्न यायात्तु श्रुत्यां प्राच्यान्तु दक्षिणे। अश्विन्यां पश्चिमे पुष्ये नोदीच्यां हस्तभे न तु। गुरुहस्ताश्विमैत्राणि सर्वदिक्षु शुभं युजि। अतो दिग्भेददोषोऽत्र वराहादेरसम्मतः"। नैशाजाग्निविशाखवाय्वह्निमघायाम्यैः परार्द्धं न सचित्राद्यन्तकजं परप्रथमजं पित्र्यानिले चाखिले। राहुक्रूरयुगस्तसन्निधितथोत्पातप्रदुष्टं ग्रहैर्ह्राद्यैर्युग्भमसहिते निशि तिथावृक्षेऽप्यनिष्टे गमः। "ऋक्षे ह्राद्यैः संयुतेऽन्तः प्रकोपो लक्ष्मीभ्रंशो राहुणार्केण योगः। केतूल्कानां पीड़िते देहनाशः क्लेशी भौमे सोष्णरश्म्यात्मजे च। उपग्रहाख्य ऋक्षेषु वर्जयेद्गमनं नृपः। उपग्रहगतस्वीयजन्मर्क्षे न व्रजेत् क्वचित्"। उपग्रहाश्च सर्वतो भद्रचक्रे प्रागुक्ताः। "पूर्वोक्तजन्मकर्मादि नाड़ीनक्षत्रदोषवान्। याता शत्रुवशं याति विशुद्धौ शत्रुनाशकृत्। यात्रायां शोभनास्तारा: समाः कर्मान्त्यसंयुताः। यात्राभङ्गविधावसत्यथ भवेत् सोऽर्कात्त्रिकोणे विधौ। भौमाज्ज्ञादिषु वा बलिन्यथ सुते गन्तव्यदिक्पालतः"। सुते इत्यत्र शुभे इत्यपपाठः। "यात्रादिगीशाद्यदि पञ्चमेऽन्यो गृहे ग्रहो वीर्य्ययुतोऽवतिष्ठेत्। यात्रोद्यतस्तत्र न याति याता तयोर्बलीयान्नयति स्व काष्ठाम्" इत्यनेन विरोधात्। "सर्वं शुभफलं नश्येद् यात्राभङ्गे गतस्य च। व्यसनं प्राप्नोति महद्व्यतीपातविनिर्गतोऽथवा मृत्युम्। वैधृतिगमनेऽप्येवं वराहस्पर्शेऽप्युपदिशन्त्येके"। व्यसनान्याह मनुः। "काम-

जेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः। वियुज्यतेऽर्थधर्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु। मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परीवादः स्त्रियो मदः। तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः। पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्षासूयार्थदूषणम्। वाग्दण्डजञ्च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः”। तौर्य्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यानि त्रिणीति दश। पैशुन्यमविज्ञातपरदोषाविष्करणम्। साहसं साधोर्बन्धनादिना निग्रहः। द्रोहो जिघांसा। ईर्षा अन्यगुणासहिष्णुता। असूया परगुणेषु दोषाविष्करणम्। अर्थदूषणम् अर्थानामपहरणं देयानामदानञ्च। भौमपराक्रमे। “न विष्कुम्भो न वा गण्डो न व्यतीपातवैधृतौ। चन्द्रतारा बले प्राप्ते दोषागच्छन्त्यसंमुखाः। गरवणिजविष्टिविवर्जितानि करणानि यातुरिष्टानि। गरमपि कैश्चिद्गदितं वणिजस्तु वणिक्क्रियास्वेव। पूर्वाह्णे तूत्तरां गच्छेत् मध्याह्ने पूर्वतो व्रजेत्। अपराह्णे व्रजेत् याम्यां अर्द्धरात्रे च पश्चिमाम्। नवम्यङ्गारको विष्टिः शनैश्चरदिनं तथा। व्यतीपातो न दुष्येच्च यस्यार्को दक्षिणे स्थितः। राशौ राशौ द्वादशेन्दोरवस्थाः प्रोक्ताः कैश्चित् सूरिभिः प्रोषिताद्याः। यात्रोद्वाहाद्येषु कार्य्येषु नूनं संज्ञातुल्यं तत्फलं चिन्तनीयम्। प्रवासनष्टाख्य मृताजयाख्याहास्यारतिक्रीडितसुप्तभुक्ताः। ज्वराह्वया कम्पितसुस्थिते द्विषट्कसंख्या हिमगोरवस्थाः”। चन्द्रस्य द्वादशावस्थागणनमाह “अश्व्यादिभुक्तोडुघटासमूहाद्वेदा ४ हताद्वाण समुद्र ४५। भुक्तात् लब्धार्कशेषे शशिनः क्रियाद्या भवन्त्यवस्था गतगम्यरूपाः। सपादाः शूलभृद्दण्डा एकावस्था भवेत्ततः। स्वलग्नहीनान्यगुणान्वितापि प्रीतिं न यात्रा मनसः करोति। स्वलङ्कृता रूपगुणान्वितापि प्रभ्रष्टशीला वनितेव पुंसः। मीने कर्किण्यलिनि च वृषे जन्मकालस्थपापे वामे वा दिग्द्युनिश-

बलिनां जन्मलग्नाष्टमे वा। वर्गे पापानुपचयकृतां वक्रिणां पृष्ठलग्ने पापान्तःस्थे न शुभमबलं जन्मलग्नानधीने"। वामे विपरीते। "घटमिथुनकुलीराश्वापगो मीनकन्याः खलु शुभभवनत्वाद्राशयः सप्त सौम्याः। अलिघटमृगसिंहाजास्तु पापाश्रयत्वान्मुनिभिरभिहितास्ते प्रायशः क्रूरभावाः"। अन्यत्र। "लग्ने कार्मुकमेषतौलिमिथुने कार्य्यं विलग्ने नृणां पञ्चास्ये मकरे तथा शनिगृहे तद्वत्फलं वृश्चिके। सिंहे वा यदि गोघटेषु गमनं सर्वार्थसिद्धिप्रदं स्यादाशापतिषु प्रयाति सकलं कन्याझषे मन्मथे"। तथा। "नेष्टं दिशन्ति मकराणि कुलीरलग्ने मेषे घटे धनुषि दीर्घकरी हि यात्रा। युग्माङ्गना झषवृषे ध्रुवमर्थलाभो ज्योतिर्विदः सकलसिद्धिमुपैति लक्ष्मीः"। यात्रायां सामान्यलग्नविवेकः "मीने च कुटिलो मार्गो भवति तदंशेऽन्यराशिलग्नेऽपि। नौयानमाप्यलग्ने कार्य्यं तेषां नवांशे वा"। दिगादि बलिनो यथा। "ऐन्द्र्यां मानुषराशयस्तु पशवो याम्ये सवीर्य्या अलिर्वारुण्यां बलयुक् तथैव बलिनः पानीयजश्चोत्तरे। सर्वे मानुषराशयो दिनबला रात्रौ सवीर्य्याश्चतुष्पादाः शेषगणास्तथैव बलिनः सन्ध्याद्वये कीर्त्तिताः। स्वराशिलग्नाष्टमलग्नयोश्च स्वशत्रुभाच्छत्रुगृहोदये वा। तद्राशिगैर्वा गमनं विलग्ने तुल्यं नराणां विषभक्षणेन। उपचयकरस्य वर्गः क्रूरस्यापि प्रशस्यते लग्ने। चन्द्रे वाप्युक्तेन तु विपरीतस्य सौम्यस्य। याने भं जन्मराशेरुपचयमुदयारित्रिलाभश्च वेशिर्मित्रं वश्यं स्वजन्मस्तनुगृहयोर्यद्ग्रहैर्नोनिरंशम्। स्थानं सौम्यस्य जन्मन्यभिमतफलदस्यापि यत्र प्लवश्च याम्यां त्यक्ताभिजिद्धं शुभफलदखगेन्दोश्च या कालहोरा स्वाधिपतेर्दिशि राशिः प्लव इति यवनैः सदा कथितम्। तत् प्लवगो विनिहन्यादचिरेण महीपतिः शत्रून् सर्वद्वारः सर्वार्थसाधकः सर्व-

कर्मसु तथेष्टः। सर्वेषां वर्णानामभिजित्संज्ञको मुहूर्त्तः स्यात्। अष्टमो दिवसस्यार्द्धे त्वभिजित्संज्ञकः क्षणः। स ब्रह्मणो वरान्नित्यं सर्वकामफलप्रदः। चक्रमादाय गोविन्दः सर्वान्दोषान्विकृन्तति। अभिजिच्च बुधे शस्तं याम्यान्तु गमने तथा। अन्यदिग्गमने शस्तं सर्वसिद्धिप्रदायकम्। वारप्रवृत्ते घटिका द्विनिघ्नाः कालाख्यहोरा पतयः शराशाः। दिने निशाया मृत्युवाणवृत्त्या निजाह्ननाथां पतयः प्रकल्प्याः। रेखा पूर्वापरयोर्वारः सूर्य्योदयात् परस्तात् प्राक्। देशान्तरयोजनमितविघटीभिः पादहीनाभिः। द्वादशाङ्गुलिकाच्छङ्कोः समरात्रिदिनार्द्धके। छायापादानुसारेण रेखा स्वदेशयोजनम्। सुमेर्वादिस्तु लङ्कान्ता भूमिरेखास्ति तद्गतः। रोहितकमवन्ती च तथा सन्निहितं सरः। रेखादेशे नराङ्कुभातामपास्य स्वदेशजाम्। हत्वा षष्ट्या योजनानि स्वदेशान्तजानि वै। तत्काले तु नवद्वीपे दिग्नराङ्गुलशराङ्गनाः। तच्छोधनाद्भवत्यत्र सविंशच्छतयोजनम्। तत्पादहीनतो दण्डाद्वसुत्रिंशत्पलाधिका। वारप्रवर्त्तनं तस्मात् कालहोराविरेचनम्। दिनाधिपाद्यानिजषष्ठषष्ठाः सूर्य्यास्फुजिज्ज्ञेन्दुशनीज्यभौमाः”॥ कर्मान्तरे तु वारप्रवृत्तिरुदयावधिरेव तथा च सूर्य्यसिद्धान्तः। “सूतकादिपरिच्छेदो दिनमासाब्दपास्तथा। मध्यमग्रहभुक्तिश्च सावनेन प्रकीर्त्तिता। उदयादोदयं भानोर्भौमसावनवासराः”॥ भौमेति पितृदेवादिनव्यावृत्त्यर्थम्। अत्र दिनाधिपस्य रव्यादेर्भोग्यं दिनं वाररूपं सावनगणनात्मं लोकव्यवहारोऽपि तथेति। “तिर्य्यगधः ऊर्द्धवदना होराः स्युः सूर्य्ययोगतः क्रमशः। वाञ्छितफलदोर्द्धमुखौ हे शेषे चाशुभे यातुः”॥ यात्रायां होराफलम्। “सद्ग्रहस्य च द्रेक्काणे रत्नभाण्डान्वितेऽपि वा। फलपुष्पयुते यायाच्छुभ-

ग्रहविलोकिते ॥ रत्नभाण्डान्वितौ ज्ञेयौ धनुर्मध्यतुलादिमौ द्रेक्काणाः कर्कटाद्यश्च फलपुष्पयुतः स्मृतः ॥ नवभागे १ तिग्मांशोर्वाहननाशो विलग्नसंप्राप्ते। कृच्छ्रात् खगृहगमः प्रभावमृदुता चन्द्रांशे ॥ कौजेऽग्निभयं बौधे मित्रप्राप्तिर्धनागमो जैवे। भोगविवृद्धिश्च शौक्रे भृत्यविनाशो रविसुतांशे ॥ यत् प्रोक्तं राश्युदये द्वादशभागेऽपि तत् फलं वाच्यम्" ॥ यच्च नवांशकविहितं तत्त्रिंशांशोदयेऽपि स्यात्। "पापः क्षीणो विधुरविदिनं यस्य जन्मर्क्षपीड़ा होरा जन्माष्टमगृहपतिर्जन्मभं प्रत्यनिष्टः। नीचस्थास्तं गतपरजिता लग्नजन्मेशशत्रुर्लग्ने नेष्टाः खचररहितं वक्रियुक्तञ्च केन्द्रम्" ॥ यात्रायां लग्नस्थग्रहनिर्णयः। शून्यकेन्द्रवक्रियुक्तकेन्द्रनिषेधश्च। होरालग्नम्। तथा च होराराश्यृक्षलग्नयोः। विशाखानलतोयानि वैष्णवं भगदैवतम्। पुष्यः पौष्णं यमः सर्पो जन्मर्क्षाच्छर्कतः क्रमात्"। अस्तं गतादित्यमाह। "दिवसकरेणास्तमयः समागमश्च शीतरश्मिसहितानां कुसुतादीनां युद्धं निगद्यतेऽन्योन्ययुक्तानाम्। रश्मिर्लोहितः श्यामः पुरुषः सूक्ष्मतारकः। अपसव्यकृतो यश्च दक्षिणस्थः पराजितः। उदङ्मार्गगतिः स्निग्धो विमलो विमलप्रभः ॥ वृहद्रूपोऽतिशुक्लश्च विजयी कथितो ग्रहः। विपुलः स्निग्धो द्युतिमान् दक्षिणदिक्स्थोऽपि जययुक्तः सर्वे जयिन उदक्संस्था दक्षिणदिक्स्थो जयी शुक्रः। ग्रहस्य यो यस्य हतस्य वश्याः पीड़ां समृच्छन्ति त एव तस्य। संग्रामवीर्य्यस्य जये समृद्धा जयन्ति सर्वत्र मतं मुनीनाम्। क्रूरोऽप्यनुकूलस्थः शस्तो लग्नेऽशुभोऽपि नानिष्टः। केन्द्रत्रिकोणेषु शुभाः प्रशस्तास्तेष्वेव पापा न शुभप्रदाः स्युः। पापोऽपि कामं बलवान्नियोज्यः केन्द्रेषु शून्येषु शिवा न यात्रा। स्थानेऽर्कः स्वस्य तुङ्गोदयमुपगतः शस्त इन्दुः स्वकीये भौमः सौरे बुधा-

देरथ शनिसितान्यस्य जीवोऽथ शुक्रः। सौम्यः स्वस्थानसंस्थः शनिरपि तरणे रत्नकाजन्मकाले॥ तालः स्यात् कारको वा सुहृदपि शुभकृल्लग्नजन्मेशयोर्यः"॥ यात्रायां लग्नस्थग्रहापवादः। तालानाह। "जन्मसमये शशाङ्काद्ये ह्युपचयस्थिताः ग्रहाः केचित्। ते सर्गे तालाख्याः क्रूराः सौम्याश्च संचिन्त्याः॥ लालाटिनि दिगधीशे दिग्बलिविहगे ललाटगे वापि। प्रतिभृगुजे प्रतिशशिजे कालाशुद्धौ संत्यजेद् यात्राम्॥ यात्राहंलग्नं पूर्वस्यां तत्क्रमेण च खेचरान्। न्यस्य यात्राहंदिक्स्थित्या पुरः खेटान् विलोकयेत्"॥ एतत् स्पष्टं क्रमेण यथा। "लग्नेऽर्के व्ययलाभयोर्भृगुसुते कर्मस्थिते भूमिजे राहौ धर्मविनाशयो रविसुते द्यूनेऽरिमृत्योर्विधौ। बन्धौ ज्ञे सहजार्थयोः सुरगुरोरेवं ललाटोद्भवे योगे दिक्पतिभिः कृते चयभुजः प्रागादिकाष्ठां गताः। लग्ने सौम्यगुरूप्राच्यां याम्यां खे कुजभास्करौ॥ पश्चिमेऽस्ते तथा सौरिं सौम्यां बन्धौ विधुं सितम्। एवं दिग्बलिनो याने त्यजेद् यत्नाल्ललाटगान्॥ लग्ने व्यया ये दशमेऽष्टधर्मे द्यूनेऽरि मृत्योर्हिबुके त्रिवित्ते। प्रतीपगा येषु सितेन्दुपुत्रौ प्राच्यादिकाष्ठासु न यातु रिष्टौ॥ नीचगे ग्रहजिते प्रतिलोमे भार्गवे कलुषितेऽस्तगे वा। प्रस्थितो नरपतिः प्रबलो वा क्षिप्रमेव वशमेति रिपूणाम्॥ एवंविधेऽपि शुक्रे यायाद् यदि चन्द्रजोऽनुकूलस्थः। प्रतिबुधयातस्य न परित्राणे ग्रहाः शस्ताः"॥ राजमार्त्तण्डे। "सौम्यां लग्नगते बुधे शिवदिशं वाचस्पतावष्टमे प्राचीं तीक्ष्णकरे कुजे च दशमे याम्यां प्रयातो नरः। आग्नेयीं भृगुजे च शीतकिरणे बन्धुस्थिते वायवीं मन्दे सप्तमगे पश्चिमदिशं याति द्विषां वश्यताम्। नाशौचसूतकोत्सवदिवसाश्च यियासतां शुभदाः। उद्वेगस्तपने सुखं शशधरे रोगो महीनन्दने लाभश्चन्द्रसुते गुरौ च कथितः

शुक्रे चलत्वं ध्रुवम्। मन्दं मन्दगतेर्गतागतविधौ ज्ञेया सदा पण्डितैर्यात्रा पञ्चभिरङ्घ्रि षड्भिरुदिता यात्रार्द्धयामात्मिका"॥ दैवज्ञमनोहरे। "वृषादौ चन्द्रमा ज्ञेयो मेषादौ लग्नमेव हि। परियोज्य समं मिथ्या त्रिभिर्भागं हरेत्ततः॥ शून्ये मृत्युर्द्वये हानिरेकाङ्के विजयी भवेत्"॥ इत्येकाङ्कौ। भौमपराक्रमे। "दिनं तिथिं वारयुक्तं स्वनक्षत्राङ्कयोजितम्। सप्तभिश्च हरेद्भागं शेषे यात्रां विनिर्दिशेत्॥ प्रथमे शोभना यात्रा द्वितीये लाभकृद्भवेत्। तृतीये वित्तलाभः स्याच्चतुर्थे सिद्धिरुत्तमा॥ पञ्चमे मार्गविघ्नः स्यात् षष्ठे निधनमेव च। उक्तं प्रत्ययमुनिना शून्ये श्रीः सर्वतस्सुखी॥ अतिबलिनीन्दौ सुखगे गमनं यत्नाद्विवर्जयेल्लग्नात्। सप्ताहञ्च न यायात्त्रिविधोत्पातेष्वनिष्टेषु"॥ वराहः। "देहः कोषो योऽधो वाह्यं मन्त्रः शत्रुर्मार्गोऽथायुः। कर्मप्राप्तिर्मन्त्रौ यात्रालग्नाद्भावाश्चिन्त्याः॥ त्रिलाभवर्जं रविसौरिभौमा विघ्नन्ति नो कर्मणि सूर्य्यभौमौ। पुष्णन्ति सौम्याः परिहाय षष्ठमस्तं भृगुर्मृत्युविलग्नमिन्दुः॥ केन्द्रकोणार्थगो नेष्टः क्षीणः पूर्णः शुभः शशी। सदैवत्र्यायगः शस्तो न शस्तोऽन्त्यारिरन्ध्रगः॥ आदित्येन्दुमहीजराहुरविजैः संप्रस्थितो लग्नगैः क्षुत्तृष्णा विषमव्यथामनुभवेद्रोगांश्च नानाविधान्। जीवः सोमसुतस्तथैव भृगुजो यात्रोदयस्थो यदा सा यात्रा धनभोगपुत्रसुखदा पुण्यैः कृतेर्लभ्यते। कोषस्थाने नराणामसुरगुरुबुधे धर्मकामार्थलाभो वस्त्रोत्पत्तिश्च जीवे हृदि सुखमतुलं शत्रुपक्षक्षयश्च। पङ्गुर्बन्धं सुदीर्घं क्षितिसुतसहितः कोषहानिञ्च भानुश्चन्द्रः कुर्य्यात् प्रयाणे प्रियजनसहितं राहुरुत्पातमुग्रम्" ॥ २ ॥ "प्रस्थाने भूमिपस्य क्षितिसुतरविजौ भानुना संप्रयुक्तौ शुक्रश्चन्द्रात्मजो वा सुरगुरुरथवा शीतरश्मिर्यदा वा। भ्रातृस्थाने स्थिताः

स्युर्नरपतिगमने सर्वकामार्थसिद्धिं जित्वा शत्रूनशेषान् परिचरति रणे गोकुले पुङ्गवाभः” ॥ ३ ॥ “बन्धुस्थानगतो ददाति विपुलं भोगं गुरुर्भार्गवः शत्रूणां क्षयमीहते नरपतेः सौख्यं तथा चन्द्रजः। हानिं कोषगतां करोति रविजः स्नेहक्षयं चन्द्रमा राहुर्भूमिसुतस्तथोष्णकिरणः कुर्वन्ति दुःखं महत्”॥४॥ “जीवः पुत्रार्थलाभं जनयति भृगुजः सम्पदं स्थानलाभं प्रीतिं चैवोपपत्तिं कुमुदवनसुहृत् सूनुरर्थं प्रदत्ते। सूर्य्यश्चन्द्रोऽथ भौमो दिनकरतनयः सिंहिकासूनुयुक्तः। सर्वे ते पञ्चमस्थाः स्वसुतभयकराः पार्थिवानां भवन्ति” ॥ ५ ॥ “षष्ठस्थाने स्थिताश्चेद्दिनकरतनयो भूमिपुत्रस्तथार्कः शीतांशुर्दैत्यमन्त्री रजनिकरसुतः सैंहिकेयोऽथ जीवः। कुर्वन्त्येतेऽर्थलाभं यदपि हृदि गतं सिध्यते तच्च कार्य्यं यत्रैषा पार्थिवानां परबलमथनौ सर्वकामार्थदात्रौ” ॥ ६ ॥ “नेष्टाः शुक्रदिवाकरार्कतनया राहुस्तथा भूमिजः क्षिप्रं शत्रुवशं नयन्ति पुरुषं स्थाने स्थिताः सप्तमे। सौम्यो मित्रसमागमं सुरगुरुः कार्य्यार्थसिद्धिं नृणाम्। चन्द्रः श्रेष्ठफलं ददाति नियतं यात्रोद्गमे भूभुजाम्” ॥ ७ ॥ “सूर्य्यो मृत्युं विधत्ते हिमरुचिरथवा शोकमुग्रं प्रदत्ते भौमो रोगञ्च बन्धं रजनिकरसुतो भव्यदः क्लेशकश्च। मृत्युं जीवोऽष्टमस्थः खलु दनुजगुरुः सूर्य्यपुत्रश्च कुर्य्यादग्ने शस्त्राद्विषाद्वा वधमिह नियतं शस्त्रघातश्च राहुः” ॥ ८ ॥ “शुक्रोऽतिसौख्यं नवमो बुधस्तु जीवोऽपि संरक्षयति प्रयातम्। चन्द्रार्कसौराः सह भूमिजेन कुर्वन्ति रोगान् सुबहुन्नराणाम्” ॥ ९ ॥ “कर्मस्थाने स्थितोऽर्कः प्रचुरधनकरः पुष्टिदः शीतरश्मिर्जीवः संग्रामकाले भवति विजयदः सौम्यशुक्रौ तथार्थम्। नित्यं यात्रोद्यतानां भवति विजयदः सर्वकार्य्येषु भौमो राहुर्वैकल्यमुग्रं जनयति सरुजं दीर्घवासित्वमार्किः” ॥ १० ॥ “भृगुसुतबुधजीवैश्चन्द्रसूर्य्या-

किंभौमैर्व्रजति यदि नरेन्द्रः क्षिप्रमेकादशस्थैः। स जयति रिपुदर्पं स्वेच्छया वैरिशङ्को विचरति गृहमध्ये सिंहपोतो यथैकः" ॥ ११ ॥ "रविसुतरुधिरार्कौ बुद्धिमोहं नराणां विदधति कुमुदेशः स्वेषु भेदेषु भेदम्। स जयति रिपुदर्पं भृत्यहीनोऽप्यवश्यं यदि बुधगुरुशुक्रा द्वादशस्था भवन्ति" ॥ १२ ॥ "तिथ्यादिषु निषिद्धेषु चन्द्रताराविलोमतः। उषां गोधूलियोगं वा स्वीकृत्य गमनं भवेत्॥ प्राच्यामुषां प्रतीच्याञ्च गोधूलिं वर्जयेन्नृपः। दक्षिणे चाभिजिच्चैवमुत्तरे च निशां तथा"॥ व्यासः। "लग्नशुद्धिर्यदा नास्ति प्राप्तकालोऽतिवर्त्तते। अविशेषेण वर्णानां तदा गोधूलिरिष्यते॥ आरक्तसन्ध्यं रजनीविरामं वदन्त्युषायोगमिह प्रवीणाः। आहुः प्रयातेः सकलार्थसिद्धिं संलक्ष्यते हस्ततलस्थितेव॥ सन्ध्यातपारुणितपश्चिमदिग्विभागे व्योम्नि स्फुरद्विरलतारकसन्निवेशे। रुद्धे गवां खुरपुटोद्दलितैरजोभिर्गोधूलिरेष कथितो भृगुजेन योगः" ॥ सूर्य्यसिद्धान्ते। "अर्द्धास्तमयात् सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत्। तेजः परिहानिरुषा भानोरर्द्धोदयं यावत्" ॥ एतद्वचनैकवाक्यतया सन्ध्योषयोः सन्ध्यागोधूल्योरैक्यम्। अतएवोक्तं "सन्ध्यामुहूर्त्तमाख्यातं ह्रासवृद्धौ समा स्मृता। लाभशत्रुसहजेषु यमारौ सौम्यशुक्रगुरवो बलयुक्ताः॥ गच्छतो यदि ततोऽस्य धरित्री सागराम्बुवसना वशमेति" ॥ धरित्रीयोगः। "केन्द्रोपगतेन गुरुणा वीक्षिते व्यायचतुर्थगे सिते। पापैरनवाष्टसप्तमगैर्वसुकिं न यदाप्नुयाद्गतः"॥ किंवसुयोगः। "शशिनि चतुर्थगृहं समुपेते बुधसहितेऽस्तगते भृगुपुत्रे। गमनमवाप्य पतिर्मनुजानां जयति रिपून् समरेण विनैव" ॥ विनासमरयोगः। "सितेन्दुजौ चतुर्थगौ निशाकरश्च सप्तमे। यदा तदा गतो नृपः प्रशास्त्यरीन् विना

रणात्" ॥ विनारणयोगः। "एकान्तरर्क्षे भृगुजात् कुजाद्वा सौम्यो स्थिते सूर्य्यसुताद्गुरोर्वा। प्रध्वस्यतेऽरिर्न चिराद्गतस्य वैशाधिको भृत्य इवेश्वरस्य" ॥ अरिप्रध्वंसयोगः। "गुरुरुदये रिपुराशिगतोऽर्को यदि निधनेन च शीतमयूखः। भवति गतोऽत्र शशीव नरेन्द्रो रिपुवनितानततामरसानाम्" ॥ शशिनरेन्द्रयोगः। "लग्नारिकर्महिबुकेषु शुभे स्थिते च द्यूनान्त्यलग्नरहितेष्वशुभग्रहेषु। यातुर्भयं न भवति प्रभवेत् समुद्रं यद्यश्मनापि किमुतारिसमागमेषु" ॥ शिलाप्रतरणयोगः। "मूर्त्तिवित्तसहजेषु संस्थिताः शुक्रचन्द्रसुततिग्मरश्मयः। यस्य यानसमये रणानले तस्य यान्ति शलभा इवारयः" ॥ अरिशलभयोगः। "शुक्रवाक्पतिबुधैर्धनसंस्थैः सप्तमे शशिनि लग्नगतेऽर्के। निर्गतो नृपतिरेति कृतार्थो वैनतेयवदरीन् विनिहत्य" ॥ अरिवैनतेययोगः। "त्रिषट्स्वान्त्येष्वबलः शशाङ्कश्चान्द्रिर्बली यस्य गुरुश्च केन्द्रे। तस्यारियोषाभरणैः प्रियाणि प्रियाः प्रियाणां जनयन्ति सैन्ये" ॥ अरियोषाभरणयोगः। "वर्गोत्तमगते चन्द्रे लग्ने वा चन्द्रवर्जिते। चतुराद्यैर्ग्रहैर्दृष्टे नृपाद्वा विंशतिः स्मृताः" ॥ राजयोगः। "मेषादिद्वादशराशीनां स्वीयनवांशस्थे लग्ने चन्द्रे च यत्र कुत्रापि स्थिते चन्द्रवर्जितैश्चतुरादिभिर्ग्रहैर्वीक्षिते" ॥ अयमर्थः। द्वादशराशिषु लग्नस्य द्वादश एव स्वीयनवांशास्तत्र कुम्भं वर्जयित्वा एकादशैव स्थिता एवं चन्द्रस्यापि वृश्चिकवर्जनात् एकादशैव स्थानानि स्युरिति द्वाविंशतिः कुम्भलग्ने दोषदर्शनात् त्यागः। यथा। "न कुम्भलग्ने शुभमाह सत्यो न भागभेदान् यवना वदन्ति। वृश्चिकराशिश्चन्द्रस्य नीचगृहमिति चन्द्रपक्षे वृश्चिकवर्जनम् ॥ सर्वैर्गगनभ्रमणैर्दृष्टे लग्ने भवति महीपालः। बलिभिः शुभैः सर्वैर्विगतभयो दीर्घजीवी च" ॥ जातकोक्त-

राजयोगः। "जातकोक्तनृपयोगगतानां प्रतिदिनं राज्यविवृद्धिः। वातघूर्णितमिवार्णवयानं शात्रवं बलमुपैति विनाशम्"॥ राजयोगयात्राफलम्। "लाभार्थलग्नेषु शुभो रविश्चेद् यस्यारसौरौ सहजेऽरिभे च। तस्यार्थकोषः समुपैति वृद्धिं लोभो यथा प्रत्यहमर्थवृद्धया"॥ अर्थवृद्धियोगः। "लग्ने गुरुर्बुधभृगू हिवुकात्मजस्थौ षष्ठौ कुजार्कतनयौ दिनकृत्तृतीयः। चन्द्रश्च यस्य दशमो भवति प्रयातुस्तस्याभिवाञ्छितफलाप्तिरलं नृपस्य"॥ फलाप्तियोगः। "गुरौ विलग्ने यदि वा शशाङ्के षष्ठे रवौ कर्मगतेऽपुत्रे। सितज्ञयोर्बन्धुसुतस्थयोश्च यात्राजनित्रीव सुखानि धत्ते"॥ यात्राजनित्रीयोगः। "एकेन वा बुधबृहस्पतिभार्गवाणां योगो भवेन्नवमपञ्चमकाष्टकेषु। द्वाभ्यां वदन्ति मुनयोऽप्यधियोगमेव योगाधियोगमपरे त्रिभिरुद्दिशन्ति। योगेन ये नृपतयोऽरिपुरं प्रयान्ति क्षेमे गते गमनमागमनञ्च। कुर्य्युः। क्षेमं यशो विजयमर्थमथाधियोगे योगाधियोगगमने न जयद्धरित्रीम्। एकस्मिन्नपि केन्द्रे यदि सौम्येन शून्योऽस्ति यात्रायाम्। जन्मनि कर्मगणे वा न शुभं प्राहुराचार्य्याः त्रिकोणकेन्द्रेषु भवन्ति सौम्या दुश्चिक्यलाभारिगृहेषु पापाः। यस्य प्रयाणे तमुपैति रागाद्विपक्षलक्ष्मीरभिसारिकेव। महीभृतां योगवशात् फलोदयो द्विजन्मनामृक्षगुणैस्तु जायते। शतन्धुरादेः शकुनिप्रभावतो जनस्य शेषस्य मुहूर्त्तशक्तितः। मक्षिकाकचसिकतानुविद्धमन्नं दुर्गन्धं क्षयकृद्भूरि यच्च दग्धम्। सुस्निग्धं शुचि रुचिरं मनोऽनुकूलं स्वाद्वन्नं बहुलमिजं विजयाय यानकाले। प्रागादिघृतं तिलोदनं मत्स्यान् क्षीरमिति प्रदक्षिणम्। भाद्या नृपतिर्यथा दिशं नक्षत्राभिहितञ्च सिद्धये"॥ एवञ्च "यात्रायां वर्जयेत् क्षौरं विवादं क्षीरभोजनम्। अक्षैः क्रीडां दिवास्वप्नं दुर्नि-

मित्तं कुभोजनम्" ॥ भोजने चौरवर्जनम् उत्तरदिगितरपरम्। पूर्वादिप्राशनविधिः। भुजबलभीमः। "सर्पिस्तिलौदनझषैः पयसा च भुक्त्वा पूर्वादिवारणरथाश्वनरैर्गतस्य। सोढुं प्रतापमरयो न नृपस्य शक्ता गन्धद्विपस्य शलभा इव दानगन्धम्। शुभाशुभानि सर्वाणि निमित्तानि स्युरेकतः। एकतस्तु मनो यातुस्तद्धि शुद्धं जयावहम्। रिक्तः कुम्भोऽनुकूलस्थः शस्तोऽम्भोऽर्थीयियासतः। चौर्य्यविद्या वणिज्यार्थमुद्यतानां विशेषतः। मेघाः शस्ता घनास्निग्धा गजबृंहितशब्दिताः। अनुलोमातडिच्छस्ता शक्रचापस्तथैव च। अप्रशस्ते तथा ज्ञेये परिवेशप्रवर्षणे। जलजानि च पुष्पाणि देवदूर्वार्द्रगोमयम्। रूप्यताम्रयवाः शस्ताः शवारुदितवर्जिताः। अनुलोमो वृषो नर्दन् धन्या गौर्महिषस्तथा। गमनप्रतिषेधाय गावः प्रत्युरसि स्थिताः। प्रागुदीच्योः शिवाः शस्ताः शान्ताः सर्व्वत्र पूजिताः। धूमिताभिमुखी हन्ति स्वरदीप्तादिगीश्वरान्। मुक्तप्राप्तेश्च सूर्य्याच्च फलं दिक्षु तथाविधम्। अङ्गारदीप्तधूमिन्यस्ताश्च शान्तास्ततो परा" ॥ दग्धादि दिङ्निर्णयः। "विध्ययंश्चाग्रतः पक्षौ धुन्वन् ध्वांक्षो भयङ्करः। प्रत्युरस्युपसर्पंस्तु संस्पृशंश्च भयङ्करः। ध्वांक्षः पार्श्वद्वयेनापि शस्तापाक्षानुलोमगः। वामे शवशिवा कुम्भा दक्षिणे गोमृगद्विजाः" ॥ दीपिकायाम्। "नृहयातपवारणेभशस्त्रध्वज देहानवसूचयन् जयाय। सभयो विचरन् विना निमित्तं न शुभः स्वाभिमुखो भवन् निखनगाम्। द्वन्द्वरोमादितास्त्रस्ताः कलहामिषकाङ्क्षिणः। आपगान्तरितामत्तान् ग्राह्याः शकुनाः क्वचित्। क्रोशादूर्द्ध्वं शकुनचरितं निष्फलं प्राहुरेके। तत्रानिष्टे प्रथमशकुने मानयेत् पञ्चवद्वा। प्राणायामान्नृपतिरशुभे षोड़शैव द्वितीये प्रत्यागच्छेत् स्वभवनमतो यद्यनिष्टस्तृतीयः" ॥ मत्स्य-

पुराणे "दृष्ट्वा निमित्तं प्रथममङ्गल्यविनाशनम्। केशवं पूजयेद्विद्वान् स्तवेन मधुसूदनम्। द्वितीये तु ततो दृष्टे प्रतीपे प्रविशेद् गृहम्। एहीति पुरतः शब्दः शस्यते न तु पृष्ठतः। गच्छेति पश्चाच्छुभदः पुरस्ताच्च विगर्हितः। उत्तानशय्यासनपादुकादि निष्ठुतिदुर्दर्शनमैथुनानि। नेष्टानि शब्दाश्च तथैव यातुरागच्छति स्वप्रविशस्थिराद्याः। विसर्जयति यद्येक एकश्च प्रतिषेधति। सविरोधोऽशुभायातुर्याह्यो वा बलवत्तरः। अनुलोमगते प्रदक्षिणसुरभौ देहसुखेऽनिले गतः। तिमिरालिगभस्तिमालिरप्रसभं हन्ति बलानि विद्विषाम्। ध्वजातपत्राम्बुधसन्निपातक्षितौ प्रयाणे यदि मानवानाम्। उत्तिष्ठतो वाऽसुरमिति सङ्गं यातोऽथवा तन्नृपतेः क्षयाय। पौषादि चतुरो मासान् वृष्टिं दृष्ट्वा न संव्रजेत्। यस्तु संप्रस्थितो यात्रां ब्राह्मणानुपमन्यते। स्वकीयां परकीयां वा स्त्रियं पुरुषमेव च। ताड़यित्वा तु यो गच्छेत्तदन्तं तस्य जीवितम्। यात्राकाले तु संप्राप्ते मैथुनं यो निसेवते। रोगार्त्तः क्षीणकायश्च स निवर्त्तेत वा न वा। स्नात्वा तु मैथुनं रात्रौ प्रभाते यः प्रतिष्ठते। नासौ प्रतिनिवर्त्तेत दुःखञ्च प्राप्नुयान्नरः। कटुतैलगुड़क्षीरपक्वमांसाशनन्तथा। भुक्त्वा यो यात्यसौ मोहाद्व्याधितः स निवर्त्तते"। वराहपुराणे। "तृणोदकाढ्येषु वनेषु मत्ताः क्रीड़न्तु गावः स वृषाः स वत्साः। क्षीरं प्रमुञ्चन्तु सुखं स्वपन्तु शीतातपव्याधिभयैर्वियुक्ताः। इमं मन्त्रं विशुद्धात्मा जपेन्नित्यं समाहितः। गच्छन् तिष्ठन् स्वपन् जिघ्रन् भुञ्जन् क्रीड़न् समुत्सृजन्। महाभयेषु सर्वेषु विषमेषु समेषु च। प्रयाणकाले च तथा श्रोतव्यमभयप्रदम्"। मत्स्यसूक्ते "बलिकर्मणि यात्रायां प्रवेशे नववेश्मनः। महोत्सवे च माङ्गल्ये तत्र स्त्रीणां ध्वनिः शुभः"। ध्वनिरुलुध्वनिः। दीपिकायाम्। "सिद्धा-

त्मकादर्शपयोऽञ्जनानि वर्द्धकपश्वामिषपूर्णकुम्भाः। उष्णीषभृङ्गारनृवर्द्धमानपुंयानवीणातपवारणानि"। भृङ्गारः कनकालुका। "दधिमधुघृतरोचनाकुमार्य्योध्वजकनकाम्बुज तत्र पीठशङ्खाः। सितवृषकुसुमायुवालिमीनद्विजगणिकास्वजनाश्च चारुवेशाः। ज्वलितशिखिफलाक्षतेक्षुभक्ष्यद्विरदमृदङ्गाङ्कुशचामरायुधानि। मरकतकुरुविन्दपद्मरागस्फटिकमणिप्रमुखाश्च रत्नभेदाः। स्वयमथ रचितान्य यत्नतो वा यदि कथितानि भवन्ति मङ्गलानि। स जयति सकलां ततो धरित्रीं ग्रहणमृगालभनस्तुतेरुपास्य निर्गतस्य तु द्वाराद्यैः" शिरसश्चाभिघातनम्। "छत्रध्वजादि वस्त्राणां पतनञ्च तथाशुभम्। करीशगर्भिणी वापि भग्नभाण्डावलोकनम्। कार्पासौषधकृष्टधान्यलवणक्लीवास्थितैलं वसापङ्काङ्गारगुडाहिचर्मसक्ततः क्लेशायः सव्याधिताः। वान्तोन्मत्तजटीन्धनं तृणतुषक्षुत्चामतक्रावयो मुण्डाभ्यक्ताविमुक्तकेशपतिताः काषायिणश्चाशुभाः। कुटुम्बकलहा गृहज्वलनमार्त्तवं योषिताम्। विडालसमरं क्षुतं स्खलितमम्बरादेस्तथा। दुरुक्तमतिकोपिता महिषयोश्च युद्धं भवेत्। प्रयाणसमये नृणामभिमतार्थविच्छित्तये"॥ यान्यत्र मङ्गलामङ्गलानि निर्गच्छतां प्रदिष्टानि। स्वप्नेऽपि तानि शुभाशुभानि विड्लेपनं पुनर्धन्यम्। एकस्यां यदि चेद्रात्रौ शुभं वा यदि वाशुभम्"। तथा च मत्स्यपुराणे पुरूरवसा कृतम्। "कृतकृत्यो यथा कामं पूजयित्वा जनार्द्दनम्। स्वप्नन्तु देवदेवस्य न्यवेदयत धार्म्मिकः" इति। दुःस्वप्नाकथनं धन्यं पुनः प्रस्वापनन्तथा। प्रातःस्नानं तिलैर्होमो ब्राह्मणानाञ्च भोजनम्। स्तुतिश्च वासुदेवस्य तथा तस्य च पूजनम्। चक्षुस्पन्दं भुजस्पन्दं तथा दुःस्वप्नदर्शनम्। शकुनाञ्च समुत्थानमश्वत्थ शमयाशु मे। अश्वत्थरूपो भगवान् प्रीयतां मे

जनार्दनः। मन्त्रेणानेन चाश्वत्थं प्रार्थयेद्दोषसूचने। चिन्तादुष्टेन शोकेन व्याधिग्रस्तेन वा पुनः। कामशुष्केण चित्तेन स्वप्ने न फलभाग्भवेत्। अविज्ञातस्वरूपाणां नराणां ज्ञानहेतवे। स्वप्ने दृष्टानि वक्ष्यामि पुण्यपापोद्भवानि च”। एवञ्चैषां सूचकत्वं न कारकत्वम् “आदित्यमण्डलं स्वप्ने चन्द्रं वा यदि पश्यति। व्याधिभ्यो मुच्यते रोगी अरोगी सुखमाप्नुयात्। दीपमन्नं फलं वस्त्रं कन्यारत्नं रथध्वजम्। यस्तु पश्यति स्वप्नान्ते लभते चोत्तमां श्रियम्। उपानहौ च छत्रञ्च लब्ध्वा यः प्रतिबुध्यते। असिं वा निर्मलं तीक्ष्णमध्वानं तस्य निर्दिशेत्। देवताश्च द्विजा गावः पितरो लिङ्गिनः स्त्रियः। यद्वदन्ति नरं स्वप्ने तत्तथैव भविष्यति। आरोहणं गोहयकुञ्जराणां प्रासादशैलाग्रवनस्पतीनाम्। आरुह्य नौकां प्रतिगृह्य वीणां भुक्त्वा रुदित्वा ध्रुवमर्थलाभः। भक्षणञ्चार्द्रमांसस्य मत्स्यस्य पायसस्य च। दर्शनं रुधिरस्यापि स्नानं वा रुधिरेण च। सुरारुधिरमद्यानां पानं क्षीरस्य शोभनम्। जीवतां भूमिपालानां सुहृदामपि दर्शनम्। उरगो वृश्चिकश्चैव जलौका दृश्यते यदि। तदा पुत्रादि लाभः स्यादगम्यागमने शुभम्। सर्वाणि शुक्लानि सुशोभनानि कार्पासभस्मास्थिकपालवर्जम्। सर्वाणि कृष्णानि विनिन्दितानि गोहस्तिदेवद्विजवाजिवर्जम्। मरणं बन्धनं धन्यं वह्निदाहो गृहादिषु। शुक्लपीताम्बरा नारी शुक्लपीतानुलेपना। अवगूहति यं स्वप्ने तस्य स्यात् सर्वतः सुखम्। कृष्णरक्ताम्बरा नारी रक्तकृष्णानुलेपना। अवगूहति यं स्वप्ने व्याधिं मृत्युञ्च निर्दिशेत। वराहर्क्षखरोष्ट्राणामारोहो महिषस्य च। भक्षणं पक्वमांसानां तैलस्य कृशरस्य च। नर्त्तनं हसनञ्चैव विवाहो गीतमेव च। तन्त्रीवाद्यविहीनानां वाद्यानामपि वादनम्। दिव्यान्तरीक्षभौमानामुत्पातानान्तु दर्दनम्। स्वप्ने पश्यति

चात्मानं रक्ताम्बरविभूषणम्। मलिनाम्बरधारित्वमभ्यङ्गक्षौरनग्नता। उत्सवाचरणं पातो दोलारोहश्च निन्दितः"॥ इति स्वप्नफलम्।

“सर्वतः क्षुतमशोभनं स्मृतं गोक्षुतं मरणमेव करोति। केचिदाहुरफलं बलात् कृतं वृद्धपीनसितबालकृतञ्च॥ वित्तं ब्रह्मणि कार्य्यसिद्धिरतुला शक्रे हुताशे भयं याम्यमग्निभयं सुरद्विषि कलिर्लाभः समुद्रालये। वायव्यां वरवस्त्रगन्धसलिलं दिव्याङ्गना चोत्तरे। ऐशान्यां मरणं ध्रुवं निगदितं दिग्लक्षणं क्षुज्जने। ज्येष्ठीकृते क्षुतेऽप्येवमूचुः केचिच्च कोविदाः"॥ विष्णुधर्मोत्तरे। विष्णोरित्यधिकृत्य “नाम संकीर्त्तनं नित्यं क्षुतः प्रस्खलितादिषु। वियोगं शीघ्रमाप्नोति सर्वात्मा नात्र संशयः"॥ अतएव विष्णुपुराणम्। “स्मृते सकलकल्याणभाजनं यत्र जायते। पुरुषन्तमजं नित्यं व्रजामि शरणं हरिम्"॥ युद्धयात्रायाम्। “यत्र ऋक्षे स्थितो राहुर्वदनं तद्विनिर्दिशेत्। मुखात् पञ्चदशे ऋक्षे तस्य पृष्ठं प्रतिष्ठितम्। राहुभुक्तानि ऋक्षाणि जीवपक्षे त्रयोदश। त्रयोदशैरभोग्यानि मृतपक्षगतानि च॥ मृतपक्षे मुखं तस्य गुदं जीवार्द्धमध्यगम्। जीवपक्षे क्षपानाथे मृतपक्षे रवौ स्थिते॥ तदा रणे शुभा यात्रा विपरीते तु हानिदा। चन्द्रादित्यौ यदा युक्तौ जीवपक्षे व्यवस्थितौ॥ तत्र क्षेमं जयो लाभो यात्राकाले न संशयः। मृतपक्षे यदा काले संस्थितौ चन्द्रभास्करौ॥ तदा हानिर्भयो भङ्गो मृत्युर्यात्राफलं मतम्। जीवपक्षे स्थिते चन्द्रे कार्य्यः स्यादमृतोपमम्॥ मृतपक्षे मृतं ज्ञेयं यतश्चन्द्रबलाबलम्। युद्धकाले यदा शीघ्रं यात्रायोगेन लभ्यते॥ उत्पत्यौ तु तदा शीघ्रं तत्कालेन्दुदिवाकरौ। दृष्टा नाड्यो हृता धिष्ण्यैः षष्टिभागावशेषकैः॥ अश्विन्यादीन्दुभुक्तेन योगात्तत्काल-

चन्द्रमाः। यथा चन्द्रस्तथा सूर्य्यः कर्त्तव्यश्चेष्टकालिकः। अहोरात्रस्य मध्ये तौ विभ्रान्तौ धिष्ण्यमण्डले॥ सर्वेषु शुभकार्य्येषु यात्राकाले विशेषतः। दण्डैश्च पञ्चभीराशावेवं स्युर्द्वादशं क्रमात्॥ लग्नवद्भुक्तभाग्यस्य त्यागाच्छेषक्रमात् क्रमः"॥ इष्टा नाड्यः कर्म्मकालीनदण्डसंख्या सूर्य्योदयावधि गतरात्रिप्रविष्टनक्षत्रदण्डसंख्यावधि वा सप्तविंशत्या पूरिताः षष्ट्या यो लब्धः सोऽश्विन्यादिचन्द्रभुक्तहृत्या नक्षत्राङ्कयुक्तः सप्तविंशाधिकश्चेत्तमपहाय यत् संख्यानं तेन नक्षत्रं तत्र चन्द्रः। यः शेषस्तत्रोदयावधि कर्मकालीनदण्डसंख्याया गतरात्रिप्रविष्टनक्षत्रदण्डसंख्यायोगात् यो भवति तत्संख्यदण्डा भोग्याः। सूर्य्यपक्षे सूर्य्यभुक्तनक्षत्राङ्कयुक्तो लब्धाङ्क इति विशेषः। "प्रवासः सुस्थता मृत्युर्हास्यं जायाज्वरोऽरतिः। नष्टता शून्यता क्रीड़ा सुप्तिर्भुक्तिश्च मेषतः। एताश्चेद्द्वादशावस्था शशाङ्कस्य दिने दिने। शुभाशुभेषु कार्य्येषु फलं नास्यनुरूपतः"॥ इति तत्कालीनराहु तत्कालचन्द्रादित्यव्यवस्था च यात्रायां निर्दिष्टव्या। हरिवंशे "मरणं सहमानानां युद्धरतां विजयो ध्रुवम्"॥ विदेशगतभ्रात्रान्वेषणायं न गन्तव्यम्। यथा विष्णुपुराणम्। "ततःप्रभृति वै भ्राता भ्रातुरन्वेषणे द्विजः। प्रयातो नश्यति तथा तन्न कार्य्यं विजानता"॥ ततः समस्तपृथिवीं द्रष्टुं गतानां हर्य्यश्वादीनां तदनुगामिनाञ्च तद्भ्रातॄणां सबलाश्वादीनाम् अनिवर्त्तनदर्शनात्। मत्स्यपुराणेऽपि। "ततःप्रभृति न भ्रातुः कनीयान् मार्गमिच्छति। अन्विष्य दुःखमाप्नोति तेन तत् परिवर्जयेत्॥ तिथावरिक्ते शुभदे च चन्द्रे पापेषु केन्द्राष्टमवर्जितेषु। शाम्ये स्थिरे वा निजभे सुलग्ने गृहं विशेद्वा न निवृत्तभूपः। परविषयपुराप्तौ साधुदेवद्विजस्वं कुलजनवनिताश्च क्ष्माधिपो नोपरुन्ध्यात्। विहगतुरगशस्त्रा-

नार्त्तभीतांश्च हन्याच्छुभतिथिदिवसर्क्षे हृष्टसैन्यो विशेच्च। पुष्टैः शुक्रेन्दुजीवे ध्रुवलघुवलभिद्विष्णुमैत्रेन्दुपौष्णैः सलग्ने पापजन्मोदयपतिषु विरन्ध्रारिगेन्द्वारसौम्यैः। त्र्यायारिस्थेरथाष्टव्ययगृहरहितैः सद्ग्रहैः केन्द्रकोणे वीर्याढ्ये चाविरयांशे सुदिनतिथिशुभेन्दौ नृपस्याभिषेकः” ॥

अथ छत्रचक्रम्। “आदौ चक्रं समालिख्य छत्रत्रयं सुशोभनम्। अश्विन्यादिलिखेत्तत्र सप्तविंशतिभानि च॥ अश्विन्याद्यं मघाद्यञ्च मूलाद्यञ्च क्रमेण तु। उत्तरे पूर्वदक्षे च एतच्छत्रत्रयं मतम्॥ प्रतीचीमध्यरेखाग्रादैशान्यन्तं हयाधिपः। आग्नेय्यन्तं नराधीशो नैरृत्यन्तं गजाधिपः॥ अश्वाध्यक्षो नराध्यक्षो गजाध्यक्षः क्रमेण तु। एषां छत्रविभागेन ज्ञातव्यञ्च शुभाशुभम्॥ अन्येषां भूभृतामृक्षं यत्र छत्रे व्यवस्थितम्। तच्छत्रं तस्य भूपस्य शुभाशुभफलप्रदम्॥ चामरं कलसी वीणा छत्रं दण्डः पतद्ग्रहः। आसनं,कीलकं रज्जुर्नवभेदाः प्रकीर्त्तिताः॥ यस्य छत्रे स्थितः सौरिः भङ्गं तस्य विनिर्दिशेत्। फलञ्च चामरादीनां प्रत्येकञ्च वदाम्यहम्॥ चामरे चण्डता वायोरनावृष्टिस्तु जायते। दुर्भिक्षञ्च भवेद्घोरं प्रजापीड़ा न संशयः। कलसस्थे भवेद्युद्धं रणे भङ्गो महद्भयम्। घातपातादिकं सर्वं जायते नात्र संशयः। वीणासंस्थेऽर्कतनये पट्टराज्ञी विनश्यति। चलच्चित्तो भवेद्राजा भयभीता च मेदिनी। यदा ऋक्षत्रये सौरिश्छत्रे दण्डे पतद्ग्रहे। तदा तस्य भवेद्भङ्गश्छत्रस्यापि न संशयः। आसनस्य भवेन्नाश आसनस्थे शनैश्चरे। युवराजक्षयः कीले बन्धनं रज्जुसंस्थिते। सौम्ययुक्तोऽतिचारस्थः शनिरुक्तफलो न हि। वक्रगः क्रूरयुक्तश्च सर्वक्रूरं करोति सः। शनिराहुकुजादित्या यदा जीवेन्दुसंयुताः। उत्तराधीशराज्ञो वै निश्चितं छत्रभङ्गदाः।

क्रूरश्चतुष्टयश्चैव बुधचन्द्रेण संयुतम्। पूर्वं छत्रविनाशाय सूचितं पूर्वसूरिभिः। एवं पापचतुष्कञ्च यदा शुक्रेन्दुसंयुतम्। दक्षिणाशापतेश्छत्रविनाशो भाषितो बुधैः। एवमन्येषु राज्येषु यत्र यस्य च सम्भवः। उक्तग्रहसमायोगाच्छत्रभङ्गं विनिर्दिशेत्। यथा दुष्टफलः सौरिस्तथा सौम्यफलो गुरुः। भौमज्ञौ गुरुराहू च रविचन्द्रौ बले समौ। यथा हानिकराः क्रूरास्तथा सौम्याः शुभङ्कराः। क्रूरयुक्तो बुधः क्रूरश्चन्द्रः पूर्णस्तथाशुभः। सौम्याः क्रूराः यदा छत्रे दृष्ट्या वै छत्रसंस्थिताः। छत्रभङ्गो भवेत्तस्य परचक्रागमेन च। नृपनामार्क्षगोराहुः केतुर्वा यदि संस्थितः। छत्रभङ्गो भवेत्तस्य विषदानेन भूपतेः॥ मृगयां साहसं यात्रां तृष्णाश्वगजवाहनम्। विग्रहञ्च त्यजेद्राजा छत्रस्थे क्रूरखेचरे॥ एवं ज्ञात्वा यदा राजा करोति ग्रहशान्तिकम्। यदुक्तं यामले तन्त्रे तेन शान्तो भवेन्नृपः"॥

अथ सिंहासनचक्रम्। "अथातः संप्रवक्ष्यामि चक्रं सिंहासनत्रयम्। सप्तविंशतिनक्षत्रैरेकैकञ्च नरात्मकम्॥ अश्विनीमघमूलाद्यं पञ्चनाडौ विभेदतः। अश्विन्याद्युत्तरे भागे मघाद्यं पूर्वतः स्थितम्॥ मूलाद्यं दक्षिणे भागे ज्ञातव्यं नृपतित्रयम्। इतरेषु च वाद्येषु नृपनामर्क्षतो वदेत्॥ शुभाशुभमिदं सर्वं यत्र यस्य शनिः स्थितः। नाडिकापञ्चवेधेन एकैकस्यासनं भवेत्॥ आधारमासनं पट्टं सिंहं सिंहासनन्तथा। ग्रहैर्वेधवशाज्ज्ञेयं सौम्यैः क्रूरैः शुभाशुभम्॥ ऋक्षे आधारगे राजा अभिषिक्तो यमासने। पराधीनगतं राज्यं कुरुते नात्र संशयः॥ आसनस्थेन ऋक्षेण नीतियुक्तो भवेन्नृपः। प्रधानपुरुषो देवः प्रजाशान्तिकरो भवेत्॥ पट्टऋक्षे यदा राजा उपविष्टो नृपासने। पूर्वराजस्थितेस्तुल्यश्चिरं पाल-

यते महीम् ॥ सिंहरूपी भवेद्राजा सिंहर्क्षेणासने स्थितः । संग्रामस्य प्रियो नित्यमसाध्यो मन्त्रिमण्डलैः ॥ सिंहासनगते धिष्ण्ये तेजस्वी भीषणाकृतिः । चलच्चित्तो महाक्रोधी प्रजापीड़ाकरो नृपः ॥ तत्कालेन्दुगते ऋक्षे क्रूरनिर्वेधनाड़िके । शुभावस्था शुभे लग्ने संस्थाप्यो नृप आसने ॥ ईदृशे च समायोगे उपविष्टो य आसने । उच्छाद्य शत्रुसंघातमेकच्छत्रं करोति सः ॥ क्रूरग्रहगता नाड़ीमुपविष्टो य आसने । बन्धनं भूमिनाथस्य तथा मृत्युः प्रजायते ॥ आधार ऋक्षगः सौरिरनावृष्टिं करोति च । दुर्भिक्षं रौरवं तत्र प्रजापीड़ा च जायते ॥ आसने च यदा सौरिर्युद्धे भङ्गप्रदा भवेत् । अथवा व्याधिपीड़ा च मनोदुःखं प्रजायते ॥ पट्ट ऋक्षे यदा सौरिः पट्टराज्ञी विनश्यति । प्रियो वाथ कुमारो वा मन्त्रिबन्धुक्षयोऽपि वा ॥ सिंहे सिंहासने वापि यदा तिष्ठति सूर्य्यजः । तदा मृत्युर्न सन्देहो यदि शक्रसमो नृपः ॥ शनिराह्वर्कमाहेया यदा चन्द्रेण संयुताः । यस्यासनगता एते तस्य राज्ञो भयङ्कराः ॥ क्रूरयुक्तोऽथ वक्रस्तु क्रूरनाड़ीगतोऽपि वा । आसने चन्द्रयोगेन कालरूपी शनैश्वरः । एवं शुभफलं दद्याद्देवमन्त्री न संशयः । करोति विपुलं राज्यं यस्यासनगतो गुरुः" ॥ इति वन्द्यघटीयहरिहरभट्टाचार्य्यात्मज-श्रीरघुनन्दन-भट्टाचार्य्यविरचितं ज्योतिस्तत्त्वं समाप्तम् ।

# मलमासतत्त्वम्।

"प्रणम्य सच्चिदानन्दं परमात्मानमीश्वरम्। मुनीन्द्राणां स्मृतेस्तत्त्वं वक्ति श्रीरघुनन्दनः॥ मलिम्लुचे दायभागे संस्कारे शुद्धिनिर्णये। प्रायश्चित्ते विवाहे च तिथौ जन्माष्टमीव्रते॥ दुर्गोत्सवे व्यवहृतावेकादश्यादिनिर्णये। तड़ागभवनोत्सर्ग वृषोत्सर्गतये व्रते॥ प्रतिष्ठायां परीक्षायां ज्योतिषे वास्तुयज्ञके। दीक्षायामाह्निके कृत्ये क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे॥ सामश्राद्धे यजुःश्राद्धे शूद्रकृत्यविचारणे। इत्यष्टाविंशतिस्थाने तत्त्वं वक्ष्यामि यत्नतः॥ प्रणम्य भारतीकान्तमज्ञानध्वान्तभास्करम्। सतां मुदे स्मृतेस्तत्त्वे तत्त्वं भाषे मलिम्लुचे॥ मासशक्यं तथोत्पत्तिवाक्यं दर्शादिकस्य च। प्रकृतौ विकृतेर्धर्मः पक्षादिकालनिर्णयः॥ चान्द्रसावननाक्षत्र सौराणाञ्च निरूपणम्। तथा कर्मविशेषेषु चान्द्रादिमासनिर्णयः॥ सिंहार्कादौ न यात्रा स्याद्दशाष्टौ व्यसनानि च। दैवस्य लक्षणं कर्मसिद्धये दैवपौरुषौ॥ कालस्य हेतवः कष्टौ रिपुरर्घ्यप्रदानकम्। अगस्त्यस्य मुनेर्वाच्यमुत्तरायणशुक्लयोः॥ चूड़ोपनयनं सन्ध्याकालेऽतीतेऽपि सा भवेत्। सीमन्तोन्नयनं जातेऽप्युपनायोत्तरावधि॥ स्नाने च कार्त्तिकादेस्तु सौरचान्द्रविकल्पनम्। तदशक्तौ प्रतिनिधिर्माघस्नानविधिस्तथा॥ स्नानतर्पणयोर्मध्ये प्रातःसन्ध्याकृतिस्तथा। पौर्णमास्यन्तमासेन मूलकानामभक्षणम्॥ सौरेण माघस्नानं नाक्षत्रस्य प्रयोजनम्। चान्द्रसौरोक्तकार्य्याणां वाक्ये मासौ तथाविधौ॥ अन्यत्र मुख्यचान्द्रः स्याद्द्योल्लेखस्य साधकम्। मासशब्दस्य दर्शान्तशक्यत्वे साधकान्तरम्॥ तिथेर्लक्ष्म दिनत्वञ्च धर्म-

शास्त्रेण बाध्यता। अर्थशास्त्रस्य भोगानां त्रिपुरुषत्वनिर्णयः॥ त्रिंशत्तिथ्यात्मको मासो लग्नमानादिनिर्णयः। नाक्षत्रवत्सरैरायुर्ज्ञाताह प्राक् तिथौ तथा॥ षाण्मासिकाब्दिके श्राद्धे चैत्रादेश्चान्द्रवाचिता। हेतुवन्न्यायचर्चात्र मेषादिराशिनिर्णयः॥ शक्तिग्राहकमानञ्च चैत्रादेरब्दवाचिता। महाज्यैष्ठी विचारोऽत्र संवत्सरनिरूपणम्॥ लक्षणं मलमासस्य तद्युग्मस्यैकहायने। विचारः सावनाहेन सप्तवारप्रवर्त्तनम्॥ क्षयमासा द्विमासत्वं संक्षेपो मलमासके। दीक्षाकालविधानञ्च दीक्षा प्रतिप्रसूतिका॥ शूद्रस्योङ्कारयुङ्मन्त्रनिषेधश्च स्त्रिया अपि। सूतकेऽपि च पूजादिरशौचे विष्णुकीर्त्तनम्॥ अधिमासे विवाहादिनिषेधस्य निरूपणम्। सपिण्डीकरणश्राद्धात् सिद्धिः स्यादाब्दिकस्य च॥ ग्रहदौःस्थ्यफलस्यापि द्रव्यादौ पाकनिर्णयः। कार्ये शूद्राधिकारश्च प्रायश्चित्तं मलिम्लुचे॥ दत्तनष्टस्वर्णदानं गजच्छाया निरूपणम्। शूद्रस्यापि मघाश्राद्धमविभक्तैः पृथक् क्रिया॥ मघानिमित्तके श्राद्धे पुत्री पिण्डं विवर्जयेत्। अपिण्डकमघाश्राद्धात् पक्षश्राद्धकृतं भवेत्॥ पार्वणासनदानादौ ये चात्र त्वेति भाषणम्। पर्य्युदासो गयायान्तु कालदोषा प्रतीक्षणम्॥ नवान्नश्राद्धकालश्च त्रिजन्मादिविवेचनम्। कालाशुद्धिविचारोऽत्र चातुर्मास्य व्रतं तथा॥ ऋतुभेदात्तयोत्याते दोषाभावविनिर्णयः। काम्यं कृष्णस्य तुष्ट्यर्थं प्रकर्त्तव्यं मुमुक्षुणा॥ महादानस्य गणना तथा तस्य च लक्षणम्। व्रतं यन्मलमासार्हं पितृपक्षमृतक्रिया॥ आश्वयुक् कृष्णपक्षीयश्राद्धसम्यक् निरूपणम्। मलमासे त्वमावास्या प्रत्याब्दिकविवेचनम्॥ सपिण्डनस्यापकर्षो गर्भकृत्यादिहेतुकः। सन्यासप्रतिषेधश्च कलौ क्षत्रविशोर्भवेत्॥ पुत्रेतरेण कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं मृताहनि। न पार्वणं कदाचित्तु दर्शादिकमृतस्य च॥ मल-

मासान्तरेऽपि स्यान्मलमासकृताह्निकम्। निबन्धान् बहुधालोच्य निबध्यन्ते सतां मुदे"॥

अथ मासशक्यम्। तत्र लघुहारीतः। "इन्द्राग्नी यत्र हूयेते मासादिः स प्रकीर्त्तितः। अग्नीषोमौ स्मृतौ मध्ये समाप्तौ पितृसोमकौ"॥ यत्र शुक्लप्रतिपदि। "तथाहि अमावास्यायाममावास्यया यजेत पौर्णमास्यां पौर्णमास्या यजेत" इति श्रुतिविहितदर्शपौर्णमासयागयोः कर्म्मस्वरूपज्ञापकश्रुतीश्च समामनन्ति यथा "आग्नेयाष्टाकपालोऽमावास्यायां पौर्णमास्याञ्चाच्युतो भवति उपांशुयाजमन्तरा यजति ताभ्यामेवाग्नीषोमीयमेकादशकपालं पौर्णमासे प्रायच्छत् ऐन्द्रं दध्यमावास्यायाम् ऐन्द्रं पयोऽमावास्यायामिति"। ताभ्याम् आग्नेयाष्टाकपालोपांशुयाजाभ्यां तेनाग्नेयाष्टाकपालोपांशुयाजाग्नीषोमीय एकादशकपालयागास्त्रयः पौर्णमास्याम् आग्नेयाष्टाकपालैन्द्र-दधि-पयो यागास्त्रयोऽमावास्यायामित्यर्थः। आसु श्रुतिषु अमावास्या पौर्णमासीपदानि प्रतिपत्सहिततदुभयपराणि तत्र पूर्वयोर्यागारम्भः प्रतिपदोर्यागः तथा च "द्वे ह वै पौर्णमास्यौ द्वेऽमावास्ये तस्मात् प्रतिपद्युपवसन् यजेतापरेद्युः"। इति श्रुतिः अत्र पौर्णमास्यौ पौर्णमासी प्रतिपदौ अमावास्येऽमावास्या प्रतिपदौ शातपथब्राह्मणेऽपि "पूर्वेद्युरग्निं गृह्णाति उत्तरमहर्यजतीति"। स्मृतयश्च यथा गोभिलः। "पक्षान्ता उपवस्तव्याः पक्षादयोऽभियष्टव्याः"। पारस्करः। "पक्षादिषु स्थालीपाकं श्रपयित्वा दर्शपौर्णमासदेवताभ्यो जुहोतीति" तथा कल्पसूत्रम्। "दर्शपौर्णमासाभ्यां मासं यजन्ते पक्षादौ यद्धविस्तत्सर्वस्मिन्निति"। अस्यार्थः। यावज्जीवकयोर्दर्शपौर्णमासयोः प्रकृतीभूतयोर्विकृतीभूतौ माससाध्यौ दर्शपौर्णमासौ कौण्डपायिनामयनीयौ पक्षादौ यष्टव्यौ।

अत्र पक्षादौ यद्धविस्तत्सर्वस्मिन्निति । नमासीत्यनेन विकृतिगतेन पक्षादावित्यनेन प्रकृतीभूतयोरपि दर्शपौर्णमासयोः पक्षादिकालत्वमवधारितम् । यथा ज्योतिष्टोमे । द्वादशशतगोदक्षिणा विभागः षोड़शर्त्विजां तद्विकृतीभूते सत्रात्मके द्वादशाहसाध्ये शतेनार्द्धिनोदीक्षयन्तीत्यादिदर्शनेन निर्णीयते । तत्र विभागं मनुरप्याह । "सर्वेषामर्द्धिनो मुख्यास्तदर्द्धेनार्द्धिनोऽपरे । तृतीयिनस्तृतीयांशाश्चतुर्थांशैकपादिनः" । दक्षिणा गोशतविभागाय श्रौतकात्यायनोऽपि अथ द्वादशद्वादशाद्येभ्यः षट्षट्द्वितीयेभ्यश्चतस्रश्चतस्रस्तृतीयेभ्यस्तिस्रस्तिस्र इतरेभ्य इत्यत्र षोड़शानामृत्विजां चतुरश्चतुरः कृत्वा चत्वारो वर्गा इति तेन दर्शपौर्णमासयाजिना पक्षादियाजिना च यत्र शुक्लप्रतिपदि इन्द्राग्नी हूयेते समासादिः मध्ये मासमध्ये कृष्णप्रतिपदि अग्नीषोमौ हूयेते इति कृत्वा स्मृतौ एवममावास्यायामपराह्णे पिण्डपितृयज्ञेनाचरन्तीति श्रुत्यङ्गपिण्डपितृयज्ञाङ्गाग्नौकरणहोमीयसोमाय पितृमते स्वाहेति मन्त्रप्रकाश्यौ पितृसोमकौ समाप्तौ माससमाप्तौ अमावास्यायां हूयेते इति कृत्वा स्मृताविति अत्र विशेषतो मासादिमध्यान्तकीर्त्तनात् शुक्लप्रतिपदि दर्शान्त एव मासशब्दस्याभिधेयतायां मुनेः स्वरसोऽवगम्यते सावनसौरादीनां गौणतायामपीति । अत्र "पर्वणो यस्तुरीयांश आद्याः प्रतिपदस्त्रयः । यागकालः स विज्ञेयः प्रातर्युक्तो मनीषिभिः" ॥ इति वौधायनवचनेन ऋग्वेदिनां यागकालतया वोधितोऽपि दर्शपौर्णमास्यंशोऽनियततया न मासादिमध्यघटकः किन्तु पूर्वोक्तश्रुत्यादेश्छन्दोगपरिशिष्टात् गर्गवचनाच्च पर्वकालकरणपक्षेऽपि प्रतिपदि समापनस्यावश्यकतया प्रतिपदेव तद्घटिकेति । तथा च छन्दोगपरिशिष्टम् । "पक्षादावेव कुर्वीत सदा पक्षादिक-

श्वरम्। पूर्वाह्ण एव कुर्वीत विद्धेऽप्यन्ये मनीषिणः"॥ विद्धे द्वितीयाविद्धे पश्चादावेवेत्ययोगव्यवच्छेदपरं न त्वन्ययोगव्यवच्छेदपरम्। तथा कालादर्शकालमाधवीयप्रभृति दाक्षिणात्य वैदिकग्रन्थेषु गर्गः। "प्रतिपद्यप्रविष्टायां यदि चेष्टिः समाप्यते। पुनः प्रणीय कृत्स्नेष्टिः कर्त्तव्या योगवित्तमैः"॥ प्रणीयाग्निमिति शेषः। गोभिलोऽपि। "आवर्त्तने यदा सन्धिः पर्वप्रतिपदोर्भवेत्। तदहर्याग इष्येत परतश्चेत् परेऽहनि"॥ पूर्वाह्णापराह्णद्विधाविभक्तदिनस्यावधित्वेनावर्त्तनमाह स्कन्दपुराणम्। "आवर्त्तनात्तु पूर्वाह्णो ह्यपराह्णस्ततः परम्। आवर्त्तनाद्वासरस्य छायायाः परिवर्त्तनात्"॥ प्राक् पूर्वाह्णः। अतएवोक्तम्। "अश्वत्थं वन्दयेन्नित्यं पूर्वाह्णे प्रहरद्वये। अत ऊर्द्ध्वं न वन्देत अश्वत्थन्तु कदाचन"॥ परतोऽपराह्णे। त्रिधाविभक्तदिनाभिप्राये तु लोकाक्षिः। "पूर्वाह्णे मध्यमे वापि यदि पर्व समाप्यते। तदोपवासः पूर्वेद्युस्तदहर्याग इष्यते॥ अपराह्णेऽथ वा रात्रौ यदि पर्व समाप्यते। उपोष्य तस्मिन्नहनि श्वोभूते याग इष्यते"॥ उपोष्येति नाहोरात्राभोजनपरम्। किन्तु कृतेऽग्न्याधाने देवा यजमानस्य समीपमुपवसन्तीति उपवासशब्देनाग्न्याधानमुच्यते। तैत्तिरीय ब्राह्मणे तथा श्रुतेः यथा उपास्मिन् श्वोयक्ष्यमाणे देवता वसन्ति एवं विद्वानग्निमुपस्तृणाति। वृद्धशातातपः। "सन्धिश्चेदपराह्णे स्यात् पादः प्रातः परेऽहनि। कुर्वाणः प्रतिपद्भागे तुरीयेऽपि न दुष्यति"॥ ननु चान्द्रवत् सावनादिष्वपि विष्णुधर्मोत्तरे मासपदं सङ्केतितं यथा "चन्द्रमाः कृष्णपक्षान्ते सूर्य्येण सह युज्यते। सन्निकर्षाद्यथारभ्य सन्निकर्षमथापरम्॥ चन्द्रार्कयोर्बुधैर्मासश्चान्द्र इत्यभिधीयते। सावने च तथा मासि त्रिंशत्सूर्य्योदयाः स्मृताः॥ आदित्यराशिभोगेन सौरो मासः प्रकीर्त्तितः। सर्वर्क्षपरि-

वर्त्तैस्तु नाक्षत्र इति चोच्यते" ॥ चन्द्रार्कयोः सन्निकर्षात् दर्शात् । अथानन्तरं प्रतिपदमारभ्य अन्यथा सन्निकर्षमारभ्येति ब्रूयात् अपरं सन्निकर्षं यावत् तावत्कालश्चान्द्रः । एतेन सन्निकर्षादि सन्निकर्षान्तो मास इति नारायणोपाध्यायमतं निरस्तम् । त्रिंशदहोरात्रात्मकः सावनः आदित्यैकराशिभोगावच्छिन्नः सौरः सप्तविंशतिनक्षत्रावच्छिन्नो नाक्षत्र इति चतुर्विधा मासाः । तथा च ब्रह्मसिद्धान्ते "चान्द्रः शुक्लादि दर्शान्तः सावनस्त्रिंशता दिनैः । एकराशौ रविर्यावत् कालं मासः सभास्करः । सर्व्वर्क्षपरिवर्त्तैस्तु नाक्षत्र इति चोच्यते" ॥ मैवं चान्द्रसौरसावननाक्षत्र मासोल्लेखित कर्म्मसु ते कीदृशा इत्याकाङ्क्षायां विष्णुधर्म्मोत्तरादिवचनस्य तत्परिचायकत्वेनोपपत्तौ मासशब्दस्य तत्र तत्र शक्तिग्राहकत्वे प्रमाणाभावात् । अनेकशक्तिकल्पने गौरवात् वक्ष्यमाणयुक्तिभ्यश्च चान्द्र एव शक्तिः ।

अथ कर्म्मविशेषे मासविशेषादिः । तत्र पितामहः । "आब्दिके पितृकृत्ये च मासश्चान्द्रमसः स्मृतः । विवाहादौ स्मृतः सौरो यज्ञादौ सावनो मतः" ॥ प्रथमादिपरं यात्राग्रहचारपरम् । यत्कर्मसूर्य्यभोग्यराश्युल्लेखेन यच्च विशेष्योद्गयनादिविहितं तत्परञ्च अयनस्य सौरमासघटितत्वेन वक्ष्यमाणत्वात् तच्च चूडोपनयनादि । द्वितीयादिपदं सत्रभृतिवृद्धिप्रायश्चित्तायुर्दायाशौचगर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयननामकरणान्नप्राशननिष्क्रमणचूडादिपरम् । तत्र चूडादावेकत्रैव सौरसावनग्रहणं पश्चादुपपादयिष्यामः । तथा च विष्णुधर्म्मोत्तरे । "अध्वायनञ्च ग्रहचारकर्म्म सौरेण मानेन सदाध्यवस्येत् । सत्राण्युपास्यान्यथ सावनेन लोकश्च यत्स्याद्व्यवहारकर्म्म" ॥ अध्वायनम्, अध्वगमनं यात्रेति यावत् । संवत्सरप्रदीपे । "सिंहे

धनुषि मीने च स्थिते सप्त तुरङ्गमे। यात्रोद्वाहगृहारम्भघोरकर्म्माणि वर्जयेत्"॥ एतन्मासत्रय यात्रानिषेधो राजेतरपरः। राज्ञः कार्य्यानुरोधात् सर्वदा यात्राविधानात्। यथा मनुः। "मार्गशीर्षे शुभे मासि यायाद्यात्रां महीपतिः। फाल्गुनं वापि चैत्रं वा मासं प्रति यथाबलम्॥ अन्येष्वपि तु कालेषु यदा पश्येत् ध्रुवं जयम्। तदा यायाद्विगृह्यैव व्यसने चोत्थिते रिपोः"॥ व्यसनान्याह स एव। "कामजेषु प्रसक्तो हि व्यसनेषु महीपतिः। वियुज्यतेऽर्थधर्म्माभ्यां क्रोधजेष्वात्मनैव तु॥ मृगयाक्षो दिवास्वप्नः परीवादस्त्रियो मदः। तौर्य्यत्रिकं वृथाट्या च कामजो दशको गणः॥ पैशुन्यं साहसं द्रोह ईर्षासूयार्थदूषणम्। वाग्दण्डजञ्च पारुष्यं क्रोधजोऽपि गणोऽष्टकः"॥ अक्षो द्यूतक्रीड़ा। तौर्य्यत्रिकं नृत्यगीतवाद्यानि त्रीणि। दश पैशुन्यमविज्ञातपरदोषाविस्करणम्। साहसं साधोर्बन्धनादिना निग्रहः। द्रोहो जिघांसा ईर्षाऽन्यगुणासहिष्णुता। असूया परगुणेषु दोषाविस्करणम् अर्थदूषणम् अर्थानामपहारः देयानामदानाञ्च। अतएव दीपिकायाम्। "दैवहीनं रिपुं जेतुं यायाद्दैवान्वितो नृपः। योज्या दैवान्वितामात्या दैवहीने तथात्मनि॥ व्यसनी विनष्टधर्म्मा त्रिविधोत्पातपीड़ितो यश्च। पुरुषः स दैवहीनः कथितो दैवान्वितोऽन्यः"॥ अतएव याज्ञवल्क्यः। "दैवे पुरुषकारे च कर्म्मसिद्धिर्व्यवस्थिता। तत्र दैवमभिव्यक्तं पौरुषं पौर्व्वदैहिकम्"॥ अभिव्यक्तं फलोन्मुखीभूतम्। मनुरपि। "युक्ते दैवे च युज्येत जयप्रेप्सुर्व्यपेतभीः। साम्ना दानेन भेदेन समस्तैरथवा पृथक्॥ विजेतुं प्रयतेतारीन् न युद्धेन कदाचन। अनित्यो विजयो यस्माद् दृश्यते युध्यमानयोः। पराजयश्च संग्रामे तस्माद् युद्धं विवर्जयेत्। त्रयाणामप्युपा-

यानां पूर्वोक्तानां परिक्षये। तथा युध्येत संयत्तो विजयेत रिपून् यथा"॥ संयत्तः सम्यक्प्रयत्नवान्। कष्टरिपुमाह स एव। "प्राज्ञं कुलीनं शूरञ्च दक्षं दातारमेव च। कृतज्ञं धृतिमन्तञ्च कष्टमाहुररिं बुधाः"॥ कालोऽपि फलहेतुरित्याह मत्स्यपुराणम्। "दैवं पुरुषकारश्च कालश्च पुरुषोत्तम। त्रयमेतन्मनुष्याणां पिण्डितं स्यात् फलावहम्। कृषेर्वृष्टिसमायोगाद्दृश्यन्ते फलसिद्धयः। तास्तु काले प्रदृश्यन्ते नैवाकाले कथञ्चन"॥ सत्राणि गवामयनादीनि माससंवत्सरसाध्यानि। लौकिकं व्यवहारकर्म्म भृतिवृद्ध्यादिकं मासेन यास्यसि मासेन दास्यसीत्यादिकम्। अगस्त्यार्घ्यदानं सौरेण सिंहराशौ विधानात्। यथा ब्रह्मवैवर्त्ते "अप्राप्ते भास्करे कन्यां शेषभूतैस्त्रिभिर्दिनैः। अर्घ्यं दद्युरगस्त्याय गौड़देशनिवासिनः"॥ नारसिंहे। "शङ्खे तोयं विनिक्षिप्य सितपुष्पाक्षतैर्युतम्। मन्त्रेणानेन वै दद्याद्दक्षिणाशामुखस्थितः। काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव। मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते"॥ प्रार्थनन्तु। "आतापिर्भक्षितो येन वातापिश्च महासुरः। समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु"॥ गन्धादिकन्तु। अगस्त्याय नमः इत्यनेन देयं विशेषानुद्देशे सामान्यतः प्राप्तत्वात् दक्षिणाशामुखस्थित इति गन्धादावपि प्रयोगाङ्गकर्त्तृधर्मत्वात् इति रत्नाकरः। तत्पत्न्यर्घ्यमन्त्रस्तु। "लोपामुद्रे महाभागे राजपुत्रि पतिव्रते। गृहाणार्घ्यं मया दत्तं मैत्रावरुणि वल्लभे"। आश्वलायनः। उदगयाने अपूर्य्यमाणे पक्षे कल्याणे नक्षत्रे चौड़कर्म्मोपनयनगोदानविवाहाः। विवाहः सार्वकालिक इत्येके"। विवाहे विषयभेदमाह गृह्यपरिशिष्टम्। "धर्म्येष्वेव विवाहेषु कालपरीक्षणं नाधर्म्येषु"॥ व्यक्तं भुजबले। "ग्रहशुद्धिमब्दशुद्धिं

मासायनर्त्तुदिवसानाम्। अर्वाक् दशवर्षेभ्यो मुनयः कथयन्ति कन्यकानाम्”॥ ननु “चैत्रकृष्णद्वितीयायां तिसृष्वेवाष्टकासु च। मार्गे च फाल्गुने चैव आषाढ़े कार्त्तिके तथा। पक्षयोर्माघमासस्य द्वितीयां परिवर्जयेत्। नाकालवृष्टौ कुर्वीत व्रतबन्धशुभक्रियाम्”। इति भुजबलोक्तं कथं सङ्गच्छता उपनयनस्याश्वलायनेनोत्तरायणशुक्लपक्षयोर्विधानात् पारस्करेणापि उदगयने आपूर्य्यमाणे पक्षे पुण्याह इति कर्म्ममात्रे परिभाषितम् असमासकरणं गर्भाधानादिषु कालविशेषनियतेषु उदगयनादीनां यथासम्भवं नित्यत्वानित्यत्वप्रतिपादनार्थमिति हरिशर्मा। गोभिलेनापि “उदगयने पूर्व्वपक्षे पुण्येऽहनि प्रागावर्त्तनादह्नः कालं विद्यात्” इति यामद्वयात्मकपूर्वाह्णमप्यधिकं परिभाष्य यथा देशञ्चेति पुनः कृतं यथा देशमित्यनेन स्वगृह्योक्तानां प्रौष्ठपद्याम् उपकर्म्मकरणस्यामावास्यायामपराह्णे पिण्डपितृयज्ञस्यान्यस्याप्येवंविधस्योदगयनादि विरुद्धविहितस्य ऋतुकालगर्भस्पन्दन–पूर्व्वकालषष्ठमासादि विहितानाम्पुंसवनसीमन्तोन्नयनादीनाञ्च दक्षिणायनादावनर्थानुपपत्त्या ग्रहणम्। अथैवं यथा देशञ्चेति सूत्रमवाच्यं तत्तद्विशेषविधानादेव सिद्धेर्नायं दोषः। यथादिष्टकालस्य क्रियायामादरार्थमुक्तं तेन तत्तत्कालातिपत्तौ केषाञ्चिल्लोपः यथा अष्टकापिण्डपितृयज्ञादीनां। विद्याकराह्निककृत्येऽपि। “अकाले चेत् कृतं कर्म्म काले तस्य पुनः क्रिया। कालातीतञ्च यत् कुर्य्यादकृतं तद्विनिर्दिशेत्”। यत् कर्म्म यस्मिन् काले विहितं तत्कालाभावेऽपि नाङ्गान्तराभाव इव तत्कर्म्मानुष्ठानं नित्यकर्म्मसु यथाशक्त्युपदेशस्य कृतिसाध्याङ्गमात्रविशेषत्वात् कालस्यानुपादेयत्वान्न तथेति। तदुक्तम् “अङ्गत्वेऽपि च कालस्य न त्यागोऽन्याङ्गवत् कृतः। अनुपादेयरूपत्वात् काले कर्म्म-

विधीयते”॥ वचनात् कालातिपत्तौ केषाञ्चित् प्रायश्चित्तं कृत्वाऽनुष्ठानं यथा सन्ध्यावन्दनादीनां तद्यथा सांख्यायनगृह्यम्। “अरण्ये समित्पाणिः सन्ध्यामुपास्ते नित्यं वाग्यत उत्तरापराभिमुखोऽन्वष्टमदिशमानक्षत्रदर्शनात् अतिक्रान्तायां महाव्याहृतीः सावित्रीः स्वस्त्ययनादि जपित्वा एवं प्रातः प्राङ्मुखस्तिष्ठन्नामण्डलदर्शनात्” इति। उत्तरापराभिमुखो वायुकोणाभिमुखः कोणं विवृणोति अन्वष्टमदिशमिति उभयदिगष्टमभागमिति यावत्। व्यासः। “सन्ध्याकाले व्यतीते तु न च सन्ध्यां समाचरेत्। गायत्रीं दशधा जप्त्वा पुनः सन्ध्यां समाचरेत्”॥ जपे स्मृतिः। “कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः सायञ्चाधो मुखौ करौ। मध्ये तिर्य्यक्करौ प्रोक्तौ जप एव मुदाहृतः”। पितृदयितायामप्येवम्। यत्तु काशीखण्डम्। “विधिनापि कृता सन्ध्या कालातीता वृथा भवेत्। अयमेव हि दृष्टान्तो वन्ध्या स्त्री मैथुनं यथा”। इति तदकृतप्रायश्चित्तपरम्। हरिहरपद्धतौ। “यद्वागामिक्रियामुख्यकालस्याप्यन्तरालवत्। गौणकालत्वमिच्छन्ति केचित् प्राशनकर्म्मणि”। यद्वेति पक्षान्तरं प्राशनकार्य्ये मध्यकालवत् आगामिक्रियामुख्यकालस्यापि गौणकालत्वं तेन सायं सन्ध्याया रात्रिः प्रातःसन्ध्याकालश्च गौणकाल इत्यर्थः। एवमन्यत्रापि। अतएव छन्दोगपरिशिष्टम्। “संस्कारा अतिपत्येरन् स्वकालाच्चेत् कथञ्चन। हुत्वैतदेव कुर्वीत ये तूपनयनादधः”। एतदिति महाव्याहृतिहोमादिप्रायश्चित्तम्। अधः पूर्वम्। वृहद्राजमार्त्तण्डे। “या नार्य्यकृतसीमन्ता प्रसूते च कदाचन। अङ्के निधाय तं बालं पुनः संस्कारमर्हति”॥ देवलः। “सकृच्च संस्कृता नारी सर्वगर्भेषु संस्कृता। यं यं गर्भं प्रसूयेत स गर्भः संस्कृतो भवेत्”॥ संस्कारक्रमनियममाह नारदः। “येषान्तु

न कृताः पूर्वं संस्कारविधयः क्रमात्। कर्त्तव्या भ्रातृभिस्तेषां पैतृकादेव तद्धनात्॥ अविद्यमाने पित्रर्थे स्वांशादुद्धृत्य वा पुनः। अवश्यकार्य्याः संस्काराः भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः"॥ क्रमाद् भ्रातॄणां येषामित्यनेन प्राप्तानां संस्काराणाञ्च पौर्वापर्य्यक्रमात् भ्रातृक्रमस्तु सोदरविषयकः। विवाहे तथा दर्शनात्। कर्णवेधस्य संस्कारत्वाभावान्न तथा नियमः। बृहद्राजमार्त्तण्डकृतचिन्तामण्योर्माण्डव्यवचने तथा दर्शनात् यथा। "यदापत्यद्वयं तिष्ठेत् सम्भवोऽप्यपरस्य च। कर्णषट्कं विजानीयात् गर्हितं तत्त्रयस्य च॥ इत्याशङ्क्य द्वयोर्मध्ये शुद्धिर्यस्याथ वत्सरे। कर्णवेधो हितस्तस्य नात्र ज्येष्ठादिभावना॥ षट्कर्णोत्पत्तिमाशङ्क्य भानोः शुद्ध्या समेऽपि च। कर्णौ वेध्यौ न दोषः स्यादन्यथा मरणम्भवेत्"॥ भ्रातृभिरिति बहुवचनादन्येषां ग्रहणम्। अतएव नारायणपद्धतौ "अष्टौ संस्कारकर्म्माणि गर्भाधानमिव स्वयम्। पिता कुर्य्यात्तदन्यो वा तदभावेऽपि तत्क्रमात्"इत्यत्रान्यो वेत्युक्तम्। न च प्रागुक्तगोभिलसूत्रे उदगयनादावसमासकरणम् एकैकस्यानुगुण्यद्योतनार्थं समुच्चयोपलब्धौ मन्त्रानभ्युदय इति भट्टनारायणव्याख्यानात् दक्षिणायनकृष्णपक्षयोरप्युपनयनमिति वाच्यं पूर्वोक्ताश्वलायनवचनेन चौड़कर्म्मोपनयनयोर्विशिष्य उदगयनशुक्लपक्षयोर्विहितत्वात्। भोजराजेनापि। "माघादिमासषट्केषु शार्ङ्गिणः शयनावधि। चूड़कर्म प्रकुर्वन्ति मुनयो व्रतमेव च"॥ इति व्रतमुपनयनम्। कृत्यचिन्तामणौ दक्षिणायननिषेधोऽपि। "रात्रिभागः समाख्यातः खरांशोर्दक्षिणायनम्। व्रतबन्धादिकं तस्मात् चूड़ाकर्म च वर्जयेत्"॥ तत्कथमुपनयनादिके विशिष्य मार्गादिकृष्णद्वितीयादिनिषेधः। उच्यते। दक्षिणायने वैश्यस्योपनयनविधानात् कृष्णपक्षे प्रायशस्ता-

र्वकोपनयनविधानाच्च तत्परः । न चात्राप्युदगयनाद्यपेक्षा । कृते निःसंशये पापे इत्यादिनिन्दार्थवादेन विलम्बासहत्वात् एकदिनस्योपवासेन गमयितुं शक्यत्वात् । यथा गर्गः । “विप्रस्य क्षत्रियस्यापि मौञ्जी स्यादुत्तरायणे । दक्षिणे च विशां कार्य्यं नानध्ययनसंक्रमे ॥ अनध्यायेऽपि कुर्वीत यस्य नैमित्तिकं भवेत्” ॥ अपिना दक्षिणायनकृष्णपक्षयोः समुच्चयः नैमित्तिकं प्रायश्चित्तरूपं पारस्करः । “विवाहोत्सवयज्ञेषु सौरं मानं प्रशस्यते । पार्व्वणे त्वष्टकाश्राद्धे चान्द्रमिष्टं तथाब्दिके”॥ अथ यज्ञपदमुदगयनादिविहितपशुयागाभिप्रायं पितामहोक्तविष्णुधर्मोत्तरोक्तसत्रपरञ्च । गर्गः । “आयुर्दायविभागश्च प्रायश्चित्तक्रिया तथा । सावनेन तु कर्त्तव्या मन्त्राणामप्युपासना” ॥ सूर्य्यसिद्धान्ते । “सूतकादिपरिच्छेदो दिनमासाब्दपास्तथा । मध्यमग्रहभुक्तिश्च सावनेन प्रकीर्त्तिता” ॥ मध्यमग्रहभुक्तिर्ज्योतिर्गणनाप्रसिद्धा । याज्ञवल्क्यः । “गर्भाधानमृतौ पुंसः सवनं स्पन्दनात् पुरा । षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तः प्रसवे जातकर्म्म च ॥ अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः । षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूडा कार्य्या यथाकुलम् ॥ एवमेनः शमं याति वीजगर्भसमुद्भवम्” ॥ ऋतौ ऋतुकाले । यथा मनुः । “ऋतुकालाभिगामी स्यात्” इति स च कालो याज्ञवल्क्योक्तः । “षोड़शर्त्तुर्निशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत्” । तेन गर्भधारणयोग्यावस्थोपलक्षितः काल ऋतुः । स च रजोनिःसरणकालमारभ्य षोड़शाहोरात्रात्मकः ततश्च गर्भाधानसंस्कारोपक्रमे सावनगणनासिद्धा । पुंसवने चतुर्थे स्पन्दते ततः । इति वचनात् स्पन्दनात् पूर्वं तृतीयमासः कालः तत्र चतुर्थमासस्य सौरत्वे चान्द्रत्वे वा निषेकमासस्यापि तथात्वे तदाद्यन्तदिननिषेके सत्यधिकन्यूनकालयोर्गर्भस्पन्दन-

मनियतमापद्येत। सावने तु नियतं तेनात्रापि सावनगणनायुक्ता योषिद्व्यवहारसिद्धा च। अहन्येकादशे नाम इत्यत्रापि "अशौचव्यपगमे नामधेयम्" इति विष्णुसूत्रात्। सूतकोत्तरदिनपरमेकादशपदं पूर्वोक्तसूर्य्यसिद्धान्तोक्तवचनेन सूतकस्य सावनदिनघटितत्वात् तदुत्तरकालस्यापि तथात्वं तस्माद्गर्भाधानपुंसवननामकरणेषु सावनदर्शनात् तत्साहचर्य्यात् सीमन्तोन्नयनादावपि मासवर्षगणनायां तथेति अतश्चूड़ोपनयनादिषु वर्षगणना सावनेन शुभाशुभगणनन्तु सौरेणेति सिद्धम्। एवमेन इति एवमुक्तप्रकारगर्भाधानादिभिरेनः पापं वीजगर्भसमुद्भवं शुक्रशोणितसम्बन्धं गात्रव्याधिसंक्रान्तिनिमित्तं नाशं याति नित्यत्वेऽप्यानुषङ्गिकमेतत्। उपनयनोत्तरावधिमाह याज्ञवल्क्यः। "आषोड़शाच्च द्वाविंशाच्चतुर्विंशाच्च वत्सरात्। ब्रह्मक्षत्रविशां काल औपनायनिकः परः"॥ आङ् अभिविध्यर्थः। मर्य्यादाभिविधिसन्देहे कार्य्यान्वितत्वेनाभिविधेरेव बलवत्त्वात् एवमेव भट्टभाष्यसरलाभवदेवभट्टमिताक्षराकुल्लूकभट्टकल्पतरुस्मृतिसारप्रभृतयः। शूलपाणिरपि याज्ञवल्क्यटीकायामेव किन्तु प्रायश्चित्तविवेके मर्य्यादार्थकतामाह यमवचनात्। यथा "पतिता यस्य सावित्री दशवर्षाणि पञ्च च। ब्राह्मणस्य विशेषेण तथा राजन्यवैश्ययोः। प्रायश्चित्तं भवेदेषां प्रोवाच वदतां वरः"॥ कुल्लूकभट्टप्रायश्चित्तकल्पतरुधृतमप्येतत्। अत्र ब्रूमः। "औपनायनिकः कालः परः षोड़शवार्षिकः। द्वाविंशतिः परोऽन्यस्य स्याच्चतुर्विंशतिः परः" इति कल्पतरुधृतव्यासवचनं परोऽन्त्यः षोड़शवार्षिक षोड़शवर्षं वाप्य भूतः स्थित इति यावत्। तमधीष्टो भृतो भूतो भावीति ठक् वर्षस्या भविष्यतीति उत्तरपदवृद्धिः अधीष्टोऽध्येषणायुक्तो गुरुः भृतो भृतिग्रहीतो दासः। राजमार्त्तण्डे कृत्यचिन्ता-

मतौ च मार्कण्डेयः। "विप्रस्य षोड़शाद्वर्षाद्राज्ञो द्वाविंशतेः परम्। वैश्यस्याष्टत्रिकादब्दात् सावित्री पतनं भवेत्"॥ अष्टत्रिकाच्चतुर्विंशतेः। विष्णुधर्मोत्तरे। "षोड़शाब्दा हि विप्रस्य राजन्यस्य द्विविंशतिः। विंशतिः सचतुर्थी च वैश्यस्य परिकीर्त्तिता। सावित्री नातिवर्त्तेत अत ऊर्द्धं निवर्त्तते"॥ आभ्यां षोड़शवर्षाद्युपरि यमेन पञ्चदशवर्षोपरि यत् पतनमभिहितं तद्गर्भजन्मप्रभृतिगणनाभ्यामविरुद्धम्। तथा च कृत्यचिन्तामणौ माण्डव्यः। "व्रतबन्धविवाहे च वत्सरपरिकल्पनमाहुराचार्य्याः। आधानपूर्वमेके प्रसूतिपूर्वं सदान्ये तु"॥ एवञ्च व्यासमार्कण्डेयादिवाक्यैकवाक्यतया न्यायसिद्धतया च आषोड़शादित्यादावाङोऽभिविध्यर्थतैव तत्रापि गर्भातिरिक्ते वर्षगणनासावनेनैव। यत्तु द्विजानामुपनयनमुपक्रम्य पैठीनसिवचनम्। "द्वादश-षोड़शविंशतिश्चेदतीता अवरुद्धकाला भवन्तीति"। तत् द्वादशवर्षाद्युपरि प्रत्यवायाल्पत्वज्ञापनपरमिति शूलपाण्युपाध्यायाः अत्र महाव्याहृतिहोमः प्रायश्चित्तं तदुत्तरं व्रात्यप्रायश्चित्तमिति मैथिलास्तु। "विवाहादौ स्मृतः सौरो यज्ञादौ सावनो मतः। शेषे कर्म्मणि चान्द्रः स्यादेष मासविधिः स्मृतः"॥ शेषे सौरादिविशेषोल्लेखरहित इत्याहुः। गङ्गावाक्यावल्यां दक्षः। "चान्द्रेण तिथिकृत्यन्तु यथाविहितमाचरेत्"। कार्त्तिकादिस्नाने च चान्द्रसौरयोर्विकल्पेनानुष्ठानं यथा कृत्यकौमुद्यां पितामहः। "कार्त्तिकस्य तु यत् स्नानं माघे मासि विशेषतः। कृच्छ्रादिनियमानाञ्च चान्द्रमानप्रमाणतः" पद्मपुराणम् "तुलामकरमेषेषु प्रातःस्नानं विधीयते। हविष्यं ब्रह्मचर्य्यञ्च महापातकनाशनम्॥ अत्रोदितानुदितहोमवद्विकल्पेनानुष्ठानमिति हेमाद्रिः। कार्त्तिके मन्त्रस्तु। कार्त्तिकेऽहं करिष्यामि प्रातःस्नानं जनार्दन। प्रीत्यर्थं तव देवेश

दामोदर मया सह"॥ मया लक्ष्म्या। स्कन्दपुराणे। "संप्राप्ते मकरादित्ये पुण्ये पुण्यप्रदे सदा। कर्त्तव्यो नियमः कश्चित् व्रतरूपो नरोत्तमैः"। आरब्धकार्त्तिकादिकाम्यस्नाने तु व्याध्यादिनाऽसामर्थ्ये पुत्रादिप्रतिनिधिना कारयितव्यम्। नानुकल्पविधिना। नित्यस्नान एव तद्विधानात् इति विद्याकरो युक्तश्चैतत्। "जिह्मं त्यजेयुर्निर्लाभमशक्तोऽन्येन कारयेत्। अनेन विधिराख्यात ऋत्विक् कर्षककर्मिणाम्" इति सम्भूयवाणिज्ये याज्ञवल्क्यवचनात् जिह्मो मिथ्यावञ्चकः। तं निर्लाभं ज्ञात्वा त्यजेयुर्बहिष्कुर्य्युः। गारुड़े। "गङ्गायां येऽवगाहन्ते माघे मासि नराधिप। चतुर्युगसहस्रान्ते न पतन्ति सुरालयात्। दिने दिने सुवर्णानां सहस्रन्तु विशाम्पते। तेन दत्तं हि गङ्गायां यो माघे स्नाति मानवः"॥ पद्मपुराणे। "मकरस्थे रवौ माघे प्रातःकाले सदा मुने। गोष्पदेऽपि जले स्नानं स्वर्गदं पापिनामपि"॥ स्कान्दे। "मकरस्थे रवौ माघे न स्नात्यनुदिते रवौ। कथं पापैः प्रमुच्येत कथं स त्रिदिवं व्रजेत्"॥ अनयोः सूर्य्योदयात् प्रागेव स्नानं प्रतीयते। तथा च सामान्यतः प्रातःस्नाने विष्णुः "प्रातःस्नाय्यरुणकिरणग्रस्तां प्राचीमवलोक्य स्नायात्"। दक्षोऽपि। "सन्ध्यास्नानं निशान्ते तु मध्याह्ने तु ततः पुनः"। यत्तु पद्मपुराणम्। "माघे मासि रटन्त्यापः किञ्चिदभ्युदिते रवौ। ब्रह्मघ्नमपि चाण्डालं कं पतन्तं पुनीमहे"॥ इति तद्रटन्त्याख्यचतुर्दशीविषयम्। यथा यमः। "माघे मास्यसिते पक्षे रटन्त्याख्या चतुर्दशी। तस्यामुदयवेलायां स्नाता नावेक्षते यमम्"॥ स्नाता स्नानकारी। "अनर्काभ्युदिते काले माघे कृष्णचतुर्दशीम्। स्नात्वा सन्तर्प्य तु यमान् सर्वपापैः प्रमुच्यते"॥ अनर्काभ्युदित इति ईषदर्थे नञ् अतो न उदयवेलायामित्यनेन विरोध इत्याहुस्तच्चिन्त्यं

"परवचनार्कयोर्मध्ये सतारव्योमकाले तु तत्र स्नानं महाफलम्" इति समुद्रकरभाष्यधृतात्। किन्तु उदयवेलायामरुणोदयवेलायामित्यर्थः। किञ्चिदभ्युदिते रवावित्यनेन माघप्रातःस्नानकालोत्तरावधित्वमुक्तम्। तथा वराहः "तेजः परिहानेरुषा भानोरर्द्धोदयं यावत्"। अतएव "यो माघमास्युषसि सूर्य्यकराभिताम्रे स्नानं समाचरति चारुनदीप्रवाहे। उद्धृत्य सप्तपुरुषान् पितृमातृवंश्यान् स्वर्गं प्रयात्यमरदेहधरो नरोऽसौ"॥ इत्यत्र ऊषसि इत्यभिधाय सूर्य्यकराभिताम्र इत्युक्तं सूर्य्योदयात् प्रागपि तत्करसम्भवात् न तु सूर्य्याभिताम्र इत्युक्तं विधिमाह पाद्मे। "माघमासमिमं पुण्यं स्नास्यहं देव माधव। तीर्थस्यास्य जले नित्यं प्रसीद भगवान् हरे॥ दुःखदारिद्र्यनाशाय श्रीविष्णोस्तोषणाय च। प्रातःस्नानं करोम्यद्य माघे पापप्रणाशनम्॥ मकरस्थे रवौ माघे गोविन्दाच्युतमाधव। स्नानेनानेन मे देव यथोक्तफलदो भव॥ एतन्मन्त्रं समुच्चार्य्य स्नायान्मौनं समाहितः। वासुदेवं हरिं कृष्णं श्रीधरञ्च स्मरेत्ततः॥ दिवाकर जगन्नाथ प्रभाकर नमोऽस्तु ते। परिपूर्णं कुरुष्वेदं माघस्नानं महाव्रतम्"॥ चान्द्रस्नाने तु मकरार्कास्पृष्टकाले मकरस्थे रवाविति मन्त्रो न पठनीयोऽसमवेतार्थत्वात् प्रातःस्नानेऽपि "यथाहनि तथा प्रातर्नित्यं स्नायादनातुरः"। इति छन्दोगपरिशिष्टीयेनाहःस्नानधर्मातिदेशात् सन्ध्यावन्दनोत्तरत्वं पद्मपुराणीय तदङ्गतर्पणस्य तद्यथा। "नित्यं नैमित्तिकं काम्यं त्रिविधं स्नानमिष्यते। तर्पणन्तु भवेत्तस्य अङ्गत्वेन व्यवस्थितम्"॥ नित्यं प्रात्यहिकं प्रातर्मध्याह्नसम्बन्धिनैमित्तिकमुपरागादिनिमित्तकं काम्यं तीर्थादौ क्रियमाणम् अतएव यद्यपि स्नानाङ्गं तर्पणं तत्प्रयोगान्तर्भवितुमर्हति तथापि सन्ध्यानुष्ठानसत्वे तस्य वाचनिकं सन्ध्योत्तरत्वं

चन्द्रग्रहणादौ तु तदभावात् स्नानप्रयोगान्तर्गतत्वमिति छन्दोगाह्निकादयः मध्याह्नस्नानप्रयोगान्तर्गततर्पणन्तु "तर्पणन्तु शुचिः कुर्य्यात् प्रत्यहं स्नातको द्विजः। देवेभ्यश्च ऋषिभ्यश्च पितृभ्यश्च यथाक्रमम्" इति शातातपोक्त प्रधानतर्पणस्य प्रकृतीभूतं नित्याग्निहोत्रमिव सत्राग्निहोमस्य तदङ्गतर्पणे सन्ध्योत्तरत्वं साक्षादुक्तम्। विकृतावपि सम्भवप्राप्तम्। यथा ज्योतिष्टोमस्येष्ट्युत्तरकालत्वं विकृतीभूतसोमेऽप्यतिदेशप्राप्तम्। किञ्च गृहमेधीय यागकालमध्ये अग्निहोत्रकाल आगते तत्पदार्थक्रमबाधेनाग्निहोत्रानुष्ठानं निर्णीतं तथा स्नानानन्तरं सन्ध्याकाल आगते तर्पणमकृत्वैव सन्ध्यानुष्ठानं युक्तमिति विद्याकरवाजपेयी व्यवहारोऽपि तथेति माघाधिकारे गारुड़े "मातरं पितरञ्चापि भ्रातरं सुहृदं गुरुम्। यमुद्दिश्य निमज्जेत द्वादशांशं लभेत सः"॥ मार्कण्डेयः। "सितासितेषु यः स्नायात् माघे मासि युधिष्ठिर। न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि। दशकोटिसहस्राणि षष्टिकोट्यस्तथापराः॥ माघे मासि प्रयागे तु गङ्गायामुनसङ्गमे„ ॥ वैष्णवामृते स्कन्दपुराणम्। "पौष्यान्तु समतीतायां यावद्भवति पूर्णिमा। माघमासस्य देवेश पूजा विष्णोर्विधीयते"॥ पौर्णमास्यन्तमाघमुपक्रम्य "पितृणां देवतानाञ्च मूलकं नैव दापयेत्। ददन्नरकमाप्नोति भुञ्जीत ब्राह्मणो यदि॥ ब्राह्मणो मूलकं भुक्त्वा चरेच्चान्द्रायणं व्रतम्। अन्यथा याति नरकं क्षत्रविट्शूद्र एव च"॥ तथा "वरं भक्ष्यमभक्ष्यञ्च पिवेद्वा गर्हितञ्च यत्। वर्जनीयं प्रयत्नेन मूलकं मदिरासमम्"॥ वैशाखस्नानन्तु सौरेण यथा भविष्ये "गवामर्द्धप्रसूतानां लक्षं दत्त्वा तु यत् फलम्। तत्फलं लभते राजन् मेषे स्नात्वा तु जाह्नवीम्"॥ नाक्षत्रमासप्रयोजनं विष्णुधर्मोत्तरे। "नक्षत्रसत्राण्ययनादि

चेन्दोर्मासेन कुर्य्याद्भगणात्मकेन"। नक्षत्रसत्राणि माससाध्ययागविशेषाणि याज्ञिकप्रसिद्धानि इन्दोरयनानि सोमायनाख्यसत्राणि इति समयप्रकाशः। एवं जन्मनक्षत्रे शनिभौमवारफलं नाक्षत्रमासेन योग्यत्वात् यथा दीपिकायाम् "जन्मन्यृक्षे यदि स्यातां वारौ भौमशनैश्चरौ। स मासः कल्मषो नाम मनोदुःखप्रदायकः" ॥ तस्मादेभिश्चान्द्रसौरसावननाक्षत्रमासेषु कर्माणि विहितानि तत्परिचायकानि चन्द्रमाः कृष्णपक्षान्ते इत्यादि विष्णुधर्मोत्तराद्युक्तवचनानि न तु शक्तिग्राहकाणीति सिद्धम्। अतस्तत्तत्कर्म्मसङ्कल्पे "मासपक्षतिथीनाञ्च निमित्तानाञ्च सर्वशः। उल्लेखनमकुर्वाणो न तस्य फलभाग्भवेत्" ॥ इति ब्रह्माण्डपुराणोक्तेन तत्तद्विहितमास एव निर्देश्यः। अत्र चकारद्वयश्रुतेर्मासपक्षतिथीनाञ्चेति न निमित्तविशेषणं किन्तु स्वातन्त्र्येणैव यथासम्भवमुभयोरुल्लेखः। तथा च द्वैतनिर्णये दर्शश्राद्धादौ कृष्णादिरेव मासो निर्देश्यः तस्य तत्तिथिपुरस्कारेणैव करणात् तदितरत्र सांवत्सरिकादौ शुक्लादिरेव निर्देश्यः तस्य प्रयाणतिथिकर्त्तव्यत्वेन त्रिंशत्तिथिसाधारणतया तत्तत्तिथिनियत-ब्रह्मपुराणस्पर्शादित्युक्तम्। श्राद्धचिन्तामणावपि श्राद्धादिकर्म्मणि विशेषवचनं विना शुक्लादिरेव निबन्धृभिरादरणादित्युक्तम्। गङ्गावाक्यावल्यामपि वारुणीस्नाने मधुकृष्णत्रयोदश्यामिति वाक्यरचना। किञ्च यदि सर्वकर्म्मणि मुख्यचान्द्रेणैव वाक्यरचना स्यात्तदाश्वयुक्कृष्णपक्षीयश्राद्धेऽपि मुख्यचान्द्रत्वेन भाद्रपदप्रयोगः सम्भवति तत्राश्वयुक्पदप्रयोगो मुनीनां व्यर्थः स्यात् तस्येदमेव प्रयोजनं यत्तेन निर्देशः। एवं विवाहादौ सौरेणाभिलापः एवञ्च सावने नाक्षत्रे च चैत्रादिनामानुल्लेखान्मुख्यचान्द्रेणैव निर्देशः अतएव स्मृतिसारे ब्रह्मपुराणम्। "तिथिकृत्ये च कृष्णादिं व्रते शुक्लादि-

मेव च। विवाहादौ च सौरादिं मासं कृत्ये विनिर्दिशेत्"॥ सौरः सूर्यसंक्रमः। संकल्पे मासादिवदद्योल्लेखोऽपि "ब्राह्मणानुपामन्त्रयेत् श्वोऽद्येति वा श्राद्धमाचरिष्ये" इति शङ्खलिखितदर्शनात्। अद्यकृष्णाष्टमीं देवीमिति वचनात् अद्यचन्द्रार्कग्रहणमिति भविष्याच्च एतेनाह्नः पदस्य रात्रिपरत्वाभावात् रात्रौ चेत् अस्यां रात्रौ इति वक्तव्यं नाद्येति मतं चिन्त्यं रात्रिपदोल्लेखे मानाभावात् एवमनेकाहसाध्ये कर्मणि तिथ्युल्लेखानन्तरमारभ्येत्युल्लेखः। अन्यथा तन्मासपक्षतिथिविशेषादीनां दिनान्तरासत्त्वेनानन्वयः स्यात्।

अथ दर्शान्तमासशक्यत्वे साधकान्तराणि। मत्स्यपुराणे। "प्रथमः श्वेतकल्पस्तु द्वितीयो नीललोहितः"। इत्यादि चतुर्दशकल्पानुक्त्वा "कौर्म्यः पञ्चदशो ब्रह्मन् पौर्णमासी प्रजापतेः। षोड़शो नारसिंहस्तु" इत्यादिना ऊनत्रिंशत् कल्पानुक्त्वा "पितृकल्पस्तथान्ते तु या कुहूर्ब्रह्मणः स्मृता। इत्ययं ब्रह्मणो मासः सर्वपापप्रणाशनः। आदावेव हि माहात्म्यं यस्मिन् यस्य विधीयते। तस्य कल्पस्य तन्नाम विहितं ब्रह्मणा पुरा"॥ अत्र ब्रह्मणोदर्शान्ते मासपदशक्तेतादन्येषामपि तथैव युक्तम्। श्रुतिरपि "पूर्वः पक्षो देवानामपरः पक्षः पितॄणाम्" इति मासान्तर्गतशुक्लकृष्णपक्षावेव पूर्वापरत्वेन विदधाति। संवत्सरप्रदीपे। षट्त्रिंशन्मतं "तत्र पक्षावुभौ मासे शुक्लकृष्णौ क्रमेण हि। चन्द्रवृद्धिकरः शुक्लः कृष्णश्चन्द्रक्षयात्मकः। पक्षत्याद्यास्तु तिथयः क्रमात् पञ्चदश स्मृताः। दर्शान्ताः कृष्णपक्षे ताः पूर्णिमान्ताश्च शुक्लके"। पक्षतिः प्रतिपत्। अमरकोषे "पक्षौ पूर्वापरौ शुक्लकृष्णौ मासस्तु तावुभौ"। अत्र यदि दर्शान्तमात्रे मासपदस्य शक्तिर्न स्यात् तदा चान्द्रमास इत्येव विदध्यात्। मासविशेषवाचनश्चैत्रादयोऽपि चान्द्रे

दिशि ब्राह्मणकुलमभिरूपम्। समस्तासु पाणिग्रहणक्रियासु सतीषु ऐशान्यां दिश्यवस्थितं विद्यातपःसंयुक्तं ब्राह्मणकुलं वधूमुत्थाप्य नयेयुः तदभावे स्थानान्तरस्थितं तदभावे वेद्यवस्थितम्। तथा च गृह्यान्तरम्। अथोत्तरविवाहः प्रागुदीच्यामन्यत्र वा ब्राह्मणकुलं मन्त्रवदीति वेद्यां वेति। भट्टभाष्येऽप्येवम्। इदानीन्तु गोभिलोक्त ब्राह्मणगृहगमनाभावात् भवदेवेन तथा न लिखितं किन्तु वेदिस्थब्राह्मणसमीपस्यापि शास्त्रार्थत्वात् सुकरत्वाच्च तत्कर्त्तुं युज्यते तत्राग्निरुपसमाहितो भवति। लक्षणं कृत्वा तत्र ब्राह्मणगृहे अभ्यन्तरः स्थापितो भवति तत्रैव वक्ष्यमाणं कर्म्म कुर्य्यात्। इदानीन्तु तथाविधानाचरणात् वेद्यामेव पूर्वस्थापिताग्नेः पश्चात् कर्म्म कर्त्तव्यं न त्वग्न्यन्तरस्थापनम्। तथा च भट्टभाष्ये। वेद्यामेव चेत्तन्त्रेण स्यात्। ततश्च गणेष्वेकं परिसमूहनमिति वचनात् प्रधानमेव तत् कुर्य्यादित्युक्तम्। अपरेणाग्निमानडुहं लोहितं चर्म्म प्राग्ग्रीवमुत्तरलोमास्तीर्णं भवति। अग्नेः पश्चाद्दिशि रक्तं प्राग्ग्रीवं पूर्वशिरस्कम् उपरि लोमवृषचर्म्म उपवेशनार्थमास्तृतं भवति लोहिताभावेऽन्यवर्णमपि चर्म्मणः प्राधान्यात् तस्य गुणत्वादिति भट्टभाष्यम्। इदानीन्तु "यत्राधर्म्मश्चतुष्पादः स्याद्धर्मः पादविग्रहः। कामिनस्तमसाच्छन्ना जायन्ते यत्र मानवाः। अहङ्कारगृहीताश्च प्रक्षीणस्नेहबान्धवाः। विप्राः शूद्रसमाचाराः सन्ति सर्वे कलौ युगे"। इति मत्स्यपुराणोक्त कलियुगस्वभावेन सम्यग्धर्म्माचरणरहितेनापि चर्म्मोपवेशनाद्यङ्गाभावेऽपि कर्म्मणः प्राधान्यादाज्यहोमादिकं क्रियते। गोभिलः। "तस्मिन्नेनां वाग्यतामुपवेशयन्ति सा खल्वस्तु एवमानक्षत्रदर्शनात्"। प्रोक्ते नक्षत्रे षड़ाज्याहुतीर्जुहोति लेखासन्धिष्वेतत् प्रभृतिभिः। आहुते

राहुतेस्तु सम्पातं मूर्द्धि बध्वा अवनयेत्। आहुतेराहुतीर्हुतायाः स्रुवात् संलग्नः पततीति”। सम्पातोऽत्र घृतविन्दुः तं प्रतिवारं बध्वा शिरसि निदध्यात्। हुत्वोत्थाय उपनिष्क्रम्य ध्रुवं दर्शयति। ध्रुवमसि ध्रुवाहं पतिकुले भूयासम् अमुष्यासाविति पतिनाम गृह्णीयादात्मनश्च। प्रकृतहोमानन्तरं परिहृताद्वहिर्वधूं नीत्वा ध्रुवमसीति मन्त्रं पाठयन्। ध्रुवं नक्षत्रविशेषं दर्शयति पतिः। अमुष्यासाविति अत्र षष्ठ्यन्तप्रथमान्तत्वेन पत्युरात्मनामोच्चारयेत् अरुन्धतीत्व रुद्धाहमस्मीति। एवञ्च सप्तर्षिनिकटवर्त्तिनीं सूक्ष्मां तारां रुद्धाहमस्मीति मात्रमन्त्रेण पश्येत्। न तु प्रागुक्तवदूहितेन। अथैनामनुमन्त्रयते ध्रुवाद्यौरित्येतयर्चा। अरुन्धती दर्शनानन्तरं ध्रुवाद्यौरिति पत्नीं वोधयेत् पतिः। अनुमन्त्रिता गुरुं गोत्रेणाभिवादयेत् सोऽस्यावाग्विसर्गः। गुरुं पतिं “पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्” इति वचनात्। गोत्रेण पतिगोत्रेण “स्वगोत्राद्भ्रश्यते नारी विवाहात् सप्तमे पदे। पतिगोत्रेण कर्त्तव्या तस्याः पिण्डोदकक्रिया” इति वचनात्। एतेन पितृगोत्रेण भर्त्तुरभिवादनं सरला भवदेवभट्टाभ्यामुक्तं हेयम्। अभिवादयेत् मनूक्तप्रकारेणाभिवादनं कुर्य्यात्। अभिवादने प्रत्यभिवादनस्यावश्यकत्वात् तदुक्तं प्रत्यभिवादनमपि क्रियते। तथा च मनुः। “अभिवादात् परं विप्रो ज्यायांसमभिवादयन्। असौ नामाहमस्मीति स्व नाम परिकीर्त्तयेत्। भोःशब्दं कीर्त्तयेदन्ते स्वस्य नाम्नोऽभिवादने। नाम्नां स्वरूपभावो हि भोभावो ऋषिभिः स्मृतः। आयुष्मान् भव सौम्येति वाच्यो विप्रोऽभिवा[illegible]। अकारश्चास्य नाम्नोऽन्ते वाच्यः पूर्वाक्षरः प्लुतः”। अभिवादात् परं भो अभिवादये इत्युच्चारणानन्तरममुकोऽहमस्मीत्यत्र स्वकीयं नाम परिसर्वतोभावेन देवशर्म-

शुद्धेन कीर्त्तयेत्। अत्राभिवादये इति विशेषलाभो गोतमवचनात् यथा स्वं नाम प्रयोज्याह स्वयमभिवादय इति। असावयमित्यभिधानात् मनुवचनेऽयमित्यर्थेऽसावित्यव्ययं तेनाहमसावित्यव्ययं पुरोवर्त्तीत्यर्थः। एवञ्चाभिवादात् परमित्यनेनाभिवादय इत्यनन्तरप्राप्तस्य नामकीर्त्तनस्य मनूक्तस्य विरोधाद्गोतमोक्ताभिवादय इत्यन्तपाठो न ग्राह्यः। "वेदार्थोपनिबन्धृत्वात् प्राधान्यं हि मनोः स्मृतम्। मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते" इति वृहस्पतिवचनात् ततश्च कुल्लूकभट्टशूलपाण्युपाध्यायप्रभृतिभिः स्वनामादावभिवादय इति लिखितं युक्तम्। सरलाभवदेवभट्टप्रभृतिभिरन्ते लिखितं हेयम्। अभिवादने क्रियमाणे स्वीयनाम्नोऽसावित्यस्यान्ते समीपेऽभिवाद्य सम्बोधनाय भोःशब्दं कीर्त्तयेद् यतः। संबोध्यनाम्नां स्वरूपभावः प्रवृत्तिनिमित्तम् आत्मामात्रनिष्ठो यो धर्मः स एव भोभावः भोःशब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तधर्मो मुनिभिरुक्तः तेन संबोध्यनामस्थानीयं भोरिति। ततश्चाभिवादयेत्वाममुकशर्माहमस्मि भो इत्यादिकं प्रयोज्यम् आयुष्मानित्यभिवादने कृते प्रत्यभिवादयित्वा अभिवाद्यायुष्मान् भव सौम्येति वाच्यः अस्य संबोध्यमानस्य नाम्नः शर्मादियुक्तस्यान्त्यः स्वरः स पूर्वाक्षरः न विच्छिन्नो वर्णागमः स एव प्लुतो वाच्यः त्रिमात्रकोऽनेनोच्चार्य्यः। "एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते। त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनञ्चार्द्धमात्रकम्" इत्युक्तेः। तेनायुष्मान् भव सौम्यामुकदेवशर्म्मान् एवमेव कुल्लूकभट्टः। एवञ्चाभिवादनेऽसावित्यस्य प्रत्यभिवादने च सौम्येत्यस्य नाम्नश्च यदनभिधानं भवदेवभट्टग्रन्थे तन्न युक्तम्। मनुविरोधात्। अभिवादने यः पादग्रहणविन्यासविशेषो मनुना विहितः स इह वक्ष्यस्तथानाचरणान्नाभिहितः। सोऽस्यावाग्विसर्गः स

एवाभिवाद एवास्या वध्वः वाग्विसर्गः वाक्प्रसरणं तस्मात् पूर्वं मौनम् इदानीं मौनत्याग इति तावुभौ ततः प्रभृति त्रिरात्रमक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणौ भूमौ सह शयीयाताम्। विवाहात् प्रभृति दम्पती दिनत्रयं क्षारलवणवर्जितं भुञ्जानौ मैथुनमकुर्वाणौ सहैव शयीयातां भूमाविति खट्वादेः प्रतिषेधार्थं न तु प्रस्तरकम्बलादीनामपीति। अथार्हणमित्याहुः। अस्मिन्नवसरे कन्या पित्रा विष्टरादिदाने नार्हणं कर्त्तव्यं स्वागतेष्वित्येके विवाहार्थमागतमात्रेष्वेवार्हणमित्येके इदानीं बहुवादिसम्मतमेव व्यवह्रियते। हविष्यान्नं प्रथमं परिजपितं भुञ्जीत। तत्र श्वशुरगृहे यदन्नं प्रथमं भुञ्जीत तन्माषकोद्रवादिरहितं वक्ष्यमाणान्नपाशेनेति मन्त्रेणाभिमन्त्रितं श्वो भूते वा समशनीयं स्थालीपाकं कुर्वीत। यदि विवाहे यज्ञादिना महानिशा भूता तत्परदिने सम्यगशनार्थं क्रियते इति समशनीयं स्थालीपाकं कुर्वीत। तस्य देवताग्निः प्रजापतिर्विश्वेदेवा अनुमतिरिति। तस्य समशनीयस्याग्न्याद्या देवताः। असमासकरणं पृथङ्निर्वापहोमार्थं मिश्रणेन चायं होमः बहुदैवतत्वात् देवदत्तविशेषस्यैव भोजनीयत्वात् होमदेवतानां प्राधान्यात् त्रिःप्रक्षालनम् उद्धृत्य स्थालीपाकं व्युह्यैकदेशं पाणिनाभिमृषेदन्नपाशेन मनुनेति। उद्धृत्य पात्रान्तरे कृत्वा स्थालीपाकशेषं व्युह्यान्यपात्रे निधाय एकदेशं न सर्वमपि भाण्डस्थितमिति अन्नपाशेन मनुनेति मन्त्रत्रयेण असावित्यत्र सम्बोधनविभक्त्या भार्य्यानाम प्रयोज्यमिति भट्टनारायणैरुक्तम्। ततश्च यदसावित्येव भवदेवभट्टेनानूहेन मन्त्रेणोक्तं गुण-विष्णुनाऽसावित्यहमिति व्याख्यातं तदयुक्तं भट्टभाष्यविरोधात् त्वेति युष्मत्पदप्रयोगात् सम्बोधनार्थं वधूनामप्रयोगस्य युक्तत्वाच्च। किन्त्विदानीं समशनीयचरुहोमाकरणाद्भवदेवभट्टेन न समशनीयचरुहोमादिकं

लिखितं मयापि प्रयोगेन लिखनीयमिति । भुक्तोच्छिष्टं वध्वै प्रदाय यथार्थं गोर्दक्षिणा इति पतिः परिजपितमन्नं स्वयं किञ्चिद्भुक्त्वा उच्छिष्टमुच्चरितं वध्वै जायायै प्रदाय दत्त्वा तृप्त्यर्थमन्यदपि भुक्त्वाचम्य यथार्थं वामदेव्यगानान्तं कृत्वा गोर्दक्षिणा ब्राह्मणे देया । यद्यशक्तेः कुलाचाराद्वा तद्दिन एव धृतिहोमादिचतुर्थीहोमान्तं कर्म्म क्रियते तदाऽभिमन्त्रितं कदलादिकं स्वमाघ्राय वधूमाघ्रापयेत् ततो वामदेव्यगानान्तं कुर्य्यात् ।

अथ यानारोहणादि । तत्र गोभिलः । "यानमारोहन्त्यां शाल्मलिमित्येतामृचं जपेत्" प्रकृतत्वात् पाणिग्राहको जपेत् एतामित्यवाच्यमिति चेन्न यथा प्राप्तविश्वादियानेऽप्येतामेवभूतामेव जपेत् । नासमवेतार्थपदस्य लोपमूहनं वा कुर्य्यादिति । अध्वनि चतुष्पथान् प्रतिमन्त्रयेत् नदीश्च विषमाणि च महावृक्षान् श्मशानञ्च माविदन् परिपन्थिनः" इति मार्गं गच्छंश्चतुष्पथानुद्दिश्य भाषेत विषमाण्युच्चनीचत्वेन चौरव्याघ्रादिभयाद्वा विषमाणि अक्षभङ्गेऽनडुद्विमोक्षे यानविपर्य्यासे यत्रागतं पूर्वं तत् त्यक्त्वाऽन्यत्र याने वा अन्यासु चौरव्याघ्रोपद्रवकृतापत्सु यमेवाग्निं नयन्ति तमिन्धनेनादिना संधुक्ष्य भूरादिभिराज्येन हुत्वाऽन्यदक्षादिकं योजयित्वा यत्तेचिदतिश्रिय इत्यृचा आज्येनाभ्युक्षयेत् वामदेव्यं गीत्वारोहेत् । पाणिग्राहको वामदेव्यं गीत्वा यानं वधूमारोपयेदिति । अक्षभङ्गादिनिमित्तहोमस्य इदानीं तथाचाराभावात् भवदेवभट्टेन लिखितं मयापि प्रयोगेन लेख्यं प्राप्तेषु वामदेव्यं वरः वध्वाः पतिः गृहं प्रथमप्राप्तौ वामदेव्यं गीत्वा प्रवेशयेत् । गृहङ्गतां पतिपुत्रशीलसम्पन्ना ब्राह्मण्यो वरोऽप्यानडुहे चर्मणि उपवेशयन्तीह गावः प्रजायध्वमिति । शीलमाचारः सम्पन्ना

युक्ता यानादवतार्य्य वृषचर्मादौ इह गाव इति मन्त्रेण भर्त्रा जप्यमानेन गायत्र्या वा स्थापयन्ति तस्याः कुमारमुपस्थ आदध्युः। तस्या वध्वाः कुमारम् अक्षतचौड़ं बालकम् उपस्थे क्रोड़े उपवेशयेयुः। ब्राह्मण्यस्तस्मै शकलोटान् अञ्जलौ आवपेयुः फलानि वा कुमाराय शालुकानि कदल्यादिफलानि वा ब्राह्मण्योऽञ्जलौ दद्युः। शके कर्दमे लुटन्तीति शकलोटाः कन्दकाः। उत्थाप्य कुमारं भुवा आज्याहुतीर्जुहोति। अष्टाविह धृतिभुवा आवश्यकाः। कथञ्चिद्गृहगमनाभावेऽपि श्वशुरगृहनिवासेऽपि अवश्यं होतव्या इति। अत्र इह धृति स्वाहा इति इत्यादिप्रयोगः। न तु स्वाहायोगे चतुर्थी धृतिहोमेन प्रयुञ्ज्यात्। गोनामसु तथाष्टसु चतुर्थ्यामर्च्यं इत्येतद्गोनामसु हि हूयते इति छन्दोगपरिशिष्टात्। धृतिहोमे धृत्यष्टकहोमे समाप्तासु समिधमाधाय यथा वयसं गुरून् गोत्रेणाभिवाद्य यथार्थं समाप्तासु धृत्याज्याहुतिषु समिधमाधाय समिधं प्रक्षिप्य यथावयसं वयोऽधिकक्रमेण गुरून् वृद्धान् गोत्रेण स्वगोत्रेणाभिवाद्य पादवन्दनं कृत्वा वधूमप्येवं कृत्वा यथार्थं प्रायश्चित्तहोमादिकमुदीच्य कर्म समापयेत् एवमुभयकर्तृकाभिवादनं भट्टभाष्योक्तत्वात् यदि त्वशक्तेः कुलाचाराद्वा तद्दिन एव चतुर्थी होमः क्रियते तदा तत् समाप्तावेवोदीच्यं कर्मतन्त्रेण कर्त्तव्यम्। गोभिलः। "अथातश्चतुर्थीकर्मविवाहतिथ्यनन्तरं चतुर्थ्यां तिथौ वक्ष्यमाणं कर्म वर्त्तिष्यत" इति वाक्यार्थः। अतः शब्दो हेत्वर्थे यत एतदकरणे यास्याः पापी लक्ष्मीरित्यादिदोषः शरीरान्नापैति तत एतदवश्यं कर्त्तव्यम् अग्निमुपसमाधाय प्रायश्चित्ताहुतीर्जुहोति अग्ने: प्रायश्चित्त इति चतुश्चतुः अग्निमुपसमाधाय विवाहाग्निमिन्धनेन सन्धुक्ष्य प्रायश्चित्तलिङ्गैर्मन्त्रैराज्याहुतीर्जुहोति अग्ने: प्रायश्चित्त इति मन्त्रेण

चतुश्चतुरिति वीप्सा बोध्या वक्ष्यमाणपरिशिष्टस्वरसात् प्रथमाहुतिर्यथा पठितेन मन्त्रेणैव भवति अन्यासु तिसृष्वग्निपदस्थाने वायुचन्द्रसूर्य्याः क्रमशः कार्य्याः एतावानेव विशेषः शेषं पूर्ववत् एवं चतसृष्वप्याहुतिषु पापीरिति स्यात् कुतः प्रथमस्यैव मन्त्रस्याभ्यासोपदेशात् तस्य चाग्नेः स्थाने वायुचन्द्रसूर्य्या इत्येतावता विशेषोक्तत्वात् समस्य पञ्चमीं बहुवद्गृह्य तथैव समस्य बहुवदग्निवायुचन्द्रसूर्य्या इत्यादि पञ्चमीमाहुतीं जुहुयादिति अत्रापि वीप्सा बोध्या जुहोति कथनादत्रापि पापी लक्ष्मीरित्यादिवदेव द्रष्टव्यं द्वितीयपञ्चके पतिघ्नीति विशेषः शेषं पूर्ववत् तृतीये आहुतिपञ्चके अपुत्रेऽति विशेषः। चतुर्थेऽपसव्येति विशेषः। एतत् स्पष्टयति छन्दोगपरिशिष्टे कात्यायनः। "मन्त्राम्नायेऽग्नय इत्येतत् पञ्चकं लाघवार्थिभिः पठ्यते तत् प्रयोगे स्यान्मन्त्राणामेव विंशतिः। अग्निस्थाने वायुचन्द्रसूर्य्यान् बहुवदूह्य च। समस्य पञ्चमीसूक्ते चतुश्चतुरिति श्रुतिः। प्रथमे पञ्चमे पापी लक्ष्मीरिति पदं भवेत्। अपि पञ्चसु मन्त्रेषु इति मन्त्रविदो विदुः। द्वितीये च पतिघ्नी स्यादपुत्रेऽति तृतीयके। चतुर्थेऽपसव्येति इति आहुतिविंशकम्"॥ गोभिलः। आहुतेराहुतेस्तु सम्पातमुदपात्रेऽवनयेत्। जलपात्रे क्षिपेदित्यर्थः। तेन एनां सकेशनखामभ्यज्य क्रामयित्वा प्लावयन्ति तेनाज्यमिश्रजलेन एनां वधूं स्नपयित्वा सकेशनखामिति सर्वहोमाद्यङ्गार्थं क्रामयित्वाऽग्निस्थानाद्देशान्तरं गमयित्वा प्लावयन्ति स्नापयन्ति बहुवचनादनियतः कर्त्ता। ऊर्द्ध्वं त्रिरात्रात् सम्भव इत्येके"। प्रकृतात्त्रिरात्रादूर्द्ध्वं सम्भवः संयोगो मैथुनं कर्त्तव्यमित्येके आचार्य्या मन्यन्ते।

अथ गर्भाधानम्। गोभिलः। "यदा ऋतुमती भवति उपरतशोणिता तदा सम्भवकालः"। ऋतुः प्रजाजननयोग्य-

कालः तन्निमित्तेन नैमित्तिकं गमनं कार्य्यम् अकुर्वतः प्रत्यवायान्नियमः “ऋतुमतीन्तु यो भार्य्यां सन्निधौ नोपसर्पति । अवाप्नोति स मन्दात्मा भ्रूणहत्यामृतावृतौ” इति स्मृतेः । ज्योतिषे । “ज्येष्ठामूलामघाश्लेषारेवतीकृत्तिकाश्विनी । उत्तरात्रितयं त्यक्त्वा पर्ववर्जं व्रजेदृतौ” ॥ विष्णुपुराणम् । चतुर्दश्यष्टमी चैव अमावास्याथ पूर्णिमा । पर्वाण्येतानि राजेन्द्र रविसंक्रान्तिरेव च” ॥ याज्ञवल्क्यः । “षोड़शर्त्तुर्निशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत्” । अत्र षोड़शाहोरात्रात्मककालस्य सावनत्वात् पुंसवननामकरणयोरपि सावनगणनायायुक्तत्वाच्च संस्कारमात्रे सावनगणनया व्यवहारश्च तथा च याज्ञवल्क्यः । गर्भाधानमृतौ पुंसः सवनं स्पन्दनात् पुरा । षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तः प्रसवे जातकर्म च । अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः । षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूड़ा कार्य्या यथाकुलम् । एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम्” ॥ चतुर्थे स्पन्दते तत इति वचनात् स्पन्दनात् पूर्वमासत्रयं पुंसवनकालः । अत्र चतुर्थमासस्य सौरत्वे चान्द्रत्वे वा निषेककामस्यापि तथात्वे तदाद्यन्तदिननिषेके सति अधिकन्यूनकालयोर्गर्भस्पन्दनमनियतमापद्येत सावने तु नियतं तेनात्र सावनगणना युक्ता योषिद्व्यवहारसिद्धा च । अहन्येकादशे नाम इत्यत्रापि अशौचव्यपगमे नामधेयमिति विष्णुसूत्रात् । सूतकोत्तरदिनपरमेकादशदिनपदम् । “सूतकादिपरिच्छेदो दिनमासाब्दपास्तथा । मध्यमग्रहभुक्तिश्च सावनेन प्रकीर्त्तिता” इति सूर्य्यसिद्धान्तवचनेन सूतकस्य सावनदिनघटितत्वात् तदुत्तरदिनस्यापि तथात्वम् अतो दिनमासवर्षगणना सावनेनेति । शुभाशुभविवेचनन्तु सौरेण ज्योतिःशास्त्रात् । अतएव पितामहः । “विवाहादौ स्मृतः सौरो यज्ञादौ सावनो मतः” ।

अत्र द्वितीयादिशब्दात् संस्कारपरिग्रहः। "गर्भाधाने सदा ग्राह्या वारा भौमरवीज्यकाः"। गोभिलः। "दक्षिणेन पाणिना उपस्थमभिमृशेत्। विष्णुर्योनिं कल्पयत्वेतयर्चा गर्भं धेहि सिनी च समाप्यर्चौ सम्भवतः। कुत्सितदेशस्य सव्येन पाणिना शौचदर्शनात् तद्वारणाय दक्षिणेनेति। उपस्थं योनिं स्पृशेत् विष्णुरिति मन्त्रेण प्रथमं ततो गर्भं धेहि सिनीवालीत्यादिमन्त्रेण च। मन्त्रान्ते कर्मादिसन्निपात इति न्यायात् पाठानन्तरं स्पर्शः न तु भवदेवभट्टोक्तं स्पृशन् जपति। ऋचौ समाप्यैव संयोगं कुरुतः न मध्ये वामदेव्यजपः। देवलः। "सकृच्च संस्कृता नारी सर्वगर्भेषु संस्कृता"। तेन गर्भाधानपुंसवनसीमन्तोन्नयनानि सकृदेव कर्त्तव्यानि। छन्दोगपरिशिष्टम्। "विवाहादिकर्मगणो य उक्तो गर्भाधानं शुश्रुम यस्य चान्ते। विवाहादावेकमेवात्र कुर्य्यात् श्राद्धं नादौ कर्मणः कर्मणः स्यात्"। विवाहादि गर्भाधानान्तकर्मसु एकमेव श्राद्धं न तु प्रतिकर्मादौ एकेनैव श्राद्धेन कृतेन सर्वाणि श्राद्धवन्तीति। अन्तशब्दोऽत्रावयवार्थः दशान्तःपट इतिवत् समीपार्थे उपलक्षणं स्यात्। ततश्च विशेषणोपलक्षणसन्देहे विशेषणत्वेन ग्रहणं कार्य्यान्वितत्वात्। यत्तु "निषेककाले सोमे च सीमन्तोन्नयने तथा। ज्ञेयं पुंसवने चैव श्राद्धं कर्माङ्गमेव च"॥ इत्यनेन भविष्यपुराणेन श्राद्धं कर्माङ्गत्वेन विहितं तच्छन्दोगेतरपरम्। अतएव भवदेवभट्टेनापि न लिखितम्। अत्र श्राद्धोत्तरगमनेऽपि न दोषः उक्तभविष्यपुराणात्। "नित्ये नान्दीमुखश्राद्धे कृते दानाद्यवर्जनम्" इति वचनान्तराच्च।

अथ पुंसवनम्। गोभिलः। "तृतीयस्य गर्भमासस्यादिमदेशे पुंसवनस्य कालः"। गर्भे सति तृतीयमासस्य आदिमदेशे

दशमदिनाभ्यन्तरे ज्योतिःशास्त्रोक्तकाले पुंसवनं कार्य्यम्। प्रातःसशिरस्काप्लुता पश्चादग्नेरुदगग्रेषु कुशेषु प्राच्युपविशति आप्लुता स्नाता पश्चात् पश्चिमदिशि प्राङ्मुखी उपविशति पत्युर्दक्षिणतः दक्षिणतः पाणिग्राहकस्योपविशतीत्यन्यत्र दर्शनात्। पश्चादित्यभिधानात् अग्निस्थापनं लभ्यते। तत्सार्थकत्वाय "आज्यं द्रव्यमनादेशे जुहोतिषु विधीयते। मन्त्रस्य देवतायाः प्रजापतिरिति स्थितिः" इति छन्दोगपरिशिष्टोक्तद्रव्यादि लभ्यते। जुहोतिषु हवनेषु। मन्त्रस्यानादेशे प्रजापतिः प्राजापत्यो मन्त्रः। स मन्त्रः व्याहृत्यात्मकः। ततश्च विरूपाक्षजपान्तां कुशण्डिकां समाप्य समित्प्रक्षेपादिमहाव्याहृतिभिर्होमं कृत्वा प्रजापतिदेवताकसमस्तमहाव्याहृतिहोमं कुर्य्यात्। ततः प्रकृतं कर्म्म। तत्र गोभिलः। "पश्चात् पतिरवस्थाय दक्षिणेन पाणिना दक्षिणमंसमन्ववमृश्यानन्तर्हितं नाभिदेशमभिमृशेत् पुमांसौ मित्रावरुणावित्येतयर्चा उपाविष्टाया वध्वाः पश्चिमदेशं गत्वानुपविष्टः पतिर्दक्षिणहस्तेन तूष्णीं तस्या दक्षिणस्कन्धमवमृश्य वस्त्राद्यव्यवहितं नाभिं पुमांसाविति मन्त्रेण स्पृशेत् अथ यथार्थम् अनन्तरं वामदेव्यगानान्तं समापयेत् यदि त्वशक्तेर्देशाचारात् कुलाचाराद्वा एकस्मिन् दिने द्वितीय पुंसवनमपि क्रियते तदा गणेष्वेवं परिसमूहनम्"। इध्मो बर्हिः पर्य्युक्षणमाज्यभागः सर्वेभ्यः समवदाय सकृदेव सौविष्टकृतं जुहोतीति गोभिलसूत्रान्तरात्। उभयकर्मान्ते वामदेव्यगानाद्युदीच्यं कर्म्म कर्त्तव्यम् अतएव सरलायां दिनद्वये भट्टभाष्यभवदेवयोरेकदिने उभयकरणं लिखितम्। अथापरम् अथ प्रथमपुंसवनसमाप्तिकालानन्तरं तदानीमपरमन्यत् पुंसवनं कार्य्यं प्रागुदीच्यां दिशि न्यग्रोधशुङ्गामुभयतः फलामस्रामामकृमिपरिसृष्टां

भिः सप्तभिर्यवैर्माषैर्वा परिक्रीय उत्थापयेत्। यद्यसि सौमी सोमाय त्वाराज्ञे परिक्रीणामि यद्यसि वारुणी वारुणाय त्वाराज्ञे परिक्रीणामि यद्यसि वसुभ्यः वसुभ्यस्त्वापरिक्रीणामि यद्यसि रुद्रेभ्यो रुद्रेभ्यस्त्वापरिक्रीणामि यद्यसि आदित्येभ्य आदित्येभ्यस्त्वापरिक्रीणामि यद्यसि मरुद्भ्यो मरुद्भ्यस्त्वापरिक्रीणामि यद्यसि विश्वेभ्यो देवेभ्यस्त्वापरिक्रीणामि ओषधयः सुमनसो भूत्वा अस्यां वीर्य्यं समाधत्त इयं कर्म्म करिष्यतीत्युत्थाप्य तृणैः परिधायाहृत्य वैहायसीं निदध्यात्। वटतरोः पूर्व्वस्यां दिशि शुङ्गामुकुलितपल्लवः। "लताग्रः पल्लवो गूढः शुङ्गेति परिकीर्त्त्यते। पतिव्रता व्रतवती ब्रह्मबन्धुस्तथाश्रुतः" इत्युक्तेः। अश्रुतो वेदहीनः तां फलयुगलयुतामम्लानां कृमिभिरव्याप्तां त्रिराहृत्तैः सप्तभिर्यवैर्माषैर्वा त्रिराहृत्तैः क्रीत्वा गृह्णीयात्। क्रयश्च वृक्षस्वामिनो न वृक्षात् तेन वृक्षस्वामिने यवा माषा वा देयाः यद्यसीत्यादि सप्तभिर्मन्त्रैः। प्रतिमन्त्रञ्च गुडकत्रयं दद्यात्। ओषधय इति मन्त्रेणोत्थाप्य च तृणैर्वेष्टयित्वा आनीयाकाशस्थां निदध्यात्। दृषदं प्रक्षाल्य ब्रह्मचारी व्रतवती वा ब्रह्मबन्धुः कुमारी वा अप्रत्याहरन्ती पिनष्टि दृषदं शिलां पेषणार्थत्वेन अपुत्रां कुमारी अनूढा व्रतवती पतिव्रता अप्रत्याहरन्ती तिर्य्यक्पुत्रकेण पेषणमकुर्वती किन्तूच्छ्रितपुत्रकेण पुनः पुनः पेषणं कुर्वती प्रातः सशिरस्काप्लुता उदगग्रेषु कुशेषु प्राक्शिराः संविशति शेते शेषं सुगमम्। पश्चात् पतिरवस्थाय दक्षिणस्य पाणेरङ्गुष्ठेनोपकनिष्ठयाऽङ्गुल्या। अभिसंगृह्य दक्षिणनासिकाग्रेण तस्या नयेत्। पुमानग्निः पुमानिन्द्र इत्येतयर्चा। पश्चाद्वध्वाः पश्चिमदिशि उपकनिष्ठयानामिकया तेनाङ्गुष्ठानामिकाभ्याम्। पिष्टां शुङ्गां वस्त्रबद्धां गृहीत्वा निःपीड्य दक्षिणनासारन्ध्रे क्षिपेत् पुमानग्निरिति मन्त्रेण।

अथ यथार्थम् अनन्तरं दक्षिणाद्युदीच्यं कर्म कुर्य्यात्। पुंसवनकर्म्माधानकर्त्तुरसन्निधानेऽन्येनापि कर्त्तव्यम्। "अष्टौ संस्कारकर्म्माणि गर्भाधानमिव स्वयम्। पिता कुर्य्यात्तदन्यो वा तस्याभावेऽपि तत्क्रमात्"॥ इति स्मृतेः। भुजबले। "सुफलञ्च करे कृत्वा स्थिरे तत्रासने तथा। गृह्योदितेन होमञ्च शान्तिञ्चैव च कारयेत्॥ ऊर्णासूत्रेण संग्रथ्य जीवं जातीञ्च विद्रुमम्। गुवाकं रजतं हेम दद्यात् स्तनतटान्तरे॥ ततः प्रभृति नदीतीरं देवखातोदकं त्यजेत्। अभ्याटनं तरोर्मूलं तथा देवगृहं त्यजेत्"॥

अथ सीमन्तोन्नयनम्। यदि पुंसवनं न कृतं तदा तस्मिन्नेव दिने प्रायश्चित्तात्मकमहाव्याहृतिहोमं कृत्वा पुंसवनं कृत्वा सीमन्तोन्नयनं कार्य्यम्। तथा च नारदः। "येषान्तु न कृताः पूर्वं संस्कारविधयः क्रमात्। कर्त्तव्या भ्रातृभिस्तेषां पैतृकादेव तद्धनात्॥ अविद्यमाने पित्रर्थे स्वांशादुद्धृत्य वा पुनः। अवश्यकार्य्याः संस्कारा भ्रातृभिः पूर्वसंस्कृतैः"॥ क्रमात् भ्रातॄणां संस्काराणाञ्च पौर्वापौर्य्यक्रमात् भ्रातृक्रमस्तु सोदरविषयः। विवाहे तथा दर्शनात्। छन्दोगपरिशिष्टम्। "देवतानां विपर्य्यासे जुहोतिषु कथं भवेत्। सर्वं प्रायश्चित्तं कृत्वा क्रमेण जुहुयात् पुनः॥ संस्कारा अतिपद्येरन् स्वकालाच्च कथञ्चन। हुत्वेतदेव कुर्वीत ये तूपनयनादधः"॥ एतदित्यनेन सर्वं प्रायश्चित्तमनुकृष्टं तच्च प्रागेव विवृतम्। उभयकरणे तन्त्रेणैव मातृकापूजादि। "गणशः क्रियमाणे तु मातृभ्यः पूजनं सकृत्। सकृदेव भवेत् श्राद्धमादौ न पृथगादिषु"॥ इति छन्दोगपरिशिष्टात्। गोभिलः। अथ सीमन्तकरणं प्रथमे गर्भे चतुर्थे मासि षष्ठेऽष्टमे वा। अथ पुंसवनानन्तरं सीमन्तः केशरचनाविशेषः। वाशब्देक्यान्न चतुर्थादि-

मासानां तुल्यवद्विकल्पः किन्तु पूर्वपूर्वकालः प्रशस्तः समर्थस्य क्षेपायोगादिति न्यायात् । ततो नवमासादौ प्रायश्चित्तं कृत्वैव कर्त्तव्यम् । प्रथमगर्भे इत्युपादानात् । यदि कथञ्चिदकृत एतस्मिन् संस्कारे गर्भनाशे पुनर्गर्भोत्पत्तौ अयं कालनियमो न किन्तु गर्भस्पन्दने सीमन्तोन्नयनं यावन्न बालप्रसवः इति शङ्खलिखितोक्तकालो ग्राह्यः । बृहद्राजमार्त्तण्डे । "यानार्य्यकृतसीमन्ता प्रसूते च कथञ्चन । अङ्के निधाय तं बालं पुनः संस्कारमर्हति । षष्ठे मासेऽष्टमेऽज्ञेज्यकुजदिनकृतां नन्दे सभद्रे तिथौ मैत्रे मूले मृगाङ्के करपितृपवने पौष्णविष्णुवियुग्मे । पुष्यार्कादित्यरौद्रे युवतिहरिझषे वृश्चिके वापि लग्ने चन्द्रे तारानुकूले शुभमपि नियतं स्याच्च सीमन्तकर्म्म । मृगाजरहिते लग्ने नवांशे पुंग्रहस्य च । केचिद्वदन्ति सीमन्तं तथा रिक्तेतरे तिथौ" । गोभिलः । "प्रातः सशिरस्काप्लुतोदगग्रेषु दर्भेषु प्राच्युपविशति उक्तार्थमेतत् । पश्चात् पतिरवस्थाय युगमन्तमौडुम्बरं शलाटुग्रथ्नमाबध्नाति अयमूर्जावतो वृक्ष इति" । अग्नेः पश्चात् पतिः स्थित्वा युगानि फलानि यस्मिन् शलाटुग्रथ्ने नीलस्तवके सयुगमान् मतुवन्तम् । तथा च भट्टनारायणधृतं छन्दोगपरिशिष्टम् । "शलाटु नीलमित्युक्तं ग्रथ्नस्तवक उच्यते । कपुष्णिकाभितः केशा मूर्द्ध्नि पश्चात् कपुष्णिकः" ॥ इति एतद्वचनं नारायणोपाध्यायेन धृतम् । उडुम्बरभवमौडुम्बरम् । अयमूर्जावतो वृक्ष इति मन्त्रेण भार्य्यायाः कण्ठे बध्नाति । अथ सीमन्तमूर्द्ध्वं नयति भूरिति दर्भपिञ्जलीभिरेव प्रथमं भुव इति द्वितीयं स्वरिति तृतीयम् । अथानन्तरं यत्र सिन्दूरं स्त्री ददाति तं सीमन्तं ललाटोर्द्ध्वं नयति भूरिति मन्त्रेण दर्भपिञ्जलीभिस्तिसृभिः एकवारकरणाद् यावन्त्युन्नयनानि तावतीभिरेव तिसृभिरित्यर्थः । प्रथमा-

दिपदानि तु व्याहृतीनां पिञ्जलीनाञ्च पृथग्विनियोगार्थम्। पिञ्जलीपवित्रम्। तथा च छन्दोगपरिशिष्टम्। "अनन्तर्गर्भिणं साग्रं कौशं द्विदलमेव च। प्रादेशमात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित्। एतदेव हि पिञ्जल्या लक्षणं समुदाहृतम्"॥ गोभिलः। "अथ वीरतरेण येनादितेरित्येतयर्चा"। वीरस्तरन्त्यनेन युद्धमिति वीरतरः शरः। तथा च छन्दोगपरिशिष्टम्। "श्वाविच्छलाका शलली तथा वीरतरः शरः। तिलतण्डुलसम्पाकः कृषरः सोऽभिधीयते॥ अतः शरेण येनादितेरिति मन्त्रेण सीमन्तमूर्द्ध्वं नयति इति पूर्वसूत्रादनुवर्त्तते। अथ पूर्णेन सूत्र चात्रेण वाकाहमित्येतयर्चा। चात्रं टकुः। तेन सूत्रपूर्णेन वाकाहमिति मन्त्रेण सीमन्तमूर्द्ध्वं नयतीति शेषः त्रिःश्वेतया शलल्या यास्तेवाकेसुमतय इति स्थानत्रितये शल्केन शे जाजन्तु कण्टकेन यास्ते इति मन्त्रेण सीमन्तमूर्द्ध्वं नयतीति शेषः। कृषरस्थालीपाक उत्तरघृतस्तमवेक्षयेत्। कृषर उक्तः स्थालीपाकश्चरुः स उपरिदत्तघृतस्तं वध्वाः प्रदर्शयेत् स्थालीपाकपदं चरुस्थाल्यां कृषरस्य श्रपणार्थं मनुष्यार्थत्वात् द्विःप्रक्षालनम्। ततश्च यः कश्चिन्महानसे श्रपयित्वा स्थापयेत्। किम्पश्यसीत्युक्त्वा प्रजामिति वाचयेत् किं पश्यसीति पतिरुक्त्वा प्रजामित्यादिमन्त्रं गर्भिणीं वाचयेत्। तमवेक्षितकृषरम्। वीरसूर्जवसूर्जीवपत्नीति ब्राह्मण्यो मङ्गल्यादिभिर्वाग्भिरुपासीरन्। वीरान् विक्रान्तान् पुत्रान् सूत इति वीरसूस्त्वं भवेति वाक्यशेषः। प्रतिपदं स्यात् जीवतो दीर्घायुषः पुत्रान् सूत इति जीवसूः जीवतः पत्नी जीवपत्नी अविधवेत्यर्थः। एवं प्रकाराभिर्वाग्भिरनुनयेयुः। ततश्च महाव्याहृतिभिर्हुत्वा औडुम्बरफलस्तवकं कण्ठे बध्वा प्रजामिति वाचयेदित्यन्तं तन्त्रं कृत्वा व्याहृतिभिर्होमादितन्त्रं समापयेत्। ततो ब्राह्मण्य उपासीरन्।

अथ शोष्यन्तीहोमः। अथानन्तरं शोष्यन्तीं शूलापन्नाम् आसन्नप्रसवां ज्ञात्वा होमः शोष्यन्तीहोमः कर्त्तव्य इति शेषः। सुप्रसवे प्रतिष्ठते वस्तौ परिस्तीर्य्याग्निमाज्याहुतीर्जुहोति या तिरश्चीत्येतयर्चा। विपश्चित् पुच्छमभवत् इति वस्तिर्योनिद्वारं वस्तौ स्थिते गर्भे प्रतीत्युपसर्गः। परिस्तीर्य्याग्निमिति समिद्धे पुनर्वचनं परिसंख्यानार्थं परिस्तरणमात्रमेव न तु ब्रह्मोपवेशनाद्यपीति। ततश्च क्षिप्रहोमः परिस्तरणाज्यसंस्कारावेकत्राधिको अल्पत्वात् कालस्य। या तिरश्चीत्याभ्यां जुहोति। पुमानजं जनयिष्यते असौ नामेत्येतस्मिन् सर्वनाम्नि देवदत्तशर्मा नाम स्वाहा इत्येवम्।

अथ जातकर्म्म। गोभिलः। "यदास्मै कुमारं जातमाचक्षीरन् अथ ब्रूयात् काङ्क्षत नाभिकृन्तनेन स्तनप्रतिधानेन चेति"। अस्मै पित्रे पुत्रं जातं कथयेयुः शिष्यादयः। नाभिकृन्तनेन स्तनप्रतिधानेन काङ्क्षत इति पिता ब्रूयात्। नाभिच्छेदनमकृत्वा स्तनपानप्रतिषेधेन च बालकं प्रतिपालयत। ततः पिता परिहितवस्त्रसहितः स्नायात्। "जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचेलन्तु विधीयते"। इति संवर्त्तात्। ततः पुत्रजन्मनिमित्तं वृद्धिश्राद्धं तन्त्रेण कुर्य्यात्। "नैमित्तिकमथो वक्ष्ये श्राद्धमभ्युदयार्थकम्। पुत्रजन्मनि तत्कार्य्यं जातकर्मसमं नरैः॥ इति मार्कण्डेयपुराणात्। "सीमन्तोन्नयने चैव पुत्रादिमुखदर्शने। नान्दीमुखं पितृगणं पूजयेत् प्रयतो गृही"॥ इति विष्णुपुराणवचनाच्च। साङ्गश्राद्धकरणाशक्तौ अन्नोत्सर्गमात्रं कर्त्तव्यम्। मिताक्षरायां पितामहः। "अशौचे तु समुत्पन्ने पुत्रजन्म यदा भवेत्। कर्त्तुस्तात्कालिकी शुद्धिरशुद्धः पुनरेव सः"॥ तात्कालिकी पुत्रजन्मनिमित्तकालिकी। दानदर्पणे वराहपुराणं "यावत्कालं सुते जाते न नाड़ी छिद्यते

पुनः। चन्द्रसूर्य्योपरागेषु तमाहुः समयं समम्”॥ कृत्यचिन्तामणौ देवलः। “जाते पुत्रे पिता श्रुत्वा सचेलं स्नानमाचरेत्। ब्राह्मणेभ्यो यथाशक्ति दत्त्वा बालं विलोकयेत्”॥ गर्गः। “श्रुत्वा बालस्य वै जन्म कृत्वा वेदोदिताः क्रियाः। अच्छिन्ननालं पश्येत्तं दत्त्वा रुक्मं फलान्वितम्”॥ पुनः स्नानमाहादिपुराणम्। “सूतके तु मुखं दृष्ट्वा जातस्य जनकस्ततः। कृत्वा सचेलं स्नानन्तु शुद्धो भवति तत्क्षणात्”॥ गोभिलः। “व्रीहियवौ पेषयेत्तथैवावृता यथाशुक्लां व्रीहिः शरत् पक्वधान्यं तदभावे हैमन्तिकं धान्यं यवालाभे गोधूमाः”। तथा च छन्दोगपरिशिष्टम्। “यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत्। यवानामिव गोधूमा व्रीहीणामपि शालयः”॥ उभयालाभे प्रत्येकम्। “यथा लाभोपपन्नं वा रौप्येषु तु विशेषतः”॥ इति याज्ञवल्क्यवचने पाठे तद्दर्शनात्। अवाप्यशतया तथा कल्प्यते वटशुङ्गा पेषणे या परिपाटी तयावापि पेषयेत्। दक्षिणस्य पाणेरङ्गुष्ठेनोपकनिष्ठया चाङ्गुल्याऽभिसंगृह्य कुमारस्य जिह्वां निर्माष्टि इयमाज्ञेति। पिष्टौ व्रीहियवौ दक्षिणहस्तानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां गृहीत्वा कुमारस्य रसनायां निदधाति इयमाज्ञेति मन्त्रेण तथैव मेधाजननं सर्पिः प्राशयेज्जातरूपेण चादाय कुमारमुखे जुहोति मेधान्ते मित्रावरुणामित्येतयर्चा सदसस्पतिमिति च। तथैव दक्षिणहस्तानामिकाङ्गुष्ठाभ्यां धृतेन जातरूपेण काञ्चनेन घृतं गृहीत्वा मेधाजननं घृतम्। शिशोरास्ये संदधाति प्रत्येकमृग्भ्यां जुहोतीत्यनेन मन्त्रस्य स्वाहान्तत्वं प्राशयेदित्यनेन मुखाधिकरणत्वं कृन्ततनाभिमिति ब्रूयात् स्तनञ्च प्रतिधत्तेति उक्तनिषेधविधिरयं नाभिशब्दो नाभिनिकटनाड़ीपरः स्तनपदं तत्क्षीरपरम् अत ऊर्द्ध्वमसमालम्भनमादशरात्रात् जातकर्मण उपरि असंस्पर्शः।

दशमदिनं व्याप्य अभिविधावां जातकर्म कृत्वा न स्नानार्हता सद्यो जाते एनो नास्तीति वचनादिति सरला ।

अथ नामकरणम् । तत्र गोभिलः । "जननाद्दशरात्रे व्युष्टे शतरात्रे वा संवत्सरे वा नामधेयकरणम्"। व्युष्टे गते । तथा च श्रुतिः । "एकादशे द्वादशे वाहनि पिता नाम कुर्य्यात्" एकादश इति मुख्यकल्पः । समर्थस्य क्षेपायोगात् इति न्यायात् । अतएव भट्टभाष्ये श्रुतिः । "नश्वः समुपासीत कोऽसमर्थस्य श्वो वेदेति"। एतच्च प्रशस्ततरतमपरपरकालकर्मेतरपरम् । अथ यस्तत् करिष्यन् भवति पश्चादग्नेरुदगग्रेषु दर्भेषु प्रागुपविशति । अथेति जन्म गृहाभ्यन्तरे अन्यथा चन्द्रदर्शनात् प्राक् तद्बहिर्गमनं स्यात् । य इत्यनेन पितुरभावेऽन्योऽप्यधिकारी । अथ माता शुचिना वस्त्रेण कुमारमाच्छाद्य दक्षिणत उदञ्चं कर्मकर्त्रे प्रयच्छति उदक्शिरसमनुपृष्ठं परिक्रम्योत्तरत उपविशति उदगग्रेषु कुशेषु आच्छाद्य आक्षौषदर्थे तेन मुखवर्जं छादयित्वा दक्षिणतः पत्युर्दक्षिणतः स्थित्वा उदञ्च मुत्तानम् अनुपृष्ठं कर्त्तुः पश्चिमदेशं परिक्रम्य गत्वा । अथ जुहोति प्राजापतये तिथये नक्षत्राय देवतायै" इति । तिथये नक्षत्राय कुमारस्येति शेषः । देवतायै तिथिनक्षत्रयोरित्यर्थः । तथा च बह्वृचगृह्यम् । "तन्मध्ये जुहुयात् यस्मिन् जातः स्यात् इति"॥ तिथयः प्रतिपदाद्याः तद्देवताः ब्रह्मत्वष्टृविष्णुयमसोमकुमारमुनिवसुपिशाचधर्मरुद्रवायुमन्मथयक्षपितरः । पौर्णमास्यां विश्वेदेवाः । एषां होमे विशेषमाह छन्दोगपरिशिष्टम् । "नामधेये मुनिवसुपिशाचा बहुवत्सदा । यक्षाश्च पितरो देवा यष्टव्या तिथिदेवताः"॥ तेन मुन्यादयो बहुवचनान्ता होतव्या इति शेषाः एकवचनान्ता होतव्याः । नक्षत्राण्यश्विन्यादीनि । देवता ज्योतिषि अश्वि-

यमित्यादि। अत्राभिजितो भिन्नत्वात् अष्टविंशतिहोमे तु नाभिजितो ग्रहणम् उत्तराषाढात्वेन श्रवणात्वेन च तदभिधानात्। तेन विरिञ्चिग्रहणम्। नक्षत्रहोमे छन्दोगपरिशिष्टम्। "आग्नेया द्वेऽथ सर्पा द्वे विशाखा द्वे तथैव च। आषाढ़ा द्वे धनिष्ठा द्वे अश्विन्या द्वे तथैव च। द्वन्द्वान्येतानि बहुवदृक्षाणां जुहुयात् सदा"॥ द्वन्द्वद्वयं द्विवच्छेषमवशिष्टान्यथैकवत्। कृत्तिका द्वे विशाखा द्वे आषाढ़ाद्वे धनिष्ठा द्वे एतानि द्विकानि द्विकानि ओम् कृत्तिकाभ्यः स्वाहा रोहिणीभ्यः स्वाहा इत्यादि बहुवचनयुक्तानि जुहुयात् शेषं द्वन्द्वद्वयं भाद्रपदद्वयं फल्गुनीद्वयञ्च द्विवचनयुक्तं जुहुयात् शेषाण्येकवचनयुक्तानि तद्देवता होमेऽपि विशेषः। "देवता अपि हूयन्ते बहुवत् सर्पवस्तपः। देवाश्च पितरश्चैव द्विवदुग्रभाश्विनौ तथा"॥ देवा विश्वेदेवाः। गोभिलः। "तस्य च मुख्यान् प्राणान् स्पृशन् कोऽसि कतमोऽसि इत्येतन्मन्त्रं जपति आहस्पत्यं मासं प्रविशासावित्यन्ते च मन्त्रस्य घोषवदाद्यन्तरन्तस्थं दीर्घाभिनिष्ठानान्तकृतं नाम दध्यात्"। कुमारस्य मुखभवान् वायून् प्राणनिर्गमोपायभूतान् छिद्रविशेषसप्तमुखमक्षिणी नासिके कर्णाविति आभिमुख्येन स्पृशन् कोऽसीति मन्त्रं जपेत् आहस्पत्यं मासं प्रविशासावित्यत्रासाविति मन्त्रान्ते चासाविति च पदद्वयस्थाने सम्बोधनान्तं नामोच्चारयेत्। कीदृशं कवर्गादि पञ्चकतृतीयादिवर्णान्यतमवर्णाद्यन्तरस्थं यरलवाद्यन्यतमवर्णमध्यं दीर्घं द्विमात्रम्। आकारादि अभिनिष्ठानो विसर्गः। एतदुभयान्यतरं यस्यान्ते अर्थादसंबुद्धिप्रथमान्तप्रयोगः। अन्यविभक्तेरसम्भवात् कृतं कृदन्तं यथा वलिध्वंसी विश्वम्भर इत्यादि। तथा च गर्गः। "आदौ घोषवदक्षरान् यरलवान् मध्ये पुनः स्थापयेत् अन्ते दीर्घविसर्जनीयसहितं

नाम प्रयत्नात् कृतम्। हस्ते तिष्यकराश्विसौम्यवसुभे चित्रानुराधोत्तरे पौष्णे चादितिरोहिणीषु शुभकृत् पुंसां समेरस्वरैः”। गोभिलः। “एतदतद्धितम्। एतन्नाम तद्धितरहितम् एतच्च स्वगृह्योक्तत्वात् प्रशस्तपरं कुलदेवानक्षत्राभिसम्बद्धं पिता नाम कुर्य्यात् तदन्यो वा कुलवृद्धः” इति कल्पतरुशङ्खलिखितवचनान्नामान्तरकरणव्यवहारः। अत्र नक्षत्रसम्बन्धेन नामकरणं शतपदचक्रानुरोधात् स्वनक्षत्रपादानुसारेण तच्च देवशर्म्माद्युपपदान्तत्वेन कर्त्तव्यम्। तथा च विष्णुपुराणम्। “ततश्च नाम कुर्वीत पितैव दशमेऽहनि। देवपूर्वं नराख्यं हि शर्म्म वर्म्मादि संयुतम्” इति। नरमाचष्टे इति नराख्यं नरनाम देवात् पूर्वं तच्च विशिष्टं शर्म्मयुतम्। “शर्म्मा देवश्च विप्रस्य वर्म्मा त्राता च भूभुजः। भूतिर्गुप्तश्च वैश्यस्य दासः शूद्रस्य कारयेत्”। इति यमवचने समुच्चयोपलब्धः “शर्म्मान्तं ब्राह्मणस्य स्यात्” इति शातातपीयेन शर्म्मान्तता च। गोभिलः। “अयुग्दान्तं स्त्रीणाम्”। अयुक् अयुग्माक्षरं दान्तं यथा यशोदा इत्यादि। “देवं गुरुं गुरुस्थानं क्षेत्रं क्षेत्राधिदेवताम्। सिद्धं सिद्धाधिकारांश्च श्रीपूर्वं समुदीरयेत्”। इति राघवभट्टधृतप्रयोगसारदर्शनात्। स्वर्गगामित्वादिना सिद्धः अधिकारो येषां नराणामित्यनेन जीवतां श्रीशब्दादित्वं नाम्नो न मृतानां तथेति शिष्टाचारः। गोभिलः। “मात्रे चैव प्रथमं नामधेयमाख्याय यथार्थम् उदीच्यं वामदेव्यगानान्तं कुर्य्यात् गौर्दक्षिणा सा च प्रधानस्य नामकर्म्मणः”।

अथ निष्क्रमणम्। गोभिलः। “जननाद्यस्तृतीयो ज्योत्स्नस्तस्य तृतीयायां प्रातः सशिरस्कं कुमारमाप्लाव्यास्तमिते सूर्य्ये वीते लोहिते अञ्जलिकृतः पितोत्तिष्ठते”। कुमारस्य जननमारभ्य यो ज्योत्स्नो वृद्धियुक्तः पक्षस्तस्य तृतीया-

तिथौ प्रातः सशिरस्कं कुमारं स्नापयित्वा प्रातर्न मध्याह्नादौ अस्तमिते सूर्य्ये विगते रश्मिमावस्थे काले सन्ध्योपरमे अञ्जलिकृतः बहुव्रीहावाहिताग्निगणपाठात् कृताञ्जलिरुपतिष्ठते चन्द्राभिमुख ऊर्द्धस्तिष्ठेत्। अथ माता शुचिना वस्त्रेण कुमारमाच्छाद्य दक्षिणे उदञ्चं पित्रे प्रयच्छति उदक्शिरसम् उदञ्चमुत्तानमिति भट्टभाष्यम्। उत्तरां गच्छन्तमिति सरला। अनुपृष्ठं परिक्रम्योत्तरतः अवतिष्ठते पत्युः पृष्ठस्य पश्चादुपक्रम्य सा उत्तरस्यां तिष्ठेत् पश्चिमाभिमुखी अथ जपति यत्ते सुसीमे हृदयमिति यथायं न प्रमीयते पुत्रोजनित्र्या। अधीति उदञ्चं मात्रे प्रदाय यथार्थं मातर्य्युद्गतायां पिता यत्त इत्यादि पुत्रोजनित्र्या अधीत्यन्तमन्त्रद्वयं जप्त्वा उत्तानमुत्तरां गच्छन्तमुदक्शिरसं कुमारं मात्रे दत्त्वा वामदेव्यगानान्तं कुर्य्यात्। कृत्यचिन्तामणिः। "स्वस्वविधानतोऽर्कशशिनोरर्घ्यं दापयेत्" अर्कार्घस्तु छन्दोगेतरपरः। चन्द्रार्घस्तु क्षीरोदार्णवसम्भूतेत्यादि। तत्र वृद्धिश्राद्धमाह गोभिलः। "सर्वाण्येवान्वाहार्य्यवन्ति"। एतद्गृह्योक्ते कर्म्मणि सर्वाण्येवान्वाहार्य्यवन्ति। अन्वाहार्य्यं नान्दीमुखश्राद्धं दक्षिणा च तदुभययुक्तानि। तथा च गृह्यान्तरम्। "यच्छ्राद्धं कर्म्मणामादौ या चान्ते दक्षिणा भवेत्। आमावास्यं द्वितीयं यदन्वाहार्य्यं विदुर्बुधाः"। मातृपूजानन्तरमाक्रियमाणत्वात् श्राद्धस्य प्रधानकर्म्मानन्तरमाक्रियमाणत्वाद्दक्षिणायाः पिण्डपितृयज्ञानन्तरमाक्रियमाणत्वादमावास्याश्राद्धस्यान्वाहार्य्यत्वम्। न च वृहत् पत्रसुद्रपक्षस्यथं परिविश्यतोः। "सूर्य्येन्द्वोः कर्म्मणो ये तु तयोः श्राद्धं न विद्यते"। इति छन्दोगपरिशिष्टाच्चान्द्रकर्म्मत्वेन श्राद्धपर्य्युदासः कल्पतरुप्रभृतिभिरुक्तो युक्त इति वाच्यम्। पूर्वार्द्धानवलोकनात्। अतएव वृद्ध इरेति पञ्चर्चा इति प्रकृते द्विती-

यया ऋचा आदित्ये परिविश्यमाने अक्षततण्डुलान् जुहुयात् पवस्वस्त्ययनकामः तृतीयया चन्द्रमसीति तिलतण्डुलान् क्षुद्रपशुस्वस्त्ययनकामः इति सूत्राभ्याम्। परिविशति सूर्य्ये हस्त्यश्वादि वृहद्वाहनस्वस्त्ययनार्थं चन्द्रे च परिविशति अजमेषादि क्षुद्रपशुस्वस्त्ययनार्थं होमकर्मद्वयमुक्तं तयोः श्राद्धं नास्तीति परिशिष्टप्रकाशः। श्राद्धविवेकोऽप्येवम्। गोभिलः। “अथ ये अतऊर्द्धं ज्यौत्स्नाः पक्षाः प्रथमोद्दिष्टा एव तेषु पितोपतिष्ठते अपामञ्जलिं पूरयित्वाभिमुखश्चन्द्रमसं यददश्चन्द्रमसीति स ऋत्तु जुहुयात्”। द्विस्तूष्णीम् उत्सृज्य यथार्थं कियदधि अत ऊर्द्धं ज्योत्स्ना स्वेतत् कर्म संवत्सरम्। तृतीयशुक्लपक्षादूर्द्धं शुक्लपक्षेषु प्रथमोद्दिष्टे तृतीयायां तिथौ वत्सरपर्य्यन्तं चन्द्राभिमुखः पिता सकृच्चन्द्रायाञ्जलिम्। ओम् यददश्चन्द्रमसीति मन्त्रेण दद्यात्। प्रथमोदित एवेति भट्टभाष्ये पाठः। तन्मते प्रथमोदिते चन्द्रमसि प्रतिपदि द्वितीयायां वेति व्याख्यातञ्च। ततो वामदेव्यगानमच्छिद्रावधारणं कुर्य्यात्।

अथान्नप्राशनम्। यद्यपि गोभिलगृह्ये अन्नप्राशनसंस्कारो नाभिहितः तथापि “अन्नस्य प्राशनं कार्य्यं मासि षष्ठाष्टमे बुधैः। स्त्रीणान्तु पञ्चमे मासि सप्तमे प्रजगौ मुनिः”। इति कृत्यचिन्तामणिधृतवचनेन सर्वशाखिकर्त्तृकत्वे नाकाङ्क्षितः। “यन्नाम्नातं स्वशाखायां परोक्तमविरोधि च। विद्वद्भिस्तदनुष्ठेयमग्निहोत्रादिकमवत्” इति छन्दोगपरिशिष्टादन्यशाखोक्तप्रकारेण छन्दोगेन कर्त्तव्यः। पूर्वापरेति कर्त्तव्यताकलापस्तु स्वगृह्यानुसारेण कार्य्यः। इति भट्टनारायणप्रभृतयः भुजबलभीमे। “षष्ठे मासि निशाकरे शुभकरे रिक्तेतरे वा तिथौ सौम्यादित्यसितेन्दुजीवदिवसे पक्षे च कृष्णेतरे। प्राजेशादिति-

पोष्णवैष्णत्रयुगैर्हस्तादि षट्कोत्तरैराग्नेयाप्यतिपित्र्यभेषु निरंरामन्नादिभक्ष्य शुभम्"। युगैरिति प्राजेशादौ प्रत्येकं सम्बध्यते। कृत्यचिन्तामणौ। "द्वादशी सप्तमी नन्दा रिक्तासु पञ्चपर्वसु। बलमायुर्यशो हन्याच्छिशूनामन्नभक्षणम्"। भुजबलभीमे। "वृषद्वन्द्वधनुर्मीनकन्यालग्नेऽन्नभक्षणम्। त्रिकोणाष्टशुगान्तेषु ग्रहा यद्वद्यत्तथा फलम्। दुष्टः शशधरो लग्नात् षष्ठाष्टस्थोऽन्नभक्षणे"। मत्स्यपुराणे "अन्नप्राशे च सीमन्ते पुत्रोत्पत्तिनिमित्तके। पुंसवने निषेके च प्रवेशे नववेश्मनः। देववृक्षजलादीनां प्रतिष्ठासु विशेषतः। तीर्थयात्रावृषोत्सर्गे वृद्धिश्राद्धं प्रकीर्त्तितम्"। मार्कण्डेयः। "देवतापुरतस्तस्य पितुरङ्कगतस्य। अलङ्कृतस्य दातव्यमन्नं पात्रे च काञ्चने॥ मध्वाज्यकनकोपेतं प्राशनं शंसते ततः। कृतप्राशनमुत्सङ्गे मातुर्बालन्तु तं त्यजेत्॥ देवाग्रतोऽथ विन्यस्य शिल्पभाण्डादिसर्वशः। शस्त्राणि चैव शास्त्राणि ततः पश्येत्तु लक्षणम्॥ प्रथमं यत् स्पृशेद्बालः शिल्पभाण्डं स्वयं तथा। जीविका तस्य बालस्य तेनैव तु भविष्यति"॥

अथ चूड़ाकरणम्। गोभिलः। अथातस्तृतीये वर्षे चूड़ाकरणम्। जननामन्तरं वर्त्तमानतृतीये वर्षे चूड़ाकरणमुदगयनादीनां समुच्चये बोद्धव्यम्। कपुष्णिका कपुच्छलाख्यः केशचूड़ा तासां वक्ष्यमाणविधिना संस्कारकरणम्। चूड़ाकरणं कर्मणो नामधेयम्। अयं कालो मुख्यः गृह्योक्तत्वात्। अत्रासामर्थ्येऽन्योऽपि कालः। यथा मनुः। "चूड़ाकर्म्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्म्मतः। प्रथमेऽब्दे तृतीये वा कर्त्तव्यं श्रुतिदर्शनात्" इति। शङ्खलिखितौ। "तृतीये वर्षे चूड़ाकरणं पञ्चमे वेति"। ज्योतिषे। "अयुग्माब्दे तथा मासि चूड़ा भौमशनीतरे। अर्केन्दुकालशुद्धौ च जन्ममासेन्दुभाहते। रिक्ता

दर्शाष्टमीषष्ठीप्रतिपद्वर्जिते सिते"॥ सिते शुक्लपक्षे। दक्षः। "षष्ठ्यष्टमीपञ्चदशी उभे पक्षे चतुर्दशी। अत्र सन्निहितं पापं तैले मांसे भगे क्षुरे॥ श्रवणादित्रयस्वातीचित्रापुष्याश्विचन्द्रभे। आदित्यरेवतीहस्तज्येष्ठामूले च चौड़कम्"॥ तुलामेषसिंहकर्किवृश्चिकेतरलग्नके। अत्रापि तिथ्यर्द्धादिविष्टिं विवर्जयेत्। "सूर्य्ये दक्षिणमार्गगामिनि हरौ सुप्ते निरंशे रवौ क्षीणे शीतरुचौ महीजयमयोर्वारे निशासन्ध्ययोः। भुक्तेऽभ्यक्ततनौ नियुद्धसमयेऽलङ्कारयुक्ते शिशौ चौराद्रोगभयं वदन्ति जवना मृत्युं तथान्ये जगुः"॥ भोजराजः। "उत्तरवर्त्मनि सवितरि चूड़ाकरणं जगुः शुभं जवनाः। चैत्रे मासि दिवाकरवारे शिखिसन्निधाने च"॥ रविवारेतरत्र गर्गः। "जन्मर्क्षे जन्ममासे च युग्मे मासि च वत्सरे। न कुर्य्यात् प्रथमं क्षौरं विशेषाच्चैत्रपौषयोः"॥ ज्योतिषे। "कृत्तिकास्थं रविं त्यक्त्वा ज्येष्ठे ज्येष्ठस्य कारयेत्। उत्सवानि च कार्य्याणि दिग्दिनानि च वर्जयेत्"॥ गोभिलः। "पुरस्ताच्छालाया उपलिप्तेऽग्निरुपसमाहितो भवतीति"। व्यक्तार्थमेतत्। गोभिलः। "तत्रैव तान्युपक्लृप्तानि भवन्ति"। अत्र उपलिप्ते देशे उपक्लृप्तानि अग्निसमीपे आसादितानि। तान्याह। एकविंशतिदर्भपिञ्जल्यः उष्णोदककंसऔडुम्बरः क्षुरः। आदर्शो वा क्षुरपाणिर्नापित इति दक्षिणतः। पिञ्जल्यः पवित्राणि तानि सप्तसप्तकृत्वा स्थानत्रये स्थाप्यानि। उष्णोदकं कंसमस्मिन् उष्णोदककंसः। उडुम्बरस्यायमौडुम्बरस्ताम्रमयः क्षुरः तदभावे आदर्शो दर्पणम्। दक्षिणतोऽग्नेरिति शेषः। आसादनञ्च पूर्वस्मिन् पूर्वस्मिन्। गोभिलः। "आनडुहो गोमयः कृसरस्थालीपाको वृथापाक इत्युत्तरतः"। आनडुहो वृषजातः वृथापक्वो होमानुपयुक्तत्वात् संस्काररहितः। एतदुभयं प्राक्-

संस्थमुत्तरत: कृसं भवतीति व्रीहियवैस्तिलमाषैरिति पृथक्-पात्राणि पूरयित्वा पुरस्तादुपनिदध्युः। द्वन्द्वद्वयबलात् व्रीहियवैर्मिश्रैः पात्रद्वयं पूरयित्वा पुरस्तादग्नेः पुरतः स्थापयेत्। एवं तिलमाषैरिति करणात् एषामलाभेऽन्येनापि पूरणमिति भट्टभाष्यम्। इत्यादिबहुवचनान्ता गणस्य संसूचका इति अत्र बीजं बहुवचनादनियतकर्त्तृकमासादनम्। गोभिलः। "कृषरो नापिताय सर्व्वबीजानि चेति"। निवृत्ते कर्म्मणि कृषरो व्रीह्यादिपात्राणि च नापिताय देयानि प्रतिपत्तिस्त्वासादनप्रसङ्गादत्रोक्ता। अथ माता शुचिना वस्त्रेण कुमारमाच्छाद्य पश्चादग्नेरुदगग्रेषु दर्भेषु प्राच्युपविशति" ॥

अथाज्यसंस्कारानन्तरम्। प्राची प्राङ्मुखी। अथ यस्तत् करिष्यन् भवति पश्चात् प्राङ्मुखोऽवतिष्ठते। अथ शब्दः किञ्चित् कर्म्म स्मारयति तच्च कर्म्म यथा पाणिग्रहणे तथा चूड़ाकर्म्मणीति वचनात् चूड़ाकर्म्मणः पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चतस्रो महाव्याहृतयो भवन्तीति भट्टनारायणः। पाणिग्रहणे तु महाव्याहृतिभिः पृथक् समस्ताभिश्चतुर्थीमिति गोभिलदर्शनात् व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोम उक्तः। तेन यश्चूड़ां करोति स व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमानन्तरं गृहीतकुमारायाः पश्चात् प्राङ्मुख ऊर्द्ध्वस्तिष्ठति। अथ जपति आयमगात् क्षुरेणेति सवितारं मनसा ध्यायन् नापितं प्रेक्षमाणः। अथ ऊर्द्ध्वावस्थानानन्तरमेवायमगात् इति मन्त्रं सवितारं ध्यायन्। पितरञ्चावलोकयन् जपति। उष्णेन वाय उदकेनेधीति वायुं मनसा ध्यायन् उष्णोदकं संप्रेक्षमाणः। वायुं ध्यायन् उष्णोदकपूर्णं कांसपात्रञ्चावलोकयन् उष्णेन वाय इति मन्त्रं जपेत्। गोभिलः। "दक्षिणेन पाणिना अप आदाय दक्षिणां कपुष्णिकाम् उन्दयति आप उन्दन्तु जीवसे

इति"। कंसपात्राद्दक्षिणेन पाणिना अप आदाय कुमारस्य दक्षिणकपुष्णिका सुन्दयति क्लेदयति। कं शिरः शीतातपादिरक्षणेन पुष्णाति इति कपुष्णिका शिरस उभयपार्श्वस्थकेशजटिका उच्यते। उक्तञ्च। "कपुष्णिकाऽभितः केशा मूर्द्ध्नि पश्चात् कपुच्छलमिति"। गोभिलः। "विष्णोर्दंष्ट्रोऽसीति औडुम्बरं क्षुरं प्रेक्षेत आदर्शं वा"॥ औडुम्बरं ताम्रं तदलाभे दर्पणं पश्येत् विष्णोर्दंष्ट्रोऽसीति मन्त्रेण। ओषधे त्रायस्वैनमिति सप्तदर्भपिञ्जलीर्दक्षिणायां कपुष्णिकायामभिशिरोऽग्रा निदधाति। आसादितदर्भपिञ्जलीमध्यात् सप्तपिञ्जलीर्गृहीत्वा दक्षिणायां कपुष्णिकायाम् ओषधे त्रायस्वैनमिति मन्त्रेण स्थापयति। अभिशिरोऽग्राः शिरसोऽभिमुखाग्रा ऊर्द्ध्वमूलाधोऽग्रा इत्यर्थः। गोभिलः। "ता वामेनाभिगृह्य दक्षिणपाणिना औडुम्बरं क्षुरं गृहीत्वा दर्शं वा निदधाति संलग्नं धारयति। येन पूषा बृहस्पतिरिति प्राञ्चं प्रोहत्य अप्रच्छिन्दन् सकृत् यजुषा द्विस्तूष्णीम्"॥ येन पूषेत्यनेन मन्त्रेण वारत्रयं प्राञ्चं प्राग्गतं क्षुरं कपुष्णिकादेशे प्रोहति प्रेरयति। अप्रच्छिन्दन् केशच्छेदकुर्व्वन् एकवारं मन्त्रेण वारद्वयं तूष्णीम् अप्रच्छिन्दन्निति क्षुरपक्षे। गोभिलः। "अथायसेन प्रच्छिद्यानडुहे गोमये निदधाति"। अनन्तरं लौहक्षुरेण कपुष्णिका केशान् दर्भपिञ्जलीसहितान् छित्वा ताभिः सह वृषगोमये निदध्यात्। गोभिलः। "एतयैवावृता कपुच्छलम्"। अनयैवावृता परीपाट्या कपुच्छलं संस्कुर्य्यात् अवटस्योपरि उन्नतशिरोऽवयवः कपुच्छलम्। गोभिलः। "एतयोत्तरां कपुष्णिकाम्"। एतया प्रक्रियया वालां कपुष्णिकां छिन्द्यात्। गोभिलः। "उन्दन् प्रभृतिष्वेवाभिनिवर्त्तयेत्। क्लेदनादिकर्म्म पुनः कुर्य्यात्"॥ उन्दी क्लेदने। उभाभ्यां पाणिभ्यां मूर्द्धानं परिगृह्य जपेत्

त्र्यायुषं जमदग्नेरिति मूर्द्धानं कुमारस्य। एतयैवावृता स्त्रियास्तूष्णीं मन्त्रेण तु होमः। आवृता प्रक्रियया तूष्णीमनन्तरोक्ताः सर्वे संस्कारा मन्त्रवर्जं भवन्ति। “अमन्त्रिका तु कार्य्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः” इति मनुवचनात्। तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहस्तु समन्त्रकः” इति याज्ञवल्क्यवचनाच्च। होमस्तु मन्त्रेण तु शब्दस्यार्थे तेन हविश्चावृच्च मन्त्रवदेव भवतीत्यर्थः। गोभिलः। “उदगग्नेरुत्सृप्य कुशली कारयन्ति यथा गोत्रकुलकल्पम्” उदक् उत्तरतः उत्सृप्य गत्वा कुमारं कुशलीकारयन्ति नापितहस्तेन मुण्डयन्ति यथा गोत्रकुलाचारस्तथा। राजमार्त्तण्डः। “प्राचीमुखः सौम्यमुखोऽपि भूत्वा कुर्य्यान्नरः क्षौरमनुत्कटस्थः”। ब्रह्मगर्गः। “केशवमानर्त्तपुरं पाटलिपुत्रं पुरीमहिच्छत्राम्। दितिमदितिञ्च स्मरतां क्षौरविधौ भवति कल्याणम्”। “गोभिलः। आनडुहे गोमये केशान् कृत्वा अरण्ये गत्वा निखनन्ति”। वृषगोमये सर्वान् केशान् अवस्थाप्यारण्यं नीत्वा निखनन्ति बहुवचनादनियतकर्त्तृकत्वं स्तम्बे हैके निदधाति। ह इति निपातः। एके आचार्य्याः व्रीहियवादिस्तम्बे निदधाति तान् केशान् प्रक्षिपन्तीत्यर्थः। यथार्थं गौर्दक्षिणा। यथार्थमुदीच्यं व्यस्तसमस्तमहाव्याहृतिहोमादि वामदेव्यगानान्तं कर्म्म समापयेत् दक्षिणा देया प्रधानकर्म्मणामित्यर्थः।

अथोपनयनम्। अत्र गोभिलः। “गर्भाष्टमेषु ब्राह्मणमुपनयेत्। गर्भैकादशेषु क्षत्रियं गर्भद्वादशेषु वैश्यम्। आषोडशाद्ब्राह्मणस्यानतीतः कालो भवति आद्वाविंशात् क्षत्रियस्य आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य अत ऊर्द्ध्वं पतितसावित्रीका भवन्ति। नैतानुपनयेयुर्नाध्यापयेयुर्न एभिर्विवाहयेयुः”। गर्भवर्षमष्टमं येषां वर्षाणां तानि वर्षाणि गर्भाष्टमानि तेषु गर्भाष्टमेषु वर्त्त-

षानं ब्राह्मणमुपनयेत्। अध्यापनार्थमाचार्य्यसमीपं नीयते येन कर्म्मणा तदुपनयनमिति कर्म्मणो नामधेयं तेन कर्म्मणा योजयेत्। "गृह्योक्तकर्म्मणा येन समीपं नीयते गुरोः। बालो वेदाय तद्योगात् बालस्योपनयं विदुः" इति स्मृतेः। आषोडशादित्यभिविधावाङ्। तथा च विष्णुधर्मोत्तरम्। "षोडशाब्दो हि विप्रस्य राजन्यस्य द्विविंशतिः। विंशतिः सचतुर्थी च वैश्यस्य परिकीर्त्तिता। सावित्री नातिवर्त्तेत अत ऊर्द्ध्वं निवर्त्तते" ॥ अत्र षोडशवर्षाणामुपनयनाङ्गता प्रतीयते। "पतिता यस्य सावित्री दशवर्षाणि पञ्च च। ब्राह्मणस्य विशेषेण तथा राजन्यवैश्ययोः॥ प्रायश्चित्तं भवेदेषां प्रोवाच वदतां वरः" इति यमवचनेन तदनङ्गता प्रतीयते। अनयोर्गर्भजन्मगणनाभ्यामविरुद्धता। तथा च माण्डव्यः। "व्रतबन्धविवाहे च वत्सरपरिगणनमाहुराचार्य्याः। आधानपूर्वमेके प्रसूति पूर्वं सदान्ये तु"। यत्तु द्विजानामित्युपक्रम्य पैठीनसिवचनम्। "द्वादशषोडशविंशतिश्चेदतीता। अवरुद्धकाला भवन्तीति"। तद्द्वादशवर्षाद्युपरि ब्राह्मणादीनां महाव्याहृतिहोमरूपप्रायश्चित्तार्थं षोडशवर्षोपरि गुरुप्रायश्चित्तमिति। तथा च शङ्खलिखितौ। "व्रात्यश्चान्द्रायणञ्चरेत् गोप्रदानञ्च कुर्य्यात् चान्द्रायणाशक्तौ धेन्वष्टकं तन्मूल्यं वा सार्द्धद्वाविंशतिकार्षापणाः गोमूल्यं कार्षापण एकः मिलित्वा सार्द्धं त्रयोविंशतिकार्षापणा देयाः" ॥ पितृमातृरहितस्य निःस्वस्य देशोपप्लवादिना पतितसावित्रीकस्य वा विषये तु मनुविष्णू। "येषां द्विजानां सावित्री नानुष्ठेत यथाविधि। तांश्चारयित्वा त्रीन् कृच्छ्रान् यथाविध्युपनाययेत्"। कृच्छ्रं प्राजापत्यम्। तत्त्रयाशक्तौ धेनुत्रयं तन्मूल्यं नवकार्षापणा वा देयाः प्रकृतप्रायश्चित्तान् प्रत्याह नैतामित्यादि। तत्र बहुवचनं तत्कर्त्तृ-

संसर्गिणां प्रायश्चित्तदर्शनार्थम्। तथा च स्मृत्यन्तरम्। "व्रात्याचार्य्यस्य भुक्तान्नं कृच्छ्रपादेन शुध्यति। यश्चोपनयते व्रात्यान् त्रिभिः कृच्छ्रैः स शुध्यति"॥ भुजवलभीमकृत्यचिन्तामण्योः। "स्वातीशक्रधनाश्विमित्रकरभे पौष्णेज्यचित्राहरिष्वेन्दौ तोयपतौ भगे दितिसुते भाद्रद्वये सागरे। केन्द्रस्थे भृगुजेऽङ्गिरः शशिशुभे चन्द्रे च तारे शुभे। कर्त्तव्यं व्रतकर्म्म मङ्गलतिथौ वाराः सितार्केज्यकाः"॥ अदितिसुत उत्तरफल्गुनी सागरः पूर्वाषाढ़ा। दीपिकायाम्। "जीवार्केन्दूडुशुद्धौ हरिशयनवहिर्भास्करे चोत्तरस्थे स्वाध्याये वेदवर्णाधिप इह शुभदे क्षौरभे नादितौ च। अर्कशुक्रार्केज्यर्त्तलग्ने रविमदनतिथिं प्रोज्झ्य षष्ठाष्टमेन्दुं नो जीवास्तातिचारे सितगुरुदिने कालशुद्धौ व्रतं स्यात्"। रविमदनतिथिं सप्तमीत्रयोदशीं षष्ठाष्टमेन्दुं लग्नापेक्षया। प्रोज्झ्य त्यक्त्वा कृत्यचिन्तामणौ। "माघे द्रविणशीलाढ्यः फाल्गुने च दृढव्रतः। चैत्रे भवति मेधावी वैशाखे कोविदो भवेत्॥ ज्यैष्ठे गहननीतिज्ञ आषाढ़े क्रतुभाजनः। शेषेष्वन्येषु रात्रिः स्यान्निषिद्धं निशि च व्रतम्" राजमार्त्तण्डे। "पुनर्वसौ कृतो विप्रः पुनः संस्कारमर्हति"। आश्वलायनः। "उदगयने आपूर्य्यमाणे पक्षे कल्याणे नक्षत्रे चूडोपनयन-गोदानविवाहाः। विवाहः सार्वकालिक इत्येके"। आपूर्य्यमाणे पक्षे शुक्लपक्षे। वृद्धगर्गः। "स्मृतिसूक्ताननध्यायान् सप्तमीञ्च त्रयोदशीम्। पक्षयोर्माघमासस्य द्वितीयां परिवर्जयेत्"। श्रीपतिव्यवहारसमुच्चये। "कार्त्तिकस्याश्विनस्यापि फाल्गुनाषाढ़योरपि। कृष्णपक्षे द्वितीयायामनध्यायं विदुर्बुधाः"॥ भुजवलः। "चैत्रकृष्णाद्वितीयायां तिसृष्वेवाष्टकासु च मार्गे च फाल्गुने चैव आषाढ़े कार्त्तिके तथा। पक्षयोर्माघमासस्य द्वितीयां परिवर्जयेत्। नाकालवृष्टौ कुर्वीत व्रतवन्धशुभ-

क्रियाम्" उपनयने उत्तरायणशुक्लपक्षयोर्विधानात् कार्त्तिकादौ कृष्णपक्षे च द्वितीयाया निषेधः पुनःसंस्कारमर्हतीत्युक्तप्रायश्चित्तरूपोपनयनपरः। वैश्योपनयनपरश्च। तथा च गर्गः। "विप्रस्य क्षत्रियस्यापि मौञ्जी स्याद्दक्षिणायने। दक्षिणे च विशां कार्य्यं नानध्याये न संक्रमे। अनध्यायेऽपि कुर्वीत यस्य नैमित्तिकं भवेत्"। अपिना दक्षिणायनकृष्णपक्षयोः समुच्चयः। नैमित्तिकं प्रायश्चित्तरूपम्। चैत्रशुक्लतृतीया आषाढ़शुक्लदशमी मन्वन्तरादित्वेन निषिद्धा वैशाखशुक्लतृतीया युगादित्वेन निषिद्धा। "षष्ठ्यामशुचिरुग्भार्य्यो रिक्तासु बहुदोषभाक्"। सामगानां कुजवारेऽप्युपनयनं शाखाधिपत्वात्। तथा च "शाखाधिपे बलिनि केन्द्रगतेऽथ चास्मिन् वारेऽस्य चोपनयनं कथितं द्विजानाम्। नीचस्थितेऽरिगृहगेऽथ पराजिते वा जीवे भृगावुपनयनः स्मृतिकर्महीनः" अस्य शाखाधिपस्य। कृत्यचिन्तामणौ। "जन्मोदये जन्मसु तारकासु मासेऽथ वा जन्मनि जन्मभे वा। व्रतेन विप्रो न बहुश्रुतोऽपि विद्याविशेषैः प्रथितः पृथिव्याम्। अस्तं गते दैत्यगुरौ गुरौ वा ऋक्षेऽपि वा पापयुतेऽप्यनुक्ते। व्रतोपनीतो दिवसैः प्रणाशं प्रयाति देवैरपि रक्षितो यः"। उदये लग्ने व्रतेन उपनयनेन। गोभिलः। "यदहरुपैष्यन् माणवको भवति प्रागेवैनं तदहर्भोजयन्ति कुशलीकारयन्त्याप्लावयन्त्यलंकुर्वन्त्याहतेन वाससा समाच्छादयन्ति"। यदहर्यस्मिन्नहनि उपैष्यन् उपनयनं कारयिष्यन् माणवक उद्यतो भवति। माणवकोऽनधीतवेदः। "अनृचो माणवको ज्ञेय एनःकृष्णमृगः स्मृतः। रुरुगौरमृगः प्रोक्तः सृमरः शल उच्यते"। प्राक् प्रातः। तच्च "चतस्रो घटिका प्रातररुणोदय उच्यते" इति ब्रह्मवैवर्त्तोक्तम्। अत्र घटिका दण्डः। "त्रियामां रजनीं प्राहुस्त्यक्त्वा-

द्यन्तचतुष्टयम् । नाडीनां तदुभे सन्ध्ये दिवसाद्यन्तसंज्ञिते" । इति तत्रैवोक्तेः । भोजयन्ति क्षीरादिकमिति शेषः तथा च ब्रह्मचारिकाण्डे कल्पतरुधृतशङ्खलिखितौ । "पयो यवाग्वामिक्षाहाराः क्रमशो द्विजातीनाम्" । कुशलीकारयन्ति मुण्डयन्ति आप्लावयन्ति स्नपयन्ति आहतेना सूदितेन वाससा वक्ष्यमाणेनाच्छादयन्ति परिधापयन्ति । अत्रैकवचनादधरीयमेतत् । उत्तरीयन्तु उपरिष्टादजिनं वक्ष्यते । "क्षौमं शाणं वा ब्राह्मणस्य कार्पासं क्षत्रियस्य आविकं वैश्यस्य" । क्षुमा अतसी तस्या इदं क्षौमं मसरादि । शाणं शणतन्तुभवं तदुभयं ब्राह्मणस्य । गोभिलः । "ऐणेयरौरवाजानि अजिनानि" । एनः कृष्णमृगः रुरुर्गौरमृगः अजः छागः यथाक्रमं द्विजानामेतान्यजिनानि । गोभिलः । "मुञ्जकाशतासून्यो रसनाः" । मुञ्जः शरः तासूनः शणस्तज्जा रसना मेखला तासूनी । तथा च मनुः । "मौञ्जी त्रिवृत्समा श्लक्ष्णा कार्य्या विप्रस्य मेखला । क्षत्रियस्य च मौर्वीज्या वैश्यस्य शणतान्तवी । मुञ्जालाभे तु कर्त्तव्या कुशाश्मान्तकवल्वजैः । त्रिवृताग्रन्थिनैकेन त्रिभिः पञ्चभिरेव वा" । गोभिलः । "पार्णवैल्वाश्वत्थदण्डाः" । पार्णः पालाशः । मनुः । "ब्राह्मणो वैल्वपालाशौ क्षत्रियो वाटखादिरौ । वैणवोडुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्म्मतः" । गृह्ये पार्णमात्रस्य ब्राह्मणे विधानात् प्रतिगृह्येप्सितं दण्डमिति मनुवचनान्तरे एकवचनश्रुतेश्चैकदण्डधारणं न तु द्वन्द्व निर्देशाद्दण्डद्वयधारणम् । मनुः "केशान्तिको ब्राह्मणस्य दण्डः कार्य्यः प्रमाणतः । ललाटसम्मितो राज्ञः स्यात्तु नासान्तिको विशः । ऋजवस्ते तु सर्वे स्युरव्रणाः सौम्यदर्शनाः । अनुद्वेगकरा नॄणां सत्वचो नाग्निदूषिताः" । अलाभे वा सर्वाणि सर्वेषाम् । स्वस्य स्वस्यालाभे सर्वाणि

क्षौमादीनि सर्वेषां ब्राह्मणादीनाम्। गोभिलः। "पुरस्ताच्छालाया उपलिप्तेऽग्निरुपसमाहितो भवति। स्पष्टार्थमेतत्। गोभिलः। "अग्ने व्रतपते इति हुत्वा पश्चादग्नेरुदगग्रेषु दर्भेषु प्रागाचार्य्योऽवतिष्ठते। व्याहृतिभिराहुति चतुष्टये हुते अग्ने व्रतपते" इति पञ्चाहुतीर्हुत्वा आचार्य्यः पश्चादुदग्रेषु कुशेषु प्राङ्मुख ऊर्द्ध्वस्तिष्ठेत्। अत्र हुत्वाचार्य्य इत्येककर्तृकत्वादेष एव हुत्वातिष्ठेत्। होमकरणत्वान्मन्त्राणां होमकर्त्तुराचार्य्यस्य मन्त्रपाठो न माणवकस्य। यत्र च ब्रह्मचारिणामुच्चारणं तत्र ब्रह्मचर्य्यमागामिति वाचयतीति वचनादग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामीति मन्त्रलिङ्गेषु ऋत्विक्स्थानीयत्वान्माणवकस्य मन्त्रैरग्न्यादिप्रार्थना ब्रह्मचर्य्यं नाचार्य्यस्य। तथा च। "यां वै काञ्चन ऋत्विज आशिषमाशासते सा यजमानस्यैव" इति श्रुतेः। तत्र ऋत्विक् यजमानपदयोराचार्य्यमाणवकपरत्वे प्रमाणाभावात्। अतएव भट्टभाष्यम्। होमेन सहाचार्य्यसम्बन्धः कुतो हुत्वाचार्य्योऽवतिष्ठते इति क्त्वा प्रत्यययोगात् मन्त्रन्तु माणवको जपेत् कुतो मन्त्रलिङ्गात्। व्रतञ्चरिष्यामीत्याद्युत्तमपुरुषप्रयोगोऽन्यथानुपपद्यते। गोभिलः। "अन्तरेणाग्न्याचार्य्यौमाणवकोऽञ्जलिकृतोऽभिमुख आचार्य्य उदगग्रेषु दर्भेषु अग्न्याचार्य्ययोर्मध्ये आचार्य्याभिमुखः सन्नवतिष्ठते इति योज्यम्। तस्य दक्षिणतोऽवस्थाय मन्त्रवान् ब्राह्मणोऽपामञ्जलिं पूरयति उपरिष्टादाचार्य्यस्य तस्य माणवकस्य दक्षिणस्यां दिश्यवस्थितो ब्राह्मणोऽधीतवेदः सलिलाञ्जलिं माणवकस्य पूरयित्वा उपरिष्टात् पश्चादाचार्य्यस्याञ्जलिम्। गोभिलः। "प्रेक्षमाणो जपत्यागन्त्रा समगन्महीति"। कं प्रेक्षमाणः कोजपति। माणवकं प्रेक्षमाण आचार्य्य आगन्त्रा समगन्महीति मन्त्रं जपति। स्वस्तिसञ्चरतादयमिति मन्त्र-

लिङ्गात्। गोभिलः। "आचार्य्यो ब्रह्मचर्य्यमागामिति वाचयति"। आचार्य्योमाणवकं पाठयतीत्यर्थः। कोनामासीति नामधेयं पृच्छति तस्याचार्य्योऽभिवादनीयम्। नामधेयं कल्पयित्वा देवताश्रयं नक्षत्राश्रयं गोत्राश्रयं वा इत्येके। अभिवादनीयम् अभिवादननिमित्तं नाम कल्पयित्वा तदानीमिवाचार्य्यः कोनामासीति पृच्छेत्। तच्च देवताश्रयं कृष्णादिनक्षत्राश्रयं शतपदचक्रोक्तजन्मकालीननक्षत्रपादात् ज्ञेयम्। गोत्राश्रयं शाण्डिल्यादि। गोभिलः। "उत्सृज्यापामञ्जलिमाचार्य्यो दक्षिणेन पाणिना दक्षिणं साङ्गुष्ठं गृह्णाति। देवस्य ते सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्वाहुभ्यां पुष्णो हस्ताभ्यांऽस्तं गृह्णाम्यसौ" इति जलाञ्जलिं त्यक्त्वा गुरुर्दक्षिणेन ब्रह्मचारिदक्षिणपाणिमङ्गुष्ठेन सह गृह्णाति देवस्य इति मन्त्रेण। असाविति सम्बोधनविभक्त्या माणवकस्य नाम गृह्णीयात् इदानीं गृहीतमाणवकहस्तस्याचार्य्यस्याग्निस्ते हस्तमग्रहीदिति मन्त्रपाठे प्रमाणं गोभिले नास्ति अन्यत्र वोध्यम्। गोभिलः। "अथैनं प्रदक्षिणमावर्त्तयति सूर्य्यस्यावृतमन्वावर्त्तं वासाविति। तद्देशस्थमेवैनं प्रत्यङ्मुखं सन्तं प्रादक्षिण्येन प्राङ्मुखं करोति सूर्य्यस्येति मन्त्रेण। अत्राप्यसावित्यत्र सम्बोधनान्तनामग्रहः। दक्षिणेन पाणिना दक्षिणमंसमवस्पृश्य अनन्तर्हितं नाभिदेशमभिस्पृशेत् प्राणानां ग्रन्थिरसीति प्रदक्षिणावर्त्ते माणवके प्राङ्मुखावस्थिते आचार्य्योऽस्य दक्षिणमंसं स्पृष्ट्वा अव्यवहितां नाभिं प्राणानामिति मन्त्रेण स्पृशेत्। अत्राप्यमुमिति पदस्थाने द्वितीयान्तं नाम प्रयोज्यम्। गोभिलः। "उत्सृप्य नाभिदेशमभुत्र"। इति जपेदिति वाक्यशेषः। उत्सृप्य करं सर्पतेर्गत्यर्थत्वात् ऊर्द्ध्वं करमुत्सृप्य ऊर्द्ध्वं नीत्वा नाभिदेशं समीपार्था द्वितीया नाभिदेशसमीप एव उदरे करमवस्थाप्या-

भुव इति जपेत्। कुतो मन्त्रलिङ्गात् अभुवशब्देन जठरोऽग्निरुच्यते। तस्मान्नाभेरुत्सृप्य करं नाभिदेशसमीप एव उदरं जठराग्निस्थानमालभ्य भुव इति जपेत्। इति भट्टभाष्यदर्शनात् वायुदेवता इति भवदेवगुणविष्णूक्तं निरस्तम् अइवविभक्तिव्युत्पत्त्या अभुव इति समाख्या। अत्राप्यमुमिति पदस्थाने द्वितीयान्तं नाम प्रयोज्यम् उत्सृप्य हृदयदेशं कृशन् इति। जठरादुत्सृप्य ऊर्द्धं नीत्वा करं हृदयमालभ्य कृशन् इति जपेत्। कृशनशब्देन हृदय एव पुरुषोयत उच्यते अतो हृदयदेशमालभ्य जपतीति तदधिष्ठातृत्वात् पुरुषस्य। तथा च श्रुतिः। "स एवैष आस्वादयतीति"। अत्राप्यमुमिति पदस्थाने द्वितीयान्तं नाम प्रयोज्यम्। दक्षिणेन पाणिना दक्षिणमंशमालभ्य प्रजापतये त्वा परिददाम्यसाविति। अंशं माणवकस्येति शेषः। आलभ्य स्पृष्ट्वा प्रजापयेत्वेति जपेत्। असाविति स्थाने सम्बोधनान्तनामग्रहणम्। गोभिलः। "सव्येन सव्यं देवाय त्वा सवित्रे परिददाम्यसाविति वामेन पाणिना ब्रह्मचारिणः सव्यमंशं स्पृष्ट्वा देवायत्वेति जपेत्। अत्रासाविति स्थाने सम्बोधनान्तं नाम प्रयोज्यम्। गोभिलः। "अथैनं संप्रेषयति ब्रह्मचार्य्यसाविति"। समिधमाधेहि आपोशानं कर्म्म कुरु मा दिवास्वाप्सीरित्यपि सर्वत्र ओम्वाढमिति च ब्रूयात्। "यदुद्यति अस्तमिते समिधमादधाति तदिदमादिश्यते यच्च सायं प्रातः समिधमाधेहि" इति श्रुतावुक्तं तस्मादत्र तदवशिष्यते पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्चाद्भिः परिदधाति इति तदिदमादिश्यते सायं प्रातर्भोजनयोरपि पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च पृथङ्मन्त्राभ्यामापोशानं हे ब्रह्मचारिन्निति। मन्त्रौ तु शाख्यन्तरादुपादेयौ। अमृतोपस्तरणमसि स्वाहेति पुरस्तात् अमृतापिधानमसि स्वाहेति उपरिष्टात् इति यदाद्विहितं कर्म

तत्तत् कुरु मा दिवास्वाप्सीः दिवा स्वप्नमाकार्षीरित्यर्थः । माणवकः सर्व्वेष्वेव प्रैषेषु वाढ़मोमिति वा प्रतिवचनं दद्यात् । तथा च छन्दोगपरिशिष्टम् । "ब्रह्मचारिसमादिष्टो गुरुणा व्रतकर्म्मणि । वाढ़मोमिति वा ब्रूयात् तत्तथैवानुपालयन्" ॥ गोभिलः । "उदगग्नेरुत्सृत्य प्रागाचार्य्य उपविशति उदगग्रेषु दर्भेषु" स्पष्टार्थमेतत् । प्रत्यङ्माणवको दक्षिणजान्वक्तोऽभिमुखमाचार्य्यमुदगग्रेषु दर्भेषु प्रत्यङ्मुखो माणवको दक्षिणजानु अक्तं तं भूमौ यस्य स आचार्य्याभिमुखं यथा स्यात्तथा उपविशति इति पूर्व्वेणान्वयः । उत्तरत एवाग्नेः अथैनं त्रिःप्रदक्षिणं मुञ्जमेखलां परिहरन् वाचयति । इयं दुरुक्तं परिवाधमाना ऋतस्य गोप्त्रीति च । अथ तथैवोपविष्टं माणवकम् इयं दुरुक्तं परिवाधमाना इति ऋतस्य गोप्त्रीति च मन्त्रद्वयं कटिदेशस्य मौञ्जमेखलां वारत्रयं परिधापयन् वाचयति । अत्र परिधानस्यावृत्तावपि सत्यां सकृदेव मन्त्रपाठः । एकद्रव्ये कर्म्मावृत्तौ सकृदेव मन्त्रवाचनं कृत्वेति वचनात् । मुञ्जालाभे कुशेनेति प्रागुक्तं गृह्यानुक्तमपि । यज्ञोपवीतमस्मिन्नेव समये परिधापयेत् । मेखलानन्तरं कार्पासमुत्तरीयं स्यात् विप्रस्योर्द्ध्ववृत त्रिवृदिति मनूक्तेः । पवित्रं चास्मै प्रयच्छतीति जातूकर्णात् । यज्ञोपवीतिनं कुर्य्यादिति सांख्यायनाच्च । "मेखलामजिनं दण्डमुपवीतं कमण्डलुम् । अप्सु प्रास्य विनष्टानि निगृह्णीतान्यानि मन्त्रवत्" ॥ इति मनुवचनेन नोपवीताजिनयोरपि धारणे समन्त्रत्वावधारणादिगृह्ये तदनुपदेशात् शाखान्तरादुपाददद्यात् । यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वोपवीतेनोपनेष्यामि इति भट्टभाष्यम् । अस्मिन्नेवावसरे अजिनमुत्तरीयमित्यापस्तम्बः । अजिनञ्च कृष्णसारचर्म्म प्रागुक्तत्वात् । अजिनग्रहणमन्त्रस्तु ओम् मित्रस्य चक्षु-

वैरणं बलीयस्तेजो यथास्य स्थविरं सन्नद्धमनाहतस्य वसनं जविष्णूपवीतं वाप्यजिनं दधेयमिति तैत्तिरीयशाखापठितो द्रष्टव्य इति भट्टभाष्यम्। एवञ्च दण्डाजिनोपवीतानि मेखलाश्चैव धारयेत् इति याज्ञवल्क्यवचनं द्रव्यधारणविधायकम्। एतदनन्तरमाचमनं कुर्य्यात्। यज्ञोपवीतिना आचान्तोदकेन कृत्यमिति गोभिलसूत्रात् आचामेदित्यनुवृत्तौ "शिखां बद्धा वसित्वा द्वे निर्णिक्ते वाससी शुभे। तूष्णीम्भूत्वा समादाय नो गच्छन्न विलोकयन्" ॥ इति देवलवचनाच्च। हरिशर्माऽप्येवम्। गोभिलः। अथोपसीदत्यधीहिभोः सावित्रीं मे भवाननुब्रवीत्विति"। अनन्तरं तथैवोपदिष्टो माणवक उपसीदति कृताञ्जलिपुट आचार्य्ये गतचक्षुरुपसन्नो भवति। अधीहि भोरित्यादि मन्त्रेण अधीहि अध्यापय सावित्रीं सवितृदेवताकां गायत्रीम्। भोरित्याचार्य्यं सम्बोधनम्। भट्टभाष्येऽप्येवम्। तस्मा अन्वाह पच्छः अर्द्धर्चशः ऋक्शः इति। तस्मै माणवकाय अन्वाह अनुब्रूयात् पूर्वं तावत् पच्छः पादशः ततोऽर्द्धर्चशः तत ऋक्शः। ऋक्श इत्यत्र सर्वामिति पाठः सरलायाम्। महाव्याहृतीश्च विहृताः ओङ्कारान्ताः विहृताः पृथक्कृताः ओङ्कारान्ता इत्यत्र भूरोमिति भट्टभाष्यम्। भूरिति भवदेवभट्टः। उभयमतग्राही वीरेश्वरस्तु ओम्भूरोमिति अन्ता अवसानभूताः। वार्क्षमस्मै दण्डं प्रयच्छन् वाचयति सुश्रव सुश्रुवसं माकुर्विति वार्क्षं पलाशादिभवं दण्डं माणवकाय ददत् सुश्रवेति पाठयति। अथ भैक्ष्यञ्चरति। अथ शब्दस्तूष्णीमादित्योपस्थानमग्निप्रदक्षिणञ्च शंसति। "प्रतिगृह्येप्सितं दण्डमुपस्थापय भास्करम्। प्रदक्षिणं परीत्याग्निं चरेद्भैक्ष्यं यथाविधि" ॥ इति मनुवचनात्। भिक्षासमूहं भैक्ष्यं तच्चरति आवर्त्तति इत्यर्थः। मातरमेवाग्रे

ये चान्ये सुहृदो यावत्यो वा सन्निहिताः स्युः। याचेत इत्यध्याहार्य्यम्। सुहृदे स्निग्धहृदये स्वस्रादौ तथा च मनुः "मातरं वा स्वसारं वा मातुर्वा भगिनीं निजाम्। भिक्षेत भिक्षां प्रथमां याचैनं नावमानयेत्"॥ सन्निहितास्तद्गृहस्थाः न तु प्रतिगृहं गत्वा। भवति भिक्षां देहीति ब्राह्मणभिक्षाप्रयोगः। तथा च मनुः। "भवत् पूर्वं चरेत् भैक्ष्यमुपवीतो द्विजोत्तमः। भवन्मध्यन्तु राजन्यो वैश्यस्तु भवदुत्तरम्॥ आदिमध्यावसानेषु भवच्छब्दोपलक्षिता। ब्राह्मणक्षत्रियविशां भैक्ष्यचर्य्या यथाक्रमम्"॥ इति याज्ञवल्क्यवचनाच्च। आचार्य्याय भैक्ष्यं प्रणिवेदयतो वेदयति समर्पयति भोरिति। आचार्य्याय निवेद्य प्रति गृह्णीयादिति गृह्यान्तरवचनात्। भैक्ष्यं भोरिति निवेदनमन्त्रः। भैक्ष्यस्य संस्कारार्थत्वात् आचार्य्याय निवेद्य स्वयं तदेव भुञ्जीत। तथा च मनुः "समाहृत्याथ तद्भैक्ष्यं यावदन्नममायया। निवेद्य गुरवेऽश्नीयात् आचार्य्यः प्राङ्मुखः शुचिः"॥ आचार्य्यश्च माणवकाय भैक्ष्यं प्रदाय कर्मशेषं समापयेत् इति तच्च सावित्र्या चरुहोमादिवक्ष्यमाणतत्तद्ग्रन्थात् तिष्ठत्यहः शेषं वाग्यतः। माणवकोऽहः शेषं संयतवागास्ते। अस्तमिते समिधमादधाति अग्नये समिधमहार्षमिति। अस्तं गते सूर्य्ये समिधं प्रादेशमात्रमग्नये समिधमहार्षमित्यनेनादधाति इयमेवातः प्रधानाहुतिः। ततश्चास्याः पुरस्तादुपरिष्टाच्च समिद्भवतीति। उक्तञ्च। "समिधादिषु होमेषु मन्त्रदैवतवर्जिता। पुरस्ताच्चोपरिष्टाच्च इन्धनार्थं समिद्भवेत्"। समिद्धोमश्च सायं प्रातः कर्त्तव्यः तथा च मनुः। "दूरादाहृत्य समिधः सन्निदध्याद्विहायसि। साय प्रातश्च जुहुयादाहिताग्निरतन्द्रितः॥ समिदाधानानन्तरञ्चाग्निमभिवादयेत्। तथा च गृह्यान्तरम्। उभयत्राग्निं समिध्य

गोत्रनामनी प्रोच्याभिवाद्याचार्य्यमभिवादयेत्। उभयत्र सायं प्रातः। अभिवाद्याग्निमित्यन्वयः। त्रिरात्रमक्षारलवणाशी भवति। स्पष्टार्थम्। तस्यान्ते सावित्रचरुः। तस्य उपनयनरूपव्रतस्य न तु सन्निधानात्त्रिरात्रस्य अव्यक्तशब्दस्य प्रधानेन सह सम्बन्धदर्शनात्। अन्यथा तस्यान्त इत्यवचनीयं स्यात्। अस्यान्त इति वक्तुं युक्तम्। भट्टभाष्येऽप्येवम्। ततश्चतुर्थेऽहनि सावित्रचरुरिति भवदेवभट्टोक्तं चतुर्थेऽह्नि सावित्रचरुः कार्य्य इति सरलोक्तञ्च ज्ञेयम्। सवितास्य देवता इति सावित्रः यथार्थं गौर्दक्षिणा। यथार्थम् उदीच्यं महाव्याहृत्यादि कर्म। इयं दक्षिणा उपनयनकर्मणः न तु सावित्रचरोः प्रधानस्य उपनयनकर्म्मणो दक्षिणान्तरानभिधानात्। अतएव उपनयनान्तरमाचार्य्याय वरो दक्षिणा इति गृह्यान्तरमिति सरला। वरो गौः। तथा चोक्तम्। "गौर्विशिष्टतमा लोके वेदेष्वपि निगद्यते। न ततोऽन्यद्वरो यस्मात्तस्माद्गौर्वर उच्यते"॥ इदानीमुपनयनातिरिक्तव्रताचरणादन्यद्व्रतादि न लिखितम्। भवदेवभट्टेनापि न लिखितम्। गोभिलः। "सर्वत्राचार्षं तदशकं तेनारात् सत्यमुपागामिति" विशेषः। सर्वत्र सर्वेषां व्रतानामन्ते अयं मन्त्रे विशेषः। यत्र चरिष्यामि तत्राचार्षमिति। यत्र तच्छकेयमित्यत्र तदशकमिति। यत्र तेनर्ध्यासमिधामि तत्र तेनारात् समिधमिति यत्र उपैमीति तत्र उपागामिति। कर्म्मक्रमस्तु। उपनयनव्रतान्ते सावित्रचरुहोमः। ततः स्विष्टकृद्धोमः। प्राक्स्विष्टकृदावाप इति सूत्रात्। ततोऽग्ने व्रतपते व्रतमचार्षं तत्ते प्रब्रवीमि तदशकं तेनारात् समिधमहमनृतात् सत्यमुपागां स्वाहेत्येवमुक्त्वा होमकर्मसमाप्तौ दक्षिणा गोदानमिति भट्टभाष्यम्। एतेन ब्रह्मचारिणां जपमात्रं न होमो वचनाभावात्। स्वाहान्तानामपि

होमदैवत इत्यादीनां होमदर्शनमिति सरलोक्तं हेयम्। अग्ने व्रतपते इति हुत्वा पश्चादुदगग्रेषु गर्भेषु प्रागाचार्य्योऽवतिष्ठते इति प्रागुक्तसूत्रे अग्ने व्रतपते इत्यादिमन्त्रस्तु चरिष्यामीत्यादिपदस्थाने अचार्षमित्यादिपदोहभावोक्तेन होमादेः प्राप्तेः। तन्मतेऽप्यचार्षमित्यस्य ब्रह्मचारिपाठवत् पूर्वत्रापि चरिष्यामीति मन्त्रलिङ्गसार्थकत्वाय ब्रह्मचारिपाठो युक्तः। एवञ्चाग्ने व्रतपते व्रतमचार्षमित्यादिहोमः समावर्त्तनमध्ये भवदेवभट्टोक्तो न युक्तः। व्रतञ्चरिष्यामीत्यारम्भवत् व्रतमचार्षमित्यस्यापि व्रतसमापकत्वे तस्यैवान्तताया एव युक्तत्वात्।

अथ समावर्त्तनम्। ज्योतिषे। "भौमभानुजयोर्वारे नक्षत्रे च व्रतोदिते। ताराचन्द्रविशुद्धौ च समावर्त्तनमिष्यते"॥ गोभिलः। "अथाप्लवनम्"। अथ व्रतानन्तरमाप्लवनं स्नानं कुर्य्यादिति शेषः। उत्तरतः पुरस्ताद्वाचार्य्यकुलस्य परिव्रतं भवति। आचार्य्यगृहादुत्तरस्यां पूर्वस्यां वा स्नानार्थमावृतं स्नानं कुर्य्यात्। तत्र प्रागग्रेषु दर्भेषु उदगाचार्य्य उपविशति तत्रावृते उदक् उदङ्मुखः प्राक् ब्रह्मचार्य्युदगग्रेषु दर्भेषु। प्राक् प्राङ्मुख उपविशतीत्यन्वयः। सर्वौषधिविफाण्डाभिरद्भिर्गन्धवतीभिः शीतोष्णाभिराचार्य्योऽभिषिञ्चेत्। सर्वौषधयश्च "व्रीहयः शालयो मुद्गा गोधूमाः सर्षपास्तिलाः। यवाश्चौषधयः सप्त विपदोघ्नन्ति धारिताः"॥ इति छन्दोगपरिशिष्टोक्तास्ताभिः सह या आपो विफाण्डा विपक्वा उष्णीकृतास्ताः सर्वौषधिविफाण्डास्ताभिर्गन्धवतीभिश्चन्दनादिगन्धद्रव्ययुक्ताभिः शीतोष्णाभिः शीतोदकमिश्रिताभिरिति भट्टभाष्यम्। स्वयमिव तु मन्त्रवर्णो भवति। इव शब्द एवार्थे। स्वयमेव ब्रह्मचारी आत्मानमभिषिञ्चेत् आचार्य्यकर्त्तृकाभिषेकस्तु परमतो यतो मन्त्रवर्णा भवन्ति। मन्त्रवर्णोऽभिषेकमन्त्रलिङ्गं तच्च तेनाह-

मामभिषिञ्चामि इति तेन मामभिषिञ्चितमिति च। तद्विधिमाह येऽप्स्वन्तरग्नयः प्रविष्टा इत्यपामञ्जलिमवसिञ्चति। येऽप्स्वन्तरग्नय इति मन्त्रेण कासामपामञ्जलिं ब्रह्मचारी अवसिञ्चति। क्व भूमौ कुतः अवसिञ्चति वचनात्। तन्मन्त्रस्याभितान् सृजामीति यदपामिति मन्त्रस्याभितान् सृजामीति मन्त्रलिङ्गद्वयाच्च सर्वाधारत्वेन प्राप्तायां भूमौ त्यजति। यदपां घोरं यदपां क्रूरं यदपामशान्तमिति च। अपामञ्जलिमवसिञ्चतीति वर्त्तते चकारात्। यो रोचनस्तमिह गृह्णामीत्यात्मानमभिषिञ्चति। प्रकृतानामपामञ्जलिना यो रोचन इति मन्त्रेण ब्रह्मचारी आत्मानमभिषिञ्चति। ओम् यशसे तेजसे इति च। आत्मानमभिषिञ्चतीति वर्त्तते। तूष्णीं चतुर्थम्। आत्मानमभिषिञ्चतीति वर्त्तते। अभिषेकः शिरसि कर्त्तव्यः शिरः प्रधानमङ्गानामिति वचनात्। उपोत्थायादित्यमुपतिष्ठेत उद्यन् भ्राजभृष्टिभिरित्येतत् प्रभृतिमन्त्रेण। आचार्य्यसमीपादुत्थाय उद्यन्नित्येतत् प्रभृतिमन्त्रेण मा हिंसीरित्यन्तमन्त्रेणादित्यमुपतिष्ठेत उपान्मन्त्रेण चेत्यात्मनेपदम्। मेखलामवमुञ्चते उदुत्तमं वरुणमिति अवमुञ्चते अधस्तादवतारयति अवशब्दोऽधस्तादर्थे। ब्राह्मणान् भोजयित्वा स्वयं भुक्त्वा केशश्मश्रु रोमनखानि वापयीत शिखावर्जम्। भोजयित्वा स्वयं भुक्त्वा नापितेन मुण्डयीत। अत्र शिखावर्जमिति वचनात् प्राक् सशिखं वपनमिति दर्शयति। उक्तञ्च। सशिखं वपनं कार्य्यमास्नानात् ब्रह्मचारिणामिति। स्नात्वालङ्कृत्याहते वाससी परिधाय स्रजमावध्नीत श्रीरसि मयि रमस्वेति। अलङ्कृत्य कुण्डलादिनात्मानं योजयित्वा आहते। "ईषद्धौतं नवं शुभ्रं सदशं यन्न धारितम्। आहतं तद्विजानीयात् सर्वकर्मसु पावनम्"॥ इति वशिष्ठोक्तलक्षणे ईषत् सूक्ष्मम्।

न धारितं न परिधानादिकृतम्। स्रजं ग्रथितपुष्पं अबध्नीत शिरसीति शेषः। श्रीरसीति मन्त्रेण नेत्रीस्थे नियतं मामित्युपानहौ। अबध्नीतेत्यनुवर्त्तते। उपानहौ चर्मपादुके योग्यत्वात् पादयोः गन्धर्वोऽसीति मन्त्रेण वैणवं दण्डं गृह्णाति वैणवं वंशप्रभवं गन्धर्वोऽसीति मन्त्रेण। आचार्य्यं सपरिषत्कमभ्येत्याचार्य्यपरिषदमीक्षतो यक्षमिव चक्षुषः प्रियो वोभूयासमिति। सपरिषत्कं शिष्यादिसभासहितम् अभ्येत्याभिमुख्येन गत्वाचार्य्यं परिषदञ्चेक्षते यक्षमिति मन्त्रेण। उपोपविश्य मुख्यान् प्राणान् संस्पृशन् ओष्ठापिधानानकुलीति उपाचार्य्यसमीपे मुख्यान् प्राणान् मुखप्रभवान् वायून् संस्पृशन् स्नातकः। ओष्ठापिधानमिति मन्त्रं जपेत्। अत्रैनमाचार्य्योऽर्हयेत् अत्रावसरे एवं स्नातकं विवाहोक्तवरार्हणविधिनाऽर्चयेत्। तदशक्तौ गन्धपुष्पाभ्याम्। गोयुक्तं रथमुपक्रम्य पक्षसीकूवरवाकूराभिमृषेत्। वनस्पतिविड्वाङ्गो हि भूया इति। पक्षसौ चक्रे। कूवरं रथिकस्थानं वाकूरं रथरखेत्यर्थः। वनस्पतीति मन्त्रेणाभिमृषेत्। स्पृशेत्। आस्था ते जयतु जेत्वानीत्यातिष्ठति। रथमारुह्य आस्था ते जयतु जेत्वानीति वनस्पते इत्यादि मन्त्रस्य चतुर्थपादेनातिष्ठति उपविशति प्राग्वा उदग्वाभिप्रयाय प्रदक्षिणमावृत्य उपयाति। तेन रथेन प्राङ्मुखो वा प्रयाय प्रकर्षेण गत्वा उपयाति आचार्य्यसमीपमागच्छति। उपयातायार्घ्यमिति कौहलीयाः। उपयातायाचार्य्यसमीपमागतायार्घ्यं देयमिति कौहलीया आचार्य्या आहुः। रथाभावेऽपि मन्त्रपाठाचारः चरुकरणे तण्डुलादाववघातादिवत्। अस्य कर्म्मणः समावर्त्तनसंज्ञापि। "गुरुणानुमतः स्नात्वा समावर्त्तो यथाविधि। उद्वहेत द्विजो भार्य्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्" इति मनूक्तेः। स्पष्टं शौनककारिकायाम्। "कुर्वीत द्वयमेवैत समावर्त्तन सञ्ज्ञकम्"।

अथ नवगृहप्रवेशकर्म। ज्योतिषि। "ज्येष्ठापुनर्वसु युतं गृहारम्भोदितञ्च यत्। तत् सर्वं योजयेद्वेश्मप्रवेशे दैवचिन्तकः"। गृहारम्भे मत्स्यपुराणम्। "चन्द्रादित्यबलं लब्ध्वा लग्नं शुभनिरीक्षितम्। स्तम्भोच्छ्रायादिकर्त्तव्यमन्यत्र परिवर्जयेत्। अश्विनीरोहिणीमूलमुत्तरात्रयमैन्दवम्। स्वातीहस्तानुराधा च गृहारम्भे प्रशस्यते। वज्रव्याघातशूले च व्यतीपातातिगण्डयोः। विष्कुम्भगण्ड परिघवर्जं योगेषु कारयेत्। आदित्यभौमवर्जन्तु सर्वे वाराः शुभावहाः"। राजमार्त्तण्डः। "आदित्येज्यभरोहिणीमृगशिरश्चित्राधनिष्ठोत्तरा। पौष्णं विष्णुगतानुराधपवनैः शुक्रैः सुतारान्वितैः। सौम्यानां दिवसेऽथ पापरहिते योगे विरिक्ते तिथौ। विष्टित्यक्तदिने वदन्ति मुनयो वेश्मादिकार्य्यं शुभम्"। ज्योतिषि। "उग्रं विशाखामदितिञ्च शक्रं भुजङ्गमग्निञ्च विहाय गेहम्। शाम्यस्थलग्नस्थिरमन्दिरेषु कुर्य्याच्छुभैर्युक्तनिरीक्षितेषु। कृत्वाग्रतो द्विजवरानथ पूर्णकुम्भं दध्यक्षताम्रफलपुष्पदलोपशोभम्। दत्त्वा हिरण्यवसनानि तथा द्विजेभ्यो मङ्गल्यशान्तिनिलयं निलयं विशेच्च"। विष्णुधर्मोत्तरे। "गोपुच्छविन्यस्तकरः प्रविशेच्च गृहं गृही। अनुलिप्तः सुखी स्रग्वी सपत्नीकस्तथैव च"। गोभिलः। "मध्येऽग्निमुपसमाधाय कृष्णेन गवा यजेताजेन वा श्वेतेन सपायसानां पायसेन वा। गव्ये गृहस्य उपसमाधाय कुशण्डिकोक्तविधिनाग्निं स्थापयित्वा। पायसेन वा केवलेन रसमाज्यं मांसं पायसमिति संयूयाष्टगृहीतं गृहीत्वा जुहुयात्। वास्तोस्पते इति प्रथमा वामदेव्यर्चा महाव्याहृतयः प्रजापतये इत्युत्तरीया रसं घृतं मांसं संयूय मिश्रयित्वा केवलपायसं वा अष्टगृहीतं केवलमेक्षणेनाष्टवारान् गृहीत्वा वास्तोस्पते प्रतिजानीति मन्त्रेण प्रथमाहुतिः।

वामदेव्यर्षिस्तिस्रस्ताभिस्तिस्रः महाव्याहृतिभिस्तिस्रस्ताभिस्तिस्रः महाव्याहृतिभिस्तिस्रः प्रजापतये इत्येका प्रथमोत्तमीया इति आहुतिभेदार्थम्। तत्र शब्दोऽप्यत्र देवताहोममन्त्रेभ्यो ज्ञेयाः। यावत्यस्तास्तावतीर्व्रीहिश्च निर्वापः ताश्च आज्यस्य वास्तोष्पतिः। वामदेव्यर्षिरिन्द्रः महाव्याहृतीनामग्निवायुसूर्य्याव्याहृतीनाञ्च सर्वेषामार्षश्चैव प्रजापतिः। "अग्निर्वायुस्तथासूर्य्यो बृहस्पतिरपांपतिः। इन्द्रश्च विश्वेदेवाश्च देवताः समुदाहृताः" इति संवर्त्तवचनात्। एतेन महाव्याहृतीनां पृथिव्यादि वाचकत्वात्। पृथिव्याद्यादेवता इति भूस्त्वाभुवस्त्वास्वस्त्वा इति च सरलादर्शनात् भवदेवभट्टेनापि यत् भूस्त्वाजुष्टमित्यादि लिखितं तद्धेयम्। तस्यैव स्थानान्तरे महाव्याहृतिहोमलिखने अग्न्यादीनां देवतात्वमिति लिखनात् प्रजापतिरुक्त एव। सूत्रे केवल पायसपक्षे च ओम् वास्तोष्पतये त्वाजुष्टं निर्वपामीति ग्रौष्मादिकमादाय एवमिन्द्राय इति त्रिभिः। अग्नये वायवे सूर्य्याय प्रजापतये इत्यष्टौ निर्वापाः। ततः। सिद्धचरौ घृतस्रुवौ दत्त्वा मेक्षणेनाष्टौ प्रधानहोमाः। शेषं स्थालीपाकाद्धृताहुत्वा वलीन् हरेत्। प्रदक्षिणं प्रतिदिशमवान्तरदेशेष्वानुपूर्व्वेण व्यतिहरन्। हुत्वेति क्रमप्राप्तेऽप्यानन्तर्य्यार्थम्। तेन प्रधानाहुतीर्हुत्वा स्विष्टकृद्धुत्वैव वलीन् हरेत् हुतशेषेणैव तदभावे पायसेन प्रतिदिशं सर्वासु दिक्षु क्रमेणाव्यवधानं कुर्वन्। यदि मुख्यचतुर्दिक्षु दत्त्वा विदिक्षु दीयते तदा व्यवधानता स्यात्। इन्द्रायेति पुरस्तात् वायवे इत्यवान्तरदेशे यमायेति दक्षिणतः पितृभ्य इत्यवान्तरदेशे वरुणायेति पश्चात् महाराजायेत्यवान्तरदेशे सोमायेत्युत्तरतः महेन्द्रायेत्यवान्तरदेशे वासुकये इत्यधस्तात् ऊर्द्ध्वं नमो ब्रह्मणे इति दिवि वलीन् हरेदिति पूर्व्वसूत्रेणान्वयः।

अन्यत् सुगमम्। नमस्कारेण बलीन् दद्यात् स च मन्त्रान्ते प्रयोज्यः पितृभ्य इत्यत्र षष्ठीं कुर्य्यात् "अमुष्मै नम इत्येवं बलिदानं विधीयते। बलिदानप्रदानार्थं नमस्कारः कृतो यतः। स्वधाकारः पितॄणान्तु हन्तकारो नृणां यतः। स्वधाकारेण निनयेत् पित्र्यं बलिमतः सदा"। इति छन्दोगपरिशिष्टात्। अधस्तान्नीचप्रदेशे। दिवि आकाशे। "विश्वेभ्यश्चैव देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत्"। क्रमस्तु अग्निस्थापनादि प्रधानहोमान्तं कृत्वा बलीन् हरेत्। ततः स्विष्टकृदादि वामदेव्यगानान्तं कृत्वा दक्षिणां दद्यात् इति।

अथ ग्रहयज्ञः। दीपिकायाम्। "शुभग्रहार्कवारेषु मृदुक्षिप्रध्रुवेषु च। शुभराशिविलग्नेषु शुभं शान्तिकपौष्टिकम्"। मृदुगणः चित्रानुराधा मृगशिरो रेवत्यः। क्षिप्रगणो लघुगणः। पुष्याश्विहस्ताध्रुवगणो रोहिण्युत्तरात्रयम्। "गोचरे वा विलग्ने वा ये ग्रहा रिष्टसूचकाः। पूजयेत्तान् प्रयत्नेन पूजिताः स्युः शुभावहाः"। गोचरे स्वराश्यपेक्षया यदा कदापि। विलग्ने जन्मलग्ने सूचका न तु रिष्टकारकाः। तेन दुष्टग्रहसूचनीयदोषोपशमनं फलम्। मत्स्यपुराणे। "उत्सवानन्दसन्तानयज्ञोद्वाहादि मङ्गले। मातरः प्रथमं पूज्याः पितरस्तदनन्तरम्। ततो मातामहानाञ्च विश्वेदेवास्तथैव च"। नान्दीमुखे वारादिदोषो नास्ति। "नान्दीमुखे पितृश्राद्धे संक्रान्त्यां ग्रहणद्वये। युगाद्यादि निमित्तेषु न वारतिथिदूषणम्" इति सत्यव्रतवचनात्। अत्र शूद्रस्याप्यधिकारः। स्मार्त्तं शूद्रः समाचरेदिति वचनात् अस्य स्मार्त्तत्वेन प्रतिनिधिनाप्यारम्भः कर्त्तव्यः। "श्रौतं कर्म स्वयं कुर्य्यादन्योऽपि स्मार्त्तमाचरेत्। अशक्तौ श्रौतमप्यन्यः कुर्य्यादाचारमन्ततः"। इति शातातपीयात्। अन्तत उपक्रमात् परतः। याज्ञवल्क्यः। "श्रीकामः शान्तिकामो वा

ग्रहयज्ञं समाचरेत्। वृष्ट्यायुः पुष्टिकामो वा तथैवाभिचरन्नपि। सूर्य्यः सोमो महीपुत्रः सोमपुत्रो वृहस्पतिः। शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुश्चेति ग्रहाः स्मृताः। ताम्रकात् स्फाटिकाद्रक्तचन्दनात् स्वर्णकादुभौ। रजतादयसः सीसात् कांस्यात् कार्य्या ग्रहाः क्रमात्। स्ववर्णैर्वा पटे लेख्या गन्धैर्मण्डलकेषु वा। यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च। गन्धाश्च वलयश्चैव धूपो देयः सगुग्गुलुः। कर्त्तव्या मन्त्रवन्तश्च चरवः प्रतिदैवतम्। आकृष्णेन इमं देवा अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्। उद्बुध्यस्वेति च ऋचो यथासंख्यं प्रकीर्त्तिताः। वृहस्पतेऽतियदर्य्यस्तथैवान्नात् परिस्रुतः। शन्नो देवी तथा काण्डात् केतुं कृण्वन्निति क्रमात्। अर्कः पलाशः खदिरस्त्वपामार्गोऽथ पिप्पलः। उडुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात्। एकैकस्याष्टशतमष्टाविंशतिरेव वा। होतव्या दधिसर्पिर्भ्यां दध्ना क्षीरेण वा युताः। गुड़ौदनं पायसञ्च हविष्यं क्षीरषाष्टिकम्। दध्योदनं हविश्चूर्णं मांसं चित्रान्नमेव च। दद्याद् ग्रहक्रमादेतद् द्विजेभ्यो भोजनं बुधः। शक्तितो वा यथालाभं सत्कृत्य विधिपूर्वकम्। धेनुः शङ्खस्तथानड्वान् हेमवासो हयस्तथा। कृष्णा गौरायसं छाग एता वै दक्षिणा क्रमात्। यश्च यस्य सदा दुस्थः स तं यत्नेन पूजयेत्। ब्रह्मणैषां वरो दत्तः पूजिताः पूजयिष्यथ। ग्रहाधीना नरेन्द्राणामुच्छ्रायः पतनानि च। भावाभावौ च जगतस्तस्मात् पूज्यतमा ग्रहाः"॥ शान्तिधर्म्मद्वारा ऐहिकानिष्टनिवृत्तिः। शान्त्यर्थयागो मलिम्लुचादिष्वपि कार्य्यः। "नैमित्तिकानि काम्यानि निपतन्ति यथायथा। तथातथैव कार्य्याणि न कालस्तु विधीयते" इति दक्षवचनात्। नैमित्तिकानि काम्यानीति समानाधिकरणमिदम्। ग्रहदौःस्थ्यव्याधिदुःस्वप्नादिनिमित्तान्नैमित्तिकानि

तच्छान्तिफलकत्वात् काम्यानि । श्रीवृद्ध्यर्थयागस्तु न कार्य्यः पुष्ट्यर्थत्वेन केवलकाम्यत्वात् । अतएव मत्स्यपुराणम् । वैशम्पायनमासीनमपृच्छच्छौनकः पुनः । सर्वकामाप्तये नित्यं कथं शान्तिकपौष्टिकम्" ॥ वैशम्पायन उवाच । "श्रीकामः शान्तिकामो वा तथा चाभिचरन् पुनः । येन ब्रह्मन् विधानेन तन्मे निगदतः शृणु" ॥ इत्युपक्रम्य ग्रहयागाभिधानात् । वृष्टिकामहोमस्त्ववग्रहनाशार्थत्वे शान्तिकः । केवलवृष्ट्यर्थत्वे पौष्टिकः । अयमपि सङ्कल्पात् परमशौचेऽपि कार्य्यः । "व्रतयज्ञविवाहेषु श्राद्धे होमेऽर्चने जपे । आरब्धे सूतकं न स्यात् अनारब्धे तु सूतकम्" इति विष्णुवचने व्रतशब्दस्य सङ्कल्पाङ्गककर्मपरत्वात् । "विवाहादौ च संस्कारे वृद्धिश्राद्धे कृते सति । सङ्कल्पे ग्रहशान्तौ च नाशौचं मन्यते बुधाः" इति निर्णयामृतधृतवचनाच्च । अत्र नान्दीश्राद्धं विवाहादावित्यनेन श्राद्धस्यारब्धार्थकत्वात् वृद्धिश्राद्धे कृते इति श्रवणाच्च विवाहोपनयनादावशौचोत्सर्गात् परमशौच एव दोषाभावः । न वृद्धिश्राद्धारम्भणादपीति । अथाग्निनामान्याह गृह्यासंग्रहे । "पूर्णाहुत्यां मृडो नाम शान्तिके वरदस्तथा । पौष्टिके बलदश्चैव क्रोधाग्निश्चाभिचारके" ॥ ग्रहाणाह सूर्य्य इत्यादि यद्यपि सर्वजनसिद्धत्वात् ग्रहाणां बहवः शब्दा वाचकाः सन्ति शब्दोपहितश्चार्थोऽर्थोपहितः शब्दो वा देवता उभयथापि शब्दानियमादविनिगमना स्यात् । तथापि सूर्य्यसोममङ्गलबुधबृहस्पतिशुक्रशनैश्चरराहुकेतुपदैः पूजनं सर्वजनसिद्धत्वात् । उभौ बुधबृहस्पती । स्वैर्वर्णैस्ताम्राद्यभावे यस्य ग्रहस्य यो वर्णो रक्तादिस्तैर्वर्णैर्वर्णमाह मत्स्यपुराणम् । "संस्मरेद्रक्तमादित्यमङ्गारकसमन्वितम् । सोमशुक्रौ तथा श्वेतौ बुधजीवौ च पिङ्गलौ । मन्दराहू तथा कृष्णौ धूम्रं केतुगणं विदुः" ॥

पिङ्गलौ पीतौ। धूम्रं चन्द्रं नानावर्णौ “सोमपुत्रो गुरुश्चैव तदुभौ पीत[illegible]मृतौ” इति। चित्राश्च केतव इति वशिष्ठसंहितास्कन्दपुराणगोभिलैकवाक्यत्वात्। तथा चामरसिंहः। “धूम्रधूमलौ कृष्णलोहिते”। गन्धैश्च रक्तचन्दनादिभिः। कृतेषु मण्डलकेषु वर्त्तुलादिग्रहरूपेषु पूज्या इति शेषः। तथा च शान्तिदीपिकायाम्। “वर्त्तुलो भास्करः कार्य्यो ह्यर्द्धचन्द्रो निशाकरः। अङ्गारकस्त्रिकोणस्तु बुधश्चापाकृतिस्तथा। पद्माकृतिर्गुरुः कार्य्यश्चतुष्कोणस्तु भार्गवः। सर्पाकृतिः शनिः कार्य्यो राहुस्तु मकराकृतिः। खड्गाकृतिस्तथा केतुः कार्य्यो मण्डलपूजने”॥ मण्डलकरणासामर्थ्ये वेदिकामाह मत्स्यपुराणम्। “गर्भस्योत्तरपूर्वस्यां वितस्तिद्वयविस्तृताम्। विप्रद्वययुतां वेदीं वितस्त्युच्छ्रायसंयुताम्। संस्थापनाय देवानां चतुरस्रामुदक्प्लवाम्। अग्निप्रणयनं कृत्वा तस्यामावाहयेत् सुरान्”। गर्भस्य मण्डपगर्भस्य। मत्स्यपुराणे “मध्ये तु भास्करं विद्यात् लोहितं दक्षिणेन च। उत्तरस्यां गुरुं विद्याद्बुधं पूर्वोत्तरेण तु। पूर्वेण भार्गवं विद्यात् सोमं दक्षिणपूर्वके। पश्चिमेन शनिं विद्याद्राहुं दक्षिणपश्चिमे। पश्चिमोत्तरतः केतुं स्थापयेत् शुक्लतण्डुलैः”॥ अत्रैव आवाहयेद्व्याहृतिभिरिति दर्शनादावाहनं व्याहृतिभिः शुक्लतण्डुलैः कार्य्यम्। स्कन्दपुराणे। “जन्मभूर्गोत्रमेतेषां वर्णस्थानमुखानि च। योऽज्ञात्वा कुरुते शान्तिं ग्रहास्ते नावमानिताः॥ उत्पन्नोऽर्कः कलिङ्गेषु यमुनायाश्च चन्द्रमाः। अङ्गारकस्त्ववन्त्यान्तु मगधाख्ये हिमांशुजः॥ सैन्धवेषु गुरुर्जातः शुक्रो भोजकटे तथा। शनैश्चरस्तु सौराष्ट्रे राहुर्वैराटिकापुरे॥ अन्तर्वेद्यां तथा केतुरित्येता ग्रहभूमयः। आदित्यः काश्यपो गोत्र आत्रेयश्चन्द्रमा भवेत्॥ भरद्वाजो भवेद्भौमस्तथात्रेयश्च सोमजः। गुरुः पूज्योऽङ्गिरो गोत्रः शुक्रो वै भार्गवस्तथा। शनिः काश्यप एवायं राहुः पैठीनसिस्तथा॥ केतवो जैमिनेयाश्च ग्रहा लोकहिते रताः”॥ मत्स्यपुराणम्। “आदित्याभिमुखाः सर्वे साधिपप्रत्यधिदेवताः। स्थापनीया मुनिश्रेष्ठ नान्तरा न पराङ्मुखाः”॥ आदित्यान्यान्यस्य च

स्थापितग्रहस्यान्तरालेऽन्यो ग्रहो न स्थापनीयः नाप्यादित्यपराङ्मुखाः कार्य्याः। अधिदैवतपूजा अयुतहोमादौ कार्य्या। कात्यायनः। "तन्त्रोक्तजातीरज्ञात्वा होमं यः कुरुते नरः। न तस्य फलमाप्नोति न च तुष्यन्ति देवताः॥ न हुतं न च संस्कारो न च यज्ञफलं लभेत्"॥ वशिष्ठगोभिलकात्यायनाः। "ब्राह्मणौ भार्गवाचार्य्यौ क्षत्रियावर्कलोहितौ। वैश्यौ सोमबुधौ चैव शेषान् शूद्रान् विनिर्दिशेत्"॥ बलयस्तु मत्स्यपुराणे। "गुडौदनं रवेर्दद्यात् सोमाय घृतपायसम्। संयावकं कुजे दद्यात् क्षीरान्नं सोमसूनवे॥ दध्योदनञ्च जीवाय शुक्राय तु घृतौदनम्। शनैश्चराय कृशरमाजं मांसञ्च राहवे॥ चित्रौदनञ्च केतुभ्यः सर्वभक्ष्यैः समर्चयेत्"॥ सर्वभक्ष्यैस्तु तत्तद्द्रव्यालाभे यथालाभोपपन्नैः। मन्त्रवन्तः। ओम् सूर्य्यायत्वाजुष्टं निर्वपामीति मन्त्रयुक्ताः। यजुषां ग्रहणनिर्वापप्रोक्षणमन्त्रयुक्ताः। ऋग्वेदिनान्तु निर्वापप्रोक्षणमन्त्रयुक्ताः। चरुद्रव्यमाह गोभिलः। "अथ हविर्निर्वपति व्रीहीन् यवान् वेति" तदलाभे शालिगोधूमावपि ग्राह्यौ। "यथोक्तवस्त्वसम्पत्तौ ग्राह्यं तदनुकारि यत्। यवासुक्ता च गोधूमा व्रीहीणामिव शालयः" इति छन्दोगपरिशिष्टात्। समित्प्रमाणन्तु मत्स्यपुराणे। "प्रादेशमात्राः सशिखाः सवल्काः सपलाशिनीः। समिधः कल्पयेत् प्राज्ञः सर्वकर्मसु सर्वदा"॥ तत्तत्समिदलाभे पैठीनसिः। "काण्डवल्कलपुष्पप्ररोहरसगन्धादीनां सादृश्येन प्रतिनिधिं कुर्य्यात् सर्वालाभे यवः प्रतिनिधिर्भवतीति काण्डं नालं प्ररोहोऽङ्कुरः। यव इति कल्पतरुपाठः। अवयव इति नारायणोपाध्यायाः। आकृष्णेनेत्यादयः क्रमेण सूर्य्यादिमन्त्राः। एकैकस्येति स्वगृह्यानुसारेण। चरुसमूहेनाज्यभागं कृत्वा चरूणां प्रत्येकमेकैकाहुतिमर्कादिक्रमेणार्कादिमन्त्रैर्हुत्वा पश्चात् स्वस्वमन्त्रैरेव यथोक्तसंख्या होतव्या। इति शूलपाणिमहामहोपाध्यायाः। दूर्वाहोमे दूर्वात्रयं ग्राह्यम्। सरदातिलके होमद्रव्यपरिमाणे दूर्वात्रयसमुद्दिष्टमिति दर्शनात्। चूर्णं पक्वं तिलतण्डुलचूर्णं कृशररूपं शनैश्चराय कृशरमिति मत्स्यपुराणात्। मांसमाजं छागं मांसञ्च राहवे" इति मत्स्यपुराणात्। चित्रान्नं "अजा-

क्षीरेण संस्विन्ना यवाश्च तिलतण्डुलाः। अजाकर्णस्य रक्तेन रक्ताश्चिताश्च संज्ञिता"॥ इति दीपिकोक्तम्। यथा लाभमित्यनेन तत्तद्द्रव्यालाभे भक्ष्यान्तरं देयम्। सर्वभक्ष्यैः समर्चयेदिति मत्स्यपुराणात्। सत्कृत्य पाद्यादिना पूजयित्वा धेन्वादिर्दक्षिणा देया। तदभावे तु मत्स्यपुराणम्; "सुवर्णमथवा दद्यात् गुरुर्वा येन तुष्यति"। तथा च मत्स्यपुराणम्। "यजमानः सपत्नीक ऋत्विजस्तान् समाहितः। दक्षिणाभिः प्रयत्नेन पूजयेद्गतविस्मयः॥ इत्युपक्रमात् गुरुर्वा येन तुष्यतीत्युपसंहारात्। तत्रैव लक्षहोमे। "दातव्या यजमानेन पूर्ववद्दक्षिणा पृथक्। त्वराक्रोधविहीनेन ऋत्विग्भ्यः शान्तचेतसा"॥ इत्युक्तत्वात् ऋत्विग्भ्य एव दक्षिणा। "सूर्याय कपिलां धेनुं दद्याच्छङ्खं तथेन्दवे"॥ इत्यादिषु तादर्थ्ये चतुर्थी। तेन सूर्ययागप्रतिष्ठार्थं कपिलां धेनुम् ऋत्विजे दद्यात्। गुडोदनादिभोजनमपि तस्यैव उपस्थितत्वात्। एता दक्षिणा भोजितब्राह्मणानामिति शूलपाणिव्याख्यानाच्च। "समन्त्रेण प्रदातव्याः सर्वाः सर्वत्र दक्षिणा" इति मत्स्यपुराणात्। धेन्वादिदाने कपिले सर्वदेवानामित्यादि तत्तन्मन्त्राः पाठ्याः। ते च प्रयोगे वक्ष्यते। ऋत्विग्भ्य इत्ययुतादिहोमविषयम्। अल्पहोमेऽशक्तावेकोऽपि पृथक्। अतएव गुरुर्वा येन तुष्यतीत्युक्तं यश्चेति यत्नेन पूर्वोक्तादतिरिक्तोपचारेण अतएव दीपिकायाम्। "एकैकस्याष्टशतमष्टाविंशतिरेव वा। होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना क्षीरेण वा युतम्"॥ पूजयिष्यथ त्वभीष्टवरदानेन अतोदुस्थः ग्रहो यत्नतः पूजनीयः। यथा मत्स्यपुराणे। "सुस्थः स्वल्पोपचारेण दुस्थः शक्त्याद्यपेक्षया। यत्नतः पूजनीयास्ते पूजिताश्चेत् शुभावहाः"॥ तथा "यस्तु पीडाकरो नित्यमल्पवित्तस्य वा ग्रहः। स तं यत्नेन संपूज्य शेषानप्यर्चयेन्नरः॥ तस्मात् पीड़ाकरो नित्यं य एव भवति ग्रहः। तमेव पूजयेद्भक्त्या द्वौ वा त्रीन् वा यथाविधिः॥ एकमप्यर्चयेद्भक्त्या ब्राह्मणं वेदपारगम्। दक्षिणाभिप्रयत्नेन न बहूनल्पवित्तवान्"॥ इति वन्द्यघटीय-हरिहरभट्टाचार्य्यात्मज-श्रीरघुनन्दनभट्टाचार्य्यविरचितं संस्कारतत्त्वं समाप्तम्।

Serving JinShasan
027352
gyanmandir@kobatirth.org